॥ ५२ तमम् अखिलभारतीयप्राच्यविद्यासम्मेलनम् ॥

52nd International - All India Oriental Conference (AIOC 2026)

BOOK OF ABSTRACTS

शोधसारपुस्तकम्

DIGITAL EDITION/ अङ्कीयसम्पादनम्

29th – 31st October, 2026

Haridwar, Uttarakhand, India

Jointly Organized By

University of Patanjali (UoP), Haridwar
Central Sanskrit University (CSU), New Delhi
& Bharatiya Vidvat Parishat (BVP), Bengaluru

52nd All India Oriental Conference (AIOC 2026)

Book of Abstracts — Digital Edition

Chief Patrons:	Param Pujya Yogarshi Swami Ramdev Ji Maharaj Chancellor, University of Haridwar Param Shraddheya Ayurveda Shiromani Acharya Balkrishna Ji Vice-Chancellor, University of Patanjali, Haridwar
Patron	Prof. Shrinivasa Varakhedi Vice-Chancellor, Central Sanskrit University, New Delhi General President, AIOC
Local Secretary:	Prof. Sadhvi Devpriya Pro–Vice Chancellor Faculty of Humanities & Ancient Studies University of Patanjali, Haridwar
General Secretary	Prof Kavita Holey Dean, Faculty of Sanskrit,and other Languages Kavikulaguru Kalidasa Sanskrit University, Ramtek
Joint Secretary	Prof. Shivani V Dean Shastra Faculty Karnataka Sanskrit University, Bengaluru
Editorial Committee:	Chief Editor: Prof Shivani V Associate Editors: Dr Chandan
Published By	University of Patanjali, Haridwar in collaboration with Central Sanskrit University, New Delhi and Bharatiya Vidvat Parishad

This Book of Abstracts includes abstracts submitted during the 52nd All India Oriental Conference conducted between 29th October and 31st October 2026 at University of Patanjali, Haridwar, Uttarakhand

Note: The authors/contributors are solely responsible for all the content and claims that are made in their respective chapters, as well as for the use of AI or any such technology (if they have used it), and the organisers, review committee members, editors, or publishers are in any way liable for any claims of the authors.

प्रश्न शास्त्र में सन्तान प्राप्ति योगों का विश्लेषणात्मक अध्ययन

Lalit Mohan Tiwari

प्रश्न शास्त्र भारतीय ज्योतिष की ऐसी महत्वपूर्ण एवं स्वतंत्र फलित-पद्धति है, जिसमें प्रश्नकर्ता द्वारा प्रस्तुत जिज्ञासा के आधार पर प्रश्न-कुण्डली का निर्माण कर उसके फल का निर्धारण किया जाता है। मानव जीवन से सम्बन्धित विविध प्रश्नों में विवाह एवं सन्तान सम्बन्धी प्रश्नों का विशेष महत्व है। सन्तान प्राप्ति व्यक्ति के पारिवारिक, सामाजिक एवं भावनात्मक जीवन से सम्बद्ध एक महत्वपूर्ण विषय है। प्रस्तुत शोध-पत्र में प्रश्न शास्त्र में प्रतिपादित सन्तान प्राप्ति सम्बन्धी सिद्धान्तों एवं योगों का विश्लेषणात्मक अध्ययन किया जाएगा।

इस अध्यन का प्रमुख उद्देश्य प्रश्न-कुण्डली में सन्तान प्राप्ति के संकेतों को निर्धारित करने वाले प्रमुख ज्योतिषीय तत्वों की पहचान एवं विश्लेषण करना है। इस अध्ययन में विशेष रूप से पञ्चम भाव, पञ्चमेश, लग्न एवं लग्नेश, चन्द्रमा, गुरु तथा पञ्चम भाव पर स्थित एवं दृष्ट ग्रहों की भूमिका का परीक्षण किया जाएगा। इसके साथ ही प्रश्न-ज्योतिषीय ग्रन्थों एवं उपलब्ध शास्त्रीय सिद्धान्तों का अध्ययन करते हुए विभिन्न सन्तान प्राप्ति के अनुकूल योगों, गर्भधान मुहूर्त जो संतान प्राप्ति में विशेष महत्व रखता है, सन्तान प्राप्ति में विलम्ब अथवा बाधा के संकेतों तथा विभिन्न ग्रहयोगों के फलित प्रभावों का शास्त्रीय ग्रन्थों के आधार पर विवेचन किया जाएगा।

इस अध्ययन से प्रश्न शास्त्र में सन्तान प्राप्ति सम्बन्धी सिद्धान्तों की संरचना, प्रासंगिकता एवं फलित-प्रभावशीलता को विश्लेषित करना है। प्रस्तुत अध्ययन प्रश्न शास्त्र में सन्तान सम्बन्धी फलनिर्णय के अधिक व्यवस्थित एवं शोधपरक स्वरूप को समझने में सहायक सिद्ध होता है।

अन्ततः इसके माध्यम से यह स्पष्ट किया जाएगा कि प्रश्न शास्त्र में सन्तान प्राप्ति का निर्णय केवल किसी एक योग अथवा एक भाव के आधार पर न होकर पञ्चम भाव, पञ्चमेश, लग्न, लग्नेश, चन्द्रमा, गुरु तथा सम्बद्ध ग्रहयोगों के समन्वित विश्लेषण पर आधारित होना अधिक उपयुक्त है। इस प्रकार प्रस्तुत अध्ययन प्रश्न शास्त्र में सन्तान प्राप्ति सम्बन्धी फलनिर्णय की विश्लेषणात्मक पद्धति को व्यवस्थित रूप में प्रस्तुत किया जाएगा ।

बीज शब्द: प्रश्न शास्त्र, सन्तान प्राप्ति, सन्तान योग, पञ्चम भाव, पञ्चमेश, चन्द्रमा, गुरु।

नौकायात्रा मुहूर्त का विश्लेषणात्मक अध्ययन

Suchita Chandrashekhar Chandratre

प्राचीन भारतीय ज्ञानपरंपरा में नौका व्यापार, वाणिज्य, देशाटन, जलप्रवास तथा सैन्य एवं रक्षात्मक कार्यो की दृष्टि से महत्वपूर्ण साधन रही है। जलमार्ग के माध्यम से विभिन्न प्रदेशों के मध्य संपर्क, व्यापार तथा आवागमन सुगम होता था। इस कारण नौका निर्माण एवं नौकायात्रा को विशेष महत्व प्राप्त हुआ। नौका के निर्माण से लेकर उसके संचालन तक विभिन्न कार्यो के लिए अनुकूल काल का निर्धारण करने की परम्परा ज्योतिष्यशास्त्र में विकसित हुई।

इस अध्यन में निर्माणारम्भ, नौकासंचलन, नौकायात्रा तथा नौका में वस्तु-प्रक्षेपण के लिए निर्दिष्ट तिथि, वार, नक्षत्र, नक्षत्र संज्ञा, लग्न तथा ग्रहस्थिति का विश्लेषण किया गया है।नौकायात्रा के लिए ग्राह्य माने गए मृदु, लघु एवं चर संज्ञक नक्षोत्रो तथा वर्जित क्रूर एवं तीक्ष्ण संज्ञक नक्षत्रों का कार्यस्वरूप की दृष्टि से विश्लेषण किया गया है।

नौकाविषयक मुहूर्त विचार में पोतचक्र एक विशिष्ट एवं महत्वपूर्ण संकल्पना के रूप में सामने आता है। इसमें नौका के विभिन्न भागो से संबंधित नक्षत्रो की व्यवस्था तथा उन स्थानों पर स्थित ग्रहों के आधार पर शुभाशुभ फल का निर्धारण किया जाता है। अतः नक्षत्र, ग्रह, लग्न तथा नौका के विभिन्न अंगों के मध्य स्थापित संबंध का विश्लेषण किया गया है।

इस अध्ययन से स्पष्ट होता ही की नौकायात्रा मुहूर्त केवल यात्रा के प्रारंभकाल के निर्धारण तक सीमित नहीं है, बल्कि नौकानिर्माण, नौकासंचलन, वस्तु प्रक्षेपण एवं जलप्रवास जैसे विभिन्न कार्यो के लिए विशिष्ट कालविचार प्रस्तुत करता है। इस प्रकार नौकायात्रा एवं नौकानिर्माण से संबंधित

मुहूर्त विचार प्राचीन भारतीय ज्योतिष में कार्यविशिष्ट कलाविचार की विकसित परंपरा को स्पष्ट करता है

नौकायात्रा एवं नौकानिर्माण से संबंधित मुहूर्तविचार का अधिक विस्तृत अध्यन किया जाएगा। प्राचीन भारतीय ज्योतिषपरंपरा में नौकायात्रा एवं नौकानिर्माण संबंधित कलविचार के महत्व को व्यापक रूप से स्थापित किया जाएगा।

बीजशब्द - नौकायात्रा, नौकानिर्माण, मुहूर्त विचार, नक्षत्र विचार

The Putrakameshti Yajna

Ishwari mangesh dixit

The Putrakāmeṣṭi Yajña, performed by King Daśaratha in the Vālmīki Rāmāyaṇa, occupies a foundational yet insufficiently examined position in the Vedic ritual tradition. While the epic narrates the circumstances and outcomes of the rite with poetic richness, it deliberately withholds procedural detail — leaving the liturgical, cosmological, and physiological dimensions of the Putreṣṭi largely unstated. This paper undertakes a cross-textual inquiry into those unstated dimensions, tracing the ritual from its Śruti-level foundations in the Gopatha Brāhmaṇa and Bṛhadāraṇyaka Upaniṣad, through its Gṛhyasūtra codification in the Śāṅkhāyana tradition,

to its narrative embodiment in the Itihāsa. The study demonstrates that the Putrakāmeṣṭi is not a miraculous or isolated event but a highly integrated generative system in which ritual precision, lunar cosmology, reproductive physiology, and moral preparation of the officiant converge into a single sacramental act. The centrality of consecrated milk-based offerings, the shared consumption of sthālīpāka by both spouses, the careful observation of the wife's ṛtu-period, and the exceptional brahmacarya of Ṛśyaśṛṅga together reveal a tradition grounded in experiential knowledge of human reproduction. More broadly, the paper argues that the Rāmāyaṇa's silence on ritual procedure reflects not lacuna but trust — a trust in an audience already embedded in a living Vedic culture. Read against its full śāstric horizon, the Putrakāmeṣṭi emerges as a symbol of the continuity of creation itself: the convergence of individual desire, cosmic order, and divine will into the birth of Rāma.

वैदिकवाङ्मये सूर्योपासनायाः स्वरूपं तस्याः वैज्ञानिकं महत्त्वं च

डॉ. निशान्त मिश्रः

भारतीयसंस्कृतेः ज्ञानपरम्परायां गुरुशिष्यसम्बन्धस्य विशिष्टं स्थानं वर्तते। गुरुशिष्यपरम्परा केवलं ज्ञानप्रदानस्य प्रक्रिया न, अपितु शिष्यस्य शारीरिक-बौद्धिक-नैतिक-सांस्कृतिकविकासस्य महत्त्वपूर्णं साधनमासीत्। गुरुः शिष्याय शास्त्रज्ञानं प्रददाति, तस्य सदाचारं संस्कारान् च संवर्धयति तथा जीवनस्य समुचितमार्गं प्रदर्शयति। महाकविना कालिदासेन विरचिते **रघुवंशमहाकाव्ये** एषा गुरुशिष्यपरम्परा विविधैः प्रसङ्गैः प्रभावपूर्णतया निरूपिता अस्ति।

विशेषतः प्रथमसर्गे राजा दिलीपस्य महर्षेः वसिष्ठस्य च सम्बन्धे गुरुसेवायाः, गुरुभक्तेः, श्रद्धायाः, आज्ञापालनस्य, आत्मसंयमस्य च आदर्शः स्पष्टतया दृश्यते। पुत्रप्राप्त्यर्थं वसिष्ठाश्रमं गत्वा दिलीपः गुरोः आज्ञामनुसृत्य नन्दिनीं धेनुं सेवते। तस्य सेवाभावः, विनयः, समर्पणशीलता च आदर्शशिष्यस्य स्वरूपं प्रकाशयन्ति। अत्र गुरुसेवा केवलं धार्मिककर्तव्यं न, अपितु आत्मसंयमस्य तथा कर्तव्यनिष्ठायाः साधनत्वेनापि प्रतिपादिता अस्ति।

रघुवंशस्य अन्येषु प्रसङ्गेषु राजकुमाराणां शिक्षायां शास्त्रज्ञानस्य, शौर्यस्य, विनयस्य, नीतिज्ञानस्य तथा राजधर्मस्य समन्वयः परिलक्ष्यते। विशेषतः रघोः व्यक्तित्वे शिक्षा तथा संस्कारयोः प्रभावः स्पष्टः भवति। कौत्स-रघु-प्रसङ्गे

गुरुदक्षिणायाः महत्त्वं, गुरुभक्तिः, कृतज्ञता तथा शिष्यस्य गुरौ श्रद्धा च प्रकाश्यन्ते। कौत्सस्य गुरुदक्षिणापूर्त्यर्थं रघोः उदारता दानशीलता च गुरुशिष्यपरम्परायाः सामाजिकपक्षं दृढयतः।

एवं रघुवंशमहाकाव्ये गुरुशिष्यपरम्परा केवलं शिक्षणव्यवस्थायाः स्वरूपं न, अपितु चरित्रनिर्माणस्य, नैतिकमूल्यानां संवर्धनस्य, कर्तव्यबोधस्य, सांस्कृतिकमूल्यानां संरक्षणस्य च प्रभावी माध्यमम् इति प्रतिपादिता अस्ति। कालिदासस्य काव्यदृष्ट्या गुरुशिष्यसम्बन्धः भारतीयजीवनमूल्यानां संरक्षणे तथा आदर्शव्यक्तित्वनिर्माणे महत्त्वपूर्णं स्थानं धारयति।

Ecological Wisdom in Ancient Indian Thought: A Vedic Perspective on Environmental Harmony

Niveda

This paper explores the ecological wisdom embedded in ancient Indian philosophy and Vedic literature as a sustainable framework for addressing modern environmental crises. Central to this perspective is the philosophical shift from chushanam (exploitation) to dohanam (sustainable, gentle utilization). Drawing upon key Vedic concepts—such as viewing the Earth as a mother ("Mātā pṛthivī putro'haṁ pṛthivyāḥ"), revering natural elements like water and the Sun, and understanding the cosmic cycle of sustenance illustrated in the Parjanya Sukta and Bhagavad Gita—the paper highlights how ancient practices like Yajna functioned as practical methods for ecological balance. By examining texts including Kalidasa's Abhijñana Shakuntalam and the concept of Ashtamurti, this study demonstrates that ancient Indian thought provides timeless ethical and practical principles for fostering a harmonious, respectful relationship between humanity and the natural world.

वैदिक समाज में नैतिकता

कु. संगीता

वैदिक काल में नैतिकता सिर्फ कुछ सामाजिक सिद्धान्तों अथवा रीति-रिवाजों का संग्रह मात्र नहीं थी, बल्कि यह समाज ब्रह्माण्ड, प्रकृति और मानव जीवन को सुव्यवस्थित रूप से संचालन करने वाला एक शाश्वत मार्ग थी। वैदिक समय (पूर्व-वैदिक और उत्तर-वैदिक काल) में नैतिक मूल्यों को सिर्फ व्यक्तिगत गुण तक सीमित नहीं माना गया, बल्कि इसे सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड और सामाजिक व्यवस्था को सुव्यवस्थित ढंग से चलाने का आधार स्तम्भ माना गया। वैदिक समाज में नैतिक नियमों का निर्माण भयवश नहीं, बल्कि कर्तव्यपरायण, लोककल्याण और आत्मज्ञान के लिये किया गया था। यदि समाज में नैतिकता लुप्तप्राय हो जायेगी, तो चारों तरफ अराजकता फैल जाएंगी। वैदिक समाज में नैतिकता के मुख्य चार आधार स्तम्भ है- ऋत और धर्म, पुरुषार्थ-चतुष्टय, ऋण तथा पञ्च महायज्ञ और सत्य एवं सदाचार।

ऋग्वैदिक काल में जहाँ नैतिकता का स्वरूप आन्तरिक पवित्रता, सत्य और परोपकार पर आश्रित थी, वहीं उत्तर-वैदिक काल (1000 ई. पू. 600 ई. पू.) तक आते-आते इसमें कुछ परिवर्तन देखी गयी। नैतिकता का स्थान बाह्य कर्मकाण्डों, बड़े-बड़े यज्ञों, पशुबलियों और जन्म के आधार पर कठोर वर्ण-व्यवस्था ने ले लिया। इसके बावजूद वैदिक काल की मूल नैतिक अवधारणाएँ जैसे- वसुधैव कुटुम्बकम् (सम्पूर्ण पृथ्वी ही परिवार है।), ऋग्वैदिक संज्ञान सूक्त (10.191) में संगच्छध्वं संवदध्वं (हम सब एक साथ चलें और एक साथ बोले।) और निःस्वार्थ कर्तव्यबोध, वर्तमान समय में भी आधुनिक समाज को एकता,समानता और सामूहिकता एक बेहतर दिशा दिखाने की क्षमता रखती है,। महात्मा गाँधी ने भी अपने 'सत्याग्रह आन्दोलन' और 'सर्वोदय' के सिद्धान्तों के लिए इसी वैदिक नैतिकता को अपना मुख्य आधार स्तम्भ बनाया था।

संस्कृत में अलंकार विधान

डॉ. आकांक्षा सिंह

साहित्यिक कृति के निर्माण में वर्णन कला की प्रतिभा एवं सहजता दो आवश्यक तत्त्व हैं। इनके साथ ही आवश्यक है क्रांतदर्शी होना, क्योंकि यही शक्ति रचनाकार को सामान्य मानव से इतर 'विशिष्ट' की श्रेणी प्रदान करती है।

कवि होना अर्थात् क्रांतदर्शी होना सहज प्राप्तव्य नहीं होता।

- अमरकोश में अमर सिंह ने क्रांतदर्शी होने को *'कविते ग्रंथते वर्णयति वा'* कहा है।
- इसी को शब्दकल्पद्रुम कोश में *'कविते सर्वं जानाति सर्वं वर्णयति सर्वतो वा गतिः वा येन वर्णितः'* के रूप में वर्णित किया गया है।

आचार्य भट्टौत कवि होने को आदिकवि वाल्मीकि के दृष्टान्त द्वारा सहज रूप में वर्णित करते हैं:

दर्शनाद् वर्णनाच्चापि लोके कविश्रुतिः

अर्थात् सकल जगत् में कवि की श्रुति (प्रसिद्धि) उसके दर्शन, अनुभूति एवं वर्णन के कारण हुआ करती है। यहाँ पर आचार्य भट्टौत 'कवि' पदवी के लिए सूक्ष्म दृष्टि एवं वर्णन-शक्ति को अपरिहार्य मान रहे हैं।

Love, Devotion, and Empathy: Discourse of Bhakti in Dvaita Philosophy

Dr. Srinivasa Kumar N Acharya, M Vishnuvardhan, Vanditha GB

Dvaita Vedānta, or Tatva-vada, is predominantly characterised by its rigorous ontological pluralism and dialectical polemics, which frequently result in the scholarly marginalisation of its profound affective dimensions. This paper investigates the soteriological interdependence of love (sneha), empathic solidarity (dayā), and unshakeable devotion (bhakti) within Śrī Madhvācārya's philosophy. Synthesising canonical treatises—including Madhva's Gītā Bhāṣya and Tātparyanirṇaya, the ontological taxonomies, the aphoristic frameworks of the Śāṇḍilya and Nārada Bhakti Sūtras, and the devotional poetry of the Haridāsas—this study argues that devotional affect in Dvaita is an ontological necessity rather than a mere emotional contingency. The objective is to establish that bhakti is the teleological summit (nityānanda-svarūpiṇī), defined as profound love grounded in the experiential realisation of divine majesty (māhātmya-jñāna-pūrvaka-sneha). Consequently, human agency finds its ethical and spiritual fulfilment exclusively through devoted, compassionate communion within a realistic hierarchy of being, providing a unique theological model that bridges strict realism with the highest aesthetic and emotional registers of religious experience.

Keywords: Affectivity, Hierarchy, Intentionality, Intersubjectivity, Ontic Dependency, Pluralism, Relational Ethics.

श्रौतपरम्परायां विज्ञानम्

डा. संकल्पमिश्रः

सर्वेषाम् इष्टियागानां प्रकृतिः दर्शपौर्णमासः। एतस्य अनुष्ठानस्य यः क्रमः वर्तते तत्र उपलक्षणत्वे एको विषयः वर्तते पात्रासादनस्य। पात्रासादनाय विशिष्टप्रक्रिया अवलम्ब्यते। शतपथब्राह्मणे प्रथमकाण्डे प्रथमेऽध्याये पौर्णमासयागस्य अनुष्ठानप्रकरणे पात्रासादनं प्राप्यते। तत्र युग्मपात्रेषु सर्वादौ शूर्पम्-अग्निहोत्रहवणी इत्यनयोः सर्वादौ स्वीकरणं, तदनन्तरं प्रतपनं सम्पाद्य गार्हपत्यस्य पश्चिमदिशि स्थापनार्थं संकेतः प्राप्यते। अत्र एतस्याः प्रक्रियायाः अनुष्ठानस्य नेपथ्ये विशिष्टं कारणं विद्यते यत् अपूर्वोत्पादनार्थं द्वित्वभावस्य अपेक्षा वर्तते। एकः बीजः भवति अपरश्च क्षेत्रम्। श्रूयते हि शतपथे द्वन्द्वं पात्राण्युदाहरति इतोऽपि च द्वयं वा इदं न तृतीयमस्ति अतः द्वन्द्वभावस्य वैज्ञानिकता वस्तुतः उत्पत्तये सन्निहिता। पात्रासादनार्थं पात्रग्रहणं विधाय पात्राणां प्रतपनमपि क्रियते। पात्रप्रतपने प्रत्युष्टं रक्षः इत्यस्य शुक्लयजुर्वेदे प्रथमाध्याये प्राप्तमन्त्रस्य विनियोगः वर्तते। प्रतपनं किमर्थमावश्यकम्? मनुष्याणां स्वभावः वर्तते यत् दृष्टवा अदनं कुर्वन्ति तत्र यदि अपद्रव्यं दृश्यते तस्य सद्यः अपाकरणं विधाय स्वीकुर्वन्ति। वस्तुतः ये सूक्ष्मजीवाः सन्ति ते आर्द्रतावशात् तत्र पात्रेषु उत्पद्यन्ते। अतस्तेषां विनाशेन पात्राणां याथार्थी शुचिता पवित्रता वा भवति। अथ च यदि मानवः स्वार्थे अपद्रव्ययुतपात्रस्य प्रक्षालनं करोति तर्हि देवकार्यार्थं यागार्थं वा एतत्परमावश्यकं यत् यागकाले कस्मिन्नपि पात्रे अपवित्रता, अशुचिता वा न स्यात्, सा अशुचिता दृश्या स्यात् उत् अदृश्या। यतो हि तस्य प्रयोगः इष्टिकर्मणि श्रौतयागे वा भविष्यति तत्र प्रमुखमुद्देश्यं देवतानां

जोषणम्। लोकेऽपि एवंविधानि बहूनि उदाहरणानि दृश्यन्ते। अतः एवंविधतथ्यानि संकलय्य तेषां विश्लेषणं वैज्ञानिकदृष्ट्या आवश्यकम्।

कूटशब्दाः श्रौतयागेषु विज्ञानम्, श्रौतयज्ञाः, वैदिकं विज्ञानम्, यागेषु विज्ञानम्, यागप्रक्रिया, श्रौतानुष्ठानविधिः।

Interpretation of Dream: In the Context of The Vedic Literature

Sukhen Ghosh

Svapna or Dream occupies a significant position in Vedic literature, where it is not treated as a random nocturnal experience but as a complex manifestation of consciousness, memory, desire, and mental impressions. The present study, entitled “Interpretation of Dream: In the Context of Vedic Literature,” examines the conceptual and psychological dimensions of dreams as reflected primarily in the *Ṛgveda*, *Atharvaveda* and the *Upaniṣad-s*. The Vedic and Upanishadic tradition distinguishes four states of consciousness: *Jāgrat* (waking), *Svapna* (dreaming), *Suṣupti* (deep sleep), and *Turīya* (Superconscious state). Dreaming is presented as an intermediate state in which the mind turns inward and constructs an experiential world from previously acquired impressions (*saṃskāra-s*). The *Bṛhadāraṇyaka*, *Praśna*, and *Māṇḍūkya Upaniṣad-s* describe the dreamer as creating or experiencing objects through the mind. At the same time, the *Atharvaveda* connects dream experiences with waking actions, thoughts, desires, and latent impressions. Particular attention is given to auspicious and inauspicious dreams, especially *Duḥsvapnya* (bad Dream), which is associated with fear, guilt, misfortune, psychological disturbance, and even physical suffering. The Atharvavedic treatment of bad dreams includes ritual, verbal, and suggestive methods for their removal, indicating an early recognition of the relationship between mental states and well-being. From a psychoanalytic perspective, the study further compares these ideas with Freud’s understanding of dreams as disguised expressions of repressed or suppressed wishes. Such a comparison reveals significant parallels between the Vedic concept of latent *Saṃskāra-s* and the modern notion of unconscious mental contents, while preserving their distinct philosophical foundations. The study concludes that Vedic dream theory offers a multidimensional framework encompassing consciousness, symbolism, memory, desire, morality, and psychological transformation.

Karma Siddhānta in the Śrīmad Bhagavad Gītā and Classical Jyotiṣa: A Comparative Study

Surinder Siddharth Sen

Karma Siddhānta is one of the important ideas in Indian philosophy. It is based on the understanding that every action has a result and that our actions influence the direction of our life. The Śrīmad Bhagavad Gītā explains karma mainly in relation to duty, right action, attachment, self-control, and spiritual freedom. Classical Jyotiṣa, on the other hand, provides a traditional way of understanding how the effects of past karma may be reflected in different situations and stages of human life.

The present study aims to compare the concept of karma found in the Bhagavad Gītā with its understanding in classical Jyotiṣa. It examines important ideas such as karma, karma-phala, svadharma, svabhāva, guṇa, daiva, puruṣakāra, graha-phala, and daśā. The Gītā teaches that a person cannot remain without action. However, attachment to the results of actions can become a cause of bondage. Therefore, it encourages niṣkāma-karma, or performing one's duty without excessive attachment to its outcome. It also explains how sattva, rajas, and tamas influence a person's nature and actions.

Classical Jyotiṣa explains life experiences through grahas, bhāvas, yogas, and daśās, which may be understood as indicators of karmic tendencies and their expression at different times. Through a comparative study of the Bhagavad Gītā and classical Jyotiṣa texts, this paper explores the relationship between destiny and personal effort. The study suggests that Jyotiṣa indicates possible tendencies and life circumstances, while the Gītā emphasizes how a person can respond to them through right action, awareness, and inner balance. Together, both traditions offer a broader understanding of karma, human effort, destiny, and spiritual growth.

Keywords: Karma Siddhānta; Bhagavad Gītā; Jyotiṣa; Karma-phala; Niṣkāma-karma; Daiva; Puruṣakāra; Svadharma

Jñāna, Buddhi and Dharma: Ethical Decision-Making in the Bhagavad Gītā —An Indian Knowledge Systems Perspective

Rethish Nagabhushan S

Ethical decision-making has remained and will continue to be a significant challenge in human life since individuals face situations where personal interests, social obligations, professional responsibilities, and moral principles come up against or conflict with each other. Most recent developments of this field of study are often based on consequentialist, deontological, virtue-ethical, psychological, or behavioral frameworks. However, the Bhagavad Gītā is a very rich, alternative, intellectual resource which brings to light an understanding of ethical action in terms of different components: jñāna (knowledge), buddhi (discriminative intelligence), dharma (normative duty/order), karma (action), and loka-saṅgraha (the maintenance or welfare of the social order). This paper analyzes these ideas through a critical textual and hermeneutical reading of some selected verses from the main text especially focusing on Chapters 2, 3, and 18. The paper asserts that the Bhagavad Gītā is not offering one single and straightforward ethical decision-making method, which is based on rules imposed from without. Rather, it portrays such a process of ethical decision-making which includes multiple elements - the recognition of the situation, distinction of appropriate and inappropriate courses of action, identification of dharma, control of one's attachment to the results, and one's duties to the society or community at large.

The paper ultimately points out that in the case of the IKS approach to the traditional texts we should not be sentimental or idealize them nor reduce them as modern Western models; however,

it should involve studying their content within the original intellectual framework while simultaneously, in a critical and imaginative way, uncovering their potential applications here and now.

Keywords: Bhagavad Gītā, Indian Knowledge Systems, jñāna, buddhi, dharma, karmayoga, ethical decision-making Indian ethics, loka-saṅgraha and philosophical concepts in the ancient Indian language

वैदिकवाङ्मये राजधर्मस्य स्वरूपं तस्य समकालीनप्रासङ्गिकता च।

राज मिश्रः

भारतीयवैदिकवाङ्मयं न केवलं धार्मिकाध्यात्मिकचिन्तनस्य मूलस्रोतः, अपितु सामाजिक-राजनैतिक-नैतिकचिन्तनस्यापि महत्त्वपूर्णः आधारः वर्तते। वैदिकवाङ्मये राजधर्मस्य विशदं निरूपणं प्राप्यते। राजा केवलं राज्यस्य शासकः नासीत्, अपितु प्रजानां रक्षकः, पालकः, न्यायव्यवस्थायाः संरक्षकः तथा लोककल्याणस्य प्रवर्तकश्च आसीत्। अतः वैदिकराजधर्मस्य मूलाधारः प्रजाहितं, न्यायः, धर्मपालनं, सुव्यवस्था, सुरक्षा च आसीत्। प्रस्तुतशोधपत्रे वैदिकवाङ्मये प्रतिपादितस्य राजधर्मस्य स्वरूपस्य तथा तस्य वर्तमानराजनैतिकव्यवस्थायां प्रासङ्गिकतायाः विवेचनं क्रियते।

ऋग्वेदे राज्ञः प्रजापालनं, शत्रुनिवारणं, राष्ट्रसंरक्षणं च तस्य प्रमुखकर्तव्यत्वेन प्रतिपादितम्। राजा प्रजानां हिताय कार्यं कुर्यात् तथा राष्ट्रस्य समृद्धिं सुनिश्चितं कुर्यात् इति भावना वैदिकमन्त्रेषु दृश्यते। अथर्ववेदे राष्ट्रस्य एकता, सुरक्षा, समृद्धिः, प्रजाजनानां परस्परसौहार्दं च विशेषतया प्रतिपादितम्। तत्र राज्ञः स्थैर्यं, राष्ट्रस्य अभ्युदयः तथा प्रजानां कल्याणं परस्परसम्बद्धानि इति दृष्टिकोणः दृश्यते। वैदिकराजनीतिचिन्तने राजा धर्मस्य अधीनः आसीत्; तस्य शासनं स्वेच्छाचारितायाः न, अपितु धर्म-न्याय-लोकहितस्य च आधारेण भवितव्यम् इति आदर्शः आसीत्।

वैदिकवाङ्मये सभा तथा समितिः इत्येतयोः उल्लेखः अपि राजनीतिकव्यवस्थायाः महत्त्वपूर्णं पक्षं प्रदर्शयति। एताभ्यां संस्थाभ्यां शासनसम्बद्धेषु विषयेषु विचारविमर्शस्य तथा सामूहिकनिर्णयस्य परम्परा सूच्यते। अतः वैदिकराजधर्मे परामर्शः, जनहितम्, उत्तरदायित्वं तथा सामूहिकचिन्तनं महत्त्वपूर्णानि तत्त्वानि आसन्।

समकालीनपरिप्रेक्ष्ये वैदिकराजधर्मस्य महत्त्वं विशेषतया अनुभूयते। अद्य लोकतान्त्रिकव्यवस्थायां शासनस्य प्रमुखं लक्ष्यं नागरिकानां सुरक्षा, न्यायः, समानता, सामाजिककल्याणं, आर्थिकविकासः तथा सार्वजनिकहितस्य संरक्षणं च अस्ति। एतेषु सर्वेषु क्षेत्रेषु वैदिकराजधर्मस्य प्रजाहितप्रधानः दृष्टिकोणः मार्गदर्शकः भवितुमर्हति। भ्रष्टाचारनिवारणम्, उत्तरदायी शासनम्, नैतिकनेतृत्वम्, न्यायपूर्णप्रशासनं तथा राष्ट्रहितस्य संरक्षणम् इत्यादिषु वैदिकराजधर्मस्य सिद्धान्ताः अद्यापि प्रासङ्गिकाः सन्ति।

अतः वैदिकराजधर्मः केवलं प्राचीनराजव्यवस्थायाः ऐतिहासिकवर्णनं न, अपितु नैतिकतायाः, न्यायस्य, उत्तरदायित्वस्य, प्रजाहितस्य च आधारेण आदर्शशासनस्य एकः महत्त्वपूर्णः सिद्धान्तः अस्ति। आधुनिकराजनीतौ यदि शासनव्यवस्था लोककल्याणं, न्यायं, नैतिकतां तथा उत्तरदायित्वं च केन्द्रे स्थापयति, तर्हि वैदिकराजधर्मस्य मूलभावना आधुनिकसमाजस्य सुशासननिर्माणे महत्त्वपूर्णां प्रेरणां दातुं शक्नोति।

यज्ञवेदी, यज्ञपुरुष और सृष्टि- वैदिक यज्ञ की प्रतीकात्मक अवधारणा

Vishal Santosh Joshi

वैदिक यज्ञ भारतीय वैदिक परम्परा की एक अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं सुव्यवस्थित संस्था है। क्योंकी वेदो की उत्पत्ति प्रवृत्ति और मुख्य उद्देश यज्ञ हि है (वेदा हि यज्ञार्थमभिप्रवृत्ताः)। यज्ञ की सम्पूर्ण प्रक्रिया जिस विशिष्ट जगह पूर्ण होती है उस स्थान को यज्ञ की वेदी कहा जाता है । वेदी इस जगत् के मूलतत्व याने यज्ञ की पत्नी स्वरूप है । जिस प्रकार लौकिक जगत् में पत्नी के सहाय्य से संतति प्राप्त होती है, उसी प्रकार ऋत्विज भी वेदी के माध्यम से हि अपूर्व तथा वैदिक याग के फलों की अनुभूति करते है (योषा वै वेदिर्वृषाग्निः परिगृह्य वै योषा वृषाणं शेते मिथुनमेवैतत्प्रजननं क्रियते तस्मादभितोऽग्निमंसा उन्नयति – शतपथ ब्राह्मण १.२.५.१५) । यज्ञीय कर्मों का सम्पादन वेदी के आधार पर ही होता है (विद्यते लभ्यते अनया सा वेदी) ।

प्रस्तुत शोध विषय में सौमिकवेदी अर्थात सोमयाग में विशद की गयी वेदी का और उसके स्वरूप का शतपथब्राह्मण ग्रन्थ के आधार पर अध्ययन किया गया है । वेदी के भागों से यज्ञपुरुष के अंगो की तुलना पर प्रतीकात्मक दृष्टि से प्रकाश डाला गया है। साधारण तौर पर 'यज्ञो वै विष्णुः' (श. ब्रा. १.१.२.१३) तथा 'यज्ञो वै पुरुषः'(श. ब्रा. ३.५.३.१) इन श्रुतिवाक्योंका तात्पर्यार्थ समझ नहीं आता है । ऋग्वेद तथा शुक्लयजुर्वेद के पुरुषसूक्त से यज्ञ के आधिभौतिक तथा आधिदैविक स्वरूप का जो वर्णन मिलता है उसके माध्यम से इन श्रुतिवाक्योंका स्पष्टीकरण देने का प्रयास किया गया है ।

इस अभ्यास से यह निष्कर्ष सामने आता है की वेदी से यज्ञपुरुष की उत्पत्ति और यज्ञपुरुष से विश्व की उत्पत्ति है । परिणामतः सृष्टिनिर्माण का मूल यज्ञवेदी है ऐसी मान्यता गलत नहीं होगी।

Keywords**:** सौमिकवेदी; यज्ञपुरुष; शतपथब्राह्मण; पुरुषसूक्त; प्रतीकात्मकता

सामवेदाध्ययनपरम्परायां सामप्रातिशाख्यानामुपयोगिता

हरिश्चन्द्र गवस

वैदिकवाङ्मयम् अत्यन्तं प्राचीनं वर्तते। वैदिकवाङ्मयमिदं श्रुतिपरम्परयैव संरक्षितं वर्तते। प्रातिशाख्यग्रन्थानां मुख्यं कार्यं किमिति चेत् वेदोच्चारणपद्धतेः संरक्षणमेव। वेदस्य स्वरवर्णपदादीनाम् उच्चारणस्य यथावत् संरक्षणं प्रातिशाख्यग्रन्थैः क्रियते। अतः वेदोच्चारणपद्धतीनां संरक्षणे प्रातिशाख्यग्रन्थानां महत्त्वपूर्णं स्थानं वर्तते। वेदेषु सामवेदः अन्यतमो वर्तते। सामस्वराः सामवेदस्य अपरं वैशिष्ट्यम्। तत्र आयीभावानां ज्ञानार्थं पुष्पसूत्रप्रातिशाख्यम्, ऋक्पदानां सन्धिविषयकज्ञानार्थम् ऋक्तन्त्रप्रातिशाख्यम् उपयुक्तं भवति। एवं सामवेदसम्बद्धानि चत्वारि प्रातिशाख्यग्रन्थानि वेदोच्चारणपद्धतेः, स्वरविचारस्य, वर्णपदविन्यासस्य च सूक्ष्मविवेचनं कुर्वन्ति। अतः एते प्रातिशाख्यग्रन्थाः अत्यन्तं गभीरचिन्तनपूर्णाः उपयुक्ताः सन्तीति वक्तुं शक्यते। वेदोच्चारणपद्धतेः संरक्षणार्थं प्रातिशाख्यग्रन्थाः प्रवर्तिताः सन्ति। प्रत्येकं वेदस्य पृथक् पृथक् प्रातिशाख्यग्रन्थाः वर्तन्ते। तेषु सामवेदस्य चत्वारः प्रातिशाख्यग्रन्थाः प्रसिद्धाः सन्ति।

पुष्पसूत्रप्रातिशाख्यम्, सामतन्त्रप्रातिशाख्यम्, अक्षरतन्त्रप्रातिशाख्यम् तथा ऋक्तन्त्रप्रातिशाख्यम् इति चत्वारि प्रातिशाख्यानि प्रसिद्धानि सन्ति। सामवेदस्य संहितापाठः, पदपाठः, ग्रामगेयगानादयः प्रकाराः वर्तन्ते। तत्तत्सम्बद्धानि एतानि प्रातिशाख्यानि सन्ति। एतेषां प्रातिशाख्यग्रन्थानाम् अध्ययनादेव वर्णानां पदानां च सम्यगुच्चारणस्य ज्ञानं भवति। तत्र पदगतसन्धिविषयाणाम् अपि सम्यग्ज्ञानं भवति। अतः वेदस्य शुद्धोच्चारणे तथा वर्णपदादिविषयकज्ञानस्य प्राप्तौ प्रातिशाख्यग्रन्थानां महत्त्वपूर्णं स्थानं वर्तते।

प्राचीनकाले सामवेदस्य सहस्रशः शाखाः आसन्। सद्यः तिस्रः शाखाः उपलभ्यन्ते तासां शाखानां संरक्षणम् अद्यतनकालेऽपि अत्यन्तं महत्त्वपूर्णं वर्तते। सामवेदस्य वेदोच्चारणपद्धतेः संरक्षणार्थं प्रातिशाख्यग्रन्थाः मूलभूताः सन्ति। अत एव वेदोच्चारणपद्धतीनां संरक्षणे प्रातिशाख्यग्रन्थानाम् उपयोगिता महती वर्तते। अस्मिन् शोधप्रबन्धे सामप्रातिशाख्यग्रन्थानां स्वरूपं, वैशिष्ट्यं तथा वेदोच्चारणपरम्परायाः संरक्षणे तेषाम् उपयोगिता च उपस्थाप्यते।

Women in Vedic Period: A Study of their Social, Educational, Religious and Intellectual Status

Vishnupriya

The position of women in the Vedic period is an important area of inquiry for understanding the social and intellectual history of ancient India. The Vedic corpus presents a complex and multifaceted picture of women, encompassing their roles within the family and household as well as their participation in religious, literary and philosophical activities. This paper examines the status of women through a critical study of selected passages from the Ṛgveda, Atharvaveda, Brāhmaṇa literature and early Upaniṣads.

Particular attention is given to the ṛṣikās, or women traditionally associated with the revelation of Vedic hymns, including Lopāmudrā, Ghoṣā, Apālā, Viśvavārā and Vāk Ambhṛṇī. Their presence in the Vedic tradition provides significant evidence concerning women's participation in sacred and intellectual discourse. The Ṛgvedic marriage hymns are examined to understand women's position within the family and their social and ritual responsibilities. The study further explores the representation of women in the Upaniṣadic period through the remarkable figures of Gārgī Vācaknavī and Maitreyī. Gārgī's philosophical dialogue with Yājñavalkya in the Bṛhadāraṇyaka Upaniṣad and Maitreyī's inquiry into immortality and Ātman demonstrate the participation of women in sophisticated metaphysical discourse.

The paper also critically examines the limitations of women's social position within the predominantly patriarchal structure of Vedic society. It argues that the evidence does not support either an idealized claim of complete gender equality or a generalized characterization of women as universally subordinated. Rather, Vedic literature reveals a complex interaction between socially prescribed gender roles and significant forms of female religious, intellectual and philosophical agency. The study concludes that the Vedic tradition preserves an important history of women's voices in which the feminine appears not only as wife and mother but also as poet, seer, philosopher and seeker of Brahmavidyā.

Keywords: Women,v Vedic period, Ṛgveda, ṛṣikās, Gārgī, Maitreyī, Vedic society, women’s education, Vedic religion, Upaniṣads, Brahmavidyā.

The Basic Structure of The Rigvedic society

Shlesha Sachindra

पदं देवस्य नमसा व्यनतः श्रवस्यः श्रव आपन्नमृक्तम्।

नामानि चिद्दधिरे यज्ञियानि भद्रायां ते रणयन्त सन्दृष्टौ ॥ ऋ० वे० 6.1.4

त्वां वर्धन्ति क्षितयः पृथिव्यां त्वां राय उभयासो जनानाम् ।

त्वं त्राता तरणे चेत्यो भूः पिता माता सदमिन्नानुषाणाम् ॥ऋ० वे० 6.4.5

INTRODUCTION- Human existence develops under the inter-relations and interactions of society, culture and the individual. These entities are so closely interdependent that investigators are likely to become confused when they try to differentiate them. In particular, the term culture and society are often used interchangeably. Nevertheless, each of the three is of different order and each has its own special characteristics and its special role in dynamic configuration formed by all three together. A society is an organized group of individuals. A culture is an organized group of learned responses characteristic of a particular society. The individual is living organ of

a particular society. This living individual unit is capable of independent thought, feeling and action, but his independence is limited and all his responses are profoundly modified by contact with the society and culture in which he develops.

Nature has created the universe on the law of motion. The law of equality and the law of uniformity both works simultaneously; the law of similarity and the law of difference work together; the law of cyclic order of motion and the law of spiralic order of motion both simultaneously work inseparably; the law of matter and the law of energy both are inter-related. This is the creation of Nature. It is the bundle of contradictions and possibilities. The social structure constituted by the social individuals is basically the product of Nature. It contains all the non-basic and the basic contradictions; it follows all the basic and super structural laws and the law of constant renovation governed by the system of composition and decomposition within the limitless possibilities as mentioned in ईशावास्योपनिषद्-

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।

पूर्णस्य पूर्णमादायः पूर्णमेवावशिष्यते॥

यजुर्वेदीय मन्त्रों का स्मार्तकर्म में विनियोग

Omkar Ashok Joshi

भारतीय धार्मिक परम्परा में वैदिक मन्त्रों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। श्रौत तथा स्मार्त विधियों में वैदिक मन्त्रों का विनियोग किया जाता है। श्रौत विधियों में विशिष्ट देवता, क्रिया एवं यज्ञद्रव्य के संदर्भ में विनियुक्त कुछ मन्त्र कालान्तर में स्मार्त विधियों में भी प्रचलित हुए।

प्रस्तुत शोध में चयनित वेदमन्त्रों के मूल अर्थ, श्रौत विधियों के अन्तर्गत उनके विनियोग तथा स्मार्त विधियों में प्रचलित उनके विनियोग का तुलनात्मक अध्ययन किया है। इस अध्ययन के लिए शुक्ल यजुर्वेद संहिता, उव्वट-महीधर भाष्य, कात्यायन श्रौतसूत्र, कर्मकाण्डप्रदीप तथा याज्ञिकरत्नम् इन ग्रन्थों को आधार बनाया है।

कुछ मन्त्रों का स्मार्त विधियों में उनके मूल अर्थ के अनुरूप विनियोग होता है। उदाहरणार्थ 'अश्वस्य त्वा॒ वृष्णः॑ श॒क्ना धूंपयामि' (शु.य.मा ३७.९) इस मन्त्र का प्रयोग स्मार्त विधि में धूप-प्रयोग के लिए किया जाता है और श्रौतपरम्परा में इसका विनियोग सोमयाग के प्रवर्ग्यविधि के दौरान किया जाता है (का. श्रौ. २६.१.२३)। कुछ स्थानों पर केवल शब्द-साम्य, प्रतीकात्मकता अथवा रूढ़ परम्परा के आधार पर उनका विनियोग किया है। उदाहरणार्थ 'अन्नां॑त्परि॒स्रुतो॒... शु॒क्रमन्धः॑स॒ इन्द्रं॑स्येन्द्रि॒यमि॒दं पयो॒ऽमृतं॒ मधु॑' (शु.य.मा १९.७५) इस मन्त्र का प्रयोग स्मार्त विधि में शुक्रग्रह से सम्बन्धित विधि में किया जाता है; किन्तु श्रौतपरम्परा में इसका सम्बन्ध सौत्रामणि याग के शुक्र नामक यज्ञीय पात्र से है (का. श्रौ. १९.२.२५)।

इस अध्ययन से स्पष्ट होता है कि मन्त्र-विनियोग में अर्थपरिवर्तन और अर्थनिरन्तरता श्रौत एवं स्मार्त परम्परा में विद्यमान रही है। अतः मन्त्र के मूल अर्थ, विधि-सन्दर्भ तथा शास्त्रोक्त विनियोग का चिकित्सक दृष्टि से विचार करना आवश्यक है। प्रस्तुत शोध स्मार्त कर्म में मन्त्र-प्रयोग को अधिक अर्थपूर्ण एवं शास्त्राधिष्ठित बनाने की दृष्टि से उपयोगी सिद्ध होगा।

Keywords: यजुर्वेद; मन्त्रविनियोग; श्रौतविधि; स्मार्तविधि; मन्त्रानर्थक्यवाद

A Pattern-Based Semantic Analysis of Ṛgvedic Mantras through Sāyaṇācārya's Commentary

Krishna kumar

The Ṛgveda combines invocation, divine action, ritual aspiration, description, praise, request, and comparison within compact poetic utterances. Sāyaṇācārya's commentary clarifies the syntactic relations, ritual implications, and semantic extensions through which these utterances are understood. This paper proposes a framework for identifying recurring semantic patterns in the mantras as interpreted by Sāyaṇa. The analysis remains anchored in mantra expressions while using the commentary to establish their relationships and implications. After identifying the deity, relevant entities, and seeker in Context, the method distinguishes deity-centred action (A1) from non-deity or result-centered action (A2); deity attributes (B1), non-deity attributes (B2), and desired qualities of the seeker (B3); and commentarial analogy (C1) from mantra-explicit, commentarially recognized analogy (C2). D is reserved for cases in which none of these patterns occurs. Worked readings of RV 1.1.1–1.1.5 and 1.9.6–1.9.10 demonstrate the method, with further passages illustrating analogy and contextual continuity. The examples show why semantic locus must be distinguished from grammatical subject, why explanatory verbs should not automatically generate new actions, and why existing descriptions of worshippers must be separated from desired states. These preliminary results establish an annotation procedure for a projected study of Maṇḍala I, Sūktas 1–40; they do not constitute a completed corpus survey or statistical validation.

Keywords: Ṛgveda; Sāyaṇācārya; Vedic exegesis; semantic patterns; mantra analysis; Vedic hermeneutics; yajamāna; analogy.

शाब्दबोधस्य मुख्याः नियमाः

Madhava N Pandurangi

संस्कृतव्याकरणे दर्शने (विशेषतः न्याय-मीमांसा-वेदान्तशास्त्रेषु) वाक्यस्य अर्थावबोधाय अर्थात् शाब्दबोधाय चत्वारः प्रमुखाः नियमाः (हेतवः) अनिवार्याः मन्यन्ते । एतैः नियमैः एव कस्यचित् वाक्यस्य सार्थकः अर्थः निष्पद्यते । ते नियमाः निम्नलिखिताः सन्तिः- आकाङ्क्षा- वाक्ये एकस्य पदस्य श्रवणेन सह अन्यपदस्य श्रवणाय या जिज्ञासा उत्पद्यते, सा आकाङ्क्षा कथ्यते । यथा- "घटम्" इत्युक्ते 'आनय' इति पदस्य आकाङ्क्षा भवति । आकाङ्क्षारहितं पदसमूहं वाक्यं न भवति (यथा- 'गौरश्वः पुरुषो हस्ती') । योग्यता- पदानाम् अर्थेषु परस्परं संसर्गबाधस्य अभावः योग्यता । अर्थात् अर्थः तर्कसङ्गतः भवेत् । यथा- 'अग्निना सिञ्चति' इत्यत्र योग्यता नास्ति, यतः अग्नेः कार्यं सेकः न, अपितु दाहः अस्ति । सन्निधिः / आसत्तिः- पदानाम् उच्चारणं विना विलम्बं निरन्तरं भवेत् । यदि एकं पदम् अद्य, द्वितीयं च श्वः (श्वस्तने दिने) उच्यते, तर्हि शाब्दबोधः न जायते । तात्पर्यज्ञानम्- वक्तरुद्देश्यस्य ज्ञानं तात्पर्यम् । एकस्यैव पदस्य अनेकार्थत्वे वक्ता कस्मिन् अर्थ तस्य प्रयोगं करोति इति ज्ञानम् आवश्यकम् । यथा- भोजनकाले 'सैन्धवम् आनय' इत्युक्ते 'लवणम्' इति अर्थः गृह्यते, न तु 'अश्वः' । निष्कर्षः:

एतेषां चतुर्णां नियमानां (आकाङ्क्षा, योग्यता, सन्निधिः, तात्पर्यं च) सम्भूय उपस्थित्या एव मनुष्यचित्ते शुद्धः शाब्दबोधः (वाक्यार्थज्ञानम्) सम्भवति ।

वैदिकवाङ्मये वर्णिता सामाजिकसमरसता आधुनिकसमाजे च तस्याः प्रभावः

डॉ. नकुल पाण्डेयः

वैदिकवाङ्मयं हि निखिलमानवजातेः आद्यं ज्ञानकोशं सांस्कृतिकनिधानं च मन्यते, यत्र न केवलं पारलौकिकपरमार्थानां गूढचिन्तनं विद्यते, अपि तु ऐहिक-सामाजिक-सौहार्दस्य, सार्वभौमिकसमतायाः, भ्रातृभावस्य च सुदृढः सुदीर्घश्च प्रासादः निर्मितः अस्ति। ऋग्वेदस्य प्रसिद्धे पुरुषसूक्ते यः विराट्पुरुषस्य सङ्कल्पः कृतः, सः समाजस्य सावयवरूपं वैज्ञानिकदृष्ट्या उपस्थापयति; यत्र अङ्गानां परस्परं पूरकता अस्ति, न तु कश्चिद् उच्चः न च कोऽपि नीचः। संज्ञानसूक्तस्य **"संगच्छध्वं संवदध्वम्"** इति दिव्यः महामन्त्रः तु सार्वभौमिक-लोकतान्त्रिकभावनायाः, सामूहिक-वैचारिकैक्यस्य, सह-अस्तित्वस्य च परमनिदर्शनं प्रस्तौति।

वैदिककाले सामाजिकी व्यवस्था गुणकर्मस्वभावमाश्रित्य प्रवृत्ता आसीत्, न तु जन्मना सङ्कुचिता सङ्कीर्णा च। अतः तस्मिन् विशुद्धे समाजे शोषणस्य, वर्गभेदस्य, अस्पृश्यतायाश्च सर्वथा अभावः आसीत्। परन्तु कालान्तरेण विकृत्या आधुनिकसमाजे जातिवादः, साम्प्रदायिकता, आर्थिकविषमता, व्यक्तिवादिता, वर्गसङ्घर्षश्च मानवाधिकारान् निरन्तरं बाधन्ते, विनाशयन्ति च।

एतासां भीषणसमस्यानां समूलोन्मूलनाय वैदिकसमरसतायाः सर्वसमावेशकसिद्धान्ताः अतीव प्रासङ्गिकाः जीवनदायिनश्च दृश्यन्ते। यदा आधुनिकाः मानवाः **"माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः"** इति सूक्तं हृदयङ्गमं करिष्यन्ति, तदैव समग्रे जगति अशान्तिः, विग्रहः, युद्धोन्मादश्च शान्ताः भविष्यन्ति। अस्मिन् शोधपत्रे विभिन्नसंहितानां, ब्राह्मणानाम्, उपनिषदां च मन्त्राणाम् आलोके आधुनिक-समाजशास्त्रीयसिद्धान्तैः सह तुलनात्मकं विवेचनं कृत्वा एतत् स्पष्टतया प्रतिपादितं यत् वैश्विकशान्तेः, राष्ट्रियसङ्गठनस्य, मानवसद्भावस्य च एकमेव पन्थाः वैदिकसमरसता एव अस्ति। एषः शोधलेखः आधुनिकयुगे सामाजिकन्यायस्य, समतायाः, वैश्विकबन्धुत्वस्य च चिरस्थायिसंस्थापनार्थं नूतनं वैज्ञानिकमार्गं प्रशस्तं करिष्यति इति दृढः विश्वासः।

आधुनिके २१तमे शतके मानवः विज्ञान-तन्त्रांश-क्षेत्रे अभूतपूर्वां प्रगतिं प्राप्तवान्, परन्तु तस्य आन्तरिकं सौहार्दम्, सामाजिकं सामञ्जस्यं च विनष्टं जातम्। अद्यतनः समाजः जातिवादेन, वर्गसङ्घर्षेण, प्रान्तीयतया, साम्प्रदायिकहिंसया, लैङ्गिकविषमतया च जर्जरितः जातः। मानवः मानवान् प्रति घृणां करोति। एतादृशे वैचारिक-सङ्कटकाले वैदिकवाङ्मये प्रतिपादितः समरसतायाः सिद्धान्तः न केवलं प्रासङ्गिकः अस्ति, अपि तु सः आधुनिकसमाजस्य कृते एकमेव परमम् औषधं वर्तते। अस्मिन् शोधपत्रे वेदानां विविधमन्त्राणां साहाय्येन सामाजिकसमरसतायाः दार्शनिकं व्यावहारिकं च स्वरूपं प्रस्तूयते।

वेदों में प्रतिपादित मूल्यपरक शिक्षा की संकल्पना एवं स्वरूप

डॉ. तरुण कुमार शर्मा

वैदिक वाङ्मय भारतीय संस्कृति का मूलाधार है। भारतीय धर्म और सभ्यता का विशाल साम्राज्य श्रुति की आधार भूमि पर विकसित हुआ है। भारतीयों के आचार-विचार, धर्म-कर्म आदि के सम्यक् ज्ञान के लिए आज वैदिक वाङ्मय के ज्ञान की महती आवश्यकता है। मूल्यों से तात्पर्य नैतिक, धार्मिक सामाजिक गुण जो मनुष्य को सत्यं शिवं तथा सुन्दरं की प्राप्ति करते हैं। हमारा आचरण हमारे मूल्यों से प्रेरित हेाता होता है। शिक्षा प्राणी की नैसर्गिक शक्तियों का विकास एवं संस्कार है। अतएव शिक्षा एवं जीवन वस्तुतः परस्पर अभिन्न रूप से संश्लिष्ट हैं। मानव की अन्तर्निहित पूर्णता को अभिव्यक्त करना ही शिक्षा है। जॉन रस्किन (John Raskin) का कथन है कि शिक्षा का तात्पर्य जानना नहीं अपितु व्यवहार करने की शिक्षा देना है। इस दृष्टि से रीड (Reid) का कथन भी द्रष्टव्य है-

Education is a part of life and clearly questions about values in education are inseperable from larger question of values in life, life values are embodied in educational practice.

वैदिक वाङ्मय की शैक्षिक मूल्यों पर आधारित शिक्षा केवल पेट भरने की बात नहीं सिखाती अपितु आदर्श जीवन-निर्माण के लिए मार्ग प्रशस्त करती है। आचार्य वेद का अध्ययन कराने के पश्चात् अन्तेवासी को जिस प्रकार का उपदेश देता है। ऐसा उपदेश ऐसी शिक्षा विश्व के किसी भी साहित्य में समुपलब्ध नहीं है।

इस प्रकार सारांशतः कहा जा सकता है कि वैदिक वाङ्मय श्रेयस् और प्रेयस्, विद्या एवं अविद्या, संभूति एवं असंभूति परा तथा अपरा विद्या का अद्भुत समन्वय है। वस्तुतः यह जीवन को आलोकित करने वाला दीपस्तम्भ है। आज यदि मनुष्य को मनुष्य बनाना है, राष्ट्र को उन्नत बनाना है और सुदृढ़, सुसंगठित, समृद्ध राष्ट्र की परिकल्पना करना है और उसे साकार करना, सम्पूर्ण राष्ट्र को आध्यात्मिक शक्तियों से ओत-प्रोत करना है, तो वैदिक वाङ्मय के मूल्यों पर आधारित शिक्षा ही एकमात्र आधार है।

अंबरीष – भर्जनपात्र

डॉ. ओंकार शामसुन्दर जोशी

ऋषी अंबरीष जिनका संदर्भ हमे वैदिक काल, पुराण, आर्षमहाकाव्य इत्यादि अनेक साहित्य में प्राप्त होते है । कहीं संदर्भमे राजा से ऋषि तक का उनका परिवर्तन तथा कहीं जगह ऋषि से राजा ऐसे संदर्भ प्राप्त होते हैं । अतःराजर्षि उपाधि से ही उनके राजकुल और ऋषिकुल के बारे में विशेष जानकारी मिलती है । किंतु इस अर्थ के साथ अन्य अर्थ के संदर्भ भी मिलते हैं । जैसे की, रण, अर्क, युद्ध, सूर्य तृणविशेष इत्यादी...। ऋषि या राजा अर्थ के संदर्भ के साथ और एक अर्थ के सर्वाधिक संदर्भ मिलते हौं वह अर्थ है भर्जनपात्र अथवा भ्राष्ट्र । स्मार्तयाग तथा श्रौतयाग मे पुरोडाश को पाचन करने के पूर्व उसका भर्जन किया जाता है, अंबरीष के भर्जनपात्र के संदर्भ के आधार पर इस शोधपत्र मे चर्चा करने का प्रयास किया जायेगा ।

Analytical Study of Vedic Mathematics in Field of Formal Education System

Dr. Santosh Kumar Sah

Vedic Mathematics is an approach which exploits both halves of the brain by using the pattern recognition capabilities of one and the analytical capabilities of the other. Vedic Mathematics was rediscovered from the Vedas by Sri Bharati Krishna Tirthaji between 1911 to 1918. The word Veda literally means knowledge and also refers to ancient Sanskrit writing contained in millions of manuscripts scattered over India. Vedic Mathematics is not only sophisticated pedagogic and research tool but also an introduction to an ancient civilization.

Vedic Mathematics is based totally on 16 Sutras and 13 Sub-Sutras derived from the Vedas, the historical Indian scriptures. These sutras have numerous elements of arithmetic, which includes algebra, geometry and calculus. Unlike regular methods that especially depend on memorization and repetitive practice, Vedic Mathematics specializes in the fundamentals, which allows students to perform efficiently. Analytical studies suggest that integrating Vedic Mathematics into formal education can significantly enhance students Mathematical skill, especially in speed, accuracy and reduce Math anxiety.

In the present paper, we have made effort to high-light some salient features of the Mathematical Sciences and its various application made by the development of Vedic mathematics for the benefit of our new generation.

Keywords: Vedic Mathematics, Sutras, Vedas, Manuscripts, Arithmetic, Geometry, Calculus,Formal Education, Mathematical Skill.

Āsana in the Some Specific Vedas and Specific Purāṇas : A Study of Yogic posture and Spiritual Disciplines

Dr Smriti Sarkar

In the Ṛgveda, the term Āsana does not yet occur in the fully developed technical sense found in later Yoga literature. Nevertheless, references to sitting, establishing oneself, and maintaining a

particular bodily position provide an early conceptual background for the later yogic understanding of stable posture. The Atharvaveda similarly contains references associated with sitting and bodily positioning in ritual and contemplative contexts. These early references demonstrate that controlled bodily positioning was already connected with ritual discipline and concentration.

In later Purāṇic literature constitutes an important source for understanding the development of Yoga in the Indian intellectual tradition. Although the concept of Āsana is discussed in several Yogic and Purāṇic texts, the **Kūrma Purāṇa**, particularly its *Uttarabhāga*, provides significant material for examining the nature and purpose of yogic posture. In this text, Āsana is primarily presented not as physical exercise but as a stable and disciplined posture conducive to dhyāna, concentration and spiritual realization**.**

The Kūrma Purāṇa explicitly mentions **Svastikāsana, Padmāsana and Ardhapadmāsana** in the context of Yoga:

आसनं स्वस्तिकं बद्ध्वा पद्ममर्धमथापि वा ।

नासिकाग्रे समां दृष्टिमीषदुन्मीलितेक्षणः ॥

The present paper seeks to critically examine the concept, varieties, characteristics and spiritual significance of Āsana in the Kūrma Purāṇa**.** Particular attention will be given to the relationship between Āsana and dhyāna, pratyāhāra, dhāraṇā and mokṣa**.** Thus the study thus demonstrates that the Kūrma Purāṇa preserves an important stage in the intellectual and practical history of Āsana, where bodily stability serves the higher purpose of mental discipline, meditation and liberation**.**

Keywords: Kūrma Purāṇa, Āsana, Svastikāsana, Padmāsana, Ardhapadmāsana, Dhyāna, Dṛṣṭi, Mokṣa, Purāṇic Yoga.

अथर्ववेद में मनोचिकित्सकीय एवं ध्वनि-आधारित उपचार की अवधारणा: आधुनिक परिप्रेक्ष्य में एक अध्ययन

ज्योति शुक्ला

मानव-स्वास्थ्य को लेकर भारतीय परम्परा की दृष्टि केवल शरीर तक सीमित नहीं रही है। मन की शान्ति, भावनात्मक स्थिरता, भय से मुक्ति तथा व्यक्ति के पारस्परिक संबंधों में सामंजस्य को भी स्वस्थ जीवन का आवश्यक आधार माना गया है। अथर्ववेद में इस व्यापक सोच के अनेक उदाहरण मिलते हैं। यहाँ रोगों और औषधियों के साथ मन की विभिन्न अवस्थाओं, भय, दुःस्वप्न, मानसिक अशान्ति तथा पारस्परिक मेल-जोल से संबंधित मन्त्र भी प्राप्त होते हैं।

अथर्ववेद का 'सांमनस्य' सूक्त इस संदर्भ में विशेष महत्त्व रखता है। "सं ज्ञानं नः स्वेभिः संज्ञानमरनेभिः" में परस्पर समझ और मेल की कामना की गई है, जबकि 'अभिसांमनस्य' सूक्त में "एवा मामभि ते मनः समैतु सं च वर्ताताम्" के द्वारा मनों के एक-दूसरे के निकट आने की इच्छा व्यक्त होती है। इन मन्त्रों से यह संकेत मिलता है कि व्यक्ति की मानसिक स्थिति और उसके आसपास के लोगों के साथ संबंधों को भी स्वस्थ जीवन का महत्त्वपूर्ण हिस्सा माना गया था। भय तथा दुःस्वप्न से संबंधित मन्त्र इस विचार को और व्यापक बनाते हैं।

आज के शोधों में मन्त्र-आधारित ध्यान तथा ध्वनि से जुड़े अभ्यासों के मानसिक तनाव और भावनात्मक स्थिति पर पड़ने वाले प्रभावों के संकेत मिले हैं। इस आधार पर अथर्ववेद में मन्त्र और ध्वनि से जुड़े विचारों को वर्तमान मानसिक स्वास्थ्य की दृष्टि से समझने की सम्भावना बनती है।

प्रस्तुत शोध में अथर्ववेद के मूल मन्त्रों और उनके संदर्भों के आधार पर यह देखा गया है कि मन की शान्ति, भावनात्मक संतुलन, पारस्परिक मेल तथा मन्त्र-ध्वनि को किस प्रकार उपचार से जोड़ा गया है तथा इसका उद्देश्य यह सिद्ध करना नहीं है कि आधुनिक उपचार-पद्धतियाँ अथर्ववेद में उसी रूप में पहले से मौजूद थीं, बल्कि यह जानना है कि प्राचीन भारतीय विचारों में मौजूद इन पहलुओं से आज मानसिक स्वास्थ्य की समस्याओं को देखने के लिए कौन-सी

उपयोगी दृष्टि प्राप्त हो सकती है।

Bridging Traditional Haṭha Yoga and Modern Therapeutic Practice Applications

Kiran Kumar G

Hatha Yoga has an important role in maintaining and improving physical, mental, emotional, and spiritual health. Yoga has been practiced in Bharatha since yugas as a way to support health, balance the body and mind, and develop spiritual awareness. However, the use of Yoga as a form of therapy is since ancient times and now systematic approach to relatively modern development based on modern day developments.

Hatha Yoga gives special importance to the purification of the body and mind through various yogic practices. These practices help balance the physical body, regulate pranic energy, calm the mind, and support overall well-being. Through regular practice, Hatha Yoga aims to create harmony between the body, breath, mind, and consciousness. Traditional Hatha Yoga techniques as described in ancient yogic texts and examine their possible therapeutic value in the modern healthcare system helps to understand how these traditional practices can be adapted to address present-day physical, mental, and emotional health problems.

The primary objective of this research is to study ancient yogic practices and explore their safe and appropriate application to modern health challenges for the benefit of humanity. A secondary objective is to explore whether suitable Hatha Yoga practices Shatkarma – yogic purification practices- Neti, Dhauti, Basti, Nauli, Trāṭaka, Kapālabhāti, Āsana, Prāṇāyāma, Mudrā, Bandha, Dhyāna, Nāda-anusandhāna can support modern clinical therapies and help reduce some of the unwanted effects associated with intensive therapeutic approaches.

Special attention is given to yogic purification practices, which can be understood as natural methods for maintaining balance and cleanliness of the body and mind. These practices may support physical health, mental clarity, emotional balance, and spiritual awareness.

Thus, Hatha Yoga can be viewed not only as a system of physical practices but as a divine holistic approach that works with the body, breath, mind, prana, and consciousness. Its traditional principles, when studied scientifically and applied appropriately, will contribute to a more holistic approach to modern healthcare.

Ṛgvedic Legends and Their Interpretative Traditions (A Comparative Study of Sāyaṇācārya, Max Müller and SriAurobindo)

Dr. Bibhuti Bhusan Mohapatra

The Ṛgveda (ṚV) has generated several interpretative traditions because of its archaic language, ritual background, symbolic density and philosophical suggestiveness. The present paper examines three major approaches to Ṛgvedic interpretation: the traditional ritualistic reading represented chiefly by Sāyaṇa, the nineteenth-century European philological and naturalistic reading represented by F. Max Müller and the psychological-spiritual reading proposed by Sri Aurobindo. The study does not dismiss any single method; rather, it evaluates the assumptions, strengths and limits of each approach. Two major examples, the Paṇi–Cow (X.108) myth and the Indra-Kutsa (IV.16.10) episode are examined as case studies. The paper argues that Sāyaṇa preserves the ritual and inherited traditional framework of Vedic meaning, Max Müller reads Vedic myth through comparative philology and nature-symbolism, while Sri Aurobindo seeks an inner spiritual and psychological coherence within the hymns. The study concludes that the plurality of

Ṛgvedic interpretation should not be regarded merely as confusion or ambiguity, but as evidence of the layered character of Vedic language, where ritual, myth, nature, poetic imagination and spiritual experience may operate together.

Keywords: Ṛgveda, Sāyaṇa, Max Müller, Sri Aurobindo, Paṇi, Saramā, Indra, Kutsa

From Bandhu to Kutaḥ? Manīṣā and the Limits of Cosmogonic Inquiry in the Nāsadīya Sūkta (Ṛgveda 10.129)

Chaitanya Hari; Santosh Srivatsav Purighalla

The Nāsadīya Sūkta (Ṛgveda 10.129) is frequently interpreted through the uncertainty of its concluding verses, especially ko addhā veda? ("who truly knows?") and yadi vā na veda ("or perhaps he does not know"). This paper examines an earlier textual tension. Before questioning who knows the origin of creation, verse 4 positively states that the kavayaḥ, searching in the heart through manīṣā, "found" (nir avindan) the bandhu of sat in asat. What, then, is successfully discovered if the hymn subsequently leaves cosmic origins unresolved?

The study employs close philological and comparative textual analysis of Ṛgveda 10.129.4, 6, and 7, focusing on manīṣā, bandhu, nir avindan, addhā, kutaḥ, and yataḥ, together with major modern interpretations of the hymn. It argues that the apparent tension becomes clearer when the objects of inquiry are distinguished. Verse 4 identifies what the poets find as a bandhu—a bond, connection, or relation—whereas verses 6–7 repeatedly ask kutaḥ and yataḥ: whence cosmic emergence arose.

The paper proposes that the discovery of bandhu need not amount to certain knowledge of ultimate provenance. It describes this bounded epistemic achievement as "relational intelligibility," without treating the expression as a lexical translation of bandhu. On this reading, manīṣā represents an inquiry that can yield genuine discovery without authorizing an exhaustive account of beginnings. Ko addhā veda? therefore need not negate the poets' earlier achievement; rather, it interrogates the transition from intelligibility to certainty. The Nāsadīya Sūkta may thus distinguish between what inquiry can disclose and what it can legitimately claim about ultimate origins.

Keywords: Nāsadīya Sūkta; Ṛgveda 10.129; *manīṣā*; *bandhu*; Vedic epistemology

वेदों में व्यवहार

डॉ० अथर्व पाण्डेय

प्रस्तुत शोध-पत्र वैदिक वाङ्मय, विशेषतः अथर्ववेद के 'सांमनस्य सूक्त' और ऋग्वेद के 'संज्ञान सूक्त' के आधार पर मानवीय व्यवहार के व्यावहारिक और दार्शनिक स्वरूप का विश्लेषण करता है। लेख की प्रस्तावना में व्यवहार शब्द को 'विशिष्ट रीति से किये जाने वाले आचरण' के रूप में परिभाषित किया गया है, जो व्यक्ति, उसके परिवार और सम्पूर्ण चराचर जगत् के साथ सम्बन्धों के निर्वहन को समाहित करता है। वैदिक व्यवहार का मनोवैज्ञानिक आधार 'निर्विद्वेषता' और 'सांमनस्य' है। अथर्ववेद के अनुसार, व्यवहार में प्रीति तभी सम्भव है जब मन और हृदय का समन्वय हो। इसमें गौ-वत्स के उदाहरण के माध्यम से निःस्वार्थ प्रेम को व्यवहार का आदर्श माना गया है, जो आज के स्वार्थमूलक सम्बन्धों का विकल्प प्रस्तुत करता है। पारिवारिक स्तर पर यह आलेख पुत्र, माता-पिता और पति-पत्नी के मध्य 'मधुमती' और 'शान्तिवाम्' वाणी के प्रयोग पर बल देता है। वेदों के अनुसार, परिवार में 'भद्र वाणी' और साझा संकल्प ही सामाजिक समरसता की नींव रखते हैं। सामाजिक व्यवहार के क्षेत्र में, वेदों ने 'समता' और 'संज्ञान' का संदेश दिया है। 'संज्ञान' वह बोध है जिसमें व्यक्ति दूसरे के सुख-दुख को अपना समझता है। लेख में 'समानी प्रपा' एक साथ जल पीना और 'सह अन्नभागः' सह-भोज के माध्यम से सामाजिक भेदभाव और छुआछूत जैसी कुरीतियों का वैदिक समाधान प्रस्तुत किया गया है। व्यक्तिगत चरित्र निर्माण के लिए 'मधुमती वाक्' को

अनिवार्य बताया गया है, जो मनुष्य को समाज में प्रतिष्ठा दिलाती है। शोध-पत्र का अन्तिम खण्ड ऋग्वेद के 'संज्ञान सूक्त' के माध्यम से सामूहिक संगठन की शक्ति का विवेचन करता है। सामूहिक व्यवहार के तीन प्रमुख स्तम्भ - आचार की एकता (सं गच्छध्वम्), उच्चार की एकता (सं वदध्वम्) और विचार की एकता (सं वो मनांसि जानताम्) बताये गए हैं। निष्कर्षतः, वेदों द्वारा निर्देशित यह समन्वित प्रेम, मधुर संवाद और वैचारिक एकता ही 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के लक्ष्य को प्राप्त करने और वैश्विक संघर्षों को समाप्त करने का एकमात्र मार्ग है।

कूट शब्द : वेद, व्यवहार, सांमनस्य सूक्त, संज्ञान सूक्त, अविद्वेष, मधुमती वाक्, सामाजिक समरसता, वसुधैव कुटुम्बकम्।

The Colour Theory in Upanishadic Cosmology: A Study of the Sixth Chapter of the Chāndogya Upaniṣad

Dr Kankana Goswami

The Chāndogya Upaniṣad, one of the principal Upaniṣads of the Vedic tradition, offers a profound account of cosmology and the relationship between the manifest world and its underlying reality. The sixth chapter, particularly sections 6.3 and 6.4, presents a distinctive explanation of cosmic manifestation through trivṛtkaraṇa, or the threefold combination of elemental principles. Within this framework, the colours red, white, and black (lohita/rohita, śukla, and kṛṣṇa) are associated respectively with tejas (fire or heat), ap (water), and anna (food or earth). These colours are illustrated through natural phenomena such as fire, the sun, the moon, and lightning, making colour an important perceptual element in the Upanishadic understanding of the phenomenal world.

This study examines how colour, elemental composition, and trivṛtkaraṇa are interconnected in the sixth chapter. It explores how the recurring presence of red, white, and black may be understood symbolically as expressing the interconnectedness and underlying unity of creation. The study also considers the possible relationship between these colours and the broader Indian philosophical conception of sattva, rajas, and tamas, while carefully distinguishing this comparative interpretation from what is explicitly stated in the Chāndogya Upaniṣad.

The study follows a qualitative and textual-analytical approach, focusing primarily on relevant passages of the Chāndogya Upaniṣad and supporting secondary sources. Modern perspectives on colour and cosmology are used comparatively to understand the relationship between perception and ancient cosmological thought. The study suggests that Upanishadic colour theory transforms ordinary sensory observation into a means of exploring elemental composition, cosmic differentiation, and the deeper unity underlying the manifest universe.

Keywords: Chāndogya Upaniṣad, Colour Theory, Upanishadic Cosmology, Trivṛtkaraṇa, Tejas, Ap, Anna, Lohita, Śukla, Kṛṣṇa.

The Vitthala-ringmantrasara-bhashya", Authored by Kashinatha Upadhyaya.

B. S. Hayavadana

This paper introduces the Viṭṭhalaṛṅmantrasārabhāṣya, a rare and previously unpublished manuscript by Sri Kashinatha Upadhyaya, the famous author of the Dharmasindhu. Soon to be published by Poornaprajna Samshodhana Mandiram, this commentary beautifully combines Vedic text with pure devotion (Bhakti).

The book explains twelve mantras from the Rigveda—eleven from the 95th Sukta and one from the Asyavamiya Sukta of the first Mandala. It shows how these mantras directly describe Lord Vitthala of Pandharpur. Going beyond traditional philosophical differences, the author uses strong evidence to prove that the main teachers of the Advaita, Vishishtadvaita, and Dvaita schools were all true devotees of Lord Vishnu.

The paper discusses how Lord Krishna is present in two forms at the Pundarika Ashrama: as the visible idol and as the unseen presence in the Chandrabhaga river. A key highlight is the grammatical meaning of the word "Vitthala," based on Panini's rules, explaining it as the "savior of the ignorant." Additionally, the commentary uses poetic beauty (Alankara Shastra) to describe Rukmini and Radhika silently serving the Lord. Their stillness is compared to the cows in the Srimad Bhagavatam that stood frozen in joy while listening to Krishna's flute.

Ultimately, this study shows how Kashinatha Upadhyaya uses the Vedas, Sanskrit grammar, and the Puranas to look past rigid religious boundaries. He establishes a clear view of Vaishnava devotion, divine experience, and the supreme kindness of God.

Keywords: #Rigveda #Vitthala #Bhashya #KashinathaUpadhyaya #Pandharpur #SrimadBhagavatam #IndianPhilosophy #Manuscriptology #Bhakti

गृत्समदः

डॉ. रूपाली विजय कवीश्वर, डॉ. ओंकार शामसुंदर जोशी

भारतीय संस्कृतौ चतुर्णां वेदानाम् अतीव महत्त्वं विद्यते । चतुर्षु वेदेषु ऋग्वेदः मुख्यः श्रेष्ठतमः च । ऋग्वेदस्य रचना द्विविधा। एकं तु मण्डलरचना अन्या च अष्टकरचना। ऋग्वेदे दश मण्डलानि वर्तन्ते। तत्र द्वितीयमण्डलस्य मन्त्रद्रष्टा ऋषिः नाम गृत्समदः। द्वितीयमण्डले यानि सूक्तानि आयान्ति तस्य कर्ता गृत्समदऋषिः एव । सर्वानुक्रमणी ग्रन्थेऽस्मिन् अङ्गिरसकुलोत्पन्नः शुलहोत्रस्य औरसपुत्रः, शुनकस्य दत्तकपुत्रः इति गृत्समदस्य उल्लेखो प्रतिभाति । गृत्समदः ज्ञानी, कविः, विज्ञानवेत्ता, कृषिसंशोधकः, गणिती, प्रसिद्धः तन्तुवायः च आसीत् इति ज्येष्ठाः अनुमन्यन्ते । सः प्रसिद्धः वैज्ञानिकः खलु। गृत्समद इति पदं संहितासु ब्राह्मणग्रन्थेषु पुराणेषु इत्यादिषु नैकेषु साहित्येषु च दरीदृश्यते । अस्मात् वयं चिन्तयितुं शक्नुमः यत् गृत्समदः न तु एकः महर्षिः अपि तु तस्य कुले जाताः तस्य आनुवांशिकाः। अतः ज्ञायते यत् गृत्समदः नाम वैज्ञानिकानां शृङ्खला किम्?

एतेषां योगदानं केषुचित् वैज्ञानिकक्षेत्रेषु वर्तन्ते न वा इत्येव शोधपत्रस्य चिन्तनविषयः।

सङ्केतशब्दाः – गृत्समदः, गणितशास्त्रम्, विज्ञानम्, महर्षिः, कृषिशास्त्रम्

Hemadri Prayashchitta Sankalpa in 'Chaturvarga Chintamani': A Study.

Varad Prashant Naik, Pratiksha Surykant Shinde

The 13th-century magnum opus *Chaturvarga Chintamani*, authored by the Prime Minister of the Yadava Empire, Hemadri Pandit (Hemadpant), stands as an encyclopedic treatise on Hindu Dharma Shastra. Among the various ritualistic dimensions prescribed across its volumes, the Hemadri Prayashchitta Sankalpa holds a paramount position as a foundational rite for spiritual cleansing and atonement in the Sanatan tradition. This research paper offers a comprehensive study of the scriptural structure, the precise ritualistic methodology, and the underlying theological significance of this specific penance vow.

The core objective of the Hemadri Prayashchitta Sankalpa is the absolution of physical (*kayika*), verbal (*vachika*), and mental (*manasika*) transgressions inevitably committed by individuals in daily life. A unique feature of this Sankalpa is its incorporation of an expansive astronomical chronology (*Manvantara*, *Kalpa*, *Yuga*) and sacred geography, which consciously anchors the

individual to cosmic dimensions and ancient cultural roots before initiating the act of atonement. This study critically analyses how this text-based practice transcends being a mere formal ritual, functioning instead as a profound mechanism that enforces religious discipline, moral responsibility, and internal purity in human life.

Keywords: Hemadri Prayashchitta Sankalpa, Chaturvarga Chintamani, Prayashchitta (Penance), Self-Purification, Dharma Shastra, Yadava Period, Chronology.

Decoding Durgā Saptaśatī:Devī-Svarūpa, the Genealogy of the Asuras, and the Perennial Psychology of Inner Conflict

Dr. Deepesh Kumar Saxena

The Durgā Saptaśatī (Devī Māhātmya, Mārkaṇḍeya Purāṇa 81–93) is usually read as a ritual text or a cosmic-mythological narrative. This paper reads it as a perennial psychology: a systematic map of the forces that bind and free the human mind. It examines three linked questions: (1) the svarūpa of the Devī as Mahāmāyā, as Śakti, and as the singular reality into which all powers dissolve; (2) the origin of each asura, from Madhu-Kaiṭabha to Śumbha-Niśumbha, and the "boon" or structural condition that makes each seem invincible; and (3) the specific method by which the Devī slays each one. The paper argues that the asuras are not external monsters but recurring stages in the growth of ego-pathology: attachment and aversion (Madhu-Kaiṭabha), brute inertia and shape-shifting pride (Mahiṣa), confused perception (Dhūmralocana), passion and intellectual arrogance (Caṇḍa-Muṇḍa), self-regenerating latent impressions (Raktabīja), and finally "I-ness" and "mine-ness" (Śumbha-Niśumbha). Each is undone not by force alone but by the appropriate faculty: awakening, integration of divine energies, insight, and surrender. Drawing on the Sanskrit commentarial tradition, the Yoga-Sūtra theory of kleśas, Bhagavad-Gītā chapter 16, and modern depth psychology (Jung, Neumann, Kakar), the paper presents the Saptaśatī as a transhistorical manual of psychological transformation.

Keywords: Durgā Saptaśatī; Devī Māhātmya; Mahāmāyā; asura; Mahiṣāsura; Raktabīja; perennial psychology; kleśa; śakti.

कार्य-जीवन संतुलन एवं कर्मचारी उत्पादकता: आधुनिक कार्यस्थल के संदर्भ में एक वैचारिक अध्ययन

ग्रीजेश मिश्रा, प्रो. (डॉ.) ऋत्विक सहाय बिसारिया

वर्तमान समय में कार्यस्थल की प्रकृति तीव्र गति से परिवर्तित हो रही है। तकनीकी विकास, वैश्वीकरण, बढ़ती प्रतिस्पर्धा, कार्य की जटिलता, डिजिटल संचार तथा कार्य की बदलती परिस्थितियों ने कर्मचारी के व्यावसायिक एवं व्यक्तिगत जीवन के मध्य संतुलन को मानव संसाधन प्रबन्धन का एक महत्वपूर्ण विषय बना दिया है। कार्य-जीवन संतुलन का संबंध केवल कर्मचारी के व्यक्तिगत सुख एवं संतोष से नहीं है, बल्कि इसका प्रभाव कार्य के प्रति उसकी रुचि, मानसिक स्वास्थ्य, कार्य-संतुष्टि, संगठन के प्रति प्रतिबद्धता, अनुपस्थिति, कर्मचारी स्थायित्व तथा उत्पादकता पर भी पड़ सकता है।

प्रस्तुत शोध-पत्र का उद्देश्य कार्य-जीवन संतुलन एवं कर्मचारी उत्पादकता के मध्य संबंध का वैचारिक एवं विश्लेषणात्मक अध्ययन करना है। अध्ययन मुख्यतः द्वितीयक स्रोतों, पूर्व प्रकाशित शोध अध्ययनों, पुस्तकों, शोध-पत्रों तथा अंतरराष्ट्रीय संस्थाओं की रिपोर्टों पर आधारित है। अध्ययन में कार्य-जीवन संतुलन को समय-संतुलन, कार्य एवं पारिवारिक उत्तरदायित्वों के संतुलन, मानसिक विश्राम, कार्य की लचीली व्यवस्था तथा संगठनात्मक सहयोग के संदर्भ में समझने का प्रयास किया गया है।

अध्ययन के सैद्धांतिक आधार के रूप में कार्य-मांग एवं संसाधन सिद्धांत, संसाधन संरक्षण सिद्धांत तथा कार्य-पारिवारिक अंतःप्रभाव संबंधी सिद्धांत का उपयोग किया गया है। अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि अत्यधिक

कार्यभार, लंबे कार्य घंटे, कार्य से संबंधित तनाव, भूमिका-संघर्ष तथा कार्य एवं निजी जीवन की अस्पष्ट सीमाएँ कर्मचारी के मानसिक एवं शारीरिक संसाधनों को प्रभावित कर सकती हैं। इसके विपरीत, उचित कार्य समय, लचीली कार्य व्यवस्था, संगठनात्मक सहयोग, कार्य में स्वायत्तता, पर्याप्त विश्राम तथा परिवार-अनुकूल नीतियाँ कर्मचारी के कल्याण और कार्य निष्पादन को बेहतर बनाने में सहायक हो सकती हैं।

अध्ययन में यह भी प्रस्तावित किया गया है कि कार्य-जीवन संतुलन और कर्मचारी उत्पादकता के मध्य संबंध केवल प्रत्यक्ष नहीं है, बल्कि कर्मचारी कल्याण, कार्य-संतुष्टि तथा कर्मचारी संलग्नता जैसे कारकों के माध्यम से भी कार्य कर सकता है। अत: संगठनों को कार्य-जीवन संतुलन को केवल कर्मचारी सुविधा न मानकर दीर्घकालीन संगठनात्मक उत्पादकता और मानव संसाधन विकास की रणनीति के रूप में देखना चाहिए।

मुख्य शब्द: कार्य-जीवन संतुलन, कर्मचारी उत्पादकता, कर्मचारी कल्याण, कार्य-संतुष्टि, कर्मचारी संलग्नता, लचीली कार्य व्यवस्था, मानव संसाधन प्रबन्धन, संगठनात्मक सहयोग।

Vedic Mathematics: Sūtra Sūnyam Sāmyasamuccaye

Devika

This paper explores the conceptual foundation, mathematical architecture, and practical applications of Śūnyam Sāmyasamuccaye, the fifth fundamental sūtra (शून्यं साम्यसमुच्चये) of Vedic Mathematics. Literally translated as "when the collection/sum is the same, that sum is zero," this mathematical rule serves as a powerful mental shortcut for solving complex linear, quadratic, cubic, and rational equations. Rather than relying on traditional, labor-intensive algebraic manipulations—such as cross-multiplication, expansion of polynomial bases, or distribution—the sūtra provides visual patterns to identify symmetries across an equation and immediately isolate its roots by equating specific variables or term groupings directly to zero.

Through an analytical review of its six recognized algebraic interpretations, this paper demonstrates how the sūtra handles diverse algorithmic scenarios. These include extracting common variable factors (e.g., establishing x = 0 when an unknown is uniformly present), balancing independent constant terms across linear expressions, and equating symmetrically structured fractional equations where the sum of numerators aligns with the sum of denominators. Quantitative breakdowns reveal that applying this sūtra reduces processing time by up to 10 to 15 times compared to conventional Western algebraic methods, simultaneously decreasing cognitive load and eliminating secondary arithmetic errors. Ultimately, this study posits that Śūnyam Sāmyasamuccaye is not merely an ancient arithmetic trick, but a highly sophisticated algorithmic tool with substantial utility for modern mathematics education, mental calculation frameworks, and competitive examinations.

Keywords: Vedic Mathematics, Sūtra, Śūnyam Sāmyasamuccaye, Algebraic Equations, Mental Calculation, Algorithms.

Vedic Ākūti and its importance for the modern world

Dr Mugdha Gadgil

The Ṛgveda *Samhitā* ends with *samjñāna-sūkta* by expressing a positive desire for harmony among the entire humankind. Atharvaveda too have a group of *sūkta*s namely *Sāṃmanasya* to highlight the importance of social harmony.

We are aware that such harmony can exist only when the humankind can have positive thoughts and use various capacities thoughtfully. The Vedic *ṛṣi*s have mentioned about the positive thoughts and ideas in the mantras as well as in the actions included in the *yajña*s.

Ākūti is one such human capacity mentioned in the *samjñāna-sūkta.* It is also found in the mantras from the Yajurveda and Atharvaveda. The term

Ākūti is paraphrased as *saṅkalpa* by Sāyaṇācārya. It is broadly translated as intention in English.

The concept of *Ākūti* is mentioned with other human capacities such as manas, and also with the cosmic ideas such as *ṛta* and *satya* (Taittirīya *Samhitā* 3.2.7.1). It is also worshipped as a deity in the *audgrabhaṇa-homa* from the *Agniṣṭoma* ritual (Śatapatha Brāhmaṇa 3.1.4.6).

Present paper focuses on 1) various occasions in which the Vedic *ṛṣi*s considered and included the concept of and 2) on other positive concepts accompanying *Ākūti*.

In the present atmosphere of warmongering, the entire world requires such timeless Vedic insights.

यज्ञस्य स्वरूपं तच्चिकित्साविज्ञानञ्च

प्रो० (डॉ०) ब्रह्मचारी व्यास नन्दन शास्त्री वैदिक:

निखिले वैदिकवाङ्मये यज्ञस्य महन्निरूपणं प्राप्तं भवति। मानव-जीवनस्य प्रधानतमकर्मरूपेण सर्वत्र ऋषिभिः यज्ञमीमांसा कृता— "यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म" (शत. ब्रा० १.७.१५) । यज्ञस्य स्वरूप-मीमांसाकरणात् प्राक् 'यज्ञ' इति विषये विचार आवश्यकः। तेन यज्ञस्य कर्मव्यतिरिक्तस्य तस्य समस्तस्य प्रयोगक्षेत्रस्य परिज्ञानं भविष्यति यत्र-यत्र यज्ञशब्दः प्रयुज्यते। यज्ञशब्दो 'यज देवपूजासंगतिकरणदानेषु' (पा० धा० १.७२८) इति देवपूजाद्यर्थकाद् 'यज्' धातोः 'यजयाचयतविच्छप्रच्छरक्षो नङ्' इति पाणिनीयसूत्रेण भावे नङ् प्रत्ययो भूत्वा सिद्ध्यति। एवञ्च यज्ञशब्दस्य प्रयोगक्षेत्रमतिविस्तृतं वर्तते । अनयैव दृष्ट्या महर्षिणा दयानन्दसरस्वतीस्वामिना यजुर्वेदभाष्ये लिखितमित्थम्-

"धात्वर्थाद् यज्ञार्थस्त्रिविधो भवति-

विद्या-ज्ञान-धर्मानुष्ठान – वृद्धानां देवानां विदुषाम्

ऐहिकपारलौकिक-सुख–सम्पादनाय सत्करणम्,

सम्यक् पदार्थगुणसंमेल विरोधज्ञानसंगत्या

शिल्पविद्या–प्रत्यक्षीकरणं नित्यविद्वत्समागमानुष्ठानं

विद्यासुखधर्मा– दिशुभगुणानां नित्यदानकरणम्' (यजुर्भाष्य १.२)

यज्ञस्य स्वरूपम्-

'यजुर्भिर्यजन्ति'(निरू० १३.७) इति वचनानुसारं यजुर्भिर्यस्य यज्ञकर्मणो निरूपणं क्रियते, तस्य निर्देशो यजुर्वेदस्योपक्रमे श्रेष्ठतमाय कर्मणे' (१.१) इत्यनेन श्रेष्ठतमकर्मरूपेण कृतः उपसंहारे च 'कुर्वन्नेवेह कर्माणि' (४०–२) इत्यत्र निष्कामकर्मरूपेण सङ्केतितः। इत्थञ्च संसारस्य सर्वाणि शुभकर्माणि, यानि व्यक्तिभेदैः, देशकाल-परिस्थितिभेदैश्च स्वस्य प्राणिमात्रस्य च कल्याणाय कर्त्तव्यरूपाणि सन्ति, तेषां समरतानां यज्ञरूपकर्मणामेव यजुर्वेदे वर्णनं वर्त्तते। एतच्च यजुर्वेदस्योपक्रमोपसंहाराभ्यां विस्पष्टं विज्ञायते।

सन्ध्यापर्यन्तं यत् यज्ञशब्दस्य धात्वर्थानुसारिणोऽर्थस्य व्यापकतामभिलक्ष्यैव भगवद्गीतायां (४.२८) यज्ञानां द्रव्ययज्ञ — तपोयज्ञ — योगयज्ञ — स्वाध्याययज्ञ — ज्ञानयज्ञ — रूपाः विविधाः भेदाः निदर्शिताः। अनया दृष्ट्या गीतायाश्चतुर्थध्यायस्य एकोनत्रिंशत्तमाच्छलोकादारभ्य त्रयस्त्रिंशत् संख्यापर्यन्ताः पञ्चश्लोकाः द्रष्टुमर्हाः। विशेषरूपेण सन्ति। अतएव लोके यत् किञ्चिदपि लोकोपकारकं कर्मक्रियते, तेन सह यज्ञशब्दस्य प्रयोगो दृश्यते।

यज्ञस्य लक्षणं कात्यायनश्रौतसूत्रे 'द्रव्यं देवतात्यागः' (१०२ – २) इत्येवं निरूपितम्। अस्येदं तात्पर्यम् - यस्मिन् कर्मणि द्रव्यस्य देवतायाः त्यागस्य च सहभावो भवति तत्कर्म 'यज्ञ' इत्युच्यते। तेन देवतोद्देशेन द्रव्यस्य त्यागो यज्ञ इत्युक्तं भवति। इमे श्रौतयज्ञाः यतः केनापि द्रव्यविशेषेण क्रियन्तेऽतो गीतायाम् एते द्रव्ययज्ञाः कथिताः।

यज्ञस्य चिकित्साविज्ञानम्-

अधुना रोगनिवारणार्थम् अनेकानि चिकित्साविज्ञानानि विद्यन्ते। आयुर्वेदिक - होम्योपैथिक - ऐलोपैथिक - प्राकृतादीनि चिकित्साविज्ञानानि प्रसिद्धानि सन्ति किन्तु तेषु यज्ञचिकित्साविज्ञानं महत्त्वपूर्णं सुलभं श्रेष्ठञ्च कथं भवेदित्येवम अस्माभिः ज्ञेयम्।

यज्ञचिकित्साविज्ञानेनोत्तमस्वास्थ्यस्य प्राप्तिरसम्भवाऽस्ति। पुरा अस्माकमृषिमहर्षयः तेन साफल्याचिकित्सापि कुर्वन्ति स्म। कारणमिदं यत् तदानीन्तने रोगनिवारणे बृहदयज्ञाः सम्पादिताः बभूवुः। जनता तैः आरोग्यलाभाः कुर्वन्ति स्म। एते भैषज्ययज्ञाः कथ्यन्ते ऋषिभिः। ये ऋतुसन्धिषु प्रयुज्यन्ते यतः ऋतुसन्धिषु वै व्याधिर्जायते-

भैषज्ययज्ञाः वौ एते यच्चातुर्मास्यानि।

तस्माद ऋतुसन्धिषु प्रयुज्यन्ते ऋतुसन्धिषु वै व्याधिर्जायते ।। गो० ब्रा० ३६.१.१६ ||

एतेषु भैषज्ययज्ञेषु कास–रुग्ण–दस्त–शिरःपीडा–चेचक–प्लेग–इन्फ्लूएंजादीनां रोगाणां सामूहिकरीत्या निवारणानि भवन्ति।

अस्तु, निस्सन्देहं वैदिकवाङ्मये यज्ञेन सर्वेषां रोगाणां सरलतमा योग्यतमा च चिकित्सा संभवति इत्यस्मिन् विषये नास्त्यत्र कश्चिद् विसंवादः।

वैदिक संध्या एवं ब्रह्म यज्ञ

योगेश कुमार माया

वैदिक संस्कृति में मानव जीवन को व्यवस्थित एवं अनुशासित बनाने के लिए सनातन जीवन से जुड़ी अनेक परंपराओं का वर्णन मिलता है। इसमें से वैदिक संध्या और ब्रह्म यज्ञ विशेष है। यह संध्या उपासना केवल एक धार्मिक कर्मकांड ही नहीं है, बल्कि यह व्यक्ति को नियमित अनुशासन, उपासना, आत्मचिंतन और आध्यात्मिक चेतना से जोड़ने वाली साधना है। वैदिक संध्या जिसमें हम ब्रह्म यज्ञ के मंत्रों का पाठ करते हैं, इसका संबंध हमारे आर्ष वेदों से है। वैदिक संध्या एवं ब्रह्म यज्ञ करने से मन एकाग्र होता है, और चित्त की शुद्धि और सेवा की भावना जाग्रत होती है।

हमारे इस शोध का मुख्य उद्देश्य वैदिक संध्या और ब्रह्म यज्ञ के स्वरूप, उद्देश्य तथा महत्व को समझाना और वर्तमान समय में इनकी उपयोगिता पर विचार प्रस्तुत करना है। इस अध्ययन में वैदिक साहित्य तथा संबंधित ग्रंथों के आधार पर संध्या-उपासना की प्रमुख प्रक्रियाओं और ब्रह्मयज्ञ की अवधारणा का अच्छा अध्ययन किया गया है। संध्या के अंतर्गत प्राणायाम, सूर्योपासना, गायत्री-मंत्र जप और ध्यान जैसी प्रक्रिया आती है। जो मन को स्थिर करने और एकाग्रता विकसित करने में सहायक मानी जाती है। ब्रह्मयज्ञ स्वाध्याय और वेदाध्ययन के माध्यम से ज्ञान के प्रति सम्मान और उसके संरक्षण के भावना को व्यक्त करता है।

इसके अध्ययन से यह सामने आता है कि वैदिक संध्या और ब्रह्मयज्ञ को केवल कर्मकाण्ड के रूप में देखना इसके व्यापक उद्देश्यों को सीमित कर देता है। इसके माध्यम से अनुशासन, आत्मचिंतन, स्वाध्याय, ज्ञानार्जन और नैतिक जीवन जैसे मूल्यों को समझा जा सकता है। आज के समय में बदलती जीवनशैली, व्यस्त-दिनचर्या और मानसिक तनाव के बीच नियमित आत्मचिंतन तथा स्वाध्याय की आवश्यकता और अधिक महसूस होती है। इस दृष्टि में वैदिक संध्या और ब्रह्मयज्ञ की मूल भावना वर्तमान जीवन में अधिक उपयोगी है।

अतः वैदिक संध्या एवं ब्रह्मयज्ञ भारतीय ज्ञान-परंपरा के महत्वपूर्ण अंग है, जो अनुशासन, आत्मचिंतन, मानसिक संतुलन, स्वाध्याय और ज्ञान संरक्षण के माध्यम से आधुनिक जीवन को सार्थक दिशा प्रदान करते हैं।

प्रमुख शब्द :— वैदिक संध्या, ब्रह्मयज्ञ, स्वाध्याय, आत्मचिंतन, आध्यात्मिक चेतना, ज्ञान-परंपरा और समकालीन प्रासंगिकता।

भारतीय ज्ञान परम्परा में 'स्वप्न' की अवधारणा : वैदिक दृष्टि

डॉ० मुकेश भारती

भारतीय ज्ञान परम्परा में चेतना की चार अवस्थाएं बतायी गयी हैं – जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति, और तुरीय। जाग्रत् अवस्था में चेतना बाह्य जगत् के अनुभवों से जुड़ती है। स्वप्नावस्था में मन आन्तरिक जगत् का निर्माण करता है। सुषुप्ति की अवस्था में चेतना शान्त होती है और किसी प्रकार का अनुभव नहीं होता। तुरीय अवस्था, चेतना की शुद्ध और सर्वोच्च अवस्था है, जहाँ द्वैत समाप्त हो जाता है। वैदिक वाङ्मय में स्वप्न को चेतना की एक महत्त्वपूर्ण अवस्था के रूप में परिभाषित किया गया है। प्रस्तुत शोध-पत्र में वैदिक वाङ्मय में प्राप्त स्वप्न-सम्बन्धी अवधारणाओं का विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

वैदिक साहित्य में अथर्ववेद स्वप्न की अवधारणा के अध्ययन के लिए महत्त्वपूर्ण है, जिसमें दुःष्वप्ननाशन सूक्त का वर्णन प्राप्त होता है। इसके प्रथम मन्त्र में कहा गया है - "यो न जीवोऽसि न मृतो देवानाममृतगर्भोऽसि स्वप्न"। यहाँ स्वप्न को न जीवित और न मृत कहकर एक रहस्यमय एवं विशिष्ट सत्ता के रूप में प्रस्तुत किया गया है। इसी सूक्त में "स नः स्वप्न दुष्वप्न्यात् पाहि"। कहकर दुःस्वप्न से रक्षा की प्रार्थना की गयी है।

उपनिषदों में स्वप्न की अवधारणा अधिक गहन एवं दार्शनिक स्वरूप ग्रहण करती है। इस विषय में बृहदारण्यक उपनिषद् में दो मत हैं- (१) आत्मा बहिर्जगत् में देखे हुए द्रव्यों के अनुकरण पर नये जगत् की सृष्टि करता है। (२) आत्मा शरीर से निकल कर इच्छानुसारभ्रमण करता है। स्वप्न-विमर्श को दार्शनिक एवं शास्त्रीय आधार प्रदान करने वाला प्रमुख ग्रन्थ माण्डूक्य उपनिषद् है। इसके चतुर्थ मन्त्र में कहा गया है - "स्वप्नस्थानोऽन्तःप्रज्ञः सप्ताङ्ग एकोनविंशतिमुख: प्रविविक्तभुक्तैजसो द्वितीयः पादः"। यहाँ स्वप्नावस्था को आत्मा के द्वितीय पाद तथा उसके अनुभवकर्ता को 'तैजस' कहा गया है। माण्डूक्य उपनिषद् स्वप्न को सुषुप्ति से पृथक् करते हुए चेतना की अवस्थाओं के क्रमिक विवेचन को आधारभूमि प्रदान करता है। अथर्ववेद में स्वप्न एवं दुःस्वप्न का विमर्श, बृहदारण्यक में आत्मानुभव तथा माण्डूक्य में अन्तःप्रज्ञा, तैजस और चेतना का विमर्श इस प्रकार स्वप्न भारतीय ज्ञान-परम्परा में केवल निद्रावस्था का अनुभव न होकर मानवीय अनुभव यथा - जगत्, मन, आत्मा और चेतना के स्वरूप को समझने का एक महत्त्वपूर्ण दार्शनिक माध्यम सिद्ध होता है।

मुख्य शब्द: स्वप्न, जगत्, मन, आत्मा, वैदिक वाङ्मय, तैजस।

भारतीयज्ञानपरम्परायां सामवेदीय-शिक्षाग्रन्थेषु स्वास्थ्यचिन्तनस्य वैज्ञानिकमन्वेषणम्

(Scientific Exploration of Health Reflections in Samavedic Shiksha Texts)

लीलाधर शर्मा , प्रो. हरेकृष्ण अगस्ती

वैदिकवाङ्मये शिक्षाग्रन्थानां महत्त्वं केवलं वर्णानां शुद्धोच्चारणपर्यन्तमेव नास्ति, अपितु तत्र साधकस्य सर्वाङ्गीण-स्वास्थ्यस्य चिन्तनमपि अन्तर्निहितं वर्तते। "शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्" इति न्यायः वेदाध्ययनेऽपि समानरूपेण प्रवर्तते। सामवेदस्य गानप्रधानत्वात् गातुः (सामगस्य) वाग् इन्द्रियाणि, प्राणशक्तिः, कोष्ठशुद्धिः च कीदृशी भवेत् ? इत्यस्मिन् विषये नारदीयशिक्षायां गभीराः निर्देशाः प्राप्यन्ते। प्रस्तुतशोधपत्रे नारदीयशिक्षायाः श्लोकानां समीक्षात्मकमध्ययनं विहितम्। अत्र प्रतिपादितं यत् प्राचीनैः ऋषिभिः उच्चारणावयवानां रक्षणार्थं या दिनचर्या, आहारनियमः, दन्तधावनविधिः च प्रोक्ताः, ते आधुनिक-स्वास्थ्यविज्ञानस्य (Modern Health Science) निकषायामपि सत्याः सिद्ध्यन्ति। अस्य शोधस्य निष्कर्षः अस्ति यत् शिक्षाग्रन्थाः न केवलं ध्वनिविज्ञानस्य (Phonetics) ग्रन्थाः सन्ति, अपितु तेषु 'स्वर-स्वास्थ्य-विज्ञानस्य' (Voice Health Science) मूलसूत्राणि अपि विद्यन्ते।

मुख्यशब्दाः (Keywords): सामवेदः, नारदीयशिक्षा, वागीन्द्रिय-स्वास्थ्यम् (Vocal Health), आहारशुद्धिः, पर्यावरणदृष्टिः।

वैदिक अनुष्ठान और प्रथाएँ

ज्योति

भारतीय मानव-जीवन और वैदिक वाङ्मय में अनुष्ठानों और प्रथाओं का स्थान अत्यंत गौरवपूर्ण रहा है। वैदिक काल का उत्तरार्द्ध और ब्राह्मण काल यज्ञ का स्वर्णयुग माना जाता है। श्रीमद्भगवद्गीता में भी यज्ञ के द्वारा सृष्टि रचना का उल्लेख है — "सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः॥ (३.१०)"

यज्ञ का उपयोग: यज्ञ केवल धार्मिक अनुष्ठान तक सीमित नहीं था, अपितु सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक और आर्थिक उद्देश्यों की पूर्ति का साधन था। विशेष रूप से यज्ञ का उपयोग पर्यावरण शुद्धि और दु:साध्य रोगों की चिकित्सा हेतु भी किया जाता था।

यज्ञों के प्रकार एवं प्रमाण:

अग्निहोत्र यज्ञ: "अग्निहोत्रं जुहुयात् स्वर्गकामः॥" (तैत्तिरीय संहिता १.५.९.१ - विधि वाक्य)

पञ्चमहायज्ञ: "पञ्चयज्ञा इति" (पारस्कर गृह्यसूत्र)

सोम यज्ञ: "सोमेन यजेत" (श्रौतसूत्र)

अश्वमेध यज्ञ: "राजा स्वराज्यकामः अश्वमेधेन यजेत" (शतपथ ब्राह्मण)

राजसूय यज्ञ: "राजा राजसूयेन यजेत" (शतपथ ब्राह्मण)

वाजपेय यज्ञ: "वाजपेयेन स्वराज्यकामः यजेत" (कात्यायन श्रौतसूत्र)

वैदिक काल की प्रथाएँ:

यज्ञों के साथ-साथ प्रथाएँ भी मानव को अनुशासित, नैतिक और व्यवस्थित बनाने का माध्यम थीं। इनका मुख्य उद्देश्य संस्कार, सामाजिक एकता व प्रकृति से संतुलन बनाए रखना था।

अतिथि सत्कार प्रथा: "अतिथिदेवो भव॥" (तैत्तिरीयोपनिषद्)

दान प्रथा: "श्रद्धया देयम्॥" (तैत्तिरीयोपनिषद्)

विवाह प्रथा: "समञ्जन्तु विश्वे देवाः समापो हृदयानि नौ" (ऋग्वेद)

प्रकृति सम्मान प्रथा: "माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः॥" (अथर्ववेद)

पितृयज्ञ प्रथा: "स्वधा नमः पितृभ्यः॥"

मुख्य उद्देश्य:

प्रस्तुत शोध सार का मुख्य उद्देश्य वैदिक अनुष्ठानों व प्रथाओं के सामाजिक, वैज्ञानिक और व्यावहारिक महत्त्व को दर्शाना है। इससे सिद्ध होता है कि यज्ञ और सामाजिक प्रथाएँ केवल कर्मकाण्ड नहीं, अपितु एक उन्नत जीवन पद्धति थीं जो सामाजिक समरसता और संतुलन के लिए आज भी प्रासंगिक हैं।

मुख्य शब्द:

वैदिक वाङ्मय, दान प्रथा, सामाजिक एकता, अतिथि सत्कार, आर्थिक उद्देश्य और यज्ञ चिकित्सा।

वैदिक वाङ्मय में कृषिविज्ञान : कृषिकर्म एवं समृद्धि की वैदिक संकल्पना

डॉ. पवन कुमार पाण्डेय

मानव-सभ्यता के विकास के साथ-साथ कृषि विज्ञान का भी अभ्युदय हुआ । वैदिकसाहित्य में अनेकत्र कृषिविज्ञान से सम्बन्धित तथ्य प्राप्त होते हैं । वैदिकसाहित्य के अध्ययन से पता चलता है कि तत्कालीन समाज में लोगों के जीवन में कृषि का बहुत अधिक महत्व था । कृषिकर्म गौरव का कार्य माना जाता था, कवि और विद्वान् भी कृषि कार्य करते थे । वैदिकसाहित्य में स्थान-स्थान पर वर्षा के लिए देवताओं तथा नदियों से भूमि को उपजाऊ बनाने के

लिए प्रार्थनाएँ मिलती हैं । उपनिषदों में हमें अन्नं बहु कुर्वीत' का संदेश प्राप्त होता है । मानव जीवन अन्न पर निर्भर है । अन्न की प्राप्ति कृषि से होती है, अत: कृषि मानवमात्र के जीवन का आधार है । आज अनेक औद्योगिक और वैज्ञानिक प्रगतियों के होते हुए भी मानव समाज कृषि पर आश्रित है । इस लेख में वैदिकवाङ्मय में वर्णित कृषिविज्ञान का स्वरूप, कृषि का महत्व, कृषि के उपकरण, कृषि की विधियाँ, सिंचाई व्यवस्था, खाद, कृषिनाशक तत्व एवं अन्न आदि विषयों के बारे में चर्चा की गई है

वेदों में मनोविज्ञान के मूल तत्त्व

डॉ० विरमा कुमारी

मनसे चेतसे धिय आकूतय उत चित्तये।

मत्यै श्रुताय चक्षसे विधेम हविषा वयम्।।1

प्रस्तुत मंत्र में सूत्ररूप द्वारा मनोविज्ञान के सभी तत्वों का उल्लेख हुआ है। मन की अनेक धाराएँ हैं। उनमें से आठ धाराओं का संकलन मंत्र में है। मनसे (मनन शक्ति के लिए) मानसिक संवेदना (Sensation) और प्रेरणा (Motivation) का ग्रहण है। चेतसे के द्वारा चेतना (consciousness) और चिन्तन (Thinking) अभिप्रेत है। धिये से ध्यान (अवधान) (Attention) को लिया है। आकूतये के द्वारा अनुभूति (Feeling) व संवेग (Emotion) का ग्रहण है। चित्तये से चित्त के धर्म स्मरण (Remembering) और तदभाव रूप में विस्मरण (Forgetting) का अभिप्राय है। मत्यै के द्वारा बुद्धि-व्यापार और ज्ञान (intelligence) अभिप्रेत है। श्रुताय से श्रवण, पठन और शिक्षण (Learning) का ग्रहण है। चक्षसे के द्वारा नेत्र के कार्य दर्शन तथा प्रत्यक्षीकरण (Perception) अभिग्रहण हो रहा है। हविषा विधेम का यहाँ अर्थ भौतिक वस्तुओं से किये जाने वाले यज्ञ कार्य से नहीं है। अपितु मनुष्यों में अग्नि के समान तेजस्विता से हैं। जब व्यक्ति में तेज होगा, तभी वह मनोविज्ञान के तत्वों को जीवन में धारण करने में सक्षम बनेगा।

कुण्डलीस्थ भावों के आधार पर मानसिक स्थितियों का विमर्श

Priyanka sharma

भारतीय ज्योतिषशास्त्र केवल बाह्य जीवन की घटनाओं अथवा भौतिक उपलब्धियों का प्रदर्शक मात्र नहीं, अपितु मानव चेतना, मनःस्थिति एवं आन्तरिक सूक्ष्म जगत् के अनुशीलन का अनुपम माध्यम है। यह हमारे जीवन के अनेक पहलुओं पर सूक्ष्म विचार करने वाला प्रत्यक्ष शास्त्र है । इसके माध्यम से ग्रहों नक्षत्रों और राशियों की सही स्थिति और उनके प्रभाव का यथार्थ ज्ञान प्राप्त होता है । प्रस्तुत शोधपत्र में कुण्डली के बारह भावों की शास्त्रीय संरचना के आधार पर मानव के मानसिक तथ्यों, संवेगों, बौद्धिक क्षमताओं एवं मनोविकारों का विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। ऋग्वेद का 'चन्द्रमा मनसो जातः' उद्घोष मन और खगोलीय पिण्डों के अभिन्न सम्बन्ध को प्रतिपादित करता है। ज्योतिषीय सिद्धान्तों के अनुसार व्यक्ति का अवचेतन मन, विचार-प्रक्रिया, आत्म-विश्वास, तनाव, अवसाद तथा आध्यात्मिक चेतना कुण्डली के विशिष्ट भावों और उनके स्वामियों (भावेशों) के सूक्ष्म सन्तुलन पर निर्भर करती है।

इस अध्ययन का मुख्य उद्देश्य कुण्डली के शुभ भावों - विशेषतः प्रथम (लग्न), चतुर्थ, पञ्चम एवं नवम भाव—तथा दुःस्थान (षष्ठ, अष्टम एवं द्वादश भाव) के माध्यम से मन की विभिन्न परतों का वैज्ञानिक एवं शास्त्रीय वर्गीकरण करना है। शोध में यह सिद्ध किया गया है कि जहाँ चतुर्थ भाव चित्त की आन्तरिक शान्ति एवं संवेगात्मक स्थिरता को नियन्त्रित करता है, वहीं पञ्चम भाव बौद्धिक तर्क एवं संज्ञानात्मक क्षमता का प्रतिनिधित्व करता है। इसके विपरीत, दुःस्थानों का दूषित होना मानसिक अशान्ति, अवसाद, भ्रम तथा विविध मनोविकारों को जन्म देता है। यह शोधपत्र परम्परागत ज्योतिषीय सिद्धान्तों तथा आधुनिक मनोविज्ञान के मध्य एक सेतु स्थापित करते हुए मानसिक स्वास्थ्य के पूर्व-आकलन एवं निदान हेतु ज्योतिषीय भावविचार की सार्थकता को रेखाङ्कित करता है।

कूटशब्द – दुःस्थान, त्रिगुण, त्रिदोष, सौम्य ग्रह, क्रूर ग्रह, अवसाद, संवेग

भारतीय ज्ञान परम्परा में कृषिविज्ञान की उपादेयता

डा. एस् कृष्णा

ैदिक संदहताओं का अध्ययन किने पि यह सुस्पष्ट होता है कक चाि ोंि ेि ोंि में जिस प्रकाि यज्ञों की मदहमा िर्णयत है औि उस आधाि पि ैदिक संस्कृतत को यज्ञ संस्कृतत कहा ाता है, उसी प्रकाि कृवि – कमय की व्यापक महत्ता को ेखकि ि ेि ोंि की संस्कृतत को यदि कृवि – संस्कृतत भी कह दिया ाय तो अत्युजतत न होगी, तयोंकक कृवि का अर्य केि भूशम विलेखन मार नहीं, अवपतु पिपालन आदि सब इसमें समादहत हो

ाता है। उत्तम कृवि के शलए पिुओं का वि ेि रूप से गाय एिं बैल का पालन आिश्यक है। इनका िक्षण, पालन एिं संधयन ो ेि किेगा ह समृद्ध होगा - ऐश्ियियाली होगा।

ऋग्ेि में ूए में पाजित द्यूतकि को ऋवि ने उपेि दिया है कक ूआ खेलना छोड ो औि खेती किने का अभ्यास को। 'अक्षैमाा दीव्यः कृषिममत् कृस्ि'। (ऋ. 10।34। 7)। ऋग्ेि के अनुसाि अजश्िन् ने सियप्रर्म आयों को हल के द्ाि ा बीि बोने की कला शसखाई। 'दशस्यन्ता मने पूव्यं ददषि यिं ृकेण काथः'। (ऋ. 8।22।6)।

युि ेि में 'ननकामे ननकामे नः पर्ान्यो ि ातु फलित्यो न औधयः पच्यन्ताम्' आदि ैदिक ाप्रगीत में कृवि संस्कृतत का मनोहाि ी िणयन है। यहां तक कक 'त्र्यम्बकं यर्ामहे' आदि मृत्युञ्िय मन्द्र में 'उिारुकममि बन्धनात्' से खेतों में पक कि अपनी लता से अलग होते उियरुक का चचर आंखों के सामने आ ाता है।अर्ियेि का एक मन्द्र इस दृजष्ट से अत्यन्द्त मह्िपूणय है –

'नं बबभ्रती बहुधा षि ाचसं नानाधमााणं पृथथिी यथौकसम्।

सहस्रं धाराद्रषिणस्य मे दुहां ध्रुि ेि धेनुरनपस्फुरन्ती'।।(अथि ेद 12 – 145)

यहां पृचर्ि ी को गौ की तिह ुधारु कहा गया है । उसके सहस्र स्तन हैं, जिनसे ह अन्द्न, औध आदि

कालिदास साहित्य में यज्ञ परम्परा : वैदिक आधार

डॉ. प्रतिभा शुक्ला

वैदिक साहित्य में यज्ञ का महत्त्व उसके अनुष्ठानात्मक विधान के साथ उसके व्यापक जीवनदर्शन में भी व्यक्त हुआ है। यज्ञ को श्रेष्ठतम कर्म मानने की धारणा, सृष्टि और मानव शरीर का यज्ञरूप निरूपण तथा पञ्चमहायज्ञों की व्यवस्था उसके विविध पक्षों को सामने लाती है। कालिदास की रचनाओं में राजाओं, ऋषियों और आश्रमों से संबंधित यज्ञप्रसंग इस परम्परा की साहित्यिक अभिव्यक्ति प्रस्तुत करते हैं। प्रस्तुत शोधपत्र का उद्देश्य वैदिक यज्ञ की अवधारणा और कालिदास साहित्य में उसके चित्रण का अध्ययन करना है। अध्ययन में वैदिक संहिताओं एवं ब्राह्मणग्रंथों के उद्धरणों तथा रघुवंश, कुमारसम्भव और अभिज्ञानशाकुन्तलम् के चयनित प्रसंगों का वर्णनात्मक एवं तुलनात्मक विवेचन किया गया है। वैदिक भाग में यज्ञ का अर्थ, देवपूजा, संगतिकरण और दान, पञ्चमहायज्ञ तथा अनुष्ठान के साधनों पर विचार किया गया है। कालिदास साहित्य के अंतर्गत अश्वमेध, विश्वजित्, पुत्रेष्टि, यज्ञदीक्षा, यज्ञरक्षा, लाजाहोम और आश्रम की यज्ञाग्नि से जुड़े प्रसंगों का परीक्षण किया गया है। विवेचन से स्पष्ट होता है कि कालिदास के यहाँ यज्ञ राजकीय जीवन, ऋषियों के अनुष्ठान, पारिवारिक संस्कार और प्रकृति के चित्रण से संबद्ध है। रघुवंश में यज्ञ का संबंध दान, दीक्षा और उसके निर्विघ्न संपादन से दिखाई देता है, जबकि कुमारसम्भव और अभिज्ञानशाकुन्तलम् में यज्ञसामग्री, अग्नि तथा हवि के उल्लेख उसकी उपस्थिति को मूर्त रूप देते हैं। इन प्रसंगों के माध्यम से वैदिक यज्ञपरम्परा और कालिदास के साहित्यिक चित्रण के बीच संबंध को समझा जा सकता है। अध्ययन का निष्कर्ष है कि कालिदास के चयनित यज्ञप्रसंग वैदिक अनुष्ठान और उससे जुड़े जीवनमूल्यों को काव्य तथा नाटक के पात्रों और परिस्थितियों के माध्यम से अभिव्यक्त करते हैं।

मुख्य शब्द: यज्ञ परम्परा, वैदिक साहित्य, कालिदास, रघुवंश, कुमारसम्भव, अभिज्ञानशाकुन्तलम्।

शिक्षा प्रातिशाख्य के अनुसार माध्यन्दिन शाखा का उच्चारण वैशिष्ट्य

डॉ. पंकज कुमार शर्मा

Introduction :

वेद की मूल परम्परा मन्त्रों के दर्शन के माध्यम से मन्त्रद्रष्टा ऋषियों से प्रारम्भ होकर श्रुतर्षियों तथा आगे चलकर वेदांगों के सहयोग तक दिखती है, जिसमें संहितारूप मन्त्रों के मूलस्वरूप के होते हुए भी पद पाठ को प्रकृतिपाठ के रूप से देखा जाता है तथा इसी के आधार पर पदों से संहिता, क्रम एवं जटादि अष्टविकृतियों के नियमन की परम्परा विकसित होती है। जहाँ शिक्षा वेदांग वेद की शाखाओं के अनुसार मन्त्रों के उच्चारण के विज्ञान एवं वैशिष्ट्य को प्रकाशित करते हैं, वहीं प्रातिशाख्य ग्रन्थों में पदपाठ को आधार मानकर कर उदात्तादिस्वरों एवं लोपागमादि संस्कारों के माध्यम से परम्परा को सुरक्षित रखने का प्रयास किया गया है।

Methodology

प्रस्तुत शोध पत्र में याज्ञवल्क्य शिक्षा एवं वाजसनेय प्रातिशाख्य के आधार पर शुक्ल यजुर्वेद की माध्यन्दिन शाखा के उच्चारण वैशिष्ट्य का प्रतिपादन किया गया है। याज्ञवल्क्य शिक्षा के आधार पर सात प्रकार के संयोग पिण्डों का विश्लेषण तथा अन्य शाखाओं से भिन्नता को उदाहरण सहित प्रतिपादित किया है। व्याकरण की दृष्टि से शाखागत उच्चारण की भिन्नता को भी प्रस्तुत करने का प्रयास किया है, जैसे यस्यातिहाय सहेति व (वा. प्रा. 4/25) वाजसनेय प्रातिशाख्य पूर्वरूप प्रकरण, जिसमें ऋक् मन्त्र, याजुष् मन्त्र, एवं ब्राह्मण एवं सौत्रामणि अध्याय के आधार पर सन्धिगत विशिष्टता दिखती है, इसका भी अनुशीलन प्रस्तुत शोधपत्र में किया गया है।

Data & Findings

शुक्ल यजुर्वेद की माध्यन्दिन शाखा के मन्त्रों को उदाहरण के रूप में रखते हुए वाजसनेय प्रातिशाख्य में दिये गए अपवाद एवं निपात सूत्रों का पाणिनीय व्याकरण के आलोक में अनुशीलन भी इस शोधपत्र का एक प्रारूप है।

Conclusion

परम्परागत अध्येताओं को परम्परागत उच्चारण के साथ-साथ शिक्षा एवं प्रातिशाख्य ग्रन्थों के महत्व को प्रतिपादित करना इस शोध पत्र का उद्देश्य है। परम्पराओं की आधारशिला पर सतत चल रही गुरु-शिष्य परम्परा के आधार स्तम्भ शिक्षा एवं प्रातिशाख्य ग्रन्थों का परम्परा के आलोक में अवलोकन शोधपत्र का प्रमुख ध्येय है।

Keywords - पिण्ड, सावग्रह, पूर्वरूप, निपात, अपवाद, शाखाभेद, उच्चारण परम्परा।

श्रीमद्भगवद्गीता के तृतीय अध्याय (कर्मयोग) में कर्म के स्वरूप एवं महत्त्व का विवेचन

Bhaskar debnath

श्रीमत भगवद गीता के तृतीय अध्याय कर्म योग में मानव जीवन में कर्म के स्वरूप एवं उसके महत्व का विवेचन किया गया है। इस अध्ययन का मुख्य उद्देश्य श्रीमत भगवद गीता में प्रतिपादित कर्म योग के स्वरूप, उसका हमारे जीवन में महत्व तथा हमें अपने उन मूल्यों को अपने जीवन में क्यों धारण करना चाहिए, इस पर एक दार्शनिक दृष्टिकोण के साथ विवेचन करना है।

हमारे इस शोध का मुख्य उद्देश्य है कर्मयोग के स्वरूप, उद्देश्य तथा महत्व को समझना और वर्तमान समय में इनकी उपयोगिता पर विचार प्रस्तुत करना है। इस अध्ययन में गीता के विभिन्न भाष्य तथा संबंधित ग्रंथों के आधार पर कर्मयोग के विशेष बिंदुओं तथा उनके जीवन में आचरण करने के ऊपर एक दार्शनिक दृष्टिकोण से अध्ययन किया गया है।

इस अध्ययन से स्पष्ट होता है कि कर्मयोग मनुष्य को कर्म से विमुख होने की नहीं बल्कि अपने कर्तव्य का पालन करते हुए कर्मफल की आसक्ति का त्याग करने की प्रेरणा देता है। निष्काम एवं यज्ञार्थ कर्म व्यक्ति को कर्म बंधनों से मुक्ति की ओर ले जाता है क्योंकि सभी आत्माओं का अंतिम लक्ष्य उसका परमात्मा में विलीन होना है।

अतः श्रीमद्भगवद्गीता का कर्मयोग कर्तव्य, निष्कामता, आत्मसंयम एवं लोकसंग्रह पर आधारित जीवन दृष्टि है। यह व्यक्ति के आचरण को अनुशासित करने तथा मनुष्य को नैष्कर्म्य तक पहुँचाने के साथ-साथ उसे समाज का उपकार करने की भावना की ओर प्रेरित करता है। वर्तमान जीवन में इसके उपदेशों का पालन करने की बहुत अधिक आवश्यकता है इससे समाज में बढ़ते क्लेशों का समाधान किया जा सकता है।

प्रमुख शब्द: कर्मयोग, निष्काम कर्म, नियत कर्म, यज्ञार्थ कर्म, लोकसंग्रह।

Ann Ka Vigyan

Shweta tiwari

वेद में कहा है अग्नि-सोमात्मकं जगत्। सोम को अन्न और अग्नि को भोक्ता कहते हैं। यज्ञ से ही नया निर्माण होता है। अनेक स्वरूपों में अन्न भी उच्छिष्ट ही होता है, आहुति कर्ता का। कहते हैं 'अन्न' (उच्छिष्ट) से ही सृष्टि होती है। कई प्राणी भी अन्य प्राणियों का अन्न बनते हैं। शास्त्र कहते हैं—जीवो जीवस्य भक्षणम्। अन्न को हम सामान्यत: खाने योग्य पदार्थ के रूप में जानते हैं। वस्तुत: अन्न की परिभाषा बहुत व्यापक है। हम सृष्टि के अभिन्न अंग हैं। अत: सृष्टि की हर रचना के साथ जुड़े हुए हैं। हम सब एक-दूसरे का अन्न भी हैं। अन्न के प्रसंग में श्रुति है 'सर्वमिदमन्नाद: सर्वमिदमन्नम्'। अन्नाद का अर्थ है ग्रहण करने वाला, खाने वाला। इसका अर्थ है कि सब कुछ अन्न हैं और सभी कुछ अन्नाद हैं। जिसका जिससे निर्वाह होता है वही उसका अन्न है, जैसे आकाश का अन्न शब्द है। यहां तक कि संवाद भी अन्न है। हम एक-दूसरे से बात कर रहे हैं, तो हम एक-दूसरे का भोग कर रहे हैं। यानी हम एक-दूसरे के अन्न हैं। विचारों से, भावनाओं से, कर्मों से जो भी ग्रहण किया जाता है, वह सबकुछ अन्न हैं। हम एक-दूसरे को भोग रहे हैं। क्या अन्न की इस व्यापकता को हम समझ पाते हैं?

आज अन्न की परिभाषा पूरी तरह बदल गई है। जिस तरह के अन्न नई पीढ़ी के सामने आ रहे हैं, उनमें तो ये सारी परिभाषाएं लुप्त ही हो गई हैं। प्रकृति के नियमों के अनुसार तो चारों वर्णों के अन्न अलग-अलग हैं। यह गीता के 17वें अध्याय में कहा है। भिन्न वर्णों के साथ शरीर भी भिन्न होते हैं। अगर ब्राह्मण का अन्न क्षत्रिय खाए और क्षत्रिय का अन्न ब्राह्मण खाए तो इसका परिणाम उनके शरीर के माध्यम से समझ सकते हैं। अत: अन्न को और गहराई से समझने की जरूरत है।

The architecture of prohibition: a freudian metapsychological deconstruction of the yama-yamī saṃvāda sūktam

Debosree debnath

This research paper presents a groundbreaking and deep psychological interpretation of the *Yama-Yamī saṃvādasūktam (Ṛgveda 10.10*), based entirely on Sigmund Freud's theory of classical psychoanalysis. Historically, this ancient Vedic dialogue has been confined within the narrow boundaries of grammar, religious rituals, or anthropological evolution tracking the origin of the incest taboo in human society. This study addresses a crucial research gap by uncovering completely new dimensions. Through a continuous, verse-by-verse analysis, it demonstrates that this dialogue is not merely an external social or moral battle but one of the oldest recorded documents of the internal structural genesis of the human psyche. In Freudian terms, it serves as a psychological metaphor showing how the conscious mind, the Ego, and the moral conscience, the Superego, emerge from the unbridled, chaotic state of the unconscious mind, the Id.

By conducting a meticulous psychological deconstruction of every phrase in the hymn, this paper establishes that *Yamī* represents the primitive, intense sexual drive of the body, the Libido, and the immediate Pleasure Principle. On the other hand, *Yama* accepts external reality and integrates moral boundaries within his own psyche, establishing Freud's Reality Principle. In doing so, *Yama* triggers the world's first recorded instance of Psychic Repression. Moving beyond simple somatic or ritualistic interpretations, this research proves that Yama's absolute "no" or rejection of *Yamī's*

desire was a fundamental prerequisite for the development of human civilization, culture, and language. The primary objective of this study is to establish the *Yama-Yamī* dialogue on the global stage as the oldest recorded structural blueprint of the human mind, proving that civilization was not born from a peaceful social contract but through an agonizing, heroic struggle to conquer the primordial dark drives of the human psyche.

Keywords:Sigmund Freud, Primordial Id, Emergent Ego, Crystallized Superego, Reality Principle, Sublimation.

Scientific approach of 'AUM' in the Māṇḍūkyopaniṣad: An analysis

Dr. Biraj krushna Mishra

Māṇḍūkyopaniṣad is an Upaniṣad of the Atharvaveda. It is one of the Classical Upaniṣads. There are twelve mantras in the Upaniṣad. Śrī Gouḍapādācārya, the Parama Guru the Grand-preceptor of Śrī Śaṅkara has written a kārikā on the Upaniṣad which is very illuminating and sublime. Ānanda Giri has also written a tīkā on the Upaniṣad, which gives a very good explanation of Śrī Śaṅkara's commentry. In this Upaniṣad, Varuṇa, , the Lord of waters assumes the form of a frog (Maṇḍuka) and praises AUM. Varuṇa is the Ṛṣi or Revealer of this Upaniṣad. Brahman is the devatā; Anuṣṭup is the metre.The Māṇḍūkyopaniṣad presents AUM as a scientific and metaphysical formula representating the totality of existence, consciousness and time (A-U-M+ Silence). It maps the three states of consciousness-waking(A), dreaming (U) and deep sleep (M) along with the fourth, transcendental state (Tūrīya) to the sound, functioning as a bridge between duality and non-dual Reality. The science of AUM in the Māṇḍūkyopaniṣad is a systematic study of consciousness through the phonetic structure of the sacred syllable. This shortest of all Upaniṣads (only 12 verses) treats AUM not just as a religious sound, but as a symbolic map of the four states of human experience. AUM, the word, is all this. It's further explanation is this. All that is past, present and future is verily AUM. That which is beyond the tripple connection of time, is verily AUM. The Person qualified to study this Upaniṣad is anyone who wants to attain liberation. AUM, the Praṇava, the AUMkāra is the only symbol of Brahman, the Absolute. The vibration produced by chanting AUM in the physical universe corresponds to the original vibration that first arose from the mouth of Hiraṇyagarbha the kārya-brahman. Hence, AUM is very important. Praṇava or AUM is the greatest of all mantras. It bestows directly liberation. All mantras begin with AUM. All Vedas and Upaniṣads begin with AUM. Gāyatrī also begins with AUM. The oblations that are offered to the various Gods are preceded by the chanting of AUM. Modern research often links the rhythmic chanting of AUM to physiological changes that mirror the Upaniṣad's claims of mental transformation: Brain waves, vagus nerve, Synchronicity etc.

Key words: AUM, Māṇḍūkyopaniṣad, Consciousness, Waking, Dreaming, Deepsleep, Tūrīya, Mental transformation.

आश्रम परम्परा में वैदिक वाङ्मय का योगदान (Āśrama-paramparā meṃ Vaidika-vāṅmaya kā yogadān)

भक्ति केलकर, डॉ. नन्दा पुरी

वेद सम्पूर्ण सृष्टि के सारगर्भित एवं प्रगल्भ ज्ञान का वह कोश है जिसके मूल में मानव जीवन की सांस्कृतिक, सामाजिक, धार्मिक एवं आध्यात्मिक सभ्यता का बीजात्मक रहस्य स्थित है। मानव जीवन में वर्णाश्रम पद्धति के संयोजन से मानव सभ्यता का अभ्युदय हुआ । आश्रम परम्परा न केवल धर्मशास्त्र की देन है वरन् वेदों से अंकुरित इस आश्रम परंपरा के बीज, मानव सभ्यता के अपूर्व इतिहास को दिखाते है।

वैदिक वाङ्मय में क्रमशः संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक एवं उपनिषदों में आश्रम परम्परा की सुनियोजित संस्कृति के संकेत दिये गये है। वरिष्ठ विद्वानों के मत में वेदों में केवल ब्रह्मचर्याश्रम एवं गृहस्थाश्रम के संदर्भ अधिक है किन्तु वानप्रस्थ एवं सन्यास के प्रमाणों का अधिक दृष्टांत नही मिला। अध्ययन करने पर वेदों में चारों ही आश्रमों के सारगर्भित - सांकेतिक प्रमाण मिले।

वैदिक संहिताओं में ब्रह्मचर्य का सौष्ठव बताते हुए युवाओं का मार्गदर्शन किया गया है। प्रकृति से ब्रह्मचर्य की शिक्षा एवं ब्रह्मचर्य से राष्ट्र की सुरक्षा जैसे प्रेरक उपदेश अथर्व-संहिता में उद्धृत है। ऋग्वेद के विवाह सूक्त में वधू को गृहस्थ-धर्म का प्रशिक्षण दिया गया है। ब्राह्मण ग्रन्थों में गृहस्थों के वैदिक आचरण (यज्ञादि कर्म-काण्डों) का विधी विधान दिया गया है। ऐतरेय ब्राह्मण के शुनः शेप आख्यान के द्वारा समुचित आश्रमों का क्रम प्राप्त होता है। वैदिक काल का यति समुदाय एवं इन्द्र के साथ इनकी शत्रुता का इतिहास हमे ब्राह्मण ग्रन्थों में मिलता है। वैखानस से वानप्रस्थ की यात्रा का वर्णन एवं इन्द्र से वैखानस ऋषियों के सुहृद् सम्बन्धों का वर्णन ताण्ड्य ब्राह्मण में किया गया है। आरण्यकों को वानप्रस्थियों की जीवन शैली का साक्षात प्रतीक माना जाता है क्योंकि इनकी रचना ही वानप्रस्थ-मुनियों द्वारा की गयी। उपनिषदों में भी सभी आश्रमों का दार्शनिक चिन्तन किया गया है जो अभ्युदय एवं निःश्रेयस की सिद्धि हेतु श्रेयस्कर है।

प्रस्तुत शोध-पत्र में उपर्युक्त सभी प्रमाणों का समीक्षण करने का प्रयत्न किया गया है जो आश्रम परम्परा में वेदों के ऐतिहासिक, धार्मिक, आध्यात्मिक एवं दार्शनिक योगदान को दर्शाते है।

ऋग्वेदस्य दशममण्डलस्य सम्बादसूक्तानां नैतिकमूल्यवोधः

ऋग्वेदस्य दशममण्डलस्य सम्बादसूक्तानां नैतिकमूल्यवोधः

गोपालहाँसदाः

ऋग्वेदः भारतीयज्ञानपरम्परायाः प्राचीनतमः ग्रन्थोऽस्ति । अयं दशममण्डलेषु विभक्तोऽस्ति । तेषु दशममण्डलस्य विषयविविधतया विषेषमहत्त्वं धारयति । अस्मिन् मण्डले विविधविषयवोधकानि सूक्तानि सन्ति । तेषु संम्बादसूक्तम् अन्यतमम् अत्र विभिन्नपात्राणां परस्परसंवादस्य माध्यमेन मानवीयभावनां, सामाजिकसम्बन्धानां, नैतिकमूल्यानां च निरुपणं दृश्यते । सोम-सूर्या सम्बादसुक्ते वैवाहिकजीवनस्य पवित्रता, परस्परविश्वासः, तथा सामाजीकोत्तरदायित्वं प्रमुखतया प्रतिपाद्यते । पुरुरवा-उर्वशी सम्बादसूक्ते मानवीयप्रम्णः, विरहस्य, असक्तेः तथा भवनात्मकद्वन्दस्य चित्रणं दृश्यते । यम-यमी सम्बादसूक्ते भ्रातृ-भगगिन्यस्सम्बन्धस्य मर्यादा, सामाजिकनियमपालनं तथा धर्मनिष्ठा प्रमुखतया प्रतिपाद्यते । सरमा-पणि सम्बादसूक्ते सत्य-असत्ययोः, न्यायः, संघर्षः, लोभस्य निन्दा इत्यादयो दृश्यते । मानवजीवने नैतिकमूल्यानां महत्त्वं अत्यन्तमुपादेयं वर्तन्ते । जद् मानवस्य स्वभावं, आचरणं, व्यवहारं तथा जीवनदृष्टेः च सम्यग् मार्गं दर्शयति । मानवः स्वजीवने यद् निर्णयं करोति, तस्य मूलाधारः स्वस्य अन्तर्निहितः नैतिकमूल्यैव भवति । तस्य निर्णयं न केवलं व्यक्तिगतजीवनस्य कल्याणार्थं, अपितु परिवारस्य, समाजस्य, राष्ट्रस्य च हितसाधनेऽपि सहायकं भवति । अतः नैतिकमूल्यानि सामाजिकव्यवस्थायाः, सुदृढिकरणे महत्त्वभूमिकाः निर्वहन्ति । यः मनुष्यः श्रेष्टैः नैतिकमूल्यैः समन्वितः भवति, सः स्वकीयहितस्य अपेक्षया सर्वेषां हितार्थं मनसि निधाय विवेकपूर्वकं निर्णयकर्तुं समर्थो भवति । येषां नैतिकमूल्यानां वोधः अभावग्रस्थो भवति, ते प्रायः स्वार्थप्रधानं जीवनं आश्रयन्ति । स्वकीयाभिलाषानां आवश्यकतां च पूर्तिमेव प्रमुखं मन्यन्ते तथा अन्यषाम् आवश्यकताः, भावनाः, अधिकाराः, समाजहितं च उपेक्षन्ते । फलतः तेषां स्वार्थपरकाः निर्णयाः सामाजिकसमन्वयस्य, सद्भावस्य च हानिं जनयन्ति । एतादृशप्रवृतिभिः समाजे परस्परविश्वासह्रासः तथा असुरक्षितवातावरणस्य निर्णाणं भवति । अतः नैतिकमूल्यानि मानवजीवनस्य न केवलं व्यक्तित्वविकासस्य साधनानि, अपितु सामाजसौहार्दस्य, न्यायस्य, तथा सर्वजनहितस्य तत्त्वानि अपि सन्ति । नैतिकमूल्यसम्पन्नः मनुष्य स्वस्य आचरणेन समाजस्य सकारात्मकपरिवर्तनार्थं योगदानं ददाति । अतः व्यक्तेः सम्यग्विकासाय स्वस्थसमाजस्य निर्माणाय च नैतिमूल्यानां ज्ञानं आवश्यकम् । ऋग्वेदस्य दशममण्डलस्य सम्बादसूक्तानि विशेषतया कर्तव्यवोधस्य, सत्यनिष्टायाः, सामाजिकव्यवस्थायाः तथा धर्माधारितजीवनदृष्टेः महत्त्वपूर्णचित्रणं दृश्यते । अतः सम्बादसूक्तानि न केवलं प्राचीनसंवादानां वर्णनं कुर्वन्ति, अपितु मानवजीवनाय महत्त्वपूर्णान् नैतिकशन्देशान् अपि प्रददति । अद्यतनजीवनेऽपि उपयोगिनः सन्ति । प्रस्तुतशोधपत्रे ऋग्वेदस्य दशममण्डलस्य सम्बादसूक्तानां नैतिकमूल्यानां समिक्षात्मकमध्ययनं क्रियते ।

कूटशब्दाः – ऋग्वेदः, संम्बादसूक्तं,कर्तव्यनिष्ठा,सत्यनिष्ठा, सदाचारः, धर्मवोधः, नैतिकमूल्लम् ।

Vedic relocation of the idea of yoga in nyāya sūtra and bhāṣya

Arun Ranjan Mishra

In some *Nyāya sūtras* of Gautama and the Bhāṣya of Vātṣyana on them, we find Yoga as a clear means for self-realization. Nyāya system is based on the realism and proof-based arguments. Even then it accepts meditation as a means for self-realization. Such an opinion is rooted in the Chapter four of the *Nyāya Sūtra* and its Bhāsya. Particularly there are four sūtras in this Chapter which have direct reference to the science of Yoga.

Yoga system has its own approach to the idea of Yoga. But it has also some sūtras which resound the above four sūtras of Gautama. Although Nyāya system accepts *Śabda* (Veda) and *Anumāna* (inference) as to means of the cognition, the above four sūtras indicate that they accept meditation (a kind of *Pratyakṣa* or *Yogaja-pratyakṣa*) as a means of self-realization. (*N.S.,* 4.2.38). This has been clearly said in the *Yoga Sūtra*- श्रुतानुमानप्रज्ञाभ्यामन्यविषया विशेषार्थत्वात् (*Y.S.,* 1.49). The sūtra *N.S.,* 4.2.46 has been elaborated by Patanjali in his sūtra- योगाङ्गानुष्ठानादशुद्धिक्षये ज्ञानदीप्तिराविवेकख्यातेः (*Y.S.,* 2.28). The *yama-niyama* methods as indicated by Gautama has been elaborated by Patanjali in the Sādhana-pāda (Chapter II) of the *Yoga Sūtra*- यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणा-ध्यानसमाधयोऽष्टावङ्गानि (*Y.S.*, 2.29).

We can not say that Gautama imitates Patanjali on the subjects of Yoga. This is because when Gautama is brief on the point, Patanjali is elaborate. It seems both have referred to an unknown Vedic Yoga tradition too. We can find its indications in many places of the Vedas.

Thus, in our present endeavour we wish to relocate some vital sutras of Gautama and Patanjali in the Vedic pages.

Keywords: Yoga, Yama, Niyama, Srūta, Anumāna, Yogaja-pratyakṣa.

वेदेषु पर्यावरणसंरक्षणम् / वेदों में पर्यावरण-संरक्षण

डॉ. बुद्धदेव राम, विभागाध्यक्ष, संस्कृत विभाग

श्री त्रिदण्डीदेव राजकीय महाविद्यालय, शाहपुर (भोजपुर)

समस्त ज्ञान-विज्ञान के मूलाधार वेदों में मानव-कल्याण हेतु विविध व्यावहारिक एवं दार्शनिक विषयों का सांगोपांग निरूपण किया गया है। सम्प्रति वैश्विक परिदृश्य में मानव-जाति के अस्तित्व एवं सुरक्षा हेतु पर्यावरण-विषयक अनुशीलन सम्पूर्ण विश्व के लिए एक अत्यंत गवेषणीय (अनुसंधेय) विषय बन चुका है। मानव तथा पर्यावरण परस्पर अन्योन्याश्रित एवं क्रिया-प्रतिक्रियात्मक सम्बन्ध से आबद्ध हैं; क्योंकि आधुनिक भौतिकवादी तथा प्राविधिक (तकनीकी) प्रगति की सबसे बड़ी परिणति पर्यावरण-प्रदूषण की विकट समस्या ही है।

'पर्यावरण' शब्द की व्युत्पत्ति दो शब्दों (परि + आवरण) के योग से हुई है, जिसका व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ है— *'जो प्राणी को चारों ओर से आवृत या आच्छादित करता है, वही पर्यावरण है'*। इसके मुख्य रूप से तीन घटक स्वीकार किए जाते हैं— जलमण्डल, थलमण्डल एवं वायुमण्डल।

वैदिक काल में पर्यावरण के संरक्षण एवं सन्तुलन के प्रति उत्कृष्ट सजगता तथा पारिस्थितिकीय चेतना (Ecological Awareness) दृष्टिगोचर होती है। वैदिक ऋषियों द्वारा प्रकृति को परिशुद्ध रखने हेतु अनेक व्यावहारिक एवं यज्ञीय आयाम निरूपित किए गए हैं। वेदों में पर्यावरण-बोध हेतु *परिधि, परिभू, परिवृत* आदि पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग अनेकानेक स्थलों पर प्राप्त होता है। अथर्ववेद में जीवन की सुरक्षा एवं पर्यावरण-संरक्षण के सन्दर्भ में स्पष्ट उद्घोष है:

सर्वो वै तत्र जीवति गौरश्वः पुरुषः पशुः।

यत्रैदं ब्रह्म क्रियते परिधिर्जीवनाय कम्॥

(अथर्ववेद, काण्ड ८, सूक्त २, मन्त्र २५)

भावार्थ: जहाँ जीवन की रक्षा एवं कल्याण हेतु ज्ञान तथा प्राकृतिक नियमों रूपी सुरक्षा-परिधि (संरक्षण-चक्र) का निर्माण किया जाता है, वहाँ गौ, अश्व, मनुष्य तथा अन्य समस्त प्राणी सुरक्षित एवं निरोग रूप से जीवन-यापन करते हैं।

"Ko Dadarśa?": Knowledge, Questioning, and Concealment in the Asyavāmīya Sūkta (Ṛgveda 1.164)

Pradyumn Sharma

The Asyavāmīya Sūkta (Ṛgveda 1.164), attributed to Dīrghatamas Aucathya, is remarkable for its enigmatic questions and riddling imagery concerning the cosmos, ritual, time, speech, and knowledge. While many of its individual riddles have attracted cosmological, ritual, linguistic, and philosophical interpretations, this paper focuses on a recurring feature of the sūkta: the relationship between questioning, knowing, and acknowledged non-knowledge.

Selected mantras will be examined with particular attention to the vocabulary and contexts of seeing, knowing, and asking. The question *ko dadarśa* ("who has seen?") occurs in a passage that also asks who might approach the *vidvān*, the knower, for an answer. Elsewhere, the poetic voice presents itself as asking those who know, while the declaration *na vijānāmi* ("I do not know or understand") explicitly acknowledges a limit to understanding.

Thus, these passages give us a glimpse of the ṛṣi's approach to the pursuit of knowledge as presented in the sūkta: the relationship between questioning, acknowledged non-knowledge, and the search for a knower.

Rather than treating its interrogative expressions merely as formal features of Vedic riddling, the paper investigates whether these mantras also illuminate the process by which knowledge is sought and articulated in the hymn.

The study will examine these expressions in their immediate textual contexts and explore the interplay among seeing, questioning, knowing, and not-knowing in selected riddles of RV 1.164. Thus, it will seek to identify an epistemological dimension in Dīrghatamas's own language and poetic formulation.

The Epistemology of the Vedas: Exploring the Foundations of Indian Knowledge System

Anupam Mondal

The Vedas are the earliest and most authentic source of knowledge in Indian intellectual tradition and form the basic foundation of Indian Knowledge System (IKS). The epistemology of the Vedas is founded on the concept of *śabda-pramāṇa* (verbal testimony) that considers the Vedas as a valid and reliable source of knowledge beyond the ambit of direct perception and logical inference. The Vedas are not only sacred texts but also repositories of information on the philosophical, cosmological and practical facets of existence by placing Vedic epistemology within the broader Indian knowledge System. This paper explores the epistemological foundations of Vedic knowledge by examining the nature, authority and validity of the Vedas within classical Indian thought. It investigates the doctrine of the Vedas as *apauruṣeya* (authorless), a principle that

establishes their unique epistemic status and enduring authority. The study further analyses the relationship between revelation, reason and experience in the Vedic tradition and highlights the role of Vedic knowledge in shaping philosophical inquiry, ethical values, social organization and spiritual practices. The findings suggest that the epistemological framework of the Vedas remains relevant to indigenous knowledge traditions and contemporary discourses on knowledge, consciousness and man's well-being.

Keywords: Epistemology, Indian Knowledge System, *Śabda-Pramāṇa, Apauruṣeya,* Spiritual, Contemporary.

Different species and names of snakes in the Paippalādasaṁhitā of the Atharvaveda

Dr. Shilpa Sumant

Introduction

The Saṁhitās of the two Śākhās of the Atharvaveda (AV) Śaunaka (ŚS) and Paippalāda (PS) are available today. There are several hymns for the protection from the snakes or as the remedy against snake poison in both these Saṁhitās. There are some hymns common to both the Saṁhitās, while some are exclusive to each of them.

The snakes appear in the AV Saṁhitās in their natural form except a very few instances where their description is mythical. Different species or names of serpents are found in the AV. The names themselves suggest the characteristics and the outer form of the serpents. The common name for all kinds of species of serpents is *ahi.* It is found passim throughout Vedic literature including both the Saṁhitās of the AV as well as it has continued in the same sense in the classical Sanskrit language. On the other hand, the other generic word *nāga* possessing the sense 'serpent' is not found in the AV Saṁhitās.

This paper studies the names of the snakes found in the PS.

THE ROLE OF MIND, KNOWLEDGE AND EXPERIENCE IN ADVAITA VEDANTA

Athulya

Advaita Vedanta, systematised by Adi Sankaracharya, presents a nondual metaphysical theory in which Brahman alone is real, and the plurality of the world is mithya. This paper examines the interrelation of manas, jnana and anubhava within this framework. According to the Advaita philosophy, the mind is not an independent substance but an instrument; it functions through anthahkarana with its four aspects: manas, buddhi, ahankara and citta. While the mind is inherently limited and a locus of superimposition, through proper and crucial sadhanas such as sravana, manana, and nididhyasana, it is refined and made fit to receive sastra pramana.

Serving as a primary medium of cognition, the mind receives sensory inputs and structures them into empirical knowledge. When the mind attains deep concentration and detaches from sensory distractions, it transcends ordinary thought patterns to align with higher consciousness. The njanam is described as: paroksha jnana and aparoksa jnana. The first one is mediate knowledge derived from scriptures and reasoning, and the second one is immediate conceptual realisation of 'I am Brahman'. The transition from the former to the latter depends on the purification of the mind and is validated not by external proof but by direct experience. Thus Advaita provides the philosophical foundation, and yoga provides the method, together pointing toward the same goal:

attainment of citta shudhi, then through the attainment of pure knowledge, the underlying oneness of true nature is established.

Thus this study establishes that mind, knowledge and experience are not alternatives but sequential stages. By integrating Advaitic epistemology with yogic practice, the paper offers a unified framework relevant for both philosophical study and sadhana.

Fallacy in Dvaita epistemology: dialectics of interpretive methodological techniques

Dr. Srinivasa Kumar N Acharya

The Dvaita philosophers, starting with Ācārya Madhva through their seminal polemics, established a rigorous, realistic epistemological methodology (śāstrānusandhāna-paddhati) within Vedānta. This paper critically examines Dvaita's reorganisation of logical fallacies (hetvābhāsa) and the indigenous dialectical techniques it deploys in philosophical polemics. Synthesising the complex Nyāya taxonomy of twenty-two points of defeat (nigrahasthānas), five fallacies of reason, and twenty-four futile objections (jātis), Dvaita subsumes all inferential and dialectical defects under six foundational nigrahasthānas: Virodha (contradiction), Asaṅgati (incongruity), Nyūna (omission), Adhika (redundancy), Saṃvāda (concession), and Anukti (silence). Unlike Nyāya, Dvaita classifies Bādha, Satpratipakṣa, and Upādhi under Pratijñā-virodha using a distinct classification of the defects of reason. Furthermore, since invariable concomitance (vyāpti) alone governs inference, Āśrayāsiddhi, Aprasiddha-sādhya, and Vyadhikaraṇāsiddhi are declared non-defects (adūṣaṇa) while elaborating on how the earlier said fallacies affect reasoning. Finally, the deployment of Tarka as Dūṣaṇānumāna ("svasiddhaiḥ sādhanaṃ parasiddhair dūṣaṇam"), the redefinition of Jāti as self-contradiction (svavacana-virodha), the protocols of Vāda-Jalpa-Vitaṇḍā, and their application demonstrate Dvaita's enduring contribution to Indian philosophical methodology.

Keywords: epistemology, logic, concomitance, reasoning, dialectics, fallacy, concomitance, methodology

Pedagogy of the Ṛṣis: Knowledge Transmission Through Analogies in the Ṛgveda

Dr. Naveen Bhat

The Ṛgveda, the earliest extant source of the Indian Knowledge Tradition, preserves profound insights into philosophy, ritual, ethics, ecology, and social life. While its linguistic, ritualistic, philosophical, and literary dimensions have been extensively investigated, the pedagogical methodology employed by the Ṛṣis for communicating knowledge has received comparatively little scholarly attention. The present study proposes that the analogies (दृष्टान्ताः/उपमाः) occurring in the Ṛgveda are not merely poetic embellishments but constitute a systematic methodology of knowledge transmission, enabling abstract, subtle, and transcendental concepts to be understood through familiar human experience.

The paper undertakes a textual and interpretative analysis of selected Ṛgvedic mantras, namely "स नः पिता इव सूनवे" (ṚV 1.1.9), "चक्षुरिव" (ṚV 5.54.6), "उस्रा इव" (ṚV 1.3.8), "दिवीव चक्षुः" (ṚV

1.22.20), "यथा पशुम्" (Ṛ.V 1.23.13), and "रेवाङ् इव विश्पतिः" (Ṛ.V 1.27.12), with special reference to the commentary of Sāyaṇācārya. These analogies reveal a conscious pedagogical process whereby the Ṛṣis communicate divine protection through the affection of a father, righteous guidance through the function of the eye, regularity through the unfailing movement of the sun's rays, spiritual realization through unobstructed vision, divine assistance through the recovery of a lost animal, and divine responsiveness through the conduct of a benevolent king. In every instance, the learner is guided from familiar worldly experience to the comprehension of subtle spiritual and philosophical truths.

The study argues that these analogies embody an indigenous pedagogical principle—ज्ञातात् अज्ञातस्य बोधनम् (the communication of the unknown through the known)—which represents a systematic educational strategy embedded in the Ṛgveda. By interpreting these analogies as deliberate instruments of teaching rather than merely literary devices, the paper offers a fresh perspective on Vedic pedagogy and contributes to contemporary discussions on Indian Knowledge Systems, indigenous educational thought, and value-based learning. The present paper is exploratory in nature and analyses selected representative analogies; a comprehensive investigation of Ṛgvedic analogical pedagogy is proposed as a future line of research.

Ṛgvedic Mantra	Dṛṣṭānta	Pedagogical Import
स नः पिता इव सूनवे... (Ṛ.V 1.1.9)	Father–Son	Protection, affection, guidance
चक्षुरिव... (Ṛ.V 5.54.6)	Eye	Direction and right guidance
उस्रा इव... (Ṛ.V 1.3.8)	Sun's rays	Promptness and regularity
दिवीवचक्षुरातताम्...(Ṛ.V 1.22.20)	Vision	Perception of subtle truth
यथा पशुम्... (Ṛ.V 1.23.13)	Lost animal	Recovery through familiar experience
रेवाङ् इव विश्पतिः... (Ṛ.V 1.27.12)	Benevolent king	Divine responsiveness

Keywords: Ṛgveda, Pedagogy, Dṛṣṭānta, Upamā, Knowledge Transmission, Indian Knowledge Systems, Vedic Education, Sāyaṇācārya.

A comparative study of prātiśākhya and vikṛti graṅthas with special reference to krama pātha

Chinmay Pankaj Londhe, Dr. Shweta Jejurkar

The Vedic tradition has two major systems for preserving the correct pronunciation of the Vedas: The Śikṣā-Prātiśākhya texts and the Vikṛti Pāthas. The Prātiśākhyas are treatises that describe the phonetics and grammatical rules of a particular Vedic Saṁhitā and Krama Pātha. The Vikṛtis are eight recitation techniques like Jatā, Ghana, Daṇḍa etc., which apply these grammatical rules in practice. They all contains specific algorithms which is based on primarily on Saṁhitā, Pada Pātha and later on Krama Pātha.

This paper aims to make a comparative study of both systems – Prātiśākhyas & Vikṛti Pātha texts. The study will examine how the phonetic rules given in the Prātiśākhyas are implemented in the Vikṛti recitation. Also, what do the Vikṛti Graṅthas say about Krama and Accentuations (swaras).

The paper will also analyse the purpose of Krama Pātha. While the Prātiśākhya provides the theoretical framework, the Vikṛtis serve as a practical mnemonic device to prevent errors in oral transmission. The study is based on published texts and manuscript sources available.

This comparative approach will help in understanding the complete system of Vedic preservation and the role Krama Pātha. It will highlight the interdependence of Prātiśākhya and Vikṛti literature in maintaining the purity of Vedic recitation. Moreover, variations in Krama Pātha and their formation will be also discussed through this study.

Keywords: Krama Pātha, Pada Pātha, Prātiśākhyas, Śikṣā, Vikṛti

The Metaphysics of Interconnectedness: Advaita Vedānta and Ecocentric Ontology

Gokul S

The present ecological crisis is not only a scientific or economic problem, but also a result of human-centered thinking that places humans above nature. Modern society often treats nature as something separate from human life, which has led to environmental destruction and imbalance. This study examines whether Advaita Vedānta can offer a philosophical basis for ecocentric thinking. It discusses important Advaitic ideas such as Brahman, Ātman, non-duality, and the interconnectedness of all existence in relation to ecocentric ideas found in Deep Ecology. The paper argues that Advaita Vedānta breaks down the strict division between humans and nature by teaching the essential unity of all beings. This non-dual vision can encourage respect for nature, compassion toward living beings, and a sense of ecological responsibility. At the same time, the paper also examines an important criticism of Advaita: the idea of māyā, or the belief that the world is ultimately unreal. Some critics argue that this mayreduce concern for environmental issues. However, this study suggests that Advaita canstill support ecological awareness and ethical care for nature when understood in apractical and relational way.

Keywords : Advaita Vedānta, Deep Ecology, Ecocentrism, Ontology,

Interconnectedness, Non-duality, Environmental Philosophy, Brahman, Ecological Self

ऋग्वेदे नृत्यविषयविचाराः।

Siddhi bhushan wavikar

प्रस्तावना – मानवस्य अभिव्यक्तिः नाना प्रकारेण भवति। तेषु एकं साधनं नृत्यं वा नर्तनम् इति। तालमानरसाश्रयसविलासाङ्गविक्षेपः नृत्यम् इति कथ्यते। अधुना तु नृत्यकला सर्वत्र मन्यते, तस्याः बहवः प्रभेदाः च दृश्यन्ते। भारते नृत्यस्य महती परम्परा बृहन् इतिहासः च वर्तते। संस्कृतसाहित्येषु वेदाद् आरभ्य अर्वाचीनग्रन्थपर्यतं नैके नृत्यसम्बन्धिनः सन्दर्भाः विद्यन्ते। अतः एभिः सन्दर्भैः नृत्ये कालान्तरेण भूयमानं परिवर्तनम् सूच्यते, तथा च नृत्यस्य उपभागाः, तस्य उद्देश्यं, तं प्रति दृष्टिकोणः इत्यादयः विमृश्यन्ते। अस्मिन् शोधनिबन्धे नृत्यम् अन्वीक्ष्य ऋग्वेदे प्राप्ताः सन्दर्भाः समालोक्यन्ते।

शोधपद्धतिः –ऋग्वेदसंहिता संस्कृतसाहित्येषु प्रचीनतमा वर्तते। शाकलशाखायाः संहिताम् अधिकृत्य नृत्यस्य विषये सन्दर्भाः अस्मिन् शोधनिबन्धे विचार्यन्ते। विश्लेषणात्मिकां पद्धतिम् अवलम्ब्य वेदार्थनिर्णायकानां पण्डितानां कृतयः भाष्याणि टीकाः च विचिन्तिताः। यथा – सायणभाष्यम्,

वेङ्कट-महादेवस्य टीका, मॅक्समूलरमहोदयस्य कृतिः, इत्यादयः। तेषां सहायेन ऋचाम् अर्थं सङ्कलय्य तस्य विचारः अस्मिन् शोधनिबन्धे प्रस्तूयते।

उपन्यासः –नृत्यकलाम् अनुसृत्य काश्चित् उपमाः ऋग्वेदे दृश्यन्ते। एताः क्वचिद् इन्द्रसूक्ते (८.२४.९) क्वचिद् उषस्सूक्ते (१.९२.४) क्वचिद् अश्विनसूक्ते (६.६३.५) इत्यादिषु विविधसूक्तेषु विद्यन्ते। तत्र प्रकरणानि अपि भिन्नानि सन्ति। (१०.१८.३) इत्यस्याम् ऋचि नृत्यम् इत्येव जीवनस्य उद्देश्यं वर्तते इति सूचितम्। एषां सर्वेषां सन्दर्भाणां विश्लेषणं कृत्वा नर्तनकला किमर्थमेतावती उपमास्पदा ? तस्याः किं स्थानम् ? किं वा तस्याः महत्त्वम् ? किञ्च तस्याः प्रयोजनम् ? कश्च तस्याः विस्तारः ? इति प्रश्नान् समाधातुं प्रयते।

उपसंहारः –अस्य शोधनिबन्धस्य लक्ष्यं यत् – ऋग्वेदम् अनुसृत्य नृत्यविषये सम्भाव्यदृष्टिकोणः कः, नर्तने कीदृशी प्रवृत्तिः बभूव इत्यस्य अवगमनम्। मन्ये अनेन अध्ययनेन नर्तनकलायाः उद्देश्यं, तस्याः प्रवासस्य कश्चिद् अंशः ज्ञातुं शक्ताः भवेम इति।

Keywords:-[ऋग्वेदः]; [वेदः]; [नृत्यम्]; [नर्तनम्]; [नृत्यसन्दर्भाः]; [कला];

आज्यपशुपद्धति - सोमयज्ञानां सञ्जीवनी ।

Sharvari Nitin Erande

प्राचीनकाले पश्वालम्भनम् इति पशुयज्ञानाम् सोमयज्ञानाम् च अविभाज्यः घटकः । कालान्तरेण, जैन-बौद्ध-परम्पराभ्यां तथा पौराणिकैः अहिंसायाः पुरस्कारं कृत्वा पश्वालम्भनं निन्दितम् । परिणामतः सोमयागानां प्रति सामाजिकः तथा नैतिकविरोधः सञ्जातः ।

श्रौतपरम्परायाः पुनरुत्थानाय वैकल्पिकाः अपशुपद्धतयः (यथा- पिष्टपशुपद्धतिः) अङ्गीकृताः । तासु आज्यपशुविधिः एकः महत्त्वपूर्णः विकल्पः । अस्मिन् विधौ आज्येन पूर्णः घटः यज्ञीयपशोः प्रतीकरूपेण स्थाप्यते । अस्मिन् शोधकार्ये आज्यपशुपद्धत्याः उदयाय कारणीभूतानां वैचारिकानां सांस्कृतिकानां च तत्त्वानां विवेचनं क्रियते। तस्मिन् पश्वालम्भनस्य पुनर्व्याख्या, वेदोत्तरकाले अहिंसायाः समर्थनं, पशुवधे परिवर्तमानाः सामाजिकदृष्टयः च प्रमुखाकारणानि वर्तन्ते । अपशुविधीनां विकासस्य इतिहासः अपि अत्र दृश्यते । तस्मिन् आज्यपशुपद्धत्याः आद्यप्रयोगे स्थापने च श्रौताचार्य-धुण्डिराजदीक्षित-बापटमहोदयस्य आहिताग्नि-रङ्गनाथदीक्षित-सेलूकरमहोदयस्य च योगदानमपि विशदीकृतम् ।

आज्यस्य पशुप्रतीकत्वेन औचित्यं तस्य यज्ञीय प्रतीकात्मकता च शतपथब्राह्मणादिभ्यः ग्रन्थेभ्यः परीक्षिता। आज्यं इति देवतानां प्रियं आहुतिद्रव्यं । (आज्यं भवत्येतद्वै जुष्टं देवानां यदाज्यं तज्जुष्टमेवैतद्देवेभ्यः करोति तस्मादुभयत आज्यं भवति – शतपथब्राह्मणम् १.७.२.१०) अपि तु एतद् अयातयामम्- नाम अक्षय्यद्रव्यं वर्तते (.. ब्रह्मवादिनो वदन्ति कस्मात् सत्याद् यातयामान्य् अन्यानि हवीꣳष्य् अयातयामम् आज्यम् इति ।- तैत्तिरीय संहिता २.६.३.१) अतैव क्षय्यपशुप्रतीकत्वेन एतद् उचितं द्रव्यम् ।

आपस्तम्बश्रौतसूत्रेण प्रतिपादितेन पशुयागविधिना सह नवोदित-आज्यपशुविधेः तौलनिकम् अध्ययनम् अत्र महत्त्वपूर्णं। प्रत्येकं पशुत्वेन निर्दिष्टं विधिम् आज्यघटत्वेन प्रतिपादितम् । उदाहरणार्थं छाग इति पशोः यूपनियोजने एका रशना तस्य दक्षिण-अग्रपादे तथा मस्तकस्य दक्षिणार्धे बध्यते (आपस्तम्बश्रौतसूत्रम् ७.१३.८), किन्तु आज्यपशुपद्धत्यां एषा रशना आज्यघटस्य ग्रीवायां बध्यते ।

अस्मिन् शोधकार्ये, व्याख्यात्मकगुणात्मकपद्धतिम् (Explanatory and Quantitative Research) अवलम्ब्य वैदिकग्रन्थानां पाठविश्लेषणं, विद्वत्साहित्यस्य अध्ययनम्, याज्ञिकैः आचार्यैः च सह परामर्शः, सोमयागस्य प्रत्यक्षानुभवः च एते निकषाः समन्विताः। श्रौतयागपरम्परायाः सातत्यं पुनर्निर्माणं वा इत्यस्मिन् विषये वर्तमानं विद्वत्विमर्शम् अपि अध्ययनमिदं परिगणयति। तथा च आज्यपशुविधेः व्यापकसमुदाये यज्ञीयसहभागितायां जातः प्रभावः अपि लक्षितम्।

अध्ययनस्य निष्कर्षरूपेण प्रतिपाद्यते यत् श्रौतयज्ञपरम्परा न हठशीला, किन्तु परिवर्तमानया तत्त्वप्रणाल्या सह परिवर्तनाशीला । आज्यपशुपद्धतिः इति महत्त्वपूर्णः नैतिकः अनुकूलनात्मकः विकासः यतः एषः अहिंसायाः परिवर्धमानं नैतिकमहत्त्वं स्वीकृत्य श्रौतयज्ञपरम्परायाः सातत्यं निश्चिनोति। विशेषतया महाराष्ट्रप्रदेशे एषा पद्धति श्रौतयज्ञपरम्परायाः पुनरुज्जीवने संरक्षणे च महत्त्वपूर्णयोगदानरूपेण दृश्यते ।

Keywords:-श्रौतयज्ञपरम्परा; पशुयज्ञः; पश्वालम्भनम्; अहिंसा; आज्यपशुपद्धतिः

छान्दोग्यज्ञानमीमांसा मनःस्वरूपं च।

डा. गायत्री देवी जी.

भारतीयदार्शनिकपरम्परायां आध्यात्मिकज्ञानस्य मानसशास्त्रीयबोधस्य च परस्परसंबन्धः अत्यन्तं गाढतया चर्च्यते। तत्र प्राचीनतमासु प्रमुखासु च उपनिषत्सु अन्यतमा वर्तते छान्दोग्योपनिषत्। सा च सामवेदसंबद्धा तत्त्वमसीति महावाक्यबोधिका चेति लोकविदितमेव। पाश्चात्त्यदर्शने ज्ञानमीमांसा (Epistemology) मानसशास्त्रं (Psychology) च भिन्नविषयत्वेन गण्येते, किन्तु उपनिषत्सु एते उभे अपि समग्रस्यात्मबोधस्य प्रक्रियात्वेनैव पश्येते। अयं प्रबन्धः छान्दोग्योपनिषदवलम्ब्य ज्ञानस्य विविधतलानां मनसो रूपीकरणस्य च सूक्ष्मविचारं करोति। अत्र छान्दोग्यस्य षष्ठं सप्तमं च अध्याययोः विषयान् स्वीकृत्य विचारः प्रवर्तते।

ज्ञानमीमांसादृष्ट्या, सनत्कुमार-नारदसंवादम् अधिकृत्य अपराविद्यायाः (लौकिकज्ञानात्) पराविद्यां (आत्मज्ञानम्/भूमा) प्रति ज्ञानस्य यः विकासः भवति, सः अत्र विश्लिष्यते। केवलात् विषयात्मकज्ञानात् परम् अपरोक्षानुभूतिरूपं परमज्ञानं कथं लभ्यत इति अनेन व्यक्तीभवति। मानसशास्त्रीयदृष्ट्या च, *"अन्नमयं हि सोम्य मनः"* इति तत्त्वमनुसृत्य भौतिकाहारस्य मनसो सूक्ष्मरूपीकरणस्य च यः सम्बन्धः अस्ति, तम् उद्दालक-श्वेतकेतुसंवादमाध्यमेन इह विचार्यते। अपि च, इन्द्र-विरोचनसंवादे वर्णितः अवस्थात्रयविचारः (जाग्रत्-स्वप्न-सुषुप्ति-अवस्थाः) मानवचैतन्यस्य विविधतलेषु आधुनिकमानसशास्त्रीयचिन्तनावलीसम्पृक्ततया प्रकटीकरोति।

ज्ञानमार्गे मनसो बोधस्य च सूक्ष्मविनिमयं विचार्य आधुनिकशास्त्रपठनेषु तत्कथं योजनीयः इति अनुसन्धानाय अयं परिश्रमः।

मुख्यपदानि (Keywords): छान्दोग्योपनिषत्, ज्ञानमीमांसा, मानसशास्त्रम्, पराविद्या-अपराविद्या, भूमा, अन्नमयं मनः, अवस्थात्रयम्, बोधतलानि।

Vedāntic Concepts of Selfhood in Theyyam

Adithya P

This article explores Vedāntic ideas of selfhood in Theyyam, a prominent ritual art tradition of North Malabar in Kerala. Although Theyyam is commonly approached as a folk ritual and cultural performance, this study investigates its deeper philosophical significance through the framework of Advaita Vedānta. The paper argues that the ritual process in Theyyam represents a transformation from ordinary personal identity to sacred identity, echoing Vedāntic concepts such as Ātman, non-duality, and the dissolution of ego-consciousness. Through ritual practices including costume, dance, trance, and divine possession, the performer transcends individual identity and becomes a medium of divine presence. The study also considers the social dimension of Theyyam, particularly the way performers from marginalized communities assume divine status within the ritual context, temporarily transcending social hierarchies. By interpreting Theyyam through Vedāntic perspectives, the article shows how philosophical understandings of selfhood are expressed not only in classical texts but also in living ritual traditions. Using a philosophical and interpretive method, the study brings together Advaita Vedānta and ritual performance studies to examine sacred embodiment in North Malabar culture.

Keywords - Theyyam, Advaita Vedānta, Selfhood, Ātman, Non-duality, Ritual performance, Sacred embodiment, North Malabar.

A Comparative Study of the Etymologies of Names of Water in Vedic Literature and Nirukta

Mr. Prathamesh Chintamani Bivalkar

Nirukta of Yāska is widely known for laying a foundation for the science of etymology. However, it is essential to understand that, though Yāska established a particular system of etymology, the idea was prevalent in the Vedic literature from the start. The hymns from the Saṃhitās, the Brāhmanas and other texts provide etymologies of the words. Hence, it is essential to compare the structure and the reasoning provided behind these etymologies in ancient Vedic literature and the Nirukta, and note any differences, if present.

In the oldest Vedic Lexicon, the Nighaṇṭu, has provided one hundred and one names of 'Water' present in the Vedic Saṃhitās. Also, most of these words are explained in the Nirukta with detailed etymologies. Hence, this research paper focuses on the selective names of 'Water' taken from this list provided by the Nighaṇṭu, and comparison of their etymologies in various Vedic Texts. The study observes the similarities and differences in the etymologies of the words, to discover various shades of meanings attached to it.

Keywords-:

Vedic Literature, Nirukta, Vedic etymology, Names of Water, Saṃhitās, Brāhmanas

ज्योतिषशास्त्रदृष्ट्या शूलरोगस्य विश्लेषणम्

जङ्गम शिवकुमारः

अस्माकं भारतीयसंस्कृतौ एवं प्रोक्तं यत् "शरीरमाद्यं खलुधर्मसाधनम्" युक्तं च नाम एतत् । "खलु यस्माच्छरीरमाद्यं धर्मसाधनम् । धर्मस्तु कायेन वाचा बुद्ध्या धनादिना च बहुभिः साध्यते तेषु च वपुरेव मुख्यसाधनं, सति देह धमार्थकाममोक्ष लक्षणाश्चतुर्वगाः साध्यन्ते । अत एव 'सततमात्मानमेव गोपयीत इति श्रुतिः"। अतः वपुरेव मुख्यसाधनम् । शारीरीकस्वास्थ्यस्य रक्षणं कर्तुं रोगानां निवारणम् अत्यावश्यकम् । रोगानां निवारणे अस्माकं भारतीयज्ञानपरम्परा आधुनिकविज्ञानं च समर्थमस्ति । परन्तु रोगानां निवारणं तदा एव त्वरया भवति यदा प्रारम्भिक स्तरे तस्य निदानं क्रियते ।

किन्तु ज्योतिषशास्त्रे उक्तं यत् रोगोपत्तेः प्रागेव निवारणं कर्तुं शक्यते इति। अर्थाज्जातकस्य परिशीलनं कृत्वा रोगाः प्रारम्भिककाले कदा भवितुमर्हन्ति इत्यस्मिन् विषये स्पष्टरूपेण ज्ञायते यथा जन्मबाल्यकौमारयौवनवार्धक्यमृत्युः इति जीवनचक्रे रोगः इत्येकः घटनाक्रमः वर्तते । जीवनचक्रे जनानां कृते विभिन्नाः रोगाः भवन्ति । तेष्वेकः "शूलरोगः" इति । अस्य आङ्ग्लभाषायां "Ulcer" इति नाम्ना ज्ञायते । अस्मिन् शोधपत्रे शूलरोगस्य ज्योतिषशास्त्रदृष्ट्या विश्लेषणं कृत्वा अस्य रोगस्य मूलकारणं ज्ञातुं शक्यते। अनेन माध्यमेन वयं शूलरोगस्य मूलकारणं ज्ञात्वा तस्य परिष्कारः एवञ्च शरीरस्य रक्षणं कर्तुं समर्थो भवामः।

कुञ्चिक पदानि (keywords **):-**शूलरोग, स्वास्थ्यरक्षणं,ज्योतिषशास्त्रम्, भारतीयज्ञानपरम्परा।

Dayananda Saraswati and Women's Empowerment: A Critical Study of His Progressive Thought and Socio-Religious Contributions

Manabendu Sarkar

Dayananda Saraswati was a distinguished Vedic scholar, philosopher, and founder of the Arya Samaj. Through his progressive socio-religious reform movement, he initiated a comprehensive campaign against superstition, religious dogmatism, gender discrimination and harmful social customs. His reformist programme was guided by the principle of 'Back to the Vedas.' Through this principle, he sought to restore what he regarded as the rational and egalitarian foundations of ancient Vedic society. A central feature of his social thought was the restoration of women's rights to education, intellectual development, moral agency, and participation in public life. He rejected the orthodox interpretation of the phrase *strī-śūdra dvījavandhunāṁ trayī na śrutigocarā*, which had been used to deny women and lower social groups access to scriptural (Vedic) learning. Drawing upon the Vedas, the teachings of ancient sages, and his works such as *Satyārthaprakāśa*, *Saṁskāra-vidhi*, *Upadeśamañjarī*, *Vyavahārabhānu* and *Vedabhāśyam*, Dayananda argued that women had the same fundamental right as men to acquire knowledge and study the Vedas.

This paper also analyses his criticism of child marriage, pre-arranged and forced marriages, unsuitable marital alliances and forced widowhood. He asserted that marriage should take place only after the physical and mental maturity of both partners and should be based on mutual consent, compatibility, and shared responsibility. By citing examples of female seers such as Gārgī, Sulabhā, Maitreyī and Kātyāyanī, he refuted the belief that intellectual and spiritual achievement belonged exclusively to men. Thus, Dayananda's reformist vision sought to improve the status of women by combining Vedic principles with social reform and educational empowerment.

Keywords: Swami Dayananda Saraswati, Arya Samaj, women's empowerment, Vedic education, child marriage, *Svayamvara*, female education, social reform.

'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' से आत्मनिर्भर भारत तक : वैदिक दृष्टि से राष्ट्र-निर्माण के प्रतिमानों का अध्ययन।

प्राची ठाकुर

परिचय : वेद भारतीय ज्ञान परंपरा के आधार स्रोत हैं इनमें जगत् की उत्पत्ति, स्थिति, लय, समाज, राष्ट्र, धार्मिक एवं आध्यात्मिक चेतना और विश्व कल्याण आदि से संबंधित सभी विषयों का व्यापक रूप से प्रतिपादन किया गया है। वैदिक साहित्य में व्यक्ति के उत्कर्ष को समाज और राष्ट्र के उत्कर्ष से पृथक् न मानते हुए सामूहिक-कल्याण एवं उन्नति की भावना को विशेष महत्व दिया गया है तथा राष्ट्र को केवल भौगोलिक सीमा अथवा राजनीतिक व्यवस्था न मानकर समान सांस्कृतिक चेतना, सामूहिक उत्तरदायित्व, परस्पर सहयोग, कर्तव्य-बोध, एवं लोकमंगल की भावना से निर्मित एक जीवंत व्यवस्था के रूप में परिलक्षित किया जाता है। प्रस्तुत अध्ययन राष्ट्र निर्माण के वैदिक प्रतिमानों पर केंद्रित है

कार्यप्रणाली : प्रस्तुत शोध-पत्र में वैदिक साहित्य में प्रतिपादित राष्ट्र-चिंतन का विश्लेषणात्मक एवं व्याख्यात्मक अध्ययन किया जाएगा तथा इसकी प्रासंगिकता को वर्तमान संदर्भ में आत्मनिर्भर भारत की संकल्पना से संबद्ध करते हुए उसकी समग्र दृष्टि एवं समकालीन संदर्भ का विवेचन किया जाएगा।

डेटा : वैदिक चिंतन में राष्ट्र निर्माण की आधारभूमि मानव के चरित्र, ज्ञान, कौशल, परार्थभाव तथा राष्ट्र के प्रति उत्तरदायित्व जैसे प्रमुख तत्वों से निर्मित होती है। ऋग्वेद का प्रसिद्ध उद्घोष **'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्'** मनुष्य एवं समाज को श्रेष्ठता, उन्नति और सृजनात्मक परिवर्तन की ओर अग्रसर होने की प्रेरणा प्रदान करता है तथा व्यक्ति के सर्वांगीण विकास के साथ-साथ समाज और राष्ट्र की उन्नति का भी मार्ग प्रशस्त करता है।

निष्कर्ष : वैदिक साहित्य में निहित राष्ट्रधर्म, सामाजिक उत्तरदायित्व एवं लोक कल्याण के प्रतिमान, राष्ट्र को न केवल भौतिक अथवा आर्थिक प्रगति ही प्रदान करते हैं अपितु ज्ञान, संस्कृति, सामाजिक चेतना, आदि से युक्त एक श्रेष्ठ सशक्त एवं समुन्नत सभ्यता के रूप में प्रतिष्ठित करते हैं। इस प्रकार वैदिक साहित्य में निहित राष्ट्रोन्नति एवं लोकमंगल की व्यापक दृष्टि कृण्वन्तो विश्वमार्यम् की उदात्त भावना को समकालीन राष्ट्र के सर्वांगीण विकास हेतु सुदृढ़ आधार प्रदान करता है।

Keywords: कृण्वन्तो विश्वमार्यम्, भारतीय वैदिक ज्ञान-परम्परा, राष्ट्र-निर्माण, आत्मनिर्भर-भारत, राष्ट्रधर्म, लोककल्याण, सामाजिक उत्तरदायित्व

CONTENT ANALYSIS OF PRAMEYARATNAVALI

Revathy.B

Prameyaratnavali is an important philosophical treatise written by Baladeva Vidya Bhushan, one of the leading scholars of the Gaudiya Vaishnava tradition. The treatise presents the basic tenets of Achintya-Bhedabhed-Vedanta in a clear and systematic manner. It establishes the foundation of Gaudiya Vaishnava philosophy with the support of evidence and logic, and also explains the relationship between Brahman, Jeeva, Jagat, Maya, Bhakti and Moksha. The aim of this study is to critically examine the philosophical ideas in the Prameyaratnavali and assess their significance in the broader Indian philosophical tradition. It analyses the structure, presentation and doctrines of the text, with special emphasis on its commentary on Vedanta. In order to understand the unique contributions of Baladeva Vidyabhushan and the unique nature of the philosophy of Achintya-Bhedabhedha, this study compares some of its ideas with other major Vedanta systems - especially Advaita Vedanta. The aim of this study is to critically examine the philosophical ideas in the Prameyaratnavali and assess their significance in the broader Indian philosophical tradition. It analyses the structure, presentation and doctrines of the text, with special emphasis on its commentary on Vedanta. In order to understand the unique contributions of Baladeva Vidyabhushan and the unique nature of the philosophy of Achintya-Bhedabhedha, this study compares some of its ideas with other major Vedanta systems - especially Advaita Vedanta. The methods of textual, descriptive, comparative and analytical research are adopted in this research. The primary sources are Prameyaratnavali, Govindabhashyam and other works of Baladeva Vidyabhushan; books, research articles and scholarly studies on Gaudiya Vaishnava philosophy and Vedanta are also used as secondary sources. The study examines this text in historical,

theological and philosophical contexts. This study highlights the importance of Prameyaratnavali as a concise yet profound philosophical treatise that systematically presents the theological and metaphysical principles of the philosophy of Achintya-Bhedabheda. It demonstrates the continuing relevance of this work in contemporary studies of Vedanta and Indian philosophy, and its contribution to the dialogue between different philosophical systems. This research helps to develop a deeper understanding of Baladeva Vidyabhushan's philosophical outlook and his important place in the history of Indian intellectual tradition.

Keywords: Baladeva Vidhyabhushana , Prameyaratnavali , Achintya-Bhedhabhedha, Advaita Vedanta, Bhakti

पञ्चतन्त्र की कथाओं में बुद्धि, चातुर्य एवं नैतिक औचित्य का अन्तर्द्वन्द्व : एक समीक्षात्मक अनुशीलन

डॉ. राहुल कुमार

संस्कृत नीतिसाहित्य में पञ्चतन्त्र का विशिष्ट स्थान है। इसमें कथाओं के माध्यम से व्यावहारिक बुद्धि, चातुर्य, विवेक तथा नीतिपरक आचरण के विविध पक्षों का प्रतिपादन किया गया है। पञ्चतन्त्र की कथाएँ केवल सदाचार एवं नैतिक मूल्यों का उपदेश नहीं देतीं, अपितु जीवन की जटिल परिस्थितियों में बुद्धि और चातुर्य के प्रयोग से उत्पन्न नैतिक प्रश्नों को भी उद्घाटित करती हैं। अनेक कथाओं में पात्र अपनी बुद्धि एवं व्यवहारकुशलता से संकटों का समाधान करते हैं, जबकि कुछ पात्र उसी चातुर्य का प्रयोग छल, कपट, विश्वासघात तथा स्वार्थसिद्धि के लिए करते हैं। ऐसी परिस्थितियों में बुद्धि की व्यावहारिक सफलता और उसके नैतिक औचित्य के मध्य अन्तर्द्वन्द्व उत्पन्न होता है।

प्रस्तुत शोधपत्र का प्रमुख उद्देश्य पञ्चतन्त्र की चयनित कथाओं में बुद्धि एवं चातुर्य के विविध प्रयोगों का विश्लेषण करते हुए उनके नैतिक औचित्य का परीक्षण करना है। अनुसन्धान की पद्धति मुख्यतः पाठविश्लेषणात्मक, तुलनात्मक एवं समीक्षात्मक है। इसके अन्तर्गत मित्रभेद, लब्धप्रणाश तथा अन्य प्रासंगिक तन्त्रों की कथाओं को आधार बनाकर पात्रों के आचरण, निर्णय तथा उनके परिणामों का विवेचन किया गया है।

चयनित कथाओं के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि पञ्चतन्त्र में बुद्धि एवं चातुर्य का मूल्यांकन केवल उनकी सफलता से नहीं, अपितु उनके उद्देश्य, साधन एवं परिणाम के आधार पर भी किया जाना चाहिए। आत्मरक्षा, लोककल्याण एवं स्वार्थसिद्धि के लिए प्रयुक्त युक्तियाँ भिन्न नैतिक प्रश्न उत्पन्न करती हैं। निष्कर्षतः पञ्चतन्त्र व्यावहारिक कुशलता एवं नैतिक उत्तरदायित्व के अन्तःसम्बन्ध को स्पष्ट करते हुए परिस्थितियों के अनुरूप विवेकपूर्ण निर्णय तथा उसके नैतिक परिणामों पर विचार करने की प्रेरणा देता है।

बीजशब्द : बुद्धि एवं चातुर्य; छल; नैतिक औचित्य; नीतिसाहित्य, मित्रभेद

नीतिशतकम्' में प्रतिपादित सामाजिक आचरण संबंधी विचारों का विश्लेषण

Swaroop Milind Kane

प्रस्तुत शोधपत्र में भर्तृहरि प्रणीत नीतिशतकम्' में प्रतिपादित सामाजिक आचरण संबंधी विचारों का विश्लेषण किया गया है। नीतिशतक केवल नीतिपरक उपदेशों का ग्रंथ न होकर व्यक्ति, समाज और सामाजिक जीवन के विभिन्न पक्षों का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत करता है। इसमें सदाचार, विनय, सत्य, दया, परोपकार, मैत्री, विद्या, सज्जनता, कर्तव्यबोध तथा लोकहित जैसे मानवीय मूल्यों को सामाजिक जीवन की आधारशिला माना गया है। इसके साथ ही दुर्जनों का स्वभाव, लोभ, अहंकार, स्वार्थ, असत्य तथा कुसंगति के दुष्परिणामों का भी विवेचन प्राप्त होता है। प्रस्तुत अध्ययन में नीतिशतक के श्लोकों के आधार पर यह स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है कि भर्तृहरि ने आदर्श सामाजिक आचरण के लिए व्यक्ति के नैतिक एवं चारित्रिक विकास को विशेष महत्त्व दिया है। आधुनिक सामाजिक परिस्थितियों के संदर्भ में नीतिशतक में निहित इन विचारों की प्रासंगिकता का भी विश्लेषण किया गया है। इस प्रकार यह शोध नीतिशतक में अभिव्यक्त सामाजिक मूल्यों एवं आदर्श आचरण की अवधारणा को समकालीन दृष्टि से समझने का प्रयास है।

नीतिशतकम्, भर्तृहरि, सामाजिक आचरण, सदाचार, नैतिक मूल्य, लोकहित, परोपकार, सज्जनता, दुर्जनता, कर्तव्यबोध, सामाजिक मूल्य, मानव-मूल्य।

Narrativity as a Paradigm of Knowledge Dissemination: Rethinking Śrīmad Bhagavad Gītā as a Performed Text

Dr. Rajasi Chakrabarti

Śrīmad Bhagavad Gītā has been treated as a seminal text within the Indian intellectual and religious tradition and has generated an extensive body of commentaries, glosses, interpretations, and translations. At the same time, the *Gītā* occupies an important place in the life of common people in India, providing an ideological and ethical pedestal and shaping moral values. While scholars and educated people historically accessed the text through handwritten manuscripts and, later, through the print medium, common people have primarily encountered the text through oral practices such as *Gītā Pāṭha*, public *Gītā* recitals, and *Kathā- Pravacana* sessions etc.

This paper explores the relationship between the textual structure of the *Gītā* and the modes through which its knowledge has been disseminated among the wider population. The *Gītā*, though apparently presented as a dialogue between Kṛṣṇa and Arjuna, is a multilayered text consisting of multiple narrative frames and a chain of narrators. The multilayered narrative structure of the text finds a parallel in the oral and performative traditions through which the *Gītā* continues to reach its audience.

The paper argues that the dissemination of the knowledge embedded in the *Gītā* has remained closely associated with narration, listening, recitation, and performance. The emergence of print culture did not bring about a fundamental shift in this practice. The narrative structure, intertextuality, repetition, audience participation, and musicality of the text contribute to its accessibility and continued reception through oral performance. The paper concludes that *Śrīmad Bhagavad Gītā*, as a text, continues to be encountered and experienced more through performance than through reading.

Keyword: Śrīmad Bhagavad Gītā; Narrativity; Oral Performance; Knowledge Dissemination; Indian Knowledge System.

Exploring the Vibhakti Kṛti-s of Muthuswami Dikshitar and Their Potential for Sanskrit Learning

Dharma Thobhani and Dr. P Nirmal Harish

This paper examines the Vibhakti Kṛti-s of Muthuswami Dikshitar from the perspective of Sanskrit language learning and Indian knowledge systems. The study analyses 40 Vibhakti refers to the grammatical case of a noun or nominal expression, indicating its relationship with other elements in a sentence. Sanskrit traditionally recognises eight cases: prathamā, dvitīyā, tṛtīyā, caturthī, pañcamī, ṣaṣṭhī, saptamī, and sambodhana.

selected compositions from five groups associated with Guruguha, Tyāgarāja, Kamalāmbā, Abhayāmbā, and Nīlotpalāmbā. The corpus focuses on deity-referential expressions occurring in

the designated vibhakti, with each expression analysed according to its base word or stem, grammatical form, gender, number (singular, dual, or plural), sandhi, samāsa, and meaning. Particular attention is given to grammatical forms that require contextual interpretation. The analysis shows that the selected compositions present Sanskrit grammar through complete devotional and literary expressions. The Vibhakti Kṛti-s can serve as supplementary contextual material for learning vibhakti, inflection, sandhi, samāsa, Sanskrit vocabulary, and textual meaning. They also provide a setting for studying Sanskrit in relation to Carnatic music and the wider knowledge traditions reflected in Dikshitar's compositions. The study identifies the pedagogical potential of these compositions for Sanskrit education and provides a basis for further research on Dikshitar's sāhitya as a culturally situated resource within an Indian knowledge systems perspective.

Keywords: Muthuswami Dikshitar, Vibhakti Kṛtis, Sanskrit Learning, Indian Knowledge Systems, Carnatic Music

संस्कृत एवं शास्त्रीय भाषाएँ : भारतीय ज्ञान-परम्परा के संरक्षण एवं संवर्धन में भूमिका

गौतम अधिकारी,

भारतीय ज्ञान-परम्परा (IKS) वेद, दर्शन, आयुर्वेद, गणित, खगोल, व्याकरण एवं कला जैसे विविध क्षेत्रों में समृद्ध रही है। इस परम्परा का मूल आधार संस्कृत तथा पालि, प्राकृत, तमिल जैसी शास्त्रीय भाषाएँ हैं, जिनमें ज्ञान का सृजन, संरक्षण और संचरण हुआ है। वर्तमान समय में इन भाषाओं के घटते प्रयोग से यह ज्ञान-सम्पदा संकट में है। इस शोध-पत्र का उद्देश्य संस्कृत एवं शास्त्रीय भाषाओं की भूमिका का विश्लेषण करना तथा संरक्षण-संवर्धन के उपायों को रेखांकित करना है। यह अध्ययन वर्णनात्मक एवं विश्लेषणात्मक पद्धति पर आधारित है। प्राथमिक स्रोत के रूप में वैदिक, शास्त्रीय एवं बौद्ध-जैन ग्रन्थों तथा पाण्डुलिपियों का, और द्वितीयक स्रोत के रूप में आधुनिक शोध-ग्रन्थों, राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 एवं संस्थागत प्रयासों का अध्ययन किया गया है। मौखिक परम्परा, पाठ-शुद्धि तथा पाण्डुलिपि-संरक्षण की प्रक्रियाओं का तुलनात्मक मूल्यांकन भी किया गया।

अध्ययन से ज्ञात होता है कि संस्कृत की सुव्यवस्थित व्याकरणिक संरचना तथा मौखिक परम्परा ने सहस्राब्दियों तक ज्ञान को अविकल रूप में सुरक्षित रखा। शास्त्रीय भाषाओं ने दार्शनिक, वैज्ञानिक और साहित्यिक चिन्तन को सातत्य प्रदान किया। साथ ही, पाण्डुलिपियों का अप्रकाशित रहना, पारम्परिक पाठशालाओं का क्षीण होना तथा भाषा-प्रशिक्षित विद्वानों की कमी प्रमुख चुनौतियाँ पाई गईं। डिजिटलीकरण, कम्प्यूटेशनल भाषाविज्ञान और AI-आधारित उपकरणों में संस्कृत की उपयोगिता उल्लेखनीय रूप से उभरी है। भारतीय ज्ञान-परम्परा का संरक्षण केवल ग्रन्थ-संग्रह से सम्भव नहीं, बल्कि जीवित भाषा-प्रयोग से ही सम्भव है। इसके लिए पाठ्यक्रमों में संस्कृत एवं शास्त्रीय भाषाओं का समावेश, पाण्डुलिपियों का डिजिटलीकरण, गुरुकुल-परम्परा का आधुनिक शिक्षा से समन्वय तथा अन्तःविषयक शोध आवश्यक है। विश्वविद्यालयों एवं शोध-संस्थानों के सहयोग से यह परम्परा वैश्विक स्तर पर पुनः प्रतिष्ठित हो सकती है। निष्कर्षतः, संस्कृत एवं शास्त्रीय भाषाएँ भारतीय ज्ञान-परम्परा की आत्मा हैं, जिनका संवर्धन राष्ट्रीय सांस्कृतिक दायित्व है।

कूटशब्द: संस्कृत, शास्त्रीय भाषाएँ, भारतीय ज्ञान-परम्परा, पाण्डुलिपि, संरक्षण, डिजिटलीकरण

गर्भाधान-पुंसवन-सीमन्तोन्नयनसंस्काराणां वैज्ञानिकतत्त्वानुचिन्तनम्

डॉ. हरिपद वेरा

• Research Parameters (Introduction):

भारतीयसंस्कृतेः षोडशसंस्काराः न केवलं कर्मकाण्डरूपाः, अपितु मानवाभ्युदयस्य वैज्ञानिकी पद्धतिः वर्तते। अस्मिन् शोधपत्रे षोडशसंस्कारेषु गर्भाधान-पुंसवन-सीमन्तोन्नयन-संस्काराणां वैज्ञानिकं महत्त्वं मुख्यतया आधुनिकभ्रूणविज्ञानं (Embryology), आनुवंशिकीं (Genetics), तथा उपरि-वंशाणुक-शास्त्रम् (Epigenetics) आधृत्य समालोचितम् अस्ति। गर्भात् पूर्वं पित्रोः काय-चित्त-विशुद्धिः, भ्रूणाभिवृद्धौ औषधीयनासाकर्मणः प्रभावः, तथा मातुः मानसिकस्वास्थ्यस्य शिशोः नाडी-मस्तिष्क-विकासेन सह आन्तरिक-सम्बन्धः — एते सर्वे विषयाः अत्र विश्लेषिताः सन्ति।

• Methodology:

अस्मिन् अनुसन्धाने चरक-सुश्रुत-काश्यप-संहितादीनाम् आयुर्वेदग्रन्थानां, गृह्यसूत्राणां, वैदिकानां च सन्दर्भाणां तुलनात्मकं सूक्ष्मपरीक्षणं विहितम्। प्राच्यशास्त्रीयविधीनां समीक्षणम् आधुनिकचिकित्साशास्त्रस्य 'Trans-nasal Drug Delivery System', 'Prenatal Mental Health', 'Fetal Programming', तथा 'Epigenetic Gene Expression' इत्यादिभिः आधुनिक-वैज्ञानिक-सिद्धान्तैः सह सम्बद्धं कृत्वा निबद्धम्।

• Data & Findings: अध्ययनेन एतत् प्रकाशितं यत् गर्भाधानपूर्वं क्रियमाणः आहार-विहार-नियमः (Pre-conception Care) वंशाणूनां दोषान् शमयति। पुंसवनसंस्कारे वटशुङ्गरसस्य नासिकापुटे सेचनं नासामार्गेण साक्षात् मस्तिष्कस्य 'Hypothalamus' तथा 'Pituitary' ग्रन्थिद्वयं प्रभावयति, येन दुर्बल-वंशाणवः सुप्ताः, श्रेष्ठ-वंशगुणाश्च सक्रियाः जायन्ते। सीमन्तोन्नयने क्रियमाणं केशोन्नयनं, नादचिकित्सा (Music Therapy) च गर्भिण्याः तन्त्रिकातन्त्रं प्रबोध्य भ्रूणस्य 'Peak Neurogenesis' काले संज्ञानात्मकविकासं संवर्धयति

• Conclusion: निगमनतः एतत् सिद्धं भवति यत् एते संस्काराः केवलं धार्मिकपरम्पराः न सन्ति, अपितु एकस्य सुदृढस्य, बुद्धिमत्तः, सुसम्पन्नस्य समाजस्य निर्माणाय 'गर्भकालिकतन्त्रज्ञानम्' (Prenatal Engineering) इव कार्यं कुर्वन्ति। आधुनिकचिकित्साशास्त्रेण सह एतेषां प्राचीनसंस्काराणां समन्वयः अद्यत्वे मानवाभ्युदयाय सर्वथा अनिवार्यः प्रासंगिकश्च वर्तते।

Keywords: संस्काराः; गर्भाधानम्; पुंसवनम्; सीमन्तोन्नयनम्; उपरि-वंशाणुक-शास्त्रम् (Epigenetics); नासामार्गीय-औषध-प्रापण-तन्त्रम् (Trans-nasal Drug Delivery); गर्भकालिकमनोविज्ञानम् (Prenatal Psychology)

भवभूति विरचित उत्तररामचरितम् नाटक में पर्यावरणीय नारिवाद

डॉ. अंजली जोशी

पर्यावरणीय नारीवाद यह आधुनिक संकल्पना का उपस्थापन इ. स. 1970 में फ्रेंकोइज डिबोन्ने नामक फ्रेंच विचारवंत व्दारा किया गया । यह एक पाश्चात्य विचारधारा है । भारत में भी वंदना शिवा, बीना अग्रवाल जैस प्रगतिशील नारियों द्वारा यह विचारोंका स्वीकार किया गया । वैश्विक स्तर पर परिसंवाद - चर्चासत्र इत्यादी व्दारा इस विषयक गहन चिंतन हुआ तथा कुछ निष्कर्ष निकाले गये । इसके अनुसार महिला और पर्यावरण को एक संसाधन मानकर समाजव्दारा दोनों का उपयोग मात्र किया गया है । नारी और प्रकृति में अनेक स्थानों पर समानता पायी जाती है । दोनो ही अत्यंत संवेदशील होती है । दोनों में आपस में गहरा रिश्ता होता है । प्रकृति के विनाश एवं प्रदुषण से महिलाए अधिक प्रभावित होती है ।

महिलाए पर्यावरण रक्षण में अग्रेसर होती है । अतः पर्यावरण संपन्न एवं समद्ध होता है । इसीलिये दोनों का ही समाजद्वारा रक्षण एवं परिपालन होना चाहिए । महिलाओंका सम्मान और पर्यावरण रक्षण यह संपन्न प्रकृतिके लिये महत् आवश्यक है ।

वस्तुतः यह विचारधारा का उगम संस्कृत साहित्य में प्राचीन काल से ही प्राप्त होता है । वेदो में प्रकृति और नारी को सदा सम्मान प्रदान कर देवता स्वरूप माना गया है । पृथ्विसूक्त में " माता भूमि पुत्रोऽ हं पृथ्विव्या" इस प्रकार प्रकृति को साक्षात् माता का दर्जा प्रदान किया है । संस्कृत साहित्य में भी इस विषयक अनेक प्रमाण प्राप्त होते है ।

अभिजात कवी भवभूती व्दारा उत्तररामचरितम् नाटक में पर्यावरणीय नारीवाद (ecofeminism)

इस विषयक गहिरा चिन्तन किया गया है । भवभूति व्दारा नायिका सीता का प्रकृति के साथ आत्यंतिक संवेदनशील दृढबंध का मनोज्ञ चित्रण है । माता पृथिवी, भगीरथी गंगा, वनदेवता वासंती, तमसा -मुरला नदीव्दय यह प्रकृति के रुप पर नारी का आरोपण कर उन्होने नाटय में चित्रित किये है । यह प्रकृति के रुप वन में विचरण करने वाले सीता के सहायक होकर सदैव परिपालन करते है । सीता स्वयं भूमिपुत्री है । वेदो में भी सीता को भूमिपुत्री कहाँ गया है । प्रकृति और नारी के बीच का संवेदनपूर्ण रिश्ता नाटककार व्दारा चित्रित किया गया है । उत्तररामचरितम् नाट्य में ecofeminism संकल्पना सर्वत्र दृश्यमान है । 'पर्यावरणीय नारीवाद'& का आत्यंतिक मनोहारी एवं मनोज्ञ दर्शन भवभूतिविरचित उत्तररामचरितम् में

प्राप्त होता है ।

कृष्णद्वैपायन वेदव्यास के जन्मस्थल सन्दर्भ में कौशाम्बी में प्रभास पर्वतस्थित अद्रिका यमुना द्वीप - एक अभिनव अनुसन्धान

Rajendra tripathi

महर्षि वेदव्यास का जन्म महाभारत के अनुसार जिस यमुनाद्वीप में हुआ था, वह यमुनाद्वीप कहाँ था, इसका सुनिश्चय आज तक कहीं नहीं हो पाया है। इसी परिप्रेक्ष्य में एक अभिनव अनुसन्धान प्रत्यक्षरूप में दृष्टिगत हुआ है जिसका उल्लेख महाभारत के आदि पर्व में वर्णित व्यासजन्म से सम्बन्धित उपरिचर वसु के आख्यान से स्पष्ट किया जाता है। गिरिका के वियोग में उपरिचर का अमोघवीर्य जिस यमुना द्वीप में गिरा वहाँ अद्रिका नामकी अप्सरा ब्रह्माजी के शाप से मछली बनकर निवास कर रही थी। उसने उस वीर्य को निगल लिया जिसके परिणामस्वरूप मछुआरों के जाल में वह फंसी और उसके गर्भ से मत्स्यगंधा का जन्म हुआ । मछुआरों के पास वह मत्स्यगंधा पालपोष कर बड़ी हुई और वह पिता के साथ वह यमुना किनारे नाव खेने का काम करने लगी। एक दिन महर्षि पाराशर उधर तीर्थाटन करते हुए आये, उनकी दृष्टि उस सुन्दरी पर पड़ी, वह कामुक हुए और उससे उन्होंने प्रणय निवेदन किया । कन्या होने के कारण पाराशर ने चारों ओर दिन में कुहासा कर दिया और उसके कौमार्य को भी अक्षुण्ण बने रहने का वचन दिया। तब दोनों का सम्पर्क हुआ और उन्हीं के सम्पर्क से वेदव्यास का जन्म हुआ।

इस कथा के आधार पर ही आज कौशाम्बी जनपद में प्रभास पर्वत जिसे पभोसा का पहाड़ नाम से जाना जाता है। वस्तुत: वही वह कोलाहल पर्वत है जो दो हिस्सों में भी आज भी बंटा देखा जा सकता है। उसी के पास ही तब की शुक्तिमती नदी आजकल गाँव के पास से निकलने के कारण देवरी की नदी भदनई या भन्नई नाम से चर्चित मानी जाती है। अद्रिका नाम कीअप्सरा मछली रूप में जिस यमुनाद्वीप में निवास कर रही थी वह आजकल औदर नाम से यमुना के बीचमें लगभग पाँच सौ बीघे में एक द्वीप के रूप में विशाल भूखण्ड है। उस भूखण्ड पर बदर अर्थात् बदरी झड़बेरी का पूरा जंगल है। बदरी वेदव्यास को बहुत ही प्रिय था क्योंकि जहाँ जहाँ वह रहे वहाँ बदरी के बीच ही उनके आश्रम रहे।

उपर्युक्त कथानक की पुष्टि हेतु अनेक प्रसंग उल्लेखनीय हैं जिन्हें शोधपत्र में प्रस्तुत किया गया है। -

शृङ्गारवापिका नाटिका में नाट्यशास्त्रीय वैशिष्ट्य

Deepak pandey

कवि विश्वनाथ भट्ट (रानडे) द्वारा विरचित शृङ्गारवापिका नाटिका के नाट्यशास्त्रीय वैशिष्ट्य का गहन और विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत करता है। आचार्य भरतमुनि के नाट्यशास्त्र और धनंजय के दशरूपक में रूपकों के जो सूक्ष्म नियम निर्धारित किए गए हैं, उनका इस नाटिका में सफलतापूर्वक निर्वाह किया है। यह नाटिका चार अंकों में निबद्ध है जो इसे मध्यकालीन संस्कृत नाट्य-साहित्य में एक विशिष्ट और गौरवशाली स्थान दिलाती है। इस कृति के प्रमुख नाट्यशास्त्रीय वैशिष्ट्य निम्नलिखित हैं - शास्त्रीय विधान के अनुसार किसी भी रूपक का प्रारंभ निर्विघ्न

समाप्ति और दर्शक-कल्याण हेतु नांदी से होता है। शृङ्गारवापिका का वैशिष्ट्य इसकी अष्टपदा नांदी में झलकता है जहाँ सूत्रधार के प्रवेश से पूर्व श्री ढुंढिराज (भगवान गणेश) और वागीश्वर की स्तुति की गई है -

यत् शिष्यै रचिता जयंति जगति ग्रंथाहितेयान् क्षणं

दृष्ट्वामस्तवघूर्णनं वितनुते वागीश्वरोपि स्वयं।

तस्मै वैदिकतांत्रिकाध्वरविदे श्रीढुंढिराजाय मे

विश्वस्मिन् स्थिरकीर्त्तयेस्ति गुरवे सद्बुद्धिदात्रे नमः।।

कथावस्तु एवं पात्र-योजना का वैशिष्ट्य - नाटिका की कथावस्तु अवंती नरेश चंद्रकेतु और चंपावती की राजकुमारी कांतिमती के परोक्ष अनुराग बिना प्रत्यक्ष देखे उत्पन्न प्रेम पर आधारित है। नायक चंद्रकेतु का धीरललित नायक के रूप में चित्रण जो कलाप्रेमी, एकनिष्ठ और चिंतामुक्त है तथा कांतिमती का मुग्धा नायिका के रूप में प्रस्तुतीकरण इसके चरित्र-चित्रण का प्रमुख वैशिष्ट्य है। इसके अतिरिक्त, विदूषक का हास्य-शिल्प और गुणराशि की कूटनीतिक भूमिका भी इसके पात्र-विधान को विशिष्ट बनाती है। रस-योजना वैशिष्ट्य **-** भरतमुनि के रस-सिद्धांत के अनुरूप इस कृति में शृंगार रस अंगी रस के रूप में पूर्णतः व्याप्त है। नायक और नायिका के मध्य पूर्वराग जनित विप्रलंब शृंगार (वियोग) की मनोवैज्ञानिक दशाओं जैसे - उद्वेग और प्रलाप का मार्मिक अंकन इसका एक और बड़ा वैशिष्ट्य है। नायक की वियोग-दशा को कवि ने अत्यंत हृदयस्पर्शी रूप में प्रस्तुत किया है जहाँ संसार की सुखद वस्तुएँ भी उसे विष और अग्नि के समान कष्टदायी प्रतीत होती हैं।

मिष्टं वस्तुविषायतेऽति शिशिरं श्रीखंडमुष्णायते

पौष्पीस्त्रग्भुजगायते बहुधनं सौधं श्मशानामते।

पर्य्यकस्तुचितायते यरजनीले शोपिकल्यायते

हाकांते रुचिरां गितेऽघविरहात्प्राणोपि शल्पायते।।

चतुर्थ अंक में योगिनी मुंडमाला के प्रयासों से दोनों का विवाह होता है जो विप्रलंब के पश्चात संयोग शृंगार की सुखद निष्पत्ति करता है।

भाषा-शिल्प एवं सांस्कृतिक वैशिष्ट्य - कुलीन पात्रों के लिए प्रांजल संस्कृत और स्त्रियों व विदूषक के लिए शौरसेनी वा प्राकृत भाषा का सुमधुर समन्वय इस नाटक की यथार्थवादिता का मुख्य भाषिक वैशिष्ट्य है। इसके अतिरिक्त, तत्कालीन समाज के तांत्रिक अनुष्ठानों, सर्वमंगला भवानी पूजा और भारतीय ज्ञान परंपरा (IKS) का सजीव चित्रण इसके सांस्कृतिक वैशिष्ट्य को उभारता है। नाटक के अंत में भरतवाक्य के माध्यम से सूर्य देव से विश्व-कल्याण की प्रार्थना इसके शास्त्रीय वैशिष्ट्य को पूर्णता प्रदान करती है –

पश्यन् त्रैलोक्यमेतत्सुरनरभुजगान्स्छापयन् स्व स्व कर्मण्यायात्यारूह्य

हैमं रथमतिजविनं सप्तनामाश्वितंयः।।

पातञ्जलयोगसूत्र में चित्तवृत्ति एवं संज्ञान-प्रक्रिया : आधुनिक संज्ञान-विज्ञान के परिप्रेक्ष्य में एक अध्ययन

chandrika

भारतीय ज्ञान-परम्परा में मानव-मन, चेतना तथा ज्ञान-प्रक्रिया के स्वरूप का अत्यन्त सूक्ष्म एवं वैज्ञानिक विवेचन प्राप्त होता है। पातञ्जलयोगदर्शन में 'चित्त' को मानव के मानसिक एवं संज्ञानात्मक अनुभवों का प्रमुख आधार माना गया है। योगसूत्र में वर्णित चित्तवृत्ति, प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा, स्मृति, धारणा एवं ध्यान आदि अवधारणाएँ मन की विभिन्न प्रक्रियाओं तथा अनुभव के स्वरूप को समझने के लिए महत्त्वपूर्ण हैं। विशेषतः "योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः" सूत्र के माध्यम से पतञ्जलि चित्त की गतिशीलता, उसके विभिन्न रूपों तथा उसके नियमन की प्रक्रिया की ओर संकेत करते हैं।

प्रस्तुत शोध में पातञ्जलयोगसूत्र में प्रतिपादित चित्तवृत्ति एवं संज्ञान-प्रक्रिया का अध्ययन आधुनिक संज्ञान-विज्ञान (Cognitive Science) के सन्दर्भ में किया जाएगा। आधुनिक संज्ञान-विज्ञान में प्रत्यक्षीकरण (Perception), ध्यान (Attention), स्मृति (Memory), मानसिक प्रक्रियाओं तथा चेतन अनुभव का अध्ययन प्रमुख विषय हैं। इस दृष्टि से योगसूत्र में वर्णित प्रमाण, विपर्यय, विकल्प और स्मृति जैसी संकल्पनाओं का विश्लेषण करते हुए यह समझने का प्रयास किया जाएगा कि प्राचीन संस्कृत चिंतन में मानव की ज्ञानात्मक एवं मानसिक प्रक्रियाओं को किस प्रकार संरचित किया गया है।

यह अध्ययन पातञ्जलयोगदर्शन और आधुनिक संज्ञान-विज्ञान को समान सिद्धान्त मानने का प्रयास न होकर, दोनों ज्ञान-परम्पराओं के बीच अन्तरविषयक संवाद एवं तुलनात्मक अध्ययन की सम्भावनाओं को रेखांकित करेगा। इसके माध्यम से यह स्पष्ट करने का प्रयास किया जाएगा कि पातञ्जलयोगसूत्र में उपलब्ध चित्त एवं संज्ञान सम्बन्धी अवधारणाएँ समकालीन संज्ञानात्मक विमर्श के लिए किस प्रकार उपयोगी शोध-क्षेत्र प्रस्तुत कर सकती हैं।

Keywords: पातञ्जलयोगसूत्र, चित्तवृत्ति, संज्ञान, स्मृति, ध्यान, चेतना, संज्ञान-विज्ञान।

सूक्तयः – प्रसिद्धिः वास्तविकता च

विरती भरत गाला, प्रो. पराग जोशी

विश्वस्य प्राचीनतमासु समृद्धतमासु च भाषासु संस्कृतस्य स्थानं सर्वोपरि वर्तते। इयं भाषा न केवलं विचारविनिमयस्य साधनमात्रम्, अपितु भारतीयसंस्कृतेः, दर्शनस्य, सभ्यतायाः, शाश्वतमानवमूल्यानां च साक्षात्संवाहिका अस्ति।अस्य विशालस्य संस्कृतसाहित्यसागरस्य सर्वाधिकम् अमूल्यं, व्यावहारिकं, सुलभं च रत्नं वर्तते 'सुभाषितम्' 'सूक्तिः' वा। प्राचीनऋषिभिः, महाकविभिः, मनीषिभिः च जीवनस्य कठोरानुभवाः, नीति-अनीति-कर्तव्याकर्तव्ययोः बोधः च एतासु सूक्तिषु निबद्धः। एताः सूक्तयः विपत्तिकाले सन्मित्रम् इव अस्माकं मार्गदर्शनं कुर्वन्ति, अज्ञानरूपान्धकारे दीपकमिव प्रकाशं वितरन्ति, सन्मार्गात् च्युते सति सद्गुरुरिव सचेतं कुर्वन्ति।

अद्यत्वे आधुनिकयुगे अपि अस्माकं दैनन्दिनवार्तालापेषु, सार्वजनिकभाषणेषु, न्यायालयनिर्णयेषु च ज्ञात्वा अज्ञात्वा एव अनेकासां संस्कृतसूक्तीनां बहुधा प्रयोगः भवति। परन्तु आश्चर्यमेतदस्ति यत् अस्मासु अधिकांशाः जनाः एतासां सूक्तीनां प्रयोगं तु कुर्वन्ति, किन्तु न तस्य वास्तविकं स्रोतः जानन्ति, न च मूलग्रन्थस्य सन्दर्भं तस्यार्थम् अवगच्छन्ति। इमम् एव अज्ञानम् अपाकर्तुं समाजे च सम्यग् ज्ञानस्य प्रसारं कर्तुम् अस्मिन् शोधपत्रे प्रयासः क्रियते।

कुञ्चिकपदानि:सूक्तयः,वास्तविकता,प्रसिद्धिः,मूलस्रोतः

Hydro-Ethics in Ancient Sanskrit Literature

Dr. Dharmendra Das

Modern environmental frameworks often treat natural resources as commodities, accelerating the global ecological crisis. This paper examines the concept of water (Āpas, Jala, Udaka) across the continuum of Sanskrit literature spanning Vedic, Puranic, and Classical Kavya eras to uncover an ancient, non-anthropocentric paradigm of environmental management. Utilizing the theoretical

frameworks of Eco-criticism and Deep Ecology, this study analyzes how Sanskrit texts position water not as a passive element, but as an active, living participant in cosmic and terrestrial systems. The investigation begins with an etymological breakdown of water synonyms in lexicographical texts like the Amarakosha, demonstrating how linguistic variations reflect shifts between metaphysical, ritualistic, and mundane contexts. It then traces the evolution of water from the primordial cosmic womb (Salila) of Vedic cosmogony to the personified river deities and hydrological allegories (such as the Gangavataran motif) in the Puranas. Furthermore, the paper explores the eco-aesthetic integration of water cycles in Kalidasa's poetry alongside the pragmatic hydro-governance laws established in Kautilya's Arthashastra and the Smritis. By demonstrating that spiritual sanctity directly informed material ecological preservation, this paper argues that Sanskrit literature offers a unified system of hydro-ethics. These ancient insights provide critical philosophical alternatives for addressing contemporary water scarcity, climate anxiety, and resource degradation.

Keywords: Sanskrit Literature, Hydro-Ethics, Eco-criticism, Deep Ecology, Vedic Cosmogony, Water Management, Pañcamahābhūta

'संगीत शारदा' इस मराठी नाटक के संस्कृत अनुवाद का समीक्षण।

Kanchan Kaushik Sutone

सारांश- न तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं न सा विद्या न सा कला।

नासौ योगो न तत्कर्म नाट्येऽस्मिन् यन्न दृश्यते॥ (नाट्यशास्त्र-१.११७)

नाटक जीवन का प्रतिबिम्ब है। ऐसा कोई ज्ञान,शिल्प, विद्या,कला अथवा कर्म नहीं है जिसका दर्शन नाट्य में न होता हो। **हितोपदेशजननं धृतिक्रीडासुखादिकृत्। दुःखार्तानां श्रमार्तानां शोकार्तानां तपस्विनाम्॥** (नाट्यशास्त्र-१.११३)

यही नाट्य-दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए **श्री गोविन्द बल्लाळ देवल** का **"संगीत शारदा"** नाटक मराठी रंगभूमि की एक महत्त्वपूर्ण सामाजिक नाट्यकृति के रूप में सामने आता है। नाटक में बालविवाह, वृद्ध-विवाह,तथा स्त्री की सामाजिक स्तिथि जैसी तत्कालीन सामाजिक समस्याओं को संगीत,पद,संवाद और अभिनय के माध्यम से प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया है। श्री गोविन्द बल्लाळ देवल ने मनोरंजन के माध्यम से समाज की रूढ़ियों पर प्रश्न उठाते हुए रंगमंच को सामाजिक जागृति के माध्यम के रूप में प्रस्तुत किया।

श्री बालकृष्ण काशीनाथ लिमये द्वारा इस लोकप्रिय मराठी नाटक का संस्कृत अनुवाद किया गया, यह ' **शारदम्'** नामसे प्रसिध्द हुआ, इस साहित्यकृति की यह एक और विशेषता है।

शोधपत्र में मूल मराठी नाटक और संस्कृत अनुवाद के सन्दर्भ में कथानक, पात्र-चित्रण,संवाद,गीत,सामाजिक संदेश तथा सांस्कृतिक संदर्भों का तुलनात्मक अध्ययन किया जाएगा। साथ ही भाव संरक्षण,भाषिक रूपांतरण और पुनर्सृजन जैसे अनुवादशास्त्रीय पक्षों का विश्लेषण किया जायेगा।

इस अध्ययन का प्रमुख निष्कर्ष यह है की, संगीत शारदा का संस्कृत अनुवाद,केवल भाषा परिवर्तन की घटना नही है, यह संस्कृत की आधुनिक अभिव्यक्ति क्षमता तथा अन्य भारतीय भाषाओं के साहित्य को आत्मसात करने की क्षमता को प्रमाणित करता है। साथ ही सामाजिक सुधार के विचारो को संस्कृत के व्यापक पाठक-वर्ग तक पहुचाकर संस्कृत भाषा के समकालीन विस्तार और और सांस्कृतिक प्रसार की

सम्भावनाओ को सुनिश्चित करता है। यह अनुवाद संस्कृत को केवल प्राचीन ज्ञान की भाषा न मानकर आधुनिक सामाजिक एवं सांस्कृतिक संवाद की सशक्त भाषा के रूप मे प्रस्तुत करता है।

संस्कृत वाङ्मय के मङ्गलाचरण में शिव शक्ति

Archana Kumari Dubey

भारतीय संस्कृति एवं संस्कृत वाङ्मय में शिव शक्ति का सम्बन्ध अत्यन्त प्राचीन, व्यापक एवं दार्शनिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। भारतीय चिन्तन-परम्परा में शिव को परम चेतना, पुरुष, ईश्वर, कल्याणस्वरूप एवं निष्क्रिय तत्त्व के रूप में तथा शक्ति को उसी चेतना की क्रियाशीलता, सामर्थ्य एवं सर्जनात्मक ऊर्जा के रूप में स्वीकार किया गया है। इस दृष्टि से शिव और शक्ति दो पृथक् तत्त्व न होकर एक ही परम सत्ता के चेतन एवं क्रियात्मक आयाम हैं।

वाल्मीकिरामायणे वर्णिता वानरसभ्यता

प्रज्ञा करकरे, प्रो. परागः जोशी

महर्षिवाल्मीकेः रामायणं संस्कृतसाहित्यस्य आदिकाव्यं, आर्षकाव्यं, महाकाव्यञ्च वर्तते । सम्पूर्णे महाकाव्ये विभिन्नपात्राणाम् अङ्गलक्षणानां वर्णनं तत्र तत्र दृश्यते । तेषाम् अङ्गलक्षणानामाधारेण पात्रस्य शारीरिकसङ्गठनं, व्यवहारः, मानसिकस्थितिः, सौन्दर्यञ्च ज्ञायते । रामायणे हनुमान्, सुग्रीवः, वाली इत्यादीनां वानराणां मनुष्यवत् अङ्गलक्षणानि वर्णितानि दृश्यन्ते । तारा, रुमा, अञ्जनायाः च शारीरिकसौन्दर्यं बहुधा वर्णितमस्ति । हनुमतः वेदज्ञानं, संस्कृतभाषाज्ञानं, कूटनीतिः, राजनीतिः च किष्किन्धाकाण्डे वर्णिता । तारा अपि राजनीतिज्ञा दर्शिता वाल्मीकिना । तारा हनुमान् च सुग्रीवाय राजनीतिविषये मार्गदर्शनं करोति । सर्वे वानराः बलशालिनः ज्ञानवन्तः च निरूपिताः । किष्किन्धा एतेषां वानराणां राज्यमस्ति इति वर्णितम् ।

सामुद्रिकशास्त्रे मनुष्यस्य एव अङ्गोपाङ्गस्य लक्षणानि चर्चितानि । किन्तु रामायणे वानराणां यानि लक्षणानि दृश्यन्ते तानि सर्वाणि सामुद्रिकस्याधारेणैव वर्णितानि इति अवगम्यते । अतः अत्र प्रश्नः उत्पद्यते यत् एते वानराः मनुष्याः वा? इति । अमरकोषे अपि वानरस्य व्याख्या “नरो वा” इति उपलभ्यते । प्रो. रोमिला थापर, डॉ. डी. आर. भंडारकर एते आधुनिकाः इतिहासकाराः सन्ति । तेषामनुसारेण वानराः वनवासिनः (Forest Tribes) सन्ति । तस्मात् रामायणे वर्णिता वानराणां सभ्यता अध्ययनस्य विषयः वर्तते । अस्मिन् शोधपत्रे वाल्मीकिरामायणे आगतानि अङ्गलक्षणानि निरूप्य वानरसभ्यतायाः सोदाहरणं चर्चा करिष्यते । वानरशब्दस्य पर्यायवाची शब्दानां व्याख्या अपि च अर्वाचीनेतिहासकारस्य मतानां शोधपत्रेऽस्मिन् अध्ययनं विधीयते ।

मुख्यशब्दाः – वानराः, वाल्मीकिः, रामायणम्, सामुद्रिकशास्त्रम्, अङ्गलक्षणानि, अमरकोषः ।

मध्यकालस्य छन्दःशास्त्रीयग्रन्थेषु प्रस्तारस्य विवेचनम्

वेदश्रीः आर्वीकरः , प्रो. नन्दा पुरी

वेदाङ्गभूतस्य छन्दःशास्त्रस्य महती परम्परा वैदिककालादारभ्य साहित्ये विख्याता अस्ति । छन्दःशास्त्रं भारतीयवाङ्मयेषु स्वतन्त्रं महत्त्वपूर्णञ्च शास्त्रं भवति । अस्मिन् संस्कृतवाङ्मये छन्दःशास्त्रस्य विवेचनं प्राचीनकालादारभ्य प्राप्यते । छन्दःशास्त्रीयाचार्यैः स्वग्रन्थेषु छन्दःशास्त्रपरम्परा छन्दः शब्दस्य अर्थः छन्दसां विभागः गणविचारः लघुगुरुविचारः वर्णविचारः यतिनियमाः प्रस्तारादि षट् प्रत्ययाः इत्यादयः बहवः विषयाः सविस्तरं निरूपिताः । छन्दःशास्त्रे बहवः विषयाः सन्ति तेषु षड्प्रत्ययेषु एकः विषयः प्रस्तारः

। प्रस्तारः महत्त्वपूर्णः प्रत्ययः यतोहि तस्य आधारेणैव वार्णिकमात्रिकानां गणानां निर्माणं भवति । अयं सम्पूर्णः प्रस्तारविधिः लघुगुरुव्यवस्थायामुपरि आश्रितः वर्तते । वृत्तभेदानां एतेषां लघुगुरूणां स्थानपरिवर्तनं कृत्वा वा सङ्ख्यायाः न्यूनाधिकपरिवर्तनेन बहूनां भेदानां वृत्तनिर्मितिः भवति ।

संस्कृतसाहित्ये छन्दःशास्त्रग्रन्थेषु प्रस्तारपरम्परा पिङ्गलाचार्यात् प्राप्यते । वैदिककालादारभ्य मध्यकालं यावत् तथा तस्यानन्तरम् आधुनिककालेऽपि अनेकाः छन्दःशास्त्रीयग्रन्थाः निर्मिताः । मध्यकालस्य छन्दःशास्त्रीय आचार्येषु वृत्तरत्नाकरस्य कर्ता केदारभट्टः प्रख्यातः । हेमचन्द्रस्य छन्दोनुशासनग्रन्थे प्रस्तारस्य भिन्ना प्रक्रिया उपलभ्यते । अतः मध्यकाले रचितेषु उपलब्धछन्दग्रन्थेषु दशमशताब्द्याः आरभ्य षोडशशताब्दीपर्यन्तं विरचितेषु संस्कृतछन्दोग्रन्थेषु वर्णितस्य प्रस्तारस्य विवेचनं क्रियते । अतः अस्मिन् शोधपत्रे मध्यकालस्य ग्रन्थकर्तृणां प्रस्तारविषयकम् अवदानं प्रदर्श्यते

Keywords: छन्दःशास्त्रम्, मध्यकालस्य ग्रन्थाः, षड्प्रत्ययाः, प्रस्तारः ।

आद्य नाटककार भास के प्रमुख दुःखान्त नाटकों के नाट्यतत्वों का परिशीलन

Dr. Shivani Shaligram

संस्कृत साहित्य एक ऐसा महान वटवृक्ष है, जिसका मूल वेद, ब्राह्मण और आरण्यक जिसके तने, रामायणादी काव्य तथा पुराण उसका मध्यभाग और उपर विविध दर्शन, धर्मशाख आयुर्वेद, गन्धर्वविद्या, वास्तुशास्त्र, साहित्य और भौतिक ज्ञान-विज्ञान को पल्लवीत करने वाली बहुमुखी शाखाएं है। इसी कारण संस्कृत साहित्य का अनुसंधान हरयुग और हर देश के विद्वानो के लिए सर्वदा सफल प्रयास सिद्ध हुआ है । संस्कृत साहित्य विश्व का सबसे प्राचीन साहित्य है अतः वह आज तक दृढ एवं बद्धमूल है।

संस्कृत साहित्य रचना का भांडार है। संस्कृत नाट्य साहित्य के आरंभिक और अत्यंत प्रभावशाली नाटककारों में भास का अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्थान है।

सूत्रधारकृतारम्भैर्नाटकैर्बहुभूमिकैः ।

सपताकैर्यशो लेभे भासो देवकुलैरिव ॥

(हर्षचरितम्, उच्छ्वास १.१५)

अर्थात जिस प्रकार देवालय अपनी भव्यता और पवित्रता के कारण दूर दूर तक प्रसिद्ध होते है, उसी प्रकार भास के नाटकों ने उन्हे व्यापक प्रसिद्धी प्रदान की ऐसा बाणभट्ट ने महाकवि भास की नाट्यप्रतिभा और उनकी प्रसिद्धी का वर्णन किया है । इनका कालनिर्धारण सामान्यतः प्रथम से तिसरी शताब्दी ईसा पूर्व तक विद्वान मानते है । अतः नाट्यशास्त्र के रचना पूर्व भासद्वारा इन नाटको की रचना हो चुकी थी ऐसा माना जाता है । उनके नाटको में महाभारत रामायण तथा अन्य आख्यानों से प्राप्त कथाओं का नाटकीय पुनर्सृजन मिलता है । आद्य नाटककार भास की विशेषता यह है की वे प्रसिद्ध कथाओं को केवल दोहराते नहीं, बल्कि उनके उपेक्षित और करुण पक्षों को सामने लाते हैं ।

नाट्यशास्त्र में भरत मुनी ने नाट्य का लक्षण देते हुए कहा -

योऽयं स्वभावो लोकस्य सुखदुःखसमन्वितः।

अङ्गादयभिनयोपेतः नाट्यमित्यभिधीयते॥

(नाट्य.शा.१/११९)

अर्थात लोक स्वभाव जब सौंदर्य व्यापार के द्वारा अभिव्यक्त होता है तब वह नाट्य होता है। संस्कृत नाट्य की उत्पत्ती मूलतः मनोरंजन तथा आनंद प्राप्ती हेतू की गई है। अत: संस्कृत नाट्यपरंपरा दु:खान्त नाट्य का स्वीकार नही करती । फिर भी भास के नाटकों में अत्याधिक प्रयोगशीलता सर्वदा दृग्गोचर होती है । भास के नाटकों में सामान्यतः वीर, करुण और रुद्र रस का प्रभाव दिखाई देता है । विशेष रूप से 'उरुभंगम्' और 'कर्णभारम्' इन दो नाट्य को उनकी करुणात्मक संवेदना के कारण संस्कृत नाट्य- साहित्य में विशेष स्थान प्राप्त है । इन नाटकों में दु:ख, मृत्यु, नियति, संघर्ष, पश्चाताप और मानवीय जीवन के विविध पक्षों का प्रभावशाली चित्रण मिलता है । आद्य नाटककार भास के यह दोनो नाटक दु:खान्त नाट्य के स्वतंत्र एवं वैशिष्ट्यपूर्ण करुणात्मक स्वरूप का दर्शन कराते है । काव्यरचना परिपाक तथा नाटकीय तत्व के निर्वाह इन दोनो दृष्टियों से यह दो उच्च कोटी के नाट्य है । अत: इस शोध पत्र में भास रचित प्रमुख दु:खान्त नाटकों के कथानक, पात्र-चित्रण, संधी, वृत्ती आदी नाट्यतत्वों का नाट्यशास्त्र के आधार पर परिशिलन किया जायेगा ।

किरातार्जुनीयमहाकाव्ये प्रकृतेः नैतिकमूल्यबोधः (विशेषतः चतुर्थपञ्चमसर्गयोः)

सुशान्त धरुआ , डॉ. तृप्ति मिश्र

संस्कृतमहाकाव्यपरम्परायां महाकविभारविप्रणीतं **'किरातार्जुनीयम्'** स्वकीयेन अर्थगौरवेण, पदलालित्येन, भावगाम्भीर्येण तथा अलङ्कारवैभवेन विशिष्टं स्थानमधिगच्छति। अस्य महाकाव्यस्य प्रमुखप्रतिपाद्यं अर्जुनस्य तपश्चर्या तथा पाशुपतास्त्रप्राप्तिः अस्ति, तथापि भारवेः काव्यप्रतिभा केवलं कथावस्तुविन्यासे अथवा वीररसस्य परिपाके एव न, अपितु प्रकृतेः सूक्ष्मनिरीक्षणे, तस्याः सौन्दर्यस्य भावमयचित्रणे तथा मानवीयजीवनमूल्यैः सह तस्याः अन्तःसम्बन्धस्य व्यञ्जनेऽपि परिलक्ष्यते। प्रस्तुतशोधपत्रे इति विषयः विशेषतः चतुर्थ-पञ्चमसर्गयोः सन्दर्भे साहित्यिक-विश्लेषणात्मकदृष्ट्या परिशील्यते।

चतुर्थसर्गे हिमालयीयप्रकृतेः रमणीयता, पर्वतश्रेणीणां गाम्भीर्यम्, वनप्रदेशस्य शान्तमनोहरता, वृक्षलतानां सुषमा, विविधपुष्पाणां सुरभिता, सरितां निर्झराणां च कलकलप्रवाहः तथा मृगपक्षिणां स्वाभाविकविहारः भारवेः सूक्ष्मनिरीक्षणशक्तेः, कल्पनाप्रतिभायाः तथा चित्रात्मकवर्णनकौशलस्य परिचायकाः सन्ति। भारविणा उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, अनुप्रास, स्वभावोक्ति तथा मानवीकरणादीनां काव्योपकरणानां समुचितप्रयोगेण प्रकृतिचित्रणं सजीवं, सौन्दर्यमयं तथा भावगर्भितं कृतम्। अत्र प्रकृतिः केवलं काव्यशोभावर्धिनी न भवति, अपितु पर्वतस्य स्थैर्ये धैर्यस्य, नदीप्रवाहे निरन्तरतायाः, वृक्षेषु परोपकारितायाः तथा प्राकृतिकसामञ्जस्ये सहिष्णुतायाः नैतिकमूल्यव्यञ्जिकात्वेनापि प्रतिष्ठिता दृश्यते।

पञ्चमसर्गे अर्जुनस्य तपश्चर्यायाः प्रसङ्गे प्राकृतिकपरिवेशस्य विशेषमहत्त्वं परिलक्ष्यते। तपोवनस्य नीरवता, पर्वतीयप्रदेशस्य गाम्भीर्यं, वनस्य प्रशान्तता तथा प्राकृतिकजीवनस्य सात्त्विकपरिवेशः अर्जुनस्य एकाग्रतायाः, धैर्यस्य, आत्मसंयमस्य, मनोनिग्रहस्य तथा तपोनिष्ठायाः भावभूमिं निर्माति। अत्र बाह्यप्रकृतिः साधकस्य अन्तःकरणस्य शान्तेः, आत्मसंयमस्य तथा आन्तरिकपरिष्कारस्य भावात्मकप्रतिबिम्बमिव प्रतिभाति। प्रकृतिः अर्जुनस्य तपश्चर्यायां मौनसहचारिणीव स्थित्वा तस्य दृढसंकल्पस्य तथा नैतिकपुरुषार्थस्य भावभूमिं निर्माति। अनेन प्रकारेण प्रकृति-मानवयोः सम्बन्धः केवलं बाह्यपरिवेशसम्बन्धी न भूत्वा भावात्मकः, आध्यात्मिकः तथा नैतिकः अपि भवति।

प्रस्तुताध्ययने चतुर्थ-पञ्चमसर्गयोः प्रकृतिचित्रणस्य सौन्दर्यात्मकता, रसात्मकता, चित्रात्मकता, भावव्यञ्जना तथा नैतिकमूल्यव्यञ्जना इत्येतेषां पक्षाणां समन्वितदृष्ट्या विवेचनं क्रियते। विशेषतः प्रकृतिसौन्दर्यस्य अर्जुनस्य तपश्चर्यया, आत्मसंयमेन, धैर्येण तथा नैतिकपरिष्कारेण सह स्थापितस्य अन्तःसम्बन्धस्य विश्लेषणं क्रियते। अध्ययनस्य निष्कर्षरूपेण प्रतिपद्यते यत् भारवेः प्रकृतिदृष्टौ प्रकृतिः न केवलं काव्यसौन्दर्यस्य साधनम्, अपितु भावव्यञ्जिका, रसपोषिका, वातावरणनिर्मात्री तथा मानवस्य नैतिक-आध्यात्मिकपरिष्कारस्य प्रेरिकाशक्तिः अपि अस्ति। चतुर्थसर्गे प्रकृतिः सौन्दर्यानुभूतेः प्रमुखमाध्यमरूपेण, पञ्चमसर्गे तु तपश्चर्या, आत्मसंयम तथा नैतिकमूल्यचेतनायाः

भावभूमिरूपेण प्रतिष्ठिता दृश्यते। अतः प्रकृतिसौन्दर्यं, भावव्यञ्जना तथा नैतिकचेतना इति त्रयम् भारवीयकाव्यदृष्टौ परस्परपूरकं तत्त्वसमुच्चयं निर्माति।

बीजशब्दाः - किरातार्जुनीयम्, भारविः, प्रकृतिचित्रणम्, नैतिकमूल्यबोधः, धैर्यम्।

रघुवंशमहाकाव्ये प्रकृतिचित्रणस्य सौन्दर्यशास्त्रीयदृष्ट्या अध्ययनम्

श्रीनिवास म्हस्के

महाकविना कालिदासेन विरचितं रघुवंशमहाकाव्यं संस्कृतसाहित्यस्य प्रकृतिसौन्दर्यस्य च अद्वितीयं काव्यमस्ति। अस्मिन् महाकाव्ये प्रकृतेः विविधानि रूपाणि उपलभ्यन्ते । यथा—पर्वताः, नद्यः, वनानि, सरांसि, पुष्पाणि, लताः, वृक्षाः, ऋतवः, चन्द्रः, सूर्यः, मेघाः, पक्षिणः, मृगाश्च—मानवीयभावनाभिः सह समन्वितरूपेण चित्रिताः सन्ति। प्रस्तुतशोधपत्रे रघुवंशमहाकाव्ये प्रकृतिचित्रणस्य सौन्दर्यशास्त्रीयदृष्ट्या समीक्षात्मकमध्ययनं क्रियते। विशेषतः प्रकृतेः आलम्बन-उद्दीपनविभावत्वं, रसाभिव्यञ्जने तस्याः योगदानम्, ध्वनितत्त्वेन सह सम्बन्धः, पर्यावरणेन प्राचां प्रीतिः, तदर्थं च काव्यमाध्यमेन बोधनमित्यादिविषयाः इह विविच्यन्ते। रघुवंशमहाकाव्ये प्रकृतिचित्रणं केवलं रसात्मकसौन्दर्यस्य महत्त्वपूर्णं साधनमेव न अपितु पर्यावरणसंरक्षणं, वनलतागुल्मादीनां विकासः तेषां सम्यक् परिपालनमित्यादि अनेकैः उद्देश्यैः प्रकृतिचित्रणं कृतम् अस्ति। महाकविः कालिदासः प्रकृतेः मानवीकरणेन तथा मानवभावानां प्रकृतिसाम्येन तस्याः सौन्दर्यं बहुगुणीकृतवान्। यथा नन्दिन्याः स्वरूपवर्णने—

"ललाटोदयमाभुग्नं पल्लवस्निग्धपाटला।

बिभ्रती श्वेतरोमाङ्कं सन्ध्येव शशिनं नवम्॥"

इति श्लोके नन्दिन्याः ललाटप्रदेशस्य पल्लवसदृशस्निग्धपाटलत्वं तथा श्वेतरोमाङ्कितं मुखं नवचन्द्रयुक्तसन्ध्यया उपमितम्। अत्र उपमालङ्कारस्य माध्यमेन पशुरूपस्य नन्दिन्याः सौन्दर्यं मानवीय-कोमलतया सह सम्बध्यते। एवं प्रकृत्याः रमणीयतत्त्वानि कवेः सौन्दर्यदृष्ट्या नूतनां कलात्मकां व्यञ्जयति।

प्रकृतिचित्रणस्य अन्यत् उदाहरणं पश्यामश्चेत् आश्रमजीवनस्य नैसर्गिकसौन्दर्यं तथा पर्यावरणसंरक्षणभावना अपि दृश्यते। कालिदासः आश्रमवासिनां जीवनस्य वर्णनं कुर्वन् कथयति—

"नीवारपाकादि कडङ्गरीयैरामृश्यते जानपदैर्न कच्चित्।

कालोपपन्नातिथिकल्पभागं वन्यं शरीरस्थितिसाधनं वः॥" इति।

अत्र नीवारादीनां वन्यधान्यानां वर्णनेन वनजीवनस्य स्वाभाविकता, सरलता, सात्त्विकता च प्रकाशिता भवति। प्रकृतिः मानवजीवनस्य केवलम् उपभोग्यवस्तु न भवति, अपितु जीवनधारणस्य आधारभूता तथा आश्रमसंस्कृतेः अभिन्नाङ्गत्वेन चित्रिता अस्ति। अतः रघुवंशमहाकाव्ये प्रकृतिचित्रणं शृङ्गारादिरसस्य उद्दीपनविभावत्वेन, उपमाद्यलङ्काराणां सौन्दर्याधायकतत्त्वेन, ध्वनेः व्यञ्जकत्वेन च काव्यसौन्दर्यं संवर्धयति। तदेवं विषयमादाय अस्मिन् शोधपत्रे विषयप्रस्तावः करिष्यते।

कवि नरेंद्र कृत 'रुक्मिणी स्वयंवर' आख्यान काव्य में प्रकृति-चित्रण - विश्लेषणात्मक तथा सौंदर्यशास्त्रीय अध्ययन

संशोधक - अनुज रवि मंचावार

मध्ययुगीन मराठी साहित्य के इतिहास में १३वीं शताब्दी के यादवकालीन मराठी साहित्य को स्वर्ण युग माना गया है। इस काल में महानुभाव संप्रदाय के दर्शन और साहित्य-सृजन ने मराठी भाषा को शास्त्रीय एवं अलंकृत आधार प्रदान कर समृद्ध किया। महानुभाव संप्रदाय के सात काव्य ग्रंथों मे आद्य ग्रंथ कवि नरेंद्र द्वारा रचित 'रुक्मिणी स्वयंवर'

(ई.स.१२९२) को मराठी साहित्य का पहला उपलब्ध 'आख्यान काव्य' माना जाता है। श्रीमद्भागवत पुराण के एकादश स्कंद की श्रीकृष्ण और रुक्मिणी के विवाह की पौराणिक कथा इस काव्य का मुख्य कथानक है; फिर भी, कवि नरेंद्र की साहित्यिक प्रतिभा और कल्पनाशीलता उनके 'प्रकृति चित्रण' में विशेष रूप से दिखाई देती है। प्रस्तुत शोध पत्र में कवि नरेंद्र द्वारा रचित 'रुक्मिणी स्वयंवर' ग्रंथ में वर्णित प्राकृतिक सौंदर्य तथा प्रकृति के विभिन्न रूपों और उनके काव्यात्मक एवं सौंदर्यशास्त्रीय महत्व का गहन अध्ययन किया गया है। काव्य में वर्णित विभिन्न ऋतुओं के मनमोहक रूप, उद्यानो, वृक्ष-लताओं तथा पशु-पक्षियों का सूक्ष्म निरीक्षण यह सब कवि नरेंद्र की काव्यप्रतिभा का प्रमाण प्रस्तुत करता है। काव्य में रुक्मिणी की विरह स्थिति में प्रकृति 'उद्दीपन रूप' (भावनाओं को तीव्र करने वाले रूप) में आती है, जबकि उसके आनंद के क्षणों में वही प्रकृति उल्लसित रूप में प्रकट होती है। इस प्रकार, प्रकृति इस काव्य में केवल एक शोभात्मक वर्णन मात्र न होकर, एक जीवंत पात्र के समान मानवीय भावनाओं का प्रतिबिंब दर्शाती है। प्रस्तुत शोध में पाठ्य विश्लेषण (Textual Analysis) और सौंदर्यशास्त्रीय विश्लेषणात्मक (Aesthetic & Analytical) शोध पद्धति का उपयोग किया गया है। कवि नरेंद्र द्वारा प्रकृति का वर्णन करते समय प्रयोग की गई प्राकृत मराठी भाषा, 'ओवी छन्द' की नादमधुरता तथा उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक एवं स्वभावोक्ति जैसे अलंकारों के प्रभावी प्रयोग का अध्ययन इसमें किया गया है। कवि नरेंद्र द्वारा रचित 'रुक्मिणी स्वयंवर' ग्रंथ का प्रकृति चित्रण केवल मध्ययुगीन काव्य की शोभा मात्र नहीं है, बल्कि वह मराठी साहित्य में पर्यावरण संबंधी और सौंदर्यशास्त्रीय चेतना की प्रारंभिक अभिव्यक्ति है। यह शोध पत्र १३वीं शताब्दी के मराठी काव्य की प्रकृति-दृष्टि को समझने और प्राचीन आख्यान काव्य में प्रकृति के स्थान को विशिष्ट रूप से अधोरेखित करने में एक महत्वपूर्ण योगदान सिद्ध होता है।

बीजशब्द (Keywords) : कविनरेंद्र, रुक्मिणीस्वयंवर, प्रकृति-चित्रण, प्रकृति-वर्णन, आख्यान-काव्य, काव्य-सौंदर्य।

कालिदास के साहित्य में हिमालय

Dr dev raj

शिवपुराण में हिमालय के दो रूप बतलाए गए है – स्थावर और जङ्गम। स्थावर रूप में वह पर्वत है किन्तु जङ्गम रूप में वह उत्तम गार्हस्थ्य का निदर्शन, जगज्जननी जगदम्बिका का भी जनक है। शिवपुराण में कहा है-

अस्त्युत्तरस्यां दिशि वै गिरीशो हिमवान् महान्।

पर्वतो हि मुनिश्रेष्ठ महातेजाः समृद्धिभाक्।।

द्वैरूप्यं तस्य विख्यातं जङ्गमस्थिरभेदतः।

वर्णयामि समासेन तस्य सूक्ष्मस्वरूपकम्।।

पूर्वापरौ तोयनिधी सुविगाह्य स्थितो हि यः।

नानारत्नाकरो रम्यो मानदण्ड इव क्षितेः।। शिवपुराण (पार्वतीखण्ड) 1.14-21

जब हिमालय धर्मवर्धन के लिए अपने विवाह की इच्छा करता है, तब सारे देव आते हैं और अपनी स्वार्थसिद्धि के उद्देश्य से पितरों की ज्येष्ठा कन्या मेना से, जिसका अपरनाम मेनका भी है, हिमालय का विवाह करवाते हैं।

हिमालय की नैसर्गिक एवं नयनाभिराम सुषमा ने संस्कृत के महाकवियों के मन को सर्वाधिक आकृष्ट किया है। कविकुलगुरु कालिदास ने अपने कुमारसम्भव नामक महाकाव्य का शुभारम्भ हिमालय वर्णन से किया और मुक्तकण्ठ से घोषणा की कि भारत के उत्तर में देवता समान पूजनीय तथा पूर्व और पश्चिम समुद्रों तक विस्तीर्ण पर्वतराज हिमालय ऐसा प्रतीत होता है मानों पृथ्वी को नापने-तौलने का मपदण्ड हो-

अस्त्युत्तरस्यां दिसि देवात्मा हिमालयो नाम नगाधिराजः।

पूर्वापरौ तोयनिधी वगाह्य स्थितः पृथिव्या इव मानदण्डः।। कुमारसम्भवम् 1.1

मन्दाकिनी प्रवीहित करने वाले कविकुलगुरु कालिदास की यह मान्यता सर्वथा सत्य है कि अनगिनत रत्न उत्पन्न करने वाले नगाधिराज हिमालय की शोभा हिम के कारण कुछ भी कम नहीं हुई है, क्योंकि जहाँ बहुत से गुण हों, वहाँ यदि एक-आध अवगुण आ भी जाए तो वह उसी प्रकार छिप जाता है जैसे चन्द्रमा की किरणों में उसका कलंक छिप जाता है। इस प्रकार हिमालय में हिम का होना दूषण नहीं वरण भूषण है-

अनन्तरत्नप्रभवस्य यस्य हिमं न सौभाग्यविलोपि जातम्।

एको हि दोषो गुणसन्निपाते निमज्जतीन्दोः किरणेष्विवाङ्कः।। कुमारसम्भव, 1.3

A Study on Paryavaran Chetana in Gramgeetamrutam by Prajnabharati

Dr. Shridhar, Bhaskar Varnekar, Dr. Pallavi Kawale

Gramgeetamrutam is an important text by by Prajnabharati Dr. Shridhar Bhaskar Varnekar on Rural and sustainable development with social transformation. The author Prajnabharati Dr. Shridhar Bhaskar Varnekar hails from Nagpur, Maharashtra and was a very prominent author and enthusiast of Sanskrit Literature. He has many books to his credit. This text Gramgeetamrutam is the Sanskrit translation of the original Marathi text Gramgeeta by Rashtrasant Tukdoji Maharaj.

This research paper aims to study the environmental consciousness depicted in the text with reference to society, its norms, relationship between human beings and nature. Rural development and cleanliness of the society is the main theme propagated in this text. Particular attention is given to the interconnectedness of human life, rural society and the natural environment.

Moreover, this text is a perfect example of Modern Sanskrit Literature and its duty towards holistic development of rural society, which will indirectly benefit the people in the society today as well.

Keywords

Paryavaran Chetana - Gramgeetamrutam – Dr. Prajnabharati Shridhar Bhaskar Varnekar – Rural Devlopment – Modern Sanskrit Literature – Modern Environmental studies

भागीरथीयम् शतककाव्यस्य समीक्षणात्मकमध्ययनम्

प्रतिक लखादिवे

ह्लादकारि चमत्कारि शब्दार्थानां समूहः काव्यमिति । तत्र नैके भेदेषु काव्येषु अन्यतमो वर्तते खण्डकाव्यमिति । तत्र विविधेषु स्वरूपेषु खण्डकाव्येषु अन्यतमो वर्तते शतककाव्यम् इति । किञ्च प्रसिद्धेषु अर्वाचीनशतककाव्येषु सम्प्राप्तं भागीरथीयम् ।

शतक काव्यस्यास्य परम्परापि अतिप्राचीना वर्तते । तत्र प्रायः स्वातन्त्र पूर्वं पुनश्च स्वातत्र्य परं अद्या वधिं यावत् वर्गीकरण कर्तुं शक्यते । एवं अर्वाचीनेषु शतककाव्येषु शताब्द्यामस्यां बहुधा वर्णितं पुराणवस्तु विषयमवलम्ब्य रचितम् इदं भागीरथीयं । शतककाव्यं आचार्यैः राघवेन्द्र भट्टवर्यैः। काव्येस्मिन् भगवती गङ्गा स्तुता वर्तते । त्रिपथगामिन्याः गङ्गायाः स्तवनं प्रायः शङ्कराचार्याद् आरभ्य इदानीं यावत् क्रियमाणम् अस्ति । विभिन्नैः जनैः पुरातनं बहुधा वर्णितोऽयं विषयः । कयाचिद् नुतनया विलक्षणया च दृष्ट्या प्रस्तुतः भट्टाचार्यवर्यैः। तदित्थम् जलं जीवनमिति । तस्य जीवनस्य स्रोतांसि सन्ति नद्यः । तासु नदीष्वपि सर्वोत्कृष्टतमा इयं भागीरथी । अस्याः वैशिष्ट्यं केवलं पुराण इतिहास आदिषु न अपि तु वेदेष्वपि वर्णितम् अस्ति। भागीरथीयं लहरीषु विभक्ता वर्तते ।

प्रस्तोष्यमाने अस्मिन् विस्तृत शोधपत्रे काव्य रस- भाव- गुणरीति- अलङ्कारादितत्वमाश्रित्य अस्य शतककाव्यस्य समीक्षणं करिष्ये । इति शम् । आधुनिकसन्दर्भे सुहृद् समाजे अस्य महत्त्वं उपयोगित्वं च भट्टाचार्यदिशा वर्णयिष्ये ।

कौटिल्य अर्थशास्त्र का राष्ट्र निर्माण मे योगदान

डॉ.राजेंद्र प्रसाद मीना

कौटिल्य काल में अर्थशास्त्र का व्यापक स्वरूप थाI इसके अंतर्गत अर्थनीति,दंडनीति,राजनीति,धर्मशास्त्र,समाजशास्त्र,न्यायशास्त्र,यौध्शास्त्र,आदि को

सम्मिलित किया जाता थाI शासन- कला और कूटनीति के महान प्रतिपादक आचार्य कौटिल्य द्वारा ईसापूर्व तृतीय शताब्दी (लगभग) में लिखित "अर्थशास्त्र" विश्व के राजशास्त्रीय और अर्थशात्रीय ग्रंथो में मूर्धन्य माना जाता हैIइस ग्रन्थ में कुल 15 अधिकरण, 150 अध्याय व 150 विषय वर्णित हैंI

अर्थशास्त्र की परिभाषा देते हुए कौटिल्य ने कहा है-

"मनुष्याणां वर्तिरर्थ:,मनुष्यवतीभूमिरित्यर्थ:

तस्या:प्रथिव्या:लाभपालनोपाय: शास्त्रमर्थशास्त्रमिति "

(अर्थशास्त्र,अधिकरण-1,अध्याय-1)

इस ग्रंथ में राज्य-शासन,अर्थ,मंत्रिपरिषद,सैन्य पद्धति,गुप्तचर व्यवस्था ,राजा की शिक्षा ,कर्तत्व,धर्म,दर्शन,पुरुषार्थ,संस्कार ,ग्राम व नगर व्यवस्था ,कानून का विवेचन ,सप्तांगो का उल्लेख तथा अंत मे कार्य योजना का विस्तृत वर्णन प्रस्तुत किया हैI कौटिल्य स्वयं राजनीतिज्ञ थे इसलिए उनके ग्रन्थ में केवल पांडित्य प्रदर्शन ही नहीं अपितु अनुभव की गहरी छाप हैं I

वर्तमान युग में पश्चिमी सभ्यता के प्रभाव ,वैश्वीकरण ,उपभोक्तावादी संस्कृति,बाजारवाद ,पूंजीवाद के कारण नैतिक मूल्यों का हास हो रहा हैं तथा प्रशासन वयवस्था दूषित होती जा रही हैंI ऐसे समय में कौटिल्य अर्थशास्त्र इनको सुधारने में महत्वपूर्ण योगदान दे सकता हैंI

हर्षदेव माधव का काव्य: परम्परा की जड़ों से वैश्विक चेतना के क्षितिज तक

डॉ, मृगांक मलासी

आधुनिक संस्कृत साहित्य में हर्षदेव माधव का काव्य परम्परा और आधुनिकता के सृजनात्मक समन्वय का विशिष्ट उदाहरण है। उनकी काव्य-दृष्टि भारतीय सांस्कृतिक चेतना की गहन जड़ों से सम्बद्ध होते हुए भी वैश्विक मानव-संवेदना के विस्तृत क्षितिज तक पहुँचती है। प्रस्तुत शोध-पत्र में हर्षदेव माधव के काव्य में निहित भारतीय परम्परा, सांस्कृतिक स्मृति और वैश्विक चेतना के अन्तर्सम्बन्धों का समीक्षात्मक अध्ययन किया जाएगा। हर्षदेव माधव की कविताओं में भारतीय दर्शन, आध्यात्मिक दृष्टि, मिथकीय संकेत, प्रकृति-बोध और शास्त्रीय काव्य-संस्कारों की स्पष्ट उपस्थिति दिखाई देती है। किन्तु वे केवल अतीत के अनुकरणकर्ता नहीं हैं अपितु वे परम्परा को आधुनिक जीवन की चुनौतियों और विश्वव्यापी मानवीय प्रश्नों के संदर्भ में पुनर्सृजित करते हैं। उनकी कविता में युद्ध, हिंसा, पर्यावरण-संकट, सांस्कृतिक विघटन, मानवीय पीड़ा और शान्ति की आकांक्षा जैसे विषय भारतीय जीवन-मूल्यों के साथ जुड़कर एक व्यापक वैश्विक दृष्टि का निर्माण करते हैं।

भारतीय साहित्यिक परम्परा में अतीत केवल इतिहास का विषय नहीं, अपितु सांस्कृतिक चेतना, जीवन-मूल्यों और आध्यात्मिक अनुभवों का आधार रहा है। हर्षदेव माधव अपने काव्य में भारतीय ज्ञान-परम्परा, मिथकीय संकेतों, सांस्कृतिक प्रतीकों तथा शास्त्रीय सौन्दर्यबोध को आधुनिक मानव जीवन की समस्याओं, अस्तित्व-संकट, हिंसा, पर्यावरणीय असंतुलन, वैश्विक अशान्ति और मानवीय विडम्बनाओं के साथ जोड़ते हैं। इस प्रकार उनका काव्य अतीत के पुनरावर्तन के स्थान पर उसके सृजनात्मक पुनर्पाठ का उदाहरण प्रस्तुत करता है।

प्रस्तुत शोध पत्र के माध्यम से स्पष्ट होगा कि हर्षदेव माधव का काव्य किस प्रकार भारतीय काव्यपरम्परा के मूल तत्त्वों को आधुनिक संवेदना और वैश्विक चेतना के साथ जोड़ता है। इस शोध में रस, ध्वनि, प्रतीक, बिम्ब और व्यंजना जैसे भारतीय काव्यशास्त्रीय सिद्धान्तों के आलोक में उनके काव्य का विश्लेषण किया जाएगा। साथ ही आधुनिक

साहित्यिक विमर्श के आधार पर उनकी कविता में उपस्थित मानवतावादी दृष्टि, सांस्कृतिक संवाद और विश्वबोध का परीक्षण किया जाएगा। हर्षदेव माधव का काव्य परम्परा को स्थिर एवं अतीतगत तत्व के रूप में नहीं देखता, अपितु उसे निरन्तर विकसित होने वाली जीवन्त चेतना के रूप में प्रस्तुत करता है। उनकी कविता भारतीय संस्कृति की मूल संवेदनाओं को वैश्विक सन्दर्भ प्रदान करती है और संस्कृत साहित्य की आधुनिक प्रासंगिकता को सिद्ध करती है। इस प्रकार उनका काव्य परम्परा की जड़ों से जुड़कर वैश्विक चेतना के क्षितिज तक विस्तृत होने वाली आधुनिक संस्कृत काव्य-यात्रा का प्रतिनिधित्व करता है। प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य यह विश्लेषण करना है कि हर्षदेव माधव किस प्रकार परम्परागत संस्कृत काव्य-दृष्टि को आधुनिक संवेदना से सम्बद्ध करते हैं। प्रस्तावित शोध पत्र में भारतीय काव्यशास्त्र के प्रमुख सिद्धान्तों रस, ध्वनि, व्यंजना, प्रतीक एवं बिम्ब-विधान के आधार पर उनके काव्य का परीक्षण करने का प्रयास किया जाएगा। साथ ही आधुनिक साहित्यिक विमर्श के आलोक में उनकी कविताओं में अभिव्यक्त वैश्विक चेतना, मानवतावादी दृष्टि और सांस्कृतिक संवाद का अध्ययन किया जाएगा। वस्तुतः हर्षदेव माधव का काव्य यह प्रमाणित करता है कि परम्परा और आधुनिकता परस्पर विरोधी नहीं, वरन् सृजनात्मक सहयात्री हैं। उनकी कविता में अतीत प्रेरणा का स्रोत है और आधुनिक विश्व उसकी अभिव्यक्ति का नवीन क्षेत्र। वे भारतीय सांस्कृतिक चेतना को संकीर्ण सीमाओं से मुक्त कर विश्वमानव की संवेदना से जोड़ते हैं। इस दृष्टि से उनका काव्य आधुनिक संस्कृत साहित्य में परम्परा के पुनर्सृजन और नवचेतना के उद्भव का महत्त्वपूर्ण उदाहरण सिद्ध होता है।

मुख्य शब्द (Keywords): परम्परा, वैश्विक चेतना, भारतीय संस्कृति, मानवतावाद, काव्यशास्त्र, आधुनिकता, सांस्कृतिक संवाद, बिम्बवाद, हाइकू, तान्का।

शास्त्रीय संस्कृत काव्यों में वसन्त ऋतु का वर्णन

Hetvi Chiragkumar Bhatt, Dr. Shweta Jejurkar, Head

संस्कृत साहित्य में प्रकृति-वर्णन का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। ऋतुओं में वसन्त ऋतु को विशेष महत्त्व प्राप्त है, क्योंकि यह नवीनता, सौन्दर्य, प्रेम, उल्लास तथा श्रृंगार-भावना का प्रतीक मानी जाती है। प्रस्तुत शोध-पत्र में हर्षदेव के काव्य में प्राप्त वसन्त ऋतु के वर्णन का अध्ययन करते हुए उसका संस्कृत साहित्य के अन्य प्रमुख कवियों के वसन्त-वर्णन के साथ तुलनात्मक विवेचन किया जाएगा।

हर्षदेव के वसन्त-वर्णन में प्रकृति के विभिन्न रूपों, पुष्पित वृक्षों, लताओं, पक्षियों, सुगन्धित पवन तथा वातावरण के माध्यम से उत्पन्न सौन्दर्य और भावात्मक अनुभूति का अध्ययन किया जाएगा। इसके साथ ही कालिदास के ऋतुसंहार, वसन्त ऋतु के वर्णन का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया जाएगा।

इस अध्ययन में विभिन्न कवियों द्वारा प्रयुक्त प्रकृति-चित्रण, उपमा, रूपक, अनुप्रास आदि अलंकारों, भाषा-शैली, कल्पना, रस तथा मानवीय भावनाओं के साथ प्रकृति के सम्बन्ध का विश्लेषण किया जाएगा। विशेष रूप से यह देखा जाएगा कि समान वसन्त ऋतु को विभिन्न कवियों ने अपनी-अपनी काव्य-दृष्टि के अनुसार किस प्रकार अभिव्यक्त किया है। कालिदास के प्रकृति-सौन्दर्य और हर्ष के वसन्त-वर्णन की विशिष्टता निर्धारित करने का प्रयास किया जाएगा। इस प्रकार शोध का उद्देश्य संस्कृत काव्य परम्परा में वसन्त ऋतु के विविध सौन्दर्यात्मक एवं भावात्मक रूपों को स्पष्ट करना है।

मुख्य शब्द: संस्कृत काव्य, प्रकृति-वर्णन, वसन्त ऋतु।

Social satire and dramatic techniques in sanskrit bhāṇas

Aiswarya biju

The Bhāṇa represents a unique and vibrant genre of monodrama in classical Sanskrit literature, distinguished by its innovative use of dramatic techniques and acute observation of contemporary society. This paper explores the intricate social satire and performative strategies employed within this genre to critique prevailing morality, political maneuvers, and societal norms.

Adopting a critical and analytical approach, the study examines the development of the *viṭa* character, who acts as the sole narrator and observer, guiding the audience through a sequence of imaginative dialogues. A central focus is placed on the sophisticated theatrical device known as *ākāśabhāṣita* (speaking to the sky), which allows the viṭa to converse with unseen characters, thereby creating a multi-dimensional stage space and maintaining a dynamic narrative flow.

Furthermore, the research underscores how Bhāṇas utilize wit, irony, and vivid characterization to expose the hypocrisies of various social strata, offering valuable insights into the cultural milieu of ancient and medieval India. Ultimately, the paper highlights the enduring aesthetic and sociological relevance of the Bhāṇa tradition within the broader framework of Indian Knowledge Systems, demonstrating its capacity to entertain while serving as a potent medium for social commentary and ethical reflection.

Keywords: Bhāṇa, Sanskrit Monodrama, Viṭa, Ākāśabhāṣita, Social Satire, Indian Knowledge Systems

संस्कृत साहित्य में स्त्रियों की भूमिका और अधिकारों का अध्ययन (A Study of the Role and Rights of Women in Sanskrit Literature)

श्री. अमन रामकुमारशर्मा

संस्कृत साहित्य भारतीय संस्कृति, दर्शन और सामाजिक संरचना का दर्पण है। वैदिक काल से लेकर लौकिक संस्कृत साहित्य (महाकाव्य, पुराण, नाटक और काव्य) के विकास तक, समाज में स्त्रियों की भूमिका और उनके अधिकार एक गतिशील प्रक्रिया से गुजरे हैं। यह शोध पत्र संस्कृत साहित्य के विभिन्न कालखंडों—वैदिक, उपनिषदिक, रामायण, महाभारत, स्मृति ग्रंथ और शास्त्रीय संस्कृत साहित्य—के आलोक में स्त्रियों की सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक और आर्थिक स्थिति का विश्लेषण करता है। जहाँ एक ओर वैदिक काल में स्त्रियाँ 'ब्रह्मवादिनी' और 'सद्योवधू' के रूप में ज्ञान और स्वतंत्रता की प्रतिमूर्ति थीं, वहीं उत्तर-वैदिक और स्मृति काल में उनके अधिकारों में संकुचन देखा गया। यह अध्ययन इस बात को रेखांकित करता है कि संस्कृत साहित्य में स्त्रियों को केवल एक रूप में नहीं, बल्कि विदुषी, माता, वीरांगना, सलाहकार और अर्धांगिनी जैसे विविध आयामों में चित्रित किया गया है।

मुख्य शब्द (Keywords): संस्कृत साहित्य, वैदिक काल, स्मृति ग्रंथ, स्त्री अधिकार, ब्रह्मवादिनी, स्त्रीधन।

Treatment of Technical Terms in the Chinese version of Suvarṇasaptati by Paramārtha and Review of its Textual Reconstruction by N Aiyaswami Sastri

Srihari Kurudi

- This paper examines the treatment of technical terms in the Chinese version of the Suvarṇasaptati, translated by Paramārtha, and assesses N. Aiyaswami Sastri's Sanskrit reconstruction of the text.
- Since the mūla text of Suvarṇasaptati is preserved both through its Chinese transmission as well as original Sāṅkhya Kārikā, the handling of philosophical vocabulary can be easily viewed in contrast. The study considers how key terms such as prakṛti, puruṣa, guṇa, buddhi, ahaṃkāra, tanmātra, pramāṇa, etc. are rendered in Chinese through explanatory paraphrase, and phonetic equivalents.
- The paper argues that Paramārtha's translation is to make non-Buddhist Sāṃkhya categories intelligible to the local audience.
- The paper further reviews Sastri's reconstruction, noting both its pioneering value and its methodological limits. Sastri's work is useful in correlating the Chinese text with Sanskrit

Sāṃkhya vocabulary. Regularity in policy of textual reconstruction is assessed and few formulations are made.

Keywords: Suvaṃasaptati; Paramārtha; Chinese translation; textual reconstruction

Contemporary Challenges and Solutions in Sanskrit Education

Jagdish chand

For the last few decades, Sanskrit teaching has been one of the most neglected areas in Indian education. Despite recommendations from the Kothari Commission and Sanskrit Commission to address various problems and develop teaching methods, these solutions have not been implemented. The Central Scheme for Development of Sanskrit through state governments aims to improve Sanskrit teaching methodologies with support from different educational boards, and Rashtriya Sanskrit Sansthan. However, funds allocated for this purpose have largely gone unused due to a lack of proposals. Several major problems have hindered Sanskrit teaching: declining public interest, cultural opposition, limited employment opportunities, misconceptions about its utility, governmental indifference, economic challenges, traditional teaching methods, lack of integration with modern knowledge, minimal popularization efforts, and teachers' reluctance to teach in Sanskrit medium.

To address these issues, various remedial ideas are proposed. Public interest in Sanskrit can be increased by integrating Yoga and Ayurveda into the curriculum, making Sanskrit-Computer learning compulsory, and offering short-term programs in Vedic rituals, Jyotisha, classical dance, and sculpture. Developing practical, job-oriented courses in Ayurveda and Computers can also help. Sanskrit scholars should have equal access to government and academic roles. Misconceptions about Sanskrit's relevance can be dispelled through projects demonstrating its scientific applications. Measures should be taken to protect the Sanskrit learning environment from political neglect. Simplified, job-oriented courses should be created, and modern teaching methods introduced through refresher courses and new textbooks.

Updating prescribed texts to reconcile oriental and modern scientific theories is crucial. Additionally, programs to increase higher Sanskrit education and training teachers to instruct in Sanskrit medium can improve quality and interest. Implementing these ideas can revitalize Sanskrit education and integrate it with contemporary fields of study. All these points are discussed in this paper.

Indumati’s Swayamvara: An analysis

Dr. Madhusudan Mishra

Swayamvara doesn't find a place among the eight different types of marriage prescribed by the Dharmashashtras. Though this type of marriage refers to self choice of a girl, in reality it is seen that the girl doesn't have a choice of her own. Rather, she is constrained to accept a boy who fulfills the conditions set by her parents. Some scholars are seen to keep it under the Gandharva form of marriage. While studying the pre-marital phenomenon in Indumati's marriage, it is observed that the foster mother puts the garland on the neck of the groom and not the bride herself which is an aberration of the established marriage proceedings. This article shall try to analyse the logic behind such a practice mentioned by Kalidasa.

'उत्तररामचरितम्' में नारी चरित्र का काव्यशास्त्रीय अनुशीलन

डॉ. मानवेन्द्र नाथ

'उत्तररामचरितेभवभूतिर्विशिश्यते'। करुण रसका सर्वश्रेष्ठ नाटक 'उत्तररामचरितम्' महाकवि भवभूतिकी सर्वोत्तमकृति है जो इनकी तीनों कृतियों में अन्यतम है। सात अंकोंमें समन्वित इस नाट्यग्रंथका उपजीव्य आदिप्रबंधकाव्य 'रामायण ' को बनाया गया है। ' रामायण ' में नायक रामके राज्याभिषेकके अनन्तर जानकीत्याग, लव-कुश जन्म और सीता पुनर्मिलन वर्णित है। इसमें कविकी योग्यता, कवित्ववर्णनशक्ति, सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक विवेचन और रसपरिपाक चरमोत्कर्ष पर है। भवभूतिको रीतिमें गौडी, रसमें करुण तथा छंदों में अनुष्टुप और शिखरिनी अत्यंत प्रिय है। आचार्य धनंजयने नाटकके तीन भेदतत्त्व स्वीकार किये हैं - वस्तु, नेता और रस (वस्तुनेतारसस्तेषां भेदक:)। नाट्यशास्त्रीयदृष्टिसे आधिकारिक कथावस्तुमें ' उत्तररामचरितम्' के नायक अयोध्यापतिदशरथनंदन राम तथा मिथिला नरेश जनककी नंदिनी सीताके परित्याग व पुनर्मिलनकी कथा अभिव्यंजित है। वहीं पताका कथावस्तुमें लवका प्रसंग तथा प्रकरी कथावस्तुमें शम्बूकका प्रसंग रखा गया है। नेता (नायक) विनीत, मधुर, त्यागी, चतुर, वाक्पटु, प्रसिद्ध वंशस्थ, तेजस्वी व शास्त्रज्ञ होता है, ये सारे गुण राम में हैं। प्रजानुरंजनके लिए वे अपना सर्वस्व त्याग कर देते हैं।

स्नेहं दया च सौख्यं च यदि वा जानकीमपि।

आराधनाय लोकस्य मुंचतोनास्ति मे व्यथा।।

आचार्य धनंजय तीन प्रकार की नायिकाओं - स्वकीया, परकीया, साधारणस्त्रीकी चर्चा करते हैं। सीता का चरित्र भी स्वकीया नायिकाके लक्षण को द्योतित करता है। इसप्रकारकी नायिकाअपने पति में एकनिष्ठ होती हैं। दाम्पत्य जीवन की सफलता इसीमें है कि पति व पत्नी के मध्य अविश्वास का भाव नहीं हो। राम भी दाम्पत्य जीवन में सीताके नायिकासम्मत गुणों का अभिव्यंजन करते हैं। इसप्रकार भवभूतिने अपने नाट्यकाव्यमें नारी- चरित्र को पुटपाक सदृश्य महनीय बनाते हुए काव्यशास्त्रीय धरातलके चरमोत्कर्ष पर प्रतिष्ठित किया है।

The Problem of Suffering in Buddhism

By Srishti Tyagi

Buddhism or the Dharma, is a result of the teachings of the Buddha. The Buddha, who was known as *Siddhārtha Gautama*, lived in North India in the 6th Century B.C. His father, *Suddhodana*, was

the king of the *Sākyas* (modern Nepal) and his mother was *Mahāmāyā*. *Siddhārtha Gautama* lived in his palace with all the luxuries at his command, away and secured from the realities of life. But as destined, he ventured outside his palace and encountered what is famously known as 'the four sights', (those of an old man, a sick man, a corpse and an ascetic) which led *Siddhārtha Gautama* to renounce the world in search of a way out of the universal suffering. For long six years, he wandered the valley of the Ganges, learning from various religious teachers and following their systems and methods. He committed himself to extreme ascetic practices. But all of this did not satisfy him. So, he gave up on all of the previously learned methods and went his own way. One evening, at the age of 35, he sat under a tree (now famously known as the Bodhi Tree) with the resolve of not getting up until he finds answers to what he was seeking. He finally attained Enlightenment, after which he was known as the Buddha, 'The Enlightened One'.

After his Enlightenment, the Buddha gave his first sermon to a group of five ascetics, who were previously his colleagues, in the Deer Park at Isipatana (Moder day Sarnath) near Benaras; and set in motion *Dhammacakkappavattana*. This sermon is the heart of the Buddha's teachings in which the Buddha taught the Four Noble Truths. The Four Noble Truths are:

1. The Truth of suffering- *Dukkha Ariyasacca*
2. The Truth of the cause of Suffering- *Dukkha Samudaya Ariyasacca*
3. The Truth of the end of Suffering- *Dukkha Nirodha Ariyasacca*
4. The Truth of the path that leads to the end of suffering-*Dukkha Nirodha Gamini Patipada*

Through these Four Noble Truths, the Buddha taught that there is suffering or *dukkha* in the world, that there is an obvious cause to this suffering or *dukkha*, that there can be an end to this suffering and finally, the Buddha gave the path that leads to the cessation of this suffering.

In Buddhism, there are three characteristics of all the existence and beings which are known as the **three marks of existence,** namely; *Anicca* (impermanence), *Dukkha* (translated as 'suffering', 'unease', unsatisfactoriness') and *Anattā* (no permanent essence or entity). The three marks of existence are:

- *sabbe saṅkhārā aniccā* – all *saṅkhāras* (conditioned things) are impermanent
- *sabbe saṅkhārā dukkhā* – all *saṅkhāras* are unsatisfactory, imperfect, unstable
- *sabbe dhammā anattā* – all *dharmas* (conditioned or unconditioned things) have no unchanging self or soul

The central theme of Buddhism is that the human beings are subject to ignorance about the three marks of existence which results in suffering and this suffering is ceased with the knowledge of the Four Noble Truths which leads one to the Noble Eightfold Path.

Suffering or *Dukkha*, is the central concept in Buddhist Philosophy. The Buddha identified three kinds of *Dukkha*:

1. *Dukkha-Dukkha*
2. *Vipariṇāma-dukkha*
3. *Saṅkhāra-dukkha*

Understanding these forms of suffering or *dukkha* would help an individual in understanding the nature of *dukkha* and following the path leading to liberation from the *dukkha*.

Keywords: Buddhism, *dukkha, Dukkha-Dukkha, Vipariṇāma-dukkha, Saṅkhāra-dukkha* suffering, Four Noble Truths, *taṇhā*, craving, *anicca*, *anattā*, dependent origination.

Emptiness as Ethics: Svabhāva-Śūnyatā and the Question of Human Freedom

Dr. Priyadharsan I.

This paper argues that the Mādhyamaka doctrine of *svabhāva-śūnyatā* is not merely an ontological account of reality but an inherently ethical principle with profound scope for the cessation of suffering (*Dukkhanirodha*) in both individual and social life. The usual interpretations separate Mādhyamaka ethics from its metaphysics, but this paper contends that the denial of intrinsic existence itself generates an ethical framework grounded in compassion, freedom, and transformative action. Since all phenomena, including persons, identities, institutions, and social hierarchies, etc., are empty of fixed essence and arise only through dependent origination, they are neither immutable nor beyond transformation. This rejection of essentialism undermines the ontological legitimacy of discriminative structures which brings about calamity in human civilisation. Thus, the rejection of unchangeable social constructions becomes contingent constructions rather than natural or divinely ordained realities.

The paper further argues that the realization of emptiness does not culminate in moral indifference or nihilism. On the contrary, as the suffering exists conventionally through dependent conditions, it remains both real and remediable. Thus, *svabhāva-śūnyatā* becomes the philosophical foundation of *karuṇā*, obligating us to engage actively in the alleviation of suffering and the transformation of the social conditions that perpetuate it. By dissolving attachment to fixed identities or absolutist worldviews, emptiness also reduces hostility, and dogmatism by fostering openness, dialogue, and peaceful coexistence.

The paper therefore maintains that ontology and ethics are inseparable in Mādhyamaka philosophy. The denial of intrinsic existence simultaneously creates the conditions for human self-determination, universal compassion, and social justice. *Svabhāva-śūnyatā* offers not only a metaphysical insight into the nature of reality but also a timeless ethical tool for confronting contemporary forms of suffering and envisioning a more compassionate and peaceful world.

Digital Tipiṭaka and Pāli Education for ASEAN Youth: Challenges and Prospects of Preserving Pāli Manuscripts in the AI Era

Ven Godamune Chullanaga Thero

The digital transformation of the study of Buddhist texts has opened up new possibilities for the preservation of Pāli manuscripts and for Pāli education for the younger generation in ASEAN countries. This is of special significance in the context of the study of Buddhist meditation, as many meditation instructions, commentaries and doctrinal explanations are still preserved in Pāli sources. Yet, the fragility of manuscripts, the fading ability to learn traditional language, the disparity in digital access, and the speedy adoption of AI pose new challenges in relation to textual accuracy, authenticity, interpretation, and ethical use. This study is intended to explore the challenges and opportunities of the utilization of the digital Tipiṭaka and AI based learning for Pāli education among the youths of ASEAN countries and to ensure the security of the traditional manuscript heritage. The research method used is a qualitative review method using selected academic articles, online Tipiṭaka platforms, manuscript preservation efforts, and research on Buddhist education and new AI applications. The review concludes that digital archives can help broaden access to canon and commentaries, assist in comparative textual research, enhance vocabulary development, and motivate younger students to use meditation related Pāli texts. Meanwhile, AI translations and automated interpretations can duplicate mistakes, miss nuances in

the original texts' context or tone, or dilute the importance of engaging with the original texts directly. The study concludes that the use of digital preservation and AI can assist in intergenerational transmission of Pāli knowledge, provided it is used in conjunction with, not as a substitute for, the traditional monastic scholarship, manuscript expertise, and teacher-led learning. It suggests joint ASEAN digital repositories, reliable textual norms, ethical guidelines for using AI and training programs that integrate the study of the Pāli language with the careful reading of Buddhist literature for meditation.

Keywords: Digital Tipiṭaka, Pāli education, ASEAN youth, manuscript preservation, artificial intelligence

बौद्ध साहित्य का रामवृक्ष बेनीपुरी की नाट्यकृति *अम्बपाली* पर प्रभाव: एक विश्लेषण

डा. पिंकी कुमारी

प्राचीनकाल से लेकर आधुनिक काल तकके रचनाकारों, कलाकारोंको वज्जि महाजनपद और उसकी राजधानी वैशालीकी सभ्यता और संस्कृतिने अपनी ऊर्जस्वितासे काफी प्रभावित किया है। वज्जि महाजनपद जहाँ अपनी संघीय संरचनाके लिए प्रख्यात है वहीं वह महात्मा बुद्धके जीवन एवं दर्शनसे अनुप्राणित होकर सबके लिए अनुकरणीयभी है। बुद्धका महान् दर्शन-आर्यसत्य की खोज तत्कालीन पाली साहित्य और बादके संस्कृत साहित्य तथा अन्य भाषाओंके साहित्यमें संरक्षित है।

बौद्ध-साहित्यमें अम्बपाली की कथा 'विनयपिटक', 'महापरिनिब्बाणसुत्त', 'थेरीगाथा' इत्यादिमें उपजीव्य रूपमें विद्यमान है, जिसका रचनात्मक उपयोग समय-समय पर परवर्तीकालके रचनाकारोंने किया है। इनमें एक रामवृक्ष बेनीपुरी भी हैं। बौद्ध-कथासे प्रेरित होकर इन्होंने दोनाटकों की रचनाकी है, वे हैं- 'अम्बपाली' और 'तथागत'। भारतीय नाट्य विद्यालयकी स्थापनाके साथ मंचनके लिए तब 'अम्बपाली' का चयन किया गया था।

बेनीपुरीजीने भारतीय वाङ्मय और विशेषरूपसे बौद्ध-साहित्यका सतर्कतापूर्वक अध्ययन किया था और अपनी साहित्यिक दृष्टि विकसितकी थी।

बेनीपुरीने इस ऐतिहासिक सत्यका अपने तरीकेसे प्रस्तुतीकरण किया है। अजातशत्रु एक आक्रांता, निर्दयी और रक्तपिपासु राजाके रूपमें चित्रित है जो किसी राष्ट्रके संघीय स्वरूपके लिए चुनौती है। बेनीपुरीकी अम्बपाली सिर्फ एक नर्तकी ही नहीं है, राजकुमारोंको प्रमुदित करनेवाली एक गाणिका ही नहीं है, वह वृज्जियोंमें स्वातंत्र्य प्रेमकी अलख जगानेवाली प्रेरणा-शक्ति है, युद्धके मैदान में अपना सब कुछ होमकर देनेवाली वीरांगना भी है। वह 'थेरीगाथा' के वैराग्य विषयक गीतोंको रचनेवाली भिक्षुणी नहीं है, अपितु उसका व्यक्तित्व स्वातंत्र्य-प्रेमकी रागात्मक अभिव्यक्ति है। उसका सम्पूर्ण व्यक्तित्व अन्ततः मातृभूमिके प्रति प्रेम, करूणा, साहस और बलिदानका प्रतिमान गढ़ता है और भोगवादी महत्वाकांक्षा आध्यात्मिक चेतनासे जगमगा उठती है।

आलोच्य शोधपत्रमें यहभी उद्घाटित करनेका प्रयास किया गया है कि 'अम्बपाली' नाटककी विषय-वस्तु किन-किन सन्दर्भों एवं अर्थोंमें बौद्ध साहित्यसे भिन्न है। साथही, उसका व्यक्तित्व कैसे अपने युगानुरूप समष्टि-तत्वमें पूर्णता प्राप्त करता है।

Historical Continuity and Contemporary Interpretation of Buddhist Practices in the Pali Canon: A Study of Their Socio-Cultural Relevance in Contemporary India.

Akash yadav

This paper examines the historical continuity and contemporary interpretation of Buddhist practices preserved in the Pali Canon, with a particular focus on their socio-cultural relevance in contemporary India. While existing scholarship has either concentrated on the textual and doctrinal aspects of early Buddhism or on the modern application of Buddhist practices, limited attention has been given to the historical processes that connect these two dimensions. This study

addresses this gap by analysing how key Buddhist practices have been preserved, adapted, and reinterpreted across different historical contexts while retaining their foundational ethical and spiritual principles.

The research adopts a qualitative historical methodology based on textual analysis of the Pali Canon, including the Nikāyas and Vinaya Piṭaka, supplemented by epigraphic and historical sources such as Ashokan inscriptions and relevant secondary scholarship. Selected practices—such as ethical discipline (*sīla*), mindfulness (*sati*), meditation (*samādhi*), compassion (*karuṇā*), and generosity (*dāna*)—are examined as representative elements of early Buddhist teaching and practice. Through a comparative historical approach, the study analyses the continuity of these practices alongside their transformation in response to changing socio-cultural conditions.

The findings suggest that Buddhist practices have maintained their core doctrinal structure while undergoing significant contextual reinterpretation in contemporary India. This dynamic interplay between continuity and transformation has enabled these practices to remain relevant in addressing modern ethical, social, and psychological concerns. The paper argues that the enduring relevance of Buddhist practices lies not merely in their preservation within canonical texts, but in their historical adaptability as living traditions.

Keywords: Pali Canon; Buddhist Practices; Historical Continuity; Contemporary Interpretation; Socio-Cultural Relevance.

वैश्विक युद्ध और मानवीय संकट के परिप्रेक्ष्य में बालकों में करुणा-संवेदना का विकास : आर्यशूरकृत जातकमाला का शैक्षिक अध्ययन

Dr.Jay

वर्तमान वैश्विक परिदृश्य युद्ध, हिंसा, आतंकवाद, सांस्कृतिक संघर्ष, सामाजिक असहिष्णुता तथा नैतिक अवमूल्यन जैसी गंभीर चुनौतियों से घिरा हुआ है। इन परिस्थितियों का प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष प्रभाव बालकों के मानसिक, भावनात्मक तथा नैतिक विकास पर पड़ रहा है। युद्ध केवल भौतिक विनाश का कारण नहीं बनता, बल्कि वह बालमन में भय, असुरक्षा, आक्रोश, असंवेदनशीलता तथा हिंसात्मक प्रवृत्तियों का भी विकास करता है।[1] ऐसी स्थिति में बालकों में दया, करुणा, सहानुभूति तथा सह-अस्तित्व जैसे मानवीय मूल्यों का विकास समय की अनिवार्य आवश्यकता बन गया है।[2]

भारतीय ज्ञानपरम्परा ने प्राचीन काल से ही करुणा को मानवता का सर्वोच्च गुण माना है। विशेषतः बौद्ध साहित्य में करुणा केवल नैतिक उपदेश नहीं, बल्कि सम्पूर्ण जीवन-दर्शन का आधार है।[3] आर्यशूरकृत *जातकमाला* बोधिसत्त्व के पूर्वजन्मों की कथाओं के माध्यम से करुणा, दया, त्याग, परोपकार, सह-अस्तित्व तथा लोकमंगल जैसे जीवन-मूल्यों को अत्यन्त प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करती है।[4] इन कथाओं की विशेषता यह है कि इनमें मूल्य किसी उपदेश के रूप में नहीं, बल्कि पात्रों के आचरण और जीवनानुभवों के माध्यम से विकसित होते हैं।[5]

प्रस्तुत शोधपत्र में वर्तमान वैश्विक युद्ध-परिदृश्य के संदर्भ में बालकों में करुणा-संवेदना के विकास की आवश्यकता का विश्लेषण करते हुए आर्यशूरकृत *जातकमाला* की शैक्षिक प्रासंगिकता का अध्ययन किया गया है। अध्ययन ग्रन्थाधारित, विश्लेषणात्मक एवं व्याख्यात्मक अनुसंधान-पद्धति पर आधारित है। शोध के निष्कर्ष यह संकेत करते हैं कि *जातकमाला* की कथाएँ बालकों में करुणा, सहानुभूति, सामाजिक उत्तरदायित्व, अहिंसा तथा विश्वबंधुत्व की भावना विकसित करने का प्रभावी माध्यम बन सकती हैं। साथ ही, नई शिक्षा नीति–2020 तथा राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा–2023 के मूल्यपरक एवं समग्र शिक्षा-दृष्टिकोण के संदर्भ में भी यह ग्रन्थ अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होता है।[6]

मुख्य शब्द : आर्यशूर, जातकमाला, करुणा, दया, बालमूल्यबोध, युद्ध, मूल्यशिक्षा, भारतीय ज्ञानपरम्परा, नई शिक्षा नीति–2020।

The Buddhist Intellectual Heritage of Gauda-Baṅga: Mahāvihāras, Scholastic Traditions, and Transregional Knowledge Exchange in the Pāla Period

Manik Haldar

The Pāla period (c. eighth–twelfth centuries CE) represents a significant phase in the intellectual, religious, and cultural history of Gauda-Baṅga. Under Pāla patronage, Buddhism flourished as a major intellectual tradition, and the region emerged as an important centre of Buddhist learning and scholarship. The establishment and development of prominent Mahāvihāras, particularly Somapura and Jagaddala, along with their intellectual connections with Nālandā and Vikramaśīla, contributed significantly to the preservation, development, and dissemination of Buddhist knowledge.

This paper examines the Buddhist intellectual heritage of Gauda-Baṅga with particular emphasis on Buddhist ācāryas, Mahāvihāras, and scholastic traditions during the Pāla period. It explores the development of Madhyamaka, Yogācāra, Buddhist logic and epistemology, Vajrayāna, and Tantric traditions. Special attention is given to eminent scholars such as Atiśa Dīpaṅkara Śrījñāna and their contribution to Buddhist philosophical and literary traditions. The study also analyses the role of Mahāvihāras as centres of advanced learning, teacher–student transmission, manuscript preservation, textual interpretation, translation, and intellectual exchange.

Furthermore, the paper investigates the transregional circulation of Buddhist ideas, texts, and scholars between Gauda-Baṅga, other Indian centres, and Tibet. It argues that Gauda-Baṅga was not merely a regional centre of Buddhist activity but an important intellectual hub within the wider Buddhist world. The scholarly networks of the Pāla period facilitated the transmission and transformation of Buddhist knowledge across geographical and cultural boundaries. The study therefore highlights the enduring contribution of Gauda-Baṅga to Buddhist scholasticism and the broader history of Asian intellectual exchange.

Keywords: Gauda-Baṅga, Pāla Period, Buddhist Intellectual Heritage, Mahāvihāra, Buddhist Scholars, Somapura, Jagaddala, Nālandā, Vikramaśīla, Atiśa Dīpaṅkara Śrījñāna, Vajrayāna, Intellectual Exchange.

Satipaṭṭhānasutta: An Insight to Wisdom

Shruti Hariharan Aiyer

The *Satipaṭṭhānasutta* (Majjhima Nikāya 10) occupies a foundational position in Buddhist contemplative thought, presenting *satipaṭṭhāna* as a systematic discipline for transforming mindful observation into liberating insight. The Buddha characterizes the four foundations of mindfulness—*kāyānupassanā*, *vedanānupassanā*, *cittānupassanā*, and *dhammānupassanā*—as the *ekāyano maggo*, the direct path towards purification, overcoming sorrow and distress, and the realization of Nibbāna. This paper examines how the practice articulated in MN 10 functions not merely as an exercise in attentional awareness but as an epistemic process culminating in *paññā*, or liberating wisdom. Particular attention is given to the methodological principles of *ātāpī*, *sampajāno*, and *satimā*, together with the contemplative recognition of *samudaya* and *vaya*—the arising and passing away of phenomena. Such observation progressively loosens attachment and facilitates insight into impermanence (*anicca*), unsatisfactoriness (*dukkha*), and non-self (*anattā*). The inquiry further contextualizes MN 10 through related discourses of the *Majjhima Nikāya*,

including the *Ānāpānasati Sutta* (MN 118), which demonstrates the interrelationship between mindfulness of breathing and the development of the seven factors of awakening, and the *Dvedhāvitakka Sutta* (MN 19), which illustrates mindful discernment in the transformation of thought. The study argues that *satipaṭṭhāna* constitutes a coherent movement from *sati* (mindfulness) and *sampajañña* (clear comprehension) towards *vipassanā* and *paññā*, thereby establishing mindfulness as a transformative mode of knowing rather than merely a technique of mental concentration.

Keywords: *Satipaṭṭhāna, Sati, Paññā, Vipassanā, Kāyānupassanā, Vedanānupassanā, Cittānupassanā, Dhammānupassanā, Sampajañña, Anicca, Nibbāna, Majjhima Nikāya.*

From Digital Addiction to Mindful Awareness: A Buddhist Approach to *Doomscrolling Based on the Tipiṭaka*

Trupti R. Awatade, Dr. Parag Joshi

Introduction: Doomscrolling is a contemporary form of repetitive digital consumption involving continuous engagement with negative or distressing information. This study examines the question: How can the Buddhist teachings of the Pāli Tipiṭaka provide a theoretical framework for understanding and responding to doomscrolling? The study focuses on selected teachings of the Majjhima Nikāya, Saṃyutta Nikāya, and Dhammapada, particularly the Sabbāsava Sutta (MN 2), Satipaṭṭhāna Sutta (MN 10), Upanisa Sutta (SN 12.23), Māluṅkyaputta Sutta (SN 35.95), and Appamādavagga of the Dhammapada.

Methodology: The study adopts a qualitative, textual, and interpretive approach. Relevant Pāli canonical passages are examined thematically and interpreted in relation to contemporary digital behaviour. The analysis concentrates on yoniso manasikāra (wise attention), ayoniso manasikāra (unwise attention), phassa (contact), vedanā (feeling), taṇhā (craving), upādāna (clinging), sati (mindfulness), indriyasaṃvara (sense restraint), and appamāda (heedfulness).

Data & Findings: The textual analysis indicates that the Tipiṭaka provides a conceptual framework for understanding repetitive engagement through processes of attention, sensory contact, feeling, craving, and attachment. Yoniso manasikāra encourages appropriate and reflective attention, while sati supports awareness of present mental and sensory experience. Indriyasaṃvara provides a principle of restraint in sensory engagement, and appamāda emphasizes careful and heedful conduct.

Conclusion: The study concludes that Buddhist mental discipline offers a theoretical pathway from compulsive digital consumption toward mindful awareness. Rather than advocating technological rejection, the Tipiṭaka emphasizes transformation of one's relationship with sensory experience. This study contributes to Indological and Buddhist studies by applying canonical concepts to a contemporary digital phenomenon while maintaining their textual and philosophical context.

Keywords: Doomscrolling; Buddhist Psychology; Yoniso Manasikāra; Indriyasaṃvara; Digital Behaviour.

'सौन्दरनन्द' महाकाव्य में नन्द का चारित्रिक वैशिष्ट्य

संतोष कुमार, शोध छात्र

अश्वघोष संस्कृत वाङ्मयके प्राचीनतम कवियोंमें शिखरस्थ हैं। 'बुद्धचरितम्' और 'सौन्दरनन्दम्' उनके ऐसे विशिष्ट महाकाव्य हैं जिनमें बुद्धकालीन भारतीय समाज और संस्कृतिका जीवन्त चित्रण हुआ है।

'सौन्दरनन्द' महाकाव्य 18 सर्गोंमें विन्यस्त है जिनमें महाकविने तत्त्वज्ञानके दोनों स्तम्भों--महाप्रज्ञा और महाकरुणा को विभिन्न चरित्रों के माध्यम से स्थापित कर प्राणिमात्रको जीवनोद्देश्यका संदेश दिया है।

नन्द भगवान् बुद्धके सौतेले भाई हैं। सुन्दरी नन्दकी पत्नी है। दोनों एक दूसरेसे अत्यधिक प्रेम करते हैं। सुन्दरी सुन्दर ही नहीं, काम-कलामें भी निष्णात है। उसके प्रेममें उसका पति नन्द आकण्ठ डूबा हुआ है। वह राजकाज और धर्म एवं अध्यात्मसे दूर निविड़ सांसारिक वासनाकी दलदलमें इतना डूब चुका है कि याचक बुद्ध उसके द्वारसे लौट जाते हैं। यहां नन्द एक धीरललित नायकके रूपमें चित्रित हुआ है जो प्रियंवद है, विनीत और मधुर स्वभाववाला है। वह पत्नीके साथ हास-परिहास कर मोदपूर्वक जीवन व्यतीत करता है, लेकिन ज्यों ही उसे यह पता चलता है कि उसके द्वारसे शास्ता, उसके अग्रज खाली लौट गये हैं, वह तत्क्षण उनका अनुगमन करता है। बुद्ध ने उसके हाथ में भिक्षापात्र रख दिया। उसे धर्ममें दीक्षित कर लेते हैं। मुण्डित सिर नन्द आंसू बहाने लगता है। काषायवस्त्र उसे पीड़ा दे रहे हैं। वह एक नई दुनिया में उलझ गया है। कई भिक्षु उसे सद्-धर्म का उपदेश करते हैं, किंतु उसके चित्तमें तो अबतक उसकी प्रियतमा पत्नी सुन्दरी ही विराज रही है।

बुद्धने अत्यन्त ही मनोवैज्ञानिक रीति से उसके चरित्र का उदात्तीकरण किया है और अन्ततः नन्द तमाम वासनाओंसे ऊपर उठकर जन्म, जरा और मरण से मुक्त स्थिरात्मा हो जाते हैं। उनका धीरललितवाला चरित्र धीरप्रशान्तमें परिणत हो जाता है।

बौद्ध प्रज्ञा और एआई: भावी शिक्षा एवं व्यक्तित्व विकास के आयाम

सुजीत कुमार, शोध-छात्र

समकालीन ज्ञान-युग में जनरेटिव कृत्रिम बुद्धिमत्ता (Generative AI) के अभूतपूर्व प्रसार ने मानव संज्ञान और शैक्षणिक पद्धतियों के सम्मुख गहरे प्रश्न खड़े कर दिए हैं। जहाँ तकनीकी प्रणालियाँ सूचना-सुलभता और कार्यकुशलता के नए क्षितिज खोल रही हैं, वहीं शिक्षार्थियों में 'संज्ञानात्मक पराश्रयता' (Cognitive Offloading) और 'ज्ञानात्मक अपक्षय' (Epistemic Atrophy) के गंभीर लक्षण प्रकट हो रहे हैं। हाल के अध्ययन (2026) दर्शाते हैं कि एआई-सहायता प्राप्त छात्रों का तात्कालिक प्रदर्शन बढ़ता है, परंतु बिना एआई के उनकी प्रतिधारण क्षमता घट जाती है।

यह आलेख बौद्ध ज्ञानमीमांसा की केंद्रीय अवधारणा 'प्रज्ञा' और समकालीन यांत्रिक बुद्धिमत्ता के पारस्परिक संबंधों का अन्वेषण करता है। आचार्य वसुबन्धु प्रतिपादित 'त्रिविध प्रज्ञा' (श्रुतमयी, चिन्तामयी, भावनामयी), धर्मकीर्ति के अर्थक्रिया-सामर्थ्य तथा नागार्जुन के द्विसत्य सिद्धांत के आधार पर यह आलेख प्रतिपादित करता है कि वर्तमान एआई केवल भाषा के बाह्य वाक्यविन्यास (Syntax) और सांख्यिकीय संयोजन तक सीमित है; वह मानवीय चेतना के सजीव अर्थबोध (Semantics), नैतिक शील और अनुभूतिमूलक प्रज्ञा से शून्य है।

जॉन सीर्ल के 'चीनी कक्ष तर्क' और वरेला के 'मूर्त संज्ञान' (Embodied Mind) सिद्धांत के साक्ष्य से यांत्रिक संगणन की सीमाएँ रेखांकित की गई हैं। अंततः, भावी शिक्षा के पुनर्गठन हेतु एक 'प्रज्ञा-संवर्धित शैक्षणिक मॉडल' प्रस्तुत किया गया है, जो शिक्षार्थियों को एआई का उपयोग 'सूचना-संग्रह' (श्रुतमयी) हेतु प्रोत्साहित करता है, परंतु 'विश्लेषण' (चिन्तामयी) और 'आत्म-प्रतिबिंब' (भावनामयी) के चरणों में मानवीय स्वायत्तता को अनिवार्य बनाता है। यह मॉडल बौद्ध त्रिशिक्षा (शील-समाधि-प्रज्ञा) पर आधारित व्यक्तित्व-विकास ढांचा प्रदान करता है, ताकि डिजिटल युग में तकनीक मानवीय स्वायत्तता की स्थानापन्न न बनकर केवल एक कल्याणकारी साधन सिद्ध हो सके।

बीज-शब्द : बौद्ध प्रज्ञा, जनरेटिव एआई, संज्ञानात्मक पराश्रयता, त्रिविध प्रज्ञा, शैक्षणिक मॉडल, व्यक्तित्व-विकास

Vipassanā, Anattā and the Limits of Neuroscientific Explanation in Early Buddhism

Deepu Barik

Contemporary meditation research increasingly explains contemplative practice through psychological and neuroscientific concepts such as attention, emotion regulation, self-related processing, and neural connectivity. This development creates a philosophical problem for Buddhist Studies: if meditation has identifiable neural correlates, does that make Nibbāna itself a brain state? This paper addresses that question through a focused, qualitative dialogue between selected Early Buddhist sources and contemporary scientific literature. The study examines the relationship among insight-oriented practice, anattā (non-self), and Nibbāna, drawing principally on the Satipaṭṭhāna Sutta (MN 10), Anattalakkhaṇa Sutta (SN 22.59), and selected discourses concerning dependent arising and Nibbāna. These textual materials are compared with systematic reviews, meta-analyses, and recent neurophenomenological studies concerning meditation, self-related cognition, large-scale brain networks, and advanced contemplative states. The central distinction is between a neural correlate and an explanatory identity. The paper argues that neuroscience can legitimately investigate neural and cognitive conditions associated with meditation and can thereby illuminate aspects of contemplative experience. It cannot, however, by neural measurement alone establish that Nibbāna is identical with a particular brain configuration. Similarly, research on self-processing may offer a productive comparative lens for discussing anattā, but it does not constitute empirical proof of the Buddhist doctrine. The paper concludes that the most defensible relation between the two fields is non-reductive and methodologically plural: neuroscience can contribute empirical constraints and mechanistic insight, while Early Buddhist analysis preserves the distinct soteriological question of liberation. This approach avoids both scientistic reductionism and the unsupported claim that modern neuroscience has simply verified Buddhist doctrine.

Keywords: Vipassanā; Nibbāna; Anattā; Early Buddhism; Buddhist Philosophy; Neuroscience; Meditation; Self-Referential Processing; Neurophenomenology.

Buddhist Principles in Cāttanār's Maṇimēkalai: A Study of Buddhist Philosophy, Ethics and Social Vision

Dr.Jinitha K.S.,

Introduction

Tamil classical literature represents a remarkable meeting point of literary creativity, ethical reflection and philosophical thought. Among the Five Great Tamil Epics, *Maṇimēkalai* occupies a distinctive position because Buddhism is not merely an incidental religious background in the work; Buddhist doctrine constitutes one of the principal foundations of its narrative, ethical vision and philosophical discourse. The epic is attributed to Madurai Kūlavāṇikan Cīttalai Cāttanār and is generally understood as a continuation of the story associated with *Cilappatikāram*. Its heroine Maṇimēkalai is the daughter of Kōvalaṉ and Mādhavi. Unlike the worldly trajectory expected from her social circumstances, she ultimately rejects sensual and worldly life and chooses the Buddhist path of renunciation.

The traditional title *Maṇimēkalai Tuṟavu*, meaning approximately "The Renunciation of Maṇimēkalai," itself emphasizes the central movement of the narrative: the transition from worldly attachment to spiritual liberation. The epic therefore presents renunciation not simply as a personal choice but as the culmination of a process of knowledge, ethical transformation and realization of the impermanent nature of worldly existence.

Scholars have emphasized the intimate relationship between the narrative structure of *Maṇimēkalai* and Buddhist ideas. The narrative and doctrinal portions of the text are closely connected through the Buddhist understanding of causation and interdependent arising, while compassion for suffering beings forms an important element of its moral vision.

Cāttanār's literary purpose can therefore be understood within the broader religious and intellectual environment of Tamil society, in which different religious and philosophical traditions encountered one another. The epic does not merely state Buddhist doctrines ly. Instead, doctrines are dramatized through characters, events, debates, stories, miracles, acts of charity, renunciation and philosophical instruction.

The present paper proposes to examine the Buddhist principles embedded in *Maṇimēkalai* and to investigate how Cāttanār transforms Buddhist philosophy into a literary and socially meaningful vision.

Reading the Hevajra Tantra: A Short Introduction to its Exegetical Traditions

Souraditya Banerjee

Tantric Buddhist literature is vast and confusing. Since 8th century CE texts like the Guhyasamāja Tantra have been an epicentre for various exegetes of India, and later in Tibet. Being a very quintessential yoginī tantra, the Hevajra Tantra, too, has invited an enormous amount of exegetical works penned by human authors. These works include erudite commentaries, practitioner's manual, initiation manual, hymns and more. The ācāryas of various premier institutions were engaged in producing works around the Hevajra Tantra. Their main aim was to unpack the root text and give meaning to the obscure parts which was intentionally hidden by the original redactors. In doing so, the exegetes used various hermeneutical frameworks are frequently engaged in epistemological debates and arguments. They used their own philosophical standpoint to critically engage with the holy scripture.

In this paper, the author wishes to give a broad overview into the various exegetical materials on Hevajra Tantra that has survived in Sanskrit. While doing so, the author will also elucidate the need of exegesis, types of exegesis, modes of exegesis; highlighting the authors standpoint when they were writing those texts. Special attention will be given to the ambiguous root verses and how the prominent exegetes have understood it in different. Attention will be given to the commentaries of the Hevajra Tantra, focusing on ones written by Kamalanātha and Kelikuliśa.

Keywords: *Hevajra Tantra, Pañjikā, Sādhanopāyikā, Maṇḍalopāyika, Hevajra exegesis*

The Forgotten Buddhist Pantheon of Achutrajpur: Reconstructing Mahāyāna–Vajrayāna Iconography in Early Medieval Odisha

Tapas Sing Nina, . Dr. Ruman Banerjee

Achutrajpur near Banapur in present-day Khordha district preserves one of the most significant yet comparatively understudied Buddhist sculptural corpora of early medieval Odisha. The archaeological clearance of 1963 revealed an exceptional assemblage of 95 bronze images, including at least 75 Buddhist figures, together with votive stupas, a bronze bell, ritual objects, a Buddha head, architectural fragments and other antiquities. The National Mission on Monuments and Antiquities further records a diverse Achutrajpur corpus comprising Buddha, Avalokiteśvara, Mañjuśrī, Maitreya, Tārā, Vajrasattva, Vajrahunkāra, Heruka, Raktalokeśvara, Bhṛkuṭī and numerous votive stupas.

This paper proposes an integrated reconstruction of the Mahāyāna–Vajrayāna visual pantheon of Achutrajpur through the systematic study of archaeological evidence, museum collections, NMMA object records, Debala Mitra's documentation of the 1963 bronze hoard, and comparative evidence from Lalitgiri, Udayagiri, Ratnagiri, Kuruma and other Buddhist centres of Odisha. Individual images will be examined through mudrā, āsana, attributes, crowns, ornaments, halos, pedestals, attendant figures, material, stylistic features and chronology, and interpreted against the iconographic prescriptions of the *Sādhanamālā* and *Niṣpannayogāvalī*. Donaldson's comprehensive study of Odisha's Buddhist sculpture provides an important comparative framework for relating archaeological images to textual traditions and regional artistic development. Rather than treating Achutrajpur as an isolated collection of sculptures, the study reconstructs its fragmented corpus as a visual archive of changing Buddhist religious practice, examining the transition from Buddha and Bodhisattva imagery to an increasingly elaborate pantheon of female and esoteric Vajrayāna deities. It further investigates the interaction between Buddhist, Brahmanical and Jaina visual traditions evident within the wider archaeological context.

The paper argues that Achutrajpur offers important evidence for understanding the regionalization, diversification and visual expression of Mahāyāna–Vajrayāna Buddhism in early medieval Odisha.

Keywords: Achutrajpur; Banapur; Bud8dhist Art; Buddhist Iconography; Mahāyāna;

The Role of Satipaṭṭhāna in Managing Pain and Grief among Terminally Ill Patients

Baragama Sri Rahula,

Human life is inevitably marked by illness, ageing, and death. When an illness reaches a stage at which recovery is no longer expected, the patient must often face physical pain together with psychological experiences such as grief, anxiety, fear, and the loss of hope. Although contemporary palliative care has developed a range of approaches for relieving physical symptoms, the emotional and spiritual dimensions of the dying process may require further attention. This study examines the practical application of Satipaṭṭhāna, the four foundations of mindfulness, in responding to pain and grief among terminally ill patients. The study draws primarily on the Mahāsatipaṭṭhāna Sutta and the Satipaṭṭhāna Sutta, while also considering

relevant narrative accounts such as the Girimānanda Sutta and the Mahākassapatthera Bojjhaṅga Sutta. Particular attention is given to kāyānupassanā, vedanānupassanā, cittānupassanā, and dhammānupassanā, and to how these four foundations may relate to bodily discomfort, painful feelings, emotional distress, and experiences of loss. The study employs a qualitative methodology based on textual analysis, using relevant psychological and palliative-care literature to clarify contemporary understandings of pain and grief. The study suggests that Satipaṭṭhāna can be understood as a structured contemplative approach that may support patients in observing bodily changes, painful sensations, difficult mental states, and experiences of loss with greater awareness and acceptance. At the same time, its application in contemporary palliative care requires sensitivity to the physical condition, preferences, and individual circumstances of each patient.

Keywords: Grief, kāyānupassanā, pain management, Satipaṭṭhāna, terminal illness

Jain Lay Ethics and Spiritual Progression: A Comparative Study of the Twelve Vows and Eleven Pratimās in Jain Householders' Conduct

Hansi Surana

In Jain philosophy, the ultimate aim of liberation *(mokṣa)* is achieved through right belief, right knowledge, and right conduct. While ascetic conduct requires the complete observance of five major vows, householder conduct is guided by two foundational frameworks: the 12 vows of householders *(śrāvaka vrata)* and the 11 successive modal stages *(pratimā)*. Despite rich scholarly work in Jain philosophy, comparative analysis between these two phenomena remains notably lacking. This research bridges this gap by systematically analysing and comparing the 12 vows *(śrāvaka vrata)* and 11 modal stages *(pratimā)* to explore their significance, interrelationships, similarities, and differences. Utilizing a review of published literature alongside an examination of primary and secondary Jain texts, the study constructs a framework to understand how these practices converge and diverge.

The analysis reveals that while both frameworks share the ultimate objective of attaining liberation, they differ significantly in intensity, duration, and core focus. The 12 vows center on abstinence from inauspicious karma and permit certain practical relaxations, whereas the 11 modal stages demand stricter, lifetime commitments devoid of transgressions, progressively elevating the householder toward an ascetic lifestyle. For instance, while specific vows advocate for chastity and limiting possessions, advanced modal stages require complete celibacy and the absolute renunciation of worldly occupations and properties. Furthermore, the study highlights critical interconnections, such as the second modal stage *(vrata pratimā)* encompassing the strict observance of all householders' vows, and the reciprocal relationship between the final vow of giving alms and the final modal stage of receiving them. By identifying these distinct points of convergence and divergence, this research provides deeper insights into the unique ethical conduct and spiritual progression of householders within Jain philosophy.

Keywords: Jainism, Jain Ethics, Householder Conduct, *śrāvakācāra, dvādaśa vrata, ekādaśa pratimā,* Spiritual Progression

Prākṛta Influences in Śrīdhara's Vivāhādikarmapañjikā: A Study of Linguistic Interaction in the Saṃskṛta Ritual Manual

Ayushi deepak

Languages are organized into genealogical families based on their historical and linguistic descent. Those languages that have evolved in India are categorized within the Indo-Āryan family. Vedic and Classical *Saṃskṛta* are classified as Old Indo-Āryan languages and *Prākṛta* dialects as middle Indo-Āryan languages. *Saṃskṛta,* regarded as refined and standardized, is associated with elite and scholarly communities. *Prākṛta*, originating from the *prakṛti* (nature), being natural and easy, is associated with common people and also known as *lokabhāṣā* or *janabhāṣā*. Both languages have passed on linguistic and grammatical characteristics, yet *Prākṛta* acts as the bridge between the *Saṃskṛta* and modern Indian languages. Nevertheless, both languages coexisted in *Orissa* during the 16th century when *Śrīdhara* composed *Vivāhādikarmapañjikā*, a significant *Saṃskṛta* ritual manual in the *Paippalāda* tradition, illustrating the performance of Atharvavedic domestic rituals. This *Saṃskṛta* text incorporates lexical and phonological elements traceable to *Prākṛta* usage, often recognised as non-standard *Saṃskṛta* or vernacular-influenced usage. It offers valuable insights into the linguistic interactions between *Saṃskṛta* and *Prākṛta* in medieval India. It also exemplifies how *Saṃskṛta* authors navigated multilingual environments, thereby enriching our understanding of cultural and linguistic negotiations in the composition of ritual literature. This study investigates these influences with the objective of identifying the *Prākṛta*-derived features present in *Śrīdhara*'s work. The analysis highlights how *Prākṛta* contributed to shaping the communicative and pragmatic dimensions of ritual texts, particularly in sections meant for wider, local audiences. By examining specific instances of on nominal stems, genders, compounds and *deśi* words the paper demonstrates that the *Vivāhādikarmapañjikā* reflects a dynamic linguistic continuum, underlining the permeability of linguistic boundaries between *Saṃskṛta* and *Prākṛta* rather than a rigid division.

***Keywords*:** *Prākṛta*, *Śrīdhara*, *Vivāhādikarmapañjikā*, Linguistic Interactions, *Saṃskṛta*, Ritual Manual, Multilingual

पाँच महाव्रतों का महत्व

नरेन्द्र कुमार पाण्डेय

जैन साहित्य में गृहस्थों के लिए अणुव्रत और मुनियों के लिए महाव्रत की चर्चा पायी जाती है। मुनियों के व्रत महाव्रत अर्थात् बड़े व्रत कहलाते हैं, क्योंकि वह हिंसादि का पूर्णतः त्यागी होता है। सर्वविरति अर्थात् सर्व त्याग रूप महाव्रत पाँच हैं - अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह। इन्हें क्रमशः 1. सर्वप्राणातिपात-विरमण 2. सर्वमृषावाद-विरमण 3. सर्वअदत्तादान-विरमण 4. सर्वमैथुन-विरमण और 5. सर्वपरिग्रह विरमण भी कहते हैं।

आत्मिक विकास में बाधक कर्म बन्ध को रोकने तथा बन्धे हुए कर्मों को नष्ट करने के लिए इन पाँच महाव्रतों की अनिवार्यता मानी गयी हैं, जिसमें व्यक्ति और समाज दोनों का कल्याण होता है। इस प्रकार व्यक्तित्व विकास और समाज दोनों के उत्कर्ष के लिए पाँच महाव्रतों का अत्यधिक महत्व है।

आचार्य हरिभद्र के कथा साहित्य में प्रतिपादित लोक-जीवन

गीता पाण्डेय

भारतीय कथा साहित्य में संस्कृत एवं प्राकृत के महान लेखक एवं उद्भट विद्वान आचार्य श्री हरिभद्र सूरि का अद्वितीय स्थान है। तत्कालीन भारतीय समाज, लोक-व्यवस्था, कला-कौशल आदि के अध्ययन की अपेक्षा से इनकी कथाओं की असाधारण उपयोगिता है। आचार्य हरिभद्र के कथोपकथाओं के प्रसंग में तत्कालीन भारतीय लोक-जीवन का यथार्थ स्वरूप उपस्थित किया है। पारिवारिक जीवन, स्त्रियों के स्वप्न, उनके दोहद, शिशुओं के जन्म, जन्मोत्सव, वैवाहिक उत्सव, राजाओं का जीवन, सामूहिक जन-समारोह, पर्व-त्योहार, जादू-टोने, जनजीवन में कलाभिरुचि, रीति-नीति, वाणिज्य-व्यवसाय आदि से सम्बद्ध अनेक ऐसे सजीव चित्र लेखक ने अपनी कृतियों में इस सुन्दरता से संजोये हैं कि भारतीय समाज, संस्कृति व जीवन की सजीव झांकी पाठकों को प्राप्त हो जाती है।

पार्श्वनाथ का ऐतिहासिक एवं लोकव्यापी व्यक्तित्व : श्रीपार्श्वनाथचरितमहाकाव्य के परिप्रेक्ष्य में

रोहित सुन्द्रिया

भारतीय श्रमण परम्परा की विकासयात्रा में तेईसवें तीर्थंकर भगवान पार्श्वनाथ का व्यक्तित्व धार्मिक, दार्शनिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक दृष्टियों से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। यद्यपि जैन परम्परा का सुव्यवस्थित प्राचीन साहित्य मुख्यतः भगवान महावीर के युग से सम्बद्ध प्रतीत होता है, तथापि जैन आगम, प्राकृत साहित्य एवं अन्य प्राचीन स्रोतों में पार्श्वनाथ और उनकी परम्परा के पर्याप्त संकेत उपलब्ध होते हैं। इस अध्ययन का उद्देश्य श्रीपार्श्वनाथचरितमहाकाव्य के परिप्रेक्ष्य में पार्श्वनाथ के ऐतिहासिकता एवं लोकव्यापी व्यक्तित्व का सम्यक् अनुशीलन करना है। जिसमें पार्श्वनाथ की ऐतिहासिक उपस्थिति, उनके धर्म-दर्शन, अहिंसा-प्रधान जीवनदृष्टि, तप, संयम तथा लोकमंगलपरक चिन्तन का विश्लेषण किया गया है। पार्श्वनाथ की महत्ता केवल जैन धार्मिक परम्परा तक सीमित न हो कर व्यापक भारतीय सांस्कृतिक चेतना में परिलक्षित होती है। अर्धमागधी आगमों में उल्लिखित पार्श्वपत्यीय परम्परा इस बात का महत्त्वपूर्ण प्रमाण प्रस्तुत करती है कि महावीर के समय तक पार्श्वनाथ के अनुयायियों की एक सुदृढ़ धार्मिक परम्परा विद्यमान थी। भगवतीसूत्र, आचारांग तथा उत्तराध्ययनसूत्र आदि में प्राप्त प्रसंग पार्श्वनाथ के धर्म, ज्ञान, तप एवं आचार की प्रतिष्ठा को उद्घाटित करते हैं। इस दृष्टि से पार्श्वनाथ को केवल एक धार्मिक व्यक्तित्व के रूप में देखना उनके बहुआयामी प्रभाव को सीमित करना होगा।

प्रस्तुत शोधपत्र में श्रीपार्श्वनाथचरितमहाकाव्य में निरूपित पार्श्वनाथ के चरित्र और उनके लोकव्यापी प्रभाव के अन्तर्सम्बन्ध का विश्लेषण करते हुए यह प्रतिपादित करने का प्रयास किया गया है कि उनका व्यक्तित्व अहिंसा, आत्मसंयम, विवेक, करुणा एवं आध्यात्मिक उन्नयन पर आधारित ऐसी जीवनदृष्टि का प्रतिनिधित्व करता है, जिसने भारतीय जनमानस की धार्मिक एवं सांस्कृतिक चेतना को दीर्घकाल तक प्रभावित किया। अतः पार्श्वनाथ का अध्ययन जैन दर्शन के साथ-साथ भारतीय बौद्धिक एवं सांस्कृतिक इतिहास के व्यापक परिप्रेक्ष्य में भी महत्त्वपूर्ण सिद्ध होता है।

Anekāntavāda: A Philosophical Approach to Multiple Perspectives and Tolerance in Contemporary Society

Bhakti

Anekāntavāda, one of the significant philosophical doctrines of Jainism, presents a profound approach to understanding reality through the recognition of multiple perspectives. The term Anekāntavāda literally signifies the doctrine of “non-one-sidedness,” suggesting that reality is

complex and cannot be adequately understood from a single viewpoint. According to this philosophical principle, different perspectives may reveal different aspects of the same reality. Therefore, Anekāntavāda encourages intellectual humility, openness to diverse opinions, and respectful dialogue rather than rigid attachment to a single interpretation.

The present research examines Anekāntavāda as a philosophical framework for developing tolerance and constructive dialogue in contemporary society. In the modern world, social, cultural, religious, political, and ideological differences frequently become sources of disagreement and conflict. The increasing influence of social media and digital communication has further intensified the tendency to form quick judgments and reject perspectives that differ from our own. In this context, the Jain doctrine of Anekāntavāda provides a valuable philosophical perspective for recognizing diversity without necessarily considering every opposing view to be completely false.

The study primarily follows a conceptual and analytical methodology, drawing upon the philosophical principles of Jainism and examining their relevance to contemporary social life. It explores the relationship between Anekāntavāda, intellectual tolerance, pluralism, dialogue, and peaceful coexistence. The research also considers how the principle of Syādvāda, or conditional predication, complements Anekāntavāda by encouraging individuals to understand statements within particular contexts and conditions.

The study argues that Anekāntavāda does not merely promote the acceptance of different opinions; rather, it encourages individuals to critically examine their own assumptions while attempting to understand the partial truth contained in alternative perspectives. Thus, it provides an ethical and philosophical foundation for meaningful communication and mutual respect.

The research concludes that Anekāntavāda remains highly relevant in contemporary society. Its emphasis on non-absolutism, perspective-taking, dialogue, and tolerance can contribute to reducing polarization and promoting peaceful coexistence in a diverse society. By moving beyond rigid either-or thinking toward a more inclusive understanding of reality, Anekāntavāda offers a timeless philosophical approach to navigating disagreement and diversity in the modern world.

Keywords: Anekāntavāda, Jain Philosophy, Multiple Perspectives, Tolerance, Pluralism, Syādvāda, Dialogue, Contemporary Society, Non-Absolutism, Peaceful Coexistence

महावीराचार्य का गणितीय चिंतन - गणितसारसंग्रह के विशेष संदर्भ में

हेमलता गाँधी

भारतीय गणित के इतिहास में जैनाचार्यों का योगदान गणित को एक व्यवस्थित एवं स्वतंत्र ज्ञान-विषय के रूप में विकसित करने की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। इस परंपरा में नवम शताब्दी के जैन गणितज्ञ महावीराचार्य द्वारा रचित गणितसारसंग्रह विशेष स्थान रखता है। महावीराचार्य ने गणित की उपयोगिता को लौकिक एवं धार्मिक जीवन सहित विभिन्न ज्ञान-विषयों से संबद्ध माना तथा संख्याओं, गणितीय संक्रियाओं और स्थानमान पद्धति का व्यवस्थित विवेचन किया (Rangacharya, 1912, pp. 5–8)| गणितसारसंग्रह में शून्य, धनात्मक एवं ऋणात्मक राशियों, गुणन, वर्ग, वर्गमूल, घन तथा घनमूल से संबंधित विभिन्न विधियों का निरूपण मिलता है (Rangacharya, 1912, pp. 6–25)| ऋणात्मक संख्या के वर्गमूल तथा शून्य से विभाजन संबंधी महावीराचार्य की अवधारणाएँ आधुनिक गणितीय मान्यताओं के साथ तुलनात्मक अध्ययन की संभावना प्रस्तुत करती हैं। इसी प्रकार ज्यामिति एवं क्षेत्रमिति के अंतर्गत **दीर्घवृत्त** के क्षेत्रफल और परिमाप से संबंधित उनका विवेचन भारतीय गणित के इतिहास में विशेष महत्त्व रखता है; आधुनिक अध्ययन भी महावीराचार्य के ज्यामितीय योगदान तथा वर्तमान geometry से उसके संबंधों को रेखांकित करता है (Koley, 2025, pp. 12–26).

इस ग्रंथ की एक विशिष्ट विशेषता गणितीय विषयवस्तु की काव्यात्मक एवं छंदबद्ध प्रस्तुति है। आधुनिक गणित में अमूर्त अवधारणाओं को मुख्यतः symbolic equations एवं formal notation के माध्यम से व्यक्त किया जाता है, जबकि महावीराचार्य ने गणितीय नियमों और समस्याओं को संस्कृत पद्यात्मक संरचना में प्रस्तुत किया। साथ ही, गणक के अपेक्षित गुणों का निरूपण तथा जिनमंदिर, पूजा, पुष्प, मणि और दान आदि से जुड़े उदाहरण गणितीय ज्ञान को तत्कालीन सांस्कृतिक एवं धार्मिक परिवेश से जोड़ते हैं (Rangacharya, 1912, pp. 10–11, 112–126). अतः प्रस्तुत अध्ययन गणितसारसंग्रह में गणितीय तर्क, काव्यात्मक अभिव्यक्ति और सांस्कृतिक संदर्भों का विश्लेषण करते हुए महावीराचार्य की गणितीय प्रस्तुति की तुलना आधुनिक symbolic mathematics से करता है। यह अध्ययन इस बात को रेखांकित करता है कि गणितीय ज्ञान की तार्किक संरचना के साथ-साथ उसकी अभिव्यक्ति की भाषा, शैली और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि भी गणितीय चिंतन के ऐतिहासिक विकास को समझने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

प्रमुख शब्द: महावीराचार्य, गणितसारसंग्रह, जैन गणित, शून्य, वर्गमूल, घनमूल, गणकगुण, जैन संस्कृति, गणित और धर्म।

अनेकान्त का आधार तथा स्वरूप

Mrs. Usha K. Jain

प्रश्न उठता है कि अनेकान्त क्या है। अनेकान्त जैन दर्शन का प्रमुख सिद्धान्त है, जिसकी भित्ति पर समस्त जैन तत्त्वज्ञान स्थित है।

अनेकान्त का अर्थ क्या है। अनेकान्त दो शब्दों के मेल से बना है – अनेक और अन्त। अनेक का अर्थ है एक से भिन्न अर्थात दो। और अन्त शब्द का अर्थ है धर्म। यद्यपि अनेक में दो से लेकर अनन्त धर्म आ सकते हैं, लेकिन यहाँ दो धर्म ही विवक्षित हैं। प्राकृत, हिन्दी और अंग्रेजी भाषाओं में केवल दो ही वचन होते हैं। एक वचन और बहुवचन। इसका तात्पर्य यह है कि दो भी बहुत या अनेक हैं। अनेकान्त के विचार के समय अनेक का अर्थ अनन्त करना ठीक प्रतीत नहीं होता। अनेकान्त का ऐसा अर्थ भी किया जाता है कि अनेक रूपादि गुण और पर्याय आदि से विशिष्ट अर्थ का नाम अनेकान्त है। अर्थ को अनेकान्त कहना तो ठीक है लेकिन उसको केवल अनेक धर्म सहित होने के कारण अनेकान्त कहना ठीक नहीं है। क्योंकि ऐसा कहने में अनेकान्त का कोई महत्व नहीं रहता। जैनतर दर्शन भी तो इस प्रकार का अनेकान्त (अनेक धार्मिक अर्थ) मानते ही हैं। ऐसा कौन सा दर्शन है जो अर्थ को रूप, रसादि विशिष्ट या सत्य, रज आदि अनेक धर्म विशिष्ट नहीं मानता। फिर जैन दर्शन के अनेकान्त में विशेषता ही क्या कर रह जाती है।

तब प्रश्न होता है कि वास्तव में अनेकान्त क्या है। इस प्रश्न का उत्तर इस प्रकार है–

यदेव तत् तदेव अतत्, यदेवैकं तदेवानेकम्, यदेव सत् तदेवासत्, यदेव नित्यं तदेवानित्यमित्येकवस्तुवस्तुनिष्पादकपरस्परविरुद्धधर्मप्रकाशनमनेकान्तः।

(समयसार १०/२४७ आत्मख्याति)

जो वस्तु तत्त्वस्वरूप है वही अतत्त्वस्वरूप भी है, जो वस्तु एक है वही अनेक भी है, जो वस्तु सत् है वही असत् भी है। तथा जो वस्तु नित्य है वही अनित्य भी है। इस प्रकार एक ही वस्तु में वस्तुत्व के कारणभूत परस्पर विरोधी धर्मों का प्रकाशन अनेकान्त है।

इस प्रकार इस निबंध में जैन धर्म के मुख्य सिद्धांत अनेकांतवाद और स्याद्वाद का विवेचन करणे का प्रयत्न करूँगी।

जैन धर्म में द्रव्य का स्वरूप

प्रो० (डॉ०) दिवांशु कुमार

जैनों के अनुसारजैन-मत के प्रवर्तक चौबीस तीर्थ कर थे। अत्यन्त प्राचीनकाल से ही 24 तीर्थंकरों की एक लंबी परंपरा चली आ रही थी। ऋषभदेव इस परंपरा के प्रथम तीर्थकर मान जाते हैं। वर्धमान या महावीर इस के चौबीस वें या अंतिम तीर्थ कर थे। तीर्थंकरों को 'जिन' भी कहते हैं। 'जिन' शब्द का अर्थ विजेता या जीतने वाला। जैन तीर्थ करों को 'जिन' नाम इसलिए दिया गया हौ कि इन्होंने राग-द्वेष को जीतकर निर्वाण प्राप्त किया है।

जैन ईश्वर को न ही मानते हैं। व तीर्थं करों अर्थात् जैन-मत के प्रवर्तकों की ही उपासना करतेहैं। तीर्थ कर मुक्त होते हैं। मोक्ष पाने के पूर्व ये भी बंधन में थे किंतु साधना के द्वारा ये मुक्त, सिद्ध, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान तथा आनंदमय हो गए हैं। जैनों का यह विश्वास के कि बंधन ग्रस्त सभी जीव जिनों के दिख लाए मार्ग पर चल सकत हैं और उनकी तरह पूर्णज्ञान, पूर्ण शक्ति तथा पूर्ण आनंद प्राप्त कर सकत हैं।

वस्तुओं के अनंत धर्म होते हैं। धग 'किसी धर्मी का होता है। जिसका धर्म होताहै, उसे धर्मी कहते हैं। और धमी में जो लक्षण पाया जाता है, उसे धर्म कहत हैं। धर्मी के लिए दूसरा नाम द्रव्य है। प्रत्येक द्रव्य के दो प्रकार के धर्म होते हैं। स्वरूप या नित्य धर्म तथा आगंतुक या परिवर्तनशील धर्म। स्वरूप धर्मवे हैं जो द्रव्य में सदा वर्तमान रहते हैं। ऐसे धर्मों के बिनाद्रव्य का अस्तित्व ही असंभव है। उदाहरणार्थ, चैतन्य आत्मा का स्वरूप-धर्महै। आगंतुक धर्मद्रव्य में सर्वदा वर्तमान नहीं रहते हैं। व `आते-जाते रहते हैं। इच्छा, संकल्प, सुख-दुःखये आत्मा के परिवर्तनशील धर्म हैं। इन्हीं धर्मों से द्रव्यों का परिवर्तन होता है। जैन दार्शनिक स्वरूप धर्मों को 'गुण' कहते हैं तथा आगंतुक धर्मों को पर्याय कहते

हैं। गुण अपरिवर्तनशील तथा पर्याय परिवर्तनशील होते हैं। इन विचारों के अनुसार द्रव्य की परिभाषा इस प्रकार की जा सकतीहै- "द्रव्य वह है जिस में गुण तथा पर्याय हों।"

यह संसार भिन्न-भिन्न प्रकार के द्रव्यों के संयोग से बना है। द्रव्यों के गुण परिवर्तनशीलन हीं होते हैं। अतः इस दृष्टि से संसार नित्य है। किंतु उनके पर्याय बदलत रहते हैं। अतः इस दृष्टि से संसार अनित्य तथा परिवर्तनशील है। इस तरह जैन संसार को एक दृष्टि से नित्य तथा दूसरी दृष्टि से अनित्य मानतेहैं। एक दृष्टि से संसार की नित्यता ठीक है, किंतु दूसरी दृष्टि से इसका परिवर्तन भी ठीक है, स्याद्वाद के कारण विरोध की संभावना नही रह जाती है।

Voices of compassion: spiritual humanism in jain prakrit narratives

Dr. K. V. Suresh

Jain Prakrit literature represents one of the most profound expressions of ethical consciousness and spiritual humanism in the intellectual history of India. Rooted in the doctrines of ahiṃsā (non-violence), anekāntavāda (plurality of perspectives), compassion, renunciation, and self-realization, Jain Prakrit narratives transcend the boundaries of sectarian religious literature and emerge as universal reflections on human dignity and moral responsibility. Written in accessible Prakrit languages rather than elite Sanskrit, these narratives democratized spiritual knowledge and brought philosophical insights into the realm of ordinary human experience. This article examines the spiritual humanism embodied in Jain Prakrit narratives through an analysis of canonical texts, narrative traditions, ethical teachings, and poetic expressions. It explores how Jain thinkers employed narrative structures to communicate ideals of compassion, equality, ecological sensitivity, and spiritual liberation. The article further investigates the literary aesthetics of Jain Prakrit works and their enduring relevance in contemporary discussions on peace, ethics, coexistence, and human values. Through textual analysis and philosophical interpretation, the study argues that Jain Prakrit literature constitutes a timeless humanistic tradition that integrates spirituality with ethical responsibility.

Keywords: Jain Prakrit, Spiritual Humanism, Ahiṃsā, Compassion, Jain Literature, Prakrit Narratives, Indian Philosophy, Ethics, Non-violence, Anekāntavāda

जैन प्राकृत साहित्य में सीता का चरित्र: रामराज्य की आधारशिल

लेखक:- डॉ० मैनेजर प्रसाद

प्राकृत एवं जैन शास्त्र विभाग

वीर कुंवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा, बिहार

प्राकृत ग्रंथों में सीता द्वारा अग्नि-परीक्षा से इंकार करना उनके आत्म-सम्मान और आत्म-विश्वास को दर्शाता है। वे स्पष्ट कहती हैं कि मेरा चरित्र ही मेरी पवित्रता का प्रमाण है, अग्नि नहीं। यह विचार आधुनिक नारी शक्तिकरण के दृष्टिकोण से अत्यंत प्रासंगिक है। सीता यहाँ केवल पत्नी नहीं, बल्कि राम को धर्म और मर्यादा का बोध कराने वाली शक्ति के रूप में हैं। उनके बिना राम का राज्य अधूरा है।

रामराज्य की अवधारणा में सीता का समावेश उसे अधिक मानवीय और न्यायपूर्ण बनाता है। जहाँ राम कानून और व्यवस्था के प्रतीक हैं, वहीं सीता करुणा, न्याय और समानता की प्रतीक हैं। प्राकृत साहित्य में सीता का पाताल प्रवेश भी पलायन नहीं, बल्कि अन्याय के विरुद्ध प्रतिरोध के रूप में देखा गया है।

जैन प्राकृत साहित्य में सीता का चरित्र रामराज्य को केवल पुरुष-सत्ता शासन से निकालकर एक संतुलित, नैतिक और समतामूलक समाज की स्थापना करता है। आदर्श राज्य की कल्पना तभी पूर्ण होगी जब उसमें सीता जैसे स्त्री चरित्र को समान स्थान मिलेगा।

सारांश:- भारतीय परंपरा में राम के साथ सीता का चरित्र भी उतना ही महत्वपूर्ण है। प्रायः आदर्श राज्य की कल्पना राम के बिना अधूरी मानी जाती है, परंतु प्राकृत साहित्य यह सिद्ध करता है कि रामराज्य की वास्तविक आधारशिला सीता हैं। प्रस्तुत शोधपत्र में जैन प्राकृत ग्रंथ विमलसूरि कृत `पउमचरियम` और संघदास कृत `वसुदेवहिंडी` के आधार पर सीता के चरित्र का विश्लेषण किया गया है।

संस्कृत परंपरा में जहाँ सीता को त्याग और सहनशीलता की मूर्ति बताया गया है, वहीं प्राकृत साहित्य में सीता को अत्यंत दृढ़, विदुषी और निर्णय लेने में सक्षम नारी के रूप में चित्रित किया गया है। विमलसूरि कृत पउमचरियम के अनुसार सीता रावण की पुत्री हैं, जिसे जन्म के समय की गई भविष्यवाणी के कारण त्याग दिया गया था। यह कथा सीता को जन्म से ही संघर्षशील और तेजस्वी बनाती है।

श्रेणिक चरित्र में मगध

डॉ० देवाश्रय प्रसाद सिंह

सहायक प्राध्यापक

प्राकृत विभाग,

वर्द्धमान महावीर महाविद्यालय, पावापुरी, (नालन्दा)

विरचित ग्रन्थ निहिक-चरित्र में मगध का विशद् वर्णन मिलता है। महावीर तीर्थकर के समय में मगध अत्यन्त सुविख्यात महा जनपद था। इस ग्रन्थ में राजगृह नगर के शोभा का वर्णन करते हुए बताया गया है कि यहाँ पर उत्कृष्ट तथा श्रेष्ठ लोगों का निवास था। यहाँ बड़े-बड़े साधु महात्मा बिहार के लिए आते थे। कुमार श्रेणिक के मार्ग में नदी भी

मिली थी, जिसमें बिना जूता उतारे वह प्रवेश किया था। गुफा का वर्णन करते हुए श्रेणिक चरित्र के तृतीय अध्याय में यह वर्णन किया गया है कि कुमार श्रेणिक वन मार्गों को देखते हुए अनेक प्रकार के पर्वत एवं गुफाओं को निहारते हुए मत्त मयूर के आनन्द पूर्वक देखते थे। मार्ग में वृक्ष के नीचे कुमार श्रेणिक का छत्री लगाना भी एक महत्व रखता है। अर्थात् तत्कालीन समय में वृक्ष आदि की भी कमी नहीं थी। नगर कहीं बसे हुए दृष्टिगोचर होते थे तो कहीं उमड़े हुए दृष्टिगोचर होते थे।

जिस प्रकार विष्णु श्री समन्वित अर्थात् लक्ष्मी सहित हैं, उसी प्रकार यह मेरू पर्वत भी श्री समन्वित अर्थात् नाना प्रकार की शोभाओं से युक्त है। इस मेरू पर्वत पर सुभद्र, भद्रशाल तथा स्वर्ग के नन्दन वन, अनेक प्रकार के पुष्पों की सुगन्धित करने वाले सौमनस्य वन हैं। यह मेरू अपांडु अर्थात् सफेद नहोकर भी पांडुशिला का धारक सोलह अकृत्रिम चैत्यालायों से युक्त अपनी प्रसिद्धि से सबको व्याप्त करने वाला अर्थात अत्यन्त प्रसिद्ध और नाना प्रकार के देवों से युक्त है।

बड़े भारी ऊँचे परकोटे को धारण करने वाला, सुवर्णमय और नाना प्रकार के रत्नों से शोभित, यह मेरू, निराधार स्वर्ग के टिकने के लिए मानों एक ऊँचा खम्भा ही है ऐसा जान पड़ता है। यह मेरू पर्वत तीनों लोक में अनादिनिधन, अकृत्रिम, स्वभाव से ही और अनेक पर्वतों का स्वामी अपने आप ही सुशोभित है।

अशोक के अभिलेखों में प्रशासन विज्ञान प्रशासन की सर्वोच्च सत्ता

प्रो. (डॉ.) रामजी राय,

अभिलेखों के अनुसार प्रशासन की सर्वोच्च सत्ता उस राजा में निहित थी, जो आज महान् सम्राट् अशोक के नाम से विश्वविख्यात है। उसका प्रारम्भिक जीवन भले ही साम्राज्यवादी नीतियों तथा हिंसात्मक प्रवृत्तियों से ओत-प्रोत रहा हो तथा उसके कारण कलिंग पर विजय प्राप्त करने के लिए असंख्य लोगों को असामायिक काल कवलित होने पर मजबूर होना पड़ा हो, किन्तु कलिंग युद्ध में हुए रक्तपात से उसका हृदय ऐसा द्रवित हुआ कि उसने उसी समय भेरीघोष को धर्मघोष में परिवर्तित कर दिया। उसने न केवल मनुष्यों के प्रति अहिंसा की नीति अपनायी, बल्कि अन्य प्राणियों के प्रति भी अहिंसक बना। कलिंग युद्ध के बाद वह पूर्णतः अहिंसा की ओर प्रवृत्त हो गया। उसके अनेक अभिलेखों में अहिंसा का समर्थन और हिंसा की निन्दा मिलती है। भाब्रु, लुम्बिनी और सारनाथ के अभिलेखों से प्रमाणित होता है कि बुद्ध, धर्म और संघ के प्रति उसकी दृढ़ भक्ति थी।

परन्तु, उसकी सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि वह किसी सम्प्रदाय विशेष का पक्षपाती नहीं था। सभी धर्मों के प्रति उसकी समान दृष्टि थी। उसने कलिंग युद्ध के बाद अपना सारा जीवन अहिंसा के प्रचार में ही व्यतीत किया और शस्त्र के स्थान पर धर्म के द्वारा एक ऐसे विशाल साम्राज्य का निर्माण किया, जिसके विपुल साक्ष्य शिला अभिलेखों के रूप में आज भी विद्यमान हैं। विश्व के इतिहास में अनेक विशाल साम्राज्यों के निर्माण हुए, किन्तु समय के साथ ही वे धुंधली छाया के रूप में परिणत हो गये, जबकि अशोक का साम्राज्य एवं शासन प्रणाली आज भी अमर है। यद्यपि सम्राट का पद उसे वंश-परम्परा से प्राप्त हुआ था, किन्तु अपने कुशल प्रशासन और लोक कल्याणकारी कार्यों से वह प्रजावत्सल सम्राट के रूप में प्रसिद्ध हुआ।

वैदिक पुराणों में वर्णित भूगोल के साथ तुलनात्मक समीक्षा

Ritu raj

विष्णुपुराण, मत्स्यपुराण, वायुपुराण और ब्रह्माण्डपुराण प्रभृति पुराणों में सप्तद्वीप और सप्तसागर वसुधरा का वर्णन आया है। यह वर्णन जैन हरिवंश पुराण और महापुराण के वर्णन की अपेक्षा बहुत भिन्न है। महाभारत में तेरह द्वीपों का निर्देश उपलब्ध होता है।[1] विष्णुपुराण में जम्बूद्वीप, प्लक्ष द्वीप, शाल्मलीद्वीप, कुशद्वीप, क्रौञ्चद्वीप, शाकद्वीप और पुष्करद्वीप के नाम आये हैं।[2] इन द्वीपों को लवण, इक्षु, सुरा, घृत, दधि, दुग्ध और मधुर जल के सात समुद्र वेष्टित किये हुए हैं।[3] ये द्वीप और समुद्र गोलाकार हैं और क्रमशः एक दूसरे से द्विगुणित हैं। द्वीपावरोधक वलयाकार समुद्रों का विस्तार द्वीपों के समान है। अर्थात् जम्बूद्वीप का विस्तार लवणसमुद्र के समान, प्लक्ष का इक्षुद्वीप के तुल्य, शाल्मलीद्वीप का सुरा समुद्र के समान, कुशद्वीप का घृत समुद्र के समान, क्रौञ्चद्वीप का दधिसमुद्र के समान, शाकद्वीप का दुग्धसमुद्र के समान और पुष्करद्वीप का मधुर जल समुद्र के समान है। जैन मान्यतानुसार प्रतिपादित असंख्यात द्वीप-समुद्रों में जम्बूद्वीप, क्रौञ्चद्वीप, और पुष्कर द्वीप के नाम वैदिक पुराणों में सर्वत्र आये हैं।[4]

प्राकृत साहित्य में राम के आदर्श राज्य की अवधारणा

मोहित कुमार

भारतीय परंपरा में "रामराज्य" आदर्श शासन का प्रतीक है। वाल्मीकि रामायण के अतिरिक्त जैन परंपरा के प्राकृत साहित्य में भी राम कथा विस्तार से मिलती है। प्रस्तुत शोधपत्र में विमलसूरि कृत _पउमचरियम_ और प्रवरसेन कृत _रावणवह_ के आधार पर प्राकृत साहित्य में वर्णित राम के आदर्श राज्य की अवधारणा का विश्लेषण किया गया है।

भारतीय परंपरा में "रामराज्य" आदर्श शासन का प्रतीक है। वाल्मीकि रामायण के अतिरिक्त जैन परंपरा के प्राकृत साहित्य में भी राम कथा विस्तार से मिलती है। प्रस्तुत शोधपत्र में विमलसूरि कृत _पउमचरियम_ और प्रवरसेन कृत _रावणवह_ के आधार पर प्राकृत साहित्य में वर्णित राम के आदर्श राज्य की अवधारणा का विश्लेषण किया गया है।

जैन मान्यता के अनुसार राम 8वें बलदेव थे। अतः प्राकृत ग्रंथों में राम को अहिंसक, धर्मनिष्ठ और प्रजावत्सल राजा के रूप में चित्रित किया गया है। _पउमचरियम_ में राम के राज्य को "धम्म-रज्ज" कहा गया है। इसके प्रमुख लक्षण सत्य, न्याय, समानता और लोक-कल्याण हैं। यहां युद्ध और हिंसा की निंदा की गई है। राम को "लोगाणं पिय" अर्थात जनता का प्रिय कहा गया है। राज्य का उद्देश्य प्रजा का सुख है, विजय नहीं। राज्य में कोई भूखा नहीं, कोई विधवा नहीं रोती।

रावणवह में राम के शासन को आदर्श बताया गया है। यहां कहा गया है कि "राया जणस्स दासो" अर्थात राजा जनता का सेवक है। राज्य में चोरी, अन्याय और शोषण नहीं है। कर व्यवस्था धर्मसम्मत है। रावण के "अधम्म-रज्ज" की तुलना में राम का राज्य नैतिकता और शांति का उदाहरण है। राजा दंड के स्थान पर सुधार पर बल देता है।

निष्कर्ष; प्राकृत साहित्य का रामराज्य केवल राजनीतिक आदर्श नहीं, बल्कि नैतिक और आध्यात्मिक आदर्श भी है। इसमें अहिंसा, अपरिग्रह और प्रजावत्सलता पर बल है। आज के सुशासन और लोकतंत्र के लिए भी यह अवधारणा प्रासंगिक है। प्राकृत साहित्य ने आदर्श शासन के विचार को जन-जन तक पहुंचाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

A Critical Evaluation of Merutuṅga’s Prabandhacintāmaṇi as a Historical Source

Aneesh Kumar B.S.

Compiled in 1304 CE by the *Śvētāmbara* Jain monk Merutuṅga within the Vaghela court of Gujarat, the Prabandhacintāmaṇi stands as a prominent Sanskrit *prabandha* detailing semi-

historical biographies spanning from the Vikrama era to the thirteenth century. Although explicitly intended by its author to "revive ancient stories" for an educated lay and courtly audience rather than to formulate a rigorous chronicle, modern historiography recognizes the text's severe limitations. These include prominent anachronisms, heavy reliance on oral folklore, pronounced regional and sectarian biases favouring Gujarati dynasties and Jain figures, and manufactured chronological precision, such as fabricated exact coronation horoscopes. This paper critically evaluates the *Prabandhacintāmaṇi* as a historical source by examining Merutuṅga's socio-religious context, textual history, and the methodology of narrative compilation. To rigorously test its reliability, selected biographical claims, regnal sequences, and political events within the text are systematically cross-checked against contemporary epigraphic, numismatic, and archaeological evidence, including royal copper-plate grants and temple inscriptions. The investigation reveals a dichotomous utility: while colorful anecdotes, specific daily astrological data, and several dynastic successions are unverified, historically anachronistic, or directly contradicted by primary stone inscriptions; such as Kumārapāla's alleged total ban on animal slaughter or the chronological displacement of the sixth-century astronomer Varāhamihira-specific architectural patronages and administrative milestones demonstrate remarkable historical concordance. Prime examples include the epigraphically verified construction of the Luna Vasahi temple at Mount Abu by the Jain ministers Vastupāla and Tejapāla, and military conflicts involving Mūḷarāja and Kumārapāla.

Ultimately, the study concludes that while the *Prabandhacintāmaṇi* is largely unreliable for uncorroborated factual reconstruction and political history, it remains an invaluable cultural and literary artifact. It offers profound insights into medieval Indian storytelling traditions, local historiography, and socioreligious mindsets, provided that its assertions are rigorously triangulated and corroborated by independent primary sources.

संस्कृत स्तोत्र साहित्य की परम्परा में मुनि प्रणम्यसागर विरचित चतुर्विंशति जिनस्तोत्रशतकम् का स्थान एवं वैशिष्ट्य

मोहित जैन

संस्कृत साहित्य की स्तोत्र-परम्परा भारतीय आध्यात्मिक एवं भक्तिकाव्य की अत्यन्त समृद्ध धरोहर है। वैदिक सूक्तों से प्रारम्भ होकर पुराण, आगम तथा जैन-बौद्ध साहित्य में स्तोत्र-विधा का व्यापक विकास हुआ है। जैन संस्कृत साहित्य में तीर्थंकरों, आचार्यों एवं मुनियों की स्तुतियों के माध्यम से भक्ति, दर्शन तथा साधना का उत्कृष्ट समन्वय दिखाई देता है। इसी परम्परा में प्रतिष्ठित विद्वान् मुनि प्रणम्यसागर द्वारा रचित चतुर्विंशति जिनस्तोत्रशतकम् एक महत्वपूर्ण कृति है, जिसमें चौबीस तीर्थंकरों के दिव्य गुणों का काव्यमय एवं दार्शनिक निरूपण किया गया है। इसमें कुल 109 श्लोक हैं, जिसमें विभिन्न छन्दों के माध्यम से 24 तीर्थंकरों की स्तुति की गई है। इस स्तोत्र काव्य में तीर्थंकरों की स्तुति परिचयात्मक है।

प्रस्तुत शोधपत्र का उद्देश्य चतुर्विंशति जिनस्तोत्रशतकम् का संस्कृत स्तोत्र साहित्य की परम्परा में स्थान निर्धारित करना तथा उसके वैशिष्ट्यों का विवेचन करना है। इस अध्ययन में वर्णनात्मक एवं विश्लेषणात्मक शोध-पद्धति का उपयोग किया गया है। ग्रन्थ की भाषा, शैली, छन्द, अलंकार, भावाभिव्यक्ति तथा जैन दार्शनिक तत्त्वों का परीक्षण किया जाएगा। साथ ही, पूर्ववर्ती जैन स्तोत्र-ग्रन्थों की परम्परा के आलोक में इसकी मौलिकता एवं विशिष्ट योगदान का भी मूल्यांकन किया जाएगा।

चतुर्विंशति जिनस्तोत्रशतकम् केवल स्तुतिपरक रचना नहीं है, बल्कि यह जैन दर्शन, नैतिक मूल्यों, आध्यात्मिक साधना तथा तीर्थंकर-भक्ति का समन्वित काव्य है। इसमें सरल किन्तु प्रभावशाली संस्कृत भाषा, भावप्रधान अभिव्यक्ति तथा शास्त्रीय काव्य-सौन्दर्य का संतुलित समावेश दृष्टिगोचर होता है। यह कृति आधुनिक संस्कृत जैन स्तोत्र साहित्य को समृद्ध करने के साथ-साथ शतक-परम्परा को भी नवीन आयाम प्रदान करती है।

निष्कर्षतः, यह कृति संस्कृत स्तोत्र साहित्य की परम्परा में एक उल्लेखनीय एवं विशिष्ट स्थान रखती है तथा जैन भक्तिकाव्य के विकास में इसका महत्त्वपूर्ण योगदान है।

मुख्य शब्द (Keywords)- संस्कृत स्तोत्र साहित्य, जैन स्तोत्र, मुनि प्रणम्यसागर, चतुर्विंशति जिनस्तोत्रशतकम्, जैन भक्तिकाव्य, तीर्थंकर-भक्ति, शतक साहित्य, संस्कृत काव्य, जैन दर्शन

द्रव्य-व्यवस्था

प्रो.डॉ.कमलकुमारजैन

यद्यपि द्रव्यका लक्षण सत् है, तथापि प्रकारान्तरसे गुण और ियायोंके समूहको भी द्रव्य कहते हैं। जैसे, जीव एक द्रव्य है, उसमें सुख ज्ञान आदि गुण ाये जाते हैं और नर नारी आदि ियायें ाई जाती हैं। ककन्तु द्रव्यसे गुण और ियायकी ृथक् सत्ता नहीं है। ऐसा नहीं है कक गुण ृथक् हैं, ियाय ृथक् हैं और उनके मेलसे द्रव्य बना है। ककन्तु अनादिकालसे गुणियायात्मक ही द्रव्य है। साधारण दृष्टिसे गुण ननत्य होते हैं और ियाय अननत्य होती हैं। अतः द्रव्यको ननत्य-अननत्य कहा जाता है। जैनिर्ानमें सत्ताका लक्षण उत्ाि, व्यय और ध्रौव्य माना गया है। अथात् ष्जसमें प्रनत समय उत्पत्त, पवनार् और ष्थथरता ाई जाती है वही सत् है। जैसे, ममट्ीसे घि बनाते समय ममट्ीकी पिण्डरूि ियाय नटि होती है, घि ियाय उत्न्न होती है और ममट्ी कायम रहती है। ऐसा नहीं है कक पिण्ड ियायका नार् ृथक् समयमें होता है और घि ियायकी उत्पत्त ृथक् समयमें होती है। ककन्तु जो समय िहली ियायके नार्का है, वहीं समय आगामी ियायके उत्न्नका है। इस तरह प्रनतसमय ूवा ियायका नार् और आगामी ियायकी उत्पत्तके होते हुए भी द्रव्य कायम रहता है। अतः वथतु प्रनतसमय उत्ाि, व्यय और ध्रौव्यात्मक कही जात

आचार्यविद्यासागरमहाराजकृतहाइकुकाव्येषु आध्यात्मिकचिन्तनम् – एकं विश्लेषणात्मकम् अध्ययनम्

कृतिका जैन, प्रो. कलापिनी अगस्ती

भारतीय–आध्यात्मिक–परम्परायां यत् महत्त्वं श्रमण–संस्कृतेः, जैन–दर्शनस्य च अस्ति, तत् न केवलं तत्त्वचिन्तनपर्यन्तं सीमितम्, अपितु साहित्य–सृष्टौ अपि अत्यन्तं प्रगल्भरूपेण व्यक्तम्। विशेषतः आचार्यविद्यासागरमहाराजाणां साहित्य–सृजनम्, आध्यात्मिक–साधना, नैतिक–मूल्य–प्रतिष्ठापनम्, तपोबलम्, अन्तर्मुख–ध्यानगौरवम्, प्रकृतिसंवेगः, तथा मानवीय–संवेदनशीलता—एतेषां समन्वयेन अद्भुतम्, नूतनम्, अतिसूक्ष्मं च काव्यजगन्निर्मितम्।

अत्यल्प–शब्दप्रवाहेन गम्भीरतमम् आध्यात्मिकसन्देशं दातुं समर्थं यत् काव्यरूपं—हाइकु—तदेव आचार्यवर्यैः नवीन–चैतन्यम् उपेत्य भारतदेशीय–परम्परायां प्रतिष्ठापितम्। हाइकु–रूपं यद्यपि मूलतः जापानीय–काव्यपरम्परायां जातम्, तथापि आचार्यविद्यासागरमहाराजाणां करकमलेन अस्य हायकू इति काव्यस्य भारतीय–आध्यात्मिक–स्वादुता, जैन–नैतिक–मृदुता, तथा श्रमण–दृष्टेः अंतरङ्ग–गौरवं विशिष्टरूपेण विकसितम्।

आचार्यवर्याः न केवलं तपस्वी–योगी–महापुरुषाः, अपितु अपूर्व–काव्यचेतना–समन्विताः महामनीषिणः इति विद्वद्भिश्चे स्वीकृतम्। तैः रचितेषु हाइकु–काव्येषु शब्दानाम् अल्पता, भावानानाम् अनन्तता, अनुभवस्य साक्षात्कारिता, तथा आत्म–मुक्तेः मौन–तत्त्वम् अत्यन्तं सुंदररूपेण प्रकटितम्। एतेभ्यः कारणेभ्यः, एतत् शोधकार्यम् आचार्यश्रीकृत–हाइकु–काव्येषु आध्यात्मिक–तत्त्वानां, जैन–दर्शनस्य, नैतिक–विचारस्य, ध्यान–अनुशासनस्य, तथा मानवीय–मूल्यपरक–सन्देशस्य विश्लेषणात्मक–अध्ययनं कर्तुं प्रेरणां लभते।

प्रत्येकं हाइकु न केवलम् एकं काव्य–वाक्यम्, अपितु आध्यात्मिक–उपदेशस्य, ध्यान–साधनायाः, आत्म–दर्शनस्य च एकं सूक्ष्म–मन्त्ररूपम् अस्ति। जैन–धर्मे मौनम् एकं महद् तपो–व्रतम्। आचार्यवर्याणां हाइकु–काव्ये मौनस्य

अभिव्यक्तिः शब्देभ्यः अधिकं गाम्भीर्यं दृश्यते। अल्प–वाक्ये बहुविध–अर्थशाखाः सम्भवन्ति; पाठकः स्वानुभवं स्वदृष्टिं च तत्र निवेशयितुं शक्नोति। आचार्यमहाराजाः हाइकू रूपेण दर्शयन्ति यथा – विषयसंसर्गे अनावश्यकं आकर्षणं त्यक्त्वा आत्मस्वरूपे एव स्थित्वा चिन्तनं आवश्यकम् अस्ति। हाइकू काव्यं संक्षिप्तशब्देषु अपि गहनचिन्तनं अतिसूक्ष्मरूपेण प्रकटयति।

From Nigoda to Nano-Biology: The Convergence of Jain Life Theory and Modern Science

Akash Jain Akanksha Jain

This research compares the Jain classification of microscopic life, especially nigodas and ekindriya jīvas, with modern microbiology. Jain texts describe extremely minute, invisible forms of life with different sensory capacities long before modern science studied microorganisms. The paper examines similarities with bacteria, archaea, fungi, protozoa, viruses, and other microscopic organisms, while noting that the Jain concept of jīva or soul remains beyond current scientific verification. The study highlights Jain philosophy as a valuable conceptual framework for understanding life, causality, and the diversity of exist

Ashoka’s Pillar and Rock Edicts: A Multimodal Communication Network in Ancient India

Prof. Mayank Kumar Agrawal, Prof. Ritwik Sahai Bisariya

Some of the earliest surviving archaeological evidence of systematic and large-scale public communication in ancient India dates to the Mauryan period (c. 322–185 BCE), particularly the reign of Emperor Ashoka (c. 268–232 BCE). His edicts on rocks and pillars, widely distributed across the geographical extent of the Mauryan realm, have been extensively examined as instruments of administration and governance, as well as from the perspectives of epigraphy, linguistics, archaeology and art history. Comparatively less attention, however, has been given to their significance from a communication perspective, particularly as a network of material media for the dissemination of messages.

The present study approaches Ashoka’s pillar and rock edicts, the principal surviving media of his public communication programme, as components of an integrated multimodal communication network. It examines the wider material and spatial landscape through which messages, authority, ideas and ethical principles were represented, disseminated and encountered. The study explores the communicative significance of the edicts through their geographical distribution, material form, linguistic and visual dimensions, relationship with communication corridors, and the role of human intermediaries in the movement of information.

The study argues that Ashoka’s communication programme combined multiple modes of communication: written messages inscribed on durable media; visual symbolism embodied in monumental pillars and sculptural capitals; geographically distributed dissemination sites; and networks of roads, rivers and human mobility. The repeated materialisation of related royal messages across a wide geographical area created a durable network of public communication. The survival of these inscriptions for more than two millennia further demonstrates the exceptional temporal durability of their material media.

The study thus proposes that Ashokan communication may be understood not merely as a collection of inscriptions, but as a spatially distributed, multimodal system through which the Mauryan state represented authority, communicated policies and ethical principles, and connected the imperial centre with diverse audiences.

Keywords: Mauryan Period; Ashokan Edicts; Rock Edicts; Pillar Edicts; Multimodal Communication; Political Communication; Ancient Indian Communication; Archaeology of Communication; Material Communication; Communication Networks; Dhamma; Visual Communication; Spatial Communication; Linguistic Adaptation; Communication Corridors; Uttarapatha; Dakshinapatha; Mauryan Routes; Public Communication.

Vaidyacikitsāmṛtam: An Exploration of an Unpublished Ayurvedic Medical Manuscript

Deepa

Background: India's rich Ayurvedic literary heritage includes numerous unpublished medical manuscripts containing valuable therapeutic knowledge. *Vaidyacikitsāmṛtam*, attributed to Vijayaṇa Paṇḍita, is an unpublished Sanskrit medical manuscript written in old Kannada script and preserved at the Oriental Research Institute, Mysore.

Objective: To explore the manuscriptological characteristics, textual structure, and therapeutic contents of *Vaidyacikitsāmṛtam* and to unfold the unique contribution to Aṣṭāṅga Ayurveda.

Materials and Methods: A descriptive and analytical literary study was undertaken using the digitized manuscript obtained from the Oriental Research Institute, Mysore, in August 2022. Preliminary work focused on its authorship, language, script, physical features, textual organization, and contents. The proposed research involves transliteration into Devanagari, translation into English, and critical evaluation through lower and higher textual criticism, followed by content analysis with classical Ayurvedic literature.

Observations: The manuscript is preserved in two paper volumes having 852 pages. The text opens with Maṅgalācaraṇa and an invocation to Vardhamāna Jina. Its contents encompass fundamental Ayurvedic principles, Pañcakarma, dietetics, and therapeutic management of approximately seventy diseases across Aṣṭāṅga Ayurveda, including Rasāyana and Vājīkaraṇa. References to earlier authorities such as Caraka, Bhela, Bhoja, and Vāhaṭa indicate its connection with established Ayurvedic traditions.

Conclusion: *Vaidyacikitsāmṛtam* represents an important source of traditional Ayurvedic therapeutic knowledge. Its systematic exploration, transliteration, translation, and critical evaluation may contribute to preserving unpublished medical literature and identifying distinctive therapeutic concepts and formulations for further scholarly research.

Keywords: Vaidyacikitsāmṛtam, Vijayaṇa Paṇḍita, Ayurvedic Manuscript, Manuscriptology, Aṣṭāṅga Ayurveda, Textual Criticism.

Languages, Religion and Politics in Dialogue: Introspecting Burhanpur Bilingual Inscription of Ādil Shāh (1590 CE)

Dr. Debanjan Maity

The dialogue between language, polity and religion has consistently contributed towards shaping social or religious identities. The language patronised by the rulers has often gained the prestige of 'cosmopolitan language', even at the expense of other languages/vernaculars over the ages. In the Islamicate ambience of medieval India, while Arabic or Persian typically functioned as the language/s of power, Sanskrit unexpectedly retained its prestige and legacy. The co-existence of languages situated in apparently distinct socio-religious poles invites an introspection of the interplay between languages, religion and politics of medieval India.

Located at Shahi Jāma Masjid in Burhanpur, Madhya Pradesh, written in bilingual as well as biscriptural format (languages: Arabic and Sanskrit; scripts: Arabic and Devanāgarī) and commissioned by Ādil Shāh, one of the noted kings of Fārūqī dynasty of Khandesh, the Burhanpur Bilingual Inscription (1590 CE) opens up a significant window into the linguistic and political culture of the 16th-century sultanate. The Arabic portion represents the mosque and its patron within an Islamic framework through Qurānic and Ḥadīth references, royal genealogy and expressions of pious merit. Conversely, the Sanskrit portion, written in praśasti style, underscores the eulogy of the Islamic God with metaphysical epithets such as *'vyaktāvyaktya', 'cidātmaka'* etcetera, glorification of Fārūqī lineage and Ādil Shāh IV and dating the establishment of the mosque using indigenous astrological calendar.

A meticulous study of the inscription along with architectural setting, material form and socio-politico-religious fabric demonstrates continuing prestige and adaptability of Sanskrit parallel to Arabic within the Islamic 'religious' space. The inscription's bilingual/biscriptural format functions as a strategic medium of royal legitimation, bridging multiple linguistic and cultural entities. It complicates the rigid binaries between 'Hindu' and Muslim or Sanskritic and Islamicate cultures.

Keywords: Bilingual inscription, Ādil Shāh, sultanate, co-existence, metaphysical epithets.

Venerating the Vīra: Decoding the Unpublished 'Vīravandanastotra'

Disha Parikh

'Vīravandanastotra' is an unpublished manuscript comprising of praise and worship of Lord Śiva. The manuscript was preserved at Oriental Institute, Maharaja Sayajirao University of Baroda. The manuscript has been selected from their catalogue-"An alphabetical list of manuscripts volume II'' under section Stotra, on page 944. The accession number of the manuscript is 9137 and consists of two leaves. The manuscript is written in Devnagari script and is complete. Neither the author's name nor the date of completion is mentioned in the catalogue or in the manuscript. The text begins with the introductory verse: 'श्री:|| अथ वीरवंदनस्तोत्रम्|| ॐ पठित्वेदं नमेद्वीरान् वीरवंदनमाचरेत्|| स्तुवेदीरान्तमेद्वीरान् मंत्रसिद्धि: प्रजायते||' The opening verse prescribes the recitation of the mantras of this stotra and veneration of the Vīras leads the reader to mantrasiddhi. The Stotra comprises twenty-seven verses in which repeated salutations are offered to the leaders of the practitioners (sādhakas), as well as to those embodying Śāmbhava-Śāmbhavī and Bhairava-Bhairavī. Reflecting the philosophical ideas found in Bṛhadāraṇyaka Upaniṣad, the text declares 'अहमेव परोहंस: शिव: परमकारणम्' presenting Śiva as the supreme cause and associating the self with the divine principle. Towards the conclusion of the Stotra,

the text states that the devout practitioners are ritually consecrated through the recitation of this text. As indicated by its title, the Vīravandanastotra' primarily focuses on the adoration of Vīra and sheds light on his attributes, nature and divine grace which is the subject matter of the proposed paper.

Keywords- Vīravandanastotra, Sanskrit Manuscript, Stotra literature, Śaiva divotion Spirituality.

Criticism of Unpunished Manuscript "Navaratnamālā Stotra"

Prof. (Dr.) Hetal M. Pandya

The Navaratnamālā is a manuscript belonging to the Stotra literature, with a particular emphasis on Tantric and Śrīvidyā traditions. It reflects the Advaita philosophical vision associated with Ādi Śaṅkarācārya, especially the conception of the Divine Mother presented in the Saundaryalaharī. Through the symbolism and worship of the Goddess, the text presents a distinctive synthesis of Advaita philosophy and Śākta-Tantric practice. The Navaratnamālā is attributed to Bhāskararāya, a renowned scholar of Śrīvidyā who composed important commentaries on the Saundaryalaharī and other Śākta texts. His commentarial tradition provides valuable insights into the esoteric dimensions of Śaṅkarācārya's works. The colophon (puṣpikā) of the manuscript associates Bhāskararāya with Śrīmad Gambhīrabhāratī, indicating his lineage and intellectual background. One of the distinctive features of this stotra is its highly literary and philosophical style. It is significant from the perspectives of Alaṅkāraśāstra (Indian poetics), Dhvani theory, Tantra, and Advaita philosophy. The text combines poetic beauty with profound metaphysical and esoteric concepts. A particularly important aspect of the Navaratnamālā is its treatment of Bīja-mantras and their relationship with prāṇa and breath awareness. The mantra "Haṃsa" / "So'haṃ", associated with the natural movement of inhalation and exhalation, is connected with the practice of worshipping Ṣoḍaśī, one of the central deities of the Śrīvidyā tradition. The text presents the idea that the practitioner integrates the mantra with the breath as part of an internal spiritual practice. The manuscript further connects these mantric practices with the subtle body and its latent spiritual energies. Through the systematic use of Bīja-mantras, the practitioner seeks to awaken and activate these subtle powers. Overall, the manuscript represents a significant intersection of Sanskrit literary aesthetics, Tantric spirituality, Śrīvidyā practice, and Advaita Vedānta, making it valuable for the study of both Sanskrit intellectual traditions and the history of Indian esoteric literature.

Keyword- Manuscript, Ṣoḍaśī, Bijamantra, Advait Philosophy, Tantra

Understanding the Historical Roots of Naturopathy through Archaeology and Manuscripts

Priya lalawat

Research Parameters (Introduction): As a student of naturopathy, I am interested in understanding how people cared for their health before modern medical facilities became available. This paper explores the historical background of naturopathy, with particular attention to food habits, cleanliness, water use, rest, and daily routines in the Indian context. It asks how

historical records, archaeological remains, and manuscripts can help us understand earlier health practices and their relationship with naturopathy today.

Methodology: This paper is planned as a descriptive review using published historical studies, translations of traditional medical texts, manuscript catalogues, and archaeological reports. The focus is on passages and material evidence related to everyday health practices. Information from these sources will be compared to identify similarities and differences with naturopathic principles. Attention will also be given to when each source was produced and the context in which it was used.

Data & Findings: The main discussion considers what each type of evidence can tell us. Manuscripts may explain recommended food habits and personal care, while archaeological remains may provide information about bathing, sanitation, and water management. Historical accounts can help place these practices within the lives of communities. However, a written recommendation does not prove that everyone followed it, and a bathing structure does not necessarily show that it was used for treatment. These limits are important when interpreting the past.

Conclusion: Studying these sources can help naturopathy students develop a clearer understanding of health traditions. The paper aims to connect classroom learning with historical inquiry while recognizing that older practices and modern naturopathy are not always the same. It also highlights the importance of careful reading and evidence when discussing India's health heritage.

Keywords

Naturopathy; History; Archaeology; Manuscripts; Traditional Health Practices

बंगाल की मंदिर स्थापत्य परंपरा: उद्भव एवं विकास

डॉ. सोनाली मुखार्जी,

बंगाल की मंदिर स्थापत्य परंपरा भारतीय स्थापत्य एवं सांस्कृतिक इतिहास की एक समृद्ध, बहुआयामी तथा निरंतर विकसित होने वाली परंपरा है। प्रस्तुत शोध में प्राचीन बंगाल के बौद्ध एवं जैन स्थापत्य से आरंभ करते हुए मौर्य, गुप्त, पाल तथा सेन काल की स्थापत्य-परंपराओं का विवेचन किया गया है। पाल काल में बौद्ध स्थापत्य और विहार-परंपरा के उत्कर्ष के साथ-साथ बंगाल में मंदिर स्थापत्य के विकास की भी महत्वपूर्ण पृष्ठभूमि निर्मित हुई। सेन काल में हिंदू धार्मिक स्थापत्य के संरक्षण और विकास के साथ 'देउल' स्थापत्य परंपरा को विशेष महत्व प्राप्त हुआ। बंगाल के विभिन्न क्षेत्रों में निर्मित रेखा-देउलों में कलिंग स्थापत्य-परंपरा के प्रभाव के साथ स्थानीय स्थापत्य और निर्माण-तकनीक का समन्वय दिखाई देता है। मध्यकाल में इस्लामी शासन की स्थापना के पश्चात बंगाल की स्थापत्य परंपरा में एक नई तकनीकी एवं कलात्मक अंतःक्रिया दिखाई देती है। मेहराब, गुम्बद, वॉल्ट जैसी निर्माण-तकनीकों के प्रयोग ने बंगाल के स्थापत्य को प्रभावित किया। आगे चलकर चाला शैली, एकरत्न, पंचरत्न तथा नवरत्न जैसी मंदिर-शैलियों का विस्तार हुआ। इन शैलियों की एक प्रमुख विशिष्टता उसकी टेराकोटा एवं काष्ठ अलंकरण परंपरा है। बंगाल के मंदिर केवल धार्मिक स्थापत्य नहीं, बल्कि अपने समय के सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन के साक्ष्य भी हैं। अध्ययन का अंतिम पक्ष बंगाल की इस स्थापत्य विरासत के वर्तमान संरक्षण-संकट से संबंधित है। आधुनिक निर्माण-प्रवृत्तियों, पारंपरिक शिल्पकला के ह्रास तथा ऐतिहासिक स्थापत्य पर आधुनिक सामग्री के बढ़ते प्रयोग के कारण टेराकोटा एवं अन्य पारंपरिक कलात्मक तत्वों के संरक्षण की चुनौती बढ़ रही है। इस प्रकार प्रस्तुत अध्ययन बंगाल की मंदिर स्थापत्य परंपरा को एक गतिशील ऐतिहासिक प्रक्रिया के रूप में समझने का प्रयास करता है।

प्रमुख शब्द: बंगाल, मंदिर स्थापत्य, चाला शैली, रत्न शैली, टेराकोटा, इस्लामी स्थापत्य, संरक्षण।

The Probable Time-period of Paṇḍit Gopāldās, author of Unpublished Manuscript Cikitsāsāra: A Historical and Textual Inquiry

Niren Chandra Roy

Āyurveda is also known as Āyuśāstra, the science of life and the text which teaches us how to live healthy. How to get a disease-free life is explained in the text of Caraka, Suśruta and Vāgbhaṭṭa. The Āyurvedic therapy is deeply rooted in the medical culture of ancient and medieval India. Indian Ayurvedic tradition has several manuscripts composed by the practitioner of this science. A very few of these manuscripts have been published during the past decades. A large number of manuscripts are unpublished still kept in various conservation centres. The unpublished manuscripts Cikitsāsāra authored by Pandit Gopāldās, a paper manuscript composed in the Sanskrit language and Devnāgari script. A large number of mss. have been obtained from various Oriental Research Institute and the time variations of the mss. is different from each other. Some content of this text has similar in various Āyurvedic texts before and after the 14th to 17th century. It is a unique text belonging to the Kāyacikitsāparamparā branch. Cikitsāsāra is treaties arrange in some section and some rare disease Sparsvavāta, Takraprameha, Ghṛtaprameha etc. Disease prediction based on astrology is a unique feature of this text. Present paper has explored these nuances of this unpublished mss. with the help to the copies of mss. An attempt will be done to make remarks on the date of the author by studying the internal and external evidences.

Key Words: Caraka. Suśruta, Vāgbhaṭṭa, Kāyacikitsāparamparā, Cikitsāsāra, Manuscript.

Gifts of Land: Reconstructing the Socio-Spatial Functions of Medieval South Indian Temples

Ananthakrishnan palanikumar

In Southern Indian history, inscriptions provide extensive evidence of land transactions, temple endowments, charitable donations, and the social organisation of communities. In particular, land donations made to temples by members of the royal family, local chiefs, and social elites transformed temples into important centres of socio-spatial organisation, while enabling them to exercise considerable influence within political and economic networks. These transactions represented not merely the redistribution of wealth but also a wider reorganisation of society and the formation of institutional structures in medieval South India.

This paper focuses on temples as institutional actors embedded within networks of power and examines their role in shaping medieval society. Rather than approaching temples solely through a power-centric framework, the study examines the *Thiru Indalur copper plates* alongside other donative inscriptions to explore how power was conceived, negotiated, and exercised. These records were not merely royal decrees; they reveal the temple as an institutional space involved in the organisation and regulation of social, economic, and environmental life.

The study addresses two central questions: How did temples acquire and exercise power? To what extent did they influence the social, economic, and environmental organisation of communities? The *Thiru Indalur copper plates* provide an important case for examining how governance was embedded in land grants and temple endowments. They indicate the temple's involvement in the

management of resources, including water tanks, agricultural production, land, labour, and settlement patterns.

The paper argues that temples should not be understood merely as passive recipients of royal and elite donations. Rather, they functioned as institutional spaces through which power was negotiated, reproduced, and made visible. By analysing the *Thiru Indalur copper plates* and related inscriptions, this study demonstrates how temple-centred networks contributed to the formation of political authority, economic relations, settlement structures, and the broader social landscape of medieval South India.

Keywords: Copperplates, spatio-social construction

डिजिटल युग में संस्कृत पाण्डुलिपियों का संरक्षण एवं ऐतिहासिक अध्ययन: *चुनौतियाँ और संभावनाएँ*

डॉ. सच्चिदानन्द स्नेही,

संस्कृत पाण्डुलिपियाँ भारत की बौद्धिक, दार्शनिक, वैज्ञानिक, साहित्यिक एवं सांस्कृतिक परम्पराओं की अमूल्य धरोहर हैं। इनमें केवल ग्रन्थीय सामग्री ही नहीं, बल्कि लेखक, लिपिक, आश्रयदाता, तिथि, स्थान, सम्प्रदाय, शिक्षण-परम्परा तथा सामाजिक-सांस्कृतिक परिस्थितियों से सम्बन्धित महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक सूचनाएँ भी सुरक्षित हैं। अतः संस्कृत पाण्डुलिपियों का संरक्षण भारतीय ज्ञान-परम्परा के संरक्षण के साथ-साथ भारत के बौद्धिक एवं सांस्कृतिक इतिहास के पुनर्निर्माण की आधारभूत आवश्यकता है। डिजिटल युग ने पाण्डुलिपियों के दीर्घकालीन संरक्षण, व्यापक अभिगम, पाठ-विश्लेषण तथा वैश्विक शोध-सहयोग के लिए नई सम्भावनाएँ प्रस्तुत की हैं।

भारत सरकार का ज्ञान भारतम् मिशन (Gyan Bharatam Mission) भारत की विशाल पाण्डुलिपि-सम्पदा के सर्वेक्षण, संरक्षण, डिजिटलीकरण, सूचीकरण तथा शोधोपयोगी अभिगम की दिशा में एक महत्त्वपूर्ण राष्ट्रीय पहल के रूप में इस अध्ययन को समकालीन संदर्भ प्रदान करता है। इस परिप्रेक्ष्य में पाण्डुलिपि-डिजिटलीकरण को केवल स्कैनिंग अथवा डिजिटल प्रतिकृति निर्माण तक सीमित रखना पर्याप्त नहीं है। अपूर्ण मेटाडेटा, विभिन्न संस्थानों में असमान सूचीकरण, मानकीकरण का अभाव, लिपि एवं पाठ-पहचान की तकनीकी कठिनाइयाँ, OCR/HTR की त्रुटियाँ, डिजिटल संरक्षण की दीर्घकालीन विश्वसनीयता, provenance सम्बन्धी अस्पष्टता तथा प्रशिक्षित मानव संसाधन की कमी प्रमुख चुनौतियाँ हैं।

प्रस्तुत शोध का मुख्य समस्या-वक्तव्य यह है कि अनेक संस्कृत पाण्डुलिपियाँ डिजिटल रूप में उपलब्ध होने के बावजूद उनका वैज्ञानिक वर्णन, प्रमाणीकरण, पाठ-संरक्षण, ऐतिहासिक विश्लेषण और विभिन्न डिजिटल संग्रहों के बीच पारस्परिक संयोजन अपेक्षित स्तर पर नहीं हो पाया है। परिणामतः डिजिटल प्रतिकृतियों की उपलब्धता शोध की वास्तविक उपयोगिता में पूर्णतः परिवर्तित नहीं हो पाती। शोध का मुख्य उद्देश्य ज्ञान भारतम् मिशन के व्यापक राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य के साथ संस्कृत पाण्डुलिपियों के संरक्षण एवं ऐतिहासिक अध्ययन के लिए एक समन्वित, मानकीकृत और शोधोपयोगी डिजिटल कार्यप्रणाली प्रस्तावित करना है।

अध्ययन में वर्णनात्मक (Descriptive), विश्लेषणात्मक (Analytical), ऐतिहासिक (Historical), तुलनात्मक (Comparative) तथा पाण्डुलिपिशास्त्रीय (Codicological) शोध-पद्धतियों का समन्वित प्रयोग किया जाएगा। प्राथमिक स्रोतों के रूप में चयनित संस्कृत पाण्डुलिपियों, उनकी पुष्पिकाओं (Colophons), लेखन-सामग्री (Writing Materials), लिपि (Script), तिथि (Date), स्थान (Place), लेखक/लिपिक (Author/Scribe), आश्रयदाता (Patron) तथा पाठ-परम्परा (Textual Tradition) सम्बन्धी सूचनाओं का अध्ययन किया जाएगा। द्वितीयक स्रोतों में प्रकाशित ग्रन्थ, शोध-पत्र, पाण्डुलिपि-सूचीपत्र (Manuscript Catalogues), डिजिटल सूचीपत्र (Digital Catalogues), संस्थागत अभिलेख (Institutional

Records) तथा उपलब्ध डिजिटल रिपॉजिटरी (Digital Repositories) सम्मिलित होंगे। पाण्डुलिपियों के पाण्डुलिपिवैज्ञानिक (Codicological) एवं लिपिवैज्ञानिक (Palaeographical) परीक्षण के साथ उच्च-रिज़ॉल्यूशन डिजिटल इमेजिंग (High-Resolution Digital Imaging), मेटाडेटा निर्माण (Metadata Creation), यूनिकोड-आधारित पाठ-संकेतीकरण (Unicode-Based Text Encoding), ओसीआर/एचटीआर (OCR/HTR), मानवीय सत्यापन (Human Verification), पाठ-तुलना (Textual Comparison) तथा डिजिटल संरक्षण मानकों (Digital Preservation Standards) का परीक्षण किया जाएगा।

शोध की परिकल्पना है कि यदि उच्च-गुणवत्ता वाली डिजिटल प्रतिकृतियों (High-Quality Digital Facsimiles) को मानकीकृत मेटाडेटा (Standardised Metadata), उद्गम-प्रमाण/प्रामाणिकता-श्रृंखला (Provenance), स्थायी पहचानकर्ता (Persistent Identifiers), खोजयोग्य एवं सत्यापित पाठ (Searchable and Verified Text), पाण्डुलिपिवैज्ञानिक एवं लिपिवैज्ञानिक विवरण (Codicological and Palaeographical Descriptions) तथा ऐतिहासिक संदर्भों (Historical Contexts) के साथ जोड़ा जाए, तो संस्कृत पाण्डुलिपियाँ केवल संरक्षित डिजिटल दस्तावेज न रहकर भारतीय इतिहास एवं ज्ञान-परम्परा के विश्वसनीय प्राथमिक स्रोत के रूप में अधिक प्रभावी ढंग से प्रयुक्त की जा सकती हैं।

समाधान के रूप में अध्ययन संस्थागत एवं राष्ट्रीय स्तर पर परस्पर-संचालनीय डिजिटल रिपॉजिटरी (Interoperable Digital Repositories), मानकीकृत मेटाडेटा रूपरेखाओं (Standardised Metadata Frameworks), उच्च-रिज़ॉल्यूशन इमेजिंग (High-Resolution Imaging), यूनिकोड-आधारित पाठ-प्रतिनिधित्व (Unicode-Based Text Representation), ओसीआर/एचटीआर के मानवीय सत्यापन (Human Verification of OCR/HTR), टीईआई/एक्सएमएल जैसे संरचित पाठ-मानकों (Structured Text Standards such as TEI/XML), स्थायी डिजिटल पहचानकर्ताओं (Persistent Digital Identifiers), अतिरिक्त/पुनरावृत्त बैकअप (Redundant Backup), नियमित डेटा अखंडता जाँच (Regular Data Integrity Checks), दीर्घकालीन डिजिटल संरक्षण नीति (Long-Term Digital Preservation Policy), विशेषज्ञ प्रशिक्षण (Expert Training) तथा विभिन्न संग्रहों के बीच परस्पर-संचालनीय डेटाबेस (Interoperable Databases) विकसित करने पर बल देता है। साथ ही, पाण्डुलिपियों के डिजिटलीकरण (Digitisation) के साथ उनके प्रासंगिक ऐतिहासिक आँकड़ों (Contextual Historical Data) को संरक्षित करना आवश्यक है, ताकि भविष्य में डिजिटल कॉर्पस (Digital Corpus) को केवल पढ़ने योग्य संग्रह नहीं, बल्कि ऐतिहासिक अनुसंधान के विश्लेषणात्मक स्रोत (Analytical Source) के रूप में उपयोग किया जा सके।

निष्कर्षतः, ज्ञान भारतम् मिशन की राष्ट्रीय दृष्टि को पारम्परिक पाण्डुलिपिशास्त्र, इतिहास-अनुसंधान और आधुनिक डिजिटल मानविकी के साथ समन्वित करने से संस्कृत पाण्डुलिपियों के संरक्षण, अभिगम, प्रमाणीकरण तथा ऐतिहासिक पुनर्पाठ के लिए एक सुदृढ़ डिजिटल पारिस्थितिकी तन्त्र विकसित किया जा सकता है। ऐसा प्रयास भारतीय ज्ञान-परम्परा के संरक्षण तक सीमित न रहकर उसके पुनर्पाठ, पुनर्व्याख्या और वैश्विक अकादमिक विमर्श में प्रभावी प्रस्तुतीकरण का मार्ग प्रशस्त करेगा।

प्रमुख शब्द: संस्कृत पाण्डुलिपि; ज्ञान भारतम् मिशन; भारत सरकार; डिजिटल संरक्षण; पाण्डुलिपिशास्त्र; ऐतिहासिक अध्ययन; डिजिटल मानविकी; कोडिकोलॉजी; पुरालिपिशास्त्र; OCR/HTR; मेटाडेटा; भारतीय ज्ञान-परम्परा; डिजिटल रिपॉजिटरी; सांस्कृतिक विरासत।

अनुमानालोकालोक पक्षधरोद्धार।

डॉ. अतुल ज्ञानोबा मस्के

गङ्गेशोपाध्यायविरचित 'तत्त्वचिन्तामणि' ग्रन्थ सर्वविदित है। इस ग्रन्थ पर अनेक टीकाएँ प्रसिद्ध हैं। उनमें श्रीजयदेवमिश्रविरचित 'आलोक' टीका का असाधारण महत्त्व है। मिथिला में दो विद्वत्परम्पराएँ विशेष रूप से प्रसिद्ध थीं— एक उपाध्याय-परम्परा और दूसरी मिश्रकुल-परम्परा। इन दोनों परम्पराओं के विद्वानों के बीच कुछ बौद्धिक एवं दार्शनिक मतभेद थे, जो उनके द्वारा विरचित ग्रन्थों में स्पष्ट रूप से परिलक्षित होते हैं। 'अनुमानालोक' नामक ग्रन्थ पर पद्मनाभ मिश्र ने 'पक्षधरोद्धार' नाम से एक विस्तृत टीका लिखी है। यह टीका अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होने पर भी आज तक अप्रकाशित है।इस शोधपत्र में दोनों परम्पराओं का ऐतिहासिक विकास, 'आलोकटीका' का महत्त्व, 'आलोक' ग्रंथ के सम्यक् अवबोध के लिए पद्मनाभ मिश्रविरचित 'पक्षधरोद्धार' ग्रंथ की उपयोगिता तथा **'पक्षधरोद्धार' नामक अप्रकाशित ग्रंथ की उपलब्ध हस्तलिखितप्रतियों के परिचय एवं उनके स्वरूप आदि** विषयों का विस्तृत विवेचन किया जाएगा।

Harappan Infrastructure and Challenges to Modern India

Saransh Bharadwaj

The Harappan Civilization is widely recognized for its organized urban settlements and sophisticated approaches to infrastructure and environmental management. This study examines selected features of Harappan infrastructure, including urban planning, drainage systems, water management, and settlement organization, and explores their relevance to selected infrastructural and environmental challenges faced by modern India. The study particularly considers issues such as infrastructure maintenance, structural failures, water logging, urban flooding, and challenges associated with water and dam planning.

The research adopts a comparative and analytical approach, examining archaeological evidence relating to Harappan settlements and comparing its infrastructural principles with selected contemporary challenges in India. The study focuses on the functional organization and management of urban infrastructure rather than attempting to establish a direct equivalence between ancient and modern systems.

The study indicates that Harappan urban settlements demonstrate systematic approaches to drainage, water management, sanitation and spatial organization. Cities like Mohenjo-Daro, Dholavira demonstrate accurate street planning, prioritization on the construction of drainage over the structures. The comparison highlights how inadequate infrastructure planning, maintenance issues, water logging and urban flooding can create interconnected challenges in contemporary urban environments.

The study suggests that the Harappan techniques provide insights to identify the contemporary methods for sustainable development. Technological advancements help in enhancing the human capacity in today's time to deal with the issues of environmental awareness, resource management, and the principles of planning preserved in archaeological evidence.

Keywords: Harappan Civilization; Urban Infrastructure; Drainage; Water Management; Modern India

भक्तिसूत्रम्-अप्रकाशित पाण्डुलिपि का समीक्षात्मक अध्ययन

भागवतकुमार जोषी

भक्तिसूत्रम्' भक्तिमार्ग से सम्बन्धित एक अप्रकाशित पाण्डुलिपि है, जो महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय, बड़ौदा के ओरिएण्टल इन्स्टिट्यूट से प्राप्त हुई है। इस पाण्डुलिपि का चयन उनकी पाण्डुलिपि-सूची "An Alphabetical List of Manuscripts, Volume II" में 'पुराण' विभाग के अन्तर्गत, पृष्ठ संख्या 89 पर उल्लिखित विवरण के आधार पर किया गया है। इस पाण्डुलिपि का अभिग्रहण क्रमांक (Accession Number) 10798 है तथा इसमें कुल तीन पत्र (पण/पृष्ठ) हैं। यह पाण्डुलिपि देवनागरी लिपि में लिखी गई है और इसमें भक्ति विषय सम्बन्धित कुल सत्रह सूत्र प्राप्त होते हैं। पाण्डुलिपि-सूची में तथा स्वयं पाण्डुलिपि में इसके रचयिता का नाम और रचनाकाल का कोई उल्लेख नहीं मिलता है। पाण्डुलिपि के प्रारम्भ में मंगलाचरणस्वरूप सर्वप्रथम -'श्रीगुरुभ्यो नमः', 'श्रीहयग्रीवाय नमः', 'श्रीशारदायै नमः' तथा 'श्रीराजराजेश्वर्यै नमः' इस प्रकार से वन्दना की गई हैं। जिससे ये ग्रन्थकार के इष्ट हैं ऐसा बोध होता है। लेखक ने पाण्डुलिपि का प्रारम्भ निम्नलिखित सूत्र से किया है—

ॐ अथातो भक्तिजिज्ञासा

यह सूत्र प्रस्तुत किया गया है। अब भक्ति के स्वरूप, तत्त्व एवं साधन को जानने की जिज्ञासा उत्पन्न होती है; अतः अब भक्ति का विवेचन किया जाएगा। इस प्रकार पाण्डुलिपि का प्रारम्भ ही गुरु तथा विभिन्न देवशक्तियों के मंगलस्मरण के पश्चात् भक्ति के स्वरूप को जानने की जिज्ञासा से होता है। उपलब्ध सत्रह सूत्रों के माध्यम से भक्ति से सम्बन्धित विषयों का सूत्रात्मक प्रतिपादन किया गया है। यह भक्ति-परम्परा के अध्ययन की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है तथा इसके अप्रकाशित स्वरूप के कारण इसका पाठालोचनात्मक एवं शोधपरक अध्ययन विशेष उपयोगिता रखता है। प्रस्तुत अध्ययन के माध्यम से इस अप्रकाशित पाण्डुलिपि को संस्कृत भक्ति-साहित्य की समृद्ध परम्परा के संदर्भ में प्रकाश में लाने तथा इसके साहित्यिक, दार्शनिक एवं आध्यात्मिक महत्त्व को रेखांकित करने का प्रयास किया है।

कीवर्ड- भक्तिसूत्रम्, अप्रकाशित पाण्डुलिपि, पाठोद्धार, भक्ति, भक्तितत्त्व, संस्कृत वाङ्मय, भक्ति-साहित्य।

वैद्यनाथमैथिलविरचितस्य ताराचन्द्रोदयमहाकाव्यम् इत्यस्य पाण्डुलिपेः *परिचयः सम्पादितांशाः च*

अशोकः , प्रो. रत्नमोहन झा (आचार्यः)

शोधपत्रमिदं कविवरवैद्यनाथमैथिलविरचितस्य ताराचन्द्रोदयमहाकाव्यस्य पाण्डुलिपेः परिचयम्, कर्तुः व्यक्तित्वं, कालनिर्धारणं तथा काव्यवैशिष्ट्यानि सङ्क्षेपेण निरूपयति। संस्कृतभाषायाः प्राचीनता, वैशिष्ट्यं च प्रतिपाद्य, महाकाव्यपरम्परायां अस्य ग्रन्थस्य महत्त्वं प्रकाश्यते। उपलब्धसाक्ष्येभ्यः ज्ञायते यत् अस्य महाकाव्यस्य द्वे पाण्डुलिपी स्तः। एकं पुणेस्थे भाण्डारकरसंस्थाने, अन्यत् लाहौरस्थिते पञ्जाबविश्वविद्यालये। अस्मिन् शोधे प्रथमा मातृका आधाररूपेण स्वीकृता। कविः वैद्यनाथमैथिलः 'महोपाध्याय' इति उपाधिधारी बहुशास्त्रपारङ्गतः आसीत् इति सूच्यते। ग्रन्थे राज्ञः ताराचन्द्रस्य वंशः, प्रतापः, कीर्तिः, दानशीलता च विस्तरेण वर्ण्यन्ते, यत् तस्य राजाश्रितकवित्वं दर्शयति। कालनिर्णये संवत् १७३६ इति लिपिकारपुष्पिकायाः उल्लेखः महत्त्वपूर्णः, येन कविः सप्तदशशतकात् पूर्वकालीनः इति निष्कर्षः क्रियते। काव्यस्य वैशिष्ट्येषु दशावतारस्तुतियुक्तं मङ्गलाचरणम्, यमकानुप्रासप्रधानाः शब्दालङ्काराः, विविधछन्दोविनियोगः च उल्लेखनीयाः। महाकाव्यलक्षणानुसारं सौध, उद्यान, अश्व, गजादीनां वर्णनानि अपि सन्ति। उत्तरार्धे मथुरा, गङ्गा, यमुना, सरस्वती तथा व्रजमण्डलतीर्थानां विवेचनं काव्यस्य भौगोलिकपाण्डित्यं सूचयति। अन्तिमे सर्गे कृष्णस्य त्रिकालध्यानवर्णनं माधुर्यरसपूर्णम् अस्ति। रसदृष्ट्या वीरः, भक्तिः, वात्सल्यप्रधानः माधुर्यरसः च प्रमुखाः सन्ति। एवं समन्वितगुणयुक्तं एतत् महाकाव्यं संस्कृतसाहित्ये महत्त्वपूर्णं स्थानं धारयति इति निष्कर्षः।

कूटशब्दाः – पाण्डुलिपिः, ताराचन्द्रोदयमहाकाव्यम्, वैद्यनाथमैथिलः, केशवचरितम्, रोरावंशः।

Numinous Gupta Kingship Re-examining the Idioms of Meta-human kingship in the Gupta Age

Arindam Chaturvedi

Divine or Meta-human kingship has remained a contested concept in scholastic circles. Several examples have been illustrated in the ancient past when kings held absolute power, and purportedly paraded as living manifestations of gods themselves. Gupta kings, like their Kuṣāṇa predecessors, have been classified and labelled time and again as 'divinized', possessing divine attributes and powers. Several categorical differences regarding meta-human status, semi-divine strength and heroic rhetorics often get enmeshed together into an un-harmonious unity, making the notion of 'divine kingship' an antiquated tool of enquiry, which makes it necessary to induce clarity into the 'thick description' of ancient kingship. This paper will, therefore, peruse and evaluate latest ideas about divine kingship, comment on its possible applicability and use by Kuṣāṇa sovereigns, study its transmission and adaptive re-framing in light of the politico-cultural milieu of the Gupta Age, wherein we will argue for, and substantiate the presence of a novel—'Numinous' idiom of kingship, which, we believe, is relatively more congruent contextually with the socio-cultural contours of Indic traditions.

Keywords: Divine kingship, Meta-human, Kuṣāṇas, Gupta Age, Avatāras, Samudragupta, Kumāragupta I, Numinosity

पश्चिमी ओडिशा के लेखनकार-सम्बन्धी भूगोल का मानचित्रण: ASJT अहमदाबाद में संरक्षित ताड़पत्र पांडुलिपियों का एक अध्ययन।

सीमन्तिनी सेठ्

ताड़-पत्र की पांडुलिपियाँ ओडिशा की बौद्धिक और सांस्कृतिक परम्परा की एक महत्वपूर्ण भाग हैं, जिनमें साहित्य, धर्म, दर्शन, संस्कृति, इतिहास और परंपरा से जुड़ी कई तरह की जानकारी सुरक्षित है। यद्यपि इन पांडुलिपियों की लिखी हुई सामग्री पर काफी ध्यान दिया गया है, लेकिन इनके अंत में लिखी जानकारी (जिसे 'पुष्पिका' या 'कोलोफ़ोन' कहते हैं) पांडुलिपि लिखने की इतिहास और भूगोल को समझने के लिए उतनी ही कीमती जानकारी देती है। 'कोलोफ़ोन के द्वारा पश्चिमी ओडिशा के लेखन-भूगोल का मानचित्रण: ASJT (आचार्यश्री सुरेंद्रसूरी जैन तत्त्वज्ञानशाला), अहमदाबाद में सुरक्षित ताड़-पत्र पांडुलिपियों का अध्ययन' नाम का यह शोध, ASJT, अहमदाबाद के संग्रह में उपलब्ध, चयनित ताड़-पत्र पांडुलिपियों की समीक्षा करता है इसमें विशेष रूप से उनके कोलोफ़ोन में दी गई भौगोलिक सूचना पर ध्यान दिया गया है।

यह अध्ययन इस बात पर आधारित है कि पढि गई कई पांडुलिपियों के कोलोफ़ोन में पश्चिमी ओडिशा की स्थानों का उल्लेख मिलता है। लेखकों द्वारा लिखी विषय के अन्त में उल्लिखित ऐसे सूचना, पांडुलिपि की नकल और उसके प्रसार से जुड़ी क्षेत्रों के विषय में विशेष प्रमाण देते हैं। इसलिए, इस शोध का प्रयोजन इन भौगोलिक सूचनाओं की पहचान करना, उन्हें उल्लेख करना और उनका विश्लेषण करना है, साथ ही पश्चिमी ओडिशा में लेखनकार्य के प्रसार का मानचित्रण करना है।

जहाँ भी 'कोलोफ़ोन' (पुष्पिका) में उपलब्ध हो, वहाँ लिपिकारों के नाम, लेखनस्थान, प्रतिलिपि करने की समय, संरक्षण और दूसरी संदर्भ-संबंधी सूचना पर विशेष ध्यान दिया जाएगा। यह अध्ययन लिखित ज्ञान को सुरक्षित रखने और आगे बढ़ाने में लिपिकों की भूमिका पर भी विचार करेगा और यह देखेगा कि कैसे कोलोफ़ोन पारंपरिक ऐतिहासिक और साहित्यिक स्रोतों के पूरक हो सकते हैं।

पांडुलिपि-विज्ञान (Manuscriptology), पुरालेख-विज्ञान (Palaeography) और ऐतिहासिक भूगोल को एक साथ लाकर, इस शोध का प्रयोजन यह दिखाना है कि लिपिकारों द्वारा लिखे गए कोलोफ़ोन केवल

पाठ के अंत में दिए गए वाक्य नहीं हैं, परन्तु मूल्यवान ऐतिहासिक सूचना हैं। ASJT संग्रह में सुरक्षित भौगोलिक प्रमाण पश्चिमी ओडिशा को ताड़पत्रों पांडुलिपि प्रतिलिपिकरण और ज्ञान के प्रसार के एक महत्वपूर्ण क्षेत्र के रूप में उत्कृष्ट रूप से समझने में सहयोग कर सकते हैं। अन्ततः, यह अध्ययन इस क्षेत्र के बाहर सुरक्षित पांडुलिपि प्रमाणों के आधार पर पश्चिमी ओडिशा का एक प्रारम्भिक लिपिकीय मानचित्र तैयार करने और ओडिशा की पांडुलिपि परम्परा को फिर से समझने के लिए कोलोफ़ोन के व्यवस्थित दस्तावेज़ीकरण(Documentation) और अध्ययन के महत्व को उजागर करने का प्रयास करता है।

कीवर्ड: ताड़पत्र पांडुलिपि परम्परा, लिपिकीय कोलोफ़ोन, पुष्पिका, लिपिकार, पश्चिमी ओडिशा, ASJT अहमदाबाद, पांडुलिपि-विज्ञान, लिपिकीय भूगोल।

संस्कृत काव्यशास्त्र में 'चित्ररागिणी' हस्तलिखितका एक अध्ययन

श्रेयस जादूबंशी, प्रो. पराग जोशी

संस्कृत साहित्य में काव्य के साथ-साथ अन्य कलाओं जैसे संगीत और शास्त्र को समझाने के लिए विशिष्ट शैलियों का प्रयोग किया जाता रहा है। इसी परंपरा की एक महत्वपूर्ण कड़ी राष्ट्रसंत तुकडोजी महाराज नागपुर विश्वविद्यालय के पांडुलिपि विभाग में सुरक्षित 'चित्ररागिणी' नामक हस्तलेख है। यह शोधपत्र इस ५५ पत्रों के पूर्ण ग्रंथ के स्वरूप और इसकी महत्ता को सरल भाषा में प्रस्तुत करने का एक प्रयास है।

यह पांडुलिपि (परिग्रहण संख्या ०००७५४) कागज पर देवनागरी लिपि में लिखी गई है। विवरण के अनुसार यह 'काव्य' विधा की रचना है। ५५ पत्रों (Folios) का यह ग्रंथ अपनी पूर्ण अवस्था में है। इस हस्तलेख में 'चित्र' (Illustration) का उल्लेख मिलता है, जो काव्य के भीतर राग-रागिनियों के स्वरूप को स्पष्ट करने के लिए प्रयुक्त किसी भी प्रकार के रेखाचित्र, कोष्ठक या कलात्मक प्रस्तुति की ओर संकेत करता है। ग्रंथ का नाम 'चित्ररागिणी' अत्यंत सार्थक प्रतीत होता है। 'रागिणी' शब्द संगीत शास्त्र से संबंधित है, इसमें रागों के शास्त्रीय लक्षणों को काव्य की भाषा में समझाया गया है। यहाँ 'चित्र' शब्द का प्रयोग संभवतः रागों के प्रतीकात्मक स्वरूप को दर्शाने या काव्य के भीतर 'चित्रकाव्य' (अक्षरों का कलात्मक विन्यास) जैसी विधाओं को स्पष्ट करने के लिए किया गया होगा। यह ग्रंथ न केवल साहित्यिक रचना है, बल्कि यह उस काल की शिक्षण पद्धति और कलात्मक प्रस्तुतीकरण का भी एक ठोस प्रमाण है।

'चित्ररागिणी' हस्तलेख संस्कृत काव्य और संगीत शास्त्र के बीच के संबंधों को समझने के लिए एक महत्वपूर्ण दस्तावेज है। यह शोधपत्र यह स्पष्ट करता है कि ऐसी पांडुलिपियाँ केवल साहित्यिक जानकारी ही नहीं देतीं, बल्कि प्राचीन कालात्मक में विषयों को चित्र के माध्यम से समझाने की पूर्ण परंपरा को भी जीवित रखती हैं। इस ग्रंथ का सूक्ष्म अध्ययन संस्कृत वाङ्मय की इस विशिष्ट शैली को नई पहचान दिलाएगा।

बीज शब्द : चित्ररागिणी, संस्कृत हस्तलेख, नागपुर विश्वविद्यालय, काव्य और संगीत, देवनागरी पांडुलिपि, राग-रागिनी निरूपण, पांडुलिपि विज्ञान।

Veruḷa/ The Ellora Cave Complex and Carved Board Games: Some Observations and Possibilities

Shreeya Dixit-Nachare

- **Research Parameters (Introduction):** Ellora has been designated a UNESCO World Heritage Site. The scale of the carvings, the beautiful sculptures, and the remarkable architecture are all extraordinary, monumental, and awe-inspiring. These aspects have been studied by numerous scholars over different periods using a variety of approaches. The one aspect of these caves that has received very little attention in previous scholarship is the

presence of board games carved into the floors and surfaces of caves belonging to all three religious traditions

- **Methodology:** The complex consists of 34 caves, all of which were not carved at the same time. Of these, 12 are Buddhist, 17 Shaiva, and 5 Jain. The one aspect of these caves that has received very little attention in previous scholarship is the presence of board games carved into the floors and surfaces of caves belonging to all three religious traditions. While the communities associated with these caves differed in their forms of worship, lifestyles, economic conditions, and social organization, the carved board games represent a commonality.
- **Data & Findings:** To date, at least 45 carved board games have been discovered throughout the 34 caves. Both their number and diversity deserve special attention. The purpose of this paper is to introduce this neglected subject to a wider audience.
- **Conclusion:** The purpose of this paper is to introduce this neglected subject to a wider audience. Playing games is a fundamental need for people of all ages. Just as outdoor sports are essential for physical development, intellectual development through activities like board games is equally important

Keywords: Ellora, Board Games, Caves

Dates of the Later Kadamba Inscriptions

Shreenand L. Bapat

Inscriptions of the Later Kadambas pose a number of issues with regard to elements of dates: Tithi, Yoga, eclipses, Saṁkrāntis, etc. Matching them with the modern calendar is a challenge. These issues shall be presented in this paper.

Evaluation of the Orthographic Transition: from Hook-Headed Bhujimol to Flat-Headed Pracalita Scripts

Purnima Thapa

This research paper evaluates the palaeographic shift from the "hook-headed" (*Bhujimol*) script to the "flat-headed" (*Pracalita*) script (between 10th ce.) derived from the post-Gupta Siddham/Kutila lineage, Bhujimol served as the primary writing system for early Nepal Bhāsā and Sanskrit administrative and religious texts. The Kathmandu Valley has historically been one of South Asia's most prolific centers of manuscript production. Known collectively as **Nepal Lipi** or **Newar scripts**, these writing systems stem from the Brāhmī family, evolving through Gupta and Siddham/Kutilā precursors. Among these styles, **Bhujimol** (Bhujinmol) represents one of the earliest localized forms of Nepalese script. Emerging prominently around the 10th century CE, Bhujimol is defined by its rounded, looped, or hook-shaped headstroke. However, between the 10th and 14th centuries, a major orthographic transformation occurred, culminating in the development of **Pracalit** (meaning "prevalent" or "current"), which adopted a flat, horizontal headstroke (shirorekha) derived from the Pachumol ("flat-head") style.

Over four centuries, scribal efficiency, changes in writing media (from palm-leaf manuscripts to handmade paper), and the administrative expansion of the early Malla dynasty catalyzed a

structural transition toward the flat top-stroke (*shirorekha*) characteristic of *Prachalit* (and its precursor *Pachumol*).

The orthographic transition from hook-headed Bhujimol to flat-headed Pracalit between the 10th and 14th centuries reflects an evolutionary adaptation in Nepalese palaeography. Driven by the adoption of paper, changing scribal tools, and the administrative demands of the Malla state, scribes streamlined glyph geometry by flattening headstrokes and reducing stroke complexity. This structural efficiency allowed Prachalit to become the dominant everyday script of Nepal for centuries, leaving Bhujimol as a cherished artifact of early classical literature.

This study analyzes the morphological modifications, scribal ergonomics, and sociopolitical conditions that drove this orthographic evolution.

Keywords: Bhujimol, Pracalita, Nepal Lipi, Palaeography, Newar Scripts, Orthography, Kathmandu Valley Manuscripts.

Śiva in Stone: A Study of the Śaiva Sculptures of the Kailāsa Temple at Ellora in the Context of the Śiva Purāṇa

Mr. Anant Keshav Rathod

The Kailāsa Temple at Ellora (Cave 16) is one of the most remarkable achievements of Indian rock-cut architecture and represents a sophisticated expression of Śaiva religious thought through architecture, sculpture, mythology, and sacred space. Conceived as a monumental representation of Mount Kailāsa, the sacred abode of Śiva, the temple integrates an extensive sculptural programme depicting Śiva in multiple theological and mythological forms.

This paper examines selected Śaiva sculptures of the Kailāsa Temple in the context of the Śiva Purāṇa, with particular emphasis on the visual representation of Śiva's divine power, cosmic functions, devotion, grace, asceticism, and relationship with Pārvatī. Special attention is given to the Rāvaṇānugraha narrative, representations of Śiva–Pārvatī, Naṭarāja, Tripurāntaka, Gajāntaka, and other manifestations of Śiva within the temple's sculptural programme. The study adopts a comparative methodology combining textual analysis, iconographic interpretation, art-historical investigation, and architectural analysis. It examines the extent to which the narratives and theological concepts associated with Śiva in the Śiva Purāṇa correspond with their visual representation at the Kailāsa Temple.

The study does not assume a direct dependence of the sculptures on the extant form of the Śiva Purāṇa, recognizing the complex textual history of Purāṇic literature and the possibility of shared oral, ritual, and visual Śaiva traditions. Instead, it investigates the broader relationship between textual knowledge and visual expression within the Śaiva tradition. The paper argues that the sculptures of the Kailāsa Temple function as a form of visual theology through which complex ideas concerning Śiva's supremacy, cosmic activity, divine grace, sacred geography, and Śiva–Śakti relationship were communicated. From the perspective of Indian Knowledge Systems, the temple emerges as a material repository of Śaiva knowledge, where mythology, philosophy, iconography, architecture, and traditional craftsmanship converge to transform sacred knowledge into enduring stone.

Keywords: Śaiva Sculptures; Kailāsa Temple; Śiva Purāṇa; Ellora

Manuscripts, Folklore and Cultural Memory

Ms. Shraddha Parag Deopujari

India's cultural heritage is preserved through a rich interplay of written, oral and performative traditions. Among its diverse forms, manuscripts and folklore occupy an important position as repositories and carriers of cultural memory. Indian manuscripts, written in diverse languages and scripts and preserved on materials such as palm leaf, birch bark and paper, contain not only literary, religious and philosophical works but also narratives, legends, ritual practices, folk beliefs, genealogies, traditional knowledge and accounts of regional customs. Parallelly, Indian folklore continues to survive through oral narratives, लोककथा, आख्यायिका, लोकगीत, दंतकथा, rituals, festivals, performing traditions and community practices transmitted across generations. These two forms of cultural expression are not independent; rather, they frequently intersect, influence one another and contribute to the continuity of India's cultural memory.

This paper examines the interrelationship between Indian manuscript traditions and folklore, with particular emphasis on the processes of oral transmission, textualization, adaptation and cultural continuity. It explores how manuscripts can serve as valuable sources for reconstructing and understanding folk traditions, while living folklore can provide contextual perspectives for interpreting manuscript texts. The study adopts an interdisciplinary approach incorporating manuscriptology, folkloristics, cultural studies and heritage studies. It further considers the challenges posed by the deterioration of manuscripts, loss of traditional scripts and reading practices, decline of oral transmission, linguistic change and changing socio-cultural environments. The paper argues that the study and preservation of Indian manuscripts without consideration of their associated folk and community contexts may result in an incomplete understanding of cultural memory. Conversely, documentation of folklore without examining its historical textual and manuscript sources may overlook important dimensions of its development and transmission. An integrated approach combining manuscript conservation, systematic documentation of folklore, digitization, interdisciplinary research and community participation is therefore essential for preserving and transmitting India's diverse cultural memory.

Keywords: Manuscripts, Folklore, Cultural Memory, Manuscriptology, Oral Tradition, Folk Tradition, Cultural Heritage, Traditional Knowledge, Textual Transmission

संस्कृतकोशपरम्परायाः समग्राध्ययनं द्विजरत्नविरचितस्य *अप्रकाशितस्य 'वर्णार्थसङ्ग्रहस्य' सम्पादनञ्च]*

Ridham Pandya

संस्कृतवाङ्मये कोशग्रन्थानां परम्परा अत्यन्तप्राचीना समृद्धा च वर्तते । शब्दानां स्वरूपम्, अर्थः, पर्यायः, नानार्थत्वम्, प्रयोगः तथा विषयविशेषसम्बद्धा पारिभाषिकशब्दसम्पत् इत्यादीनां संरक्षणे कोशग्रन्थाः प्राचीनकालादेव महत्त्वपूर्णां भूमिकां निर्वहन्ति । वैदिकनिघण्टुपरम्परातः प्रारभ्य अमरकोशः, त्रिकाण्डशेषः, मेदिनीकोशः, विश्वप्रकाशः, हलायुधकोशः, अभिधानचिन्तामणिः इत्यादिभिः विविधैः कोशग्रन्थैः संस्कृतभाषायाः कोशसम्पदा निरन्तरं समृद्धा अभवत् । एतेषु ग्रन्थेषु केवलं शब्दानां पर्यायाः एव न सङ्गृह्यन्ते, अपि तु शब्दार्थवैविध्यं, शब्दप्रयोगः तथा कतिपयेषु ग्रन्थेषु व्युत्पत्तिरपि निरूप्यते । अतः कोशग्रन्थाः संस्कृतभाषायाः शब्दसम्पदः परिचायकाः एव न, अपितु भारतीयज्ञानपरम्परायाः महत्त्वपूर्णाः स्रोतांसि अपि सन्ति ।

यद्यपि संस्कृतवाङ्मये अनेकाः प्रसिद्धाः कोशग्रन्थाः प्रकाशिताः सन्ति, तथापि नैकाः ग्रन्थाः पाण्डुलिपिरूपेण अद्यावधिः अप्रकाशिताः किञ्च विभिन्नेषु ग्रन्थभाण्डारेषु, पुस्तकालयेषु तथा स्वकीयसङ्ग्रहस्थानेषु संरक्षिताः सन्ति । तेषामन्वेषणम्, परीक्षणम्, पाठालोचनात्मकं सम्पादनम् तथा प्रकाशनं संस्कृतकोशपरम्परायाः समग्रस्वरूपस्य पुनर्निर्माणाय अत्यन्तमपेक्षितमस्ति ।

प्रस्तुतशोधपत्रे प्रथमं संस्कृतकोशपरम्परायाः विकासक्रमः विवेच्यते । निघण्टुपरम्परातः आरभ्य कालक्रमेण विविधाचार्यैः विरचिताः पर्यायकोशाः, नानार्थकोशाः, एकाक्षरकोशाः, तथा विषयविशिष्टकोशाः इत्यादीनां प्रसिद्धाप्रसिद्धकोशग्रन्थानां रचना, रचयितारः, विषयविन्यासः, कोशरचनापद्धतिः, शब्दार्थप्रस्तुतिः, तत्तद् कोशग्रन्थविशेषताः निरूप्यन्ते । एतेन संस्कृतकोशपरम्परायाः विकासः, वैविध्यं तथा अन्तःसम्बद्धता च स्पष्टा भवति ।

अस्य अध्ययनस्य द्वितीयः पक्षः द्विजरत्नविरचितस्य **'वर्णार्थसङ्ग्रह'** इत्यस्य अप्रकाशितकोशग्रन्थस्य परिचयः पुनश्च पाण्डुलिप्याधारितं पाठसम्पादनं चास्ति । अस्य ग्रन्थस्य संशोधनानुसारं सम्प्रति समग्रविश्वे प्रायः एका एव मातृका समुपलभ्यते । उपलब्धपाण्डुलिपेः बाह्याभ्यन्तरस्वरूपं, लिपिः, लेखनपद्धतिः, पाण्डुलिपिस्थितिः, ग्रन्थविन्यासः अन्तर्वस्तु च सूक्ष्मतया परीक्ष्यते । पाण्डुलिप्याधारेण पाठस्य सूक्ष्मपरीक्षणं कृत्वा लेखनदोषाः, पाठदोषाः, लुप्तपाठाः तथा सम्भावितपाठभेदाः परिशील्य, आलोचनात्मकरीत्या परीक्षणं कृत्वा यथासम्भवं प्रामाणिकः पाठः स्थापितुं प्रयत्नः क्रियते । आवश्यकस्थलेषु समानार्थककोशग्रन्थैः तथा उपलब्धप्रमाणैः पाठस्य तुलनात्मकपरीक्षणमपि क्रियते ।

अतः प्रस्तुतशोधकार्यस्य वैशिष्ट्यं संस्कृतकोशपरम्परायाः सामान्यपरिचयमेव नास्ति, अपि तु तस्याः व्यापकपरम्परायाः अध्ययनं कृत्वा तदन्तर्गतस्य एकस्य अप्रकाशितकोशग्रन्थस्य पाण्डुलिप्याधारितसम्पादनं समन्वितरूपेण प्रस्तुतः वर्तते । वर्णार्थसङ्ग्रहस्य अध्ययनसम्पादनाभ्यां संस्कृतकोशवाङ्मये विद्यमानानामप्रकाशितग्रन्थानाम् अनुसन्धानमूल्यं प्रकाशयितुं, संस्कृतशब्दसम्पदः संरक्षणं कर्तुं तथा कोशपरम्परायाः पुनर्मूल्याङ्कनाय नूतनान् सम्भावनाक्षेत्रान् उद्घाटयितुं शक्यते । एतत् शोधकार्यं संस्कृतभाषाशास्त्रस्य, कोशवाङ्मयस्य, पाण्डुलिपिविज्ञानस्य तथा विशेषतया भारतीयज्ञानपरम्परायां योगदानं प्रदास्यतीत्यपेक्ष्यते ।

Keywords

[शब्दकोशः]; [पाण्डुलिपिः]; [वर्णार्थसङ्ग्रहः]; [पाठसम्पादनम्]; [भारतीयज्ञानपरम्परा]

A Jain Manuscript entitled Sarasvatīpūjana: An Introduction

Narayan Venkatraman Hegde, Balkrishna Shamsundar Joshi

The manuscript of Sarasvatīpūjana is in possession of the Bhandarkar Oriental Research Institute, Pune. Accession number of this manuscript is 689/1875-76. It contains 14 folios written in Devanāgarī script and Sanskrit language. It was procured by Prof. G. Buehler from Rajasthan. The text seems to be unpublished as yet. The manuscript belongs to Digambar Jain tradition. It consists of three parts namely

(1) Sarasvatīpūjana, (2) Jayamālā and (3) Ratnatrayapūjana. Sarasvati is honoured as the divine embodiment of pure knowledge i.e. preachings of the Tirthankaras. There is a general practice that after the performance of *pūjā* of a deity, the same deity is praised with *Stavana*. Here, along with

Sarasvatīpūjana and *Stavana* (Jayamālā), Ratnatrayapūjana has been written. In this paper we will discuss about the corelations of these Pujās and the importance of this manuscript.

भारतीय सांस्कृतिक विरासत के संरक्षण में पाण्डुलिपि विज्ञान का योगदान

Dr. Om Namo Narayan Upadhyay

तालपत्रे लिखिता विद्या, भोजपत्रे च सा स्थिता ।

कल्पान्तेऽपि न नश्यति, ज्ञानदीपाः सनातनाः ॥

अर्थात् ताड़पत्र पर लिखी हुई विद्या और भोजपत्र पर स्थित ज्ञान प्रलय के अन्त तक नष्ट नहीं होते हैं। ये ज्ञान के सनातन दीपक हैं।

भारत विश्व की सबसे प्राचीन और समृद्ध सांस्कृतिक परम्पराओं का धनी राष्ट्र रहा है। यहाँ का ज्ञान-विज्ञान, दर्शन, धर्म, साहित्य, कला, आयुर्वेद, ज्योतिष, गणित, संगीत तथा सामाजिक जीवन का विशाल भण्डार पाण्डुलिपियों में सुरक्षित रहा है। मुद्रण कला के पूर्व ज्ञान का संरक्षण और प्रसार का प्रमुख माध्यम पाण्डुलिपियाँ ही थीं। इन पाण्डुलिपियों में निहित ज्ञान भारतीय सभ्यता की निरन्तरता और सांस्कृतिक चेतना का प्रमाण है।

भारत में पाण्डुलिपियाँ केवल लिखित अभिलेख नहीं बल्कि सांस्कृतिक विरासत हैं। इसका क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। ताड़पत्र, भोजपत्र, कपड़े, चमड़े और कागज पर हाथ से लिखे ये दस्तावेज भारतीय जीवन के विभिन्न पहलुओं की झलक प्रदान करते हैं। पाण्डुलिपियों का संरक्षण और संग्रह करना हमारा कर्तव्य है, क्योंकि पाण्डुलिपियाँ हमारी सांस्कृतिक धरोहर है।

प्रस्तुत शोधपत्र में प्राचीन भारतीय ज्ञान-परम्परा एवं सांस्कृतिक विरासत के संरक्षण में पाण्डुलिपियों की भूमिका, पाण्डुलिपिशास्त्र की प्रकृति एवं कार्यक्षेत्र, पाण्डुलिपि-संरक्षण की पारम्परिक और आधुनिक पद्धतियों, पाठालोचन एवं डिजिटलीकरण के महत्त्व तथा वर्तमान चुनौतियों का विवेचन किया गया है। साथ ही यह प्रतिपादित किया गया है कि आधुनिक तकनीक के साथ पाण्डुलिपिशास्त्र का समन्वय भारतीय ज्ञान-विरासत एवं सांस्कृतिक विरासत के दीर्घकालीन संरक्षण के लिए अत्यन्त आवश्यक है। भारतीय सांस्कृतिक विरासत के संरक्षण में पाण्डुलिपि शास्त्र के योगदान पर चर्चा किया गया है।

Imporatance of manuscriptology

Sarveshacharya anantacharya akamnchi

Introduction

Manuscriptology is the scientific study of handwritten documents. It helps scholars understand the history, language, religion, literature, philosophy, science, and culture preserved in manuscripts. Before the invention of printing, knowledge was transmitted through handwritten manuscripts. The discipline therefore plays a vital role in preserving humanity's intellectual heritage.

India possesses one of the world's richest manuscript traditions with millions of manuscripts in Sanskrit, Kannada, Telugu, Tamil, Malayalam, Persian, Arabic, and many other languages.

Anantavedasāraḥ: A Critical Analysis of an Unpublished Manuscript

Ms. Mitva Pradeepbhai Joshi

The present paper is based on the manuscript titled 'Anantavedasāraḥ,' which is meticulously preserved at the Oriental Institute of The Maharaja Sayajirao University of Baroda in Vadodara. This intriguing manuscript offers an in-depth exploration of Vedānta philosophy, delving into its foundational concepts and principles. The text engages in a thorough discussion of key philosophical themes such as Jīva, Jagat, Brahman, Māyā, the nature of bondage, and the pathway to final emancipation or liberation, known as Mokṣa. It raises thought-provoking questions concerning various entities and provides precise definitions for the technical terminology associated with Vedānta, presenting a fresh and insightful perspective on these well-established ideas. An intriguing aspect of this manuscript is its synthesis of Sāṁkhya, Yoga, and Vedānta Darśana, highlighting the interconnectedness of these philosophical traditions. This paper aims to undertake a critical examination of the manuscript, comparing its insights and interpretations with those found in other relevant Vedāntic texts, thus contributing to a deeper understanding of this rich philosophical discourse.

Key words: Anantavedasāraḥ; Manuscript; Manuscript Studies; Manuscriptology; Vedānta Philosophy

History of Tradition Phulkari Embroidery

Dr.Humika Tamrakar. 1st Author,

Phulkari, meaning "floral work," is a traditional Punjabi embroidery characterized by colourful untwisted silken threads worked in a darning stitch on the coarse cotton fabrics (khaddar) . Phulkari symbolizes Maternal home blessings, often created by women to celebrate a girl’s birth.

Its origins trace back to at least the 7th century CE. Traditional Phulkari styles include Bagh, Chope, Subhar, Darshan Dwar, Sainchi, Tilpatra, Neelak, and Chhamaas, each distinguished by motifs, stitch patterns, or cultural significance. Bagh covers the entire surface, while Chope and Subhar are bridal pieces and Sainchi depicts village life. designs incorporating floral, geometrical, and sometimes metallic elements. Phulkari remains a vibrant symbol of Punjabi culture, artistry and heritage.

Keywords- Phulkari, Tradition, motif,

Prajñāprākash: The exegesis of unpublished manuscript of Jain Nīti Shāstra

Devika Vinayak Bhagwat

Prajñāprakāsh is a manuscript of Nīti Shāstra of Jainism obtained from Oriental Institute, Maharaja Sayajirao University of Baroda. The manuscript is selected from their catalogue of manuscripts namely “An alphabetical list of manuscripts volume II” of the section Nīti, on the page number 1094. The accession number of the manuscript is 1786 and has two folios. The manuscript is written in Devnagari script and has thirty-seven shlokas of Nīti Shāstra. Its author’s

name and its age is not mentioned in the catalogue as well as in the manuscript. The author has started the manuscript with the verse प्रज्ञाप्रकाशाय नवीनपाठी | श्रीमारुदेवं वृषभं प्रणम्य | काव्यानि चाहं कवयामी यानि | तज्ञैर्विसोध्यानि समानि तानि || He bowed down to Mārudeva the son of Maru Devi, Rishabh Deva, the first Tirthankar of Jain Dharma. Further the manuscript has stated verses of explaining Nīti, ethics one has to be followed. It has verses that not only elaborate one's behaviour in the materialistic Samsara, but also it has given the verses explaining sin-virtue, Japa-Upasana and Guru Stuti etc. Hence, if person goes through it, he will get the complete guideline to improve his behaviour in this Loka and to achieve higher Loka also. As it is counted in the lists of texts of Nīti Shāstra, it has the unique spiritual approach towards behaviour of human being as per its name Prajñāprakāsh, illuminating the intellect. This research paper will discuss the detailed exegesis of the verses of this manuscript.

Keywords- Manuscript, Jainism, Nīti Shāstra, Spirituality, Dharma.

पंडित शंकरदत्त शर्मा कृत अप्रकाशित संस्कृत नाटक 'हरिवंशहंसनामनाटकम्' का अध्ययन

कु. जिनेन्द्र जम्बू भिलवडे, प्रो. पराग जोशी

संस्कृत साहित्य की दुनिया में नाटकों का एक बहुत ही गौरवशाली इतिहास रहा है। महर्षि भरत के नाट्यशास्त्र से शुरू हुई यह परंपरा सदियों से भारतीय संस्कृति और समाज को नई दिशा दिखाती रही है। जहाँ कालिदास और भवभूति जैसे बड़े कवियों के नाटक पूरी दुनिया में मशहूर हैं, वहीं संस्कृत साहित्य का एक बहुत बड़ा हिस्सा आज भी हस्तलिखित पोथियों या पांडुलिपियों (Manuscripts) के रूप में पुस्तकालयों के कोनों में छिपा हुआ है। ये हस्तलिखित ग्रंथ न केवल हमारे इतिहास के गवाह हैं, बल्कि यह भी बताते हैं कि संस्कृत नाटकों की परंपरा कभी रुकी नहीं।

प्रस्तुत शोधपत्र का मुख्य लक्ष्य नागपुर विश्वविद्यालय पुस्तकालय में सुरक्षित एक अत्यंत दुर्लभ और अप्रकाशित (जो कभी छपी नहीं) हस्तलिखित नाटक 'हरिवंश हंसनाम नाटकम्' का परिचय देना है। इसके लेखक पंडित शंकरदत्त शर्मा हैं। यह पांडुलिपि संवत् १८४४ (यानी लगभग १७८७ ईस्वी) में लिखी गई थी। कुल ४३ पन्नों वाली यह हस्तलिपि देवनागरी लिपि और शुद्ध संस्कृत भाषा में तैयार की गई है, जो उस समय की सुंदर लेखन कला का एक अच्छा उदाहरण है। १८वीं शताब्दी का वह दौर भारत के लिए सांस्कृतिक रूप से बहुत उतार-चढ़ाव वाला था। ऐसे समय में शंकरदत्त शर्मा जैसे लेखकों द्वारा संस्कृत में मौलिक नाटक लिखना यह साबित करता है कि उस वक्त भी संस्कृत भाषा समाज में जीवित और सक्रिय थी। नाटक का नाम 'हरिवंश हंसनाम' यह संकेत देता है कि इसकी कहानी शायद हरिवंश पुराण के धार्मिक प्रसंगों या भगवान विष्णु के 'हंस अवतार' के दार्शनिक विचारों पर आधारित है। इस हस्तलेख की बनावट और इसकी लिखाई का अध्ययन हमें उस दौर की पांडुलिपि परंपरा को समझने में मदद करता है।

यह शोधपत्र यह स्पष्ट करता है कि 'हरिवंश हंसनाम नाटकम्' जैसी हस्तलिखित कृतियाँ केवल पुराने कागज के पन्ने नहीं हैं, बल्कि ये हमारी खोई हुई सांस्कृतिक विरासत हैं। चूँकि यह नाटक आज तक प्रकाशित नहीं हुआ है, इसलिए इस पर शोध करना और इसे दुनिया के सामने लाना बेहद जरूरी है। यह शोध ऐसी 'मौन' पांडुलिपियों को बचाने और उनके महत्व को फिर से समाज के सामने रखने की एक छोटी सी कोशिश है।

बीज शब्द (Keywords): हस्तलिखित पांडुलिपि, हरिवंश हंसनाम नाटकम्, शंकरदत्त शर्मा, नागपुर विश्वविद्यालय हस्तलेख, अप्रकाशित संस्कृत नाटक, १८वीं शताब्दी का साहित्य, पांडुलिपि विज्ञान।

EPIGRAPHIC EVIDENCE OF AHOM KINGS' DEVOTION: A STUDY OF RELIGIOUS INSCRIPTION

Dr. Nibedita Goswami

The Ahom dynasty (1228 - 1826 A.D.) ruledAssam for nearly 600 years, shaping its cultural and religious landscape. The inscriptions of Ahom kings provide invaluable insights into their religious practices, state policies and social structures. Ahom inscriptions are found across Assam, primarily in temples, copper plates and royal grants. These inscriptions are written in three primary scripts – 1.Tai - Ahom script2.Assamese script and3.Sanskrit script.

The inscription mainly documents the royal decrees, donations and temple constructions. Early Ahom rulers followed Tai animistic beliefs, worshipping deities like chao Phi Dam (ancestral spirits) and offering rituals to nature. Over time, they embraced Hinduism, particularly after the reign of Jayadhajasiṁha

The process of writing inscription is supposed to be very old. Kauṭilya is the earliest Indian writer who refers to this method of preparation of royal writs. He uses the term *śāsana* and these *śāsanas* are to be prepared in the royal court by composers and scribes of literary talents. They had special literary knowledge.

The religious inscriptions of the Ahom kingdom constitute an important source for understanding the devotional practices, religious policies, and cultural transformations of the Ahom rulers. Epigraphic records, engraved on temple walls, stone slabs, copper plates, bells, and other religious objects, provide direct evidence of royal patronage of Hindu temples, monasteries, and sacred institutions. Unlike literary chronicles, inscriptions are contemporary records and therefore offer reliable historical information regarding the religious life of the Ahom kings.

This paper aims to study the religion of the Ahom kings and their devotion.

Keywords: Ahom, Inscription, Hinduism, Śaktism etc.

भास्करवर्मण: डुबिताम्रलिपि: - एका समीक्षा

राजकुमार बरदलै, डॉ. निबेदिता गोस्वामी

पूर्वोत्तरभारतस्य पुरालेखा: अतीव प्रसिद्धा: सन्ति | तेषु ब्रह्मपुत्रस्य उपत्यकाया: शिलालेखा: उल्लेखनीया: | प्राचीनकाले ब्रह्मपुत्रोपत्यकायां कामरूपनामकप्रदेशविशेष: आसीत् | यस्य अपर नाम प्रागज्योतिषपुर: | प्रदेशेऽस्मिन् संस्कृतपरम्परा विद्यमाना आसीत् | तस्य प्रमाणम् ऐतिहासिकशिलालेखा: ताम्रलिपय एव | तेषु गुवाहाटी नगरस्य उमाचलपर्वते विद्यमान: उमाचलशिलालेख:, डुबिताम्रलिपि:, बरगङ्गाशिलालेख:, हर्जरवर्मण: तेजपुरशिलालेख:, हायुण्ठालताम्रलिपि:, वनमालस्य तेजपुरशिलालेख:, पर्वतीयताम्रलिपि:, उत्तरबरविलताम्रलिपि:, बलवर्मनतृतीयस्य नगांवताम्रलिपि: , रत्नपालस्य बरगाँवताम्रलिपि:, रत्नपालस्य शुवालकुचिताम्रलिपि:, इन्द्रपालस्य गौहाटीताम्रलिपि:, इन्द्रपालस्य गुवाकुचिताम्रलिपि: चेत्यादय: उल्लेखनीया: सन्ति | एते पुरालेखा: ऐतिहासिकप्रसिद्धा: सन्ति | शोधपत्रेऽस्मिन् डुबिताम्रलिपे: चर्चा मया क्रियते |

बीजशब्दा: - भास्करवर्म , डुबिताम्रलिपि:, लेखनवर्तनी, छन्द: |

Political Geography in the Aṣṭādhyāyī: Reconstructing Territorial Structure through Toponym-Formation Rules

Sudarshan M S

Research Parameters: Pāṇini's Aṣṭādhyāyī is read almost entirely as a linguistic text, yet its rules for deriving janapada- and place-names- concentrated in sutras, encode a working record of the political geography of his time. This paper asks what a systematic reading of these rules can recover about territorial extent, polity type, and boundary-formation in India before the Mauryan period, treating grammatical necessity as an unintended historical archive rather than a symbolic backdrop to the grammar.
Methodology: The study extracts every janapada, river, and boundary-term named across the relevant sūtras and gaṇapāṭha lists. The resulting inventory is compared against the sixteen Mahājanapadas recorded in the Aṅguttara Nikāya to test whether Pāṇini's grammatical attention tracks lived geographic familiarity.
Data & Findings: Pāṇini divides janapadas explicitly into monarchies (Ekarāja, 4.1.168–176) and republics (Saṅgha, concentrated in the Vāhīka region), and marks a janapada's boundary (avadhi) as its own derivable grammatical category at 4.2.124. Cross-referenced against the Aṅguttara Nikāya list, seven of the sixteen Mahājanapadas appear in Pāṇini, while the nine absent one's cluster in the eastern Gangetic belt- the reverse of the dense, granular toponymy Pāṇini gives his own north-western homeland.
Conclusion: Read this way, the Aṣṭādhyāyī functions as an inadvertent cartographic and political record, one whose selective density offers Indology a checkable method for locating a grammarian in space and political circumstance, independent of epic or Buddhist testimony.
Keywords

Pāṇini; Aṣṭādhyāyī ; janapada; sutras; Geography

अष्टाध्याय्याः भाषावैज्ञानिकं परिप्रेक्ष्यम्

डॉ. चन्दन कुमार पाठकः

प्रस्तावनामानवः सामाजिकप्राणी विद्यते। अतः समाजे परस्परं व्यवहर्तुं स्वीयविचारभावनामनोगतान् अभिव्यञ्जयितुं सम्प्रेषयितुं च किञ्चन समुचितं साधनमपेक्षितं तद् साधनं भाषेति वक्तुं शक्यते। भाषा नाम विचारभावनानुभवानां परस्परं विनिमयार्थम् अन्योन्यप्रयोजनसम्पादनायोपयुज्यमानं प्रभावि साधनम्। भाषेति पदं "भाष व्यक्तायां वाचि" इत्यस्माद् धातोः निष्पद्यते। भाष्यकारपतञ्जलिमहोदयेन उक्तम्- "व्यक्ता वाचि वर्णा येषां त इमे व्यक्तवाचः" अथवा भाषणात् भाषेत्याहुः।

भाषावैज्ञानिकः स्वीट् महोदयः भाषामेवमाह- "ध्वनिभिः मानवीयविचाराणां बौद्धिकाभिव्यक्तिरेव भाषा" (Language may be defined as the expression of thoughts by means of speech sound - Sweet)। प्रसिद्धः पाश्चात्त्यदार्शनिकः प्लेटो महोदयः भाषामेवमाह- "विचारः आत्मनः अध्वन्यात्मकः संवादः यदायमेव ध्वन्यात्मकः संवादः भवति तर्हि भाषेति उच्यते।"

प्राचीनसंस्कृतवाङ्मये भाषायाः उल्लेखः बहुत्र दरीदृश्यते। ऋग्वेदे मण्डूकमूक्ते- "संवत्सरं शशयाना ब्राह्मणा व्रतचारिणः। वाचं पर्जन्यजिन्वितां प्रमण्डूका अवादिषुः॥" (ऋ. ७.१०३.१)। ऐतरेयारण्यके- "यावद्वै ब्रह्म विष्टितं तावती वाक्" अर्थात् यावत् पर्यन्तं ब्रह्म व्याप्तं तावत् पर्यन्तं वाक् व्याप्ता इत्यर्थः। अथर्ववेदे- "तिस्रो वाचः निहिता अन्तरस्मिन् तासामेका निपपातानुघोषम्।" परा, पश्यन्ति, मध्यमा, वैखरी च इति चतस्रो वाचः।

संस्कृत और अंग्रेजी में काल की अवधारणा: भाषिक सापेक्षता के संदर्भ में तुलनात्मक अध्ययन

डॉ. अनिल कुमार द्विवेदी

काल मानव जीवन का आधार है, परन्तु विभिन्न भाषाएँ इसे समान रूप से अभिव्यक्त नहीं करतीं। किसी भाषा के व्याकरणिक, शब्दावलीगत और रूपक-आधारित निरूपण से उस भाषा-समुदाय की काल सम्बन्धी वर्गीकरण और प्रस्तुति की विशिष्ट प्रवृत्तियाँ प्रकट होती हैं। इस लेख का उद्देश्य संस्कृत तथा अंग्रेजी में काल की अवधारणा का भाषिक सापेक्षता व संज्ञानात्मक भाषाविज्ञान के दृष्टिकोण से तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करना है। यद्यपि दोनों भाषाएँ आनुवंशिक रूप से इंडो-यूरोपीय परिवार से सम्बन्धित हैं, पर इनके ऐतिहासिक विकास के फलस्वरूप काल-संबंधी व्याकरणिक और अर्थगत संरचनाओं में उल्लेखनीय भेद देखे जा सकते हैं। संस्कृत में काल-निरूपण केवल वर्तमान, भूत और भविष्यत् के सामान्य विभाजन तक सीमित न होकर विभिन्न लकारों के माध्यम से काल, भाव एवं क्रिया के सूक्ष्म भेदों को व्यक्त करता है।

लकार-प्रयोग में तिङ्-प्रत्यय, पुरुष-वचन, पद, सार्वधातुक-आर्धधातुक स्वरूप, विकरण, आगम, द्वित्व आदि व्याकरणिक प्रक्रियाएँ महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।

अतः पाणिनीय व्याकरण में लकार-व्यवस्था काल एवं क्रियार्थ की सूक्ष्म अभिव्यक्ति हेतु एक सुव्यवस्थित एवं वैज्ञानिक प्रणाली प्रस्तुत करती है। दूसरी ओर अंग्रेज़ी में grammatical tense, aspect, सहायक क्रियाएँ तथा विभिन्न लेक्सिकल रूपक काल-अनुभव को निर्मित करते हैं। यह अध्ययन दिखाता है कि दोनों भाषाओं में सार्वत्रिक काल-अनुभव के साथ-साथ भाषा-विशेष conceptualization भी मौजूद है। तथापि इस शोध में भाषा को सोच का कठोर निर्धारक मानने के स्थान पर भाषिक सापेक्षता के संयमित रूप को स्वीकार किया गया है— अर्थात् भाषा वक्ताओं के ध्यान, वर्गीकरण और अभिव्यक्ति की आदतों को प्रभावित कर सकती है।

बीज शब्द: काल, भाषिक सापेक्षता, संस्कृत, अंग्रेज़ी, काल-संज्ञान, लकार, रूपक, संज्ञानात्मक भाषाविज्ञान, Sapir–Whorf Hypothesis।

भोजपुरीभाषायां संस्कृतमूलानां तत्समतद्भवशब्दानां ध्वन्यात्मकपरिवर्तनस्य विमर्शः

सर्वेशकुमारतिवारी, डॉ अनिलकुमारद्विवेदी

भारतीयभाषासु भोजपुरीभाषायाः अपि विशिष्टं स्थानं वर्तते। इयं भाषा बिहारराज्यस्य पश्चिमभागे तथा उत्तरप्रदेशस्य पूर्वभागे विशेषतया प्रयुज्यते। अस्याः भाषायाः शब्दसम्पद् अपि समृद्धा वर्तते। भोजपुरीभाषायाः शब्दभण्डारे संस्कृतमूलानां शब्दानां महत्त्वपूर्णं स्थानं दृश्यते। तेषु केचन शब्दाः संस्कृतस्य यथावत् रूपं धारयन्तः तत्समरूपेण व्यवह्रियन्ते, केचन शब्दाः तद्भवरूपेण लोकव्यवहारे प्रयुज्यन्ते। भाषा न स्थिरा, अपि तु सततं परिवर्तनशीला भवति इति सर्वविदितमेवास्ति। कालपरिवर्तनेन, जनव्यवहारेण, उच्चारणसौकर्येण, भौगोलिकवैविध्येन तथा भाषासम्पर्केण ध्वनिषु शब्दरूपेषु च परिवर्तनं स्वाभाविकतया जायते। भोजपुरीभाषायां संस्कृतमूलानां शब्दानामपि इयमेव गतिः दृश्यते। क्वचित् स्वरपरिवर्तनं भवति, क्वचित् व्यञ्जनपरिवर्तनम्, क्वचित् संयुक्तव्यञ्जनस्य सरलीकरणं, वर्णलोपः, वर्णागमः, नासिक्यीकरणम् अथवा उच्चारणानुकूलं रूपान्तरं दृश्यते। भोजपुरीशब्दानां ध्वनिव्यवस्थायाः वैज्ञानिकाध्ययने नासिक्यीकरणादीनां वैशिष्ट्यानां विशेषविवेचनं पूर्वमेव कृतमस्ति। प्रस्तुतशोधपत्रस्य मुख्योद्देश्यं भोजपुरीभाषायां प्रयुज्यमानानां संस्कृतमूलानां तत्समतद्भवशब्दानां ध्वन्यात्मकपरिवर्तनस्य स्वरूपविवेचनम् अस्ति। शोधपत्रेऽस्मिन् संस्कृतमूलशब्दानां भोजपुरीरूपेषु जायमानस्वर-व्यञ्जनपरिवर्तनादीनां प्रक्रियाणां परीक्षणं क्रियते। अस्य अध्ययनस्य प्रयोजनं केवलं संस्कृतमूलशब्दानां भोजपुरीरूपाणां प्रदर्शनं न, अपि तु तेषां रूपपरिवर्तनस्य कारणभूतानां ध्वन्यात्मकप्रक्रियाणां भाषावैज्ञानिकदृष्ट्या विवेचनमस्ति। तत्समशब्दानामपि केवलं लिखितरूपस्य साम्यं पर्याप्तं न भवति। लिखितरूपे संस्कृतसदृशोऽपि शब्दः भोजपुरीभाषायाम् उच्चारणसमये स्थानीयध्वनिस्वभावस्य प्रभावेण किंचित् भिन्नतां प्राप्नोति। अतः लिखितभाषया सह उच्चरितभाषायाः स्वरूपमपि विचारणीयम्। तथैव प्रत्येकं भोजपुरीभाषायाः शब्दः संस्कृतस्य प्रत्यक्षपरिवर्तितरूपमिति मन्तुं न युक्तम्। तद्भवशब्दानां विकासः दीर्घकालीनभाषिकप्रक्रियायाः परिणामः अस्ति। अतः संस्कृतमूलशब्दात् भोजपुरीभाषायां प्रचलितरूपपर्यन्तं शब्दस्य क्रमिकपरिवर्तनस्य तुलनात्मकं परीक्षणं क्रियते। भाषाविज्ञानिकदृष्ट्या भोजपुरीभाषायाः

ध्वनिसंरचनायाः शब्दसम्पदश्च अध्ययनं विशिष्टं स्थानं भजते। प्रस्तुतेऽस्मिन् विमर्शे भोजपुरीभाषायाः सर्वेषां शब्दानां संस्कृतभाषायाः उत्पत्तिरिति न प्रतिपाद्यते। अपितु येषां शब्दानां संस्कृतमूलत्वं भाषाविज्ञानदृष्ट्या स्वीकृतं भवति, तेषामेव तत्समतद्भवरूपाणां ध्वन्यात्मकविकासस्य विवेचनं क्रियते।

भारतीय चिन्तन परम्परा में भाषा तथा भाषिक सीमाएँ

डॉ. अभय सिंह

भारतीय ज्ञान-परम्परा में भाषा को केवल संप्रेषण का उपकरण न मानकर चिन्तन और ज्ञान का अनिवार्य आधार माना गया है। प्रस्तुत शोध-पत्र भारतीय चिन्तन परम्परा में भाषा के स्वरूप, उसकी विशेषताओं तथा उसकी सीमाओं का विवेचन करता है। सर्वप्रथम भाषा को 'शब्द-समूह' से आगे 'शब्द-संरचना' के रूप में प्रस्तुत किया गया है, जिसमें पदों का परस्पर सम्बन्ध ही अर्थ का निर्धारक है। तत्पश्चात् सत्ता, ज्ञान और भाषा के पूर्वापर क्रम पर नैयायिकों (सत्ता–ज्ञान–भाषा) तथा वैयाकरणों (भाषा–ज्ञान–सत्ता) के मतों की तुलना करते हुए परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी — वाणी के इन चार स्तरों के आलोक में भाषा के ज्ञानात्मक स्वरूप को रेखांकित किया गया है। भारतीय एवं पाश्चात्य भाषा-दृष्टि का भेद वाक्–लिखित, ज्ञान–सम्प्रेषण तथा सृजनात्मक–प्रस्तुतिपरक — इन तीन बिन्दुओं पर स्पष्ट किया गया है।

भर्तृहरि के वाक्यपदीय को केन्द्र में रखकर यह प्रतिपादित किया गया है कि भाषा दो बुद्धियों के बीच आदान-प्रदान का माध्यम है, जिसकी पुष्टि गार्डिनर एवं येस्पर्सन जैसे आधुनिक भाषाविदों की परिभाषाओं से भी होती है। भाषा की सीमाओं के प्रसंग में न्याय, बौद्ध (दिङ्नाग–धर्मकीर्ति) तथा भर्तृहरि के मतों का तुलनात्मक विवेचन करते हुए यह निष्कर्ष प्रस्तुत किया गया है कि भाषा सत्ता को पूर्णतः अभिव्यक्त नहीं कर पाती, क्योंकि वह बुद्धिगृहीत 'बौद्ध' अथवा 'औपचारिकी' सत्ता को ही प्रकट करती है। तथापि 'शब्दभावना' के रूप में समस्त ज्ञान में अनुस्यूत होने के कारण भाषा सत्ता को प्रकाशित करने का सर्वाधिक सशक्त साधन है — वह साधन भी है और स्वयं ज्ञानात्मक होने से साध्य भी। अध्ययन की प्रविधि वर्णनात्मक, विश्लेषणात्मक एवं तुलनात्मक है तथा यह वाक्यपदीय, महाभाष्य, प्रमाणसमुच्चय आदि मूल ग्रन्थों पर आधारित है।

कूटशब्द : भाषा-दर्शन, भर्तृहरि, वाक्यपदीय, वाक् के चार स्तर, शब्दब्रह्म, शब्दभावना, बौद्ध सत्ता, औपचारिकी सत्ता, भाषिक सीमाएँ

कारकाणां विवक्षाधीनता

इदं हि शोधपत्रं कारकाणां स्वरूपं, संस्कृतभाषायां निहितं कारकाणां महत्त्वं च बोधयति। यथा कर्तृत्वादिशक्तिरेव कारकं भवति; न तु द्रव्यमिति, यथा वा कारकस्य साहाय्येन शक्तिमात्रासमूहरूपं घटादिद्रव्यम् अर्थविशेषं जनयति इति। तथैवेदं पत्रम् “कारकाणां कथंजातीयका विवक्षा दृश्यते ? किं विवक्षा लौकिकी ग्राह्या उत स्वाभाविकी? यथाकामं कारकस्य विवक्षायां कृतायां क्व को दोषः?” इति प्रतिपादयति। तथैवास्मिन् पत्रे एक एव पदार्थ एकत्रैव व्यापारेऽपि विवक्षातः कर्तृत्वादिनानाशक्तियुक्तोऽपि सम्भवतीति प्रतिपाद्यते । तथैवेदं शोधपत्रमिदं “विवक्षातः कारकाणि भवन्ति” इति सिद्धान्ते, सा च विवक्षा लौकिकी एव ग्राह्या इत्यत्र च पूर्वाचार्याणां(भाष्यकृत्, न्यासकृत्, वार्तिककृत्, सूत्रकृत्) सम्मतिं प्रदर्शयति। तथैव शोधपत्रमिदं “विवक्षातः कारकाणि भवन्ति” इति न्यायस्य वास्तिवकमर्थं प्रबोध्य “कारकाणां यथाकामं विवक्षा” इति व्यचक्षाणेभ्यो विप्रतिपन्नबुद्धिभ्यः, अध्येतृभ्यश्च विवक्षायाः वास्तविकं स्वरूपं शिक्षयति। तथैवेदं पत्रं विद्यमानमपादनत्वादि अविवक्ष्य कर्मतया सम्बन्धतया वा विवक्षां प्रदर्श्य “सतोऽप्यविवक्षा भवती”ति सिद्धान्तं द्रढयति।

कूटशब्दाः(Keywords): कारकम्, शक्तिः, विवक्षा, यथाकामम्, लौकिकी ।

Glimpses of Pragmatics in Sanskrit Linguistic Discourse

Dr. Jadhav Kaveri Narayanrao

The relation of word and meaning has intrigued the ancient thinkers and the newer ones alike. Sometimes it has been mystified and deified, sometimes studied at surface level and some other times dived deep into. The concept of language, having its components in the form of word, meanings and their mutual relation being one and same many new concepts of modern linguistics do strike a chord with ancient Indian linguistic concepts with some variations due to orientation, richness of language, insight of the seers and the basic underpinning philosophy of the language.

Pragmatics developed as an independent branch of linguistics in the 20th century and deals with how the meaning of words, other than the literal, conventional and lexical meaning, are communicated. It takes into consideration many aspects of language discourse which analyses social and linguistics aspects of language, prominent among them being context, speaker's intention, politeness, listeners' competency, Speech Act, deixis, implicature and presupposition. The seminal contribution of thinkers and linguists like C.S. Peirce, Charles Morris, J.L. Austin, H.P. Grice, and John Searle have nurtured this branch of modern linguistics.

Although Pragmatics, as an independent branch of study has a very recent origin the concepts thereof were already deliberated upon while considering the meanings of the words by Indian ancient philosophers belonging to diverse schools such as Nyaya, Mimāṁsā, grammar and poetics. The resonance of modern aspects of Pragmatics can be gleaned through ancient Indian concepts of *vyañgartha, dhvani, bhāvana* etc. considered severally under different fields of knowledge, such as linguistics and poetics, poetics, religious domain, respectively. The template of modern field of Pragmatics allows us to gather them together along the side of modern concepts and present them as a whole in the form of ancient Indian Pragmatics. The present paper attempt to compare and contrast the fields of ancient and modern pragmatics at conceptual level and present it as a field Sanskrit Pragmatics.

The paper, at the outset, strives to understand the distinction and relation between the two branches of Linguistic i.e., Semantics and Pragmatics. It also explores the essentials of Pragmatics as expounded by Western thinkers. It also searches for their equivalents /counterparts in ancient Indian linguistics and at last presents a comparative overview of the modern western and ancient Indian Pragmatics.

Nāmamālāh

Aarti Alur, Prof. Shivani V

Nāmamālās are a distinct and significant genre within Sanskrit lexicography (kośa). Nāmamālās and nāmāvalis are popular in Sanskrit literature, for example in stotras such as the *Viṣṇusahasranāma* and the *Lalitāsahasranāma*, which consist of words and epithets exclusive to a particular deity. Similarly, in kośas there are nāmamālās, which give the synonyms of words.

These texts function primarily as *paryāya-kośas* (synonym lexicons). Notably, they preserve unique vocabulary absent from mainstream lexicons like the *Amarakośa* or contemporary works by including colloquial terms (*rūḍhi padas*) that were likely popular during their respective eras. While these *nāmamālās* utilize organizational structures like *kāṇḍas* (chapters) and *adhyāyas* (sections), their divisions are generally less exhaustive than those found in larger lexicons like the *Amarakośa* Vaijayantikośa and the like.

This paper examines three Sanskrit nāmamālās: Dhanañjaya's *Nāmamālā*, Harṣakīrti's *Śāradīyākhyānāmamālā*, and Bhoja's *Nāmamālikā*, by assessing its usefulness and linguistic features, structure, and by making it more accessible to those engaged in linguistic studies through a showcase of their rare vocabulary. Each nāmamāla has been studied and digitized under

Mahakosha project..Mahakosha is a project that brings together classical Sanskrit koshas (lexicons), each composed of slokas, into one searchable collection.

The findings of the study were the lexicon's unique vocabulary, its distinctive way of presenting the śloka, and its unique structure and division into sections (kāṇḍas/vargas) of the kośa, as follows:

- Unique synsets like ,31 island names including jaṁbudvipa, the nailcutter synonyms, and the names of the Sun's horses in Bhoja's Nāmamālika
- The ślokas in Dhanañjaya's Nāmamālā make specific mention of prefixes and suffixes like चरः, दिक् when added to words in the śloka creates multiple synonyms in a concise way.
- Harṣakīrti's Śāradīyākhyānāmamālā has kandas and vargas which have specific to specific category like sangeeta , paṇḍita vargas etc.

Digitization of the nāmamālās

The digitization of the nāmamālās was well thought out and carried out in a systematic, step-by-step manner, from data entry and proofreading to structuring the template in excel with columns containing the pratipadika, prathama ekavacana, gender and reference number.

Since scholarly literature on these three nāmamālās is scarce, the findings and the data preparation in this study rest on three primary publications: Bhoja's *Nāmamālikā*, Dhanañjaya's *Nāmamālā* (the edition *Mahākavidhanañjayaviracitā Nāmamālā Amarakīrtiviracitabhāṣyopetā, Anekārthanighaṇṭuḥ Ekākṣarīkośaś ca*), and Harṣakīrti's *Śāradīyākhyanāmamālā*.

Keyword: nāmamālā, paryāya-kośa, structure, linguistics, digitization, unique vocabulary,

हरियाणवीभाषायां संस्कृतभाषायाः प्रभावः (तुलनात्मकं भाषावैज्ञानिकञ्च अध्ययनम्)

मोहिनी

हरियाणाप्रदेशः प्राचीनकालादेव भारतीयसंस्कृतेः सभ्यतायाश्च एकं महत्त्वपूर्णं केन्द्रं वर्तते। अस्य पावनप्रदेशस्य ऐतिहासिकी सांस्कृतिकी च परम्परा तु वैदिककालादारभ्य अद्यपर्यन्तं अत्यंतं समृद्धा जीवन्ती च दृश्यते। कुरुक्षेत्रादिप्रदेशाः भारतीयज्ञानपरम्परायाः, धार्मिकचिन्तनस्य तथा शाश्वतसांस्कृतिकमूल्यानां विकासे महत्त्वपूर्णं स्थानं धारयन्ति। अतः हरियाणाप्रदेशस्य लोकभाषा, लोकपरम्परा, सांस्कृतिकवैविध्यं च भारतीयसंस्कृतेः समग्रविकासक्रमे विशेषं स्थानं वहन्ति। अस्मिन् प्रदेशे जनैः प्रचलिता हरियाणवीभाषा दीर्घकालिकस्य भारतीयार्यभाषाविकासस्य एकः आधाररूपः स्तम्भः वर्तते। हरियाणवीभाषायाः शब्दसम्पदायाम्, ध्वनिसंरचनायाम्, रूपसंरचनायां तथा व्याकरणिकप्रयोगेषु देवभाषायाः संस्कृतभाषायाः गम्भीरः प्रभावः विभिन्नरूपेण परिलक्ष्यते।

प्रस्तुतशोधलेखे संस्कृतभाषायाः हरियाणवीभाषायां विद्यमानस्य प्रभावस्य एकात्मकरूपेण भाषावैज्ञानिकदृष्ट्या च गहनं तुलनात्मकमध्ययनं क्रियते। अस्मिन् क्रमे संस्कृतमूलकशब्दानां हरियाणवीभाषायाः प्रचालितरूपाणां तुलनया तेषां ध्वन्यात्मकं रूपात्मकं च परिवर्तनं सोदाहरणं विवेच्यते। शब्दरूपाणां परिवर्तने दृश्यते यत् कथमत्र संज्ञाशब्दाः क्रियापदानि च प्राकृतस्य अपभ्रंशस्य च माध्यममेन रूपान्तरितानि अभवन्। यथा — संज्ञापदेषु 'ग्रामः' इत्यस्य 'गाम', 'भित्तिः' इत्यस्य 'भीत', 'किशोरः' इत्यस्य 'छोरा' तथा च 'वल्कलम्' इत्यस्य 'बक्कल' इति रूपाणि अत्र सुरक्षितानि सन्ति। तथैव क्रियापदेषु अपि संस्कृतधातूनां साम्यं स्पष्टं वर्तते, यथा — 'चलति' इत्यस्य 'चालै सै', 'पालयति' इत्यस्य 'पाळै सै' तथा च 'निगलति' इत्यस्य 'निगळै सै' इति प्रयोगाः दृश्यन्ते। अत्र संयुक्तव्यञ्जनानां सरलीकरणं स्वरभक्त्या वा जायते, यथा — 'धर्मः' इत्यस्य 'धरम', 'कर्म' इत्यस्य 'करम' तथा च 'ज्ञानम्' इत्यस्य 'ग्यान' इति ध्वनिपरिवर्तनं स्पष्टं भवति।

अस्य शोधलेखस्य मुख्यमुद्देश्यमस्ति — "हरियाणवीभाषायां संस्कृतभाषायाः प्रभावस्य स्वरूपनिर्धारणं, संस्कृतमूलकशब्दानां हरियाणवीरूपैः सह तुलनात्मकमध्ययनं, तेषां ध्वन्यात्मकरूपात्मकपरिवर्तनस्य विश्लेषणं,

संस्कृतहरियाणवीभाषयोः ऐतिहासिकस्य भाविकस्य च स्वरूपस्य प्रतिपादनम्।" एतेषाम् उदाहरणानां माध्यमेन संस्कृतभाषायाः हरियाणवीभाषायां प्रभावस्य वास्तविकं स्वरूपं पूर्णतया ज्ञातुं साक्षात् शक्यते। तथापि हरियाणवी संस्कृतस्य प्रत्यक्षम् अपभ्रंशरूपम् इति न मन्तव्यम्, अपितु संस्कृत-प्राकृत-अपभ्रंश-माध्यमेन आधुनिकभारतीयभाषाणां क्रमिकविकासस्य संदर्भात् तस्याः भाषिकस्वरूपस्य गहनम् अध्ययनं करणीयम्। अनेन अध्ययनेन हरियाणवीभाषायाः विकासक्रमे संस्कृतभाषायाः प्रभावः वैज्ञानिकदृष्ट्या सम्यक् प्रकाशयितुं शक्यते, येन भाषाविज्ञानक्षेत्रे नवीनमार्गः प्रशस्तः भविष्यति। अनेन अध्ययनेन भाषारक्षायै नूतना ऐतिहासिकदृष्टिः अपि प्राप्यते। एतत् अध्ययनं भविष्ये अन्यशोधकानामपि कृते मार्गदर्शकं सिद्धं भविष्यति। अत एव अस्य शोधस्य महती आवश्यकता वर्तते।

मुख्यशब्दाः (Keywords): हरियाणवीभाषा, संस्कृतभाषा, भारतीयार्यभाषाविकासः, ध्वन्यात्मकपरिवर्तनम्, रूपात्मकविवेचनम्, तुलनात्मकमध्ययनम्।

भारतीयज्ञानपरम्परायां न्यायव्याकरणदृष्ट्या लक्षणाविचारः

माधवी त्रिपाठी(शोधच्छात्रा),

शोधसारः

व्याकरणशास्त्रे यदा अर्थविचारः क्रियते शाब्दबोधः क्रियते तत्र बहुषु स्थलेषु लक्षणां विना अन्वयः कर्तुं न शक्यते । यथा समर्थः पदविधिः अत्र पदम् उद्दिश्य जायमानो विधिः समर्थः भवति एवम् अर्थः क्रियते तदा परस्पर सामानाधिकरण्येन अन्वयाभावात् अनेन लक्ष्य: न साधयितुं शक्यते । तस्मात् समर्थशब्दस्य समर्थाश्रिते लक्षणा क्रियते तत्यां सत्यां पदविधिः समर्थाश्रितो भवति इति सामानाधिकरण्येन अन्वयो भवति तदा पदविधिः समर्थाश्रितो भवति इति अन्वयः सम्पत्स्यते। एवमेव वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी इत्यत्र कौमुद्या सह वैयाकरणसिद्धान्तस्य अन्वयो नोपपद्यते तदा सिद्धान्तशब्दस्य सिद्धान्तसदृशे लक्षणा क्रियते। सदृशपदेन यदि ग्रन्थः गृह्यते तदा षष्ठी तत्पुरुषसमासः यदा सदृशपदेन सिद्धान्त एव गृह्यते तदा कर्मधारय समासः सिद्ध्यति।

नैयायिकैः समासस्थले सर्वत्र लक्षणां स्वीकृत्य अन्वयः साध्यते । यथा राजपदस्य राजसम्बन्धिनि लक्षणा अतः राजसम्बन्ध्यभिन्नः पुरुषः इति अन्वयः । अनेन नामार्थयोः अभेदादतिरिक्तः सम्बन्धः अव्युत्पन्नः अस्य सिद्धान्तस्य गतार्थता भवति। एवम् एव श्रीमता नागेशभट्टेन प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनमात्रे प्रथमा इति सूत्रव्याख्यावसरे द्रोणो ब्रीहिः इत्यत्र द्रोणप्रातिपदिकात् परिमाणत्वेन परिमाणरूपार्थस्य आधिक्यात् प्रवृत्तिनिमित्ततदाश्रयभूत प्रातिपदिकार्थत्वाभावात् प्रथमायाः अनुत्पत्तौ परिमाणग्रहणं क्रियते । तदा परिमाणग्रहणसामर्थ्यात् द्रोणप्रातिपदिकात् प्रातिपदिकार्थे प्रथमा।

एवं द्रोणो व्रीहिः इत्यत्र शाब्दबोधाय द्रोणपदस्य द्रोणपरिमिते लक्षणा तत् सत्त्वे द्रोणपरिमिताभिन्नो व्रीहिः इति बोधः। एवं भाष्येऽपि स्थूला चासौ पृषती इत्यत्र पृषतीशब्दस्य पृशत्वती इत्यत्र लक्षणा तदा स्थूला चासौ पृषती इति विग्रहः जायते। एवं प्रकारेण ज्ञायते यत् शास्त्रसन्दर्भ अथवा व्यवहारिकवाक्यबोधसम्बन्धे कुत्रचित् वाच्यार्थम् आश्रित्य अभिलषितः शाब्दबोधो भवितुं न शक्यते । तत्र लक्षणा वृत्तिः स्वीकार्या भवति व्याकरणशास्त्रे लक्षणायाः स्थाने शक्त्याः एव भेदः क्रियते प्रसिद्धा शक्तिः अप्रसिद्धा शक्तिश्च । तत्र लक्षणास्थानापन्ना अप्रसिद्धा शक्तिः सकलाभीष्टां साधयति । अनेन ज्ञायते यत् केवलशक्त्या लक्ष्यसिद्धिः न भवति तत्र कश्चन उपायान्तरम् ऊहनीयम् एव भवति । तच्च लक्षणा इति वृतिः समर्थभूता वर्तते लक्ष्यं साधयितुम्।

कूटशब्दाः- लक्षणा, वृत्तिः, अर्थविचारः, शक्तिः, तत् त्वम् असि।

वार्त्तिकस्याष्टौ धर्मगुण-विमर्श:

डॉ त्रिलोक झा:

पाणिनिव्याकरणं त्रिमुनिव्याकरणमिति कथ्यते। तत्र सूत्रकार: पाणिनि: वृत्तिकार: कात्यायन: महाभाष्यकारश्च पतञ्जलिरिति उच्यते। तत्र सूत्ररचना अतीव कठिना भवति।यतो हि अल्पाक्षरेण शब्देन विषयसूचनं तत्रोद्देश्यं भवति। यद्यपि सूत्रे ये अर्था: प्रतिपादयितव्या: भवन्ति, तेषाम् अवबोध: तत्तत्सूत्राणां वृत्त्या भवति। वृत्त्या एव सततं स्पष्टं भवति यत् सूत्रमिदम् इष्टार्थप्रतिपादने आंशिकरुपेणापि सूत्रमसमर्थं भवति तर्हि तत्र परिवर्तनं संशोधात्मक: ग्रन्थ एव वार्त्तिकग्रन्थ:कथ्यते। वार्त्तिकनिर्माणं सूत्राणां वृत्ति: समीक्षानन्तरमन्वर्थ: भवति।

अतः पाणिनिव्याकरणस्य पूर्णताप्राप्तये कात्यायनेन पतञ्जलिना च अनेकानि वार्त्तिकानि विरचितानि ।

विष्णुधर्मोत्तरपुराणे वार्त्तिकस्याष्टौ धर्मगुणाः उक्ताः। तद्यथा-

प्रयोजनं संशयनिर्णयौ च व्याख्याविशेषो गुरुलाघवं च।

कृतव्युदासो कृतशासनं च स वार्त्तिको धर्मगुणोऽष्टकश्च।।

एवं हि वार्त्तिकेन सूत्रस्य व्याख्यानम्, प्रयोजनम्, प्रत्याख्यानम् इत्यादीनि अनेकानि कार्याणि क्रियन्ते। एतद्वचनानुसारेण वार्त्तिकस्य अष्टौ गुणा उक्ता: -1. प्रयोजनम् 2. संशयः 3.निर्णय: 4. व्याख्याविशेष: 5. गौरवप्रदर्शनम् 6. लाघवप्रदर्शनम् 7..कृतव्युदासः (क्रियमाणप्रत्याख्यानम्) 8.अकृतशासनम् (अनुक्तस्य कथनम्)। एवञ्च सर्वे गुणाः यथा सामान्यवार्त्तिकेषु दृश्यन्ते तथैव श्लोकवार्त्तिकेष्वपि। सामान्यवार्त्तिकेषु एवं गुणानामुदाहरणम् -

1. प्रयोजनम्- "ङ्याप्प्रातिपदिकात्" इति सूत्रे ङ्याप्प्रातिपदिकग्रहणमङ्गलपदसंज्ञार्थम् इति वार्त्तिकेन सूत्रे प्रयोजनमुक्तमिति।

2-3. संशय:,निर्णयश्च - "आमन्त्रितं पूर्वमविद्यमानवत्" इति सूत्रे पूर्वं प्रति अविद्यमानत्वादुत्तरत्रानन्तर्याप्रसिद्धि: इति वार्त्तिकेन संशय: उपस्थित: यत् "इमं में गङ्गे यमुने' इति प्रयोगे गङ्गे शब्दः यमुने शब्दं प्रति अविद्यमानवद् भवति न तु मे शब्दं प्रति। तत्रामन्त्रितस्य पदात् परस्य इत्यनुदात्तत्वं न स्यात् इति । तत्रैव पुनः "सिद्धं तु पूर्वपदस्येति वचनात्" इति वार्त्तिकेन तस्य संशयस्य निर्णयः कृतो यत् पूर्वपदस्य चामन्त्रितस्य अविद्यमानवद्भावो भवति इति कथनेन अनुदात्तत्वं सेत्स्यति।

श्लोकवार्त्तिकेष्वपि एवं गुणानामुदाहरणम् -

1.प्रयोजनम् - "इको झल् ' इति सूत्रे पठितयो: निम्नलिखितयो: वार्त्तिकयोः झलादे: सन: कित्वातिदेशस्य प्रयोजनं प्रदर्शितं विद्यते। तद्यथा -

इक: कित्वं गुणो मा भूत् दीर्घारंभात्कृतो भवेत्।

अनर्थकं तु ह्रस्वार्थं दीर्घाणां तु प्रसज्यते।।

सामर्थ्याद्धि पुनर्भाव्यमृदित्वं दीर्घसंश्रयम्।

दीर्घाणां ना कृते दीर्घे णिलोपस्तु प्रयोजनम्।।

अर्थादत्र आभ्यां वार्त्तिकाभ्यां कित्वस्य द्विविधं प्रयोजनम् उक्तम्। प्रथमं 'चिचीषति' इत्यादौ गुणनिषेधः, द्वितीयं च **ज्ञीप्सति इत्यादौ णिलोपः**।

2.संशय: निर्णयश्च - "हयवरट' सूत्रे -

प्रत्याहारे अनुबन्धानां कथमज्ग्रहणेषु।

आचारदप्रधानत्वाल्लोपश्च बलवतर: ।।

इति श्लोकवार्त्तिकेन अक्षरसमाम्नाये पठितानाम् अनुबन्धानाम् 'अच्' प्रत्याहारे ग्रहणं कथं न भवतीति संशयमुपस्थाप्य तस्य समाधानं च प्रस्तुतमिति।

एवमेव सामान्यवार्त्तिकानां श्लोकवार्त्तिकानां च विस्तृतविमर्शो शोधालेखे सप्रमाणेन भविष्यतीति सम्।

कठोपनिषदि अलङ्कारतत्त्वविमर्शः — एकं साहित्यशास्त्रीयम् अध्ययनम्

वसन्तः कोईराला

निखिलेस्मिन् ब्रह्मण: प्रपञ्चे आत्यन्तिकत्रिविधतापप्रशमनपूर्वकनिरतिशयसुखावाप्तिरुपचरमपुरुषार्थसिद्धये ज्ञानमेव केवलमनन्यसाधारणम् परमनिदानमिति " ऋते ज्ञानान्न मुक्ति:" " नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यत इत्यादितात्पर्यकाणि वाक्यानि प्रमाणानि स्वत: प्रमाणयन्ति। इत्थञ्च भूयो भूय: श्रुतिस्मृतिभि: समुपदिष्टै: मोक्षस्य परमार्थत्वमिति ज्ञानस्य परमसाधनत्वे सप्रमाणं निर्धारिते सर्वदा सर्वथा च अभ्युदयनि:श्रेयसप्राप्तिकामोयं जीव: मोक्षोपलब्धये अवश्यं ज्ञानमेव शरणीकरोतीति निश्चप्रचमिदं सार्वकालिकानाम् विद्वद्तल्लजानाम्। तत्ज्ञानञ्च उपनिषदां मुख्यं प्रतिपाद्यं वरीवर्ति।

वेदाः खलु सर्वप्राचीनस्य ज्ञानपरम्परायाः प्रतिनिधयः वर्तन्ते। उपनिषदः तेषां दार्शनिकपरम्परायाः चरमपरिपाकस्वरूपाः मन्यन्ते। उपनिषदः वेदानां अन्तिमभागः मन्त्राणां च ज्ञानकाण्डस्वरूपाः सन्ति, अतः एव एताः 'वेदान्तः' इति नाम्ना अपि प्रसिद्धाः। एतासु मुख्यासु उपनिषत्सु 'कठोपनिषद्' अत्यन्तं महत्त्वपूर्णा, रसार्द्रा, दार्शनिकी च रचना वर्तते। इयं उपनिषद् कृष्णयजुर्वेदस्य कठशाखया सम्बद्धा अस्ति।

उपनिषदां प्रमुखो विषयः परमार्थस्य अन्वेषणम् विद्यते। जीवः कः? आत्मा कः? जगतः स्वरूपं किम्? माया का ? मृत्योः परं किमस्ति? मोक्षः कथं प्राप्यते? इत्यादीनां प्रश्नानां समाधानं उपनिषत्सु दृश्यतेतराम्। तास्वुपनिषत्सु कठोपनिषद् कृष्णयजुर्वेदसम्बद्धा प्रसिद्धा उपनिषद् वर्तते। अस्याः कथावस्तु नचिकेतसः यमस्य च संवादे प्रतिष्ठिता वर्तते। संवादमाध्यमेन यमः नचिकेतसे आत्मविद्यां, श्रेयः-प्रेयसोः विवेकं, इन्द्रियनिग्रहं, योगम् आत्मनः अमृतस्वरूपं च प्रतिपादयति।

विशेषतः याः आध्यात्मिकानुभूतयः सामान्यभाषया अभिव्यक्तुं दुष्कराः भवन्ति, ताः उपनिषद्कारः लौकिकजीवने परिचितानां पदार्थानां घटनानां सम्बन्धानां च माध्यमेन अभिव्यक्तवन्तः। अर्थात् गहनतमा दार्शनिकविषयाः शुष्कतर्केण बुद्धाववतारणं न शक्नुवन्ति। सामान्यतः धारणा अस्ति यत् उपनिषदः शुष्काः, दार्शनिकगाम्भीर्ययुक्ताः, केवलं बुद्धिग्राह्याश्च भवन्ति, तत्र काव्यसौन्दर्यस्य अथवा अलङ्कारयोजनायाः अभावः भवति। परन्तु कठोपनिषदः गम्भीरेण अध्ययनेन इयं धारणा निर्मूला सिध्यति। अत्र परमार्थतत्त्वस्य, आत्मज्ञानस्य, श्रेयः-प्रेयोश्च विवेचनं यया शैल्या कृतं, सा सर्वथा काव्यात्मिका, मनोहारिणी च अस्ति। ऋषिभिः दुरुहं अमूर्तं च ब्रह्मज्ञानं सर्वसाधारणचेतनायाः कृते सुगमं विधातुं लौकिकप्रतीकानां, दृष्टान्तानां, अलङ्काराणां च आश्रयः गृहीतः। उपनिषत्सु अलङ्काराः केवलं बाह्यशोभाधायकाः चमत्कारोत्पादकाः वा न सन्ति, अपितु ते तत्त्वप्रतिपादनस्य मुख्याधाराः, साधनभूताश्च सन्ति। तदर्थं सदृशवस्तूनि दृष्टान्तीकृत्य 'अदृष्टं दृष्टेन समर्थ्यते' इति न्यायेन ऋषयः रूपक-उपमा-उत्प्रेक्षा-दृष्टान्तादीनाम् आश्रयं गृह्णन्ति अत एव उपनिषत्सु रथः, वृक्षः, पक्षी, नदी, समुद्रः, अग्निः, प्रकाशः, आकाशः, मधु इत्यादयः प्रतीकाः शब्दा अत्यन्तमर्थपूर्णाः भवन्ति।

अत्र इदं ध्यायं यत् उपनिषत्सु प्रयुक्तं प्रत्येकं दृष्टान्तं अनिवार्यतः एकस्यैव पारिभाषिकस्य अलङ्कारस्य अन्तर्गतं स्थापयितुं न शक्यते। तस्य निर्धारणं प्रसङ्गस्य, शब्दार्थस्य, तात्पर्यस्य तथा काव्यशास्त्रीयलक्षणानां च आधारेण करणीयम्।अतः उपनिषदाम् अलङ्कारशास्त्रीयम् अध्ययनं तेषां दार्शनिकाशयं ज्ञातुं नूतनां साहित्यिकदृष्टिं प्रददाति। शोधलेखेस्मिन् कठोपनिषदि प्रयुक्तस्य अलङ्कारतत्त्वस्य विभिन्नपक्षणां सोदाहरणं वैज्ञानिकं च विश्लेषणं क्रियते।

कूटशब्दाः- उपनिषद्, अलङ्कारः,उपमा, उत्प्रेक्षा, मोक्षः, ज्ञानम्, साहित्यम् इत्यादिः।

पाणिनीयव्याकरणदृष्ट्या नैषधीयचरिते गत्यर्थकधातूनाम् अर्थवैचित्र्यम्

Naresh singh

संस्कृतसाहित्ये महाकविश्रीहर्षप्रणीतं 'नैषधीयचरितम्' विद्वदौषधत्वेन ("नैषधं विद्वदौषधम्") समादृतं वर्तते। इदं महाकाव्यं न केवलं रस-भाव-अलङ्कारादीनां प्रौढिम् आवहति, अपितु पाणिनीयव्याकरणशास्त्रस्य गूढप्रयोगाणां धातुवैविध्यस्य च महतीं मञ्जूषाम् अपि धारयति। पाणिनीयधातुपाठे पठितानां गत्यर्थकधातूनां स्वभावो वर्तते यत् ताः केवलं देशान्तरप्राप्तिरूपं भौतिकगमनं न बोधयन्ति, अपितु ज्ञान-प्राप्ति-मोक्षादीन् सूक्ष्मान् अर्थानपि गमयन्ति। प्रस्तुतशोधपत्रे पाणिनीयव्याकरणशास्त्रस्य नियमान् आधृत्य नैषधीयचरितमहाकाव्ये प्रयुक्तानां गत्यर्थकधातूनां धात्वर्थविज्ञानस्य (Semantics) तथा च उपसर्गाणां सम्बन्धेन जायमानस्य 'अर्थवैचित्र्यस्य' समीक्षात्मकं विश्लेषणं विहितम्। अस्मिन् शोधलेखे अन्वेषणात्मकपद्धत्या इदमभिव्यक्तं यत् कथमत्र महाकविना श्रीहर्षेण 'पद्', 'गम्', 'धाव्', 'इण्', 'सृ' प्रकृतिकानां गत्यर्थकधातूनां प्रयोगं कृत्वा अर्थवैचित्र्यं समुपस्थापितम्। इदं शोधपत्रं नैषधीयचरितस्य व्याकरणिकपक्षं प्रकाशयन् भाषावैज्ञानिकदृष्ट्या गत्यर्थकधातूनां दार्शनिकं व्यावहारिकञ्च महत्त्वं प्रतिपादयति।

The Influence of Sanskrit on Malayalam Language and Grammatical System

Dr. Remya Gokulanathan

Several languages in India have evolved through historical interactions with Sanskrit. Malayalam, the mother tongue of Kerala in South India, also exhibits a significant and distinctive influence of Sanskrit. Malayalam was accorded Classical Language status in 2013. For a long period, the relationship between Malayalam and Sanskrit was interpreted through the belief that Malayalam was derived from Sanskrit.

The renowned poet and founder of Kerala Kalamandalam, Vallathol Narayana Menon, describes the nature of Malayalam in the following lines:

“With the natural brilliance of Sanskrit And the beauty of Tamil combined, Such is my language— Take pride in it.”

Various theories have been proposed regarding the origin and evolution of the Malayalam language. Among the early theories is the Sanskrit-origin theory, which argues, on the basis of certain linguistic features and historical evidence, that Malayalam originated from Sanskrit. This view was notably associated with the scholar Kovunni Nedungadi. *Lilatilakam*, regarded as the earliest extant grammatical and linguistic treatise dealing with Malayalam, was written in Sanskrit. These aspects indicate the significant role played by Sanskrit in the historical development of Malayalam.

The present study, titled “The Influence of Sanskrit on Malayalam Language and Grammatical System,” seeks to examine the various dimensions of Sanskrit influence on Malayalam. The study focuses particularly on the influence of Sanskrit on the Malayalam script and alphabetic system, vocabulary, grammatical structure, literary language, prosodic system, and figures of speech.

The distinctive features of the Malayalam script, when compared with other Dravidian writing systems, can be examined in relation to the historical influence of Sanskrit and the Grantha tradition. The classification of words into categories such as Tatsama (words borrowed directly

from Sanskrit) and Tadbhava (words that have undergone phonological or morphological transformation from their Sanskrit forms) itself demonstrates the depth of Sanskrit influence on Malayalam vocabulary.

The study further proposes to analyse the influence of Sanskrit on various grammatical categories such as nouns, verbs, and adjectives, as well as on sandhi (euphonic combination), case markers and case relations, gender and number, with suitable examples from Malayalam. The impact of Sanskrit grammatical concepts and structures on the development of Malayalam grammatical thought will also be examined.

In addition, the study explores the influence of Sanskrit on the language of Malayalam literature, literary movements, metres (prosody), and systems of poetics and figures of speech. By examining these linguistic, grammatical, and literary dimensions, the paper seeks to understand the nature, extent, and historical significance of Sanskrit influence in the formation and development of Malayalam language and its grammatical system.

संस्कृत एवं हिन्दी व्याकरण में साम्य वैषम्य विवेचन : एक अध्ययन

पिंकी उपाध्याय

संस्कृत एवं हिन्दी भारतीय भाषिक परम्परा की महत्त्वपूर्ण भाषाएँ हैं। दोनों के मध्य शब्दावली, ध्वनि, शब्दरचना तथा वाक्य-संरचना के स्तर पर अनेक सम्बन्ध दिखाई देते हैं, किन्तु दोनों की व्याकरणिक व्यवस्थाएँ भी समान हैं किन्तु पूर्णतः समान नहीं हैं। पाणिनीय व्याकरण में भाषा के ध्वनि, सन्धि, समास, कारक, प्रत्यय तथा शब्द-निर्माण का अत्यन्त व्यवस्थित निरूपण मिलता है। आधुनिक हिन्दी व्याकरण दूसरी ओर हिन्दी की वर्तमान संरचना, प्रयोग और भाषिक विविधता को केन्द्र में रखता है।

प्रस्तुत शोध की मुख्य समस्या यह है कि संस्कृत एवं हिन्दी के सम्बन्ध का अध्ययन प्रायः दो अतियों में दिखाई देता है। एक ओर हिन्दी की व्याकरणिक संरचना को संस्कृत के आधार पर पूर्णतः समझने का प्रयास किया जाता है, दूसरी ओर दोनों की पारम्परिक व्याकरणिक अवधारणाओं के बीच अपेक्षित संवाद नहीं स्थापित हो पाता। परिणामतः कारक-विभक्ति, प्रकृति-प्रत्यय, लिंग-वचन, क्रिया, सन्धि, समास तथा वाक्य-विन्यास जैसी संकल्पनाओं को विद्यार्थियों के लिए समन्वित रूप में समझाना कठिन हो जाता है।

इस समस्या के समाधान के रूप में शोधपत्र संस्कृत एवं हिन्दी के तुलनात्मक व्याकरण की ऐसी पद्धति प्रस्तावित करता है जिसमें प्रत्येक व्याकरणिक तत्त्व का पहले स्वतंत्र रूप से अध्ययन, तत्पश्चात् दोनों भाषाओं में उसका तुलनात्मक विश्लेषण किया जाए। उदाहरणतः संस्कृत की विभक्ति-प्रधान व्यवस्था और हिन्दी के परसर्ग-प्रधान प्रयोग, संस्कृत के त्रिवचन और हिन्दी के द्विवचन, तथा संस्कृत की धातु-प्रत्यय आधारित रूप-रचना और हिन्दी की क्रिया-व्यवस्था का तुलनात्मक अध्ययन विद्यार्थियों को संरचनात्मक अन्तर समझने में सहायता कर सकता है।

अध्ययन का निष्कर्ष है कि संस्कृत व्याकरण को हिन्दी पर आरोपित करने के स्थान पर उसे तुलनात्मक विश्लेषण के उपकरण के रूप में प्रयुक्त किया जाना चाहिए।

प्रस्तावित शिक्षण-मॉडल भाषिक उदाहरण → अर्थबोध → व्याकरणिक विश्लेषण → तुलनात्मक अध्ययन → नियम-बोध → अभ्यास → स्वतंत्र प्रयोग—हिन्दी भाषा-शिक्षण को अधिक तार्किक, भारतीय भाषिक परम्परा से सम्बद्ध तथा प्रयोगपरक बना सकता है। इस प्रकार पाणिनीय व्याकरण परम्परा और आधुनिक हिन्दी भाषाविज्ञान का समन्वय तुलनात्मक व्याकरण तथा भाषा-शिक्षण के लिए नवीन शोध की दिशा प्रस्तुत करता है।

बीजशब्द : संस्कृत, हिन्दी, पाणिनीय व्याकरण, अष्टाध्यायी, तुलनात्मक व्याकरण, कारक, विभक्ति, प्रत्यय, शब्दरचना, भाषा-शिक्षण।

व्याकरणशास्त्रे पञ्चप्रमेयानां समीक्षा

गजानन्दशर्मा

यस्माज्जातं जगतसर्वं यस्मिन्नेव प्रलीयते।

येनेदं धार्यते चैव तस्मै ज्ञानात्मने नमः।।

मनुष्य एकः मननशीलः प्राणी। येन कारेणेन अन्या प्राणीभ्यः पृथक् दृश्यते। आदिकालादेव मानवचिन्तस्य मुख्यविषयः सः स्वमेवास्ति। मानवस्यादि जिज्ञासायासमाधान कृते प्रकृंतशास्त्रस्य नामेव दर्शनमस्ति। दर्शनेन सत्यासत्ययोः ज्ञानं भवति। दृष्टिभूतस्य पदार्थजातस्य ज्ञानं दर्शनं भवति। भारत मानवसभ्यतायाः आदिमयुगे भारतीयैः मनीषिभिः न केवलं मानवीयसमस्यानाम् अपि तु जड़जगतः गूढातिगूढानां सहस्यानां प्रकाशनं स्वकीय क्रान्तप्रज्ञया कृतमिति। ते मनीषिणः ऋषयो बभुवुः। ते वेदमन्त्राणां द्रष्टारः। ते वेदानामपि साक्षाद् दर्शन कृतवन्तः। वेदानामपि दर्शनं कृत्वा लोकस्य दृष्टिभूतानां बाह्यपदार्थानां विषये ज्ञानस्य मोक्षस्य च प्राप्ति केन प्रकारेण भवेत इति जिज्ञासितं चेत्। तेषामन्तः करणे भौतिकानाम् आध्यात्मिकानाञ्च तत्त्वानां चिन्तनाय पर्याप्तः अवसरोऽविद्यत। दर्शनस्य व्युत्पत्तिलभ्यार्थस्य परिज्ञानमात्रावश्यकं प्रतीयते। भारतीय दर्शनस्य मूलरूपं आध्यात्मिकं इति विज्ञेयं।

कूटशब्दाः - अपोद्धारपदार्थः, प्रातिपदिकरूपप्रकृत्यर्थः, प्रमेयः, वेदः, घटपदम्, दर्शनम्

वैयाकरणभूषणसारदृशा व्याकरणोक्तधात्वाख्यातार्थयोः न्याय-मीमांसा-सिद्धान्तैः सह तुलनात्मकं समीक्षात्मकञ्च अध्ययनम्

सुमितः पाराशरः

संस्कृतशास्त्रीयपरम्परायां शाब्दबोधमीमांसायाः ज्ञानशास्त्रस्य च परिप्रेक्ष्ये व्याकरणदर्शनस्य स्थानं सर्वोपरि वर्तते। अस्मिन् शोधपत्रे श्रीमत्कौण्डभट्टविरचितस्य "वैयाकरणभूषणसारः" इति प्रौढग्रन्थस्य धात्वर्थप्रकरणम् आख्यातार्थप्रकरणञ्च समाश्रित्य नव्यन्याय-मीमांसा-दर्शनाभ्यां सह तुलनात्मकः समीक्षात्मकश्च परिष्कारः विहितः। वैयाकरणसिद्धान्तमनुसृत्य धातुः "फलव्यापारयोः" द्वयोः अपि पृथक्-शक्त्या वाचकः भवति, यत्र फलावच्छिन्नः व्यापारः एव शाब्दबोधे मुख्यविशेष्यः तिष्ठति। आख्यातस्य (तिङ्-प्रत्ययस्य) वाच्यः अर्थः "व्यापाराश्रयः (कर्त्ता/कर्म)" संख्या कालश्च अस्ति, न तु मीमांसकोक्ता "भावना" नापि नैयायिकोक्ता "कृतिः"। शोधपत्रेऽस्मिन् सकर्मक-अकर्मक-धातुविवेकः, लकाराणां १०-विधानाम् अर्थानां परिष्कारः, तथा च सङ्गणकीय-भाषाविज्ञाने (NLP) अस्य सिद्धान्तस्य उपयोगिता विवृता अस्ति।

कुञ्जिका-पदानि (Keywords) – वैयाकरणभूषणसारः, धात्वर्थः, आख्यातार्थः, शाब्दबोधः, नव्यन्यायः, मीमांसा, सकर्मक-अकर्मक-विवेकः।

धात्वर्थनिर्धारण में उपसर्ग की विनियामक भूमिका

Bhawana

संस्कृत व्याकरण परम्परा में धातु को सम्पूर्ण पदसृष्टि का आधार माना गया है । 'अनेकार्था हि धातवः' सिद्धान्त के अनुसार ये धातुएँ स्वभावतः अनिर्धारित एवं बहुविध अर्थसंभावनाओं से युक्त होती हैं । इसी अनिर्धारित धात्वर्थ को

परिसीमित करने में उपसर्ग एक प्रमुख विनियामक कारक सिद्ध होता है । शाकटायन उपसर्ग को केवल निष्क्रिय 'द्योतक' मानते हैं और गार्ग्य स्वतन्त्र 'वाचक' । किन्तु पाणिनीय 'कर्मप्रवचनीय' सिद्धान्त क्रिया के अभाव में भी इन प्रादि-तत्त्वों की स्वतन्त्र-संसर्ग-विनियामकता और व्याकरणिक सार्थकता सिद्ध करता है । इसी परिप्रेक्ष्य में यह शोधपत्र विभिन्न वैयाकरणों तथा भाषावैज्ञानिकों की अर्थमीमांसा का अनुशीलन करते हुए धात्वर्थनिर्धारण में उपसर्ग की विनियामकता को स्पष्ट करता है ।

यह अध्ययन पाठ्य-विश्लेषणात्मक दार्शनिक एवं तुलनात्मक अर्थवैज्ञानिक प्रविधि पर आधारित है । इसके अन्तर्गत प्रमुख वैयाकरणों के सिद्धान्तों तथा भाषाई प्रयोगों के परीक्षण द्वारा धात्वर्थ में होने वाली अर्थपरिवर्तन की दिशाओं तथा प्रयोगवैशिष्ट्य का अनुशीलन किया गया है ।

इस प्रकार उपसर्ग धातु में अन्तर्निहित अर्थसंभावनाओं के विनियामक हैं । ये उपसर्ग धातु के साथ संयोजित होकर अखण्ड पद इकाई के रूप में कार्य करते हैं , जहाँ उपसर्ग अभीष्ट अर्थ का तात्पर्य नियमन करते हैं । यह प्रक्रिया भर्तृहरि के त्रिधा धात्वर्थनियमन को पुष्ट करती है । इसमें उपसर्ग मूल धात्वर्थ का बाध , अनुवर्तन तथा विशिष्टता का आधान करता है । उपसर्ग वाक्य के कारकीय विन्यास को भी परिवर्तित करते हैं । अकर्मक धातु सकर्मक बन जाती है । अधिकरण कर्म में बदल जाता है (अधितिष्ठति) । क्रिया का पद (आत्मनेपद-परस्मैपद) बदल जाता है (संगच्छते) । उपसर्ग क्रिया की कालिक अवस्था भी निर्धारित करते हैं – 'प्रस्थान' आरम्भ को दर्शाता है और 'विनाश' चरम पूर्णता को । ये धातुओं की गतिदिशा को भी विनियमित करते हैं तथा धातु के स्थूल (भौतिक) अर्थ को संज्ञानात्मक (मानसिक) अर्थ में परिवर्तित करते हैं । काव्यशास्त्रीय दृष्टि से यही नियमन 'पदांश-व्यङ्ग्यत्व' के रूप में देखा जाता है , जहाँ उपसर्ग रस-तीव्रता तथा भावोत्कर्ष की व्यञ्जना करते हैं ।

Keywords: उपसर्ग; धात्वर्थनिर्धारण; अर्थपरिवर्तन; द्योतकत्व-वाचकत्व; अर्थविज्ञान

भारतीय भाषाओं के प्राकृतिक भाषा प्रसंस्करण में अष्टाध्यायी की प्रासंगिकता

डॉ. वेदप्रकाश मिश्र

वर्तमान डिजिटल एवं कृत्रिम बुद्धिमत्ता के युग में भाषा मशीनी अनुवाद, वाक्-पहचान, सूचना-संग्रहण, प्रश्नोत्तर तथा मानव-कम्प्यूटर अन्तःक्रिया जैसी तकनीकों का महत्त्वपूर्ण आधार बन गई है। **Natural Language Processing (NLP)** में भारतीय भाषाओं के प्रभावी Computational Processing के सामने रूप-सम्पन्नता, विभक्ति, कारक, सन्धि, समास, लचीला शब्दक्रम, बहुअर्थकता तथा भाषिक विविधता जैसी चुनौतियाँ हैं। कम्प्यूटर के लिए भाषा के रूप, संरचना, व्याकरणिक सम्बन्ध और अर्थ को औपचारिक नियमों एवं Computational Representations में व्यक्त करना आवश्यक होता है।

इस शोध-पत्र में **पाणिनि की अष्टाध्यायी को एक Formal Linguistic Resource** के रूप में देखने का प्रस्ताव प्रस्तुत किया गया है। अष्टाध्यायी की सूत्रबद्धता, प्रकृति-प्रत्यय व्यवस्था, प्रत्याहार, विभक्ति, कारक, सन्धि और समास जैसी व्यवस्थाएँ आधुनिक Computational Linguistics के लिए उपयोगी सैद्धान्तिक आधार प्रदान कर सकती हैं। पाणिनीय प्रकृति-प्रत्यय प्रणाली का उपयोग **Morphological Analyzer और Generator**, कारक-सिद्धान्त का **Semantic Role Labelling**, सन्धि-नियमों का **Sandhi Splitting और Generation** तथा समास-विचार का **Compound Analysis और Semantic Parsing** में किया जा सकता है। इसी प्रकार कारक-विभक्ति आधारित विश्लेषण **Dependency Parsing** के लिए उपयोगी हो सकता है।

आधुनिक NLP को केवल Rule-Based प्रणाली तक सीमित न रखते हुए पाणिनीय व्याकरण को **Corpus Linguistics, Machine Learning, Deep Learning और Large Language Models** के साथ समन्वित करने की आवश्यकता है। प्रस्तावित **Hybrid Model—Paninian Rules + Linguistic Corpus + Machine Learning + Neural Models** में पाणिनीय नियम भाषिक विश्लेषण उपलब्ध करा सकते हैं, जबकि AI मॉडल संदर्भ, बहुअर्थकता और Corpus Evidence के आधार पर उपयुक्त विश्लेषण का चयन कर सकते हैं।

इस दृष्टिकोण से Sanskrit Morphological Analyzer, Sandhi Splitter, Compound Analyzer, Paninian Dependency Parser, Semantic Role Labeller, Grammar Checker, Machine Translation तथा AI-Based Sanskrit Learning System जैसे अनुप्रयोग विकसित किए जा सकते हैं। तथापि पाणिनीय व्याकरण को आधुनिक NLP का पूर्ण विकल्प न मानकर एक **स्वदेशी भाषावैज्ञानिक ज्ञान-संसाधन** के रूप में विकसित करना अधिक उपयुक्त होगा। अतः भारतीय भाषाओं के Computational Processing के लिए पाणिनीय व्याकरण और आधुनिक AI तकनीकों का वैज्ञानिक एवं संदर्भ-संवेदी समन्वय एक संभावनाशील शोध-दिशा हो सकती है।

कूटशब्द: पाणिनीय व्याकरण, अष्टाध्यायी, संगणकीय भाषाविज्ञान, प्राकृतिक भाषा संसाधन, कृत्रिम बुद्धिमत्ता, संस्कृत भाषा संसाधन, रूपात्मक विश्लेषण, कारक-सिद्धान्त, सन्धि-प्रक्रिया, समास-विश्लेषण, मशीन लर्निंग, संकर कृत्रिम बुद्धिमत्ता मॉडल।

A Sanskrit-Based Study of Deori Intonation and its Script Assignment

Dipankar Bhattacharya

This paper investigates the phonetic and orthographic landscapes of the Deori Language in the Northeast of India, a language from the Tibeto-Burman language family. The rich ethnolinguistic landscape of the North-East region of India not only preserves the diverse socio-cultural heritage but also the linguistic diversity of Bharat. However, *UNESCO's Atlas of the World's Languages in Danger* documents the severity of the condition of the North-Eastern Tibeto-Burman languages. By employing an acoustic phonetic analysis along with a lexicon model, the study seeks to identify structural parallels and historical intersections with Indo-Aryan Sanskrit. Sanskrit, being one of the oldest surviving languages, preserves linguistic traits of survival over time. The objective is to leverage these linguistic links to develop robust pedagogical frameworks and digital archival strategies to preserve endangered tribal languages.

Keywords: Sanskrit, Phonetics, Tribal Language, Tibeto-Burman

संस्कृतसान्तालीभाषयोः विद्यमानानां सन्धीनाम् एकं तौलनिकम् अध्ययनम्

Dr. Suman K.S

मानवमनसः भावः प्रकटीकरणार्थं भाषैव मुख्यं साधनम् अस्ति। सर्वासु भाषासु विभिन्नेन रूपेण ध्वन्यात्मकानि व्याकरणात्मकानि च वैशिष्ट्यानि दृश्यन्ते। भाषाविज्ञानदृष्ट्या संस्कृत-सान्तालीभाषे सर्वथा भिन्ने द्वे भाषे ये भिन्नभिन्नभाषापरिवारे अन्तर्भवतः। संस्कृतं नाम भारोपीयः (इन्दो-यूरोपीय) भाषापरिवारस्य प्राचीनतमा भाषा, यस्याः रूपतत्त्वम् अतीव जटिलं विभक्त्यात्मकं च वर्तते। अपरपक्षे सान्तालीभाषा तु अस्ट्रो-एशियाटिक-भाषापरिवारस्य मुण्डा-शाखायाः एका मुख्या भाषा अस्ति, या मुख्यतः प्रत्ययप्रधाना अस्ति। संस्कृत-सान्तालीभाषे द्वे अपि ऐतिहासिकपृष्ठभूमेः परिप्रेक्ष्ये भिन्ने स्याताम्, तथापि ध्वनिसंयोगे शब्दप्रयोगे च कानिचित् सादृश्यानि दृश्यन्ते। संस्कृतभाषा अन्यासु बहूषु भाषासु (यथा बाङ्गला, हिन्दी इत्यादिषु) प्रत्यक्षरूपेण शब्दप्रयोगार्थं प्रयुज्यते, किन्तु सान्तालीभाषायां यद्यपि प्रत्यक्षः प्रयोगः न दृश्यते, तथापि व्याकरणप्रयोगे कानिचित् सादृश्यानि परिदृश्यन्ते। संस्कृते सन्धेः अतीव सुनिर्दिष्टः नियमबद्धः व्याकरणगतश्च प्रयोगः लक्ष्यते। भाषावैज्ञानिकदृष्ट्या 'सन्धिः' नाम द्वयोःअक्षरयोः मेलनं अथवा परिवर्तनस्य प्रक्रिया उच्यते। संस्कृतसन्धौ अतीव सुनिर्दिष्टा नियमबद्धा व्याकरणगता च प्रक्रिया दृश्यते। महर्षिपाणिनिना उक्तम् — "परः सन्निकर्षः संहिता" इति। किन्तु सान्तालीभाषायां संस्कृतवत् नियमबद्धतां स्वीकृत्य सन्धेः परिवर्तनं न भवति। तथापि अस्याः भाषायाः प्रत्ययप्रधानत्वात् मूलशब्देन सह यदा विविधाः प्रत्ययाः युज्यन्ते,

अथवा उच्चारणसौकर्यार्थं स्वतःस्फूर्तं यत् परिवर्तनं घटते, सैव प्रक्रिया अत्र 'सन्धिः' इति उच्यते। अस्मिन् विषये अध्ययनेन संस्कृतभाषायाः स्वरसन्धेः व्यञ्जनसन्धेश्च सह सादृश्यं दृश्यते ।संस्कृतसन्धौ द्वयोः स्वरयोः मेलनेन दीर्घसन्धिः अर्थात् 'आ'-कारः भवति। संस्कृते यथा यण्सन्धौ 'इ' इत्यस्य स्थाने 'य्' भवति, तथैव सान्तालीभाषायामपि 'इ' स्थाने 'य्' इति जायते। पुनः व्यञ्जनसन्धौ 'त्' इत्यस्य 'द्' इति रूपम्, अथवा श्रुत्व-ष्टुत्वादीनां कानिचित् दृष्टान्तानि दृश्यन्ते। एवम् अनेन शोधकार्यस्य माध्यमेन संस्कृत-सान्तालीभाषयोः मध्ये ध्वन्यात्मक-व्याकरणात्मक-संरचनात्मकाध्ययनस्य नूतना दिक् प्राप्यते, उत्पत्तिमूलकचर्चायाः च भाषाविषयकं ज्ञानं लभ्यते। एतदर्थमेव अयं विषयः चितः अस्ति।

अतः निष्कर्षरूपेण वक्तुं शक्यते यत्, संस्कृतस्य सन्धिः 'नियम-नियन्त्रितः' अस्ति । अपरपक्षे सान्तालीभाषायाः सन्धिः 'स्वाभाविकः उच्चारणधारणाधारितश्च' अस्ति, यः प्रत्यययोजनावसरे वाग्धारायाः सहजप्रवाहं रक्षितुं साहाय्यं करोति। तथापि उभयोः भाषयोः मूलमुद्देश्यम् एकमेव — भाषां श्रुतिमधुराम् उच्चारणञ्च सरलीकरणम् इति।

कूटशब्दाः(Keywords) भारोपीयः,मानवमानसः,पृष्ठभूमे,सान्ताली,स्वाभाविकः,वागधाराः ।

विष्णुप्रियामणपुरीभाषायाः उद्भवो विकासश्च - एका समीक्षा

शुभङ्कर शर्मा

प्रस्तुतेऽस्मिन् शोधपत्रे 'विष्णुप्रियामणिपुरीभाषायाः उद्भवो विकासश्च - एका समीक्षा' इत्यस्मिन् विषये विष्णुप्रियामणिपुरीभाषायाः ऐतिहासिकमूलस्य, विकासक्रमस्य, भाषावैज्ञानिकसंरचनायाः तथा भाषासम्पर्कजनितपरिवर्तनानां सम्यगनुशीलनं विधीयते। अध्ययनस्यास्य प्रमुखोद्देश्यम् अस्याः भाषायाः उद्भवपृष्ठभूमिम्, क्रमिकविकासम्, ध्वन्यात्मकस्वरूपनिरूपणं तथा च अन्याभिः भाषाभिः विशेषतः मैतेइभाषया जातस्य भाषासम्पर्कस्य प्रभावं विवेचनम् अस्ति।

अध्ययनस्य क्षेत्रं भाषायाः ऐतिहासिकविकासे, शब्दसम्पदि, ध्वनिव्यवस्थायां, रूपरचनायां, कारकविभक्तिप्रयोगे, क्रियारूपविन्यासे तथा पदक्रमे च सीमितं वर्तते। अस्मिन् अध्ययने वर्णनात्मकः विश्लेषणात्मकः ऐतिहासिकः तथा तुलनात्मकश्च पद्धतिः स्वीकृता वर्तते। प्रकाशितव्याकरणग्रन्थाः, शब्दकोशाः, भाषावैज्ञानिकसन्दर्भग्रन्थाः, पूर्वप्रकाशितानि शोधकार्याणि, साहित्यिकग्रन्थाः तथा उपलब्धानि भाषिकसंसाधनानि च अध्ययनस्य प्रमुखाधाररूपेण स्वीकृतानि सन्ति। प्राप्तानां भाषिकदत्तांशानां पाणिनीयव्याकरणपरम्परया यथासम्भवं तुलनात्मकमवलोकनं कृत्वा ध्वनिपरिवर्तनानि, प्रत्ययप्रयोगाः, कारकविभक्तयः, सर्वनामरूपाणि, लिङ्गव्यवस्था तथा शब्दनिर्माणप्रक्रिया च परीक्ष्यन्ते।

ऐतिहासिकसन्दर्भे विष्णुपुरजनपदसम्बद्धस्य जनसमुदायस्य स्थानान्तरणस्य वैष्णवपरम्परायाः म्यांमारदेशीयाक्रमणस्य तथा ततः परवर्तिनः भौगोलिकविकीर्णनस्य प्रभावोऽपि विचार्यते। भाषायाः नामकरणसम्बद्धाः सांस्कृतिकपरम्पराः तथा अर्जुनचित्राङ्गदाबभ्रुवाहनसम्बद्धाः जनश्रुतयश्च उपलब्धानां ऐतिहासिकस्रोतसां सन्दर्भे समीक्ष्यन्ते। तत्र प्राप्यमाणानां प्रमाणानां तन्मर्यादानां च सम्यग्विमर्शं कृत्वा तटस्थतया परीक्षणं विधास्यते। विभिन्नविदुषां मतभेदेषु भाषायाः स्वतन्त्रभाषात्वसमर्थनम् एवं भाषिकपरिवर्तनं केवलं शब्दस्तरे एव न अपि तु ध्वन्यात्मकरूपात्मकं तथा वाक्यरचनात्मकस्तरेष्वपि परिलक्ष्यते। अतः अस्याः भाषायाः स्वरूपनिर्धारणे ऐतिहासिकस्रोतसां, भाषिकदत्तांशानां तथा वर्तमानभाषाप्रयोगस्य समन्वितरूपेण विचारो अपेक्षितः।

अध्ययनात् ज्ञायते यत् विष्णुप्रियामणिपुरीभाषायां भारतीयार्यभाषिकतत्त्वानां स्थानीयभाषिकतत्त्वानां च समन्वितं स्वरूपं दृश्यते। ध्वनिव्यवस्थायां महाप्राणध्वनीनां ह्रासः तथा ऊष्मवर्णानां परिवर्तनं रूपरचनायां वियोगात्मकप्रवृत्तिः, कारकविभक्तीनां विशिष्टः प्रयोगः तथा विशिष्टा लिङ्गव्यवस्था च अस्याः भाषायाः संरचनात्मकं वैशिष्ट्यं प्रकाशयति। शब्दसम्पदि तत्समतद्भवदेशजमैतेइशब्दानां तथा वैदेशिकशब्दानां समावेशः परिलक्ष्यते। ऐतिहासिकदृष्ट्या प्राचीनकालादाधुनिककालपर्यन्तम् अस्याः भाषायाः विकासे सामाजिकसांस्कृतिकधार्मिकराजनीतिकपरिस्थितीनां प्रभावः स्पष्टतया अवगम्यते।

एतादृशं बह्वायामात्मकं परीक्षणं विष्णुप्रियामणिपुरीभाषायाः संरचनात्मकवैशिष्ट्यम् ऐतिहासिकगतिशीलतां तथा च सामाजिकभाषावैज्ञानिकस्थितिं सम्यगवगन्तुं विशेषतः सुकरं भवति। मातृभाषाशिक्षणस्य, साहित्यसृजनस्य, भाषिकदत्तांशसङ्ग्रहस्य तथा आधुनिकप्रौद्योगिक्याः समुचितोपयोगः अस्याः भाषायाः संरक्षणे संवर्धने च महत्त्वपूर्णां

भूमिकां निर्वहति। निष्कर्षतः विष्णुप्रियामणिपुरीभाषा विविधभाषिकसम्पर्कैः कालक्रमेण विकसितं विशिष्टं भाषिकस्वरूपं धारयति। अस्याः भाषायाः वैज्ञानिकसमालोचनं, व्याकरणात्मकविश्लेषणं, शब्दकोशनिर्माणं तथा डिजिटलसंरक्षणं भाविभाषासंशोधनस्य दृष्ट्या महत्त्वपूर्णं साधनं भविष्यति। विशेषतः डिजिटलमाध्यमेषु मानकीकृतलेखनपद्धतेः, ध्वन्याभिलेखनस्य तथा शब्दसङ्ग्रहस्य विकासः अस्याः भाषायाः भाविभाषिकानुसन्धानं सुकरं करिष्यति। एते प्रयत्नाः भाषिकास्मितायाः संरक्षणाय, सांस्कृतिकसम्पदः परम्परायाश्च स्थिरीकरणाय च विशेषोपकारकाः भविष्यन्ति। इति प्रस्तुतस्य शोधस्य प्रमुखो निष्कर्षः।

Keywords: उद्भवः ; विकासः ; भाषाविज्ञानम् ; भाषासम्पर्कः; संरक्षणम्

अवैहि इति प्रयोगस्य पाठसमीक्षात्मकम् अध्ययनम्

M.Raghupraveera

- **Research Parameters (Introduction):** इण्गतौ धातोः लोण्मध्यमपुरुषे इहि इति रूपम्। तस्मात् आङि आ+इहि एहि, ततः अव इत्युपसर्गे अव+एहि इति स्थितौ एत्येध्यत्यूठ्सु इति वृद्धौ प्राप्तायां पुरस्तादपवादाः इत्यादि परिभाषाया ओमाङोश्च इति पररूपे **अवेहि** इति रूपं सिध्यति। यद्यपि अवेहि इति पाणिनीयं रूपं, तथापि नैकेषु ग्रन्थेषु **"अवैहि"** इति वृद्धिपाठः उपलभ्यते। किमयं वृद्धिपाठः लेखकप्रमादात् उत ग्रन्थकर्तृभिः एव बुद्ध्या प्रयुक्तः इति अत्र पत्रे चिन्त्यते।
- **Methodology: अत्र शोधाय वैदिकग्रन्थेभ्यः, महाभारतात्, रघुवंशादिकाव्येभ्यः, बौद्ध-जैनग्रन्थेभ्यः इत्येवं विंशत्यधिकाः अवैहि-अवेहि इति प्रयोगाः स्वीकृताः। तेषां ग्रन्थानां मातृकाः यथोपलब्धि कालक्रमेण योजना कृता। क्वचित् व्याख्यानादपि वृद्धिपाठः अनुमितः। एवं प्रकारेण उपलब्धानां प्रयोगाणाम् पाठभेदसमालोचनेन समीक्षणात्मकमध्ययनं कृतम्।**
- **Data & Findings:** अस्मिन् शोधे इदं स्पष्टं यत् अवैहि इति प्रयोगः प्रचुरः एव आसीत्। यत्र यत्र अवेहि इति प्रयोगः दृश्यते, तत्र तत्र अवैहि इति वृद्धिघटितः पाठभेदः उपलभ्यते। विशिष्य प्राचीनपाठेषु अवैहि इति वृद्ध्या एव प्रयोगः दृश्यते। कालक्रमे तस्य परिमार्जनं जातमिति प्रतिभाति। तदेतद्विशिष्य इतोपि अध्येतव्यं वर्तते।
- **Conclusion:** अनेन शोधेन अवैहि इत्यपि प्रचलितः पाठः आसीत् इति निर्णीयते। व्याकरणं यद्यपि लक्ष्यानुसारि, तथापि क्वचित् लक्ष्यस्वरूपपरिवर्तने हेतुरपि भवितुमर्हति। अपि च अवगच्छ इत्यस्मिन् अर्थे प्रयुज्यमाने अवैहि इति प्रयोगे, गमः आङ्विरहेण, इणस्तु आङ्सहिततया प्रयोगात्, तयोः गतिः इति समानार्थकत्वे अपि किञ्चित् वैलक्षण्यं प्रतिभाति।

Keywords: व्याकरणम्; पाठसमीक्षा; पाठभेदः; मातृका; अपाणिनीयप्रयोगः

सिद्धान्तकौमुदीव्याख्यासुखबोधिनीदिशा 'ध्रुवमपायेऽपादानम्' - इति सूत्रस्यानुशीलनम्

जयासाहू (शोधच्छात्रा)

गच्छता कालेन अष्टाध्यायीक्रमापेक्षया प्रक्रियाक्रमेणाध्ययनं सुकरमिति भावस्समजनि। तेन पाणिनीसूत्राण्यधिकृत्यैव प्रक्रियागर्थानामाविष्कारोऽभूत् । प्रक्रिया भागेषु काशिका फक्विकाप्रकाश: वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदीत्यादयः ग्रन्थाः प्रमुखा: सन्ति । तेषु भट्टोजीदीक्षितवर्यैः लिखिता वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी महत्त्वं स्थानं बिभर्ति ।

पाणिनीयव्याकरणपरम्परा आसहस्रात् वर्षेभ्योऽविच्छिन्ना सुशोभते। सिद्धान्तकौमुद्यनन्तरं प्रक्रियाजगतः प्रकाशः दिग्दिगन्तरं प्रासर्पत्। कौमुदीव्याख्यानानि ज्ञानपिपासूनां जिज्ञासोपशमकानि अध्येतृणामत्यन्तमुपकारकाणि च समजायन्त। सिद्धान्तकौमुद्याः व्याख्यासु अतिविशिष्टा कौमुद्याः गूढार्थ प्रकटयितुं समर्था श्रीनीलकण्ठवाजपेयिना

रचिता सुखबोधिनीव्याख्या। अस्य ग्रन्थस्य सम्पादनमध्ययनञ्च अनिवार्यतां भजते । अप्रकाशितासु सिद्धान्तकौमुदीव्याख्यासु श्रीनीलकण्ठवाजपेयिना विरचिता सुखबोधिनीव्याख्या अन्यतमा अतिदुर्लभा च।

गुरुणा तत्त्वबोधिनीकृतः ज्ञानेन्द्रसरस्वतेः यत्प्राप्तं तदस्यां व्याख्यायां सविस्तरं प्रत्यपादि। सूत्रवृत्तिलेखनमुदाहरणदानञ्च किम्मतमादृत्य सिद्धान्तकौमुदीकारः अकरोदिति सुखबोधिन्यध्ययनेन स्पष्टं भविष्यति। वामनमतमिदम्, मिश्रादिग्रन्थे स्पष्टम्, रक्षितैरुक्तम्, प्रक्रियोक्तमपास्तम्, आकरे निर्णीतम्, कृष्णपण्डितमतम् इत्यादिवचनैः मूलोक्तानां पङ्कीनामाशयः सुखबोधिन्या विशदीक्रियते। इयं यद्यपि सिद्धान्तकौमुद्याः व्याख्या तथापि प्रौढमनोरमायामपि दीक्षितैः कस्य पूर्वाचार्यस्य मतस्य खण्डनं क्रियते इत्यपि विचारितो वर्तते बहुषु स्थलेषु। अतः प्रौढमनोरमाध्ययनेऽपि सुखबोधिनी साह्यमाचरति। तत्त्वबोधिनीकारस्य शिष्यास्सन्तः गुरुमतमपि समुदघाटयन्। एवं सुखबोधकत्वात् सुखबोधिनी अन्वर्थतां भजते।

कुञ्चिकाशब्दः – अपादानम्, अवधिभूतः, विश्लेषः, ध्रुवम्, विभागजनकक्रियाश्रयत्वम् सर्वादीनि सर्वनामानि इति सूत्रमाश्रित्य पाणिनीय-चान्द्रगणपाठयोः तुलना

Balasaheb Dilip Wagh

प्रस्तुते शोधपत्रे पाणिनिसूत्रस्य 'सर्वादीनि सर्वनामानि' (पा॰सू॰ १.१.२७) इति आधारीकृत्य पाणिनीय-चान्द्रगणपाठयोः सर्वनामवर्गस्य (सर्वादिगणस्य) तुलनात्मकमध्ययनं विहितमस्ति। संस्कृतव्याकरणपरम्परायां पाणिनेः अष्टाध्यायी तथा चन्द्रगोमिनः चान्द्रव्याकरणं च उभे अपि महत्त्वपूर्णे परम्परे स्तः। उभयोः सम्प्रदाययोः सर्वनामसंज्ञायाः व्याप्तिः, गणपाठगतपदपाठस्य वैविध्यम्, तथा च प्रातिपदिकगतानां विकाराणां वर्गीकरणं सूक्ष्मदृष्ट्या परीक्षितमस्ति। पाणिनीयगणपाठे समाविष्टाः केचन शब्दाः चान्द्रगणपाठे कथं वर्जिताः अथवा परिवर्तितरूपेण गृहीताः इति विषयमधिकृत्य अत्र विचारः कृतः। एतदतिरिच्य वैदिकप्रयोगविशिष्टानां सर्वनामशब्दानां चान्द्रव्याकरणे त्यागः अथवा संशोधनं च विश्लेषितम्। इदम् अध्ययनं शब्दसाधुत्वप्रक्रियायां सम्प्रदायद्वयस्य दृष्टिकोणभेदं स्पष्टीकरोति।

मुख्यशब्दाः (Keywords): सर्वादीनि सर्वनामानि, पाणिनीयगणपाठः, चान्द्रगणपाठः, सर्वादिगणः, सर्वनामसंज्ञा, व्याकरणतुलना, पदवर्गीकरणम्

Vedic Grammar and Its Peculiarities: A Study with Special Reference to Shukla Yajurveda

Dr. Renil Dev M R

Grammar is an essential part of a language. The importance of grammar is acknowledged from the Vedic period. It is considered and preserved as one of the six limbs of Vedas. Sanskrit language has two streams Vedic and classic. But their nature and pronunciations are slightly different from each other. So the grammar also developed for indicating these differentiations and how to pronounce the words. For this purpose the grammarians developed many rules. These rules are different in both the Vedic and classical language. Vedic grammar is discussed these rules in a systematic manner especially in the Prathishakhya. Paninian system comprises both the Vedic and classical Sanskrit. But other systems of grammar deal with the grammatical operation of classical language. Generally the grammatical rules of all Vedas' are equal. But they have slight changes. So each Veda has its own Pratishakhyas. This paper is an attempt to study the peculiarities of Vedic grammar especially in Shukla Yajurveda.

अमरकोषस्य प्रथमकाण्डे पर्यायपदानाम् अर्थवैशिष्ट्यम्

Saransh

Research Parameters (Introduction): अमरकोषः संस्कृतभाषायाः कोशपरम्परायां महत्त्वपूर्णः प्रामाणिकश्च ग्रन्थः अस्ति। अमरसिंहेन प्रणीतः अयं ग्रन्थः पर्यायपदानां सुव्यवस्थितसङ्ग्रहस्य, शब्दार्थवैविध्यस्य तथा भारतीयज्ञानपरम्परायाः अभिव्यक्तेः दृष्ट्या विशिष्टं स्थानं धारयति। प्रस्तुतशोधस्य विषयः "अमरकोषस्य प्रथमकाण्डे पर्यायपदानाम् अर्थवैशिष्ट्यम्" इति अस्ति। प्रथमकाण्डे स्वर्गः, देवताः, दिक्पालाः, कालः इत्यादीनां सम्बन्धिनः विविधाः शब्दाः पर्यायपदैः निरूपिताः सन्ति। सामान्यतः पर्यायशब्दाः समानार्थकाः मन्यन्ते, किन्तु अमरकोषस्य सूक्ष्माध्ययनेन ज्ञायते यत् एकस्यैव पदार्थस्य विभिन्नेषु पर्यायेषु अर्थच्छायानां पर्याप्तं वैविध्यं विद्यते। गुणः, कर्म, स्वरूपम्, सम्बन्धः, प्रभावः, उत्पत्तिः तथा सांस्कृतिकसन्दर्भः इत्यादयः पर्यायपदानामर्थवैशिष्ट्यस्य प्रमुखाः आधाराः भवन्ति। अतः अस्य शोधस्य मुख्योद्देश्यं प्रथमकाण्डस्थपर्यायपदानामर्थविशेषस्य विश्लेषणं, तेषां अन्तर्निहितार्थच्छायानां निरूपणं तथा अमरकोषकारस्य पर्यायचयनपद्धतेः स्वरूपस्य उद्घाटनञ्चास्ति।

Methodology: प्रस्तुतशोधे वर्णनात्मक-विश्लेषणात्मकपद्धतिः मुख्यतया स्वीकृता अस्ति। प्राथमिकस्रोतत्वेन अमरकोषस्य प्रथमकाण्डः तथा सहायकस्रोतत्वेन अमरकोषस्य टीकाग्रन्थाः, संस्कृतव्याकरणग्रन्थाः, निरुक्तपरम्परा, कोशवाङ्मयसम्बद्धाः ग्रन्थाः चोपयुज्यन्ते। प्रथमं प्रथमकाण्डस्थप्रमुखपर्यायपदानां सङ्कलनं कृत्वा तेषां व्युत्पत्तिः, शब्दार्थः, प्रयोगसन्दर्भः तथा अर्थच्छाया परीक्ष्यते। ततः पर्यायपदानां गुणाधारित, क्रियाधारित, स्वरूपाधारित, सम्बन्धाधारित, कार्याधारित एवं सांस्कृतिकाधारित इत्यादिषु वर्गीकरणं क्रियते। तुलनात्मकविश्लेषणेन पर्यायपदानां सूक्ष्मार्थभेदः स्पष्टतया निरूप्यते।

Data & Findings: अध्ययनस्य प्रमुखा सामग्री प्रथमकाण्डे सङ्गृहीतानि पर्यायपदानि सन्ति। विश्लेषणेन ज्ञायते यत् अमरकोषस्थपर्यायाः केवलं समानार्थकशब्दानां यान्त्रिकसङ्ग्रहः न सन्ति। एकस्यैव पदार्थस्य विविधेषु नामसु तस्य भिन्न-भिन्नगुणाः, क्रियाः, स्वरूपम्, सम्बन्धाः तथा सांस्कृतिकसन्दर्भाः प्रतिबिम्बिताः भवन्ति। विशेषतः देवतासम्बन्धिनां पर्यायपदानामध्ययनात् तेषां शक्ति, कार्य, गुण, स्वरूप तथा पौराणिकमहत्त्वस्य विविधाः अर्थच्छायाः उद्घाटिताः भवन्ति। एतेनामरकोषकारस्य सूक्ष्मशब्दार्थदृष्टिः तथा पर्यायपदानां चयनस्य सुविचारितता प्रकाशते। अध्ययनं सूचयति यद् पर्यायपदानां विन्यासे भाषिकतत्त्वानां सह सांस्कृतिकज्ञानस्यापि महत्त्वपूर्णं योगदानमस्ति।

Conclusion: अध्ययनस्य निष्कर्षरूपेण प्रतिपाद्यते यत् अमरकोषस्य प्रथमकाण्डे पर्यायपदानां प्रयोगः बहुआयामी, अर्थगर्भितः सुव्यवस्थितश्चास्ति। पर्यायपदानि केवलं शब्दवैविध्यं न प्रदर्शयन्ति, अपितु तेषां माध्यमेन संस्कृतभाषायाः अर्थसमृद्धिः, शब्दव्युत्पत्तिगतसूक्ष्मता, भारतीयसांस्कृतिकचेतना तथा पारम्परिकज्ञानदृष्टिः अपि अभिव्यज्यते। अतः प्रथमकाण्डस्थपर्यायपदानामर्थवैशिष्ट्यस्याध्ययनं कोशविज्ञानस्य, शब्दार्थविज्ञानस्य, व्युत्पत्तिशास्त्रस्य तथा सांस्कृतिकभाषाविज्ञानस्य दृष्ट्या महत्त्वपूर्णमस्ति। अमरकोषः केवलं पर्यायकोशः न, अपितु भारतीयभाषिक-सांस्कृतिकज्ञानपरम्परायाः महत्त्वपूर्णः दर्पणः इति निष्कर्षः अस्मिन् शोधे प्रतिपाद्यते।

Keywords: 1.अमरकोषः, 2. प्रथमकाण्डम्, 3. पर्यायपदम्, 4. अर्थवैशिष्ट्यम्, 5. कोशविज्ञानम्

स्फोटतत्त्वमीमांसा

Kamdev jha

स्फोटतत्त्वस्य महत्त्वं प्रतिपादयितुमस्मिन् व्याकरणदर्शने। स्फोटेन कस्य बोधः, क्रमशः नैयायिकैः।

सर्वप्रथमं शङ्कराचार्याभिः यत् किमान स्फोटतत्त्वमिति। व्याख्यायामस्य निगद्यते यत् स्फुटति प्रकाशतेऽनेनार्थ इति स्फोटः। स्फुट्यतेऽनेनार्थ इति स्फोटः। स्फोटस्य च शब्दस्य अर्थबोधकत्वं प्रसिद्धम्। शब्दस्य व्यक्तिः शब्देनैव भवति। स्फोटस्य च व्यञ्जनशक्तिः प्रसिद्धा। शब्दस्य च व्यक्तिः प्रकाशते।

अत्र स्फोटतत्त्वं व्याकरणशास्त्रे महत्त्वपूर्णम्। स्फोटेन शब्दस्य अर्थबोधः भवति। व्याकरणे स्फोटस्य स्वरूपं निरूपितम्। स्फोटः शब्दस्य नित्यस्वरूपम्। वर्णाः शब्दस्य व्यक्तिरूपाः भवन्ति। स्फोटस्य नाशो न भवति। वर्णानां तु विनाशः भवति।

शब्दस्य अर्थबोधे स्फोटस्यैव मुख्यं स्थानम्। वर्णाः केवलं स्फोटं प्रकाशयन्ति। स्फोटस्य ज्ञानं वर्णानां श्रवणेन भवति। वर्णाः क्रमशः श्रूयन्ते, किन्तु स्फोटः युगपद् ज्ञायते। अतः स्फोटः अखण्डः इति मन्यते।

स्फोटस्य भेदाः अपि निरूपिताः—वर्णस्फोटः, पदस्फोटः, वाक्यस्फोटः इति। वर्णस्फोटः एकस्य वर्णस्य अर्थबोधकत्वम्। पदस्फोटः पदस्य अर्थबोधकत्वम्। वाक्यस्फोटः वाक्यस्य सम्पूर्णार्थबोधकत्वम्।

यथोक्तम्—

अयं नादो हि स्फोटव्यञ्जकः।

आचार्येण तु न स्फोटः प्रलयते।

स्फोटः कथायां ज्ञायते यत् वर्णानां प्रक्रमणेन च वर्णेषु पृथक् पृथक् बोधो न जायते, किन्तु सम्पूर्णवाक्यस्यैव बोधः भवति। तादृशं निरन्तरं स्वरूपं शब्दः एव स्फोट इति भावः। निरवयवत्वादेव तु स्फोटः स्फुटित इति। स्फोट एव व्यञ्जयति इति। वर्णानाम् उच्चारणं यदा यदा क्रमशः व्यवस्थितं भवति तदा स्फोटस्य प्रकाशनं भवति। शब्दस्य अर्थबोधकत्वं स्फोटस्यैव।

इदं वाक्यं तु—

"निरन्तरं शब्दबोधः स्फोटस्य स्वरूपम्।"

शास्त्रकारैः यत् निरूपितम् तत्। यतोऽपि वर्णाः तेषां समस्मरणसाध्याः। वेदान्तमतं तु कदापि भवति विभ्रमः। तस्मात् ताम्यतः प्रत्यभिज्ञानस्यैव हेतुः। पदभेदेऽपि प्रबोधे स्मरणं भवति प्रकाशतेऽपि। यथा क्रमशः वर्णाः एकस्मिन्नेव तन्त्रे बोधायमानाः समाप्यन्ते।

टिप्पणी: छायाचित्रं किंचित् तिर्यक् अस्ति तथा केचन शब्दाः अस्पष्टाः सन्ति; अतः मूलपृष्ठेन सह मिलानं आवश्यकं भवेत्।

कालिदास रचित 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' नाटक में आधुनिक भाषाशास्त्रीय पूर्वधारणाओं (Presuppositions) का विश्लेषण ।

Siddhi Vivek Upasani

संस्कृत साहित्य में महाकवि कालिदास का **अभिज्ञानशाकुन्तलम्** नाटक अपनी काव्यात्मकता, भाव-सौन्दर्य, चरित्र-चित्रण तथा संवाद-शैली के लिए विशिष्ट स्थान रखता है। नाटक के संवाद केवल प्रत्यक्ष अर्थ को ही अभिव्यक्त नहीं करते, बल्कि उनके भीतर अनेक ऐसे अप्रत्यक्ष अर्थ, पूर्वस्वीकृत तथ्य, सामाजिक-सांस्कृतिक धारणाएँ तथा संदर्भगत संकेत निहित हैं, जिन्हें समझने के लिए आधुनिक भाषावैज्ञानिक दृष्टिकोण उपयोगी सिद्ध हो सकता है। प्रस्तुत शोध में **अभिज्ञानशाकुन्तलम्** के संवादों का **Pragmatics (प्रयोजनमूलक भाषाविज्ञान)** के अंतर्गत **Presupposition (पूर्वधारणा/पूर्वस्वीकृति)** की संकल्पना के आधार पर विश्लेषण किया गया है।

पूर्वधारणा का आशय उस सूचना अथवा धारणा से है जिसे वक्ता अपने कथन के साथ पहले से स्वीकृत मानकर चलता है और जिसे श्रोता से स्पष्ट रूप से पुनः स्थापित करने की आवश्यकता नहीं होती। इस शोध में आधुनिक सिद्धान्तों को **अभिज्ञानशाकुन्तलम्** के संस्कृत संवादों पर लागू करके यह ज्ञात करने का प्रयास किया गया है कि कालिदास ने संवादों में प्रत्यक्ष कथन के अतिरिक्त किस प्रकार अप्रत्यक्ष रूप से अर्थ का संप्रेषण किया है।

इस संदर्भ में नाटक के प्रत्यक्ष संवादों में पूर्वधारणा की उपस्थिति को देखा जा सकता है। जैसे ,

द्वितीय अंक में राजा दुष्यन्त की मानसिक अवस्था को व्यक्त करने वाला कथन पूर्वधारणा के एक महत्त्वपूर्ण भाषिक रूप को प्रस्तुत करता है। राजा कहता है—

"अद्यापि तस्य तामेव चिन्तयतोऽक्ष्णोः प्रभातमासीत्।"

अर्थात्, **"आज भी उसकी (शकुन्तला की) चिन्ता करते-करते मेरी आँखों के सामने प्रभात हो गयी।"** यहाँ **"अद्यापि"** पूर्वधारणा का एक महत्त्वपूर्ण उतप्रेरक के रूप में कार्य करता है। "अद्यापि" का अर्थ "आज भी" है, जिसमें "अद्य" वर्तमान समय का तथा "अपि" पूर्ववर्ती स्थिति के साथ समानता एवं निरन्तरता का संकेत देता है। अतः इस पद के प्रयोग से यह पूर्वधारणा उत्पन्न होती है की , **राजा पहले भी शकुन्तला के विषय में चिन्तन करता रहा है और वर्तमान समय में भी वही चिन्ता जारी है।** इसकी संरचना इस प्रकार समझी जा सकती है,

पहले भी शकुन्तला की चिन्ता थी → आज भी वही चिन्ता जारी है।

शोध में विशेष रूप से राजा दुष्यन्त, शकुन्तला, कण्व, विदूषक, तपस्वियों तथा अन्य पात्रों के संवादों को संदर्भानुसार चयनित कर उनका भाषिक विश्लेषण किया गया है। कथनों में निहित पूर्वधारणाओं की पहचान करके उनके प्रकार, भाषिक उत्प्रेरक , संदर्भगत भूमिका तथा पात्रों के पारस्परिक संबंधों पर उनके प्रभाव का अध्ययन किया गया है। साथ ही यह भी देखा गया है कि पूर्वधारणाएँ नाटक के कथानक-विकास, चरित्र-निर्माण, भावाभिव्यक्ति, सामाजिक मर्यादा तथा नाटकीय विडम्बना को किस प्रकार प्रभावित करती हैं।

इस अध्ययन का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष यह है कि संस्कृत नाट्य-संवादों को केवल अलंकार, रस, ध्वनि अथवा व्याकरणिक दृष्टि से न देखकर **वक्ता–श्रोता, संदर्भ, साझा ज्ञान और अप्रत्यक्ष अर्थ-संप्रेषण** के आधुनिक भाषाशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य में समझा जाए। इससे यह स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है कि कालिदास की संवाद-रचना में अर्थ की अनेक परतें किस प्रकार निर्मित होती हैं और श्रोता उन पूर्वस्वीकृत अर्थों को संदर्भ के आधार पर किस प्रकार ग्रहण करता है।

अतः प्रस्तुत शोध का उद्देश्य **अभिज्ञानशाकुन्तलम्** में विद्यमान पूर्वधारणात्मक संरचनाओं की पहचान एवं वर्गीकरण करते हुए उनके कार्य का विश्लेषण करना है। यह अध्ययन संस्कृत साहित्य और आधुनिक भाषाविज्ञान के मध्य एक अंतःविषयक सेतु स्थापित करने की दिशा में उपयोगी हो सकता है तथा कालिदास की संवाद-कला को आधुनिक भाषाशास्त्रीय सिद्धान्तों के आलोक में समझने के लिए एक नवीन दृष्टिकोण प्रस्तुत कर सकता है।

अष्टाध्याय्यां सार्वधातुकसंज्ञाविमर्शः

डा.सुनेली देई, सहायिकाचार्या,

व्याक्रियन्ते व्युत्पाद्यन्ते साधुशब्दाः अनेन इति व्याकरणम् । व्याकरणस्य सूत्रैः साधुशब्दानां व्युत्पत्तिप्रदर्शनात् व्याकरणस्य अन्यनाम शब्दानुशासनम् भवति । ख्रीष्टपूर्व-पञ्चमशतकेन विद्यमानेन महर्षिपाणिनिना सूत्रात्मकशैल्या विरचिता अष्टाध्यायी संस्कृतव्याकरणवाङ्मयस्य अनुपमग्रन्थरत्नमस्ति । सूत्रस्य लक्षणं भवति-

अल्पाक्षरमसन्दिग्धं सारवद्विश्वतोमुखम् ।

अस्तोभमनवद्यञ्च सूत्रं सूत्रविदो विदुः ।।

अर्थात्, सूत्रं स्वल्पाक्षरविशिष्टं संशयशून्यं सारगर्भकं सर्वत्रप्रसारि स्तोभरहितं दोषवर्जितञ्च स्यात् । सूत्रं षड्विधम् – १. संज्ञा- लघ्वर्थकरणार्थं संज्ञार्थम् । यथा- वृद्धिरादैच् । २. परिभाषा- विधौ नियमकारिणी परिभाषा ।यथा- इको गुणवृद्धी । ३. विधिः- आदेशागमादिविधीयते येन, सः विधिः । यथा- इको यणचि । ४. नियमः- सिद्धे सति आरभ्यमाणो विधिः नियमाय कल्पते । यथा-कृत्तद्धितसमासाश्च । ५. अतिदेशः- अन्यधर्मस्य अन्यत्रारोपणमतिदेशः । यथा- लोटो लङ्-वत् । ६.अधिकारः – स्वदेशे फलशून्यत्वे सति उत्तरोत्तरफलजनकत्वम् अधिकारत्वम् । यथा- धातोः । पदसिद्ध्यर्थं शुद्धवाक्यप्रयोगार्थञ्च सूत्राणामुपयोगिता वर्त्तते । संज्ञा-परिभाषा-अधिकारसूत्रैः शब्दाः न निष्पद्यन्ते । अपि तु विधि-नियम-अतिदेशसूत्रैः साधुशब्दनिष्पन्नकाले संज्ञा-परिभाषा-अधिकारसूत्राणि विधि-नियम-

अतिदेशसूत्राणाम् अर्थबोधने सहायकानि भवन्ति । तदर्थं संज्ञानां ज्ञानपूर्वकं प्रयोगः सर्वैः ज्ञातव्यः । अष्टाध्याय्यां नवतिसंज्ञाः (९०) दृश्यन्ते । तेषु सार्वधातुकसंज्ञा अन्यतमा । अष्टाध्याय्याम् सार्वधातुकसंज्ञाविधायकं सूत्रं भवति तिङ्-शित् सार्वधातुकम् (पा.३.४.११३) । धातुभ्यः द्विविधाः प्रत्ययाः विधीयन्ते-१. सार्वधातुकप्रत्ययाः, २. आर्धधातुकप्रत्ययाः । धातुभ्यः विहिताः तिङ्-प्रत्ययाः शित्-प्रत्ययाश्च सार्वधातुकसंज्ञकाः भवन्ति । तिङ् अन्ते यस्य तत् तिङन्तम् । तिङ्-प्रत्ययाः अष्टादशसंख्याकाः भवन्ति। तिप् तस् झि सिप् थस् थ मिप् वस् मस् चेति नव परस्मैपदसंज्ञकाः, त आताम् झ थास् आथाम् ध्वम् इट् वहि महिङ् चेति नव आत्मनेपदसंज्ञकाश्च । श्-कारः इत् यस्य सः –शित् । शप्, श्यन्, श्नम्, श्नु:,श:, श्ना चेत्यादयः शित्-प्रत्ययाः धातुप्रत्ययोः मध्ये प्रयुक्ताः विकरणप्रत्ययाः भवन्ति । कर्त्तरि शप् (अ.३.१.६८), सार्वधातुकार्धधातुकयोः (पा.७.३.८४), सार्वधातुके यक् (पा.३.१.६७), अतो दीर्घो यञि (पा.७.३.१०१), आतो ङितः (पा.७.२.८१), दिवादिभ्यः श्यन् (पा.३.१.६९), तुदादिभ्यः शः (पा.३.१.७७), रुधादिभ्यः श्नम् (पा.३.१.७८) , क्र्यादिभ्यः श्ना (पा.३.१.८१), नाभ्यस्तस्याचि पिति सार्वधातुके (पा.७.३.८७) इत्यादिषु सूत्रेषु सार्वधातुकसंज्ञायाः प्रयोगः दृश्यते । गुणविधानार्थं दीर्घविधानार्थं विकरणविधानार्थम् आगम-आदेश-लोपकरणार्थं च महर्षिपाणिनिना सार्वधातुकसंज्ञायाः प्रयोगः कृतः ।

ज्ञानसंरक्षणज्ञानपुनःसर्जनदिशा शास्त्रीयभाषाणां भारतीयज्ञानपरम्परया सह सम्बन्धः

डॉ राघवेंद्र भट्ट:, अविनाश मनोहर आसरे

अयं शोधलेखः भारतस्य शास्त्रीयभाषाणां भारतीयज्ञानपरम्परया सह विद्यमानं सम्बन्धं विश्लेषयति। विशेषतः अस्मिन् अध्ययनस्य केन्द्रे एषः प्रश्नः वर्तते यत् ज्ञानसंरक्षणस्य ऐतिहासिकाः प्रक्रियाः समकालिकाले कियत्पर्यन्तं ज्ञानपुनःसर्जनरूपेण परिणमन्ति। भारतसर्वकारेण अद्यावधि एकादशभाषाणां—तमिल्, संस्कृतम्, कन्नडम्, तेलुगु, मलयालम्, ओडिया, मराठी, पालि, प्राकृतम्, असमिया तथा बाङ्ग्ला—शास्त्रीयभाषारूपेण मान्यता प्रदत्ता अस्ति। एतासां भाषाणां ग्रन्थाः, पाण्डुलिपयः, भाष्यपरम्पराः तथा मौखिकस्मृतिपद्धतयः शताब्दिभ्यः ज्ञानसञ्चरणस्य महत्त्वपूर्णाः संरचनाः अभवन्। अध्ययनमिदं गुणात्मकं, पाठकेन्द्रितं तथा समीक्षात्मकं च अस्ति। अस्मिन् प्राथमिकविद्वत्स्रोतांसि, शासनसम्बद्धानि ग्रन्थसम्पदाश्च तथा डिजिटलमानविकीपरियोजनानां सामग्री च प्रयुज्यते। साहित्यसमीक्षया ज्ञायते यत् भाषाध्ययनस्य ज्ञानपरम्पराध्ययनस्य च मध्ये एकः विशिष्टः शोधान्तरालो विद्यते; संरक्षणात् पुनःसर्जनस्य सङ्क्रमणं स्पष्टया विश्लेषणात्मकया संज्ञया अल्पमेव परीक्षितमस्ति। अध्ययनात् ज्ञायते यत् पाण्डुलिपिसंरक्षणम्, पाठसम्पादनम्, अनुवादः, अङ्कीकरणम् तथा संगणनात्मकभाषाविज्ञानम् इत्यादयः प्रक्रियाः ज्ञानपुनःसर्जनस्य पूर्वापेक्षाः निर्मान्ति; किन्तु प्रत्येकः प्रक्रिया स्वयमेव पुनःसर्जनस्य समतुल्या न भवति। निष्कर्षतः शास्त्रीयभाषाः केवलं ऐतिहासिकज्ञानस्य भाण्डाररूपेण न, अपितु सक्रियज्ञानमीमांसकीयाधाररचनारूपेण अवगन्तव्याः, येषां माध्यमेन ज्ञानस्य संरक्षणं, पुनर्व्याख्या, सञ्चरणं तथा सीमिते किन्तु सार्थके रूपे पुनःसर्जनं सम्भवति।

प्रमुखशब्दाः

शास्त्रीयभाषा, भारतीयज्ञानपरम्परा, ज्ञानसंरक्षणम्, ज्ञानपुनर्सृजनम्, पाण्डुलिपिविज्ञानम्, डिजिटलमानविकी, पाठसम्पादनम्, संस्कृतम्।

A comparative study between Sanskrit Uccharana Sthanam and English Places of Articulation

Dr. Kaushal Kumar Jha

A comparative study between Sanskrit **Uccharana Sthanam** and English Places of Articulation reveals a profound intersection between ancient Vedic phonetics (Shiksha) and modern Western linguistics. While separated by millennia, both systems categorize sounds based on where the

breath is modified in the vocal tract. In this Paper, I will try to unfold the knowledge between Sanskrit **Uccharana Sthanam** and English Places of Articulation.

प्रभातरञ्जनस्य व्याकरणविज्ञानम्- एकं समीक्षात्मकमध्ययनम्र

प्रशान्तकुमारमहला

आधुनिककाले श्रीश्रीआनन्दमूर्तिमहोदयेन (प्रभातरञ्जनसरकारेण) प्रणीतम् आनन्दमार्गीव्याकरणमेकं स्ततन्त्रं दार्शनिकचिन्तासमन्वितं प्रायोगिकं नूतनं व्याकरणं वर्तते। अस्य व्याकरणप्रणयनस्य मुख्योद्देश्यमस्ति यथा भाषा अधिका सुबोधा, व्यवहारोपयोगिनी मानवकल्याणाभिमुखी च भवेत्। आनन्दमार्गीमते- व्याकरणम् एकं शास्त्रम्।यथोक्तम् - **शासनात् तारयेत् ... शास्त्रं परिकीर्त्तितम्** । प्रभातरञ्जनसरकारः पाणिनीयपरम्परां पूर्णतया न स्वीकरोति, किन्तु भाषायाः प्रायोगिकपक्षं, आधुनिकावश्यकतां तथा दार्शनिकप्रयोजनञ्चाधारीकृत्य व्याकरणं नवदृष्ट्या उपस्थापयति।

भारतीयव्याकरणपरम्परायां पाणिनीयव्याकरणं सर्वाधिकं प्राचीनं, सुव्यवस्थितं प्रामाणिकञ्च वर्तते। आचार्येण पाणिनिना विरचिता 'अष्टाध्यायी' केवलं संस्कृतव्याकरणग्रन्थत्वेन न, अपि तु समग्रभाषाविज्ञानक्षेत्रे आदर्शरूपेण परिगण्यते। सूत्ररूपेण नियमप्रणयनम्, संक्षिप्तत्त्वेपि गम्भीरं विश्लेषणम्, सन्धि–धातु–प्रत्यय–कारक–समासादिषु विषयेषु सुश्लिष्टाः विधयः- पाणिनीयव्याकरणं संस्कृतव्याकरणस्य मूलाधारत्वेन प्रमाणयति। कात्यायन-पतञ्जल्यादिभिः वैयाकरणैःएषा व्याकरणपरम्परा समृद्धा परिमार्जिता च विहिता। आधुनिककाले भाषाचिन्तने व्याकरणचिन्तने च काचित् नूतना दृष्टिः परिलक्ष्यते। अस्मिन् प्रसङ्गे प्रभातरञ्जनसरकारेण (श्रीश्रीआनन्दमूर्तिना) प्रणीतं 'व्याकरणविज्ञानम्' एकं स्वतन्त्रं अभिनवं च व्याकरणपुस्तकं वर्तते। यद्यपि प्रभातरञ्जनसरकारस्य 'लघुनिरुक्तम्', 'शब्दचयनिका', 'वर्णविचित्रा', 'व्याकरणविज्ञानम्' इत्यादयः व्याकरणग्रन्थाः पाणिनीयव्याकरणमनुसृत्य विरचिताः सन्ति, तथापि केषुचित् स्थलेषु तस्य नूतनचिन्तायाः प्रमाणं प्राप्यते । प्रभातरञ्जनसरकारः (श्रीश्रीआनन्दमूर्तिः) भाषां केवलं रूपात्मकगठनदृष्ट्या न परिशीलयति, अपि तु चिन्ता-चेतना-भावप्रकाशस्य वाहनरूपेण व्याख्यायति। तस्य व्याकरणे दार्शनिकीदृष्टिः, अर्थप्राधान्यं, व्यावहारिकभाषाचिन्तायाः च प्राधान्यं विशेषतया दृश्यते। पाणिनीयव्याकरणं यत्र प्रधानतया नियमाधारितं, सूत्रनिबद्धं ,प्रक्रियाधारितञ्चास्ति तत्र प्रभातरञ्जनसरकारेण प्रणीताः व्याकरणग्रन्थाः अधिकतया व्याख्यात्मिकाः, अर्थप्रधानाः दार्शनिकाधारसम्पन्नाः च सन्ति। यद्यपि उभयोः व्याकरणप्रणयोः लक्ष्यं भाषायाः शुद्धताप्रतिपादनं प्रयोगनिश्चितिकरणं, तथापि तयोः पद्धतिः, विश्लेषणप्रवाहश्च परस्परात् भिन्नौ वर्तेते। पाणिनीयव्याकरणं मूलतः वैदिकशब्दानां –लौकिकशब्दानां साधुत्वं प्रदर्शयति,परन्तु आनन्दमार्गीव्याकरणं केवलं लौकिकशब्दानं साधुत्वं प्रतिपादयति।किन्तु प्रभातरञ्जनस्य व्याख्यानपद्धतिःपाणनेः अपेक्षया सरला सुबोधा च वर्तते । कृत्-तद्धितप्रत्ययानां प्रयोगः उभयोःव्याकरणे दृश्यते। पाणिनीयव्याकरणे प्रत्ययविभागः अत्यन्तं सूक्ष्मः सूत्रनिबद्धश्च अस्ति, अन्यत्र प्रभातरञ्जनसरकारः आधुनिकदृष्ट्या प्रत्ययतत्त्वं विश्लेषणात्मकं प्रायोगिकं च साधयति । कारकतत्त्वम् उभयोःव्याकरणे वाक्ये क्रियासम्बन्धित्वं प्रतिपादयति । पाणिनीयव्याकरणे कारकसंख्या संज्ञा च शास्त्रसम्मता व्यवस्थिता च वर्तते । महामुनिः पाणिनिः षट्कारकाणि स्वीकृतवान्, अपरं तु प्रभातरञ्जनसरकारः सप्तकारकाणि स्वीकरोति - सः 'सम्बोधनम्' अथवा 'षष्ठीम्' 'स्वतन्त्रकारक' रूपेण आलोचयति-

रामो राजमणिः सदा विजयते,रामं रमेशं भजे

रामेणाभिहताः निशाचरचमूः रामाय तस्मै नमः।

रामान्नास्ति परायणपरतरं,रामस्य दासोऽस्म्यऽम् ।

रामे चित्तलयःसदा भवतु मे,भो राम मामुद्धर ।

Indian Languages: A Study of Grammar and Linguistics Features

Swati C. Naskolwar

India's multilingual character reflects centuries of cultural exchange and linguistic evolution. The country's languages belong to four major families: Indo-Aryan, Dravidian, Austroasiatic, and Tibeto-Burman. This paper undertakes a comparative study of selected languages from these families, focusing on core areas of grammar such as phonology, morphology, syntax, word formation, and vocabulary. The analysis highlights distinctive features for example, the widespread use of retroflex consonants in Dravidian languages, the ergative alignment found in Hindi and related Indo-Aryan languages, and the tonal systems characteristic of Tibeto-Burman languages. Austroasiatic languages, meanwhile, reveal complex morphological strategies that set them apart within the Indian context.

The study also considers the historical and cultural forces that have shaped these languages. Sanskrit's prestige has left a lasting imprint on Indo-Aryan vocabulary, while centuries of Persian and Arabic influence introduced new lexical layers. Regional contact has further enriched Indian languages through borrowing and hybridization, producing a dynamic linguistic environment. Multilingualism in everyday life where speakers shift between languages depending on social and regional contexts illustrates how grammar and vocabulary are constantly negotiated in practice.

By situating structural diversity within broader historical and cultural frameworks, the paper argues that India's languages are not only markers of identity but also evidence of deep interconnections across communities. The findings suggest that while each language family maintains unique grammatical systems, recurring patterns of word formation, syntactic strategies, and shared vocabulary roots reveal common threads. Preserving and studying these languages is therefore essential, both for safeguarding cultural heritage and for advancing linguistic scholarship.

Keywords: Indian Languages, Grammar, Linguistics, Phonology, Morphology, Syntax, Multilingualism

यास्कोक्त निरुक्तनिर्वचनेषु भारतीयसंस्कृतेः दर्शनस्य च प्रतिबिम्बम्

दवे लखनकुमार लाभशंकरभाई

अस्मिन् शोधपत्रे महर्षियास्कप्रणीतस्य निरुक्तस्य निर्वचनपरम्परायां प्रतिबिम्बितभारतीयसंस्कृतेः बहुआयामी स्वरूपदृष्टिं विवेच्यते। यास्कस्य निर्वचनं केवलं शब्दस्य धात्वर्थाधारितं व्युत्पत्तिविवरणं न, अपि तु तत्तच्छब्दस्य प्रयोगपरम्परां, वैदिकजीवनदृष्टिं, धार्मिकचेतनां, सामाजिकमूल्यानि, प्रकृतिसम्बन्धं तथा लोकव्यवहारं प्रकाशयितुं समर्थं सांस्कृतिकसाधनमिति अस्मिन् शोधे प्रतिपाद्यते। अन्नशब्दस्य निर्वचनेन जीवनधारणायाः मूलभूततत्त्वं, अन्नस्य पवित्रता तथा तस्य अहिंसापूर्वकप्राप्तेः आदर्शः भारतीयजीवनमूल्यानां सूचकत्वेन विवेच्यते। यज्ञशब्दस्य यास्कीयनिर्वचनं तु वैदिकभारतीयजीवने यज्ञस्य केन्द्रीयस्थानं प्रकाशयति। "**प्रख्यातं यजतिकर्म**" (**निरुक्त**) इति नैरुक्तव्याख्यया यज्ञः केवलं कर्मकाण्डविशेषः न, अपि तु वैदिकसमाजस्य धार्मिक-सामाजिक-सांस्कृतिकजीवनस्य प्रमुखः आधारः इति प्रतिपाद्यते। तथैव देवता, अग्नि, सोम, ऋत, धर्म, अन्न, पशु, गो, पुरुष इत्यादीनां शब्दानां निर्वचनप्रक्रियायां प्रकृतिं प्रति भारतीयानां दृष्टिः, देवमानवसम्बन्धः, यज्ञप्रधानजीवनपद्धतिः, सामाजिककर्तव्यबोधः तथा लोककल्याणाभिमुखता च प्रकाशन्ते। यास्कः भाषायाः माध्यमेन वैदिकमन्त्रेषु निहितं सांस्कृतिकज्ञानं पुनराविष्करोति तथा शब्दार्थयोः सम्बन्धं केवलं भाषिकं न मन्यते, अपि तु तस्य पृष्ठे स्थितं जीवनदर्शनमपि अन्विष्यति।

अतः निरुक्तं वैदिकशब्दानां व्युत्पत्तिशास्त्रमात्रं न, अपि तु भारतीयसंस्कृतेः भाषिकं सांस्कृतिकं च प्रतिबिम्बमिति अस्य शोधस्य मूलप्रतिपादनम्। अस्य अध्ययनस्य माध्यमेन यास्कीयनिर्वचनानां अन्तर्निहिते भारतीयदृष्टौ धर्मः, यज्ञः, अहिंसा, अन्नसंस्कृतिः, प्रकृतिसम्मानः, लोकमङ्गलचिन्ता तथा कर्तव्यप्रधानजीवनमूल्यानि

कथं परस्परसम्बद्धानि सन्तीति प्रकाशयितुं प्रयत्नः क्रियते। विशेषतः अस्मिन् शोधे निर्वचनस्य ध्वन्यात्मक, व्याकरणात्मक, अर्थात्मक तथा सांस्कृतिकेतिहासपरकानाम् आयामानां समन्वितं परीक्षणं क्रियते, येन यास्कीयचिन्तनस्य केवलं व्युत्पत्तिशास्त्रीयं स्वरूपं न, अपि तु तस्य सांस्कृतिकान्वयः अपि प्रकाश्यते। यास्केन शब्दस्य प्रकृतिप्रत्ययविभागः, धात्वर्थसम्बन्धः, पर्यायप्रयोगः, प्रादेशिकशब्दरूढिः, नैगमभाषिकसम्बन्धः तथा प्रसङ्गानुकूलनिर्वचनं यथा स्वीकृतं तस्य परीक्षणेन ज्ञायते यत् भाषा तस्य कृते संस्कृतेः संवाहिका आसीत्। शब्देषु निहिताः कर्मपरम्पराः, आचारनिरूपणं, मानवीयसम्बन्धाः तथा प्रकृतिसम्बद्धाः जीवनमूल्याः तस्य निर्वचनपद्धत्या पुनराविष्कर्तुं शक्यन्ते।

अनया दृष्ट्या निरुक्तस्य अध्ययनं वैदिकशब्दार्थज्ञानस्य सीमां लङ्घयित्वा प्राचीनभारतीयमानसस्य पुनरन्वेषणस्य साधनं भवति। अतः यास्कीयनिर्वचनं भारतीयसंस्कृतेः स्थिरचित्रं न, अपि तु वैदिकजीवनस्य गतिशीलं, कर्मप्रधानं, ऋताधारितं, लोकहिताभिमुखं च स्वरूपं प्रकाशयन् सांस्कृतिकदर्पणरूपेण अवगन्तुं शक्यते। अतः अस्य शोधस्य प्रयोजनं यास्कस्य निर्वचनानां केवलं शाब्दिकसमीक्षणं न, किन्तु तेषां सांस्कृतिकप्रसङ्गस्य अन्वेषणमपि अस्ति। एतादृशेन समग्राध्ययनेन वैदिकसंस्कृतेः मूलभूताः जीवनादर्शाः शब्दरूपेभ्यः अर्थरूपेभ्यश्च कथम् उद्घाट्यन्ते इति स्पष्टं भवति तथा भारतीयज्ञानपरम्परायां भाषायाः सांस्कृतिकभूमिका नूतनया दृष्ट्या अवगन्तुं शक्यते। इति यास्कीयनिरुक्तस्य पुनर्पाठः भारतीयसंस्कृतेः स्वकीयभाषिकप्रमाणैः पुनरन्वेषणाय महत्त्वपूर्णं द्वारमुद्घाटयति, तथा प्राचीनभारतीयभाषावैज्ञानिकचिन्तनस्य सांस्कृतिकगाम्भीर्यं प्रकाशयति। अनेन निरुक्ताध्ययनस्य सांस्कृतिकमूल्यं तथा भारतीयज्ञानपरम्परायाः अखण्डता सम्यक् प्रतिष्ठाप्यते।

पञ्चम(द्वन्द्व)समासे पूर्वप्रयोगपरामर्शः

Pandya Himalay Dayarambhai

विदितमेव प्रवर्तते “काणादं पाणिनीयं च सर्वशास्त्रोपकारकम् ”अत्र स्पष्टमेव व्याकरणशास्त्रस्य प्रधानत्वमिति,अतःअवश्यमेवास्मिन्शास्त्र अभ्यासः करणीय इति । एतस्मिन् शास्त्रे “शब्दानुशासने ” समासशास्त्रस्य महत्वमधिकं वरीवृत्यते ,समासो नाम समसनमिति तथा परिभाषेन्दुशेखरे श्रीनागेशेन लिखितमपि वर्तते अर्धमात्रालाघवेन पुत्रोत्सवं मन्यन्ते वैयाकरणा:”अत्र तु समासत्वेन न केवलं मात्रायाः अपि तु शब्दानामेव लाघवं दृश्यते ।तत्र समासः पञ्चधा -विशेषसंज्ञाविनिर्मुक्तः केवलसमासः प्रथमः ,प्रायेण पूर्वपदार्थप्रधानो ऽव्ययीभावो द्वितीयः,प्रायेणोत्तरपदार्थस्तत्पुरुषस्तृतीयः,प्रायेणान्यपदार्थप्रधानो बहुव्रीहिश्चतुर्थः प्रायेणोभयपदार्थप्रधानो द्वन्द्वः पञ्चमः ,अत्र पञ्चमस्य द्वन्द्वसमासस्य चत्वारः प्रकारास्सन्ति -समुच्चयान्वाचयेतरयोगसमाहाराः इति ।समुच्चयान्वाचयोः मध्ये मिश्रत्वं स्यात् क्रियायामन्वयत्वात्,तस्य परिहारस्तु सापेक्षनिरपेक्षानुषङ्गिकैरिति,समासे एकार्थीरूपसामर्थ्य इत्यस्य अनुवृत्तित्वात् अत्र ” एकार्थविषयिबोधजनकः समर्थः “ तदभावात् न समासः।मिलितानामन्वय इतरेतरयोग एवञ्च समुहः समाहार:,इतरेतरयोगे लिङ्गस्य विवेकः परवत्कर्तव्यः तथा समाहारे तु नपुन्सकमिति ।

समासेषु पूर्वप्रयोगः प्रथमानिर्दिष्टस्य बोभूयते तथेतत्समासं विहाय अन्यसमासेषु प्रथमानिर्दिष्टपदमेकमेव दृश्यते ,बहुव्रीहिसमास एतस्यापवादः किन्तु तत्र तु व्यवस्था विग्रहानुसारेण प्रचलति ।अस्मिन् समासे सर्वपदान्यपि प्रथमायुक्तानि तथा सूत्रवार्तिकान्यपि नाना वरीवृत्यन्ते, एवञ्च तस्य परिहारार्थे महर्षिणा पाणिनिना सूत्राणि लिखितान्येव वर्तन्ते । तस्मिन्नपि विशेषप्रकारेण वररुचिना वार्तिकान्यपि लिखितानि विद्यन्ते, तथापि अधिकसूत्रत्वादेवञ्चाधिकवार्तिकत्वात् संशयः प्रभवति ,क उत्सर्गः कोऽपवादः । तथा तस्य निवारणं तु सूत्रवार्तिकयोःविशेषाभ्यासादेव भवितुमर्हति,तत्कृते तु टीकाव्याख्याग्रन्थाः द्रष्टव्याः,यतो हि वार्तिकादिषु गणादिनामुपदेशत्वादिति।प्रसिद्धमपि वर्तते “व्याख्यानतो विशेषप्रतिपत्तिर्न हि संदेहादलक्षणमिति ।वर्तमाने तु मूलग्रन्थानामेवाभ्यासः सरलं नास्ति यतो हि कालमतिसमयादिकारणत्वादिति ,तथा प्रवर्तमाने चैतस्यावश्यक्ताप्यस्तीति ।

सामान्यरीत्या तु लघ्वक्षरस्य पूर्वप्रयोगः कार्य इति यथा कुशकाशम् ,वाटखादिरौ तदग्रे पश्यामश्चेत समानाक्षरेषु अजाद्यदन्तस्य पूर्वप्रयोगः चरिकुर्यादिति "अजाद्यदन्तम्" इति सूत्रेण व्यवस्था भूयते , एवमग्रे समानक्षु हलादौ च घिसंज्ञकस्य पूर्वप्रयोगो करणीय इति "द्वन्दे घि"इति सूत्रेण नियमो भवतीति यथा हरिश्च हरश्चेति हरिहरौ,शशिसूर्यो अत्र्यङ्गिरसौ,तस्मिन्नपि एकं वार्तिकमस्ति "अनेकप्राप्तावेकत्र नियमो नियमः शेषे:" नामानेके प्राप्तावेकत्र नियम शेषे अनियमः यथा हरिगुरुहराः हरिहरगुरवः ।अनया रीत्या सोपानानुसारेण क्व कस्य सूत्रस्य प्राप्तिः कस्य च बाधः तथा तदनुसारेण कस्य पूर्वप्रयोगः कस्य परप्रयोग एतन्निरूपणं मयास्मिन् शोधपत्रे क्रियत इति ।

कूटशब्दा: समास:, पाणिनि, द्वन्द्व समास, पूर्वप्रयोगपरामर्शः

महाभारते भीष्मपर्वणि उल्लिखितानां नदीवाचकसंज्ञानां भाषाशास्त्रीयमध्ययनम् ।

शर्वरी अनंत शास्त्री

वैदिककालादारभ्य अद्ययावत् संस्कृतवाङ्मये नदीनां स्थानं सर्वोपरि अस्ति । यथा वेदे यज्ञानुष्ठानानामाधाररूपेण नद्याः विशेषं स्थानम् आसीत् । ऋग्वेदे अथर्ववेदे तु सा अमङ्गलनाशिनी जीवनदायिनी औषधिर्वतते। मोक्षदायिनीरूपेण पापहारिणीरूपेण चापि वर्णिता । एवञ्च सा केवलं जलधारा नास्ति अपि तु भौगोलिक-सांस्कृतिकपरिवर्तनयोः साक्षिणी वर्तते । एवमेव नदीनां नामानि केवलं तासां भौगोलिकमस्तित्त्वं न दर्शयन्ति, अपि तु तासां स्वरूपाणां गतीनां वर्णानां प्रकृतीनां च भाषिकप्रतिबिम्बान्यपि स्पष्टीकुर्वन्ति।

तथा च अस्माकं जीवने भाषा तु प्रमुखा एव । भाषा एव अस्माकं दैनिकव्यवहार-विचारविनिमय-ज्ञानसम्प्रेषणानां मूलभूतं स्रोतमस्ति । एवञ्च भाषायाः अर्थपूर्णायाः सुव्यवस्थितरचनायाः कारणं व्याकरणं वर्तते। व्याकरणे तु शब्द एव ब्रह्म, तेन स्पष्टं भवति यत् शब्दाः केवलं ध्वनिसमूहाः एव न, अपि तु ते विशिष्टाऽर्थानां सङ्कल्पनानाञ्च प्रतिनिधित्वमपि कुर्वन्ति । रामायणमहाभारतादिषु आर्षकाव्येषु "ऋषीणां पुनराद्यानां वाचं अर्थोऽनुधावति" इति उक्तरीत्या विशिष्टप्रयोजनमुद्दिश्य शब्दप्रयोगः दृश्यते। तत्रापि भारतीयवाङ्ग्मये महाभारतं काव्येषु व्याकरणदार्शनिकविचारादिषु च अन्यतमं विद्यते। भीष्मपर्वणि तु नैके विचाराः स्थापिताः । आरम्भे तु पर्वतानां, वर्षाणां, नदीनां, जनपदानां च वर्णनं प्राप्यते। तत्र तेषां नामानि सञ्जयेन यथास्मृति उक्तानि, परन्तु प्रत्येकस्यां संज्ञायां कश्चिदर्थः, काचित् परम्परा स्यादेव, अग्रे तेषाम् अर्थपरिवर्तनं जातं न वा इति धिया महाभारते भीष्मपर्वणि उल्लेखितानां नदीवाचकसंज्ञानां भाषाशास्त्रीयमध्ययनम् इति विषयमादाय शोधपत्रं विलिख्यते।

अस्मिन् शोधपत्रे महाभारते भीष्मपर्वणि उल्लिखितानां याः नदीवाचकाः संज्ञाः तासामेव रूपवैज्ञानिक-अर्थवैज्ञानिकरीत्या अध्ययनं क्रियते। भीष्मपर्वणि विद्यमानाः विचाराः शोधपत्रेषु उपस्थाप्यन्ते। भारतीयनदीविषयकाणि प्रायः केवलं भौगोलिकैतिहासिकाध्यात्मिकानि च संशोधनानि जातानि, परन्तु भीष्मपर्वणि विद्यमानानां नदीवाचकसंज्ञानां रूपरचना, व्युत्पत्तिः तथा अर्थसंरचनादिशा भाषावैज्ञानिकमध्ययनं न्यूनमस्ति।

अस्मिन् पत्रे भीष्मपर्वणि आगतानां नदीवाचकसंज्ञानामध्ययनं क्रियते परन्तु विस्तारभयाद् यथाशक्ति केवलं विशेषनदीवाचकानां संज्ञानामेव अध्ययनं क्रियते। अस्मिन् पत्रे प्रत्येक संज्ञानां द्विप्रकारकमध्ययनं भवति। प्रथममस्ति रूपवैज्ञानिकं यत्र पाणिनीयव्याकरणदिशा धातुप्रत्ययोपसर्गसमासादिभिः शब्दानां विवेचनं क्रियते। द्वितीयमस्ति अर्थवैज्ञानिकम् अध्ययनं यत्र नद्याः संज्ञा तस्याः स्वरूपानुसारेण यथा तस्याः प्रवाहः, वर्णविशेषः रूढिः इत्यादि कारणैः जाता अथवा अर्थे विपर्यासः अप्यस्तीत्यस्य विचारः अत्र क्रियते। यदि नद्याः अर्थान्तरं स्यात् तर्हि तस्य कारणमिमांसा क्रियते।

अनेनाध्ययनेन नदीवाचकशब्दानां प्रक्रिया, तेषां शब्दार्थसंबन्धः तथा शब्दप्रयोगेऽपि अर्थस्य निरन्तरता एवञ्च परिवर्तनमिति विषयाः स्पष्टाः भविष्यन्ति। तथा च काव्येषु साहित्यादिविचारैः सह भाषाशास्त्रस्य विशेषतः शब्दार्थयोः विचारः विशेषेण गम्यते ।

कूटशब्दाः – महाभारतम्, भीष्मपर्व, नदीवाचकसंज्ञा, नामविज्ञानम्, व्युत्पत्तिशास्त्रम्, अर्थविज्ञानम्, भाषाशास्त्रम् ।

पाणिनीयाष्टाध्यायीमनुसृत्य कर्मप्रवचनीयसंज्ञकशब्दानां विश्लेषणात्मकमध्ययनम्

ओंकारसुधीरमोहोळकर:

संसारेऽस्मिन् सर्वेषामपि अर्थानाम् अपि च तेषां प्रवृत्तीनां बोधक: शब्द: एव। शब्देन विना कोऽपि व्यवहारो न शक्यते। यतो हि घटपटादीनां ज्ञानं वा व्यवहारो वा शब्दादेव सम्भवति। अत: एतादृशानां शब्दानाम् अर्थावगमाय व्याकरणशास्त्रस्य ज्ञानं परमावश्यकं वर्तते। यथोक्तं भर्तृहरिणा -

'अर्थप्रवृत्तितत्त्वानां शब्दा एव निबन्धनम्।

तत्त्वावबोध: शब्दानां नास्ति व्याकरणादृते।।'

अष्टाध्याय्यां पाणिनिमहर्षिणा कतिपयानां विशिष्टानां संज्ञानां निर्देश: कृतो विद्यते। यथा - गतिसंज्ञा, उपसर्गसंज्ञा, निपातसंज्ञा, कर्मप्रवचनीयसंज्ञा चेति। एतासां संज्ञानां मध्ये 'कर्मप्रवचनीयसंज्ञा' विशेषत्वेन राजते। 'कर्म + प्र + वच्' इत्यवस्थायां 'भूते कर्तरि अनीयर्' प्रत्यये कृते 'कर्मप्रवचनीय' इति शब्द: सिध्यति। भगवता भाष्यकारेण 'कर्मप्रवचनीयसंज्ञा अन्वर्थसंज्ञा अस्ती'ति भाष्ये उद्धृतम्। 'कर्मप्रवचनीय' इत्यत्र 'कर्म' इत्यस्यार्थ: भवति 'क्रिया'। एवमेव 'प्रवचनीय' इत्यस्यार्थ: भवति 'प्रोक्तवन्त:' इति। अनेन प्रकारेण 'क्रियां प्रोक्तवन्त: - कथितवन्त: इति कर्मप्रवचनीया:' इत्यर्थ: सिध्यति। कर्मप्रवचनीयसंज्ञकशब्दा: क्रियां न द्योतयन्ति, अपि तु क्रियावाचकशब्देन सह सम्बन्ध: प्रकाशयन्ति। किन्तु न हि सर्वेषु कर्मप्रवचनीयसंज्ञकशब्देषु 'कर्म प्रोक्तवन्त:' इत्यर्थे व्यवहार: भवति। अतएव भाष्यकारेण उद्धृत: अर्थ: केवलम् उपलक्षणरूपेणैवेति ज्ञेयम्। यथा 'सु सिक्तं भवता' इत्यत्र 'सु' इति कर्मप्रवचनीयसंज्ञकशब्द: कस्याऽपि क्रियाया: स्थाने न प्रयुज्यते।

कर्मप्रवचनीया: उपसर्ग-निपाततुल्या:, तथाऽपि ते उपसर्गनिपातेभ्य: भिन्ना: वर्तन्ते। उपसर्गसंज्ञका: यथा क्रियाजन्यशब्दात् पूर्वमुपयुज्यन्ते, तथैव कर्मप्रवचनीयसंज्ञका: अपि क्रियाजन्यशब्दात् पूर्वमेव उपयुज्यन्ते। तथा च 'संहितैकपदे नित्या, नित्या धातूपसर्गयो:' इति वचनानुसारं धातूपसर्गयोर्मध्ये संहिताकार्यम् आवश्यकं भवति, किन्तु येषां शब्दानां कर्मप्रवचनीयसंज्ञा विधीयते तेषां कृते तु संहिताकार्यं नावश्यकम्। अत्रेदम् अवधातव्यं यत् कर्मप्रवचनीयसंज्ञकशब्दानां योगे संहिताकार्यं क्रियते चेत् कोऽपि क्लेशो नास्ति। कर्मप्रवचनीयसंज्ञाविधानसामर्थ्यात् उपसर्गसंज्ञाया: गतिसंज्ञायाश्च बाध: अपि भवति। यद्यपि कर्मप्रवचनीयसंज्ञकशब्दा: उपसर्गसंज्ञां गतिसंज्ञाञ्च बाधते, तथाऽपि ते 'प्राग्रीश्वरान्निपाता:' इत्यस्मिन् अधिकारे निपातसंज्ञका: भवन्त्येव।

अष्टाध्याय्यां प्रथमाध्याये चतुर्थपादे त्र्यशीतितमं सूत्रं वर्तते 'कर्मप्रवचनीया:' इति। अधिकारसूत्रं वर्तते इदम्। अस्य अधिकार: 'अधिरीश्वरे' इति सूत्रपर्यन्तं वर्तते। अस्मिन् अधिकारे प्रादिगणे परिपठिता:

एकादश शब्दा: एकसंज्ञाधिकारात् कर्मप्रवचनीयसंज्ञका: भवन्ति। किञ्च कर्मप्रवचनीयसंज्ञकशब्दानां योगे विशिष्टविभक्तीनां विधानं ग्रन्थकारेण कृतम्। तत्र विविधेषु सूत्रेषु द्वितीया, पञ्चमी, सप्तमी च इत्यादय: विभक्तय: विहिता: सन्ति। प्रबन्धेऽस्मिन् प्रस्तुतविषय: विस्तरेण विवेचयितुमिष्यते।

बीजशब्दा:कर्मप्रवचनीयसंज्ञा, उपसर्गसंज्ञा, गतिसंज्ञा, निपातसंज्ञा, कारकप्रकरणम्, अष्टाध्यायी, महाभाष्यम्, पाणिनि:, पतञ्जलि:

‘

तत्त्वावबोध: शब्दानां नास्ति व्याकरणादृते।।’

अष्टाध्याय्यां पाणिनिमहर्षिणा कतिपयानां विशिष्टानां संज्ञानां निर्देश: कृतो विद्यते। यथा – गतिसंज्ञा, उपसर्गसंज्ञा, निपातसंज्ञा, कर्मप्रवचनीयसंज्ञा चेति। एतासां संज्ञानां मध्ये **‘कर्मप्रवचनीयसंज्ञा’** विशेषत्वेन राजते। **‘कर्म + प्र + वच्’** इत्यवस्थायां **‘भूते कर्तरि अनीयर्’** प्रत्यये कृते **‘कर्मप्रवचनीय’** इति शब्द: सिध्यति। भगवता भाष्यकारेण **‘कर्मप्रवचनीयसंज्ञा अन्वर्थसंज्ञा अस्ती’**ति भाष्ये उद्धृतम्। **‘कर्मप्रवचनीय’** इत्यत्र **‘कर्म’** इत्यस्यार्थ: भवति **‘क्रिया’**। एवमेव **‘प्रवचनीय’** इत्यस्यार्थ: भवति **‘प्रोक्तवन्त:’** इति। अनेन प्रकारेण **‘क्रियां प्रोक्तवन्त: - कथितवन्त: इति कर्मप्रवचनीया:’** इत्यर्थ: सिध्यति। कर्मप्रवचनीयसंज्ञकशब्दा: क्रियां न द्योतयन्ति, अपि तु क्रियावाचकशब्देन सह सम्बन्ध: प्रकाशयन्ति। किन्तु न हि सर्वेषु कर्मप्रवचनीयसंज्ञकशब्देषु **‘कर्म प्रोक्तवन्त:’** इत्यर्थे व्यवहार: भवति। अतएव भाष्यकारेण उद्धृत: अर्थ: केवलम् उपलक्षणरूपेणैवेति ज्ञेयम्। यथा **‘सु सिक्तं भवता’** इत्यत्र **‘सु’** इति कर्मप्रवचनीयसंज्ञकशब्द: कस्याऽपि क्रियाया: स्थाने न प्रयुज्यते।

कर्मप्रवचनीया: उपसर्ग-निपाततुल्या:, तथाऽपि ते उपसर्गनिपातेभ्य: भिन्ना: वर्तन्ते। उपसर्गसंज्ञका: यथा क्रियाजन्यशब्दात् पूर्वमुपयुज्यन्ते, तथैव कर्मप्रवचनीयसंज्ञका: अपि क्रियाजन्यशब्दात् पूर्वमेव उपयुज्यन्ते। तथा च **‘संहितैकपदे नित्या, नित्या धातूपसर्गयो:’** इति वचनानुसारं धातूपसर्गयोर्मध्ये संहिताकार्यम् आवश्यकं भवति, किन्तु येषां शब्दानां कर्मप्रवचनीयसंज्ञा विधीयते तेषां कृते तु संहिताकार्यं नावश्यकम्। अत्रेदम् अवधातव्यं यत् कर्मप्रवचनीयसंज्ञकशब्दानां योगे संहिताकार्यं क्रियते चेत् कोऽपि क्लेशो नास्ति। कर्मप्रवचनीयसंज्ञाविधानसामर्थ्यात् उपसर्गसंज्ञाया: गतिसंज्ञायाश्च बाध: अपि भवति। यद्यपि कर्मप्रवचनीयसंज्ञकशब्दा: उपसर्गसंज्ञां गतिसंज्ञाञ्च बाधते, तथाऽपि ते **‘प्राग्रीश्वरान्निपाता:’** इत्यस्मिन् अधिकारे निपातसंज्ञका: भवन्त्येव।

अष्टाध्याय्यां प्रथमाध्याये चतुर्थपादे त्र्यशीतितमं सूत्रं वर्तते **‘कर्मप्रवचनीया:’** इति। अधिकारसूत्रं वर्तते इदम्। अस्य अधिकार: **‘अधिरीश्वरे’** इति सूत्रपर्यन्तं वर्तते। अस्मिन् अधिकारे प्रादिगणे परिपठिता: एकादश शब्दा: एकसंज्ञाधिकारात् कर्मप्रवचनीयसंज्ञका: भवन्ति। किञ्च कर्मप्रवचनीयसंज्ञकशब्दानां योगे विशिष्टविभक्तीनां विधानं ग्रन्थकारेण कृतम्। तत्र विविधेषु सूत्रेषु द्वितीया, पञ्चमी, सप्तमी च इत्यादय: विभक्तय: विहिता: सन्ति। प्रबन्धेऽस्मिन् प्रस्तुतविषय: विस्तरेण विवेचयितुमिष्यते।

बीजशब्दा:

कर्मप्रवचनीयसंज्ञा, उपसर्गसंज्ञा, गतिसंज्ञा, निपातसंज्ञा, कारकप्रकरणम्, अष्टाध्यायी, महाभाष्यम्, पाणिनि:, पतञ्जलि:

वैयाकरणसिद्धान्तकौमुद्यामच्सन्धौ लौकिकन्याया:

-अभिरामगदाधर:

छात्र:, व्याकरणम्

कविकुलगुरूकालिदाससंस्कृतविश्वविद्यालयः

सारांशः –

महर्षिपाणिनिनाष्टाध्यायीग्रन्थं विरचय्य सकलं व्याकरणशास्त्रं प्रणीतम्। तदनुसृत्य भट्टोजीदीक्षितवर्यः वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी इति ग्रन्थम् अरचयत् । महर्षिपाणिनेः व्याकरणशास्त्रे प्रवेशः करणीयश्चेत् वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी पठनीया भवत्येव । वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी इति महामहोपाध्यायभट्टोजीदीक्षितवर्यस्य महती कृतिः वर्तते । तैः अस्मिन्ग्रन्थे व्याकरणशास्त्रस्य क्लिष्टविषयाः दार्शनिकांशाः च यथाकालं लौकिकोदाहरणैः सम्यक् प्रतिपादिताः सन्ति । आधुनिक काले तानि उदाहरणानि आधुनिकवैयाकरणाः ज्ञातुं कदाचित् काठिन्यम् अनुभवेयुः । तानि उदाहरणानि अस्मिन्काले दृश्यमानैः उदाहरणैः कथं सम्बध्यन्ते अपि च एते विषयाः ज्ञातुं कथं सुलभाः भवन्ति ।

वैयाकरणसिद्धान्तकौमुद्याम् अच्सन्धौ यथा “आद् गुणः” तथा “वृद्धिरेचि” इत्यनयोः सूत्रयोः उत्सर्गापवादविषयो विद्यते तत्र “आद् गुणः” इति उत्सर्गः सामान्यशास्त्रं तथा “वृद्धिरेचि” इत्यपवादो विशेषशास्त्रमिति। विशेषशास्त्रं सामान्यशास्त्रं बाधते। तत्र सुलभतया अवगन्तुं दीक्षितैः तक्र-कौण्डिन्यन्यायः उपस्थापितः तस्य अयमर्थः सर्वेभ्यो ब्राह्मणेभ्यो दधि दीयतां तक्रं कौण्डिन्याय इति (सर्वेभ्यो ब्राह्मणेभ्यो दधि दीयतामिति सामान्यशास्त्रं तक्रं कौण्डिन्याय इति विशेषशास्त्रं) सामान्यतया सर्वेभ्यो दधि दीयतां किन्तु केवलं कौण्डिन्यगोत्रीयाय तक्रं दीयताम् इति। तेन कौण्डिन्यगोत्रियाय इति विशेषे उक्ते तक्रेन दधि बाध्यते तद्वत् अत्रापि “वृद्धिरेचि” “आद् गुणः” इति सूत्रं बाधते। अस्य शोधपत्रस्य मुख्यं लक्ष्यमेतदेव वर्तते यत् वैयाकरणसिद्धान्तकौमुद्यामच्सन्धौ प्रयुक्तानां क्लिष्टविषयाणां लौकिकोदाहरणैः सरली करणं तथा च शीघ्रमवगन्तुं तेषाम् उदाहरणानां प्रासङ्गिकमध्ययनं, यत् कथं कौमुदीकारः दार्शनिकं व्याकरणपरं वा विषयं लोकन्यायैः स्पष्टीकरोति । तथा अस्मिन्ग्रन्थे विद्यमानाः तर्काः अन्यान्यशास्त्राणाम् अवबोधनेऽपि सहायकाः भवन्ति । अनेन शोधेन छात्राः, आधुनिकवैयाकरणाः विद्वांसश्च अच्सन्धौ प्रयुक्तानां क्लिष्टविषयाणां सारं ज्ञातुं सहजतया शक्ष्यन्ति, येन संस्कृतविद्यायाः पुनरुद्धारो भविष्यति ।

कूटशब्दाः – व्याकरणम्, लौकिकन्यायाः, वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी, अच्सन्धिः, लौकिकोदाहरणम्, वैयाकरणाः, महर्षिपाणिनिः ।

वेदश्रीः विवेकः कुलकर्णी

आचार्यसंस्कृतव्याकरणम्

कविकुलगुरुकालिदाससंस्कृतविश्वविद्यालयः

‘सूरीणामनुरञ्जकः श्रुतिपदं योऽयं स्वयं राजते’ इत्येतादृशस्य स्वरस्य उत्पत्तिप्रक्रियायाः चिन्तनं शार्ङ्गदेवविरचिते सङ्गीतरत्नाकरग्रन्थे पाणिनीयशिक्षायाञ्च विद्यते। पाणिनीयशिक्षाग्रन्थस्य मुख्यः प्रतिपाद्यविषयः वैदिकलौकिकशब्दानां यथार्थोच्चारणम्, ध्वनिविज्ञानं तथा मन्त्रसंरक्षणमस्ति। अपरत्र शार्ङ्गदेवविरचितस्य सङ्गीतरत्नाकरस्य प्रतिपाद्यविषयः नादः, श्रुति-स्वर-ग्राम-मूर्च्छना-रागादीनां साङ्गीतिकं वर्गीकरणम्, तालवाद्यनृत्तानां निरूपणञ्चास्ति। उभयोः ग्रन्थयोः प्रतिपाद्यविषयभिन्नत्वे सत्यपि स्वरोत्पत्तिप्रक्रियायाः विषये ग्रन्थद्वयेऽपि क्वचित् साम्यं लक्ष्यते। सङ्गीतरत्नाकरग्रन्थे तावत् स्वरस्य परिभाषा इत्थं वर्तते- ‘श्रुत्यनन्तरभावी स्निग्धः, अनुरणनात्मकः, स्वतः श्रोतृचित्तं यः रञ्जयति सः स्वरः’ इति। श्रुतेरनन्तरं भवतीति श्रुत्यनन्तरभावी। एते च सप्तस्वराः – षड्जः, ऋषभः, गांधारः, मध्यमः, पञ्चमः, धैवतः, निषादश्चेति। लोके तावत् एते सप्तस्वराः सरिगमपधनिसंज्ञाभिः प्रयुज्यन्ते। तच्चोक्तं सङ्गीतरत्नाकरग्रन्थे-

सङ्गीतरत्नाकरपाणिनीयशिक्षाग्रन्थयोः स्वरोत्पत्तिप्रक्रियायाः तुलनात्मकमध्ययनम्

श्रुतिभ्यः स्युः स्वराः षड्जर्षभगांधारमध्यमाः।

पञ्चमो धैवतंश्चाथ निषाद इति सप्त ते ॥

पाणिनीयशिक्षायां त्रयः स्वराः प्रोक्ताः – '**उदात्तश्चानुदात्तश्च स्वरितश्च स्वराः त्रयः**'। उदात्तः, अनुदात्तः, स्वरितः इति त्रयाणां स्वराणां लक्षणरूपाणि सूत्राण्युक्तानि पणिनिना अष्टाध्याय्याम्। तानि च – 'उच्चैरुदात्तः', 'नीचैरनुदात्तः' तथा 'समाहारः स्वरितः' इति। यस्य स्वरस्य उच्चारणं तस्य उच्चारणस्थानस्य ऊर्ध्वभागात् भवति, तस्य 'उदात्तः' इति संज्ञा भवति । यस्य स्वरस्य उच्चारणं तस्य उच्चारणस्थानस्य अधोभागात् भवति, तस्य 'अनुदात्तः' इति संज्ञा वर्तते। यस्य स्वरस्य उच्चारणं तस्य उच्चारणस्थानस्य ऊर्ध्वभागम् अधोभागञ्च प्रयुज्य क्रियते, तस्य 'स्वरित:' इति संज्ञा भवति। यथा लोके सप्तस्वराणां प्रयोगः क्रियते तथैव वेदे त्रयाणां स्वराणां प्रयोगः विद्यते। यद्यपि पाणिनीयशिक्षायां त्रयः स्वराः प्रोक्ताः तथैव सङ्गीतरत्नाकरे सप्तस्वराः उक्ताः इति वैषम्यं दृश्यते तथापि क्वचित् सूक्ष्मं साम्यमपि वर्तते।

अस्मिन् शोधपत्रे पाणिनीयशिक्षायाः तथा सङ्गीतरत्नाकरग्रन्थस्य स्वरगताध्याये नादस्थानश्रुतिस्वरजातिकुलदैवतर्षिच्छन्दोरसप्रकरणस्थस्य स्वरोत्पत्तिप्रक्रियायाः वर्णनं करिष्यते। ततः स्वरोत्पत्तिप्रक्रियायाः विषये ग्रन्थद्वये अपि साम्यं वैषम्यञ्च वर्णयिष्यते। अनेन ज्ञास्यते यत् भिन्नप्रतिपाद्यविषययुक्तयोः शास्त्रयोः अपि स्वरप्रकियायां किञ्चित् साम्यं विद्यते इति। तथैव वैदिकगानस्य सङ्गीतस्य च स्वराणाम् उद्गमः समानः एव इति ज्ञास्यते। एवमेव शास्त्रद्वयमपि अन्ततः 'शब्दब्रह्मणि' 'नादब्रह्मणि' एव निहिताः। इत्थञ्च भिन्नत्वे अपि समानता कथं लक्षणीया इति विज्ञायते।

कूटशब्दाः – पाणिनीयशिक्षा, सङ्गीतरत्नाकरः, स्वराः

प्रौढमनोरमाग्रन्थस्य शब्दरत्नटीकायाः मतभेदयुक्तविशिष्टस्थलानां विमर्शः।

व्याकरणम्

प्रस्तोत्री – कु.सिमरन-रवीन्द्र-ठाकुर

कविकुलगुरुकालिदाससंस्कृतविश्वविद्यालयः, रामटेकम्

नागपुरम्, ४४११०६

महाराष्ट्रम

शोधसारः

इह तुलनात्मकशोधपद्धतिमादाय वैदिकलौकिकशब्दसङ्ग्राहकं यदिदं संस्कृतभाषायाः पाणिनीयव्याकरणं तन्नूनमेव सर्वशब्दनिधित्वं भजते। पाणिनिः सर्वेषां शब्दानाम् अनुशासनं सूत्रपद्धत्या चकार। वृद्धिरादैच् इत्येवमादीनि उपचतुस्सहस्रं सूत्राणि विरचय्य व्याकरणशास्त्रमिदं लौकिकान् वैदिकान् च सर्वान् शब्दान् सङ्कलय्य तत्साधुत्वं पुरस्करोति। अष्टाध्याय्याः व्याख्यानक्रमः द्विधा दृश्यते – प्रक्रियानुरोधी पठितसूत्रक्रमानुरोधी च। तत्र प्रक्रियाग्रन्थेषु वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी, लघुसिद्धान्तकौमुदी इत्यादयो ग्रन्थाः भवन्ति। सूत्रक्रमेण काशिकादयः ग्रन्था दृश्यन्ते। श्रीमद्भट्टोजीदीक्षितविरचितवैयाकरणसिद्धान्तकौमुदीग्रन्थस्यैव व्याख्यानं प्रौढमनोरमा, लघुशब्देन्दुशेखरश्च। प्रौढमनोरमायाः व्याख्यानं शब्दरत्नमिति। महतः शब्दौघस्य प्रौढव्याख्यानस्य शब्दरत्नस्य स्पष्टप्रतिपत्तये कृतानि व्याख्यानानि – भैरवी, भावप्रकाशः सरला इत्यादीनि। एतदायैव मनोरमायाः मूलपङ्क्तीनां व्याख्यानं सार्थतामेति। तत्र मनोरमाकारस्य शब्दरत्नकारस्य च मतभेदः इह क्वचिद् अंशे प्रस्तोष्यते।

तत्र संज्ञाप्रकरणस्य आदिरन्त्येन सहेता इति सूत्रमादाय चिन्तनम्। आदिरन्त्येन सहेता इत्यत्र स्वं रूपं शब्दस्याशब्दसंज्ञा इति सूत्रात् स्वमित्यनुवर्त्य अन्त्येनेता सहित आदिर्मध्यगानां स्वस्य च संज्ञा स्यादिति सूत्रार्थः फलति इति एवञ्च अनुबन्धानां संज्ञायाम् अन्तर्भावो न इति अनुनासिक इति अच्कार्याभावता शब्देन ज्ञायते इति उक्तं दीक्षितानुरोधेन। किन्तु शब्दरत्नकारः तावद् अन्यथा चिन्तयन् स्वमतम् उपस्थापयति। तन्मते हि स्वमिति फलितार्थकथमनेव। यदुक्तं संज्ञा तु अनुबन्धस्य न भवति इति तत्र शब्दरत्नकारः वक्ति यद् आद्यन्तयोः द्वयोरपि वर्णयोः (अनुबन्धस्यापि) भवति किन्तु अनुबन्धानामित्संज्ञायाः फलाभावात्तत्र कार्यं किमपि न क्रियते इत्यत्र मानं भवति अनुनासिक इति शब्दः। एवं कथने शब्दरत्नकारेण प्रमाणमपि दर्शितं तद् इह चिन्त्यते।

परिभाषाप्रकरणे इको गुणवृद्धी इत्यत्र अपि कश्चिद्मतभेदः दृश्यते। तद्यथा - इको गुणवृद्धी इति सूत्रे गुणवृद्धिशब्दाभ्यां यत्र गुणवृद्धी विधीयेते तत्र इकः इति षष्ठ्यन्तं पदमुपतिष्ठते इत्यर्थः वैयाकरणसिद्धान्तकौमुद्याम् उक्तः। तत्र प्रौढमनोरमाकारः अमुमर्थं योजनया नाम अनुवृत्तिरूपयत्नेन व्याचष्टे। किन्तु शब्दरत्नकृत् तावत् तन्मन्दबुद्धिसाधारणाय इदमुक्तम् इति अभिप्रैति।

एवम् अजन्तस्त्रीलिङ्गप्रकरणे सर्वनाम्नः स्याद्ध्रस्वश्च – अजन्तस्त्रीलिङ्गप्रकरणे सर्वस्यै इति रूपसिद्धिकरणसन्दर्भे आरब्धेऽस्मिन् सूत्रेऽपि मतभेदः दृश्यते। इह तावद् मतभेदप्रदर्शनं बहिरङ्गविषये संज्ञाविषयत्वं भवति न वा इति। इहैव केचन विषयाः ग्रन्थान्तरे यथा परिभाषेन्दुशेखरे विद्यमानाः अंशा अपि स्पृश्यन्ते।

इत्थमेव अन्येषु प्रकरणेषु अपि ईदृशाः अंशाः दरीदृश्यन्ते। तेषु केषाञ्चन अंशानाम् इह यथामति प्रस्तुतिः चिकीर्ष्यते।

कूटशब्दाः – व्याकरणम्, प्रौढमनोरमा, शब्दरत्नम्।

हंससन्देशाख्यदूतकाव्ये पाणिनीयमीमांसा

अनुसन्धात्री- अङ्कनाखाँड़ा

व्याकरणविभागः
राष्ट्रियसंस्कृतविश्वविद्यालयः, तिरुपतिः

शोधसारः

भारतीयसाहित्ये काव्यानां प्रमुखं स्थानमस्ति। महाकविकालिदासकृतं "मेघदूतम्" इति संदेशकाव्यमवलम्ब्य बहुभिः कविभिः अनेकानि सन्देशकाव्यानि रचितानि। तेषु अन्यतमं वर्तते हंससन्देशः इति काव्यम्। इदं हंससन्देशकाव्यं श्रीवैष्णवसम्प्रदाये विशिष्टं स्थानं बिभर्ति। हंसं दूतं कृत्वा रचितमिदं काव्यं शृङ्गाररसस्य सुन्दरमुदाहरणमस्ति। हंससन्देशः इति काव्ये कविना हंसः दूतत्वेन चितः। हंसः भारतीयसंस्कृतौ पवित्रता-सौन्दर्य-चातुर्याणां प्रतीकभूतः भवति। हंसस्य गमनं सरलं सुन्दरं च भवति। अतः कवयः तं दूतं कृत्वा संदेशं प्रेषयन्ति। हंसस्य मार्गमवलम्ब्य कविः पर्वतानां, नदीनां, नगराणां च मनोहरं वर्णनं काव्ये करोति। हंससन्देशे अपि शृङ्गारस्य उत्कृष्टं प्रदर्शनं दृष्टुं शक्यते। हंससन्देशः इति काव्यं न केवलं काव्यरचनायाः उत्कृष्टताम्, अपि तु संस्कृतभाषायाः माधुर्यमपि प्रदर्शयति। प्राकृतं वातावरणं भारतीयजीवनशैली च काव्येऽस्मिन् अतीव सुन्दररूपेण वर्णिते वर्तेते। हंससन्देशः इति नवसंस्कृतसाहित्ये एकम् अनुपमं काव्यम् अस्ति। एतत् काव्यं पाठकानां हृदयेषु प्रेम्णः करुणायाश्च सौन्दर्यं प्रकटयति। कवयः एतादृशं काव्यं स्मरणीयं रचयन्ति तेन चिरकालपर्यन्तम् ते काव्यसंसारे जीवन्तः स्मर्यन्ते जनैः । तत्र च काव्ये प्रसिद्धव्याकरणप्रयोगाणां कथं पाणिनीयदृष्ट्या साधुत्वं तत्तत्प्रयोगवैशिष्ट्यञ्च इति विषये अस्मिन् शोधपत्रे विस्तरेण निरूपणं करिष्यते। तेन नूतनशास्त्रीयविचाराणामुद्घाटनं प्राक्तनग्रन्थकाराणामाशयोऽपि सुस्पष्टतया प्रकटीभवति। श्रीमद्वेदान्तदेशिकविरचितहंससन्देशे पाणिनीयमीमांसायाः उदाहरणमेकम् इह लघुरूपेण प्रस्तूयते । तत्रैव च द्वितीयश्लोके एकत्र समासविचारोऽत्र प्रदर्श्यते -

काल्ये(कल्ये) सेनां कपिकुलपतेः तूर्णमुद्योजयिष्यन्

दूरीभावात् जनकदुहितुः दूयमानान्तरात्मा ।

क्रीडाखेलं कमलसरसि क्वापि कालोपयातं

राकाचन्द्रद्युतिसहचरं राजहंसं ददर्श ॥

हंससंदेशः टीकाग्रन्थे राजहंसस्य लक्षणं निगदितं यत्- "राजहंसास्तु ते चञ्चुचरणैर्लोहितैः सिताः" इति । अत्र चञ्चुचरणैः इत्यत्र बहुवचनम् अस्ति । अपि च चञ्चुः, चरणं प्राण्यङ्गमस्ति । तर्हि चञ्चुश्च चरणञ्च इति विग्रहे समाहारे, 'द्वन्द्वश्च प्राणितूर्यसेनाङ्गानाम्' इत्यनेन सूत्रेण एकवद्भावे चञ्चुचरणमिति स्यादिति , न तु चञ्चुचरणैः इति चेदुच्यते प्राण्यङ्गत्वेऽपि चञ्चुचरणैरिति बहुवचनं समाहारानित्यत्वात् इति । अर्थात् समाहारद्वन्द्वस्यानित्यत्वात्

चञ्चुचरणैरिति बहुवचनं भवति । पुनः समाहारद्वन्द्वः क्रियते चेदपि हंसाः बहवस्सन्ति, अतः तेषाम् अवयवबहुत्वं वर्तते इति कृत्वा बहुत्वविवक्षितत्वात् चञ्चुचरणैरिति बहुवचनं भवति । तदेवोक्तं टीकायां – "समाहारानन्तरमपि बहुहंसगतावयवबहुत्वविवक्षया वा" इति । एवमेव नैके अत्र श्लोकाः सन्ति यत्र कारकतद्धितादिविशिष्टाः नैके प्रयोगाः समुपलभ्यन्ते। तेषामेव मीमांसा विधास्यते।

PANINIAN RULES AND TRANSLATION AMBIGUITIE

Arathi Anil,

Research Scholar,

Amrita School of Spiritual and Cultural Studies

Dr. Midhun P.,

Asst. Prof.

Amrita School of Spiritual and Cultural Studies,

Amrita Vishwa Vidyapeetham,

:

Translating Sanskrit into English can be quite challenging owing to the complicated structure of Sanskrit language. The translator needs to be aware of the grammatical peculiarities, the prosodies and linguistic specialities of Sanskrit language.

Some words are so deeply connected with layers of meanings that they cannot be accurately translated as in *prāṇa, ātmā, dharma, prakṛti etc*. Readers must be aware of this fact so that they can refer to other sources to acquire the desired meaning such that there is no confusion in what the concept is.

Translation of verses can often end up in a fall in aesthetic beauty since only the meaning can be conveyed, not the style of the verse. Translators are also not always neutral which can end up in expressing their own perspectives of the particular concept in the translated text.

Morphologically, Sanskrit is a highly developed language with about 2000 roots and numerous prefixes and suffixes. It is further, a highly inflected language which implies that a single word can convey its number, gender and karaka in addition to its meaning. Along with that it is to be noted that Sanskrit has dual form in addition to singular and plural forms which cannot be translated due to the absence of dual forms in English.

In addition to all these peculiarities, different case endings can be employed to a single karaka owing to various *sutras*. More often, word-by-word translation results in loss of meaning and meaning-wise translation results in poor word-by-word translation.

This paper aims at analysing the problems that are faced during the translation of texts from Sanskrit to English, taking into consideration the various aspects like Aesthetics, Grammar, Linguistics and Philosophy. The findings highlight the continuing relevance of Pāṇini's grammatical system in modern translation studies and computational linguistics. The rule-based precision of the *Aṣṭādhyāyī* provides valuable insights for machine translation, natural language processing, semantic parsing, and the digital preservation of Sanskrit texts. At the same time, the research demonstrates that grammatical analysis alone cannot eliminate translation ambiguity without incorporating contextual, pragmatic, and cultural dimensions of meaning. By integrating

insights from Sanskrit grammar, linguistics, and translation studies, this study proposes a multidimensional framework for interpreting and translating Sanskrit compounds that balances grammatical accuracy with semantic and cultural fidelity. The research contributes to the growing interdisciplinary dialogue between classical Indian linguistic traditions and contemporary translation theory, reaffirming the enduring significance of Pāṇini's grammatical insights in addressing the complexities of cross-cultural textual interpretation.

KEY WORDS:

Translation – Sanskrit – Awareness – Linguistics – Grammar – Aesthetics – Prosody – Meaning

"मिथिलाया व्याकरणज्ञानपरम्परा"

प्रो वैद्यनाथ मिश्र: संस्कृतविभागाध्यक्षचर:

जयप्रकाशविश्वविद्यालय: छपरा।

शोध-पत्रसारांश:

आदिकालत एव मिथिला वेदज्ञानविज्ञानाध्यात्मादितत्त्वानां केन्द्रभूता साधनाभूमि:वर्तते। याज्ञवल्क्यादयो यत्र वेदानां मन्त्रद्रष्टार ऋषय:सन्ति यस्य गार्गीमैत्रेयीपत्न्यौ च उपनिषद्रहस्यानां मर्मज्ञे स्त:,न्याय-वैशेषिक-ममीमांसादिदर्शनानां प्रवर्तका: गौतम-कणाद-जैमिनिप्रभृतयो मुनयो निवसन्ति तत्रैव नव्यन्यायस्य प्रतिष्ठापका गङ्गेशोपाध्याया उदयनाचार्या वाचस्पतिमिश्रादयश्त शतश: आचार्या एकस्वासेन गण्या: सन्ति। एवमेव साहित्ये कालिदास -जयदेवादीनां महती शृङ्खला दरीदृश्यते। पुराणकालखण्डे अपि पदे पदे मिथिलाया ज्ञानपरम्पराया: समुज्ज्वलनिदर्शनं प्राप्यते ।संयोगत:त्रेतायुगत: वर्तमानकालपर्यन्तं मिथिलाया: भूपतयोऽपि ज्ञानिनोऽध्यात्मविदो भवन्ति। विदेहजनकादारभ्य हरिसिंहदेवमहेशठक्कुर कामेश्वरसिंहपर्यन्तं परम्परा पुराणेतिहाससिद्धा वर्तते।

तन्त्र मन्त्रधर्मशास्त्रकामशास्त्रकर्मकाण्डज्योतिषायुर्वेदादीनामपि परम्परा विश्वविश्रुता वर्तते। एतासु विविधासु ज्ञानपरम्परासु सत्स्वपि केचन वदन्ति यत् मिथिलायां व्याकरणस्यापि कापि स्वकीया परम्परा विद्यते?आम् !निश्चितरूपेण व्याकरणशास्त्रपरम्परा महनीया गण्यते। पाणिनीयशास्त्रस्य सर्वमान्यत्वात् यद्यपि अष्टाध्यायीटीकाभाष्यादिपरम्परा अधिकाधिकरूपेण पल्लविता पुष्पिता च तथापि आचार्यपद्मनाभदत्तमहोदय: सुपद्मव्याकरणस्य रचनां कृत्वा व्याकरणस्य एकं नवं सम्प्रदायं प्रतिष्ठापितवान्। प्राय: चतुर्दश-पञ्चदशशतकयोर्मध्ये मिथिलाया भौरग्रामवास्तव्य: पाणिनीयतन्त्रमनुसृत्य लोकेषु सरलतया सुगमतया शब्दशास्त्रस्य रहस्यं प्रसारयितुं नवां शैलीमाविष्कृतवान्।एतस्य व्याकरणस्य प्रचार:मिथिला-वङ्गादिप्रदेशेषु समभवत् ।एवमेव अन्यवैयाकरणेषु पण्डितदीनबन्धुझाप्रभृतयो विद्वांस: कौमुदीमूलार्थविद्योतिनीप्रभृतीन् ग्रन्थान रचयित्वा व्याकरणस्य मैथिलपरम्पराम् अग्रेसारिवन्त: .

प्रस्तुतशोधपत्रं मिथिलाया व्याकरणशास्त्रस्य विभिन्नपरम्पराणां विश्लेषणं करिष्यति।

शुक्लयजुर्वेद-प्रातिशाख्ये संज्ञा-परिभाषासूत्राणां विमर्शः

Sagar Bera

Assistant Professor

(Kaliachak Bikram Kishore Adarsha Sanskrit Mahavidyalaya, West Bengal)

वेदः विश्वसाहित्यस्य प्राचीनतमः ग्रन्थः अस्ति। अस्माकं संस्कृतेः तथा च इतिहासस्य परिचयः वेदे एव उपनिवद्धः अस्ति। प्राचीनकाले विशेषतः ब्राह्मणकाले आर्याः गुरुमुखात् वैदिकमन्त्राणाम् अध्ययनं कृत्वा तेषां स्मरणं कुर्वन्तः आसन्। श्रवणेन एतेषां वैदिकमन्त्राणां स्मरणात् वेदस्य अपरं नाम श्रुतिः इति उच्यते। लोकभाषायाः विकासानन्तरं संहितात्मकवैदिकमन्त्राणां भाषया सह आर्याः अपरिचिताः अभवन्। अस्यां स्थितौ वैदिकमन्त्राणां शुद्धरूपेण उच्चारणं प्रायेण दुष्करम् अभवत्। तत्र वर्ण-स्वर-मात्रा-सन्धि-छन्दः-इत्यादीनां नियमविशेषाणाम् अभावोऽपि भाषायाः अज्ञाने एकं कारणमासीत्। एतेषां वैदिकमन्त्राणां शुद्धरूपेण उच्चारणार्थं वेदस्य शाखाभेदे प्रत्येकं शाखायां पृथक् पृथक् प्रातिशाख्यग्रन्थस्य प्रचलनम् अभवत्। प्रातिशाख्यशब्दः प्रतिशाखं भव इत्यत्र ञ्यप्रत्यये निष्पद्यते। प्रातिशाख्यादिग्रन्थेषु उदात्तादिस्वराणाम्, सन्धिविषयाणाम्, वर्णानामुत्पत्तिः, पदपाठ-संहितापाठानां वर्णना अस्ति।

शुक्लयजुर्वेदस्य एका संहिता वाजसनेयिसंहिता। अस्याः संहितायाः सम्बन्धितं प्रातिशाख्यं वाजसनेयिप्रातिशाख्यम्। आचार्य-शौनकस्य शिष्येण कात्यायनेन विरचितमिदं प्रातिशाख्यम्। अत्र प्रातिशाख्ये सूत्राणां संख्याविषये संस्करणदृष्ट्या भेदः प्रतीयते। यथा- आचार्यजीवानन्दस्य संस्करणे 727, वेङ्कटरामशर्मणः संस्करणे 740 तथा च वीरेन्द्र-कुमार-वर्ममहोदयस्य संस्करणे 734 सूत्राणि प्राप्यन्ते। अत्र प्रातिशाख्ये अष्टौ अध्यायाः वर्तन्ते। अत्र प्रथमाध्याये वर्णोत्पत्ति-संज्ञा-परिभाषादीनां विषयाणां वर्णनमस्ति। **अत्र शोधप्रबन्धे पाणिनीयव्याकरणस्यालोके संज्ञा-परिभाषासूत्राणां विश्लेषणं करिष्यते। अत्र केवलं प्रथमाध्याये एव परिभाषासूत्राणां व्याख्यानमस्ति एवं न, तृतीयाध्याये तथा च चतुर्थाध्यायेऽपि वर्तते। यद्यपि अत्र संज्ञा-परिभाषाणां विमर्शः मुख्यतया करिष्यते तथापि वर्णोत्पत्तिप्रक्रिया अत्र प्रातिशाख्यानुसारेण वर्णयिष्यते। एकस्याः संज्ञायाः उदाहरणं यथा - पाणिनीयव्याकरणे उपधासंज्ञायाः सूत्रमस्ति *अलोऽन्त्यात् पूर्व उपधा (अष्टाध्यायी 1.1.65)* इति, वाजसनेयि-प्रातिशाख्ये अन्त्याद्वर्णात्पूर्व उपधा (वा. प्रा. 1.35) इति। अनेन ज्ञायते उपधासंज्ञा पाणिनेः पूर्ववर्तिसमये अपि आसीत्। यतः हि प्रातिशाख्यग्रन्थाः पाणिनेः पूर्ववर्तिसमये विरचिताः। वाजसनेयि-प्रातिशाख्यस्य *कारेण च* (वा. प्रा. 37) इति परिभाषा-सूत्रेण कारप्रत्ययेन वर्णानां निर्देशः भवति, पाणिनीयव्याकरणस्य *रोगाख्यायां ण्वुल् बहुलम् (अष्टाध्यायी. 3.3.108)* इति सूत्रे *वर्णात्कारः* इति वार्तिकस्य उल्लेखः दृश्यते अनेन वार्तिकेन कारप्रत्ययेन वर्णानां निर्देशः भवति।**

वा. प्रा. = वाजसनेयिप्रातिशाख्यम्

समर्थः पदविधिः – तुलनात्मकमध्ययनम् (न्यासपदमञ्जरीसहितकाशिका-सिद्धान्तकौमुदी-शब्दकौस्तुभम्)

Goutham Gangadhar Kamath

Sree Sankaracharya University of Sanskrit Kalady

संशोधनसारः

पाणिनीयव्याकरणपरम्परायां "समर्थः पदविधिः" इति सूत्रस्य विशिष्टं स्थानमस्ति । इदं च द्वितीयाध्यायस्य प्रथमाध्यायस्य प्रथमं सूत्रम् । संज्ञा च परिभाषा च... इति कारिकया अस्माभिः ज्ञायते एव यत् सूत्रं षड्वधमिति । एवं षड्विधसूत्रप्रकारेषु इदं सूत्रं परिभाषा सूत्रं भवति । अनियमे नियमकारिणी परिभाषा इत्युच्यते । पदयोः परस्परसम्बन्धः, तयोः अर्थसम्बन्धः, तथा तदाधारितायाः व्याकरणप्रक्रियायाः प्रवृत्तिः इत्यादीनां विवेचने अस्य सूत्रस्य विशेषं प्राधान्यम् अस्ति । विशेषतः समासप्रकरणे सामर्थ्यस्य स्वरूपं तस्य च प्रयोजनं सूक्ष्मतया अवगन्तुं सूत्रमिदम् अत्यन्तमुपकारकम् । अतः पदयोः परस्परसम्बन्धस्य आधारेण पदविधेः प्रवृत्तिः कथं भवति इति सूत्रस्यास्य प्रतिपाद्यः विषयः । प्रस्तुतशोधपत्रे "समर्थः पदविधिः" इति सूत्रस्य न्यासपदमञ्जरीसहितकाशिकायां, शब्दकौस्तुभे तथा सिद्धान्तकौमुद्यां प्रतिपादितस्य स्वरूपस्य तुलनात्मकमध्ययनं क्रियते । सामर्थ्यस्य स्वरूपम्, तस्य प्रकाराः, पदविधौ तस्य प्रयोजनं, समासप्रकरणे तस्य भूमिका च अस्य अध्ययनस्य प्रमुखाः विषयाः सन्ति ।अस्मिन् शोधपत्रे तुलनात्मकपाठविश्लेषणपद्धतिः स्वीक्रियते । प्रथमं पाणिनीयसूत्रस्य मूलार्थः परीक्ष्यते । ततः न्यासपदमञ्जरीसहितकाशिकायां, शब्दकौस्तुभे तथा सिद्धान्तकौमुद्यां सूत्रस्य व्याख्यानं, सामर्थ्यस्य निरूपणं, उदाहरणानि च सङ्गृह्य विश्लेष्यन्ते । ग्रन्थत्रये प्रतिपादितानां मतानां परस्परं तुलना क्रियते तथा साम्यभेदौ निरूप्येते ।

अस्य अध्ययनेन ज्ञायते यत् समर्थशब्दस्य व्याख्याने केवलः सामान्यः सम्बन्धः न स्वीक्रियते, अपि तु सूत्रस्य प्रवृत्त्यर्थं विशिष्टः अर्थसम्बन्धः अपेक्ष्यते । न्यासपदमञ्जरीसहितकाशिकायां सूत्रस्य विस्तृतं व्याख्यानं दृश्यते । शब्दकौस्तुभे सामर्थ्यस्य सूक्ष्मतरः विचारः तथा तदाश्रितानां व्याकरणप्रवृत्तीनां विश्लेषणं प्राप्यते । सिद्धान्तकौमुद्यां तु सूत्रस्य प्रक्रियाप्रधानं निरूपणं दृश्यते । एतेषां ग्रन्थानां तुलनया सामर्थ्यस्य स्वरूपे, तस्य प्रयोजने तथा पदविधिप्रवृत्तौ तस्य भूमिकायां सूक्ष्माः भेदाः प्रकाशन्ते । न्यासपदमञ्जरीसहितकाशिका, शब्दकौस्तुभ तथा सिद्धान्तकौमुदी इत्येतेषां ग्रन्थानां तुलनात्मकाध्ययनेन सामर्थ्यतत्त्वस्य विविधाः व्याख्यानदृष्टयः, तेषां परस्परसाम्यं तथा वैलक्षण्यं च स्पष्टतया अवगन्तुं शक्यते । अनेन अध्ययनप्रयासेन पाणिनीयव्याकरणस्य व्याख्यानपरम्परायां समर्थः पदविधिः इति परिभाषा सूत्रस्य स्थानं तथा तस्य शास्त्रीयमहत्त्वं प्रकाश्यते ।

Keywords

समर्थः पदविधिः, सामर्थ्यं, न्यासपदमञ्जरी; काशिकावृत्तिः; शब्दकौस्तुभः; सिद्धान्तकौमुदी

PANINIAN RULES AND TRANSLATION AMBIGUITIES

Arathi Anil

Translating Sanskrit into English can be quite challenging owing to the complicated structure of Sanskrit language. The translator needs to be aware of the grammatical peculiarities, the prosodies and linguistic specialities of Sanskrit language.

Some words are so deeply connected with layers of meanings that they cannot be accurately translated as in *prāṇa, ātmā, dharma, prakṛti etc*. Readers must be aware of this fact so that they can refer to other sources to acquire the desired meaning such that there is no confusion in what the concept is.

Translation of verses can often end up in a fall in aesthetic beauty since only the meaning can be conveyed, not the style of the verse. Translators are also not always neutral which can end up in expressing their own perspectives of the particular concept in the translated text.

Morphologically, Sanskrit is a highly developed language with about 2000 roots and numerous prefixes and suffixes. It is further, a highly inflected language which implies that a single word can convey its number, gender and karaka in addition to its meaning. Along with that it is to be noted that Sanskrit has dual form in addition to singular and plural forms which cannot be translated due to the absence of dual forms in English.

In addition to all these peculiarities, different case endings can be employed to a single karaka owing to various *sutras*. More often, word-by-word translation results in loss of meaning and meaning-wise translation results in poor word-by-word translation.

This paper aims at analysing the problems that are faced during the translation of texts from Sanskrit to English, taking into consideration the various aspects like Aesthetics, Grammar, Linguistics and Philosophy. The findings highlight the continuing relevance of Pāṇini's grammatical system in modern translation studies and computational linguistics. The rule-based precision of the *Aṣṭādhyāyī* provides valuable insights for machine translation, natural language processing, semantic parsing, and the digital preservation of Sanskrit texts. At the same time, the research demonstrates that grammatical analysis alone cannot eliminate translation ambiguity without incorporating contextual, pragmatic, and cultural dimensions of meaning. By integrating insights from Sanskrit grammar, linguistics, and translation studies, this study proposes a multidimensional framework for interpreting and translating Sanskrit compounds that balances grammatical accuracy with semantic and cultural fidelity. The research contributes to the growing interdisciplinary dialogue between classical Indian linguistic traditions and contemporary translation theory, reaffirming the enduring significance of Pāṇini's grammatical insights in addressing the complexities of cross-cultural textual interpretation.

KEY WORDS:

Translation – Sanskrit – Awareness – Linguistics – Grammar – Aesthetics – Prosody – Meaning.

पाणिनीयतद्धितप्रत्ययेषु परिमाणवाचिनां शब्दानां स्वरूपम् ॥

Dr VINODKUMAR KATTUMUNDA

पाणिनीयव्याकरणे तद्धितप्रत्ययानां महत्त्वपूर्णं स्थानमस्ति। अष्टाध्याय्यां 'तद्धिताः' इत्यधिकारसूत्रादारभ्य विविधेषु अर्थेषु तद्धितप्रत्ययानां प्रयोगं दृश्यते। तद्धितप्रत्ययैः केवलं नूतनशब्दानां निष्पत्तिः न भवति, अपि तु

तत्कालीनस्य लोकव्यवहारस्य,स्थलभेदानां, सामाजिकजीवनस्य, वाणिज्यव्यवहारस्य, कृषिकार्यस्य,गोत्रव्यवस्थायाः च स्वरूपमपि ज्ञातुं शक्यते। तेषु परिमाणवाचिशब्दानां विशेषं स्थानमस्ति।

परिमाणं नाम परिमितव्यवहारस्य साधारणं कारणम् इति सिद्धान्तमुक्तावलीकारेण प्रतिपादितम्। पाणिनीयतद्धिताधिकारे परिमाणार्थकाः बहवः शब्दाःप्रयुक्ताः सन्ति, तथा तेषां निष्पत्तिनिमित्तानि सूत्राणि च सन्ति। निष्कः, आढकः, आचितः, पात्रम्, खारी, शतिकः, पणम्, पादः, माषः, बिस्तः, शाणः, कंसः, शूर्पम्, कार्षापणम्, अर्धनावः इत्यादयः परिमाणवाचिशब्दाःसूत्रादिषु दृष्टुं शाक्यते। एतेषां शब्दानां प्रयोगः धान्यस्य, द्रवपदार्थानां, धातुमुद्राणां तथा अन्येषां वस्तूनां परिमाणनिर्णयार्थे उयुक्ताः सन्ति ।परिमाणवाचाकशब्दानां प्रयोगार्थं अनेकानि सूत्राणि तद्धितप्रकरणे दृश्यन्ते।

अतः पाणिनीयतद्धितप्रत्ययेषु परिमाणवाचिशब्दानामध्ययनं केवलं व्याकरणपरं न भवति। तेषां सूक्ष्माध्ययनेन पाणिनीयकाले प्रचलितानां मापनपद्धतीनां, नाणकव्यवहारस्य, कृषेः, वाणिज्यस्य, लोकव्यवहारस्य च स्वरूपं ज्ञातुं शक्यते। एते शब्दाः पाणिनीयकाले संस्कृतभाषायाः व्यवहारिकप्रयोगं प्रकाशयन्ति। अत एव परिमाणवाचिशब्दानां तद्धितप्रत्ययाधारितमध्ययनं व्याकरणशास्त्रस्य सामाजिक-सांस्कृतिकमहत्त्वमपि प्रकाशयति।

An Introduction to the Grammarians Born on the Banks of the Nila River

Nikhila

Sanskrit learning and scholarly traditions in Kerala possess a rich, inclusive history that has fundamentally shaped the region's cultural, intellectual, and linguistic heritage dating back to ancient times. Among the state's diverse geographical regions, the fertile banks of the Nila River (Bharatapuzha) emerged as a supreme cultural and intellectual hub, continuously nurturing generations of renowned astronomers, poets, philosophers, and Sanskrit grammarians (Vaiyakaranas). This research monograph systematically explores, contextualizes, and documents the foundational linguistic contributions of seven pivotal Sanskrit grammarians born along the Nila River, offering a thorough mapping of their enduring intellectual legacy.

The study traces the historical trajectory and structural evolution of Sanskrit grammar (Vyakarana) in Kerala by critically evaluating the primary treatises and scholarly contributions of these key figures: Trikkandiyur Achyuta Pisharodi (Pravesaka), Melpathur Narayana Bhattathiri (Prakriya Sarvaswam, Dhatukavyam, and Apaniniya Pramanya Sadhanam), Narayana Pandita (Manameyodayam), Narayana Sudhi (Sabdabhushana), Rama Panivada (Prakritavritti), Trikkandiyur Govinda Pisharodi, and Vellanastheri Vasunni Moosad. Through comparative analysis and rigorous textual examination, this monograph illustrates how these scholars developed accessible pedagogical methods to simplify intricate Paninian rules for students, robustly defended legitimate non-Paninian usages, and expanded linguistic discourse to accommodate dynamic literary contexts.

By seamlessly bridging classic Paninian orthodoxy with regional instructional needs and linguistic realities, these seven scholars elevated the Nila River region into an authoritative, enduring pillar of Indian grammatical scholarship. Ultimately, this research offers a cohesive historical narrative that underscores the Nila tradition's transformative impact on Sanskrit linguistic preservation, pedagogical innovation, and South Asian intellectual heritage.

Keywords: *Sanskrit Grammar, Vyakarana, Nila River, Bharatapuzha, Melpathur Narayana Bhattathiri, Trikkandiyur Achyuta Pisharodi, Prakriya Sarvaswam, Pravesaka, Kerala Sanskrit Scholarship.*

लघुपाणिनीयम् — पाणिनीयव्याकरणाध्यापने राजराजवर्मणः नवाचारः

डॉ. कार्तिकभाग्वत्

व्याकरणसहायकप्राध्यापकः

पूर्णप्रज्ञसंशोधनमन्दिरम्, बेङ्गलूरु

पाणिनीयं व्याकरणतन्त्रं भारतीयशास्त्रपरम्परायां स्वीयेन गाम्भीर्येण, सूक्ष्मतया, वैज्ञानिकेन च विन्यासेन विशिष्टमास्पदमधितिष्ठति। तथापि सूत्राणां लाघवम्, सङ्केतानां परस्परापेक्षिता, अधिकारानुवृत्तिः, परिभाषाणां विनियोगश्च नवाध्येतृणाम् आपाततः दर्शने तदध्ययनस्य

दुरवगाहतामादधाति। एतादृशे सन्दर्भे ए. आर्. राजराजवर्मणा प्रणीतं *लघुपाणिनीयम्* पाणिनीयव्याकरणाध्ययनपरम्परायां विशिष्टमवस्थानमर्हति।

राजराजवर्मा पाणिनीयव्याख्यानपरम्परायां प्रचलितानां कतिपयानां कृत्रिमव्याख्याप्रकाराणां तीक्ष्णया दृष्ट्या समीक्षां विधाय योगविभागः, सूत्रावृत्तिः, अनावश्यकन्यायकल्पना, श्लेषादिभिरदृष्टवर्णकल्पना च बालाध्येतॄणां बोधसौकर्याय नोपयुज्यन्त विज्ञाय नवीनां रचनाशैलीं विन्यसति। बालशिक्षणार्थं रचिते ग्रन्थे व्याख्यानप्रौढेः प्रदर्शनमनपेक्ष्य सूत्रार्थस्य सरलतया यथाश्रुतं प्रतिपादनमेव श्रेयस्करमिति स मन्यते।

पाणिनीयतन्त्रस्य दुरवगमत्वं सूत्राणां क्लिष्टतायामेव न, अपि तु तेषां परस्परापेक्षायां सङ्केतबहुलतायां च निहितमिति राजराजवर्मा अभिप्रैति। काशिकावृत्त्यादिषु सूत्रक्रमानुगामी पद्धतिः, रूपावतार-कौमुदीप्रभृतिषु रूपसिद्धिक्रमप्रधानता च दृश्यते। उभयत्रापि विद्यार्थिनां स्वस्वरूपेण कतिपयाः क्लेशाः सम्भवन्ति। अतः लघुपाणिनीये राजराजवर्मणा उभयोः पद्धत्योः गुणान् समन्वित्य संमिश्रो मार्गः स्वीकृतः। सूत्रक्रमस्य, रूपसिद्धिक्रमस्य, विषयबोधस्य च समन्वयः अस्य पद्धतेः प्रमुखं वैशिष्ट्यम्। एवं लघुपाणिनीयम् केवलं पाणिनीयव्याकरणस्य संक्षिप्तरूपं न, अपि तु पाणिनीयपरम्परासंरक्षणे विद्यार्थिनां बोधसौकर्याय च कृतः विचारपूर्वकः अभिनवः व्याकरणाध्यापनप्रयासः इति प्रतिपादयितुं शक्यते। तस्यैव पद्धतिगतविशेषस्य समीक्षात्मकं निरूपणमस्य लेखस्य मुख्यम् उद्देश्यम् इति शम्।

मुख्यशब्दाः - लघुपाणिनीयम्, ए. आर्. राजराजवर्मा, पाणिनीयव्याकरणम्, अष्टाध्यायी, व्याकरणपरम्परा, व्याकरणशिक्षणम्, आधुनिकव्याकरणचिन्तनम्, संस्कृतव्याकरणम्।

A Linguistic Study of Deśī Words in the Vasudevahiṃḍī (Prathama Khaṇḍa)

Dr. Reshma Kamble,

The Vasudevahiṃḍī – Prathama Khaṇḍa, composed by Saṅghadāsa Gaṇī, is one of the earliest and most important Jain narrative texts in Prakrit literature. Although this work is primarily recognized for its narrative structure and biographical account of Vasudeva, it also preserves valuable evidence regarding the linguistic, cultural, and social life of early Indian society. Among its notable features is the extensive use of indigenous words, which represent the living local vocabulary employed by common people and regional speech communities.

The present paper conducts a linguistic study of selected indigenous lexical terms occurring in the first section of the Vasudevahiṃḍī. The study aims to identify their phonological, morphological, and semantic features and examine their continuity in modern Indian languages, particularly Marathi, Gujarati, Hindi, and other Western Indo-Aryan languages. By comparing Prakrit forms with their modern counterparts, the paper attempts to trace patterns of sound change, simplification of consonant clusters, vowel modification, and semantic change from the Middle Indo-Aryan stage to the New Indo-Aryan stage.

The methodology of the study is based on textual analysis of Vasudevahiṃḍī, consultation with Prakrit dictionaries and local vocabulary, and the application of historical-comparative linguistic principles. Preliminary observations indicate that many local words occurring in the text survive in modern regional languages, either in identical forms or with slightly modified phonetic forms.

This study highlights Vasudevahiṃḍī is not only as an important Jain narrative text, but also as a crucial source for understanding the historical development of Indo-Aryan local vocabulary and the enduring linguistic continuity between Prakrit and modern Indian languages.

व्याकरणमहाभाष्योक्तकृषिविचाराणां प्रासङ्गिकता

आचार्यः शिवरामभट्टः

प्रस्तावना -

पतञ्जलिमहाभाष्ये व्याकरणशास्त्रस्य मुख्योद्देश्यं शब्दानुशासनमेव स्यात्, तथापि तत्र प्रयुक्तानि लौकिकव्यवहारमूलकानि उदाहरणानि तत्कालीनभारतीयसमाजस्य विविधपक्षान् प्रकाशयन्ति। तत्र कृषिः तत्कालीनजीवनस्य प्रमुखाधारत्वात् महाभाष्ये कृषिसम्बद्धाः बहवो व्यवहाराः उदाहरणरूपेणोपन्यस्ताः। एतेषु उदाहरणेषु क्षेत्रपरिमाणम्, धान्योत्पादनम्, कर्षणपद्धतिः, कृष्युपकरणानि, जलव्यवस्था, बीजवैविध्यम्, पशुपालनम्, धान्यसंरक्षणम्, कृषकाणां परस्परसहकारः, धान्यव्यवहारः इत्यादयः विषयाः प्रत्यक्षतया परोक्षतया वा प्रकाशन्ते। अतः व्याकरणमहाभाष्यं केवलं भाषाशास्त्रीयग्रन्थः न, अपि तु प्राचीनभारतीयजीवनस्य सामाजिकार्थिक-सांस्कृतिकस्थितीनामपि महत्त्वपूर्णं प्रमाणम् इति वक्तुं शक्यते।

कृषौ परिमाणचर्चा तत्प्रासङ्गिकता च -

विशेषतः **"वर्णो वर्णेन" (२।१।६८)** इति सूत्रस्य भाष्ये "एकेन कुद्दालपदेन खारीसहस्रम्" इत्युदाहरणं कृषिव्यवस्थायाः परिमाणबोधकं महत्त्वपूर्णं प्रमाणम् अस्ति। अत्र अल्पेन साधनेन महतीं कार्यसिद्धिमपेक्षमाणस्य मानवीयस्वभावस्य विवेचनप्रसङ्गे कुद्दालपदेन खारी इति धान्यपरिमाणविशेषः प्रायुङ्क्त । अस्य उदाहरणस्य सूक्ष्मपरिशीलनेन ज्ञायते यत् तत्कालीनकृषिसमाजे भूमेः परिमाणं तस्मिन् उत्पाद्यमानस्य धान्यस्य परिमाणं च परस्परसम्बद्धतया चिन्त्यते स्म। अतः महाभाष्यगतं कृषिपरिमाणविषयकम् उदाहरणं प्राचीनभारतीयकृषिविज्ञानस्य परिमाणात्मकदृष्टेः परिचायकमस्ति।

तत्र **पलम्, कुडवः, प्रस्थः, आढकम्, द्रोणः, सूर्पः, खारी, गोणी, भारः, वाहः** इत्यादीनां परिमाणशब्दानां प्रयोगः तत्कालीनसमाजे सुव्यवस्थितः परिमाणव्यवहारः प्रचलित आसीदिति सूचयति। धान्यपरिमाणस्य एषा क्रमबद्धव्यवस्था केवलं व्यापारिकव्यवहारस्य द्योतिका न, अपि तु कृष्युत्पादनस्य मूल्याङ्कनाय सञ्चयाय विनिमयाय वितरणाय च आधारभूता आसीत्। अतः अद्यतनकृषिक्षेत्रे उत्पादनमापनम्, अन्नसञ्चयः, कृष्युत्पादानां मूल्यनिर्धारणम् इत्यादिषु विषयेषु प्राचीनपरिमाणव्यवस्थायाः तुलनात्मकमध्ययनं विशेषमहत्त्वं वहति।

महाभाष्ये **"शाल्यर्थं कुल्याः प्रणीयन्ते"** इति प्रयोगः प्राचीनभारतीयकृषौ जलसिञ्चनव्यवस्थायाः महत्त्वं प्रकाशयति। कुल्या कृत्रिमजलप्रवाहविशेषः। शालीनामुत्पादनार्थं कुल्यानां निर्माणं क्रियते स्म इत्यनेन वर्षाजलमात्रावलम्बिता कृषिः नासीत्, अपि तु आवश्यकतानुसारं कृत्रिमजलव्यवस्थापनमपि प्रचलितमासीत् इति ज्ञायते। अद्यतनकाले जलसंकटं भूमिक्षयः अनियमितवृष्टिः च कृषेः समक्षं महतीं समस्यां जनयन्ति। तस्मिन् सन्दर्भे प्राचीनकुल्याव्यवस्थायाः अध्ययनं जलसंरक्षणस्य लघुसिञ्चनपद्धतीनां स्थानीयजलसंसाधनानां च पुनर्विचारे उपयोगि भवितुमर्हति।

पूर्वमीमांसादर्शने भाट्ट-प्रभाकरयोर्नियोग-भावनाविचारयोर्वैलक्षण्यम्

पृथ्विराजभट्टः

अस्यां शोधपत्रिकायां पूर्वमीमांसाशास्त्रस्य प्रसिद्धयोः भाट्ट-प्रभाकरसम्प्रदाययोः मध्ये वेदवाक्येषु लिङादिविधिप्रत्ययश्रवणेन पुरुषस्य प्रवृत्तौ यो महान् विचारभेदः अस्ति, तस्य विशदं तौल्यात्मकं समीक्षणं क्रियते। विधिवाक्यानि (यथा— «यजेत स्वर्गकामः») केन प्रकारेण पुरुषं यागादौ कर्मणि प्रवर्तयन्ति इति मुख्यः अनुसन्धानीयः प्रश्नः अस्ति।

श्रीमद्भट्टपाद-कुमारिलभट्टानां मते आख्याताभिधेया 'शाब्दी भावना' एव पुरुषस्य आन्तरीं प्रवृत्तिम् (अर्थीं भावनाम्) जनयित्वा तं कर्मणि प्रयोजयति। एतद्विपरीतं गुरु-प्रभाकरमिश्राणां मते भावनायाः मुख्यप्रवर्तकत्वं निरस्य 'नियोगः' (कार्यम्) एव विधिप्रत्ययवाच्यः अङ्गीक्रियते। प्रभाकरमते लिङादिप्रत्ययः साक्षात् अपूर्वरूपं नियोगं प्रतिपादयति, यश्च नियोगः स्वस्य साध्यत्वेन भासमानः अधिकारीणं पुरुषं (नियोग्यम्) कर्तव्यताज्ञानेन अधिकरोति।

एष सिद्धान्तभेदः केवलं शब्दबोधस्य प्रक्रियायां न विश्राम्यति, अपि तु वैदिककर्मणाम् अनुष्ठानक्रमे, स्वर्गादिफलस्य प्राधान्ये, अपूर्वोत्पत्तौ तथा वेदप्रामाण्यस्थापने च साक्षात् गम्भीरं प्रभावं जनयति।

Keywords: पूर्वमीमांसा, शाब्दी भावना, अर्थी भावना, नियोगः, कार्यम्, अपूर्वम्, भाट्टमतम्, प्रभाकरमतम्, वेदप्रामाण्यम्।

Māyā and the Digital World: An Advaitic Framework for Understanding Digital Illusion

Gururaja G

The growing dominance of Social media platforms and algorithmic content feeds pose a significant challenge to human cognition, particularly in the educational environment. This paper terms this challenge as digital illusion. It is the tendency to mistake a curated online profile for one's real identity, to treat likes and follower counts as measures of self-worth, and to accept the algorithmically selected feed as an accurate picture of the world. Uses and Gratifications Theory (Katz et al., 1973) identifies five genuine needs that draw people to media: cognitive, affective, personal identity, social integration, and tension release. This paper argues that digital platforms largely create only the appearance of fulfilling these needs rather than meeting them. The Stress-Induced Digital Escapism framework (Yang et al., 2026) further shows how stress drives compulsive engagement and deepens the illusion. Common measures such as screen-time limits and platform bans, address outward behaviour but leave its cognitive root untouched.

Advaita Vedānta, through its concepts of māyā, adhyāsa, adhiṣṭhāna, and viveka, offers a precise account of how illusion arises and how it is resolved. This paper argues that this framework can be applied to understand how digital illusion arises and how it may be resolved. The five genuine needs function as the adhiṣṭhāna (the rope), while the platform's promise of fulfilling them is the adhyāsa (the snake superimposed upon it). As Vivekacūḍāmaṇi 112 states, sarpabhramo rajjuvivekato yathā: the snake-illusion is removed not by discarding the rope but by discerning it correctly. The paper reads five classical texts closely. The Vivekacūḍāmaṇi explains how the self comes to be identified with its reflection, a mechanism this paper applies to the way individuals identify with their digital image. The Brahmasūtra Bhāṣya and the Bṛhadāraṇyaka Upaniṣad (sa hi kartā) describe the dream as a world the dreamer creates, a model this paper extends to the curated feed, a dream-like world that users partly construct through their own engagement. Two further texts deepen this analysis. The Vidura Nīti traces the habitual pull of the mind toward unreal objects, a pattern clearly seen in the compulsive use of digital media, while the Śrīmad Bhāgavatam offers the image of the awakened dreamer, for whom the dream no longer causes delusion. Drawing once more on the Vidura Nīti, the paper presents the digital jīvanmukta as its educational ideal, and turns to the Yoga Vāsiṣṭham to show how such freedom is attained as craving loosens its hold. The paper proposes viveka-based discernment as an educational response to digital illusion.

Keywords: *māyā, adhyāsa, adhiṣṭhāna, viveka, bhrama, digital illusion, Vivekacūḍāmaṇi, Brahmasūtra Bhāṣya, Bṛhadāraṇyaka Upaniṣad, Yoga Vāsiṣṭham, ViduraNītī, Śrīmad Bhāgavatam, Uses and Gratifications Theory, SIDE framework, Advaita Vedānta*

विठ्ठलबुधकरप्रणीत वेदान्तसिद्धान्तनिश्रेण्यनुसारं ईशावास्योपनिषत्तात्पर्यम्

Anil chandran k

- वेदान्तसिद्धान्तनिःश्रेणीति ग्रन्थः श्री विठ्ठलबुधकरेणप्रणीत विंशत्यधिकग्रन्थेषु अन्यतमोग्रन्थः वर्त्तते। ग्रन्थस्य मुख्यविषयवर्त्तते श्रीशङ्करेण कृतव्याख्यानां दशोपनिषदां तात्पर्यनिर्णयः। तात्पर्यनिर्णयार्थं षण्णां तात्पर्यनिर्णलिङ्गानां प्रयोगः कृतः बुधकरेण। तानि च वर्त्तते उपक्रमोपसंहारावभ्यासोपूर्वताफलम् अर्थवादोपपत्ती च। ग्रन्थेस्मिन् बुधकरेण प्रत्येकोपनिषदां प्रत्येकलिङ्गाः के इत्युच्यते। पत्रेस्मिन् वेदान्तसिद्धान्तनिःश्रेण्याः लखुपरिचयः ईशावास्योपनिषदः विषयः ईशावास्योपनिषदः तात्पर्यलिङ्गानि सार्थं तेषां विचारः च प्रस्तूयते। अस्य पत्रस्योद्देशः वर्त्तते तात्पर्यलिङ्गः इति तन्त्रयुक्तिना उपनिषसारग्राहः कथं कृतः विठ्ठलबुधकरेण तथा अयं मार्गः विशिष्य ईशावास्योपनिषदः अध्ययनावसरे नूतनी का दृष्टिः प्रदीयते इत्येतेषामवलोकनम्।
- **Research Parameters (Introduction):** वेदान्तसिद्धान्तनिश्रेण्याः प्रतिपाद्यविषयेषु ईशावास्योपनिषदः तात्पर्यनिर्णयः। अनेन ग्रन्थानां अवगमने विशिष्य उपनिषदादीनां तन्त्रयुक्तिप्रयोगः कथमिति ज्ञायते।
- **Methodology:** The text itself an unpublished one so I compared and analyzed it long with bhashya of Sankara
- **Data & Findings:** तात्पर्यलिङ्गानां प्रयोगेण उपनिषदः तात्पर्यं ग्रहीतुं शक्यते। विधिरियं अपराणामपि ग्रन्थानां अवगमने अवलोकने च साहायकं भविष्यति
- **Conclusion:** [Summarize the implications of your findings and how they contribute to the broader field of Indology or Oriental studies.]

Keywords: उपक्रमोपसंहारः , अभ्यासः, अपूर्वता, भलम्, अर्थावादः, उपपत्तिः, ईशावास्योपनिषद्, वेदान्तसिद्धान्तनिःश्रेणिः, विठ्ठलबुधकरः

आत्मा से आत्मबोध तक : भारतीय दर्शन एवं प्लेटो के चिंतन का तुलनात्मक अध्ययन

Komal gupta

इस क्षेत्र में आत्मा को जानने के लिए केवल उसके विषय में सूचना प्राप्त करना ही पर्याप्त नहीं माना गया है, बल्कि विचार एवं चिंतन के माध्यम से उसके वास्तविक स्वरूप को समझने का प्रयास किया गया है। भारतीय दर्शन में आत्मा को जीवन का आधार माना गया है। आत्मा की अवधारणा सभी भारतीय दार्शनिक परंपराओं में समान नहीं है। मुख्य प्रश्न यह है कि "मैं कौन हूँ?" यह प्रश्न यह बताता है कि मनुष्य केवल बाहरी विषयों में रुचि लेने वाला प्राणी नहीं है, बल्कि वह अपने भीतर के सत्य को भी जानना चाहता है।

भारतीय दर्शन की विभिन्न परंपराओं में आत्मा की व्याख्या की गई है। उपनिषदों में आत्मा को ब्रह्म से संबंधित माना गया है। अद्वैत वेदान्त में आत्मा और ब्रह्म की एकता पर बल दिया गया है, जबकि सांख्य दर्शन में पुरुष और प्रकृति के भेद का विवेचन किया गया है। आत्मज्ञान का अर्थ केवल अपने अस्तित्व को जानना नहीं, बल्कि अपने भीतर के विवेक को पहचानना और उसे जीवन का मार्गदर्शक बनाना भी है। यही विचार आत्मा-संबंधी चिंतन को आत्मबोध से जोड़ता है।

पाश्चात्य दर्शन में प्लेटो का आत्मा-संबंधी चिंतन भी इसी प्रश्न को एक अलग दार्शनिक आधार पर प्रस्तुत करता है। प्लेटो के लिए आत्मा मनुष्य के जीवन, ज्ञान और नैतिकता से गहराई से जुड़ी है। वह मनुष्य के जीवन में विवेक को महत्त्वपूर्ण मानते हैं और आत्मा के उचित संचालन को श्रेष्ठ जीवन का आधार समझते हैं। प्लेटो के दर्शन में आत्मा के तीन पक्ष—विवेकशील, उत्साही और इच्छात्मक—का उल्लेख मिलता है। आत्मा को जानना केवल अपने अस्तित्व

को समझना नहीं, बल्कि अपने भीतर के विवेक को पहचानना और उसे जीवन का मार्गदर्शक बनाना भी है। यही विचार प्लेटो के आत्मा-संबंधी चिंतन को आत्मबोध से जोड़ता है।

भारतीय दर्शन और प्लेटो के चिंतन की तुलना करने पर यह स्पष्ट होता है कि दोनों में आत्मा को मनुष्य के वास्तविक स्वरूप को समझने का महत्त्वपूर्ण आधार माना गया है, परंतु दोनों की दार्शनिक व्याख्याएँ समान नहीं हैं। भारतीय दर्शन में आत्मा का संबंध आत्मज्ञान, आत्मज्ञान से मुक्ति तथा विभिन्न परंपराओं में परम सत्य की खोज से जुड़ता है, जबकि प्लेटो के चिंतन में आत्मा का संबंध ज्ञान, विवेक और सद्गुणपूर्ण जीवन से प्रमुख रूप से दिखाई देता है। इसलिए दोनों के बीच समानताओं के साथ-साथ उनके मूल दार्शनिक अंतर को समझना भी आवश्यक है।

आधुनिक जीवन में, जब मनुष्य की पहचान प्रायः उसकी बाहरी उपलब्धियों और भौतिक जीवन से निर्धारित होने लगी है, तब "मैं कौन हूँ?" का प्रश्न फिर से महत्त्वपूर्ण हो जाता है। आत्मा और आत्मबोध की दार्शनिक अवधारणाएँ व्यक्ति को अपने आंतरिक स्वरूप, जीवन-मूल्यों और नैतिक जीवन पर विचार करने की प्रेरणा देती हैं।

अतः 'आत्मा से आत्मबोध तक' की यात्रा केवल आत्मा की परिभाषा समझने की यात्रा नहीं है, बल्कि मनुष्य के वास्तविक स्वरूप, ज्ञान और जीवन के उद्देश्य को समझने की यात्रा है। भारतीय दर्शन और प्लेटो के चिंतन का तुलनात्मक अध्ययन इस व्यापक मानवीय प्रश्न को दार्शनिक दृष्टि से समझने का प्रयास प्रस्तुत करता है।

प्रमुख शब्द : आत्मा, आत्मबोध, आत्मज्ञान, भारतीय दर्शन, उपनिषद, वेदान्त, सांख्य दर्शन, प्लेटो, ज्ञान एवं नैतिकता।

Ashtanga Yoga of Patanjali: Its Relevance in Modern Life

Krishna Rathi

In the present era, people are increasingly facing challenges related to stress, lack of mental peace, unhealthy lifestyles, and declining moral values. In this context, the Ashtanga Yoga system propounded by Maharshi Patanjali offers a holistic approach to balanced and meaningful living. The present paper aims to explore the relevance of Patanjali's Ashtanga Yoga in contemporary life from the perspective of the Indian knowledge tradition.

Patanjali's Yoga Sutra describes eight limbs of Yoga: Yama, Niyama, Asana, Pranayama, Pratyahara, Dharana, Dhyana, and Samadhi. These eight limbs represent a comprehensive path of personal development, extending beyond physical exercises to include ethical conduct, self-discipline, regulation of the breath, concentration, meditation, and spiritual growth. Yama and Niyama provide guidance for moral and disciplined living, while Asana and Pranayama contribute to physical awareness and the regulation of breathing. The higher limbs of Yoga emphasize the development of concentration, inner awareness, and meditative understanding.

This paper adopts a conceptual and descriptive approach based on the study of Patanjali's Yoga Sutra and relevant secondary literature. It examines how the principles of Ashtanga Yoga may be applied in daily life to encourage self-discipline, emotional balance, mindful behaviour, and overall well-being. The paper also highlights the significance of traditional yogic wisdom in addressing challenges associated with modern lifestyles.

The paper concludes that Patanjali's Ashtanga Yoga remains a valuable component of India's philosophical heritage and offers a practical framework for integrating ethical living, physical awareness, mental discipline, and spiritual development in contemporary society.

Keywords: Maharshi Patanjali, Ashtanga Yoga, Yoga Sutra, Indian Knowledge System, Mental Well-being, Modern Life

मौन की अवधारणा: एक विश्लेषणात्मक अध्ययन (The Concept of Silence: An Analytical Study)

Dr. Sanwar Singh Yadav

मौन मानव जीवन की एक बहुआयामी अवधारणा है, जिसे सामान्यतः वाणी के अभाव अथवा चुप रहने की अवस्था के रूप में समझा जाता है। तथापि, मौन का वास्तविक स्वरूप केवल बोलने से विरत रहने तक सीमित नहीं है, बल्कि इसका संबंध व्यक्ति की मानसिक अवस्था, भावनात्मक अनुभव, आत्मनिरीक्षण, वाणी-संयम, सामाजिक व्यवहार, आध्यात्मिक साधना तथा पारस्परिक संचार से भी है। वर्तमान समय में तीव्र संचार, सूचना की निरंतर उपलब्धता, सामाजिक प्रतिस्पर्धा और मानसिक व्यस्तता के बीच मौन की अवधारणा को पुनः समझने की आवश्यकता अनुभव की जाने लागी। मौन का विश्लेषण इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है कि वह व्यक्ति को विचार करने, अनुभवों का निरीक्षण करने तथा अपनी प्रतिक्रियाओं और व्यवहार को समझने का अवसर प्रदान कर सकता है। दूसरी ओर, भय, सामाजिक दबाव, असुरक्षा अथवा भावनात्मक दमन के कारण उत्पन्न चुप्पी व्यक्ति की स्वतंत्र अभिव्यक्ति और पारस्परिक संबंधों के लिए बाधा भी बन सकती है।

भारतीय दार्शनिक परंपरा में मौन को वाणी-संयम, मानसिक अनुशासन और आध्यात्मिक चिंतन के संदर्भ में समझने का आधार प्राप्त होता है। श्रीमद्भगवद्गीता के अध्याय 17 के श्लोक 15 और 16 में वाणी की तपस्या तथा मानसिक तप के अंतर्गत मौन का उल्लेख मिलता है। गीता का पंद्रहवाँ श्लोक ऐसी वाणी पर बल देता है जो अनुद्वेगकारी, सत्य, प्रिय और हितकारी हो, जबकि सोलहवाँ श्लोक मन की प्रसन्नता, सौम्यता, मौन, आत्मसंयम और भावों की शुद्धता को महत्त्व देता है। इन श्लोकों के विश्लेषण से मौन को केवल बाहरी चुप्पी के स्थान पर वाणी और मन के विवेकपूर्ण अनुशासन के व्यापक संदर्भ में समझा जा सकता है। तैत्तिरीयोपनिषद् 2.9.1 में वाणी और मन की सीमाओं से संबंधित कथन भी अनुभव के उन आयामों पर विचार करने का आधार प्रदान करता है जिन्हें शब्दों में पूर्णतः व्यक्त करना कठिन हो सकता है।

प्रस्तुत अध्ययन का प्रमुख उद्देश्य मौन की अवधारणा का विश्लेषण करना, उसके विविध स्वरूपों का वर्गीकरण प्रस्तुत करना तथा भारतीय दार्शनिक दृष्टिकोण और आधुनिक मनोवैज्ञानिक एवं वैज्ञानिक साहित्य के बीच वैचारिक संबंधों का आलोचनात्मक विवेचन करना है। इसके लिए वर्णनात्मक एवं आलोचनात्मक नैरेटिव समीक्षा पद्धति अपनाई गई है। अध्ययन की सुविधा के लिए मौन को वाचिक, बाह्य, मानसिक, भावनात्मक, सामाजिक, आध्यात्मिक और चिकित्सकीय आयामों में विभाजित किया गया है। यह वर्गीकरण विश्लेषणात्मक उद्देश्य से निर्मित है, न कि किसी एक शास्त्रीय ग्रंथ में वर्णित सर्वमान्य वर्गीकरण के रूप में।

साहित्य के विश्लेषण से यह संकेत मिलता है कि मौन का अर्थ और संभावित प्रभाव उसके उद्देश्य, स्वैच्छिकता, सामाजिक परिस्थिति तथा व्यक्ति के अनुभव के अनुसार बदलता है। मनोचिकित्सा में मौन कभी आत्मचिंतन और भावनात्मक अभिव्यक्ति के लिए अवसर उपलब्ध करा सकता है, जबकि अन्य परिस्थितियों में वह असहजता, दूरी या संवाद में कठिनाई का संकेत हो सकता है। इसी प्रकार, बाहरी ध्वनि की कमी और मानसिक मौन को समान मानना उचित नहीं है, क्योंकि शांत वातावरण में भी व्यक्ति के मन में विचार, चिंताएँ और भावनात्मक प्रतिक्रियाएँ सक्रिय रह सकती हैं। उसकी अवधारणा को समझने के लिए उसके दार्शनिक अर्थ, मनोवैज्ञानिक कार्य, सामाजिक संदर्भ और अनुभवजन्य प्रमाणों का समन्वित विश्लेषण आवश्यक है।

मुख्य शब्द: मौन, मौन की अवधारणा, वाणी-संयम, मानसिक अनुशासन, आत्मनिरीक्षण, श्रीमद्भगवद्गीता, मनोविज्ञान, आध्यात्मिकता, सामाजिक व्यवहार।

The Adhi–Vyadhi Concept in Yoga Vasistha: A Theoretical Analysis of the Mind–Body Relationship and the Preventive Role of yogic lifestyle in present scenario"

Anuradha kumari,

The concept of Adhi–Vyadhi in the Yoga Vasistha offers a profound philosophical perspective on the relationship between the mind and the body, emphasizing the role of mental disturbances in the development of physical ailments. The present study aims to undertake a theoretical analysis of the Adhi–Vyadhi concept and explore its relevance to the preventive role of a yogic lifestyle in the contemporary scenario. Drawing upon the philosophical teachings of the Yoga Vasistha, the study examines how psychological factors such as desire, attachment, stress, anxiety, and mental agitation may influence physical well-being. It further investigates the interconnectedness of mental and physical health and the significance of cultivating mental equilibrium for holistic wellness.

The study adopts a qualitative and theoretical research approach based on the critical examination of relevant textual references from the Yoga Vasistha and their interpretation in the context of contemporary understandings of psychosomatic health. Particular emphasis is placed on the preventive potential of yogic practices, including meditation, self-inquiry, ethical discipline, breath regulation, and a balanced lifestyle, in promoting psychological resilience and physical well-being. The analysis seeks to establish meaningful connections between traditional yogic wisdom and present-day challenges associated with stress, sedentary habits, and lifestyle-related disorders.

The study is expected to contribute to a deeper understanding of the mind–body relationship through the philosophical framework of Adhi–Vyadhi and to highlight the relevance of yogic principles in preventive health management. It concludes that the teachings of the Yoga Vasistha may provide a valuable theoretical foundation for integrating mental discipline, self-awareness, and holistic lifestyle practices into contemporary approaches to health promotion and disease prevention.

Keywords: Adhi–Vyadhi, Yoga Vasistha, mind–body relationship, yogic lifestyle, psychosomatic health

भर्तृहरि के वाक्यपदीयम् में वर्णित शब्दार्थ-सम्बन्ध का विश्लेषण ।

Dr. Bidhu Bala

-

प्रस्तुत शोधपत्र में भर्तृहरि के प्रसिद्ध व्याकरण-दर्शनग्रन्थ 'वाक्यपदीय' में प्रतिपादित शब्दार्थ-सम्बन्ध का दार्शनिक एवं भाषावैज्ञानिक दृष्टि से विश्लेषण किया गया है । भारतीय व्याकरण-दर्शन में शब्द और अर्थ के पारस्परिक सम्बन्ध का प्रश्न अत्यन्त महत्त्वपूर्ण रहा है । भर्तृहरि ने इस सम्बन्ध को केवल व्यवहारगत अथवा लौकिक स्तर तक सीमित न रखकर उसे शब्दब्रह्म के व्यापक दार्शनिक सिद्धान्त से सम्बद्ध किया है । उनके अनुसार शब्द और अर्थ का सम्बन्ध मूलतः अभिन्न है, यद्यपि व्यावहारिक स्तर पर दोनों में भेद का अनुभव होता है । इसी आधार पर वाक्यपदीय में शब्द और अर्थ के सम्बन्ध के विभिन्न पक्षों का विवेचन प्राप्त होता है । भर्तृहरि के मत में शब्दतत्त्व नित्य तथा अखण्ड है और वही व्यावहारिक धरातल पर विभिन्न रूपों में अभिव्यक्त होता है । शब्द और अर्थ के सम्बन्ध को स्पष्ट करते हुए उन्होंने विभिन्न मतों, कार्यकारणभाव तथा योग्यताभाव आदि दृष्टियों का उल्लेख किया है । अभिधा और विभक्ति

के माध्यम से शब्दार्थ-सम्बन्ध की व्यावहारिक अभिव्यक्ति को भी समझाया गया है । विशेषतः शब्द की अर्थबोधक शक्ति तथा अर्थ की शब्द द्वारा अभिव्यक्त होने की प्रक्रिया उनके चिन्तन का महत्त्वपूर्ण पक्ष है । भर्तृहरि के अनुसार शब्द और अर्थ के बीच सम्बन्ध किसी व्यक्ति द्वारा निर्मित अथवा कृत्रिम नहीं है, बल्कि वह स्वाभाविक एवं अनादि है । इस शोध में शब्दार्थ-सम्बन्ध के साथ वाक् की विभिन्न अवस्थाओं वैखरी, मध्यमा, पश्यन्ती तथा परा का भी संक्षिप्त विवेचन किया गया है । इस प्रकार भर्तृहरि का शब्दार्थचिन्तन भाषा, अर्थबोध और परम तत्त्व के मध्य एक गहन दार्शनिक सम्बन्ध स्थापित करता है । प्रस्तुत अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि वाक्यपदीय में शब्दार्थ-सम्बन्ध केवल भाषिक व्यवहार का विषय न होकर भारतीय भाषादर्शन की एक महत्त्वपूर्ण दार्शनिक समस्या के रूप में प्रतिष्ठित है ।

विशुद्धिमग्ग: शुद्धि का मार्ग — प्राचीन ध्यान पद्धतियों का आधुनिक संदर्भ

Atul Himmatrao Galerao

विशुद्धिमग्ग बौद्ध परम्परा का एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है, जिसमें नैतिक अनुशासन, ध्यान और प्रज्ञा के माध्यम से मनुष्य के आन्तरिक शुद्धीकरण का क्रमबद्ध विवेचन प्रस्तुत किया गया है। प्रस्तुत शोध का उद्देश्य विशुद्धिमग्ग में वर्णित प्राचीन ध्यान-पद्धतियों, उनके दार्शनिक आधार तथा आधुनिक जीवन में उनकी प्रासंगिकता का अध्ययन करना है। शोध में विशेष रूप से शील, समाधि और प्रज्ञा की त्रिविध साधना तथा शमथ और विपश्यना से सम्बद्ध ध्यान-अभ्यासों का विश्लेषण किया गया है। साथ ही, मन की एकाग्रता, चित्त-शुद्धि, आत्म-अनुशासन और मानसिक संतुलन जैसे पक्षों को आधुनिक संदर्भ में समझने का प्रयास किया गया है।

अध्ययन के लिए मुख्यतः विशुद्धिमग्ग के मूल विषय-विन्यास तथा उपलब्ध द्वितीयक साहित्य का पाठ-विश्लेषणात्मक और तुलनात्मक पद्धति से अध्ययन किया गया है। इसमें प्राचीन बौद्ध ध्यान-दृष्टि और वर्तमान समय में प्रचलित ध्यान एवं सचेतनता की अवधारणाओं के बीच समानताओं तथा भिन्नताओं को रेखांकित किया गया है। अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि विशुद्धिमग्ग में ध्यान केवल मानसिक शान्ति प्राप्त करने का साधन नहीं, बल्कि नैतिक जीवन, आत्मनिरीक्षण और प्रज्ञा-विकास से जुड़ी एक समग्र साधना के रूप में प्रस्तुत है। आधुनिक जीवन में तनाव, मानसिक अशान्ति, असंयम और निरन्तर बाह्य उत्तेजनाओं की स्थिति में इसके अनुशासनात्मक एवं ध्यानात्मक सिद्धान्त उपयोगी दृष्टिकोण प्रदान कर सकते हैं।

निष्कर्षतः, विशुद्धिमग्ग की ध्यान-पद्धतियाँ केवल ऐतिहासिक या धार्मिक महत्त्व तक सीमित नहीं हैं, बल्कि उनके मूल सिद्धान्त आधुनिक मनुष्य के मानसिक अनुशासन, आत्म-जागरूकता और संतुलित जीवन की समझ को समृद्ध कर सकते हैं। विशेष रूप से, यह अध्ययन यह भी दर्शाता है कि प्राचीन ध्यान-परम्पराओं को आधुनिक संदर्भ में अपनाते समय उनके नैतिक और दार्शनिक आधार को साथ समझना आवश्यक है, ताकि ध्यान केवल तकनीक न रहकर समग्र जीवन-दृष्टि का हिस्सा बन सके।

प्रमुख शब्द: विशुद्धिमग्ग; बौद्ध ध्यान; शमथ; विपश्यना; चित्त-शुद्धि

सूर्य नमस्कार की संकल्पना, संरचना एवं बहुआयामी प्रभाव : एक सैद्धांतिक समीक्षा

Rajesh, Dr Sanwar Singh Yadav

सूर्य नमस्कार भारतीय योग परंपरा में विकसित एक क्रमबद्ध अभ्यास-पद्धति है, जिसमें शारीरिक गतियों, योगिक आसनों, श्वसन-समन्वय तथा मंत्र और एकाग्रता जैसे विभिन्न तत्वों का समावेश होता है। वर्तमान समय में इसे प्रायः शारीरिक व्यायाम के रूप में देखा जाता है, जबकि उपलब्ध साहित्य इसके स्वरूप को धार्मिक, योगिक, शारीरिक, मनो-आध्यात्मिक, शैक्षणिक तथा सामाजिक संदर्भों से भी जोड़ता है। इसी बहुआयामी स्वरूप को ध्यान में रखते हुए प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य सूर्य नमस्कार की संकल्पना, संरचना तथा इसके विभिन्न प्रभावों से संबंधित उपलब्ध साहित्य की सैद्धांतिक समीक्षा करना है। अध्ययन में उपलब्ध स्रोतों के आधार पर सूर्य नमस्कार की अर्थवत्ता,

ऐतिहासिक एवं योगिक पृष्ठभूमि, बारह क्रमिक अवस्थाओं की संरचना, श्वसन के साथ उसके समन्वय तथा मंत्र, चक्र एवं प्राण-साधना से संबंधित पक्षों का विश्लेषण किया गया है। उपलब्ध शोध-साहित्य के विश्लेषण से इसके शारीरिक आयाम में लचीलापन, मांसपेशीय शक्ति, मांसपेशीय सहनशक्ति तथा संतुलन तथा हृदय-संवहनी क्षमता (cardiovascular fitness) से संबंधित सकारात्मक परिणामों की प्रवृत्ति दिखाई देती है। इसी प्रकार मनो-आध्यात्मिक आयाम में stress, anxiety, relaxation तथा psychological well-being से संबंधित संभावित लाभों का उल्लेख मिलता है, जबकि शैक्षणिक संदर्भ में attention, cognitive concentration तथा academic stress से संबंधित सुधारों की सूचना उपलब्ध है। सामाजिक आयाम में group-based practice तथा social connectedness से संबंधित अनुभव भी सामने आते हैं। समग्रतः उपलब्ध साहित्य सूर्य नमस्कार को केवल शारीरिक गतियों के अनुक्रम के रूप में नहीं, बल्कि शरीर, श्वसन, मन, एकाग्रता तथा आध्यात्मिक तत्वों के आपसी संबंध से निर्मित एक बहुआयामी योगिक अभ्यास के रूप में प्रस्तुत करता है। अतः सूर्य नमस्कार की प्रकृति एवं प्रभावों को समझने के लिए उसके विभिन्न आयामों को एकीकृत सैद्धांतिक दृष्टिकोण से देखना अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है।

मुख्य शब्द (Keywords): सूर्य नमस्कार, योगिक अभ्यास, संरचना, शारीरिक प्रभाव, मनो-आध्यात्मिक आयाम, सैद्धांतिक समीक्षा।

पातञ्जलयोगदर्शनेन मनोविज्ञानस्यान्तस्संबन्धविमर्शः

नीलाचलनिवासाय नित्याय परमात्मने । बलभद्रसुभद्राभ्यां जगन्नाथाय ते नमः ।।

प्रस्तुते शोधपत्रे पातञ्जलयोगदर्शनेन मनोविज्ञानस्यान्तस्संबन्धविमर्शः इति अत्र योगदर्शनस्य मनोविज्ञानस्य च परस्परं संबन्धस्य, साम्यतायाः, प्रासङ्गिकतायाश्च गहनः विमर्शः दरीदृश्यते । महर्षिपतञ्जलिना लिखितं योगदर्शनं केवलं शारीरिकक्रियाणाम् उत मोक्षस्य साधनं नास्ति, अपि तु मानवमनसः/मानवचित्तस्य उत्कृष्टं व्यावहारिकञ्च विज्ञानम् आस्ते । अधुना मनोविज्ञाने यासां मानसिकप्रक्रियाणाम्, विकाराणाम्, मनश्चिकित्सापद्धतीनाञ्च अध्ययनं क्रियते, तासां मूलं योगदर्शनेन सह संबद्धं दरीदृश्यते ।

एतस्मिन् शोधपत्रे योगदर्शनेन कथितानाम् 'चित्तवृत्तिः', 'चित्तभूमिः', 'पञ्चक्लेशः' (अविद्या, अस्मिता, रागः, द्वेषः, अभिनिवेशः) इत्यादि धारणानां विश्लेषणं कृत्वा, मनोविज्ञानस्य 'Mental States', 'Cognitive Distortions' तथा 'Defense Mechanisms' इति एतैः धारणैः सह तेषां तुलनात्मकाध्ययनं (COMPARATIVE STUDY) कृतम् । योगदर्शनस्य 'अष्टाङ्गयोगः' (विशेषतः यमः-नियमः-आसनम्-प्राणायामः-प्रत्याहारः-धारणा-ध्यानम्) कथं मानसिकस्वास्थ्यस्य रक्षणाय, चिन्ता-अवसादः-तनावादीनां (Anxiety and Depression) निवारणाय च एका श्रेष्ठा चिकित्सापद्धतिः (Psychotherapy) भवितुम् अर्हति, इति अत्र प्रतिपादितम् ।

निष्कर्षः (CONCLUSION) योगदर्शनं मनसः नियन्त्रणाय शोधनाय च एकं सार्वभौमिकं व्यावहारिकं च मनोविज्ञानम् अस्ति । यदि मनोविज्ञानं योगदर्शनस्य व्यावहारिकसिद्धान्तैः सह संबद्धं भवेत्, तर्हि मानवजातेः मानसिकस्वास्थ्यसमस्यानां स्थायि समाधानं भवति । अतः एव वर्तमाने काले एतयोः शास्त्रयोः आन्तस्संबन्धस्य अध्ययनं नितरां सुतराम् अतितराञ्च प्रासङ्गिकम् अनिवार्यञ्च चकास्ते ।

कूटपदम् (KEYWORD) योगदर्शनम्, मनोविज्ञानम्, चित्तवृत्तिः, चित्तभूमिः, पञ्चक्लेशः, मानसिकस्वास्थ्यम्, अष्टाङ्गयोगः ।

धर्मतत्त्व : वैशेषिक दर्शन के परिप्रेक्ष्य में

डॉ. प्रज्ञा,

भारतीय दार्शनिक परम्परा में 'धर्म' एक अत्यन्त व्यापक एवं बहुआयामी तत्त्व है। विभिन्न दर्शनों में धर्म की संकल्पना उसके दार्शनिक प्रयोजन एवं साध्य के अनुरूप भिन्न-भिन्न रूपों में प्रतिपादित हुई है। प्रस्तुत शोधपत्र में वैशेषिक दर्शन के परिप्रेक्ष्य में धर्मतत्त्व के स्वरूप, प्रयोजन, साधन एवं फल का विश्लेषणात्मक अध्ययन किया गया है। वैशेषिक दर्शन में धर्म केवल लौकिक उन्नति अथवा पारलौकिक मोक्ष का साधन न होकर दोनों की सम्यक् सिद्धि का माध्यम है।

शोध में वैशेषिक दर्शन में प्रतिपादित धर्म की अवधारणा की तुलना धर्मशास्त्र एवं पूर्वमीमांसा में प्रतिपादित धर्म से भी की गई है। धर्मशास्त्रीय परम्परा में वर्णाश्रम आदि कर्तव्यों तथा पूर्वमीमांसा में वैदिक विधि से प्रतिपादित कर्म को धर्म के रूप में ग्रहण किया गया है, जबकि वैशेषिक दर्शन में धर्म का सम्बन्ध अभ्युदय और निःश्रेयस की सिद्धि से है। अभ्युदय के अन्तर्गत सांसारिक उन्नति, सुख एवं ऐश्वर्य तथा निःश्रेयस के अन्तर्गत दुःख की आत्यन्तिक निवृत्ति एवं मोक्ष को स्वीकार किया गया है। अतः वैशेषिक धर्म लौकिक और पारलौकिक दोनों पुरुषार्थों के मध्य सेतु का कार्य करता है।

वैशेषिकसूत्र के "तद्वचनादाम्नायस्य प्रामाण्यम्" सूत्र के आधार पर धर्म के मूल के रूप में वेद की प्रामाणिकता का विवेचन किया गया है। साथ ही, वैशेषिक परम्परा में धर्म को पदार्थों के तत्त्वज्ञान से सम्बद्ध करते हुए यह प्रतिपादित किया गया है कि द्रव्य, गुण, कर्म आदि पदार्थों के साधर्म्य एवं वैधर्म्य का यथार्थ ज्ञान निःश्रेयस की प्राप्ति का साधन बनता है। इस प्रकार वैशेषिक दर्शन में धर्म का सम्बन्ध केवल अनुष्ठानात्मक कर्तव्यों से न होकर तत्त्वज्ञान से भी स्थापित होता है।

शोधशब्द – धर्म, अभ्युदय, निःश्रेयस् आदि।

Concept of Sukha in The Nyāya–Vaiśeṣika Darśaṇa

Hari palave

This paper examines the concept of sukha in the Nyāya–Vaiśeṣika Darśana through the study of the Nyāya Sūtra, Praśastapādabhāṣya, Nyāyamañjarī, Tattvacintāmaṇi and other books of Nyāya-Vaiśeṣika Darśaṇa. In this tradition, sukha is understood as a guṇa of the ātman, and not as the essential nature of the self. The paper discusses its causes, varieties, and relation to cognition and mental perception. It also examines the distinction between ordinary pleasure and liberation (apavarga). The study shows how the Nyāya–Vaiśeṣika thinkers developed a systematic account of sukha within their broader theories of the self, knowledge, and liberation.

भारतीय दर्शन के संदर्भ में चेतना की अवधारणा: वेदान्त एवं बौद्ध दर्शन के संदर्भ में

Priyanka

भारतीय दर्शन में चेतना केवल मानसिक अनुभव का विषय नहीं, बल्कि आत्मा, सत्ता, ज्ञान और जगत के स्वरूप से जुड़ा एक मौलिक दार्शनिक प्रश्न है। प्रस्तुत अध्ययन में वेदान्त और बौद्ध दर्शन के संदर्भ में चेतना की अवधारणा का तुलनात्मक विश्लेषण किया गया है। इसका उद्देश्य दोनों परंपराओं की चेतना-संबंधी मान्यताओं, उनके समान आधारों तथा प्रमुख वैचारिक भिन्नताओं को स्पष्ट करना है।

वेदान्त दर्शन में चेतना को सामान्यतः आत्मा और ब्रह्म के मूल स्वरूप से जोड़ा जाता है। अद्वैत वेदान्त के अनुसार चेतना स्वयंप्रकाश, नित्य और मूलभूत है; आत्मा का वास्तविक स्वरूप शुद्ध चेतना है, जो शरीर, मन, बुद्धि और अहंकार से भिन्न है। उपनिषदों में ब्रह्म को परम सत्य तथा चेतना के आधार के रूप में प्रस्तुत किया गया है। इस दृष्टि में आत्मज्ञान के माध्यम से अज्ञान का निवारण और मुक्ति की प्राप्ति संभव मानी जाती है।

इसके विपरीत, बौद्ध दर्शन स्थायी और स्वतंत्र आत्मा की धारणा को स्वीकार नहीं करता। चेतना को कारण-प्रत्यय पर निर्भर, निरंतर बदलने वाली प्रक्रिया के रूप में समझा जाता है। पंचस्कन्धों में विज्ञान या चेतना एक घटक है, जो अन्य मानसिक और भौतिक प्रक्रियाओं के साथ मिलकर अनुभव का निर्माण करता है। प्रतीत्यसमुत्पाद के सिद्धांत

के अनुसार चेतना स्वतंत्र सत्ता नहीं, बल्कि कारणों और परिस्थितियों पर निर्भर होकर उत्पन्न होती है। इस दृष्टिकोण का संबंध अनित्यता, अनात्मवाद तथा दुःख से मुक्ति की साधना से है।

दोनों दर्शनों में अनुभव, ज्ञान, अज्ञान और मुक्ति के प्रश्न केंद्रीय हैं, किंतु उनकी तात्त्विक व्याख्याएँ भिन्न हैं। वेदान्त चेतना को स्थायी और मूलभूत वास्तविकता मानता है, जबकि बौद्ध दर्शन उसे शर्तों पर निर्भर परिवर्तनशील प्रक्रिया के रूप में देखता है। निष्कर्षतः, दोनों परंपराएँ चेतना के अध्ययन को आत्म-अनुभव और दुःख/अज्ञान से मुक्ति के लिए महत्त्वपूर्ण मानती हैं, परंतु चेतना और आत्मा के संबंध पर उनके उत्तर अलग-अलग दार्शनिक दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हैं।

मुख्य शब्द: चेतना, वेदान्त दर्शन, बौद्ध दर्शन, आत्मा, ब्रह्म, अनात्मवाद, पंचस्कन्ध, प्रतीत्यसमुत्पाद, मुक्ति।

ऋषि परंपरा में वैदिक ज्ञान-विज्ञान की भूमिका : एक दार्शनिक एवं वैज्ञानिक विश्लेषण

(शोध मार्गदर्शक) आशुतोष उपमन

भारतीय ज्ञान-परंपरा का मूल आधार वैदिक ऋषि परंपरा है, जिसमें ज्ञान का उद्गम प्रत्यक्ष अनुभूति (अनुभव) और अंतर्दृष्टि से माना गया हैं । वैदिक ज्ञान-विज्ञान भौतिक विज्ञान के साथ यह ब्रह्मांड, प्रकृति, चेतना और मानव जीवन के समग्र अध्ययन को समाहित करने में अपनी परमता का प्रकटन शास्त्रों में निहित ज्ञान से करता हैं । प्रस्तुत शोधपत्र में ऋषि परंपरा के अंतर्गत विकसित वैदिक ज्ञान-विज्ञान की भूमिका का विश्लेषण किया गया हैं । इसमें खगोल, गणित, आयुर्वेद, ध्वनि-विज्ञान, पर्यावरण तथा मनोविज्ञान जैसे क्षेत्रों में ऋषियों के योगदान को स्पष्ट किया गया हैं । साथ ही यह भी प्रतिपादित किया गया है कि आधुनिक विज्ञान की अवधारणाएँ वैदिक ज्ञान में पूर्व रूप से विद्यमान थीं । यह अध्ययन यह दर्शाता है कि वैदिक विज्ञान केवल ऐतिहासिक महत्व का विषय ही नहीं अपितु वर्तमान में वैश्विक समस्या के समाधान में भी अत्यंत उपयोगी एवं प्रगतिशील हैं ।

भारतीय ऋषि परंपरा में निहित वैदिक ज्ञान-विज्ञान की बहुआयामी भूमिका का दार्शनिक तथा वैज्ञानिक दृष्टिकोण से विश्लेषण प्रस्तुत करता हैं । वैदिक परंपरा, जिसे मानव सभ्यता की प्राचीनतम ज्ञान-धाराओं में गिना जाता हैं । ऋषियों ने स्वयं तप, ध्यान और अनुभवजन्य साधना के माध्यम से परम सत्य का अन्वेषण किया पश्चात उन्होंने श्रुति वाक्यो को ग्रंथ रचना के रूप में व्यक्त किया । इन ग्रंथों में ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद में ब्रह्मांड की उत्पत्ति, ऊर्जा के सिद्धांत, पर्यावरण संतुलन, औषधि विज्ञान, गणितीय काल खंड तथा ध्वनि विज्ञान जैसे विषयों पर गहन सूक्ष्म रूप में विचार प्रस्तुत किए । उदाहरणस्वरूप, नासदीय सूक्त में सृष्टि के आरंभ पर प्रश्न उठाते हुए एक प्रकार की दार्शनिक 'कॉस्मोलॉजी' का संकेत मिलता है, जो आधुनिक वैज्ञानिक जिज्ञासा से संबंधित दृष्टिपात होता हैं ।

वैदिक ज्ञान दार्शनिक दृष्टि से सत्-चित्-आनंद, और आत्मा-ब्रह्म की एकता जैसे सिद्धांतों पर आधारित हैं । यह मानव जीवन के उद्देश्य, नैतिकता और चेतना के उच्चतर स्तरों की खोज को प्रोत्साहित करता हैं । वहीं वैज्ञानिक दृष्टिकोण से, योग, आयुर्वेद, यज्ञ-प्रक्रिया और ज्योतिष जैसे क्षेत्रों में व्यवस्थित ज्ञान और प्रयोगात्मक विधियाँ देखने को मिलती हैं, जो आज भी प्रासंगिक हैं।

इस शोध में यह भी विश्लेषण किया गया है कि ऋषि परंपरा का ज्ञान केवल सैद्धांतिक नहीं था, बल्कि वह अनुभव, प्रयोग और निरीक्षण पर आधारित था - जो आधुनिक विज्ञान की पद्धति से साम्यता रखता हैं । हालांकि, यह भी आवश्यक है कि वैदिक विज्ञान के दावों का समकालीन वैज्ञानिक मानकों के आधार पर पुनर्मूल्यांकन किया जाए, ताकि तथ्य और आस्था के बीच संतुलन बना रहे।

अंततः, यह निष्कर्ष निकाला गया है कि ऋषि परंपरा में वैदिक ज्ञान-विज्ञान ने न केवल भारतीय चिंतन को आकार दिया, बल्कि यह आज भी मानवता के समग्र विकास—भौतिक, मानसिक और आध्यात्मिक—के लिए प्रेरणास्रोत बना हुआ हैं ।

कूटशब्द (Keywords) - ऋषि परंपरा, वैदिक विज्ञान, वेद, आयुर्वेद, खगोल विज्ञान, ध्वनि विज्ञान, पर्यावरण, भारतीय ज्ञान प्रणाली

अविद्यानिवृत्तिस्वरूपविचारः

MRUNMAYEE CHODANKAR

अत्र केयमविद्यानिवृत्तिः ?

१] ब्रह्मसिद्धिकाराः :– 'आत्मैव अविद्यानिवृत्तिः'। तथाहि 'अधिष्ठानावशेषो हि नाशः कल्पितवस्तुनः' इति उक्तेः।

* ननु आत्मा पूर्वसिद्धः (नित्यः)। अ. निवृत्तेः पूर्वसिद्धत्वमायातम् आत्मरूपत्वात्। तथा सति शास्त्रानर्थक्यं ज्ञानवैयर्थ्यं च। इति चेत्,

– उच्यते, तत्त्वज्ञानस्य वैयर्थ्यं वदता भवता इदं वक्तव्यम् –

① किं ज्ञानस्य किञ्चित् प्रयोजनं न दृश्यते इति तद्वैयर्थ्यम् वा ? उत – ② अविद्यानिवृत्तेरात्मरूपत्वेन नित्यसिद्धत्वात् ज्ञानसाध्यत्वं न सम्भवति इति ज्ञानवैयर्थ्यम्।

(① अस्माभिः इतोऽग्रे ज्ञानस्य प्रयोजनम् अस्ति इति साधनीयम्। ② अविद्यानिवृत्तेः साध्यत्वमुपपादनीयम्।)

– ① न ज्ञानवैयर्थ्यम्। ज्ञाने असति अविद्यासत्त्वात् –

① अविद्यानिवृत्त्यभावः अविद्यारूपः। यथा – 'घटाभावाभावः = घटः'। अतः ज्ञानाभावे अविद्या = अ. नि. अभावः अस्ति।

तत्कार्यम् अनर्थजालमपि तिष्ठेत्। तन्निवृत्तये अन्वेषणं = ज्ञानानुष्ठानम्। अनर्थनिवृत्तिः प्रयोजनम्।

② साध्यत्वं द्विविधम् – i) जन्यत्वरूपम् ii) 'यस्मिन् सति' इति।

प्रथमस्य अविद्यायामसम्भवात् द्वितीयमेवाश्रयणीयम्।

– तच्च, 'यस्मिन् सति अग्रिमक्षणे यत्सत्त्वं यद्व्यतिरेके च अभावः, तत् तत्साध्यम्।'

[अधोलिखिता योजना – 'यस्मिन् सति' = ज्ञाने; 'यत्सत्त्वम्' = अविद्यानिवृत्तिसत्त्वम्; 'यद्व्यतिरेके' = ज्ञानव्यतिरेके; 'अभावः' = ① अ. नि. अभावः; 'तत् तत्साध्यम्' = अ. नि. ज्ञानसाध्यम्।]

* 'ज्ञानजन्यत्वशङ्का न कार्या' – यतः,

- यथा, प्रत्यवायप्रागभावस्य संध्यावन्दनसाध्यत्वम्। संध्यावन्दनजन्यत्वं तु नास्ति। तत्प्रयुक्तत्वमस्ति।
- तद्वत् इहापि अजन्यत्वेऽपि ज्ञानसाध्यत्वं भवतु, ज्ञानप्रयुक्तत्वम् इति भावः।

२] आनन्दबोधाचार्याः – 'आत्मभिन्ना अ. निवृत्तिः'।

आत्मरूपत्वपक्षे तस्याः सत्त्वं स्पष्टमासीत्। किन्तु इह अतिरिक्तत्वात् प्रश्नः 'कीदृशी' इति युज्यते।

i) न सती – ब्रह्मातिरिक्तस्य सत्त्वे अद्वैतहानेः।

ii) न असती – ज्ञानजन्यत्वं न स्यात्।

iii) न सदसती – सत्त्वासत्त्वयोः परस्परविरोधेन सामानाधिकरण्यासम्भवात्।

iv) न अनिर्वाच्या – ① अनिर्वाच्यां सादि चेत् अज्ञानोपादानकत्वं (अज्ञानकार्यत्वे) आयातः। तथा सति मुक्तौ अपि 'अ. नि. रूपकार्यसत्त्वात्' उपादान-अविद्या अनुवृत्तेः अनिर्मोक्षप्रसङ्गः।

② अपि च मुक्तिकाले अनुवर्तमानायाः तस्याः मिथ्यात्वं चेत् 'ज्ञाननिवर्त्यत्वम्' अपि तत्र आयाति। 'ज्ञाननिवर्त्यत्वं' = मिथ्यात्वम्। किन्तु मुक्तिकाले ...

सारांशः

१] ब्रह्मसिद्धिकाराः :– 'आत्मैव अविद्यानिवृत्तिः'।

२] आनन्दबोधाचार्याः :– 'आत्मभिन्ना अविद्यानिवृत्तिः'।

३] न सती – अद्वैतहानेः।

४] न असती – जन्यत्वात्।

५] न सदसती – असम्भवात्।

६] नानिर्वच्या – अनिर्मोक्षापत्तेः। (अनिर्मोक्षप्रसङ्गात्)

शब्दब्रह्म की अवधारणा : एक विश्लेषण ।

प्रो. लक्ष्मी नारायण

प्रस्तुत शोधपत्र में **'शब्दब्रह्म की अवधारणा'** का वैदिक एवं व्याकरणदर्शन की दृष्टि से विश्लेषण किया गया है । भारतीय ऋषियों के दार्शनिक चिन्तन में शब्द को केवल लौकिक संप्रेषण का साधन न मानकर एक व्यापक आध्यात्मिक एवं पारमार्थिक तत्त्व के रूप में स्वीकार किया गया है । वैदिक वाङ्मय में वाक् की सर्वव्यापकता, सर्वशक्तिमत्ता तथा प्रकाशकता के माध्यम से शब्दब्रह्म की अवधारणा के प्रारम्भिक स्वरूप का निरूपण प्राप्त होता है । विशेषतः ऋग्वेद के वाक्सूक्त में वाक् को समस्त जगत् की आधारभूत एवं प्रेरक शक्ति के रूप में प्रस्तुत किया गया है । इसी प्रकार ऋग्वेद के अन्य मन्त्रों में वाक् की व्यापकता तथा ब्रह्म के साथ उसके साम्य का प्रतिपादन मिलता है । शब्दब्रह्म की इस वैदिक संकल्पना को उत्तरवर्ती वैयाकरणदर्शन में अधिक व्यवस्थित दार्शनिक स्वरूप प्राप्त हुआ । इस संदर्भ में भर्तृहरि का वाक्यपदीय विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण है । उनके अनुसार अनादि, अनन्त एवं अक्षर शब्दतत्त्व ही जगत् की मूल सत्ता है तथा दृश्य जगत् उसी का अर्थरूप विवर्त है । शब्दब्रह्म की कालशक्ति के माध्यम से अव्यक्त, अक्रम एवं निर्विकार तत्त्व व्यवहारजगत् में क्रमवान् और सावयव रूप में प्रतिभासित होता है । इस प्रकार शब्द और अर्थ, वाक् और ब्रह्म तथा पारमार्थिक एवं व्यावहारिक सत्ता के पारस्परिक सम्बन्ध का दार्शनिक विवेचन प्रस्तुत होता है । शोधपत्र में ऋग्वेद 10.125, ऋग्वेद 1.164 तथा यास्क, पतञ्जलि और भर्तृहरि के विचारों के आधार पर वाक् के चतुष्पदी स्वरूप का भी परीक्षण किया गया है । निष्कर्षतः स्पष्ट होता है कि भारतीय चिन्तनपरम्परा में शब्द केवल भाषा का उपकरण नहीं, बल्कि ज्ञान, अभिव्यक्ति, सृष्टि और आध्यात्मिक उन्नति से सम्बद्ध एक मौलिक तत्त्व है ।

भारतीयदर्शनेषु पुनर्जन्मसमर्थनम्

अभेदानन्द साहू

सर्वेषु आस्तिकदर्शनेषु अभ्युपगतः यदार्थः वर्तते किं नाम पुनर्जन्म इति चेत् —

जीवस्य देहपातोर्ध्वं मर्त्यलोके एव देहान्तरधारणम्। तस्य प्रत्यक्षायोग्यत्वात् श्रुतिस्तत्र प्रमाणं तदनुसारि स्मृतियुक्तयश्च।

ये तु प्रत्यक्षमात्रमङ्गीकुर्वन्ति नास्तिकाः चार्वाकाः ते पुनर्जन्म नाङ्गीकुर्वन्ति। तन्मते तावत् चत्वार्येव भूतानि पृथिव्यप्तेजोवायवः, आकाशस्य अप्रत्यक्षत्वेन अनङ्गीकारात्।

तेषां भूतानां देहाकारेण परिणामे सति तत्रैव देहे चैतन्यं उपजायते। तच्च चैतन्यं ज्ञानमेव तद्विशिष्टशरीरमेव आत्मा। न परलोकोऽस्ति, तस्मात् न पारलौकिकं सुखं दुःखं च। शीतस्पर्शनादिजन्यं शरीरसुखमेव स्वर्गः। कष्टकादिजन्यं दुःखमेव नरकः। लोकसिद्धः राजा एव ईश्वरः। देहनाश एव मोक्षः। देहात्मवादेऽस्मिन् "कृशोऽहं", "गच्छामि" इत्यादिव्यवहारः प्रमाणम्। तच्चोक्तम् —

यावज्जीवं सुखं जीवेत् नास्ति मृत्योरगोचरः।

भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः॥

तस्मात् नास्ति पुनर्जन्म। इति चेत् —

न, अनुमानादेरपि प्रामाण्यात्। तथा हि — न प्रत्यक्षमात्रं प्रमाणं, अन्यथा प्रत्यक्षप्रमाणानां इन्द्रियाणामपि अप्रत्यक्षत्वात् चार्वाकमते प्रत्यक्षप्रमाणमेव न सिद्ध्येत्। विषयाणां अप्रत्यक्षत्वं च अतिविप्रकर्षादिहेतुभ्यः अपि सम्भवति। तावन्मात्रेण न तेषां असत्त्वसिद्धिः। तस्मात् प्रमाणान्तरं अस्त्येव।

प्रमाणान्तरगम्यं च पुनर्जन्म। तथा च शरीरस्य आत्मत्वे ज्ञानत्वे शरीरपचयोपचयैः तदुत्पत्तिविनाशसम्भवात् बाल्ये अनुभूतस्य तारुण्ये स्मरणं न स्यात्। न च बालस्य प्राथमिकस्तन्यपानप्रवृत्तिः उपपद्यते।

प्रवृत्तौ इष्टसाधनताज्ञानं हेतुः। पूर्वशरीरस्थसंस्कारनाशे जातजन्मनि इष्टसाधनतास्मृत्यसम्भवात् न प्रवृत्तिरस्ति। तस्मात् स्थूलशरीरस्य न आत्मत्वं न ज्ञानत्वं च।

वृत्त्यात्मज्ञानाधिकरणं अन्तःकरणं, तदवच्छिन्नचैतन्यं हि जीवात्मा। सः हि शरीरात् शरीरान्तरं प्रविशति। तदेव तस्य जीवस्य पुनर्जन्म। शरीरान्तरेऽपि पूर्वसंस्काराधिकरणस्य अन्तःकरणस्य सत्त्वात् स्मृत्यात्मकं इष्टसाधनताज्ञानं सम्भवतीति कृत्वा स्तन्यपाने शिशोः प्रवृत्तिरुपपद्यते।

तत्प्रमाणं च गीतायाम् —

तत्र तं बुद्धिसंयोगं लभते पौर्वदैहिकम्।

यतते च ततो भूयः संसिद्धौ कुरुनन्दन॥

तस्मात् पुनर्जन्म अस्त्येव।

प्रधानशब्दाःचैतन्यम्, आत्मा, शरीरपचयोपचयैः, मृत्योरगोचरः, अन्तःकरणं, वृत्त्यात्मज्ञानाधिकरणम्, इष्टसाधनताज्ञानम्, बुद्धिसंयोगं, पौर्वदैहिकम्।

"भारतीय दर्शन का मूलाधार योग"

Mangal Pandey

भारतीय दर्शन की मूल प्रवृत्ति केवल सैद्धान्तिक चिंतन तक सीमित न होकर मनुष्य के जीवन, आचरण, आत्मानुशासन और दुःख से मुक्ति के व्यावहारिक मार्ग की खोज से जुड़ी हुई है। इस दृष्टि से 'योग' भारतीय दार्शनिक परंपरा का एक महत्त्वपूर्ण मूलाधार एवं साधनात्मक पक्ष प्रस्तुत करता है। प्रस्तुत शोध का उद्देश्य भारतीय दर्शन की विविध धाराओं में योग की अवधारणा, स्वरूप और महत्त्व का तुलनात्मक एवं दार्शनिक अध्ययन करना है। इस शोध में आस्तिक वैदिक दर्शनों—न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, पूर्वमीमांसा एवं वेदान्त—के साथ-साथ नास्तिक परंपराओं के बौद्ध एवं जैन दर्शन में विद्यमान योग-साधना और आत्मानुशासन के स्वरूप का विवेचन किया गया है।

पतञ्जलि के योगदर्शन में योग को चित्तवृत्तियों के निरोध तथा कैवल्य की प्राप्ति का साधन माना गया है, जबकि सांख्य दर्शन के पुरुष-प्रकृति विवेक से इसका घनिष्ठ संबंध है। न्याय एवं वैशेषिक में सम्यक् ज्ञान तथा तत्त्वविचार, मीमांसा में कर्म और धर्म तथा वेदान्त में आत्मज्ञान एवं मोक्ष की प्राप्ति के संदर्भ में योगात्मक साधना का महत्त्व स्पष्ट होता है। दूसरी ओर, बौद्ध दर्शन में ध्यान, समाधि, शील और प्रज्ञा के माध्यम से दुःखनिरोध का मार्ग प्रस्तुत किया गया है, जबकि जैन दर्शन में सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान, सम्यक् चरित्र, तप एवं ध्यान के द्वारा आत्मशुद्धि और मोक्ष की साधना की जाती है।

इस प्रकार विभिन्न दार्शनिक मतों की तात्त्विक मान्यताओं में भिन्नता होते हुए भी आत्मसंयम, ध्यान, चित्तशुद्धि, नैतिक अनुशासन और मुक्ति की साधना जैसी प्रवृत्तियाँ उन्हें एक साझा आध्यात्मिक धरातल प्रदान करती हैं। अतः शोध यह प्रतिपादित करने का प्रयास करता है कि योग को केवल पतञ्जलि के एक स्वतंत्र दर्शन तक सीमित न करके भारतीय दर्शन की व्यापक साधना-परंपरा के रूप में समझना अधिक उपयुक्त है। योग भारतीय चिंतन में सिद्धान्त और साधना, ज्ञान और आचरण तथा जीवन और मोक्ष के मध्य एक महत्त्वपूर्ण सेतु का कार्य करता है।

कीवर्ड्स →योगदर्शन, पतंजलि, षड्दर्शन, चित्तवृत्ति निरोध, अष्टांगयोग, आत्मानुशासन, मोक्ष, साधना, चित्तशुद्धि, आत्मज्ञा

योग विमुख समाज में धर्म का बाजारीकरण और सांस्कृतिक पतन का योगशास्त्रीय समाधान

MANAN JEE

वर्तमान समय योग विमुखता (योग विमुखता से तात्पर्य है योग शास्त्र वर्णित वास्तविक ज्ञान का जीवन मे अभाव) की स्थिति ने धार्मिक अनुशासन में गिरावट, सामाजिक मूल्यों में गिरावट और धर्म का व्यवसायीकरण को जन्म दिया है। जबकि धर्म का मौलिक उद्देश्य मानव जीवन में नैतिकता, आध्यात्मिकता, और सामाजिक समरसता स्थापित करना है। इसके स्थान पर समाज मे पाखंडवाद का प्रचलन अत्यधिक देखने को मिल रहा है ,जिसके कारण व्यक्ति के जीवन मे धर्म के वास्तविक स्वरूप का अभाव है, धर्म का वास्तविक स्वरूप धारण ना करने के कारण धार्मिक आस्थाएं केवल बाह्य रूप मे मनुष्य के जीवन मे है। इससे समाज में सांस्कृतिक पतन की स्थिति उत्पन्न हो रही है। इसलिए आवश्यक है कि योगशास्त्र के गूढ़ सिद्धांतों के माध्यम से इस समस्या का समाधान खोजा जाए,जिससे एक सभ्य और विकार मुक्त समाज का निर्माण सम्भव हो। योग विमुख समाज वह समाज है जो सांस्कृतिक, आध्यात्मिक और नैतिक मूल्यों से दूर हो चुका है। इस समाज में धर्म का वास्तविक स्वरूप विकृत होकर बाजारीकरण का रूप ले लिया है। धर्म, जो मूलतः मानव जीवन में नैतिकता, सदाचार और आध्यात्मिक उन्नति के लिए था, अब आर्थिक लाभ और सामाजिक प्रतिष्ठा का माध्यम बन गया है। यह आर्थिक व सामाजिक दृष्टि से धर्म के बाजारीकरण के कारण सांस्कृतिक पतन की स्थिति बनी है।धर्म के बाजारीकरण का अर्थ है धर्म के तत्वों, संस्कारों, और धार्मिक अवसरों का व्यवसायीकरण , जहां इन्हें वस्तुओं या सेवाओं के रूप में बेचा जा रहा है। इससे धर्म की पवित्रता पर असर पड़ा है एवं सामाजिक सद्भाव और सांस्कृतिक मूल्यों में गिरावट आई है। बाजारीकरण से धर्म का उपयोग सत्ता, सामाजिक प्रभाव, और आर्थिक लाभ के लिए हो रहा है, जो सामाजिक असमानता एवं सांस्कृतिक विघटन को प्रेरित करता है।संस्कृति, जो सामाजिक जीवन की आत्मा है, धर्म के माध्यम से व्यक्त होती है। जब धर्म का मूल उद्देश्य विपरित हो जाता है, तो संस्कृति का भी पतन होता है। सांस्कृतिक पतन के कई रूप जैसे सामाजिक बिखराव, पारंपरिक संस्कारों का क्षरण, नैतिकता की गिरावट, और आध्यात्मिक पतन देखी जाती है। योग विमुख समाज में यह पतन तीव्र गति से हो रहा है, जिससे सामाजिक समस्याएं बढ़ रही हैं।इस अत्यंत महत्वपूर्ण समस्या के समाधान हेतु योगशास्त्र का योगदान अत्यंत उपयोगी है। योगशास्त्र वर्णित अष्टांग योग, क्रिया योग, ज्ञान योग, कर्म योग, भक्ति योग जैसे उपाय आध्यात्मिक उन्नति और मनोवैज्ञानिक संतुलन प्रदान करते हैं। योगाभ्यास से न केवल व्यक्तिगत जीवन में संतुलन आता है, बल्कि सामाजिक स्तर पर भी सांस्कृतिक पुनरुत्थान संभव हो पाता है। योगशास्त्र की शिक्षाएं जीवन मूल्यों को पुनर्स्थापित कर आदर्शों से जोड़ने में सहायक होती हैं।

भारतीय दर्शन में 'अविद्या' एवं सुकरात के 'अज्ञान' का तुलनात्मक अध्ययन।

VAISHNAVI

ज्ञान मीमांसा भारतीय और पाश्चात्य दर्शन का केंद्रीय विषय रही है दोनों परंपराओं में अज्ञान को ही मानव दुखों और भ्रम का मूल कारण माना गया है जहाँ अद्वैत वेदांत और बौद्ध दर्शन 'अविद्या' को संसार चक्र का आधार मानते है वही

पाश्चात्य दार्शनिक सुकरात का मानना है कि 'अज्ञान' ही समस्त बुराइयों की जड़ है यह शोध भारतीय दर्शन में अविद्याको सिर्फ चीज की जानकारी न होना नहीं माना गया है इसे एक ऐसी रुकावट माना गया है जो सच को छुपा देती है अंधेरेमें पड़ी एक साधारण रस्सी को सांप समझ लेते है ठीक वैसे ही अविद्या के कारण इंसान अपने असली रूप को भूल जाताहै, और इस दुनिया के उलझनों में फंस जाता है बौद्ध दर्शन में भी बताया गया है कि अविद्या ही अज्ञानता इंसान के दुखका कारण है, जब इंसान अज्ञानता के कारण पुरानी या मिटने वाली चीजों से जुड़ाव बना लेता है तो उसे दुख सहनापड़ता है, दूसरी तरफ पश्चिमी विचारक सुकरात का मानना था कि अच्छा ज्ञान ही असली अच्छाई है सुकरात मानते थे कि हर

इंसान अपने लिए अच्छी जिंदगी चाहता है, लेकिन जब किसी इंसान में सही और गलत की समझ नहीं होती तो वहअज्ञानता के रास्ते पर चल पड़ते है, सुकरात के हिसाब से इंसान को सही ज्ञान हो जाए, तो वह कभी भी गलत याअनैतिक कार्य नहीं कर सकते संसार की सारी बुराई की जड़ अज्ञानता का होता है,अगर हम दोनों विचारों की तुलना करे तो इनमें बड़ी समानता यही है कि दोनों 'अज्ञान' या 'अविद्या' को ही इंसान के

दुखों का कारण मानते है, सही ज्ञान से ही मनुष्यों को दुखों से मुक्ति मिल सकती है अन्यथा नहीं,

हालांकि एक छोटा सा भी अंतर है, सुकरात का ध्यान मुख्य रूप से मनुष्यों के दैनिक व्यवहार, नैतिकता पर सही फैसलेलेने पर है, जबकि भारतीय दर्शन में अविद्या का संबंध आत्मा अविद्या और मोक्ष से है एवं आध्यात्मिक शांति से अधिक

गहराई से जुड़ा हुआ है।

अंत में यह कहा जा सकता है कि भले ही ये दोनों विचार अलग-अलग देशों और समय में पैदा हुए हो लेकिन दोनों का

कार्य एक ही था, या अभी भी है,

भारतीय दर्शन की 'अविद्या' एवं सुकरात का अज्ञान दोनों हमें ये सिखाते है कि मनुष्यों को अपनी समझ व ज्ञान को बढ़ाते

रहना चाहिए आज के समय में भी मनुष्यों को उलझनों के समय सही रास्ता ज्ञान ही दिखाता है,

मुख्य शब्द

ज्ञान, अज्ञान, माया, अविद्या, सदगुण, विज्ञान, दर्शन, अद्वैत वेदांत,

---

RELEVANCE OF PATANJALI YOGA SUTRA'S IN

MODERN EDUCATION SYSTEM FROM INFORMATION

TO TRANSFORMATION

AHEIBAM SHIDABI

The present era of education is witnessing a paradoxical situation where information is abundant through internet, AI, and digital platforms, yet attention, emotional stability, ethical values, and inner

peace among students are declining. According to Economic Survey 2025-26, digital addiction among

youths aged 10 to 19 has emerged as a public health concern, contributing to sleep debt, reduced

academic performance, anxiety, depression, low self-esteem, and erosion of social capital. WHO reports

that 1 in 7 adolescents aged 10-19 faces mental health conditions, while in India over 13,000 studentsdied by suicide in 2022 due to academic pressure. The National Education Policy 2020 (NEP 2020)emphasizes holistic, value-based, experiential, and joy-based learning beyond mere marks andcompetition. In this context, Maharishi Patanjali's Yoga Sutras, comprising 196 aphorisms composed in around

the 4th century BCE, offer a scientific and systematic framework for management and transformation ofconsciousness. Patanjali defines YOGA as: “Yogash Chitta Vritti Nirodhah” (Sutra 1.2) — cessation of

fluctuations of chitta (mind-field). All learning depends upon a calm, focused, and friendly Chitta.The Eight-Limb Path of Ashtanga Yoga — Yama, Niyama, Asana, Pranayama, Pratyahara, Dharana,

Dhyana, Samadhi — provides a complete educational ladder:

• Yama & Niyama (Ahimsa, Satya, Santosha, Swadhyaya) address the crisis of values and social

comparison.• Asana & Pranayama provide psychophysiological balance and reduce cortisol and anxiety.

• Pratyahara offers a direct antidote to digital and sensory overload.

• Dharana & Dhyana train the attention muscle and cultivate a flow state for deep learning, which is

crucial when average attention span has reduced drastically.

This abstract argues that the integration of Patanjali Yoga Sutras into modern education can

facilitate a paradigm shift from information-centric to transformation-centric education. A low-cost,

secular, no-equipment 5-minute transformation model at the start of academic hours can factually

improve focus, reduce anxiety and screen cravings, and foster resilience and compassion. Such practices

align with NEP 2020 vision and address contemporary challenges highlighted by Economic Survey 2025-

26. Modern education gives information for livelihood; Yoga Sutras give transformation for life — “Sa

Vidya Ya Vimuktaye”.

Keywords: Patanjali Yoga Sutras, Modern Education, Chitta Vritti Nirodha, Ashtanga Yoga, NEP 2020,

Holistic Learning, Digital Addiction.

।। प्रबन्धनक्षेत्रे श्रीमद्भगवद्गीतोक्तबुद्धिसिद्धान्तानां समीक्षात्मकाध्ययनम् ।।

नवीन कुमार शर्मा, पं.स. VV/७९५२/२०२२- २३

शोधच्छात्र – शिक्षाशास्त्रविद्याशाखा

केन्द्रियसंस्कृतविश्वविद्यालय जयपुरपरिसर

नवनवोन्मेषशालिनीं प्रज्ञां प्रति नितरां प्रवर्तमानाः लोकाः सर्वे जगति उत्कर्षतायास्सिसाधयिषवो वर्तन्ते। चलज्जीवने स्वस्वकर्मसु रममाणाः सर्वेऽपि स्वात्मानमपगतकल्मषात्मकाध्वन्येव प्रवर्तयितुं वाञ्छन्ति नित्यं च तदर्थं यतन्ते। यतमानाश्च केचन श्रेष्ठैराचरितमार्गानुसारिणः सफलतां यान्ति। अस्य च साफल्यस्य मूलं भवति शिष्टा प्रबन्धनव्यवस्था। नियन्त्रितं प्रबन्धनमेव लोकोत्कर्षसाधकम्। प्रबन्धनं नाम काञ्चित्संस्थां सङ्घं सङ्घटनं नीतिं रीतिञ्च सम्यग्व्यवस्थापयितुं काचिच्छ्रेष्ठा ज्ञानराशिः। अनेनैव प्रबन्धनेन सुव्यवस्था व्यवस्थीयते। तदेवोत्तमा प्रबन्धनव्यवस्था या समाजस्य मनुष्याणां च हिताय भवति। अस्य च पुनः प्रबन्धनस्य मूलं विनम्रता श्रद्धा वेति। श्रद्धया ज्ञानावाप्तिः ततश्च इन्द्रियाणां संयमनम्। संयमितैरिन्द्रियैः बुद्धेः प्रतिष्ठा। प्रतिष्ठितया बुद्ध्या प्रज्ञावाप्तिः। इदञ्च प्राज्ञत्वं प्रबन्धनबोधे सहायकचरणम्। प्रबन्धनज्ञानादेव नृणान्नेतृत्वगुणः सम्पद्यते। उक्तं च स्वामिविवेकानन्दचरणैस्स्वमिन्ग्रन्थे -

"Some people do the best work when led. Not every one is born to lead. The best leader, however, is one who 'leads like the baby'. The baby, though apparently depending on everyone, is the king of the household. At least, to my thinking, that is the secret."

क्षेत्रेऽस्मिन् प्रकृतज्ञानं विदधातुं भारतीयज्ञानपरम्परायां विद्यमानेषु विविधेषु शास्त्रेषु प्रख्यातासु उपनिषत्सु श्रीमद्भागवद्गीता अत्यन्तं लोकप्रसिद्धा।आत्मानुसन्धानात्मिकायामस्यामुपनिषद्यध्यात्मिकज्ञानेन सह सुगमरीत्या लौकिककर्तव्याकर्तव्यता अपि विवृता। इह च अस्मिन् प्रकृते शोधपत्रे गीतायां तत्तत्क्षेत्रे प्रतिपादितानां बुद्धिसिद्धान्तानामेकं समीक्षणात्मकमध्यनम् प्रस्तूयते।

कुञ्चीशब्दाः -

बुद्धिः, प्रबन्धनम्, भारतीयज्ञानपरम्परा, शिक्षणम्, आत्मोत्कर्षः, शैक्षिकावधारणा।

The Quest for the Self and the Search for Home: A Vedantic Reading of Anita Desai's Bye-Bye Blackbird and Bharati Mukherjee's Jasmine

Avinanda Datta

Assistant Professor, Department of Foreign Languages, University of Patanjali

The experience of migration often produces a profound crisis of belonging, compelling the diasporic subject to negotiate geographical displacement, cultural estrangement, and the desire for a stable sense of identity. This paper proposes a Vedantic reading of the search for home and selfhood in Anita Desai's *Bye-Bye Blackbird* (1971) and Bharati Mukherjee's *Jasmine* (1989). Rather than understanding home merely as a geographical or cultural location, the paper explores it as an evolving inner and philosophical space through which the fragmented self moves towards integration and self-realization. Drawing upon the Upanishadic conception of *Ātman* and the *Advaita Vedānta* of Ādi Śaṅkarācārya, the study engages with *Ātman, Brahman, avidyā, māyā, ātma-jñāna,* and *mokṣha*. The Upanishadic assertion "Tat Tvam Asi" ("That Thou Art") provides a philosophical lens for reconsidering the relationship between identity, belonging, and the realization of the Self. Within Advaita, the perception of separateness is associated with *avidyā*, while knowledge of the true Self becomes a movement towards liberation. In *Bye-Bye Blackbird*, the experiences of Adit, Sarah, and Dev reveal different responses to migration, cultural estrangement, and the conflicting pulls of India and England. Their experiences expose the instability of an identity divided between cultural locations. In *Jasmine*, Jyoti/Jasmine/Jase/Jane undergoes successive transformations in which identity is repeatedly dismantled and reconstructed. Her movement across geographical and cultural spaces consequently becomes a journey through changing conceptions of the self. Reading these transformations through Vedantic philosophy, the paper asks whether the diasporic subject's search for an external home may also be understood as an unconscious search for an integrated Self. It argues that both texts move beyond diasporic fragmentation towards a conception of belonging grounded in inner consciousness. Home, therefore, emerges not simply as a place of return but as a state of consciousness in which the fragmented self moves towards self-realization.

Keywords: Vedānta, Advaita, Ātman, Brahman, avidyā, māyā, mokṣha, diasporic identity, home

Spirituality as a Force of Individual and Collective Transformation: A Study of Sri Aurobindo and Swami Vivekananda

REKHA

:

To understand the relationship between the individual, the world, and ultimate reality, Indian spirituality has developed diverse approaches over time. Ancient traditions of Vedanta, Yoga, the Upanishads, and the Bhagavad Gita provided different approaches to spiritual realization and human development. Over time, these approaches were interpreted in various ways by different thinkers in response to changing intellectual and social conditions. In the modern context, Sri Aurobindo and Swami Vivekananda are two important thinkers who sought to reinterpret ancient Indian philosophies of spirituality. Both thinkers believed that spiritual development could transform the individual, although they followed different approaches. Swami Vivekananda emphasized the realization of the divinity already present within human beings through the paths

of devotion, knowledge, meditation, and action, whereas Sri Aurobindo's philosophy is associated with consciousness, evolution, and transformation. Aurobindo developed his distinctive conception of spirituality through his philosophy of Integral Yoga. Both thinkers rejected a narrow understanding of spirituality and viewed spiritual development as a means of transforming the individual and society. Therefore, the relationship between their ideas is significant for understanding modern Indian spirituality.

This paper examines the relationship between the two thinkers and explores their respective concepts of spirituality and its role as a principle of transformation, with particular focus on the individual self, action and service, universal humanity, and the possibility of a higher form of human existence.

योगसूत्र-व्यासभाष्य-पाठालोचनम् अर्थविचारश्च

सावित्री

शोधच्छात्रा, संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

शोध-सार

यह शोधपत्र 'योगसूत्र तथा व्यासभाष्य का पाठालोचन तथा कुछ विशिष्ट सूत्रगत एवं भाष्यगत पदों का अर्थविचारपूर्वक अनुसंधान' प्रस्तुत करता है। यद्यपि वर्तमान समय में योगसूत्र एवं व्यासभाष्य की अनेक वृत्तियाँ एवं टीकाएँ उपलब्ध हैं, तथापि अनेक स्थलों पर पाठभेद तथा व्याख्याभेद दिखाई देते हैं, जिससे योगसूत्र के शब्दार्थ को जानने, समास का निर्धारण करने, समासजन्य अर्थ को अधिगत करने ,शब्दार्थविषयक मतभेदों को दूर करने में अनेक प्रकार के सन्देह उत्पन्न होते हैं।

कतिपय उदाहरणों के माध्यम से यह समझा जा सकता है कि योगसूत्र एवं व्यासभाष्य के सूत्रगत एवं भाष्यगत पदों तथा वाक्यों के अनेक स्थलों पर समीक्षात्मक पाठालोचन, व्याकरणात्मक विश्लेषण तथा विभिन्न व्याख्याओं के शब्दार्थ का तुलनात्मक अध्ययन नितान्त अपेक्षित है।यथा-(1) 'बाह्याभ्यन्तरविषयाक्षेपी चतुर्थः' (योगसूत्र 2.51) में 'विषयाक्षेपी' पद के विभिन्न टीकाकारों द्वारा भिन्न-भिन्न अर्थ प्राप्त होते हैं। योगसुधाकरकार ने 'आक्षेपी' का अर्थ 'अनादर करने वाला', भावागणेशवृत्तिकार ने 'विषयातिक्रमी' तथा भोजवृत्तिकार ने 'विषय का पर्यालोचन करने वाला' किया है। प्राचीन टीकापरम्परा एवं प्रसंगगत संगति के आधार पर भोजवृत्ति में प्राप्त अर्थ अधिक युक्तियुक्त प्रतीत होता है।

(2) 'अभावप्रत्ययालम्बना वृत्तिर्निद्रा'।। (योग. 1.10) यहाँ द्विविध समास प्रचलित है—अभावस्य प्रत्ययः अभावप्रत्ययः (षष्ठी-तत्पुरुष), अभावश्चासौ प्रत्ययश्च अभावप्रत्ययः (कर्मधारय-तत्पुरुष)। ऐसे स्थलों में प्राचीन एवं प्रामाणिक व्याख्यान के आधार पर समास के साथ अर्थनिर्णय करना वाञ्छित होगा। प्रस्तुत शोधपत्र में विभिन्न टीकाओं के तुलनात्मक अध्ययन, पदों एवं वाक्यों के व्याकरणात्मक विश्लेषण तथा प्राचीन हस्तलिखित पाण्डुलिपियों को आधार बनाकर सूत्रगत एवं भाष्यगत विसंगतियों के निराकरण पर विचार किया गया है।

जीवेश्वरयोर्मतभेदेन स्वरूपनिरूपणम्—बिम्बप्रतिबिम्बवादावच्छेदवादयोः सिद्धान्तलेशसंग्रहानुसारेण अध्ययनम्

BHARAT HARANATTI

॥ पीठिका ॥

> अद्वैतवेदान्तदर्शने "ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः" इति सिद्धान्तः सर्वोपरि वर्तते। परमार्थतः ब्रह्म एकमेव अद्वितीयं निर्विकारं च। तथापि व्यवहारदशायां जीवेश्वरजगद्भेदः प्रतीयते। कथमयं भेदः? इति प्रश्नस्य समाधानाय आचार्यैः द्वे प्रमुखे प्रक्रिये उपन्यस्ते।

> प्रथमा - बिम्बप्रतिबिम्बवादः। यथा दर्पणे मुखस्य प्रतिबिम्ब: भवति, तथा मायायां ब्रह्मणः प्रतिबिम्बः ईश्वरः, अविद्यायाम् अन्तःकरणे च प्रतिबिम्बः जीवः इति विवरणकाराः वदन्ति।

> द्वितीया - अवच्छेदवादः। यथा घटेन महाकाशः घटाकाशत्वेन अवच्छिद्यते, तथैव अन्तःकरणोपाधिना सर्वगतं चैतन्यं जीवत्वेन अवच्छिद्यते इति भामतीकाराः वाचस्पतिमिश्राः प्रतिपादयन्ति।

> श्रीमदप्पय्यदीक्षितविरचिते सिद्धान्तलेशसंग्रहे अनयोः द्वयोः वादयोः विस्तृतः परामर्शः कृतः अस्ति। अस्यैव ग्रन्थस्य आधारेण प्रस्तुतं अध्ययनं प्रवर्तते।

> अस्य अध्ययनस्य मौलिकं योगदानं नाम अत्र विद्यमानः राजसूनु-व्याध-कर्ण-राधेयत्व-दृष्टान्तः। यथा राजपुत्रः व्याधकुले संवर्धितः आत्मानं व्याधं मन्यते, यथा च कौन्तेयः कर्णः आत्मानं राधेयं मन्यते, तथैव ब्रह्मस्वरूपोऽपि जीवः स्वाविद्यया संसारित्वम् अभिमन्यते। महावाक्यश्रवणेन यथा राजसूनोः व्याधभावः निवर्तते, तथा तत्त्वमस्यादिवाक्येन जीवभावो निवर्तते।

> अनेन दृष्टान्तेन अवच्छेदवादस्य युक्तियुक्तता, जीवस्य औपाधिकत्वं, ज्ञानात् मोक्षश्च इति विषयाः अत्र सविस्तरं निरूप्यन्ते। एतत् अध्ययनं ब्रह्मविद्यायाः मोक्षोपयोगित्वं प्रकाशयति।

अर्थहीन ब्रह्मांड में अर्थ की खोज: कामू के निरर्थकता-दर्शन (Absurdism) के आलोक में जीवन के अर्थ पर एक दार्शनिक विचार

Tanmay Sharma

स्नातक छात्र, पतंजलि विश्वविद्यालय (University of Patanjali), हरिद्वार

Text

मनुष्य अपने जीवन, रिश्तों, कर्म, दुख और इच्छाओं में हमेशा अर्थ खोजता रहता है, परंतु ब्रह्मांड इस खोज का कोई अंतिम या पहले से तय उत्तर नहीं देता। अल्बर्ट कामू (Albert Camus) इसी टकराव में निरर्थकता/अर्थ-संघर्ष (Absurd) को देखते हैं। इस शोध-पत्र का मुख्य प्रश्न है: "क्या जीवन का वास्तव में कोई अर्थ है?" यह अध्ययन कामू के दर्शन का केवल सार नहीं देता, बल्कि उसे एक बड़े दार्शनिक प्रश्न का आरंभ-बिंदु बनाता है: यदि जीवन का कोई पूर्वनिर्धारित अर्थ नहीं है, तो क्या जीवन अपने-आप निरर्थक हो जाता है?

शोध का उद्देश्य यह जाँचने है कि अंतिम उद्देश्य न होने से प्रेम, कला, रिश्ते और संघर्ष जैसे अनुभव अपने-आप निरर्थक हो जाते हैं या नहीं, और क्या अर्थ खोजने से अधिक महत्वपूर्ण अर्थपूर्ण ढंग से जीना है। अध्ययन की पद्धति वैचारिक, व्याख्यात्मक और दार्शनिक विश्लेषण पर आधारित है। कामू की कृति The Myth of Sisyphus को मुख्य सैद्धांतिक आधार बनाकर पलायन की अस्वीकृति, जागरूकता, विद्रोह (Revolt) और स्वतंत्रता की धारणाओं को समझा गया है। The Stranger, The Fall और The First Man को साहित्यिक और अस्तित्ववादी दृष्टि के रूप में लिया गया है, जो क्रमशः सामाजिक अपेक्षाओं, अपराध-बोध और आत्म-छल, तथा स्मृति और पहचान के प्रश्न उठाती हैं।

यह शोध कामू को भारतीय दर्शन का हिस्सा नहीं मानता और न ही कोई तुलना थोपता है। फिर भी "भारतीय दर्शन एवं दर्शनशास्त्र" के बड़े विषय में पश्चिमी विचारक का अध्ययन इसलिए उपयोगी है कि जीवन के अर्थ का प्रश्न किसी एक परंपरा तक सीमित नहीं है। अलग-अलग दार्शनिक परंपराओं के बीच संवाद इसी साझा जिज्ञासा से आगे बढ़ सकता है। इस पत्र का अपेक्षित योगदान यह है कि यह अर्थ की समस्या को अंतिम निष्कर्ष के रूप में नहीं, बल्कि खोज के रूप में रखेगा और यह देखेगा कि क्या अर्थ जीवन के अनुभव के भीतर रचा जा सकता है।

Keywords

- निरर्थकता (Absurd), अल्बर्ट कामू, Absurdism, जीवन का अर्थ, विद्रोह (Revolt), अस्तित्ववाद (Existentialism), सिसिफस।
-

Fivefold Religious Formulations in Indian Religious Traditions:

A Comparative Study of Pañca-Pakāra, Pañca-Makāra and Pañca-Kakāra

Dr. Kuldip Singh Dhillon

Assistant Professor,

Department of Punjabi Studies,

Khalsa College Amritsar,

Punjab.

The use of fivefold classifications (*pañca*) constructs an important structure in Indian religious history and its philosophical background. It has been seen in Indian religious movements that the fivefold is used to exercise practical day-to-day life, ritual, ethical discipline, spiritual symbolism, religious identity and the relation between the mundane world and eternal mystical dimensions of spiritual experience. This research paper puts sheds new light on the comparative study of a few such fivefold (*pañca*) formulations. i.e. 1. *Pañca-Pakāra* (Five Ps – *prārabdha*, *purushārtha*, *prārthanā*, *pratikṣā*, *pūrṇatā*) associated with Sanātana/Vaiṣṇava religious exercise. 2. The *Pañca-Makāra* (Five Ms – *madya, māṃsa, matsya, mudrā, maithuna*) of the Śākta-Tantric/Shaivite tradition, especially the 'Vāmamārga' traditions. 3. *Pañca-Kakāra* (Five Ks – *kes, kaṅghā, kaṛā, kirpān, kachherā*) of the Sikh Panth, especially associated with the 'Khalsa Panth'. Rather than assuming a direct historical relationship among these systems, the study will focus on their conceptual structures, textual foundations, ritual of baptism, symbolic interpretations and historical positioning and status. In this paper, particular attention is given to the structural foundations and conceptual background along with philosophical interpretations. Because in at first sight these three look very much unassociated with each other from the point of view of day-to-day practice. But when we focus on the spiritual groundings of these three religious movements then they are connected to the individual, the world and ultimate reality. One of these is purely associated with the body (*Pañca-Makāra*), the second with abstract world/psychological practice (*Pañca-Pakāra*) and the third with historical background, mundane world and at the same time spiritual practice (*Pañca-Kakāra*)

Methodologically, the study combines historical, existential and comparative approaches, based upon Classical Vaiṣṇava Sanskrit sources, Tantric literature and Sikh scriptural and historical sources. We will try to examine how the special number is used for theological purposes. How these formulations provide experiences beyond this mundane world and how these are associated with each other transcendentally. The spiritual philosophies in the basis of these, and the ethical commitment and social aspect of it as identity and all. We will try to search for the involvement of other sects or religious movements with the number five.

The present research paper focuses on the numerical transcendental resemblance and philosophical conceptual equivalence. These fivefold systems evolve from specific theological, ritual, social and historical paradigms by distinguishing structural similarity and distinctiveness.

Keywords**:** Pañca-Pakāra, Pañca-Makāra, Pañca-Kakāra, Sanātana Dharma, Vaiṣṇavism, Vāmamārga, Tantra, Sikhism, Khalsa Panth, comparative religion, ritual symbolism.

जीवन्मुक्ति: मानसिक शान्ति के परिप्रेक्ष्य में एक अध्ययन

SARLA RAJPUROHIT

Gurukul Kangri (Deemed to be University) Haridwar

Text

Research Parameters (Introduction): भारतीय दर्शन में मोक्ष के दो प्रकार जीवन्मुक्ति एवं विदेहमुक्ति माने गए हैं, मृत्यु के पश्चात् प्राप्त होने वाली मुक्ति को विदेहमुक्ति कहा जाता है। जबकि जीवन रहते हुए बन्धन से मुक्त होने की अवस्था जीवन्मुक्ति कहलाती है। प्रस्तुत शोध का उद्देश्य जीवन्मुक्ति का मानसिक शान्ति के रूप में अध्ययन करना है। पुण्यकर्म से प्राप्त होने वाले सुख अथवा स्वर्ग की इच्छा मनुष्य को फल के प्रति आसक्त रखती है तथा अपुण्यकर्म से प्राप्त होने वाले दुःख अथवा अनिष्ट फल की आशंका उसके मन में भय उत्पन्न करती है। अतः कर्म करते हुए भी कर्मफल की अपेक्षा तथा भय से मुक्त अन्तःस्थिति को जीवन्मुक्ति के रूप में समझना इस शोध का प्रमुख उद्देश्य है।

Methodology**:** प्रस्तुत शोध में वर्णनात्मक, विश्लेषणात्मक एवं तुलनात्मक प्रविधि का मुख्य रूप से प्रयोग किया गया है। प्राथमिक स्रोत के रूप में उपनिषदों, भगवद्गीता तथा भारतीय दर्शन के प्रमुख ग्रन्थों से प्राप्त प्रमाणों का अध्ययन किया गया है।

Data & Findings**:** अध्ययन से प्राप्त प्रमाणों के आधार पर स्पष्ट होता है कि भारतीय दर्शन में बन्धन की निवृत्ति को मानसिक शान्ति से सम्बन्धित किया जा सकता है। "भिद्यते हृदयग्रन्थिः, छिद्यन्ते सर्वसंशयाः" इत्यादि श्रुतिवाक्य आत्मज्ञान के द्वारा अन्तःकरण में स्थित बन्धन एवं संशय की निवृत्ति को स्पष्ट करता है। यहाँ हृदयग्रन्थि से आशय उन आसक्तियों, इच्छाओं, भय एवं संशयों से है, जो मनुष्य को मानसिक रूप से बाँधे रखते हैं।

Conclusion**:** अध्ययन के निष्कर्ष से यह प्रतिपादित होता है कि जीवन्मुक्ति केवल मृत्यु के पश्चात् प्राप्त होने वाली मुक्ति नहीं, बल्कि जीवन रहते हुए कर्मफल की अपेक्षा तथा उपेक्षा के भय से मुक्त होकर प्राप्त होने वाली मानसिक शान्ति की अवस्था है।

Keywords

जीवन्मुक्ति, मानसिक शान्ति, मोक्ष, कर्मफल, कर्मफल की अपेक्षा, , आत्मा-शरीर विवेक, ज्ञान, हृदयग्रन्थि।

योगवासिष्ठ में प्रह्लाद,उद्दालक एवं सरघु इन की कथाओं में निहित विचार-तत्त्व-विमर्श

Name of Presenter: *Dr.Renuka Karandikar,Assistant professor, Department of Bharatiya Darshan, Kavikulguru Kalidas Sanskrit University, Ramtek, Nagpur*

1. Aims and objectives/लक्ष्य और उद्दिष्टय

योगवासिष्ठ इस ग्रंथ के उपशम प्रकरण में प्रह्लाद,उद्दालक एवं सरघु की कथाओं का वर्णन है। इन कथाओं में संसार की प्राप्ति तथा संसार में पुन: पुन: जन्म इ. प्राप्त करने से प्राप्त होने वाले कष्टों को जानकर संसार से छुटने के मार्ग पर विमर्श किया है।विषयासक्ति को छोडकर चित्त एकाग्र करने से शम की प्राप्ती होति है,यह संदेश हमें इन कथाओं से प्राप्त होत है।मानवी जीवन का चरम लक्ष्य आध्यात्मिक मार्ग में उन्नति करना,मोक्ष की प्राप्ती कर संसारभावना से मुक्त हो जाना है। इन कथाओं के अध्ययन से साधकों के लिये आध्यात्मिक उन्नति का मार्ग सुकर बन सकता है। वसिष्ठ महर्षि ने श्रीराम जी के माध्यम से समस्त साधकों को जो यह आध्यात्मिक उन्नति का मार्ग उपदिष्ट किया है उसके विश्लेषणात्मक अध्ययन करने से विचार एवं चित्तैकाग्र्य के मार्ग पर प्रकाश डाला जाएगा।

2. Introduction/परिचय

श्रीमद्भगवद्गीता में जिस तरह अर्जून को उद्दिष्ट कर भगवान ने समस्त विश्व को उपदेश दिया है उसीतरह योगवासिष्ठ ग्रंथ में संसार के विषयों से परावृत्त श्रीरामजीको वसिष्ठजीने योग एवम् ज्ञान के माध्यम से चित्तैकाग्र्य एवं मोक्ष का

उपदेश किया। वसिष्ठजी कहते है कि,"संसाररूपी मायाचक्र नित्य भ्रमणशील तथा भ्रान्तिदायक है। तुम चित्त को इस चक्र की महानाभि समझो। जब पुरुष प्रयत्नपूर्वक इस चित्त को स्तम्भित कर देता है तब जिसकी नाभि पकड ली गयी है,ऐसा यह मायाचक्र शीघ्र ही आगे बढने से रुक जाता है ।"इसतरह चित्तनिरोध रुपी युक्ती का वर्णन किया है तथा विवेक, वैराग्य,गुरुसंनिधि इन का भी कथन है। उद्दालक मुनि को पञ्चमहाभूतों केविचार-विमर्श से परमोत्कृष्ट एवं अविनाशी दृष्टि किस तरह प्राप्त हुई,उस का भी कथन वसिष्ठ महर्षि ने किया है। महर्षि माण्डव्य का राजा सुरुघु को "आत्मविषयक विवेक-विचार करने से ही मनके भीतरसंताप का शमन होता है।"यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण उपदेश योगवसिष्ठ में कथित है।

Relevance of Philosophical Counselling for Strengthening Personal Resilience in Young Generations: An Exploratory Study

DAYEETA ROY

The gifted life has many challenges. Some of the challenges are visible, and most of them are not visible. These invisible challenges create an existential crisis. Therefore, this paper exclusively introduces the existential crisis that Generation Z is facing at every corner of their life. Their approach to the world is becoming alarming, and philosophical reflections could help them to overcome those dilemmas and challenges. This paper explores how philosophical theories are not only theories but are the art of living. Internalising ancient philosophical mechanisms into life with everyday practice has immense power to balance existential questions for all. Living philosophically is a tool when we take a pause and ask, 'Why am I doing this?' Or "What does this moment teach me?' In recent decades, especially after COVID-19, the global situation has shifted to a critical state. Therefore, defining personal resilience among young generations (ability to adjust, recover, overcome the crisis, etc.) in the light of Indian philosophy is important. This study aims to explore the key Indian philosophical approaches such as the Bhagavad Gita, Buddhism, Jainism, Nyaya, Yoga, and Vedanta, which reinforce a sense of control, finding meaning in life, and mental adaptability. The foundation of Indian philosophy lies in constructive dialogue that can help youngsters to deal with life's circumstances productively. The findings show significant improvement in the areas of acceptance, building self-confidence, understanding, and critically observing life challenges and giving them meaning.

Keywords: Philosophical Counselling, Living Philosophically, Personal Resilience, Self-confidence, Mental Adaptability.

Prakriti and Purusha in Sankhya Philosophy: A Study of

Reality, Experience, and Liberation

Tamanna

University of Patanjali

Text

Sankhya philosophy offers a systematic explanation of reality through the distinction between Prakriti and Purusha. This study examines the relationship between these two fundamental principles and considers its importance in understanding human experience, bondage, and

liberation. Focusing on the classical Sankhya tradition presented in Ishvarakrishna's Sankhya Karika, the discussion explores the nature of Prakriti, its three gunas, the evolution of the tattvas, and the distinctive character of Purusha as pure consciousness and the witnessing principle.

Adopting a qualitative philosophical and textual approach, the study closely examines selected karikas, particularly Karikas 3, 17, 18, 20, 21, 22, and 64. It explains how Prakriti functions as the dynamic material principle composed of sattva, rajas, and tamas, while Purusha remains an inactive, conscious witness. The body, senses, mind, ego, and intellect are understood as manifestations of Prakriti, whereas consciousness belongs to Purusha. Although fundamentally distinct, their apparent association makes experience, action, pleasure, and suffering possible.

According to Sankhya, bondage arises when the distinction between Prakriti and Purusha is not properly understood. Through discriminative knowledge, or viveka, this confusion is removed, opening the way to liberation. The study concludes that the distinction between Prakriti and Purusha is essential to Sankhya's account of reality, consciousness, human experience, bondage, and liberation. Recognizing their difference is therefore not merely a metaphysical insight but a necessary step toward attaining kaivalya. This understanding remains relevant to contemporary discussions on consciousness and matter. In this way, Sankhya's analysis continues to offer valuable perspectives on the relationship between consciousness and matter within the wider study of Indian philosophy.

Keywords

Prakriti; Purusha; Sankhya Philosophy; Gunas; Viveka; Kaivalya

भारतीय दर्शन में Philosophy : षड्दर्शन, ज्ञानमीमांसा एवं सत्तामीमांसा का दार्शनिक अध्ययन

NISHA KUMARI

Text

Research Parameters (Introduction): *प्रस्तुत शोध अध्ययन भारतीय दर्शन में Philosophy की अवधारणा को षड्दर्शन—सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, पूर्वमीमांसा और वेदान्त—के संदर्भ में ज्ञानमीमांसा तथा सत्तामीमांसा के पारस्परिक सम्बन्ध के आधार पर विश्लेषित करता है। अध्ययन का मुख्य प्रश्न यह है कि भारतीय दार्शनिक परम्परा में ज्ञान के साधनों और सत्ता के स्वरूप का निर्धारण किस प्रकार परस्पर सम्बद्ध है तथा यह सम्बन्ध मोक्ष, धर्म और मानव जीवन की सार्थकता को कैसे प्रभावित करता है।*

Methodology: *शोध अध्ययन में तुलनात्मक एवं विश्लेषणात्मक पाठ-आधारित पद्धति अपनाई गई है। सांख्यकारिका, पातञ्जलयोगसूत्र, न्यायसूत्र, वैशेषिकसूत्र, मीमांसासूत्र तथा उपनिषद् के मूल सूत्रों और दार्शनिक प्रतिपादनों का अध्ययन करते हुए ज्ञानमीमांसा, तत्त्वमीमांसा और साधना के बीच अन्तर्सम्बन्ध का परीक्षण किया गया है। प्राथमिक संस्कृत स्रोतों के साथ पारम्परिक व्याख्याओं को संदर्भित कर दार्शनिक अवधारणाओं की तुलनात्मक व्याख्या की गई है।*

Data & Findings: *शोध अध्ययन से स्पष्ट होता है कि सांख्य में प्रकृति-पुरुष विवेक और सत्कार्यवाद के माध्यम से सत्ता का विश्लेषण, योग में चित्तवृत्तिनिरोध एवं विवेकख्याति के माध्यम से उसका साधनात्मक रूपान्तरण, न्याय में प्रमाण-प्रमेय के द्वारा यथार्थ ज्ञान की स्थापना तथा वैशेषिक में पदार्थ-विश्लेषण प्रमुख हैं। पूर्वमीमांसा वैदिक चोदना के आधार पर धर्म और कर्म को तथा वेदान्त ब्रह्म, आत्मा और जगत् के सम्बन्ध को केन्द्र में रखता है। इस प्रकार भारतीय दर्शन में ज्ञानमीमांसा(Epistemology) और सत्तामीमांसा (Ontology) स्वतंत्र अनुशासन न होकर परस्पर पूरक दार्शनिक आयाम हैं।*

Conclusion: *प्रस्तुत शोध अध्ययन का निष्कर्ष है कि भारतीय Philosophy ज्ञान, सत्ता, आचरण और मोक्ष को एक समन्वित चिन्तन-परम्परा में देखती है। षड्दर्शन के भिन्न प्रतिपादनों के बावजूद यथार्थ ज्ञान और तत्त्वबोध मानव जीवन के परम प्रयोजन से जुड़े हैं।*

Keywords

भारतीय दर्शन; षड्दर्शन; ज्ञानमीमांसा; सत्तामीमांसा; तत्त्वज्ञान; चित्तवृत्तिनिरोध

साक्षीभाव: श्रीमद्भगवद्गीता के संदर्भ में

(Sakshi Bhava: In the Context of the ŚrīmadBhagavadGītā)

Ankit Kumar

Ph.D. Scholar, University of Patanjali, Haridwar

Dr. Sanwar Singh Yadav

Assistant Professor, University of Patanjali, Haridwar

सारांश:-

भारतीय दार्शनिक परंपरा में साक्षीभाव एक महत्वपूर्ण अवधारणा है, जो व्यक्ति को अपने विचारों, भावनाओं, इच्छाओं, सुख-दुःख तथा मानसिक अवस्थाओं के प्रति सजग एवं तटस्थ दृष्टि विकसित करने की प्रेरणा देती है। सामान्यतः साक्षीभाव का अर्थ ऐसी चेतन अवस्था से है जिसमें व्यक्ति अपने अनुभवों को देखता और समझता है, किंतु उनके साथ पूर्ण तादात्म्य स्थापित नहीं करता। श्रीमद्भगवद्गीता में 'साक्षीभाव' शब्द को किसी स्वतंत्र सिद्धांत के रूप में व्यवस्थित रूप से प्रस्तुत नहीं किया गया है, फिर भी आत्मा, क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ, स्थितप्रज्ञता, समत्व, अनासक्ति तथा निष्काम कर्म जैसी शिक्षाओं में इसकी स्पष्ट दार्शनिक आधारभूमि दिखाई देती है। प्रस्तुत शोध-पत्र का उद्देश्य श्रीमद्भगवद्गीता के संदर्भ में साक्षीभाव के स्वरूप का अध्ययन एवं विश्लेषण करना है।

गीता के द्वितीय अध्याय में आत्मा को नित्य, अजन्मा और अविनाशी बताते हुए उसे शरीर से भिन्न माना गया है। यह आत्मा और शरीर के मध्य विवेक स्थापित करने का आधार प्रदान करता है। साक्षीभाव की दृष्टि से यह विवेक महत्वपूर्ण है, क्योंकि शरीर, मन तथा उनकी अवस्थाएँ परिवर्तनशील हैं, जबकि आत्मा को गीता स्थायी चेतन तत्त्व के रूप में प्रस्तुत करती है। इसी प्रकार तेरहवें अध्याय में क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ का विवेचन ज्ञाता और ज्ञेय के भेद को स्पष्ट करता है। क्षेत्र परिवर्तनशील है, जबकि क्षेत्रज्ञ उसका ज्ञाता है। इस आधार पर साक्षीभाव को व्यक्ति की उस चेतन दृष्टि के रूप में समझा जा सकता है जिसमें वह अपने शरीर, मन और अनुभवों को जानने वाला बना रहता है।

गीता में स्थितप्रज्ञ का वर्णन साक्षीभाव के व्यावहारिक स्वरूप को समझने में विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। सुख-दुःख, राग-द्वेष, भय और क्रोध जैसी स्थितियों के मध्य स्थिर बुद्धि बनाए रखना स्थितप्रज्ञता का प्रमुख लक्षण है। इसी प्रकार "समत्वं योग उच्यते" के माध्यम से गीता सफलता-असफलता, लाभ-हानि तथा जय-पराजय में समभाव रखने की शिक्षा देती है। यह समत्व व्यक्ति को परिस्थितियों के प्रति अत्यधिक भावनात्मक तादात्म्य से बचाते हुए संतुलित दृष्टि विकसित करने में सहायक होता है।

निष्काम कर्मयोग भी साक्षीभाव की अवधारणा को व्यवहार के स्तर पर स्पष्ट करता है। गीता कर्म का त्याग करने के स्थान पर कर्मफल की आसक्ति का त्याग करने की शिक्षा देती है। व्यक्ति अपने कर्तव्य का पालन करते हुए परिणाम के प्रति अत्यधिक मानसिक आसक्ति से मुक्त रहने का प्रयास करता है। इसी प्रकार प्रकृति के गुणों द्वारा कर्मों के संपादन तथा अहंकारवश स्वयं को कर्ता मानने का विवेचन कर्तृत्वाभिमान और साक्षीभाव के संबंध को समझने में सहायक है।

अतः अध्ययन से यह निष्कर्ष प्राप्त होता है कि श्रीमद्भगवद्गीता में साक्षीभाव किसी एक श्लोक या अध्याय तक सीमित अवधारणा नहीं है, बल्कि आत्मज्ञान, क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ विवेक, स्थितप्रज्ञता, समत्व, अनासक्ति और निष्काम कर्मयोग से संबंधित एक व्यापक दृष्टि है। गीता का साक्षीभाव व्यक्ति को जीवन और कर्म से विमुख नहीं करता, बल्कि परिस्थितियों एवं मानसिक अवस्थाओं के मध्य सजग, संतुलित और विवेकपूर्ण दृष्टि बनाए रखने की प्रेरणा

देता है। इस प्रकार साक्षीभाव को गीता की आत्मदृष्टि और कर्मयोग के बीच एक महत्वपूर्ण सेतु के रूप में समझा जा सकता है।

प्रमुख शब्द: साक्षीभाव, श्रीमद्भगवद्गीता, आत्मा, क्षेत्रज्ञ, स्थितप्रज्ञ, समत्व, अनासक्ति, कर्मयोग।

॥ वेदान्ततत्वानां प्रतिपादने पञ्चदशीस्थदृष्टान्तानां योगदानम्।॥

शोधच्छात्रस्य नाम / श्रीधरः वेङ्कट्रमण भट्टः

विभागः – अद्वैतवेदान्तः / संस्था – पूर्णप्रज्ञसंशोधनमन्दिरम्, बेङ्गळूरु

शोधसारांशः ()

अद्वैतवेदान्तस्य गूढतत्त्वानां सुबोधतया प्रतिपादनाय श्रीविद्यारण्यमुनिना विरचिता पञ्चदशी इति प्रकरणग्रन्थः अत्यन्तं महत्त्वपूर्णः। अस्मिन् ग्रन्थे जीवब्रह्मैक्यम्, माया, अविद्या, जगन्मिथ्यात्वम्, आत्मतत्त्वम्, मोक्षः इत्यादीनां वेदान्तसिद्धान्तानां प्रतिपादनाय लौकिकवैदिकदृष्टान्तानां बहुधा प्रयोगः कृतः अस्ति।

प्रस्तुते शोधकार्ये पञ्चदश्यां प्रयुक्तानां दृष्टान्तानां संग्रहः, वर्गीकरणं, दार्शनिकविश्लेषणं च क्रियते। दृष्टान्त-दृष्टान्तिकयोः सम्बन्धं निरूप्य तेषां वेदान्ततत्त्वप्रतिपादने योगदानं विविच्यते। विशेषतः पञ्चदशप्रकरणेषु दृष्टान्तानां प्रयोगस्य प्रयोजनं तथा तैः गूढवेदान्ततत्त्वानां कथं सुबोधतया प्रतिपादनं भवति इति अस्मिन् शोधे विवेच्यते। एवं पञ्चदश्यां प्रयुक्तदृष्टान्ताः केवलं तत्त्वबोधस्य साधनानि न, अपि तु वेदान्तविचारस्य सुलभीकरणे महत्त्वपूर्णानि साधनानीति अस्य शोधस्य मुख्यप्रतिपादनम्।

बीजशब्दाः (Key-words)

पञ्चदशी, श्रीविद्यारण्यमुनिः, अद्वैतवेदान्तः, दृष्टान्तः, दाष्टान्तिकसमन्वयः, अध्यारोपापवादः, भानेऽप्यभानम्, जीवब्रह्मैक्यम्, मायातत्त्वम्।

The Influence of Nyayasastra on the Indian Legal Tradition

Dr.Renuka K C

Professor

Department of Sanskrit Nyaya

Sree Sankaracharya University of Sanskrit,

Kalady

The Nyaya,one of the six systems of Indian Philosophy is said to be one of the main sources of India Judiciary.The Nyaya occupies an important place in the historical development of Indian legal thought. Rooted in the ancient Indian intellectual tradition. Nyayasastra reflects principles concerning justice, rights, duties, legal reasoning, evidence, and the administration of justice. This paper examines the influence of Nyayasastra on the evolution of the Indian legal tradition Nyayasastra occupies an important place in the historical development of Indian and explores its contribution to the understanding of law and justice in ancient and medieval India. It analyses how concepts of *dharma*, evidence, dispute resolution, and judicial decision-making were developed and applied within traditional legal systems. The study also considers the relationship between Nyayasastra and other sources of ancient Indian law, including *Dharmasastra*, customary practices, and royal authority. By examining these principles in their historical context, the paper highlights the continuity and transformation of Indian legal thought over time. In the ancient

period,governance was done by the sovereign power that is the monarchy but in the modern age it the policy of democracy.It argues that Nyayasastra provides valuable insights into the indigenous foundations of legal reasoning and the historical conception of justice in India. The study concludes by considering its relevance to contemporary discussions on Indian legal history and the development of indigenous jurisprudential traditions.

दर्शनपरम्परा में योगज प्रत्यक्ष

(A Philosophical Exposition of Yogaja Pratyakṣa)

खिलन प्रजापति

शोध-सारांश

आधुनिक विज्ञान और दर्शन में पदार्थवाद तथा अस्तित्ववाद की धारणाओं को विशेष महत्त्व प्राप्त है। इसके विपरीत योगदर्शन मन और इन्द्रियों से परे एक प्रकार के अलौकिक ज्ञान की सम्भावना को स्वीकार करता है। वर्तमान समय में मनुष्य अनेक प्रकार के सांसारिक द्वन्द्वों में संलग्न है; अतः अलौकिक ज्ञान के साधन तथा उससे सम्बन्धित तथ्यों का बोध आवश्यक हो जाता है। न्याय दर्शन की पारिभाषिक शब्दावली में इस प्रकार के ज्ञान की उत्पत्ति के लिए 'योगज सन्निकर्ष' अथवा 'योगज प्रत्यासत्ति' की संकल्पना प्रस्तुत की गई है। योगदर्शन के अनुसार साधक जब साधना के उच्च स्तर को प्राप्त करता है और समाधि की अवस्था में 'ऋतम्भरा प्रज्ञा' का उदय होता है, तब उसे सामान्य इन्द्रियजन्य ज्ञान से भिन्न विशिष्ट ज्ञान की प्राप्ति होती है।

न्याय, वैशेषिक, अद्वैत वेदान्त आदि विभिन्न भारतीय दर्शनों में योगज ज्ञान के स्वरूप और प्रमाणिकता के विषय में मतभेद पाए जाते हैं। कुछ दार्शनिकों ने योगियों के विशिष्ट ज्ञान को प्रमाणस्वरूप स्वीकार किया है, जबकि कुछ ने इसकी प्रमाणिकता पर आपत्ति की है। पाश्चात्य दर्शन में इस प्रकार के अनुभवों को 'आध्यात्मिक ज्ञान' तथा 'रहस्यानुभूति' के रूप में विवेचित किया गया है। आधुनिक मनोविज्ञान में भी चेतना के विशिष्ट स्तरों तथा सामूहिक चेतना की अवधारणाओं के साथ इनके सम्बन्ध पर विचार किया गया है। इन्हीं बिन्दुओं को आधार बनाकर प्रस्तुत शोध-पत्र में योग को केवल स्वास्थ्य-विज्ञान या शारीरिक अभ्यास के रूप में न देखकर उसके अलौकिक तथा दार्शनिक पक्ष का विशेष रूप से विवेचन किया गया है। इसमें न्याय, वैशेषिक, बौद्ध, योग, हठयोग, जैन तथा वेदान्त दर्शन में योगज प्रत्यक्ष अथवा उससे सम्बद्ध विशिष्ट ज्ञान की अवधारणाओं का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

कूट-शब्द: योगज प्रत्यक्ष, योगज सन्निकर्ष, रहस्यानुभूति, आध्यात्मिक प्रसाद, नादानुसन्धान, युक्त, वियुक्त तथा युञ्जान योगी।

वेदान्त की समकालीन प्रासंगिकता : भारतीय ज्ञानपरंपरा और विकसित भारत के संदर्भ में एक दार्शनिक अध्ययन

Miss Kashmira Rajesh Dali

Kavikulaguru KalidasSanskrit University Ramtek, Bharatratna Dr. P.V. Kane Sanskrit Study Centre Ratnairi Sub-centre

Ratnagiri, Maharashtra, India

शोधसार

भारतीय ज्ञानपरंपरा में वेदान्तदर्शन का महत्त्वपूर्ण स्थान है। जीव, जगत् और ब्रह्म के पारस्परिक संबंधों का विवेचन करते हुए यह मानवजीवन के परम लक्ष्य तथा उसकी प्राप्ति के साधनों पर विचार करता है। आत्मबोध, विवेक और मूल्याधिष्ठित आचरण से संबंधित इसकी अवधारणाएँ व्यक्ति एवं समाज के संबंधों पर चिंतन का आधार प्रस्तुत करती हैं। राष्ट्रीय शिक्षा नीति २०२० में भारतीय ज्ञानपरंपरा के संरक्षण, अनुसंधान तथा समकालीन उपयोग पर दिया गया बल वेदान्त के पुनर्विचार के लिए प्रासंगिक शैक्षिक पृष्ठभूमि प्रदान करता है।

'विकसित भारत @२०४७' की संकल्पना में आर्थिक उन्नति के साथ सामाजिक प्रगति, पर्यावरणीय संतुलन और सुशासन का भी समावेश है। इस व्यापक परिप्रेक्ष्य में विकास के मानवीय, नैतिक और आध्यात्मिक आयामों का दार्शनिक परीक्षण आवश्यक है। प्रस्तुत शोधपत्र का केंद्रीय प्रश्न यह है कि वेदान्त का आत्मबोधपरक चिंतन व्यक्ति के आंतरिक विकास और समाज के सामूहिक कल्याण के मध्य किस प्रकार संबंध स्थापित कर सकता है।

इस अध्ययन में उपनिषदों तथा भगवद्गीता के आधार पर आत्मबोध, विवेक, आत्मसंयम, कर्तव्यभाव और लोकसंग्रह की अवधारणाओं का विश्लेषण किया जाएगा। 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' (छान्दोग्योपनिषद् ३.१४.१) तथा 'ईशावास्यमिदं सर्वं' (ईशावास्योपनिषद् १) जैसे उपनिषद्वाक्य इस विवेचन के प्रमुख आधार होंगे। इन वचनों का समकालीन दार्शनिक पुनर्पाठ करते हुए समावेशिता, सहअस्तित्व और प्रकृति के प्रति उत्तरदायित्व की संभावनाओं पर विचार किया जाएगा ।

विश्लेषणात्मक एवं व्याख्यात्मक पद्धति पर आधारित इस शोधपत्र में उपभोगप्रधान जीवनदृष्टि के संदर्भ में आत्मसंयम, नैतिक उत्तरदायित्व और मूल्यनिष्ठ कर्म की प्रासंगिकता का परीक्षण किया जाएगा। अध्ययन का उद्देश्य भारतीय ज्ञानपरंपरा के अंतर्गत वेदान्त के ऐसे दार्शनिक पक्षों को सामने लाना है, जो विकसित भारत की संकल्पना को मानवीय संवेदनशीलता, सामाजिक समरसता और शाश्वत विकास की दृष्टि से समृद्ध कर सकते हैं। इस प्रकार वेदान्त के आध्यात्मिक प्रयोजन और उसके समकालीन सामाजिक निहितार्थों के बीच संवाद स्थापित करने का प्रयास किया जाएगा।

बीजशब्द : भारतीय ज्ञानपरंपरा, वेदान्तदर्शन, आत्मबोध, लोकसंग्रह, विकसित भारत, शाश्वत विकास।

Nishkama Karma in the Bhagavad Gita: A Philosophical study of .Action, Detachment and Liberation

Bhumika Singh

University of Patanjali

Text

The Bhagavad Gita presents action, renunciation, and liberation as interconnected dimensions of spiritual life. Within this framework, Nishkama Karma is commonly understood as action performed without attachment to the fruits of action. The present study examines the philosophical meaning of Nishkama Karma and analyses its relationship with action, attachment to results, detachment, equanimity, renunciation, and liberation. The study adopts a qualitative philosophical and textual approach, using the Bhagavad Gita as its primary source. Selected passages from Chapters 2, 3, 4, 5, 6, 12, and 18 are examined with particular attention to the concepts of karma, karma-phala, sanga, samatva, karma yoga, tyaga, sannyasa, and moksha. Relevant secondary scholarship on non-attached action, desire, motivation, duty, Vedantic interpretations, and liberation is also considered.

The analysis indicates that Nishkama Karma should not be understood as the abandonment of action or indifference towards its outcomes. Rather, it involves the performance of appropriate action while relinquishing possessive attachment to its fruits and maintaining equanimity in success and failure. The study further examines the relationship between Nishkama Karma and renunciation, particularly the distinction between sannyasa and tyaga in Chapter 18. The textual analysis shows that renunciation in the Gita does not necessarily require withdrawal from activity;

instead, relinquishment of attachment to the fruits of action constitutes an important dimension of tyaga. Nishkama Karma is therefore closely connected with Karma Yoga and with freedom from the binding consequences of action.

The study concludes that Nishkama Karma represents a transformation in the individual's relationship with action and its fruits rather than a rejection of action itself. It provides a framework through which responsible action, inner detachment, and equanimity can be integrated within the Gita's broader spiritual teaching concerning karma, jnana, bhakti, surrender, and liberation.

Keywords

Nishkama karma; Bhagavad Gita; Karma Yoga; Attachment; Detachment

दृश्यत्वहेतुविचारः - वाक्यार्थः

डा के मनोज्ञा

केन्द्रीयसंस्कृतविश्वविद्यालयः नवदेहली

मधुसूदनसरस्वतीविरचिते अद्वैतसिद्धिग्रन्थे दृश्यत्वहेतुः मिथ्यात्वसाधनार्थं प्रमुखतया निरूपितः। अद्वैतवेदान्ते जगन्मिथ्यात्वस्य स्थापना अत्यन्तमहत्त्वपूर्णा, तस्य सिद्ध्यर्थं विविधहेतवः प्रतिपादिताः, तेषु दृश्यत्वम् एकः प्रमुखः हेतुः। 'यद्दृश्यं तन्मिथ्या' इति सामान्यव्याप्तिमाश्रित्य दृश्यत्वस्य स्वरूपं, तस्य व्याप्तिः, तदुपपादनं च विस्तरेण चर्चितम्। दृश्यत्वं नाम प्रमाणजन्यवृत्तिव्याप्यत्वं, फलव्याप्यत्वं, अथवा चैतन्यस्य विषयत्वमिति नानार्थेषु विविच्य तेषां यथायोग्यमन्वयव्यतिरेकाभ्यां परीक्षणं कृतम्।

द्वैतमतानुसारिणः दृश्यत्वहेतोः व्यभिचारादिदोषान् आरोपयन्ति। ते ब्रह्मणोऽपि ज्ञेयत्वात् दृश्यत्वसत्त्वं मन्यन्ते, अतः मिथ्यात्वप्रसङ्ग इति वदन्ति। मधुसूदनसरस्वती तेषामाक्षेपान् सूक्ष्मतर्कैः परिहरति। ब्रह्मणः विषयत्वं न लौकिकवस्तुवत्, किन्तु स्वप्रकाशचैतन्यरूपत्वेन इति प्रतिपाद्य दृश्यत्वस्य मिथ्यात्वसाधकत्वं रक्षति। यच्च वस्तु ज्ञानवृत्तेः विषयभूतं भवति, तस्य परमार्थसत्ताभावः सिद्ध्यति; यतः तदन्यप्रकाश्यत्वेन अवस्थितम्। परमार्थतः केवलं ब्रह्म एव स्वयम्प्रकाशं, अदृश्यं, अविषयं च अस्ति।

अद्वैतसिद्धौ दृश्यत्वहेतोः विवेचनं केवलं तार्किकप्रदर्शनमात्रं न, अपितु अद्वैतसिद्धान्तस्य मूलाधारभूतस्य ब्रह्मैकत्वस्य प्रतिपादनाय प्रयुक्तं दार्शनिकमुपकरणम्। दृश्यत्वेन जगतः अवस्तुत्वं साध्यते, तथा च ब्रह्मणः सत्यत्वं, नित्यत्वं, स्वप्रकाशत्वं च प्रतिष्ठाप्यते। एवं दृश्यत्वहेतुः मिथ्यात्वानुमानस्य महत्त्वपूर्णाङ्गत्वेन अद्वैतवेदान्ते प्रतिष्ठितः, यः शास्त्रीयतर्कसमन्वितया पद्धत्या जगद्भ्रान्तित्वं तथा ब्रह्मणः पारमार्थिकसत्तां समर्थयति। अतः अद्वैतसिद्धौ दृश्यत्वहेतोर्विचारः अद्वैतवेदान्तदर्शनस्य गूढतत्त्वानां बोधाय अत्यन्तोपयोगी भवति।

न्यायशास्त्रे उपमानप्रमाणस्य स्वातन्त्र्यविमर्शः

- राजवीरसिंहः पटेलः

छात्रः, दर्शनविभागः

कविकुलगुरु कालिदास संस्कृत विश्वविद्यालयः, रामटेकम्

शोधसारः

भारतीयदर्शनपरम्परायां प्रमाणमीमांसा यथार्थज्ञानस्य स्वरूपं, साधनं, विषयं च सूक्ष्मतया विवेचयति। गौतममहर्षिणा **"प्रत्यक्षानुमानोपमानशब्दाः प्रमाणानि"** (न्यायसूत्रम् १.१.३) इति प्रमाणचतुष्टयं निर्दिष्टं; तत्र "प्रसिद्धसाधर्म्यात् साध्यसाधनमुपमानम्" (न्यायसूत्रम् १.१.६) इति उपमानलक्षणं निरूपितम्। तथापि उपमानस्य पृथक्प्रमाणत्वं केवलं

परम्परास्वीकृतिः, सादृश्यज्ञानस्य नामान्तरम्, उत विशिष्टज्ञानोत्पत्तिप्रक्रियायाः द्योतकम् इति प्रश्नः अस्य शोधस्य मूलाधारः।

न्यायपरम्परायां प्रसिद्धे गवयदृष्टान्ते पुरुषः **"गवयः गोसदृशः"** इति अतिदेशवाक्यं पूर्वं श्रुत्वा, अनन्तरम् अरण्ये गोसदृशं पशुं दृष्ट्वा "अयं गवयशब्दवाच्यः" इति ज्ञानं प्राप्नोति। अत्र सादृश्यस्य प्रत्यक्षग्रहणं महत्त्वपूर्णं भवति; किन्तु उपमितेः विषयः केवलं सादृश्यं न, अपि तु पूर्वमज्ञातस्य संज्ञासंज्ञिसम्बन्धस्य बोधः। अतः उपमानस्य वैशिष्ट्यं सादृश्यज्ञानमात्रे न, अपि तु सादृश्यसहकारेण तादृशज्ञानस्य जनने निहितम् इति शोधे प्रतिपाद्यते।

अनुमितौ **"यत्र धूमस्तत्र वह्निः"** इत्यादिव्याप्तिज्ञानपूर्वकं पक्षधर्मताज्ञानाद् एव फलं जायते; उपमितौ तु तादृशस्य पूर्वगृहीतव्याप्तिज्ञानस्य अपेक्षा न दृश्यते। शोधे विशेषतया परीक्ष्यते यत् सादृश्यं किं केवलं सहकारिकारणत्वेन कार्यं करोति, उत तदेव उपमितेः विशिष्टं करणम्। अतः फलभेदं, विषयभेदं, अनुमानसामग्र्यपेक्षाभेदं, करणव्यापारभेदं च आधारीकृत्य उपमानस्य अनुमानात् स्वातन्त्र्यं परीक्ष्यते।

वैशेषिकपरम्परायां प्रशस्तपादाचार्यादीनां द्विप्रमाणवादे उपमानस्य स्वतन्त्रप्रमाणत्वं न स्वीक्रियते, तस्य अन्यप्रमाणेष्वन्तर्भावः प्रतिपाद्यते। न्यायपरम्परायां तु उद्योतकरजयन्तभट्टादयः तस्य पृथक्प्रमाणत्वं समर्थयन्ति। मीमांसायां शबरस्वामिकुमारिलभट्टप्रभाकरशालिकनाथादीनां मतेषु उपमानस्य स्वतन्त्रप्रमाणत्वं स्वीकृतमपि तज्जन्यज्ञानस्वरूपविषये भिद्यते।

उपमानस्य दार्शनिकमहत्त्वं गवयदृष्टान्ते न सीमितम्। अपरिचितवस्तूनां परिचयः, नूतनशब्दानामर्थग्रहणं, पूर्वपरिचितवस्तुभिः नूतनवस्तूनां तुलनात्मकपरिचयः, शिक्षणप्रक्रियायां सादृश्योपयोगश्च लौकिकज्ञानव्यवहारे अस्य व्यापकतां दर्शयन्ति।

अस्य शोधस्य मूलप्रतिपादनम् उपमानस्य प्रमाणवैशिष्ट्यं सादृश्यज्ञानस्य उपस्थित्या न, अपि तु सादृश्यसहकारेण, अनुमानस्य व्याप्तिग्रहादिसामग्रीं विना, उत्पद्यमानस्य संज्ञासंज्ञिसम्बन्धबोधस्य ज्ञानजनकत्वेन दार्शनिकतया समर्थनीयम्। अतः उपमानस्य अनुमानान्तर्भावः पुनर्विचारणीयः इति निष्पद्यते।

बीजशब्दाः — उपमानम्, उपमितिः, अनुमानम्, अनुमितिः, सादृश्यं, व्याप्तिः, संज्ञासंज्ञिसम्बन्धः, अतिदेशवाक्यं, प्रमाणमीमांसा, न्यायः, मीमांसा, वैशेषिकम्।

ईश्वरपरिमाणविषये रघुनाथशिरोमणेः वेणीदत्तस्य च मतयोः एकं तुलनात्मकमध्ययनम्।

वैशाखी माकालः

गवेषकः

संस्कृतविभागः

वर्धमानविश्वविद्यालयः

वर्धमानः, पश्चिमवङ्गः

न्याय-वैशेषिक-आचार्याणां मते अष्टमं द्रव्यम् आत्मा इति। स च जीवात्म-परमात्मभेदेन द्विविधः। तेषां मते आत्मा ज्ञानाधिकरणम्। परमात्मा एव ईश्वरः। स च एकः सर्वज्ञश्च। जीवात्मा प्रतिशरीरं भिन्नः, विभुः, नित्यश्च। विभिन्नाः न्याय-वैशेषिक-आचार्याः आत्मनः विभिन्नं लक्षणं दत्तवन्तः। साधारणतः ज्ञानाधिकरणत्वमेव आत्मनः लक्षणम्। जीवात्मा परमात्मा च ज्ञानस्वरूपौ न स्तः, अपितु ज्ञानवन्तौ। किन्तु परमात्मनः ज्ञानं नित्यम्, एकं, प्रत्यक्षञ्च। जीवात्मनः ज्ञानम् अनित्यम्, बहु, प्रत्यक्ष-अनुमिति-उपमिति-शाब्द-स्मृतिरूपञ्च।

न्याय-वैशेषिकमते जीवात्मनि चतुर्दश गुणाः स्वीकृताः – संख्या, परिमाणं, पृथक्त्वं, संयोगः, विभागः, ज्ञानं, सुखं, दुःखं, इच्छा, द्वेषः, प्रयत्नः, धर्मः, अधर्मः, संस्कारश्च। परमात्मनि च अष्टौ गुणाः स्वीकृताः – संख्या, परिमाणं, पृथक्त्वं, संयोगः, विभागः, ज्ञानं, इच्छा, कृतिश्च। किन्तु न्याय-वैशेषिकसिद्धान्ते ईश्वरस्य परिमाणविषये मतानैक्यं प्रकाशितम्। ईश्वरः किं अणुः, मध्यमः, अथवा परममहत्परिमाणः? ईश्वरः अणुपरिमाणः इति वक्तुं न शक्यते। यदि ईश्वरः

अणुपरिमाणः स्वीक्रियते, तर्हि सर्वशास्त्रसम्मतं ईश्वरस्य सर्वव्यापकत्वं व्याहत्येत। पुनः ईश्वरः मध्यमपरिमाणः इति उक्ते ईश्वरः अनित्यः भवति। किन्तु ईश्वरः नित्यः – इति सर्वमतसिद्धम्। अतः न्याय-वैशेषिक-आचार्याणाम् अभिमतं यत् – परमात्मा वा ईश्वरः परममहत्परिमाणस्याश्रयः, अतएव विभुः। विभुत्वात् मूर्तद्रव्यमात्रेण सह ईश्वरस्य संयोगरूपः सम्बन्धः स्वीक्रियते।

किन्तु रघुनाथशिरोमणिः उक्तम् अभिमतं नानुमन्यते। तस्य मते – ईश्वरस्य परिमाणविशेषस्य अस्तित्वे किमपि प्रमाणं नास्ति। तस्मात् ईश्वरस्य परममहत्परिमाणं न प्रमाणसिद्धम्। स च पुनरुक्तवान् यत् सर्ववादिसम्मतं ईश्वरस्य विभुत्वं परममहत्परिमाणस्वरूपं न कृत्वा, सर्वमूर्तसंयोगित्वरूपं स्वीकृत्यैव विभुत्वं सिद्धं भवति। *'पदार्थतत्त्वनिरूपणम्'* इति ग्रन्थे विभिन्नैः युक्तिभिः सः ईश्वरस्य परममहत्परिमाणं खण्डितवान्। तस्मात् तस्य मते ईश्वरे परममहत्परिमाणस्याश्रयत्वस्वीकारः अयौक्तिकः।

किन्तु वेणीदत्तः रघुनाथशिरोमणेः उक्तं मतं खण्डितवान्। *'पदार्थमण्डनम्'* इति ग्रन्थे सः युक्तिं दत्तवान् यत् श्रुतौ यतोहि आत्मनः परिमाणस्य चर्चा अस्ति, ततोहि आत्मनः परिमाणं अवश्यमेव स्वीकार्यम्। सः विभिन्नाभिः युक्तिभिः आत्मनः महत्परिमाणं तथा रघुनाथशिरोमणेः मतं विचार्य आत्मनः परममहत्परिमाणस्याश्रयत्वं अर्थात् विभुत्वं प्रतिष्ठितवान्। न्याय-वैशेषिकपरम्परायाम् ईश्वरस्य परिमाणविषये रघुनाथशिरोमणेः वेणीदत्तस्य च विचारः एकं नवीनं मार्गं दर्शयिष्यति।

सूचकशब्दाः - जीवात्मा, परमात्मा, ज्ञानाधिकरणत्वम्, विभुत्वम्, सर्वमूर्तसंयोगित्वम्।

पृथिवीमहाभूतं पारिस्थितिकी चेतना च : एकमध्ययनम्

सुजीतवर्मनः

अनुसन्धाता

संस्कृतविभागः

त्रिपुराविश्वविद्यालयः

शोधसारः

'भूतम्' तथा 'महाभूतम्' शब्दाभ्यां केवलम् भौतिकवस्तुनः स्थूलांशस्य आश्रयतत्त्वमेव मात्रं नाऽवबुध्यते, अपितु सृष्टिविस्तारख्यापनप्रसङ्गे तात्त्विकसृष्टेः क्रमिकनिरूपणे आश्रीयमाणा 'तत्त्वविद्या'आभ्यां प्रकाश्यते, यस्याश्च शरीरविज्ञानं अध्यात्म च अवयवत्वेन विभाति। 'भूतम्' इति शब्दः 'भू' (सत्तायाम्) धातोः 'क्त' प्रत्ययस्य योगेन निष्पद्यते। अस्यार्थः वस्तुनां उत्पत्तिः, विकाशश्च अस्ति। ऋग्वेदाद् आरभ्य उपनिषत्सु, दर्शन-शास्त्रेषु, आयुर्वेदशास्त्रे, वास्तुशास्त्रे, तन्त्रविद्यायां च अस्य प्रमाणं समुपलभ्यते। **'भूतेभ्यो जातं भूतं वा भवति इति भूतम्'**। अस्यार्थोऽस्ति – अस्मिन् जगति यत् किमपि पूर्वं विद्यमानं सद् अद्याऽपि विद्यमानं तत् 'भूत'नाम्ना परिगण्यते। सामान्याचारे 'भूत' शब्देन अशारीरिकसत्त्वानि, शिवस्य अनुचराश्च गण्यन्ते,परन्तु भारतीयदार्शनिकाचारे, वैज्ञानिकपरम्परायाञ्च एतेन स्थूलविश्वस्य मौलिकम् उपादानं गृह्यते। ऋग्वेदस्य पुरुषसूक्ते 'भूत'शब्दः जगतः, प्राणिकुलस्य च अवबोधनाय व्यवहृतमस्ति। यथा -

पुरुषं एवेदं सर्वं यदभूतं यच्च भव्यम्।

पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यमृतं दिवि।।

जगतः दृश्यमानानि वस्तूनि परमपुरूषस्य अंशोऽस्ति। अस्मिन् जगति यत् सकलम् उत्पन्नं जातं तथा यत् सकलम् उत्पन्नं भविष्यति तत् प्राणिसकलं भूतः स च तस्य विराड्पुरुषस्य चतुर्थांशोऽस्ति। तैत्तिरीय-उपनिषत्सु ब्रह्मानन्दवल्यां परब्रह्मणः जगतः सृष्टिरित्थम् आलोचिताऽस्ति –

तस्माद्वा एतस्मात् आत्मनः आकाशः सम्भूतः। आकाशाद्वायुः। वायोरग्निः। अग्नेरापः।

अद्भ्यः पृथिवी। पृथिव्या ओषधयः। ओषधीभ्योऽन्नम्। अन्नात् पुरुषः॥ अर्थात् तस्मात् परमात्मन आकाशः, आकाशात् वायुः, वायोरग्निः, अग्नेर्जलम्, एतेन क्रमेण मानवशरीरस्य उत्पत्तिर्भवति। सांख्यदर्शने अहङ्कारस्य तामसिकवृत्तेः पञ्चतन्मात्रस्य उत्पत्तिः तस्मात् पञ्चमहाभूतस्य उत्पत्तिः कथिताऽस्ति -

प्रकृतेर्महांस्ततोऽहङ्कारस्तस्माद् गणश्च१ षोडशकः।

तस्मादपि षोडशकात् पञ्चभ्यः पञ्च भूतानि॥

वेदान्तदर्शनेऽपि अपञ्चीकृतसूक्ष्मभूतात् पञ्चीकरणद्वारा स्थूलभूतस्य उत्पत्तावस्थायाः व्याख्या प्राप्यते।

अस्मिन् शोधपत्रे पृथिवीमहाभूतं पारस्थितिकीचेतनापरिप्रेक्ष्ये आलोचितम् अस्ति । दार्शनिकपरम्परायां पृथिवीमहाभूतस्य अवरतमा उत्पत्तिरुक्ताऽस्ति । तथाऽपि महाभूतमिदं अन्यैः तत्त्वैः सह कथं सम्बध्यते तन्नाम पृथिवीमहाभूतं पारस्थितिकतन्त्रं कथं प्रभावयति ? अस्मिन् विषये आलोचना अस्य शोधपत्रस्य वाञ्छाऽस्ति। पृथिव्याः संरक्षणस्य यः उपदेशः परम्परायां निबद्धोऽस्ति तस्य तात्पर्यं किमस्ति ? 'पृथिवी'महाभूतमिति प्रयोगेन किंरूपा पृथिवी प्रकाश्यते ? नैयायिकपरम्परायां पृथिवीद्रव्यनिरूपणप्रसङ्गे प्रतिपादितनित्यानित्यभेदद्वयस्य तात्पर्यं किम् ? एतान् शोधप्रश्नान् समाधातुं अत्र प्रवर्तते ।

सन्तनामदेवस्य अभंगेषु अद्वैतवेदान्ततत्वानुचिन्तनम्

SAI RASHMI

(Research Parameters):

अस्मिन् शोधप्रबन्धे **महाराष्ट्रस्य वारकरी-भक्तिपरम्परायाः प्रमुखसन्तस्य सन्तनामदेवस्य अभङ्गेषु** निहितानाम् अद्वैतवेदान्तसम्बद्धानां तत्त्वानामन्वेषणं विश्लेषणं च क्रियते। सन्तनामदेवः मुख्यतः भगवतः विठ्ठलस्य अनन्यभक्तत्वेन प्रसिद्धः अस्ति। तथापि तस्य अभङ्गेषु अद्वैतभावना, अहङ्कारलयः, सर्वत्र भगवदुपस्थितिः, आत्मपरमात्मनोः ऐक्यम्, सगुण-निर्गुणयोः सम्बन्धश्च स्पष्टतया परिलक्ष्यन्ते। अस्य अध्ययनस्य प्रमुखः प्रश्नः वर्तते यत्— भक्तिभाषामाध्यमेन नामदेवस्य अभङ्गेषु अद्वैतवेदान्तस्य तत्त्वानि कथं प्रतिपादितानि सन्ति? अध्ययनस्य क्षेत्रं चितेष्वभङ्गेषु प्रतिपादितेष्वद्वैतसम्बद्धिष्वध्यात्मविचारेष्वेव सीमितं वर्तते।

(Methodology):

अस्मिन् अध्ययने चितानाम् अभङ्गानां तुलनात्मकं, पाठविश्लेषणात्मकं, दार्शनिकं च अध्ययनं विधीयते। नामदेवस्य भक्तिप्रधानाः विचाराः उपनिषदां तथा अद्वैतवेदान्तस्य प्रमुखैः सिद्धान्तैः सह तुल्यन्ते। विशेषतः आत्मब्रह्मणोः ऐक्यम्, अद्वैतभावना, अहङ्कारनिवृत्तिः, सर्वव्यापकत्वम्, सगुण-निर्गुणब्रह्मणोः सम्बन्धश्च अस्य अध्ययनस्य प्रमुखाः आधाराः सन्ति।

(Data & Findings):

अभङ्गानां विश्लेषणेन ज्ञायते यत् नामदेवस्य भक्तिदृष्टिः केवलं भक्त-भगवतोः द्वैतसम्बन्धे एव न पर्यवस्यति। "चहूकडे दिसे हरि" (चतुर्दिक्षु हरिरेव दृश्यते) इति भावेन भगवतः सर्वव्यापकत्वं समर्थ्यते। "माझे नाठवे मीपण, तेथे कैंचे दुजेपण" (मम अहन्ता न स्मर्यते, तत्र द्वैतभावः कुतः) इत्यनेन अहङ्कारनिवृत्तौ द्वैतस्य लयः सूचितः। "तीर्थ विठ्ठल, क्षेत्र विठ्ठल, देव विठ्ठल, देवपूजा विठ्ठल" इत्यादिषु वचनेषु विठ्ठलस्य सर्वत्र ऐक्यरूपेण अनुभूतिर्निरूप्यते। एवं नामदेवस्य काव्ये सगुणविठ्ठलः निर्गुणपरब्रह्मणः अनुभूतेः माध्यमरूपेण अपि प्रतीयते।

उपसंहारः (Conclusion):

अनेन अध्ययनेन प्रतिपद्यते यत् नामदेवः अद्वैतवेदान्तं केवलं शुष्क-दार्शनिकसिद्धान्तरूपेण न प्रतिपादयति, अपि तु भक्त्या, नामस्मरणेन, आत्मसमर्पणेन च अनुभूयमानं व्यावहारिकम् आध्यात्मिकैकत्वरूपं तत्त्वं प्रकाशयति। अतः तस्य अभङ्गेषु भक्तेः, ज्ञानस्य, अद्वैतस्य च अपूर्वः समन्वयः दृश्यते। एषा दृष्टिः मध्यकालीनभारतीयधार्मिक-दर्शनपरम्परायां भक्तिवेदान्तयोः परस्परसम्बन्धस्य अवगमने महत्त्वपूर्णं योगदानं विदधाति।

सह नाववतु इत्यादिमन्त्रे अवधात्वर्थविमर्शः

डा. सचिनद्विवेदी

सहायकाचार्यः , दर्शनविभागः

श्रीभगवानदास आदर्शसंस्कृतमहाविद्यालयः हरिद्वारम्

शोधपत्रसारांशः

ॐ सह नाववतु। सह नौ भुनक्तु। सह वीर्यं करवावहै। तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै॥ अस्मिन् मन्त्रे प्रथमे पादे अवतु इति क्रियापदप्रयोगः कृतः अस्ति। सामान्यतः अव् इति धातुः रक्षणार्थे एव प्रयुक्तो दृश्यते, अतः एव भगवत्पादैः भाष्यकारैः अवतु रक्षतु इत्येव धात्वर्थमादाय अर्थप्रतिपादनं कृतम्। किन्तु पाणिनीयधातुपाठे अव इति धातोः सन्ति अनेके अर्थाः। भ्वादिगणे परिपठितः अयं धातुः अव्र-क्षणगतिकान्तिप्रीतितृप्त्यवगमप्रवेशश्रवणस्वाम्यर्थयाचनक्रियेच्छादीप्त्यवाप्त्यालिङ्गनहिंसादानभागवृद्धिषु इत्थं सार्थस्वरूपवान् भवति। अस्य धातोः एकोनविंशति अर्थाः प्रतिपादिताः भगवता पाणिनिना। अत्र उक्तान् एकोनविंशति- अर्थान् दृष्ट्वा, किम् एतेषां सर्वेषामपि अर्थानां सह नाववतु इत्यादिमन्त्रे समन्वयः कर्तुं शक्यते वा? सन्देहस्य बीजं किम् इति चेत्, तत्र भगवद्पादैः शङ्कराचार्यैः एतत् मन्त्रस्य व्याख्यानावसरे केवलम् अवधातोः रक्षणम्, इत्येव अर्थः स्वीकृतः, तदनुसारेण व्याख्यातश्च। तर्हि रक्षणव्यतिरेकेण ये अवशिष्टाः अष्टादश अर्थाः सन्ति, तेषाम् अष्टादश अर्थानामपि संयोजनेन यथा च मन्त्रगतप्रमेयविरोधः न भवेत्, तथा व्याख्यानं कर्तुं शक्यते वा। व्याख्याने क्रियमाणे कः अर्थः फलति? तादृश- अर्थस्वीकारश्च समीचीनो वा न वा इति विचारः अस्मिन् शोधपत्रे करिष्यते। तत्र अवधातोः प्रथमः अर्थः रक्षणम् इति। तमर्थमादाय एव आचार्यैः भाष्ये व्याख्यानं कृतम्। अवधातोः द्वितीयः अर्थः गतिः इति। सः अर्थः यदि स्वीक्रियेत, तर्हि सह नाववतु, इति मन्त्रस्य कः अर्थः भवति इति व्याख्येयः। तत्र नौ सः अवतु गच्छतु इति गत्यर्थयोगेन अयम् अर्थः लभ्यते। वैयाकरणैश्च एकः नियमः क्रियते गत्यर्थधातूनां अनेकार्थत्वम् इति। तर्हि एवं नियममादाय गतिः इत्यस्य ज्ञानं प्राप्तिः इत्येवं रूपेण पुनः अनेके अर्थाः वक्तुं शक्यन्ते। तर्हि सः परमात्मा नौ आवयोः अवतु, इत्यस्य गच्छतु, इदानीं यदि गतिः इत्यस्य प्राप्तिः इत्यर्था स्वीक्रियेत, तर्हि प्राप्तिस्तु चतुर्दशः अर्थः अर्थत्वेन व्याख्यातः एव अस्ति। तर्हि गतिः इति पदस्य का अर्थः? गतिः नाम ज्ञानं, तर्हि सः परमात्मा स्वआशीर्वादेन नौ ब्रह्म गमयतु, ब्रह्म ज्ञापयतु, इति अर्थः व्याख्येयः। परमात्मानं शिष्यः ब्रह्मज्ञानाय प्रार्थयते, इति अर्थः फलति। एवमेव अन्येषामपि अर्थानामिह पत्रे विवेचनण् करिष्यते।

प्रास्ताविकः ।

HARSHAL GAUTAN MATGHARE

श्रीमद्भगवद्गीता सर्वोपनिषदामिः सारभूता, मोक्षशास्त्रत्वेन च प्रसद्धा अस्ति। अस्याः द्वितीयोऽध्यायः 'साङ्ख्ययोगः' नामना जायते, यः समग्रगीतायाः दार्शनिकं हृदयं वर्तते। अस्मिन् अध्याये अर्जुनस्य कायिक-मानसिक-विषादं, धर्मसंमूढता च अपनेतुं भगवान् श्रीकृष्णः आदावेव पारमार्थिक-आत्मतत्त्वस्य (ज्ञानस्य) तदनन्तरं च तदुपायभूतस्य निष्काम कर्मयोगस्य च उपदेशं करोति।

शाङ्करभाष्यस्य महत्ता तथा समस्या-कथनम् ।

अद्वैतवेदान्तस्य आद्य-आचार्यः जगद्गुरु-श्रीमदादिशङ्कराचार्यः अस्य अध्यायस्य व्याख्याने ज्ञानस्य कर्मणश्च सीमाङ्कनं सुस्पष्टं विधातुम् 'साङ्ख्यबुद्धिः' तथा 'योगबुद्धिः' इति पदद्वयम उद्धहति। मीमांसकादि-पूर्वपक्षिणः ज्ञान-कर्मणोः समुच्चयं (एकत्र अनुष्ठानम्) मन्यन्ते। अस्य समुच्चयवादस्य निरसनं कुर्वन् भाष्यकारः श्रीमद्भगवद्गीतायाः २.३९ श्लोकस्य उत्थानिकाभाष्ये बुद्धिद्वयस्य लक्षणम्, विषयम्, कालसीमाम्, अधिकारिणं च विभज्य स्थापितवान्।

शोधस्य उद्देश्यानि प्राकल्पना।

अस्य शोधपत्रस्य मूलमुद्देश्यं शाङ्करभाष्यानुसारं साङ्ख्यबुद्धेः योगबुद्धः च दार्शनिकस्य स्वरूपस्य, तयोः प्रातिस्विकस्य विषयस्य, अधिकारिभेदस्य च वैज्ञानिक शास्त्रीयं च विश्लेषणं करणमस्ति। अत्र इयं प्राकल्पना वर्तते यत् शाङ्करवेदान्ते साङ्ख्य-योगयोः न तु तुल्यबलता न वा समुच्चयः, अपितु तयोः मध्ये ('साधन-साध्य-भावः') (अन्तःकरणशुद्धिद्वारा ज्ञानोत्पत्तिः) एव निरूपितः अस्ति।

आधुनिकन्यायव्यवस्थायाः परिप्रेक्ष्ये न्यायशास्त्रस्य तार्किकपद्धतीनां विश्लेषणात्मकमध्ययनम्

सुश्री सुज्ञानी बेहरा

केन्द्रीयसंस्कृतविश्वविद्यालयः, भोपालपरिसरः

शोधसारः

प्रस्तुतशोधपत्रं महर्षिगौतमप्रणीतस्य न्यायदर्शनस्य तथा च आधुनिकभारतीयविधिकव्यवस्थायाः मध्ये विद्यमानानाम् अन्तर्निहिततार्किकसम्बन्धानां विस्तृतं, विश्लेषणात्मकं तुलनात्मकञ्च अध्ययनं प्रस्तौति। वर्तमाने समये यदा न्यायिकप्रक्रियाः अतीव जटिलाः सञ्जाताः, अभियोगानां भारः वर्धितः, विवादानां निराकरणे च अत्यधिको विलम्बो भवति, तदा न्यायशास्त्रस्य प्राचीनतार्किकनियमानां प्रासङ्गिकता सुतरां वर्धते। अस्य शोधस्य मुख्यमुद्देश्यमिदं संस्थापनमस्ति यत् आधुनिकन्यायालयेषु साक्ष्यपरीक्षणं निर्णयप्रक्रिया च अज्ञातेनापि रूपेण पूर्णतः प्राचीनन्यायशास्त्रस्य आधारभूतसिद्धान्तेष्वेव आश्रिते स्तः।

शोधप्रविधेरन्तर्गतं तुलनात्मकाध्ययनेन इदं प्रमाणितं यत् आधुनिकः भारतीयसाक्ष्याधिनियमः वस्तुतः न्यायशास्त्रस्य चतुर्णां प्रमाणानाम्—प्रत्यक्ष-अनुमान-उपमान-शब्दानाम्—एव व्यावहारिकमाधुनिकञ्च वैधानिकं रूपमस्ति। विशेषतः, यदा न्यायालयेषु प्रत्यक्षसाक्षिणः उपलब्धाः न भवन्ति, तदा अनुमानप्रमाणस्य आधारेणैव आधुनिकन्या्यालयाः परिस्थितिजन्यसाक्ष्याणां विश्लेषणं कृत्वा तार्किकनिष्कर्षं प्राप्नुवन्ति। एतदतिरिक्तं, न्यायालयेषु अधिवक्तृभिः क्रियमाणः प्रत्यनुयोगः साक्ष्यप्रस्तुतीकरणस्य सम्पूर्णा तर्कशृङ्खला च पञ्चावयववयुक्तेः एवाधुनिकं संस्करणमस्ति।

निष्कर्षतः, शोधोऽयं स्थापयति यत् भारतीयं न्यायदर्शनं न केवलं सैद्धान्तिकः प्राचीनः वा विषयः, अपि तु इदम् आधुनिकन्यायालयानां प्राणस्पन्दनमस्ति। यदि आधुनिकविधिकशिक्षायां शिक्षकप्रशिक्षणे च न्यायदर्शनस्य तार्किकनियमानां विधिवत् समावेशः क्रियेत, तर्हि भविष्यस्य न्यायप्रक्रिया अधिका त्वरिता, पारदर्शिनी, दोषमुक्ता च भवितुमर्हति।

बीजशब्दाः: न्यायदर्शनम्, पञ्चावयववयुक्तिः, प्रमाणविमर्शः, हेत्वाभासः, भारतीयसाक्ष्याधिनियमः, आधुनिकन्यायप्रणाली, परिस्थितिजन्यसाक्ष्यम्, तार्किकपद्धतिः।

“एक गृहस्थ योगी की साधना-यात्रा: अभेद योगी का जीवन एवं दर्शन”

YOGENDER KUMAR

शोध-सारांश

भारतीय योग परंपरा में योग-साधना को प्रायः संन्यास, एकांतवास अथवा सांसारिक जीवन से विरक्ति के संदर्भ में देखा जाता रहा है, किंतु भारतीय संस्कृति में गृहस्थ जीवन का निर्वहन करते हुए उच्च आध्यात्मिक एवं योगिक साधना करने वाले अनेक साधकों की परंपरा भी विद्यमान रही है। प्रस्तुत शोध-पत्र “एक गृहस्थ योगी की साधना-यात्रा : अभेद योगी का जीवन एवं दर्शन” इसी परंपरा के अंतर्गत अभेद योगी के जीवन, साधना एवं योग-दृष्टि का अध्ययन करने का प्रयास है।

अभेद योगी का जीवन इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है कि उन्होंने गृहस्थ जीवन का निर्वहन करते हुए योग को केवल व्यक्तिगत साधना तक सीमित न रखकर जीवन-पद्धति के रूप में आत्मसात किया। प्रस्तुत अध्ययन में उनके जीवन-प्रसंगों, योग-साधना, विचारों तथा योग के प्रति उनकी जीवन-दृष्टि का व्यवस्थित विश्लेषण किया जाएगा। एक गृहस्थ व्यक्ति पारिवारिक, सामाजिक एवं व्यावहारिक दायित्वों के मध्य रहते हुए योग-साधना के माध्यम से आत्मिक अनुशासन और आंतरिक विकास की यात्रा किस प्रकार कर सकता है।

शोध का प्रमुख उद्देश्य अभेद योगी के जीवन एवं दर्शन के माध्यम से गृहस्थ योग की अवधारणा को समझना तथा भारतीय योग परंपरा में गृहस्थ साधक की भूमिका का विश्लेषण करना है।

यह अध्ययन मुख्यतः जीवन-वृत्तात्मक, वर्णनात्मक एवं विश्लेषणात्मक शोध-पद्धति पर आधारित होगा। उपलब्ध जीवन-संबंधी सामग्री, मौखिक परंपराओं, साधना-संबंधी अनुभवों, अभेद योगी के विचारों तथा भारतीय योग-दर्शन के प्रासंगिक सिद्धांतों का अध्ययन एवं तुलनात्मक विश्लेषण किया जाएगा।

योग-साधक की योग-साधना के अंतर्संबंध को समझने का प्रयास करता है। यह अध्ययन समकालीन समाज के लिए भी महत्वपूर्ण है, क्योंकि यह संकेत देता है कि योग-साधना के लिए सांसारिक जीवन का परित्याग अनिवार्य नहीं है, बल्कि अनुशासन, संतुलन, साधना एवं जीवन-मूल्यों के माध्यम से गृहस्थ जीवन में रहते हुए भी योग के मार्ग का अनुसरण किया जा सकता है।

मुख्य शब्द: अभेद योगी, गृहस्थ योगी, योग-साधना, योग-दर्शन, गुरु-परंपरा, गृहस्थाश्रम, आत्मानुशासन, भारतीय योग परंपरा।

भारतीयदर्शनम् फिलॉसफी च

डॉ० हरि किशोर आर्य

दर्शनम् ' इति शब्दः संस्कृतस्य दृश् धातोः निष्पन्नः अस्ति। अस्य अर्थः दष्टुम् अथवा ज्ञातुम् अस्ति। दर्शनस्य सामान्यमर्थः केवल नेत्राभ्यां वस्तुनो दर्शन न, अपितु जीवनस्य संसारस्य, मानवस्य च वास्तविक स्वरूपस्य ज्ञानं प्राप्तुं प्रयत्न: अस्ति।

दर्शनस्य मुख्य उद्देश्यः वास्तविकतायाः अन्वेषणम् अस्ति। प्राचीन कालात् एवं मानवः स्वयं परितः घटनानां घटनां कारणानि ज्ञातुं प्रयत्नं करोति। यथा- सूर्यः किमर्थम् उदेति? संसारस्य उत्तपति कथम् अभवत्? आत्माः कः अस्ति इत्यादयः प्रश्नाः दर्शनस्य विकासस्य कारणानि उम्भवन्। दर्शने तर्कस्य, विवेकस्य, अनुभवस्य तथा चिन्तनस्य विशेषम् महत्वम् अस्ति।

भारतीय दर्शनस्य परम्परा अतीव प्राचीना समृद्धा च अस्ति। भारतीय दर्शनस्य मुख्य: उद्देश्य केवलं संसारस्य विषये ज्ञानं प्राप्तं न अपितु मानव जीवनस्य दुखेभ्यः मुक्तं कृत्वा परमसत्यस्य ज्ञानं प्रादातुम अपि अस्ति।

प्रत्येक देशस्य स्वकीयः विशिष्टः दर्शनः भवति। भारतीय दर्शन् तथा पाश्चात्यदर्शनम् इति नामकरणमेव प्रमाणयति यत् उभे दर्शने परस्परं भिन्ने स्तः।

यदा वयं विज्ञानस्य क्षेत्रे आगच्छामः तदा तत्र' भारतीय विज्ञानम्' तथा पाश्चात्य विज्ञानम् इति नामकरणं न प्राप्नुमः। अस्य कारणं यत् विज्ञानं सार्वभौम तथा वस्तुनिष्ठं च भवति। परन्तु दर्शनस्य विषयः एव किञ्चित् तादृशः अस्ति यत्र विज्ञानस्य वस्तुनिष्ठता न दृश्यते। एतदेव कारणं यत् भारतीयदर्शनं पाश्चात्यदर्शनं च परस्परं विरोधी इव प्रतीयते। अधुना वयं भारतीयदर्शनस्य पाश्चात्यदर्शनस्य च मध्ये निहिता भिन्नता व्याख्यास्यामः।

पाश्चात्यदर्शन सैद्धान्तिकम् अस्ति। पाश्चात्यदर्शनस्य आरम्भः आश्चर्येण उत्सुकतया च अभवत्। तत्र दार्शनिकः स्वस्य जिज्ञासं शान्तु जगतः, ईश्वरस्य आत्मनःच विषये चिन्तयितुं प्रेरितः अभवत्। एवं प्रकारणेण यूरोपदेश दर्शनस्य कोऽपि व्यावहारिकः उद्देश्यनासीत्। दर्शनं मानसिकः व्यायामः इति कथ्यते। दर्शनस्य अध्ययनं कस्यचित् उद्देश्यस्य प्रप्तये न,

अपितु स्वयमेव ज्ञानस्य प्राप्तेय कृतम्। अतः पाश्चात्यदर्शने दर्शनं साध्यरूपेण चित्रितम् अस्ति । तस्य विपरीतं भारतीय दर्शनं व्यवहारिकम् अस्ति

A Tattvavāda approach to the Hard problem of consciousness

Vadiraj Vinayak Limaye

Deccan Education Society's Pune University (PhD Scholar)

There have been numerous attempts to deal with the Hard problem of consciousness. While this has been widely discussed in the western philosophy, several attempts have been also made to deal with the Indian Philosophical approach. The Tattvavāda school of thought famously known as Dvaita propagated by Madhvācārya has received comparatively less attention in this context. This paper examines whether the selected concepts from Tattvavāda can provide an alternative approach to the hard problem of consciousness.

The study is based primarily on a textual analysis of Madhvācārya's Pramāṇalakṣaṇa and its commentary Nyāyakalpalatā by Jayatīrtha, and texts such as Tattvaviveka and Padārthaviveka. Relevant arguments are studied in relation to the contemporary formulation of the hard problem, with a brief overview of selected Western and Indian approaches to consciousness.

The Hard problem of consciousness has been examined here through three primary questions: the relation between consciousness and matter, the qualia and phenomenal character and subjective experience. The first is approached through Tattvavāda's distinction between conscious entities and material objects and their modifications. The distinction between Vṛttijñāna and Svarūpajñāna is examined to understand the difference between changing cognitive processes and the conscious knower. Qualia is examined through Svarūpa, and Dharma, particularly in relation to the determinate nature of what is known. Subjective experience is approached through the concept of Sākṣin, described as the Svarūpendriya of the Pramātṛ knower and as jñānarūpa.

Thus, the paper argues that the ontological category distinction, the account of Vṛttijñāna without reducing subjective awareness Svarūpajñāna to mere physical states, and the concepts of Svarūpa and Dharma together offer an alternative approach to bridge the explanatory gap exists in the Hard problem of consciousness.

Keywords

Tattvavāda; Hard Problem of Consciousness; Sākṣin; Consciousness; Dvaita Vedānta

"औपनिषदिक ब्रह्म-दर्शन से श्रीकृष्ण-तत्त्व तक: महाभारत एवं भगवद्गीता का दार्शनिक अनुशीलन"

डॉ. अमिता सिंह वरिष्ठ सहायक प्रोफेसर - संस्कृत

सा.बा.फुले राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय,

चकिया,चन्दौली।

सारांश-

उपनिषद् को भारतीय दर्शन का मूल माना जाता है। भारतीय दर्शन में जितनी भी विचारधारायें प्राप्त होती हैं, उनका उद्गम उपनिषदों में प्राप्त होता है। वेदान्त की प्रस्थान-त्रयी में उपनिषद् मूलप्रस्थान के रूप में जाना जाता है। वहीं

महाभारत एक ऐसी कालजयी रचना जिसमें न्याय, राजनीति, ज्योतिष, अर्थशास्त्र, योग, खगोलविद्या और युद्धनीति जैसे विषयों का विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है। महाभारत के भीष्म पर्व में लिखे हुए गीता के वचन उपनिषदों का साररूप है। क्योंकि उपनिषद् और महाभारत दोनों परम्पराओं के योजक 'श्रीकृष्ण' हैं। वे केवल ऐतिहासिक या पौराणिक पात्र नहीं हैं अपितु एक गहन दार्शनिक तत्त्व के रूप में प्रतिष्ठित हैं। अतः 'श्रीकृष्ण-तत्त्व' का अध्ययन वस्तुतः भारतीय दर्शन की समन्वयात्मक चेतना का अध्ययन है। प्रस्तुत शोधपत्र में यह सिद्ध करने का प्रयास किया गया है कि श्रीकृष्ण उपनिषदों में वर्णित निर्गुण ब्रह्म के सजीव और लोकमंगलकारी स्वरूप हैं। विषय परिसीमा के अन्तर्गत उपनिषदों में वर्णित ब्रह्म-दर्शन और महाभारत में श्रीकृष्ण की दार्शनिक भूमिका का तुलनात्मक एवं विश्लेषणात्मक अध्ययन किया गया है।

कूट शब्द- कृष्ण-तत्त्व, औपनिषदिक दृष्टि, रहस्यविद्या, ब्रह्म, आत्मज्ञान, पुरुषार्थ चतुष्टय, कर्मयोग, ज्ञानयोग, निष्काम कर्म।

'न्यायसिद्धान्तमुक्तावलीस्थचूडामणीकृतविधुरिति मङ्गले समाप्तपुनरात्तत्वकाव्यदोषपरिहारः'

नाम – रावल जयकिशनः दिनेशभाई

शोधच्छात्रः, संस्कृतविभागः, भाषासाहित्यभवनम्,

गुजरातविश्वविद्यालयः, अहमदाबादनगरम्

मार्गदर्शिका – प्रो. डो. मयूरी. ए भाटीया

शोधनिष्कर्षः –

भारतीयज्ञानपरम्परान्तर्गतं महत्ता चास्य दर्शनशास्त्रस्य । **'दृश्यते ज्ञायते तत्त्वज्ञानं येन तद्दर्शनम्'** इति परिभाषया अवगम्यते यत् दर्शनानां प्रयोजनं तत्त्वज्ञानम् । दर्शनपरम्परायां तत्त्वज्ञानात् मोक्षप्राप्तिः । निःश्रेयसाधिगमाय हेतुभूते द्वे दर्शने वर्तेते न्यायदर्शनमपरं वैशेषिकदर्शनम् । **'काणादं पाणिनीयं च सर्वशास्त्रोपकारकम्'** इति सुविख्यातया उक्त्या सुस्पष्टं यत् सर्वशास्त्रोपकारकत्वं काणादस्य । ज्ञातव्यं यदत्र काणादपदं वैशेषिकदर्शनपरकं, किन्तु उपलक्षणेन न्यायपरकमपि । अनयोः दर्शनयोः प्राकरणिकग्रन्थः तर्कसङ्ग्रहः । आचार्यान्नम्भट्टेन तर्कसङ्ग्रहस्य मङ्गलाचरणे उल्लेखितं यत् बालानां सुखबोधायेति । न्यायवैशेषिकनये बालपदेन किं ग्राह्यम् ? इति जिज्ञासां समाधातुं नेकैराचार्यैः स्वटीकायां स्वमतमुल्लेखितम् । तत्र मतवैभिन्न्यं प्रतिभाति । आचार्यान्नम्भट्टेन दीपिकाव्याख्यायां **ग्रहणधारणपटुर्बाल** इति व्याख्यायि । आचार्यचन्द्रजसिंहः बाललक्षणं गदति यदत्र **अधीतव्याकरणकाव्यकोशत्वविशिष्टानधीतन्यायशास्त्रत्वमिति** । अस्य शोधपत्रस्य ह्रदयमिदम् । कस्यापि शास्त्रस्य अध्ययनाय व्याकरणशास्त्रं न्यायशास्त्रं च प्रमुखम्, किन्तु वैशेषिकन्यायदर्शनस्य अधिकारी तु येन व्याकरणं, काव्यशास्त्रं, कोशग्रन्थाः इत्यादीनि शास्त्राणि अधीतानि, किन्तु न्यायवैशेषिकदर्शने प्रवेशः न सञ्जातः स बालः, तस्य अस्मिन् शास्त्रे अधिकारः इत्युक्तम् ।

अत्र प्रश्नः समुद्भवति यत् न्यायवैशेषिकदर्शनस्य अध्ययने काव्यशास्त्रस्य उपयोगिता कथं ? इयं सहसा जिज्ञासा भवति । किन्तु न्यायसिद्धान्तमुक्तावल्या प्रथममङ्गलाचरणस्य अध्ययने ज्ञानं भवति यत् न्यायवैशेषिकदर्शनस्य अध्ययनात् पूर्वं काव्यशास्त्रस्य पठनमावश्यकम् ।

न्यायसिद्धान्तमुक्तावली आचार्यविश्वनाथपञ्चाननभट्टेन विरचिता अस्याः अपरं नाम भाषापरिच्छेदः वरीवर्ति । तस्मिन् ग्रन्थे आचार्येण त्रीणि मङ्गलानि सुविहितानि । मङ्गलाचरणस्य प्रयोजनं निर्विघ्नपरिसमाप्तिः । मङ्गलनिबन्धनस्य प्रयोजनं शिष्यशिक्षा । वर्तते अस्य ग्रन्थस्य प्रपथमं मङ्गलाचरणम् –

चूडामणीकृतविधुर्वलयीकृतवासुकिः ।

भवो भव्याय भवतु लीलाताण्डवपण्डितः ।।

अस्मिन् मङ्गलाचरणे समाप्तपुनरात्तत्वकाव्यदोषं सम्भाव्यते । अस्य काव्यदोषस्य किं लक्षणम् ? मङ्गलाचरणे समाप्तपुनरात्तत्वकाव्यदोषस्य प्रवृत्तिः कथम् ? पूर्वोत्तरपक्षपुरस्सरम् अस्य दोषस्य परिहारः कथम् ? विषयान् एतान् मनसि निधाय दिनकर्यादिटीकाग्रन्थान् अधीत्य परामृश्य च यथामति शोधपत्रमिदं विधास्यामीति सङ्क्षेपः ।

कूटशब्दाः-

दर्शनम्, न्यायवैशेषिकदर्शनम्, न्यायसिद्धान्तमुक्तावली, मङ्गलम्, प्रयोजनम्, समाप्तपुनरात्तत्वकाव्यदोषः

भारद्वाजसंहितोक्तदिशा गुरुशिष्यलक्षणनिरूपणम् ।

ARYAMOL SUDHARSANAN

नारदपञ्चरात्रस्य तथा तस्यानुगत भारद्वाजसंहितायाः च वैशिष्ट्येन तथा उपयोगितया वैष्णवागमेषु स्वस्य विशिष्टस्थानमस्ति। अनयोः सर्वाधिकप्रमुखतया दास्यभक्तिद्वारा भवबन्धमुक्तिः एवं गोलोकप्राप्तेः उपायः तथा आचारस्य परम्परागत प्रतिपादनं च वर्तते । पञ्चरात्रागमः वैष्णवागमस्य एकः प्रमुखः प्रभेदः भवति । आगमः श्रुतिमूलकं तथा प्रमाणभूतं मन्यते यतः अस्य प्रतिपाद्यम् एवम् उपास्यं साक्षान्नारायणः भवति तथा च वक्ता तु श्रीपरमेश्वरो भवति । नारदपञ्चरात्रं तथा तस्यानुगतसंहितानां रूपेण वैष्णवतन्त्रम् (अथवा आगमरूपेण) अतिप्रसिद्धं सुप्रतिष्ठितं च भवति। अयं च ग्रन्थः नारदपञ्चरात्रस्य वार्तिक भूतपरिशिष्टः भवति, अस्मिन् च चत्वारः अध्यायाः सन्ति तथा एतेषाम् अध्यायानां शेषभूततात्त्विकव्याख्यां परिशिष्टे दृष्ट्वा अस्य शास्त्रस्य पञ्चरात्रशास्त्रस्य समग्रपूर्तिः क्रियते । भारद्वाजसंहितायाः द्वितीयाध्यायः किञ्चित् मात्रमेवोपलभ्यते, तस्य भागः अद्य नोपलभ्यते ।

आगमपरम्परायां पञ्चरात्रप्रवर्त्तकमुनिश्रेष्ठेषु सनत्कुमार नारदादि ब्रह्मपुत्रैः अस्य आगमस्य ज्ञानं भारद्वाजमुनिमुपदिदेश, यो हि पञ्चमुनिश्रेष्ठेष्वन्यतमः इत्यतः अपि पञ्चरात्रम् इति कथ्यन्ते। एवं पञ्चरात्रस्य कानिचन अनुन्मीलित-उपासनादीनां तत्त्वानि साधकादि भक्तानांकृते "भारद्वाजसंहिताया" चर्चा क्रियते यानि च नारदपञ्चरात्रे मूले न वर्तन्ते। अत एव इयं संहिता वार्तिकरूपेण आद्रियते ।

भारद्वाजसंहितायाः प्रथमाध्याये प्रमुखतया न्यासयोगं अथवा भगवत्प्रपत्तिम् ईश्वरप्राप्त्यर्थं तथा मोक्षार्थं परमोपयोगी इति विज्ञात्वा शिष्यं वा साधकं न्यासयोगस्य दीक्षाकरणस्य तथा उपासनाया च कृते विधिः अथवा वृत्तिः इत्यादि विस्तरेण प्रतिपादयति। प्रथमाध्याये एव प्रपत्तिः तस्या गुणानुगतप्रभेदान् एवं फलान् च विशदीकृत्य तदनु न्यानदीक्षाप्रदातुः आचार्यस्य लक्षणादिकं शिष्यलक्षणादिकं च विशदीकरोति ।

मानमेयोदयग्रन्थस्य आधुनिकप्रासङ्गिकता

Dr.Naba Kumar Panda

शोधसारः

भारतीयज्ञानपरम्परायां प्रमाणमीमांसाया अत्यन्तं गौरवं विद्यते। यथार्थज्ञानस्य स्वरूपं, तस्य साधनानि, तद्विषयकविवेकश्च भारतीयदर्शनस्य मूलाधारत्वेन परिगण्यन्ते। एतादृशे दार्शनिकपरिदृश्ये *मानमेयोदयग्रन्थः* प्रमाण–प्रमेय–प्रामाण्यविषयाणां सुबद्धं तात्त्विकं च निरूपणं करोति। ग्रन्थेऽस्मिन् केवलं शास्त्रीयविवेचनमेव न दृश्यते, अपितु युक्तिनिष्ठचिन्तनस्य, ज्ञानपरीक्षणस्य तथा निर्णयप्रक्रियायाः स्थिरोऽपि आधारः प्रतिपाद्यते। अतः अस्य ग्रन्थस्य अध्ययनं केवलं पारम्परिकदर्शनपर्यन्तं न सीमितम्, किन्तु आधुनिकबौद्धिकविमर्शेष्वपि महत्त्वपूर्णं स्थानं वहति।

भारतीयदर्शनपरम्परा केवलं प्राचीनबौद्धिकपरम्परा न, अपि तु ज्ञानस्य, तर्कस्य, मूल्यबोधस्य च जीवन्तः स्रोतः अस्ति। मीमांसादर्शनं तत्र प्रमाणमीमांसायाः सूक्ष्मविश्लेषणेन विशिष्टं स्थानमलङ्करोति। प्रमाणप्रमेययोः स्वरूपनिरूपणं, ज्ञानोत्पत्तेः कारणविमर्शः, यथार्थज्ञानस्य परीक्षणं च अस्य दर्शनस्य प्रमुखविषयाः सन्ति। एतेषां तत्त्वानां सम्यगुपस्थापनं मानमेयोदयग्रन्थे दृश्यते। वर्तमानवैज्ञानिकयुगे, यत्र सूचनानां विपुलप्रवाहः, कृत्रिमबुद्धेः विकासः, दुष्प्रचारस्य प्रसारश्च सर्वत्र दृश्यते, तत्र यथार्थज्ञाननिर्णयस्य आवश्यकता पूर्वापेक्षया अधिका जाता। अतः मानमेयोदयस्य पुनरध्ययनं कालानुरूपम् अस्ति। अयं ग्रन्थः प्रमाणस्य स्वरूपं, प्रमेयस्य सीमां, प्रामाण्यस्य सिद्धान्तं, ज्ञानोत्पत्तेः प्रक्रिया, संशय-निरासं तथा तर्कपद्धतिं सुस्पष्टतया निरूपयति। अस्य वैशिष्ट्यं यत् सः केवलं सिद्धान्तान् न प्रतिपादयति, अपि तु युक्तिपरम्परायाः अनुशीलनाय मार्गदर्शनमपि करोति।

साम्प्रतिके वैज्ञानिकविकासप्रधाने युगे सूचनानां प्रचुरप्रवाहः, कृत्रिमबुद्धेः विकासः, सामाजिकमाध्यमानां प्रभावः तथा तथ्यानृतविवेकस्य जटिलता सर्वत्र दृश्यते। एतादृशेषु परिस्थितिषु प्रमाणलक्षणविवेचनम्, ज्ञानस्य विश्वसनीयताया परीक्षणम्, युक्तिपरकनिर्णयनिर्माणञ्च विशेषमपेक्षितम्। *मानमेयोदयग्रन्थे* प्रतिपादिताः प्रमाणसिद्धान्ताः एतेषां प्रश्नानां समाधानाय वैचारिकमाधारं प्रददति। सम्यग्ज्ञानस्य साधनविचारः, प्रमाणाप्रमाणविभागः, संशयनिरासः, तर्कानुशासनञ्च आधुनिकशोधकार्येषु, शिक्षाव्यवस्थायां, न्यायदर्शने, नीतिनिर्माणे तथा ज्ञानप्रबन्धने उपयोगिनो भवन्ति। अस्य शोधपत्रस्य प्रमुखोद्देश्योऽस्ति- *मानमेयोदयस्य* तात्त्विकदृष्टेः आधुनिकसन्दर्भेषु पुनर्मूल्याङ्कनम्। विशेषतः भारतीयज्ञानपरम्परायाः पुनरुत्थानाय, राष्ट्रीयशिक्षानीतेः (NEP-2020) अपेक्षितेषु भारतीयज्ञानतत्त्वेषु, समालोचनात्मकचिन्तनविकासे तथा वैश्विकज्ञानसंवादे अस्य ग्रन्थस्य सम्भावितयोगदानं विविच्यते। तुलनात्मकविश्लेषणात्मकपद्धत्या ग्रन्थस्य प्रमुखसिद्धान्तानां समकालीनज्ञानमीमांसया सह संवादः स्थाप्यते।

मानमेयोदयः केवलं मीमांसादर्शनस्य ग्रन्थः न, अपितु युक्तिपरकज्ञानसंस्कृतेः द्योतकः अस्ति। अस्य सिद्धान्ताः सम्यग्ज्ञानस्य, विवेकपूर्णनिर्णयस्य, नैतिकबोधस्य तथा अनुसन्धानसंस्कृतेः विकासाय अद्यापि समानरूपेण उपयोगिनः सन्ति। अतः अस्य पुनर्पाठः भारतीयज्ञानपरम्परायाः वैश्विकप्रतिष्ठां सुदृढां करिष्यति। परिशेषे वक्तुं शक्यते यत् *मानमेयोदयग्रन्थः* न केवलं मीमांसादर्शनस्य गौरवग्रन्थः, अपितु आधुनिकज्ञानसंस्कृतेः, तर्कपरम्परायाः तथा उत्तरदायिज्ञाननिर्माणस्य प्रेरणास्रोतमस्ति। अस्य पुनर्पाठः भारतीयदर्शनस्य वैश्विकप्रासङ्गिकतां सुदृढां करोति तथा भारतीयज्ञानपरम्परायाः नवोन्मेषमूलकव्याख्यायै सशक्तमाधारं प्रददाति।

The Concept of ‘Kaal’; In Indian Philosophy And Modern Perspective

---

Girija Kulkarni ,Shastri 3rd year, Vyakarna,

Charudatta Aprajit, Research Scholar,

Kavikulaguru Kalidas Sanskrit University,

Ramtek.

:-

Time is the continuous progression of events in what seems to be an irreversible succession from the past, through the present, and into the future. It is the dimension that allows us to measure how long things take, when events happen, and the rate at which physical reality changes around us. In everyday life, time is what keeps everything from happening all at once.

In the context of Indian Philosophy, ‘Darshana’ goes far beyond merely seeing with physical eyes it refers to the direct vision or realization of ultimate truth, the deep comprehension of reality, and the true nature of existence. Indian philosophical perspective, time is not bounded by clock and calendar, but in every ‘Darshana’ the concept of kaal(Time) has been presented from a different perspectives.

In modern concept of science, time is equal to absolute, uniform, and independent of objects; Same everywhere and for everyone. According to Bhartiya Darshanas, Kaal is that eternal force which gives birth to every material object, sustains it in existence, and ultimately destroys it.

In this research paper, we will mainly present the concept of Kaal (Time) from the perspective of 'Bhartiya Darshanashastra'. The definition and nature of Kaal according to Nyaya, Samkhya, Yoga, and Vaisheshika, along with its important philosophical texts will be discussed. The study will also explore the similarities and differences between the traditional philosophical understanding of time and the concept of modern time, particularly from the perspective of modern sciences and physics. Finally, the research will highlight the significance, nature, and relevance of the concept of Kaal in both Indian philosophical thought and the modern context.

Keywords :- Kaal, Time, Indian Philosophy, Darshana , Modern sciences.

आधुनिकयुवपिढ्याः व्यक्तित्वविकासे भगवद्गीतायाः उपादेयता

Dr. Dushasan Biswal

Assistant Professor

Dept. of Sanskrit

Odisha State Open University, Sambalpur

शोधसारः

अधुना विज्ञानप्रौद्योगिक्याः तीव्रविकासेन मानवजीवनं सुखसुविधासम्पन्नं जातम्, किन्तु तेन सह युवपिढ्यां तनावः, नैराश्यम्, लक्ष्यहीनता, मूल्यस्खलनम्, आत्मविश्वासाभावः, स्पर्धात्मकमानसिकता च वर्धमाना दृश्यते। एतादृशे परिस्थितौ व्यक्तित्वस्य सम्यग्विकासाय शारीरिकबौद्धिकक्षमताभिः सह नैतिकाध्यात्मिकमूल्यानामपि आवश्यकता वर्तते। अस्मिन् सन्दर्भे भगवद्गीता आधुनिकयुवानां कृते महत्त्वपूर्णं जीवनदर्शनं प्रददाति। गीता केवलं धार्मिकग्रन्थः न, अपितु मानवजीवनस्य मनोवैज्ञानिक-नैतिक-व्यावहारिकसमस्यासु मार्गदर्शकः सार्वकालिकः ग्रन्थः अस्ति।भगवद्गीतायां श्रीकृष्णेन अर्जुनाय प्रदत्ताः कर्मयोगः, ज्ञानयोगः, भक्तियोगः, समत्वबुद्धिः, आत्मसंयमः, स्वधर्मपालनम्, अनासक्तकर्म च आधुनिकयुवानां व्यक्तित्वविकासे विशेषोपयोगिनः सन्ति। "कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन" इति सिद्धान्तः युवान् कर्मण्येव एकाग्रतां स्थापयितुं, फलचिन्तां परित्यक्तुं च प्रेरयति। "योगस्थः कुरु कर्माणि" इति उपदेशः मानसिकसन्तुलनस्य, आत्मविश्वासस्य च विकासं करोति। "उद्धरेदात्मनात्मानं" इति वचनं आत्मनिर्भरता-आत्मप्रेरणयोः महत्त्वं प्रतिपादयति। तथा च गीता इन्द्रियनिग्रहं, क्रोधनियन्त्रणं, विवेकशीलतां, कर्तव्यनिष्ठां, सहिष्णुतां, लोकसङ्ग्रहभावनां च विकसितुं प्रेरयति।

प्रस्तावितेऽस्मिन् शोधप्रबन्धे आधुनिकयुवपिढ्याः प्रमुखसमस्याः, व्यक्तित्वविकासस्य विविधाः आयामाः, भगवद्गीतायाः प्रमुखसिद्धान्ताः च तुलनात्मकदृष्ट्या विवेच्यन्ते। विशेषतः मानसिकसन्तुलनम्, नेतृत्वगुणः, नैतिकचेतना, निर्णयक्षमता, आत्मविश्वासः, सामाजिकदायित्वबोधः तथा तनावप्रबन्धनम् इत्येतेषु क्षेत्रेषु गीतायाः उपादेयता विश्लेष्यते। अन्ततः आधुनिकशिक्षाव्यवस्थायां युवपिढ्याः समग्रव्यक्तित्वविकासाय भगवद्गीतायाः मूल्याधारितशिक्षायाः समुचितसमावेशः अत्यन्तं प्रासङ्गिकः इति प्रतिपाद्यते।

कूटशब्दाः- भगवद्गीता , आधुनिकयुवपिढी ,व्यक्तित्वविकासः, कर्मयोगः, आत्मसंयमः, नैतिकमूल्यानि

अद्वैत भक्ति और पराभक्ति का समन्वय: ज्ञानेश्वरी एवं नारद भक्ति सूत्र के विशेष संदर्भ में

प्रो.कविता होले

प्रोफेसर एवं अधिष्ठाता

संस्कृत तथा संस्कृतेतर भाषासंकाय

कविकुलगुरू कालिदास संस्कृत विश्वविद्यालय ,रामटेक

सोनाली जयंत देव

शोधार्थी

संस्कृत भाषा एवं साहित्य विभाग

कविकुलगुरू कालिदास संस्कृत विश्वविद्यालय ,रामटेक

सारांश

भारतीय दर्शन एवं साधना-परंपरा में "भक्ति" आत्मा और परमात्मा के मध्य तादात्म्य स्थापित करने का सबसे सहज और प्रभावी माध्यम रही है| प्रस्तुत शोध-पत्र में "नारद भक्ति सूत्र" में प्रतिपादित सूत्रबद्ध पराभक्ति तथा सन्त ज्ञानेश्वर विरचित "ज्ञानेश्वरी"(भावार्थदीपिका) में निरुपित अद्वैतमूलक भक्तियोग का तुलनात्मक एवं विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत करता है| नारद भक्ति सूत्र जहा भक्ति को "सा तस्मै परमप्रेमरुपा" और "अमृतारुपा च" कहकर प्रेमलक्षणा एवं फलरूपा भक्ति के रूप में सैद्धांतिक धरातल प्रदान करता है, वही ज्ञानेश्वरी श्रीमद्भगवतगीता के भक्तियोग (विशेषत: अध्याय 9 व 12) की व्याख्या करते हुए भक्ति को केवल भावनात्मक स्तर तक सीमित न रखकर उसे "ज्ञानोत्तर भक्ति" और "चिद्विलासवाद" के अद्वैत स्तर पर अधिष्ठित करती है|

इस शोध-पत्र में दोनो ग्रंथो में वर्णित भक्ति के स्वरूप, साधन एवं साध्य की अवधारणा, आसक्तियों के प्रकार तथा भक्त के नैतिक व आध्यात्मिक लक्षणो का तुलनात्मक परीक्षण किया गया है| अध्ययन का मुख्य निष्कर्ष यह दर्शता है कि नारद भक्ति सूत्र का प्रेम-सिद्धांत और ज्ञानेश्वरी का अद्वैत भक्ति दर्शन परस्पर विरोधी न होकर एक दुसरे के पूरक है| दोनों की विचारधाराए जाति, वर्ण, लिंग और बाह्य कर्मकांडो से परे "सार्वभौमिक समभाव" तथा "प्राणिमात्र के प्रति आत्मवत् दृष्टी" को अंतिम साध्य मानती है|

मुख्यशब्द :- ज्ञानेश्वरी, नारद भक्ति सूत्र, भक्तियोग, पराभक्ति, अद्वैत भक्ति, चिद्विलास, प्रेम लक्षणा भक्ति|

श्रीगणेशपुराणोक्त-गणेशगीतायां ब्रह्मतत्वविचारनिरूपणम्

विद्वान् महीपतिः एस् जोय्स्,

कर्नटक-संस्कृत-विश्वविद्यालयस्य शोधच्छात्रः,

शिवमोग्ग मण्डलम्, कर्नाटकराज्यम्।

अत्यन्तप्राचीनतमोऽयम् अस्माकं संस्कृतवाङ्मयः। अस्य संस्कृतवाङ्मयस्य वैशिष्ट्यं महिमानं वा पदपुञ्जैः वर्णयितुमतीव दुष्करम्। यतः अस्माकं संस्कृतिं प्रतिबिम्बयन्ति वाङ्मयस्य मूलस्रोतांसि विराजन्ते ऋग्वेदादयः चत्वारो वेदाः। ते च ऋतुम्भराप्रज्ञावद्भिः महर्षिभिः दृष्टाः समुद्रसदृशाः। अत एव अत्यन्तं गहनाः निगूढाश्च विषयाः निरूपिताः। तत्रत्यान् तादृशान् निगूढान् विषयान् न केवलं तत्रत्यपदै ज्ञातुं पारयामः। अतः तज्ज्ञानार्थमेव वेदाङ्गानि, दर्शनानि, पुराणेतिहासाः, तन्त्रशास्त्रागमादयः प्रवृताः। तेषु अत्यन्तं प्रमुखं स्थानं प्राप्नोति पुराणम्। विशिष्य वेदोपनिषत्सु विद्यमानानां गहनतत्त्वानां, सरलावबोधनाय कथानां द्वारा बोधनम् इतेतत् पुराणानां प्रवृत्तये निदानम्।

प्रायः पुराणेतिहासौ तुल्यलक्षणलक्षितौ दृश्येते। तथाऽपि पुराणानां धार्मिकदृष्ट्या महत्वमधिकम्। वेदविहितानां धर्माणां सरलसुबोधभाषायां वर्णनायैव पुराणानि विरचितानि।

इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृम्हयेत्।
बिभेत्यल्पश्रुताद्वेदो मामयं प्रहरेदिति॥

यदा वेदार्थ: लोकानां बुद्धौ नारोढुं प्रवृत्तस्तदा वेदार्थस्य विवरणरूपेण दृष्टान्तेतिहाससहितानि, अलङ्कारै: अलङ्कृतनि, पुराणानि पद्यशैल्या विरचितानीति अभिप्रयन्ति। परन्तु पूर्वमेव ब्रह्ममुखान्निस्सृतानीत्यपि केशाञ्चन अभिप्राय:। तत्र के वा स्यु: अभिप्रायभेदा: पुराणोक्तानामितिवृत्तानां प्रामाणिकत्वं तु दृश्यते एव लोके। इदं मनसि निधाय पुराणेषु उपनिषत्तत्वानाम् उपदेश: कथं दृश्यते इति अध्ययनार्थं प्रवृत्त: अहं, गणेशपुराणस्थां गणेशगीतां दृष्टवान्। तत्र अतिसरलया शैल्या तत्वानामुपदेश: कृत:।

बहुषु उपपुराणेषु **श्रीमहागणेशपुराणम**न्यतमम्। तत्र **उत्तरखण्डे बालचरिते गजाननवरेण्यसंवादे एकादशानाम् अध्यायानां कश्चन भाग: गणेशगीता** इति नाम्ना प्रसिद्ध:। यथा महाभारतस्य भीष्मपर्वणि भगवद्गीता प्रसिद्धा, तथैव अस्मिन् पुराणे गणेशोपदिष्टा गीता प्रसिद्धा। अत्र **वरेण्याय राज्ञे गजानन: ब्रह्मतत्वम् उपदिशति**। अस्यां गणेशगीतायाम् साङ्ख्यसारार्थयोग: इत्यारभ्य त्रिविधवस्तुविवेकनिरूपणम् इति पर्यन्तं एकादशसु अध्यायेषु ब्रह्मतत्वं निरूपितं वर्तते।

वेदार्थान् मन्द-मध्यम-मतिभ्योऽपि ज्ञापयितुं करुणालु: महर्षि: भगवान् बादरायण: सरलया शैल्या पुराणेतिहासान् प्रणिनाय। तेषु हि धर्मार्थकाममोक्षाख्यान् चतुर्विधपुरुषार्थान् निरूप्य, अध्यात्ममार्गे प्रवृत्तेभ्य: तत्वप्रतिपादनद्वारा परमपुरुषार्थप्राप्तये उपायान् च दर्शितवान्। यथा महाभारतस्य भीष्मपर्वण्युक्त श्रीमद्भगवद्गीता कैवल्यसिद्धये सोपानं, तथा श्रीगणेशपुराणोक्त गणेशगीता अपि मुमुक्षूणां कैवल्यसिद्धये सोपानम् इति वक्तुं शक्यते। यतोहि, अस्या: उपक्रमे एव सूत: वदति –

अष्टादशपुरांणोक्तममृतं प्राशितं त्वया।

ततोऽतिरसवत्यातुमिच्छाम्यमृतमुत्तमम्॥

येन अमृतमयो भूत्वा आप्नुयाम् ब्रह्मामृतं यत:।

योगामृतं महाभाग तन्मे करुणया वद॥ इति

अत: इमामपि **"अद्वैताऽमृतवर्षिणीं"** गणेशगीतां तत्वचिन्तका:, वेदान्तविद्याविशारदा:, शोधमार्गानुयायिनश्च दृष्टिपथे संस्थाप्य चिन्तयेयु: इति धिया **शोधपत्रेऽस्मिन् अत्रोक्तान् वेदान्ततत्व-विचारान् विशेषत: निरूपयितुमिच्छामि।** शोधपत्रसारमिमम् अङ्गीकृत्य सम्पूर्णं शोधपत्रं प्रस्तोतुं अवकाशं प्रयच्छन्त्विति सप्रश्रयं प्रार्थयामि॥

A Poornawadi Perspective on Technology and the Holistic Development of Human Life

Ms. Prachi Amit Wade

Kavikulaguru Kalidas Sanskrit University, Ramtek

Text

Technology has rapidly transformed human life by improving efficiency, expanding knowledge and reshaping how people communicate, learn, and work. Technologies such as the Internet of Things, digital twins, artificial intelligence, and social media have significantly expanded human capabilities, making technological advancement widely associated with progress and development.

However, this raises a fundamental philosophical question: Can the expansion of technological capabilities be regarded as the development of human life?

This paper examines this question from a Poornawadi perspective. Based on the Bharatiya philosophical understanding of Poorna (wholeness), Poornawad views human life in terms of wholeness and emphasizes that human development cannot be understood merely through progress or increased capabilities. It recognizes subjective and objective dimensions of human

existence, including human intuition, individual experience, values, relationships, and inner development.

The paper explores how the principle of Poorna can provide a basis for understanding technology as a means that supports, rather than substitutes for the development of the human being as a whole. It examines whether technological progress can be meaningfully understood when technological capabilities are considered alongside the broader dimensions of human life. The paper proposes that a Poornawadi perspective can broaden the prevailing conception of technological progress by orienting it towards the wholeness of human life.

Keywords

Poornawad; Philosophy of Technology; Human development; Human Wholeness; Intuition Science.

श्रीविद्यारण्यस्वामिविरचितपञ्चदशीमनुसृत्य पञ्चकोशसिद्धान्तस्यानुशीलनम्

- कु. अवन्तिका धनञ्जय: पण्डे

छात्रा, दर्शनविभाग:

कविकुलगुरुकालिदाससंस्कृतविश्वविद्यालय:, रामटेकम्

शोधसार:

भारतवर्षे दार्शनिकानामुज्ज्वलज्ञानपरम्परा प्रचलिता वर्तते प्राचीनकालादेव। इयं परम्परा भारतीयसंस्कृते: शाश्वतमूलधारैवास्ति। विविधेषु मतप्रवाहेषु समृद्धा परम्परैषा भारतवर्षस्य प्राचीनज्ञानवैभवस्य परिचायिका वर्तते। अस्यां परम्परायां षट् आस्तिकदर्शनानि एवञ्च त्रीणि नास्तिकदर्शनान्यपि वर्तन्ते। एतेषु सर्वेष्वपि दर्शनप्रवाहेषु 'वेदान्तदर्शनं' मुकुटमणिरिव विराजते। 'वेदानामन्त: वेदान्त:' इति वेदान्तपदस्यार्थ:। 'प्रस्थानत्रयी' इति वेदान्तदर्शनस्य मुख्याधारेऽति अभिलक्ष्यते। तत्र श्रुतिप्रस्थानम्(उपनिषद्), न्यायप्रस्थानम्(ब्रह्मसूत्राणि) एवञ्च स्मृतिप्रस्थानम्(भगवद्गीता) इति त्रय: प्रकारा: अन्तर्भवन्ति। दर्शनेऽस्मिन् ब्रह्म, आत्मा, माया तथा मोक्ष: इत्येतेषां संकल्पनानां प्रामुख्येन विचार: क्रियते। वेदान्तानुसारं ब्रह्मैव सत्यम्। 'ब्रह्म सत्यं, जगन्मिथ्या' इति वचनं तु प्रसिद्धमेव। प्रत्येकस्य जीवस्य अन्त:करणे शुद्धस्वरूपं चैतन्यं विद्यमानं भवति। तदेवास्ति 'आत्मा'। अज्ञानवशादुत्पन्ना शक्तिरस्ति 'माया'। तस्मात् जगदिदं सत्यमेवास्तीति भासते। 'मोक्ष:' नाम आत्मसाक्षात्कारेति विजानीयात्।

दर्शनशास्त्रे सर्वेष्वपि दर्शनेषु दार्शनिकतत्त्वानां भिन्नभिन्नरूपेण दरीदृश्यते। तस्मादेव शोधपत्रेऽस्मिन् पञ्चकोशविचार: विस्तरेण प्रस्तोतुमिष्यते। तैत्तिरीयोपनिषदि 'पञ्चकोश:' इति काचित् विशिष्टा संकल्पना समाहिता अस्ति। पञ्चकोशानामाधारेणैव मनुष्यस्य व्यक्तित्त्वं पञ्चभि: आवरणै: निर्मितमिति प्रतिजाने। अन्नमयकोश:, प्राणमयकोश:, मनोमयकोश:, विज्ञानमयकोश:, आनन्दमयकोश: एते पञ्चकोशा: विद्यन्ते। अन्नमयकोश: नाम अन्नादुत्पद्यमानम् अथवा अन्नेन पोष्यमाणं स्थूलशरीरमिति। कोशेऽस्मिन् जन्म:, वृद्धावस्था, मृत्यु: इत्यादय: विकारा: अन्तर्भवन्ति। प्राणमयकोशे प्राण: पञ्चकर्मेन्द्रियाणि चान्तर्भवन्ति। शरीरस्य विविधा: क्रिया: - यथा, श्वासोच्छवासेत्यादि एवञ्च जीवनस्य सञ्चालनम् इति प्राणमयकोशस्य कार्यं भवति। मनोमयकोशे मन: तथा च पञ्चज्ञानेन्द्रियाणि अन्तर्भवन्ति। संकल्पविकल्पेच्छाभावनाविचारेत्यादि मनोमयकोशस्य कार्याणि भवन्ति। विज्ञानमयकोशे बुद्धि: तथा च पञ्चज्ञानेन्द्रियाणि समाहिता: भवन्ति। निर्णयविवेकज्ञानकर्तृत्त्वभावनेत्यादि विज्ञानमयकोशस्य कार्याणि वर्तन्ते। आनन्दमयकोश: नाम कारणशरीरसम्बद्ध: अज्ञानवृत्तिरूप: सुखानुभव:। सुषुप्तावस्थायां अनुभूयमान: सुखभाव: तदेव आनन्दमयकोशेति ज्ञेयम्। अद्वैतवेदान्तानुसारं पञ्चकोशा: आत्मनि अध्यारोपितानि आवरणान्येव भवन्ति। न हि एते पञ्चकोशा: आत्मन: स्वरूपाणि भवन्ति। यतो हि आत्मा तु पञ्चकोशानां साक्षिभूतो भवति। अतएव अहं शरीरम्, अहं बुद्धि:, अहं मन: इत्यादिरूपेण कोशै: सह यत् तादात्म्यं जायते, तत् त्यज्यते तदा एव आत्मन: स्वरूपं वास्तविकरूपेण ज्ञास्यते। आत्मन: विवेचनं कृत्वा आत्मस्वरूपस्य ज्ञानप्राप्ति: भवेदिति पञ्चकोशविचारस्य मुख्य: उद्देश्य: वर्तते। श्रीविद्यारण्यस्वामिना 'पञ्चदशी' इति ग्रन्थ: विरचित:। ग्रन्थोऽयं प्रसिद्धो वर्तते वेदान्तदर्शने। अस्य ग्रन्थस्य तृतीये प्रकरणे पञ्चकोशानां विवेचनं ग्रन्थकारेण कृतम्। तानेव अंशान् अत्र विस्तरेण प्रतिपाद्यन्ते।

बीजशब्दा:

पञ्चदशी, पञ्चकोश:, तैत्तिरीयोपनिषद्, अद्वैतवेदान्त:, श्रीविद्यारण्यस्वामि:

Doctrines of Vallabhacharya

SHAH YOGESH KIRTANLAL

Vallabhacharya devoted himself to the task of faithfully interpreting the Upanishads, the Geeta and Brahmasutra. He tried to show that these basic works teach beyond doubt the doctrine of Advaita, pure and simple, without any reference to Maya. The Advaita of the Upanishads is thus Shuddh, unalloyed with Maya. His philosophy views the highest entities Brahmin which is Sat, Cit, Anand and Rasa. He is Purna purushotam and is therefore personal in nature. He possesses many divine qualities of which Jñana and Kriyā are the most prominent. He also possesses contradictory qualities. He is devoid of worldly or material qualities. He possesses a sort of body totally made up of Anand. His Anand is infinite. He is omnipresent and eternal. He has created the universe out of himself. He is both the efficient and material cause of the universe, which is

naturally sustained by him and absorbed in him at the end. Vallabha's predecessors such as Shankara, Bhaskara etc have accepted three authorities generally known as prasthan-trayi. But Vallabha added Bhagvat Purana as the fourth authority and remarks, in case of doubts in any of these four authorities one should try to remove them in the light of succeeding authority. The Bhagavata thus stands on the level of the Vedas. The concept of 'Pushti' is mainly based on the well known verse of Mundakopnishad that the realisation of god is possible only through His grace. This idea also appears in episodes of Krishna and the Gopis in Bhagavata.

The doctrine of the Divine Grace 'Pushti' receives an enviable position in the Shuddhadvait school of Vallabhacharya.

Prashnottara Ratnamalika: Life Lessons through Spiritual Tit-Bits

Dr. Kokila Kalekar,

It is a well known fact that Srimad Adi Shankarachrya, the saviour of *Sanatan Dharma* has composed a variety of texts ranging from the most celebrated *Bhashyas* to *Panchakas*, *Ashtakas* and *Dashakas* apart from the beautiful waves of Spiritual happiness like *Shivananda Lahari* and *Saundarya Lahari*. Among other well known works like *Bhaja Govindam, Prashnottara Ratna Malika* is most significant. Composed in a question–answer format, it presents fundamental ideas related to life, dharma and self-knowledge in a concise and meaningful manner. Through simple questions, it conveys profound philosophical and ethical principles in an easily understandable way.

The proposed paper takes a look at the valuable guidance and instantaneous practical wisdom, *Prashnottara Ratna Malika* imparts to the students, spiritual seekers and general readers of today's confused world with pinpointed clarity about Who's Who and Dos and Don'ts of this life as per our *Shastras*.

सङ्ग्नक, मीमांसाशस्त्रयोः साम्यत्वं

Narayanan Venkata krishanan

अस्मिन् शोधकार्ये सङ्गणक-सॉफ्टवेयरस्य मूलभूतसंकल्पनानां मीमांसाशास्त्रे प्रतिपादितैः सिद्धान्तैः सह तुलनात्मकम् अध्ययनं क्रियते। आधुनिकविज्ञानस्य सङ्गणकतन्त्रे कार्यक्रमः, उपकार्यक्रमः, मुख्यकार्यक्रमः, व्यञ्जकम्, वाक्यम्, चलम्, संकलकः, प्राथमिकता, प्रक्रियाकरणम्, क्रमः इत्यादयः प्रमुखाः सिद्धान्ताः प्रयुज्यन्ते। एतेषां संकल्पनानां स्वरूपं मीमांसाशास्त्रीयदृष्ट्या परीक्ष्य तेषां मध्ये विद्यमानं साम्यं विशदीक्रियते।

महर्षिणा जैमिनिना प्रवर्तिते पूर्वमीमांसाशास्त्रे वेदविहितधर्मस्य स्वरूपं, तस्य बोधस्य साधनानि, विधीनां विभागः तथा वाक्यार्थनिर्णयस्य विविधाः नियमाः विस्तरेण प्रतिपादिताः सन्ति। विशेषतः मीमांसान्यायप्रकाशे शब्दीभावना, आर्थीभावना, विधिः, विनियोगः, प्रकरणम्, स्थानम्, समाख्या, क्रमः इत्यादीनां सूक्ष्मतत्त्वानां विवेचनं दृश्यते।

सङ्गणककार्यक्रमे जटिलस्य कार्यस्य समाधानाय मुख्यकार्यक्रमः तथा उपकार्यक्रमाः निर्मीयन्ते। तेषां मध्ये परस्परापेक्षा भवति। एतदेव मीमांसाशास्त्रे महाप्रकरणम् तथा अवान्तरप्रकरणम् इत्येताभ्यां संकल्पनाभ्यां तुलनीयम् अस्ति। मुख्यकार्यक्रमस्य महाप्रकरणेन तथा उपकार्यक्रमस्य अवान्तरप्रकरणेन सह साम्यं स्पष्टतया दृश्यते।

तथैव सङ्गणकभाषायां चलस्य नाम्ना तस्य दत्तांशप्रकारः ज्ञायते। एतत् मीमांसाशास्त्रे प्रतिपादितया समाख्या इति संकल्पनया तुलनीयम्। सङ्गणकतन्त्रे स्पष्टतया निर्दिष्टः दत्तांशप्रकारः अव्यक्तनियमात् अधिकं प्रबलः भवति। एतत् मीमांसायां स्थानस्य समाख्यायाः च अपेक्षया अधिकं प्राबल्यम् इति सिद्धान्तेन साम्यं दर्शयति।

सङ्गणककार्यक्रमे आदेशानां भौतिकक्रमः तथा तार्किकक्रमः भवतः। मीमांसाशास्त्रेऽपि पाठक्रमः तथा अनुष्ठानक्रमः इति क्रमस्य विभागः प्रतिपादितः अस्ति। अतः सङ्गणकस्य भौतिकक्रमः पाठक्रमेन तथा तार्किकक्रमः अनुष्ठानक्रमेन सह तुलनीयः भवति।

तथैव सङ्गणककार्यक्रमस्य मूलप्रयोजनं समस्यायाः समाधानम् अस्ति। मीमांसाशास्त्रेऽपि धर्मस्य बोधः वेदवाक्येन विधीयमानस्य प्रयोजनस्य आधारेण निरूप्यते। अतः प्रयोजनम्, असंदिग्धता, क्रमः, प्रकरणम्, स्थानम्, समाख्या इत्यादीनां संकल्पनानां मध्ये सङ्गणकविज्ञानस्य मीमांसाशास्त्रस्य च उल्लेखनीयं साम्यं दृश्यते।

अतः अस्मिन् अध्ययने प्रतिपाद्यते यत् मीमांसाशास्त्रं केवलं वैदिकधर्मविचारस्य शास्त्रं न, अपि तु वाक्यार्थनिर्णयस्य, तार्किकविचारस्य, क्रमव्यवस्थायाः, परस्परापेक्षायाः तथा नियमाधारितनिर्णयप्रक्रियायाः सूक्ष्मं शास्त्रम् अस्ति। तस्य सिद्धान्तानां सङ्गणक-सॉफ्टवेयरस्य आधुनिकसंकल्पनाभिः सह तुलनात्मकम् अध्ययनं प्राचीनभारतीयज्ञानपरम्परायाः आधुनिकविज्ञानस्य च अन्तःसम्बन्धं प्रकाशयति।

मुख्यशब्दाः: मीमांसाशास्त्रम्, सङ्गणक-सॉफ्टवेयरम्, कार्यक्रमः, मुख्यकार्यक्रमः, उपकार्यक्रमः, प्रकरणम्, महाप्रकरणम्, अवान्तरप्रकरणम्, समाख्या, स्थानम्, क्रमः, वाक्यार्थनिर्णयः।

The Eyes That See, the Mind That Knows, and the Conscience That Remains Silent: Philosophical Knowledge and Ethical Responsibility in Contemporary Life

Priyanka Kajagar

Research Parameters (Introduction):

Contemporary life presents a troubling paradox: suffering is increasingly visible, yet ethical responsiveness does not necessarily increase. A violent incident encountered through a digital screen can expose a deeper question: if Indian philosophical traditions affirm the interconnectedness of existence, self-knowledge, dharma and ahiṃsā, why does the recognition of another's suffering so often fail to become responsibility? This paper investigates the gap between philosophical knowledge and lived ethical consciousness, asking whether the crisis of the present is a crisis of values or a crisis of their realization.

• Methodology:

The study adopts a philosophical, analytical and comparative approach to selected ideas from the Upaniṣads and other Indian philosophical sources, with particular attention to Kena *Upaniṣad's* inquiry into the power underlying perception and cognition. These ideas are examined alongside the concepts of ātman, Brahman, dharma, ahiṃsā, karma and ethical agency. Traditional narratives are used as philosophical illustrations and are brought into dialogue with contemporary experiences of violence, fear, digital witnessing, social apathy and the displacement of responsibility.

• Data & Findings:

The study argues that the persistence of moral failure cannot be explained simply by the disappearance of traditional philosophy. Rather, philosophical concepts may survive as cultural vocabulary while losing their transformative force. The tendency to claim agency for achievement while attributing failure to fate, society or divine will reveals a selective relationship with philosophical knowledge. Thus, cultural continuity may coexist with ethical discontinuity.

• Conclusion:

The paper proposes that the contemporary relevance of Indian philosophy lies not merely in preserving its doctrines but in testing whether they transform perception into recognition, recognition into empathy, and empathy into responsible action. It therefore reads philosophical heritage not as an object of celebration alone, but as a critical mirror for contemporary human conduct.

Keywords

Ethical Consciousness; Indian Philosophy; Upaniṣadic Thought; Human Responsibility; Contemporary Ethics

'द्वन्द्वः सामासिकस्य च' इत्यस्य भाषाशास्त्रीयं दार्शनिकं च समीक्षणम्

-भारद्वाजार्थर्वः

भारतीयवाङ्मये शब्दशास्त्रं व्याकरणं भाषासंस्कारस्य साधनमात्रं न, अपितु तद्वेदपुरुषमुखभूतत्वात् मुख्यं सत् मोक्षद्वारस्वरूपं मन्यते। यतो हि वैयाकरणसमये शब्द एव ब्रह्म, तस्य च सम्यक् ज्ञानं परब्रह्मणः साक्षात्कारात्मकं भवति। अत एव कथ्यते "शब्दब्रह्मणि निष्णातः परं ब्रह्माधिगच्छती"ति। एतस्य शब्दब्रह्मणो विवर्तत्वेनैव समस्तमर्थ जगत् अविर्भवति इति व्याकरणदर्शनसिद्धान्तः। वैदिकसन्दर्भेभ्यः लौकिकवाङ्मयपर्यन्तं सर्वत्रैव व्याकरणांशाः विविधस्वरूपेण दरीदृश्यन्ते। तादृक्षु विषयेष्वन्यतमो नाम श्रीमद्भगवद्गीताया विभूतियोगाख्येऽध्याये भगवता नारायणेन स्वयं स्वदिव्यविभूतीनामुपस्थापनमर्जुनस्य पुरस्तात्प्रस्तुतं तत्र लभ्यते। तद्यथा श्रीमद्भगवद्गीतायाः विभूतियोगे यदा योगेश्वरः श्रीकृष्णः 'हन्त ते कथयिष्यामि दिव्या ह्यात्मविभूतयः' इति स्वकीयविभूतीः वर्णयति, तदा सः "द्वन्द्वः सामासिकस्य च" इति कथयन् व्याकरणवृत्त्यन्यतमं द्वन्द्वसमासं तद्विभूतित्वेन ख्यापयति। सामान्यतः समासप्रक्रिया वाक्येषु संक्षिप्ततायै क्रियते 'समसनं समासः' इत्युक्तरीत्या, परन्तु भगवतः मुखारविन्दात् निःसृतेयम् उक्तिः नूनमेव किञ्चित् अलौकिकं दार्शनिकं रहस्यं गर्भीकरोतीति प्रतिभाति। समासानां संसारे तत्पुरुषबहुव्रीह्यादयः क्वचित् उत्तरपदार्थस्य अन्यपदार्थस्य वा इत्येवं प्राधान्यं दर्शयन्तः कस्यचित् एकस्य पदार्थस्य न्यूनताम् अपरस्य च आधिक्यं सूचयन्ति। परन्तु 'उभयपदार्थप्रधानो द्वन्द्वः' इति द्वन्द्वसमासः एव तादृशः अस्ति, यत्र द्वयोः पदयोः प्राधान्यं समानं भवति।

कृष्णार्जुनसंवादावसरे समासेषु अहं द्वन्द्वः इति कथनस्य भगवतो श्रीकृष्णस्य स्यादेव किञ्चिद्विशिष्टं प्रयोजनम्। 'एष तूद्देशतः प्रोक्तो विभूतेर्विस्तरो मया' इति अध्यायान्ते भगवान् स्वयं विभूतीनां सङ्क्षेपेण नामसङ्कीर्तनं कृतमिति ज्ञापयति। अतः तत्र भृशं चिन्तनं शक्यं, यच्च असकृत् भगवद्गीताभाष्यकारैः विहितमपि। अतः तत्र अर्थविस्तरः कः कथं वेति आधुनिकैः चिन्तनीयमेव। तत्रापि 'व्यासोच्छिष्टं जगत्सर्वम्' इति आभाणकमादाय इहामुत्रलोकविज्ञानसाक्षिभगवद्वाणीवाहकमहर्षिबादरायणव्यासविरचितलोकवर्तिज्ञानप्रकाशकस्य महाभारतस्य ब्रह्मविद्यात्वेन प्रस्थानत्रय्यां प्रतिष्ठितश्रीमद्भगवद्गीतायां सृष्टिसर्गस्थितिनाशहेतुरूपभगवन्मुखप्रस्फुटितम् इदं वाक्यम् अत्युक्तिमात्रमिति तु न शक्यते वक्तुम्। अतः प्रस्तुतशोधपत्रे 'द्वन्द्वः सामासिकस्य च' इति कथने शङ्कराचार्यरामानुजाचार्यमध्वाचार्यज्ञानेश्वरादीनां भगवद्गीताभाष्यकाराणां मतानि सम्यग्विचार्य व्याकरणवेदान्तशास्त्रयोः मध्ये विद्यमानो गूढसम्बन्धः प्रकटीकर्तुं प्रयत्यते। प्रस्तुते शोधपत्रे श्रीमद्भगवद्गीतायाः "द्वन्द्वः सामासिकस्य च" (१०.३३) इति भगवदुक्तेः पाणिनीयव्याकरणशास्त्रस्य दार्शनिकवेदान्तस्य च परिप्रेक्ष्ये कश्चन समीक्षात्मको विमर्शः कृतः अस्ति। भगवान् श्रीकृष्णः समासानां मध्ये 'द्वन्द्वसमासम्' एव किमर्थं स्वकीयविभूतित्वेन स्वीकृतवान् इति जिज्ञासायाः समाधानम् अत्र अन्वेष्टुं यत्नः करिष्यते। अन्ते संसारे विद्यमानानां चिदचित्-प्रकृतिपुरुष-

सुखदुःखादिद्वन्द्वानां सामरस्यं च प्रदर्श्यते। अतः भगवतः इयं भाषिकविभूतिः वस्तुतः ब्रह्मणः एव आनन्दमयी अभिव्यक्तिः वर्तते।

कूटशब्दाः - श्रीमद्भगवद्गीता, विभूतियोगः, द्वन्द्वसमासः, पाणिनीयव्याकरणं, शाङ्करभाष्यं, वेदान्तदर्शनम्।

The Tripartite Model of Mind: Integrating Chapter 17 of the Bhagavad Gita with Modern Psychological Frameworks for Holistic Mental Well-being

Arya Bose

The growing prevalence of stress, anxiety, and psychological imbalance has intensified the search for integrative models of mental well-being that combine philosophical wisdom with contemporary psychological science. This paper examines Chapter 17 of the Bhagavad Gita (Śraddhātraya-Vibhāga Yoga) as a foundational framework for understanding human cognition, emotion, and behaviour through the doctrine of the three guṇas—Sattva, Rajas, and Tamas. The study proposes that the Gita presents a tripartite model of mind in which faith (śraddhā), food, discipline, speech, and action are conditioned by dominant psychological dispositions. These categories are interpreted in dialogue with modern psychological frameworks, including personality theory, cognitive-behavioural psychology, positive psychology, and self-regulation theory.

Using a comparative textual and conceptual methodology, the paper explores how Sattva corresponds to psychological balance, resilience, ethical awareness, and well-being; Rajas reflects ambition, emotional reactivity, and attachment; and Tamas represents inertia, confusion, and maladaptive behavioural patterns. Rather than viewing these dispositions as fixed personality types, the Gita presents them as dynamic and transformable states, offering practical methods for psychological refinement through conscious lifestyle choices, disciplined conduct, and value-oriented living.

The paper argues that integrating the Bhagavad Gita's tripartite model with modern psychological theories provides a culturally inclusive and ethically grounded approach to holistic mental well-being. Such an interdisciplinary framework contributes to contemporary discussions on mental health by emphasizing prevention, self-awareness, emotional regulation, and inner transformation. The study highlights the continuing relevance of classical Indian wisdom for developing integrative psychological models capable of addressing the complex mental health challenges of the twenty-first century.

Keywords: Bhagavad Gita; Gunas; Personality Psychology; Cognitive Behavioral Therapy; Mental Well-being; Alternative Psychotherapy.

वैदिक एवं उपनिषद साहित्य में परिलक्षित जिज्ञासा की अवधारणा

प्रीती

भारतीय चिन्तन परम्परा में जिज्ञासा दार्शनिक एवं मनोवैज्ञानिक चिन्तन का विषय बनकर एक केन्द्रीय बिन्दु के रूप में हमारे समक्ष प्रस्तुत है। उपनिषद्-साहित्य भारतीय ज्ञान-परम्परा का महत्त्वपूर्ण पक्ष है, जहाँ जीव, जगत् और आत्मा-परमात्मा से सम्बन्धित गहन प्रश्नों के माध्यम से तत्त्वचिन्तन की परम्परा विकसित होती दिखाई देती है। उपनिषदों में जिज्ञासा का आरम्भ प्रश्न से होता है, उसका विकास संवाद एवं चिन्तन से होता है और उसकी परिणति

तत्त्वबोध एवं आत्मज्ञान में दिखाई देती है। प्रारम्भ से ही उपनिषद्-साहित्य में गुरु-शिष्य शिक्षा-पद्धति को महत्त्व दिया गया है, जहाँ गुरु के मार्गदर्शन से शिष्य के मन में जिज्ञासा का विकास होता है और वही जिज्ञासा उसे प्रश्न करने तथा सत्य की खोज के लिए प्रेरित करती है। यम-नचिकेता, श्वेतकेतु-उद्दालक, भृगु-वरुण, गार्गी-याज्ञवल्क्य तथा मैत्रेयी-याज्ञवल्क्य संवाद और संज्ञानसूक्त, नासदीय सूक्त इसके प्रमुख उदाहरण हैं। जिज्ञासा को मनोवृत्ति के रूप में यहाँ मनोवैज्ञानिक संज्ञानात्मक संरचना का संक्षेप में अध्ययन किया जाएगा,जिसमें जिज्ञासा का स्वरूप एवं चरण बताए जिज्ञासा का सम्बन्ध केवल 'जानने की इच्छा' से न होकर श्रवण, मनन और निदिध्यासन की क्रमिक प्रक्रिया से जुड़ता है। श्रवण से प्राप्त ज्ञान का मनन तथा उसके पश्चात् निदिध्यासन के द्वारा आत्मसात् होना जिज्ञासा को तत्त्वबोध की दिशा में ले जाता है।

प्रस्तुत शोध-पत्र में उपनिषद्-साहित्य में परिलक्षित जिज्ञासा की अवधारणा को प्रश्न, संवाद, चिन्तन और आत्मान्वेषण के विभिन्न स्तरों के माध्यम से समझने का प्रयास किया जाएगा। साथ ही मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण को सम्मिलित करते हुए तुलनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत किया जाएगा, जिससे स्पष्ट होगा कि वैदिक एवं उपनिषद साहित्य में जिज्ञासा की वास्तविक सत्ता बाह्य ज्ञान-संग्रह में नहीं, बल्कि आत्मज्ञान एवं तत्त्वबोध में निहित है।

मुख्य शब्द

जिज्ञासा , मनोवैज्ञानिक, उपनिषद साहित्य, वैदिक साहित्य, संज्ञानात्मक

Study of Integral Yoga & its Practical Applications

Amol Mukund Devasthali

This research paper represents study of Integral Yoga (पूर्णयोग) as experienced by Yogi Shree Aurobindo on one side and their practical applications on the community on the other.
If we have a broad-based glance at Bhartiya Darshan and Philosophy*;* we have Ved *(वेद)*, Vedanta (वेदांत) (essence of *Ved meaning Upanishads) (उपनिषद)*, Bhagwad Geeta and its various derivatives; written by various Saints and philosophers.

Each of these personalities nurtured the topic of philosophy in all possible ways. Some of them experienced Adwait Philosophy (अद्वैत तत्त्वज्ञान) whereas others simply studied. Even then there could be certain limitations and Yogi Shree Aurobindo attempted to address these and therefore termed it as Integral Yoga (पूर्णयोग).
He did research in Philosophy; experienced Supra-mental Power of Supreme *(अधिमानस और अतिमानस)* – A higher degree of mental consciousness –. He made each and every attempt such that this Supreme Power is to be brought on to the earth and to be transformed for the betterment of man-kind.
If we have a look at Bhartiya Darshan and Philosophy*;* we have three-dimensional methods of practice (Karma, Bhakti & Dnyana) (कर्म, भक्ती और ज्ञान*)* with the help of Body, Mind & Intelligence. Integral Yoga can be considered as an extension. Out of these three; mind is relatively getting ignored and Yogi Shree Aurobindo wanted to have more focus on it. He is talking about totally developed mind which will make you think in totally different perspective anticipating a change at global level.

Conclusion:

Even though new social media platforms are getting introduced on day-to-day basis so as to bring two people closer to each other even then we all aware that a man is moving away from one

another. Integral Yoga will address this issue once for all and form homogeneous community without feeling of enmity or conspiracy against each other.

Keywords:

Integral Yoga; Ved; Vedanta; Adwait Philosophy, Supramental Power of Supreme; Karma, Bhakti & Dnyana (Knowledge)

The Stream of Indian Philosophical Thought: From Vedic Foundations to Swami Vivekananda, Rishi Aurobindo and Rabindranath Tagore

Dr. Kaushik Sarkar

The Vedic corpus represents an unparalleled milestone in the intellectual history of humankind and stands as the earliest profound literary heritage within the Indo-European linguistic continuum. Composed in Sanskrit, this vast body of work is permeated with deep philosophical inquiry, universal humanistic vision, and cosmic consciousness. Across millennia, the essence of India (Bhārata) and the philosophical spirit of the Vedas have remained deeply intertwined—the Vedic heritage serving as the enduring foundation of Indian civilizational identity.

From an ontological and hermeneutical perspective, the Vedic canon is characterized by two complementary dimensions:

1. The Ritualistic Dimension (Kriyā-kāṇḍa): Represented primarily by the Saṃhitās and Brāhmaṇas, focusing on cosmic order (Ṛta), yajña, and liturgical praxis.
2. The Speculative / Philosophical Dimension (Jñāna-kāṇḍa): Elaborated within the Āraṇyakas and Upaniṣads, concentrating on metaphysics, the nature of Ultimate Reality (Brahman), and self-realization (Ātman).

This philosophical evolution did not emerge in a vacuum. As the Indologist Friedrich Max Müller observed:

"...like a stream which has received many a mountain torrent, and is fed by many a rivulet, the literature of the Upaniṣads proves—that the elements of their Philosophical Poetry came from a more distant fountain." (*History of Ancient Sanskrit Literature*, p. 566)

The Saṃhitā hymns and early prose expositions contain the seminal intuitions of unity and cosmic law that later culminated in the profound non-dualistic and theistic philosophies of the Upaniṣads. This vibrant intellectual river continuously flowed through classical Sanskrit traditions, eventually inspiring the modern syntheses of spiritual thought articulated by Swami Vivekananda, Sri Aurobindo, and Rabindranath Tagore.

Ātma-Saṃyama and Resilience: A Viśiṣṭādvaita-Informed Indian Knowledge Systems Framework for Addressing Climate Anxiety and Youth Stress

Ramanavarapu Neela

Climate change is increasingly associated with psychological responses among young people, including climate anxiety, eco-grief, helplessness, uncertainty and stress. While contemporary approaches emphasize coping and psychological resilience, this paper explores whether Indian philosophical resources can offer a culturally grounded framework addressing emotional regulation, meaning, ethical responsibility, agency and the limits of individual control. It proposes a Viśiṣṭādvaita-informed Indian Knowledge Systems framework for resilient engagement with climate-related distress through selected teachings of the Bhagavad Gītā.

Drawing upon Ātma-Saṃyama, Prasāda, Samatva, Buddhi, Karma Yoga, Dharma, Lokasaṅgraha, Bhakti and Śaraṇāgati, the paper develops a philosophical pathway from inner regulation to responsible action and spiritually grounded acceptance of outcome uncertainty. Ātma-Saṃyama is examined as a basis for disciplined engagement with mental disturbances; Samatva and Buddhi as resources for discernment amid uncertainty; Karma Yoga and Dharma as orientations toward responsible action; and Lokasaṅgraha as an expansion of responsibility toward collective welfare. Within a Viśiṣṭādvaita perspective, Bhakti and Śaraṇāgati situate individual agency within dependence upon Īśvara, challenging the burden of assuming total control over outcomes beyond individual capacity.

The paper does not equate classical Sanskrit concepts with modern psychological constructs or present the Bhagavad Gītā as a climate-science text. Rather, it brings Indian philosophical resources into dialogue with contemporary climate-anxiety and resilience discourse. It proposes resilient engagement as the capacity to regulate, discern, act responsibly, contribute to collective welfare, and relinquish total outcome-control without abandoning ethical responsibility. The framework thus demonstrates the philosophical relevance of Indian Knowledge Systems to youth resilience under conditions of climate uncertainty.

Keywords

Ātma-Saṃyama; Viśiṣṭādvaita; Bhagavad Gītā; Climate Anxiety; Resilience.

Philosophy of mind through the lens of Advaita Vedanta

Deshwanth YP

- Research Parameters (Introduction): The mind plays a central role in human life by shaping human experience, memory, and thought. It functions as an important internal instrument through which an individual perceives, interprets, and responds to the world. This paper examines a fundamental question if the mind is not the ultimate consciousness, how does it become a cause of both bondage and liberation? The study explores the origin, nature, sustenance, functioning, and limitations of the mind through the lens of Advaita Vedānta.
- Methodology: This study adopts a textual, philosophical, and analytical approach to examining the nature of the mind with reference to the Upaniṣads, Bhagavad Gītā, and Yoga Vāsiṣṭha. It further examines key aspects of the mind, including manas, buddhi, citta, ahaṅkāra, vāsanā, and saṃskāra, and their relationship with consciousness and the Self.
- Data & Findings: The study finds that Advaita Vedānta does not regard the mind as the ultimate reality. Rather, the mind is understood as an internal instrument that is illumined by consciousness and serves as a means for Self-inquiry and the recognition of the supreme reality. The study further observes that the purification and discipline of the mind through qualities such as śama*, dama,* and uparati contribute to overcoming bondage and preparing the mind for Self-knowledge.

- Conclusion**:** The study concludes that the existence of the mind itself is not the fundamental problem rather, the problem lies in identifying the Self with the mind and body. Therefore, understanding the nature and limitations of the mind through the lens of Advaita Vedānta becomes essential for Self-inquiry and liberation.

Keywords

Origin of the Mind, Sustenance of the Mind, Nature of the Mind, Limitations of the Mind.

"कृष्णसखा: अन्तर्मन के सारथि की दार्शनिक खोज"

Prachi

"कृष्णसखा: अन्तर्मन के सारथि की दार्शनिक खोज" भारतीय दर्शन में श्रीकृष्ण के बहुआयामी व्यक्तित्व को केवल धार्मिक अथवा पौराणिक संदर्भ में न देखकर, उन्हें आत्मसंघर्ष, आत्मबोध, विवेक और कर्मचेतना के आंतरिक मार्गदर्शक के रूप में समझने का प्रयास है। आधुनिक जीवन में मनुष्य निरंतर अनेक प्रकार के द्वन्द्वों से गुजरता है— निर्णय का संकट, असफलता का भय, संबंधों की जटिलता, प्रतिस्पर्धा तथा अपनी वास्तविक पहचान को लेकर प्रश्न। यह आधुनिक मनुष्य का अपना 'कुरुक्षेत्र' है।

महाभारत के युद्धक्षेत्र में अर्जुन का विषाद और मोह केवल एक ऐतिहासिक प्रसंग नहीं, बल्कि मानवीय मन की सार्वकालिक स्थिति का प्रतीक है। ऐसे समय में श्रीकृष्ण का मार्गदर्शन विवेक, आत्मबोध और निष्काम कर्म की ओर ले जाता है। *भगवद्गीता* का "कर्मण्येवाधिकारस्ते" सिद्धान्त मनुष्य को फल की चिंता से मुक्त होकर कर्तव्य के प्रति सजग रहने की प्रेरणा देता है, जबकि समत्व जीवन के उतार-चढ़ाव में मानसिक संतुलन का आधार प्रस्तुत करता है।

इस शोध का मूल प्रतिपाद्य यह है कि 'अन्तर्मन का कृष्ण' किसी बाहरी सत्ता की खोज नहीं, बल्कि मनुष्य के भीतर स्थित विवेक, साहस, करुणा, सत्य और आत्मचेतना का जागरण है। जिस प्रकार कृष्ण अर्जुन के सारथि बनकर उसके संशय को दिशा देते हैं, उसी प्रकार प्रत्येक व्यक्ति अपने भीतर के विवेक को जागृत कर आत्मसंघर्ष पर विजय प्राप्त कर सकता है।

अतः 'कृष्णसखा' की संकल्पना आधुनिक मनुष्य के लिए आत्मसंवाद से आत्मबोध और आत्मबोध से सार्थक कर्म की दार्शनिक यात्रा का प्रतीक बनती है।

कठोपनिषद् – श्वेताश्वतरोपनिषदोः समानार्थकमन्त्राणां समीक्षणम्

चिन्मयमुञ्जे

कठोपनिषद् – श्वेताश्वतरोपनिषद् इत्युभे कृष्णयजुर्वेदसम्बद्धौ उपनिषदौ स्तः। तत्र कठोपनिषद् कृष्णयजुर्वेदस्य कठशाखीया उपनिषद् वर्तते। श्वेताश्वतरोपनिषद् तु तैत्तिरीयशाखासम्बद्धा अस्ति। उभयोः उपनिषदोः प्रतिपाद्यविषयः भवति ब्रह्मविद्या इति । कठोपनिषदि एषा ब्रह्मविद्या यम – नचिकेतसोः संवादरुपेण उक्ता । तत्र च – नाचिकेताग्निविद्या, श्रेयप्रेयसोः निरुपणं, रथकल्पनया आत्मनः स्वरुपवर्णनम्, ओङ्कारोपासनं, जीवपरमात्मनोः सम्बन्धः स्वरुपञ्च, आत्मविद्यायाः दौर्लभ्यम् इति नैके विषयाः प्रतिपादिताः। तद्द्वारा आत्मतत्त्वं विशदीकृतम् । श्वेताश्वतरोपनिषदि ब्रह्मवादिभिः जगत्कारणत्वं किमिति ध्यानाभ्यासबलेन ज्ञात्वा, ध्यानयोगस्य वर्णनं कृतम्। ध्यानयोगस्य साध्यभूतः परमेश्वरः, तस्य सगुणस्वरुपं, अन्तर्यामित्वम्, शुद्धस्वरुपमित्यादिभिः नैकाभिः विधाभि प्रतिपादितः। तदनु परमेश्वरस्य स्वरुपं महत्त्वञ्च प्रतिपाद्य तज्ज्ञानमेव सर्वदुःखोपशमसाधनमिति उक्तम्।

उभयोः अपि उपनिषदोः बहवः मन्त्राः पाठतः क्वचिदर्थतश्च समानाः। यथा – अणोरणीयन्महतो महीयानात्मास्य जन्तोर्निहितो गुहायाम् । तमक्रतुः पश्यति वीतशोको धातुप्रसादान्महिमानमात्मनः॥ इत्येषः मन्त्रः कठोपनिषदि

(१.२.२०) प्राप्यते। आत्मतत्त्वं सूक्ष्मादपि श्यामाकादेः सूक्ष्मतरं, महत्परिणामवतः पृथिव्यादेः अपि महत्तरञ्च अस्ति इत्येषः मन्त्रः प्रतिपादयति। सर्वमपि वस्तु अणु महद्वा यदस्ति लोके तत्तस्य आत्मनः सत्तया प्रतिभाति। सर्वनामरुपवस्तूपाधिकत्वात् आत्मनः। नहि आत्मनः व्यतिरेकेण जगदिदं स्वतन्त्रतया अवतिष्ठति। अतः यद् अणोरणीयान् महतो महीयान् च तत्सर्वमात्मतत्त्वमेव । इदमात्मतत्त्वं ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तस्य सर्वस्याऽपि प्राणिजातस्य हृदये प्रत्यगात्मतया स्थितं वर्तते। दृष्टादृष्टबाह्यविषयेषु उपरतः कश्चित् पुरुषः मन आदिनां करणानां प्रसादेन अस्य आत्मतत्त्वस्य कर्मनिमित्तवृद्धिक्षयरहितम् महिमानं जानाति। तमात्मानं प्रत्यगात्मतया च साक्षात्कृत्य सः वीतशोको भवति इति मन्त्रार्थः। अयमेव मन्त्रः आनुपूर्व्याः भेदेन श्वेताश्वतरोपनिषदि (३.२०) प्राप्यते । यथा - अणोरणीयन्महतो महीयानात्मा गुहायां निहितोऽस्य जन्तोः । तमक्रतुं पश्यति वीतशोको धातुप्रसादान्महिमानमीशम्॥ इति।

कठोपनिषदि आत्मस्वरुपनिरुपणावसरे मुमुक्षुः आत्मानं कथं जानाति इति दर्शनाय एषः मन्त्रः उक्तः। श्वेताश्वतरोपनिषदि तु आत्मस्वरुपमुपवर्ण्य तज्ज्ञानेन मनुष्यः शोकरहितः सम्पद्यते इति अनेन मन्त्रेण प्रतिपादितम् । अतः उभयोः उपनिषदोः विद्यमानाः मन्त्राः क्वचिद् समानानुपूर्विकाः समानार्थकाश्च भवन्ति । क्वचित्स्थले प्रकरणभेदेन समानानुपूर्विकाश्चेदपि भिन्नमेव तात्पर्यं बोधयन्ति । क्वचित् अर्थसाम्येऽपि आनुपूर्वी भिद्यते।

अनेन शोधपत्रेण मया कठोपनिषद् – श्वेताश्वतरोपनिषदोः समानानुपूर्विकाणां समानार्थकाणां च मन्त्राणां समीक्षणं विध्यास्यते।

The Field, the Knower, and the Emergence of Experience: An Indian Knowledge System Reconstruction of Subject-Relative World Formation

Nitin Kumar, and Venkatesh H. Chembrolu

Introduction: Most contemporary theories of consciousness assume an already constituted external world and ask how experience arises from an organism's interaction with it. We examine an alternative starting point found in classical Indian discussions of the knower and the field. The scope is defined by specific passages from the Bhagavad Gītā (13.2-13.3, 13.23), the Pātañjala Yoga Sūtra (2.17, 2.20), the Kena Upaniṣad (1.5-1.7), the Bṛhadāraṇyaka Upaniṣad (2.4.14), and the Śvetāśvatara Upaniṣad (6.11), read for what they say about the relation between the conscious knower and the changing contents of cognition.

Methodology: The study proceeds through comparative textual analysis of the selected passages, followed by a structural reconstruction of the philosophical claims they share. This reconstruction is kept separate from a third step, formal mathematical modeling, using the category theory instantiation.

Data & Findings: Across the five sources, a recurring distinction appears between a conscious knower and a changing field of cognition that the knower accesses. Building on this, we propose a mathematical framework in which a conscious knower accesses only a contextually restricted relational field, integrates this access through temporally conditioned processes, and thereby arrives at a determinate phenomenal organization for that conscious locus to experience. On this account, experience is neither an intrinsic property of an objective world nor an isolated internal representation, but belongs to consciousness alone. The framework generates testable predictions about contextual dependence, perceptual history, stabilization, hysteresis, and convergence between subjects.

Conclusion: By keeping textual interpretation, philosophical reconstruction, and formal modeling as distinct stages, the paper shows that these Indian sources supply working conceptual resources, not merely historical parallels, for present day theorizing about consciousness and subject-relative

world formation, extending their relevance beyond Indology into philosophy of mind and consciousness.

Keywords: Consciousness Ontology; Subjective World; Philosophy of Mind; Qualia; Knower-Field Distinction;

-

श्री अरविंद के 'सावित्री' महाकाव्य एवं पातंजल योगदर्शन में प्रकृति-तत्त्व : एक तुलनात्मक एवं दार्शनिक अध्ययन

प्रिया लेखराम टेंभरे

शोध का परिचय- भारतीय दर्शन में योग दर्शन की प्राचीन परंपरा के संकेत वेदों और उपनिषदों में मिलते हैं। सांख्य दर्शन की तत्वमीमांसा को आधार रखते हुए महर्षि पतंजलि ने कैवल्य प्राप्ति हेतु योग का व्यावहारिक मार्ग प्रस्तुत किया है। अर्थात् श्री अरविंद द्वारा रचित 'सावित्री महाकाव्य' महाभारत में 'पतिव्रता माहात्म्य'(वन पर्व)के प्रसंग को आधार रखते हुए, उन्होंने अपनी साधना के दौरान आध्यात्मिक एवं दार्शनिक दृष्टि से मानव चेतना के रूपांतरण से संबंधित इस महाकाव्य की रचना की। भारतीय दर्शन की दो भिन्न धाराएं सावित्री महाकाव्य एवं योग दर्शन में निरूपित 'प्रकृति' की तत्वमीमांसा,चेतना का स्वरूप, गुण सिद्धांत तथा आध्यात्मिक प्रक्रिया जैसे अनेक विचारो में दिखाई देने वाले अंतरों का परीक्षण करना इस अध्ययन का मुख्य उदेश्य है।

शोध-पद्धति- योगदर्शन के दार्शनिक सिद्धांतों एवं सावित्री के चयनित सर्गो एवं प्रसंग मे आने वाले प्रकृति तत्व का तुलनात्मक,विश्लेषणात्मक अध्ययन किया गया है।

प्रमुख तथ्य - योग दर्शन में प्रकृति और पुरुष का सहयोग दुख का कारण बनता है. अर्थात प्रकृति को अचेतन (जड़) त्रिगुणात्मक और पुरुष (आत्मा)से पूर्णतः पृथक माना गया है -जहां मुक्ति का मार्ग प्रकृति से 'कैवल्य' (वियोग) की ओर जाता है। वहीं श्री अरविंद के सावित्री महाकाव्य में प्रकृति जड़ अचेतन नहीं,बल्कि चित्-शक्ति (डिवाइन मदर)के रूप में माना है। उसका अंतिम लक्ष्य अतिमानस प्रकाश (सुपरमेंटललाइट) प्रकाश द्वारा इस भौतिक प्रकृति का दिव्य रूप में रूपांतरण करना है।

निष्कर्ष- अतः दोनों दृष्टियों में प्रकृति की दार्शनिक भूमिका समान आधारों से प्रारंभ होकर भिन्न आध्यात्मिक निष्कर्षों तक पहुँचती है। योगदर्शन कैवल्य हेतु प्रकृति से निवृत्ति और विवेकख्याति पर बल देता है, वही सावित्री महाकाव्य प्रकृति को चेतना शक्ति के रूप में मानकर आध्यात्मिक परिवर्तन से मानव के समग्र विकास का संबंध बताता है।

संकेत शब्द: प्रकृति तत्व, पातंजल योगदर्शन,श्री अरविंद,सावित्री महाकाव्य, दार्शनिक।

A study of a Manuscript on Advaita Vedānt titled Harihara Saṁvād (Adhyātmajñānm)

Panchakshari Rucha Rajesh

In the beginning of the Harihar dialogue, Hari (Krishna or Vishnu) asks questions and Har (Mahadev) answers, just as in the Gita, Arjuna asked questions and Shri Krishna answered him. Here हरि as भगवान and हर as ईश्वर . In this dialogue questions about supreme knowledge, what is Dharma, perception, meditation, state of mind, happiness and sorrow, dispassion, karma, bondage, karma in rebirth yoga as the best and the universe are discussed

Pseudo Jīva, Double Burden of Suffering and Digital Karma: An Advaita Vedāntic Framework for Regulating Digital Interactions

Shivam Chaudhary, Dr. Monica Kuwar Rathore

The intensifying desire of social visibility, recognition and digital validation in the digitally moved world, has proved adversarial to both physical and psychological well-being, with the latter engendering concerning outcomes. Ranging from the micro-level impact on individual's self-perception, behavioural pattern, attention, emotional construct and interpersonal relationships to macro-level repercussions on the civilization, psychological dimension of unregulated digital interactions requires a culturally rooted framework for understanding the crisis and regulating its effects. The study addresses this problem by interpreting the interactive apparatus of digital platforms from the perspective of *Advaita Vedānta* philosophy and presents a framework for regulating digital interactions.

Methodologically, the study employs comparative and analytical textual interpretation, bridging *Advaita Vedāntic* philosophical discussions and contemporary scholarship on digital psychology. It develops three analytical constructs 'Pseudo *jīva*,' 'double burden of suffering' and 'digital *karma*' to explain the cause of the upsurging psychological distress and the mechanism to cope. A social-media profile can be conceptualized as a 'Pseudo *jīva*', not an ontological entity, but a digital reflection of *jīva* to which it identifies itself with. Such misidentification immediately results into the superimposition of the Pseudo *jīva's* digitally mediated experiences like non-recognition, negative feedbacks and harassment on the already suffering *jīva*, thus leading to 'double burden of suffering'. The study further introduces 'digital *karma*' as a synthesis of digitally digital actions influenced by underlying *vāsanās*, algorithmic reinforcement, repeated exposure and the subsequent strengthening of behavioural and psychological patterns.

Rooted in the conceptions of karma, upaniṣadic teachings of śreyas and preyas, akartṛtva and jagata-vaitathya and advaitic worldviews and ethics, this framework provides for a holistic outlook and potential solution of the contested problem. The proposed framework contributes to contemporary Indian philosophical discourse by demonstrating how Advaita Vedānta can critically interpret emerging digital realities while offering an ethically and psychologically informed approach to their regulation.

Keywords

Jīva; Suffering; Digital interactions; *Akartṛtva*; *Vāsanā*

प्रफुल्लकुमारमिश्रकृते परिव्राजकोपन्यासे दार्शनिकं प्रतिफलनम् ।

चन्दना वेहेरा शोधछात्रा, संस्कृतविभाग

आधुनिकसंस्कृतसाहित्ये गद्यपरम्परायां उपन्यासविधाया: विकास: साहित्यस्य नूतनदिशां सूचयति। आधुनिकसंस्कृतोपन्यासेषु कथावस्तु केवलं मनोरञ्जनपर्यन्तं सीमिता न भवति, अपितु मानवीयजीवनस्य विविधपक्षा:, सामाजिकयथार्थता, नैतिकमूल्यानि तथा दार्शनिकदृष्टय: अपि सुस्पष्टतया प्रतिपाद्यन्ते । अस्मिन् परिप्रेक्ष्ये ओडिशा प्रदेशस्य सुविख्यातविदुष: प्रोफेसर प्रफुल्लकुमारमिश्रस्य 'परिव्राजक:'- उपन्यास:

समकालीनसंस्कृतजगति दार्शनिकदृष्ट्या विशिष्टस्थानं प्रस्तौति।अयं उपन्यासः केवलं कथाविन्यासस्य सौन्दर्येण न, अपितु गम्भीरदार्शनिकचेतनायाः प्रतिपादनपरिप्रेक्ष्ये अपि अनुपमं महत्त्वं भजते।

कूटशब्दाः- प्रफुल्लकुमारमिश्रः, 'परिव्राजकः', दर्शनं, समाधिः, मोक्षप्राप्तिः, वेदान्तदर्शनम्।

आद्य शंकराचार्य के अद्वैत दर्शन एवं ज्ञानेश्वरी के नाथाद्वैत में माधुर्य भक्ति : एक तात्विक तुलनात्मक अध्ययन

प्रो. कविता होले

संस्कृत भाषा एवं साहित्य विभाग

कविकुलगुरु कालिदास संस्कृत विश्वविद्यालय, रामटेक

सारांश :

प्रस्तुत शोध-पत्र आद्य शंकराचार्य के केवलाद्वैत और संत ज्ञानेश्वर महाराज द्वारा ज्ञानेश्वरी में प्रस्तुत नाथाद्वैत के परिप्रेक्ष्य में 'माधुर्य भक्ति' के दार्शनिक स्थान का प्रत्यक्ष तुलनात्मक विश्लेषण करता है। सामान्यतः नाथ संप्रदाय को हठयोग, षट्चक्र-भेदन, नादानुसंधान और 'पिण्ड-ब्रह्माण्ड ऐक्य' की कठोर यौगिक साधना तक सीमित माना जाता है, जहाँ माधुर्य अथवा प्रेम भक्ति का प्रत्यक्ष स्थान नहीं दिखता। वहीं दूसरी ओर, आद्य शंकराचार्य के अद्वैत दर्शन में सगुण भक्ति को केवल व्यावहारिक सत्ता के स्तर पर 'चित्त-शुद्धि' का गौण साधन माना गया है, जो पारमार्थिक ज्ञान के उदय होते ही विवर्तवाद और माया-निरसन के कारण विलीन हो जाती है।

यह शोध-पत्र इस दार्शनिक द्वंद्व का समाधान ज्ञानेश्वरी के आलोक में प्रस्तुत करता है। संत ज्ञानेश्वर महाराज ने मत्स्येंद्र-गोरक्ष-गहिनीनाथ से प्राप्त नाथ-योग के 'शिव-शक्ति सामरस्य' और समरसता-भाव को शुष्क ज्ञान से भिन्न एक रसात्मक मोड़ दिया। शांकर मत में जहाँ ब्रह्म और जगत में विवर्त संबंध है, वहीं ज्ञानेश्वर महाराज के नाथाद्वैत में यह संबंध 'चिद्विलास' का है।

तुलनात्मक दृष्टि से यह अध्ययन प्रतिपादित करता है कि शांकर दर्शन में ज्ञान भक्ति का अतिक्रमण कर जाता है, जबकि ज्ञानेश्वरी के नाथाद्वैत में नाथ-योग की आंतरिक ऊर्जा पराभक्ति और 'माधुर्य रस' में रूपांतरित होती है। यहाँ अद्वैत ज्ञान की प्राप्ति के उपरांत भी भक्त और भगवान का माधुर्य-संबंध समाप्त नहीं होता, बल्कि अभेद रहते हुए भी रस-आस्वादन (अद्वैत-भक्ति) निरंतर बना रहता है। श्रीज्ञानेश्वरी (साखरे महाराज संस्करण) के प्रामाणिक संदर्भों और शांकर प्रस्थानत्रयी-भाष्यों के पाठ-आधारित तुलनात्मक विश्लेषण द्वारा यह सिद्ध किया गया है कि ज्ञानेश्वरी का नाथाद्वैत ज्ञान-मार्ग और नाथ-हठयोग—दोनों की सीमाओं का परिहार कर माधुर्य भक्ति को सर्वोच्च पारमार्थिक साध्य के रूप में प्रतिष्ठित करता है।

मुख्यशब्द : आद्य शंकराचार्य, संत ज्ञानेश्वर महाराज, नाथाद्वैत, माधुर्य भक्ति, प्रेम भक्ति, शिव-शक्ति सामरस्य, चिद्विलास, साखरे महाराज संस्करण, भक्तियोग

"A study of a manuscript titled 'Dehātiriktātmaprakaraṇa' written by Śaṅkarācārya."

Jaine Kamleshbhai Chauhan

The present work 'Dehātiriktātmaprakaraṇa' written by Śaṅkarācārya is found as manuscript with accession no.24387 in 3 folios at the Oriental Institute of Maharaja Sayajirao University of Baroda. The language of the text is Saṁskṛta and the script is Devanāgrī. It deals with the Advaita Vedānta Śāstra and about the nature of Ātman, which is additional or excessive from body.

This is a Prakaraṇa text. It discusses that a man attached with materialistic world due to his desires, forget the ultimate truth that the Ātman is not the body. The text points out about the illusory world humans live into and means to deal with duality to understand the non-dual Supreme Reality. The Yogis who get the control over their senses can realise that Supreme Reality- Anguṣthamātra Puruśa. The elements of physical world like desires and miseries are attached with the body not the Ātman.

The present paper will discuss the salient features of Advaita Vedānta as discussed by the Śaṅkarācārya in this particular text. It will also discuss Chāyā -Pratichāyā and also about the gross and subtle bodies.

Key words: Śaṇkarācārya, Advaita Vedānta, Prakaraṇa, Supreme Reality, Ātman

Knowledge as Transformation: The Educational Vision of the Chāndogya Upaniṣad for Bharat's Youth Today

Jithendra Krishna Moorthy

Education is generally understood as a means of gaining knowledge and achieving success in life. However, the Upaniṣadic tradition gives a deeper purpose to education by connecting knowledge with the understanding of the Self. The sixth chapter of the Chāndogya Upaniṣad presents this idea through the dialogue between Uddālaka Āruṇi and his son Śvetaketu.

After completing his education in the gurukula, Śvetaketu returns home with considerable learning and becomes proud of his knowledge. His father observes this attitude and asks him whether he has known that knowledge by which everything becomes known. This question leads Śvetaketu towards a deeper form of knowledge. Through the teachings on Sat and the repeated instruction Tat Tvam Asi, Uddālaka guides Śvetaketu towards an understanding of the Self beyond external learning and intellectual achievement.

This paper examines the transformation of Śvetaketu as a model for understanding the purpose of education. In the contemporary context, young people often give great importance to academic achievement, career opportunities, competition and personal success. These are important aspects of life, but when education becomes centred only on individual achievement, it may also encourage excessive attachment to status and personal advancement. The teaching of the Chāndogya Upaniṣad suggests a broader vision of education in which knowledge leads to self-understanding and a more harmonious relationship with others.

The paper explores how this Upaniṣadic vision can contribute to the development of young people who seek not only personal success but also the upliftment of their peers and the welfare of society. In this way, the ancient vision of knowledge may have relevance to the contemporary aspiration of building a harmonious and developed India.

Keywords: Chāndogya Upaniṣad, Śvetaketu, Tat Tvam Asi, Self-Knowledge, Education, Youth Development, Jñāna, Social Harmony.

Vivekacakṣuḥ -Viveka in the Age of Artificial Intelligence: Reclaiming Discernment as a Youth Competency

Ms MANSI PRADEEPBHAI JOSHI

This paper argues that today's youth live in an algorithmic cave and are unable to distinguish between appearance and reality. Artificial intelligence produces and curates shadows—personalised feeds, synthetic media, and machine-generated opinions—that replace real-life experiences. Today's youth are influenced by these shadows, leading to diminished judgment and an inability to tell the real from the artificial. This paper introduces the Vedantic concept of Viveka, most systematically articulated in Śaṅkarācārya's Vivekacūḍāmaṇi, and offers a philosophically rigorous foundation for cultivating AI awareness among youth. Reading viveka alongside the Kaṭha Upaniṣad's śreyas-preyas distinction, the paper argues that discernment is not merely an epistemic skill but an ethical orientation of the buddhi (intellect) toward what is real, worthy, and lasting. The present paper dives deep into the nature of Viveka, representing a form of human intelligence that artificial intelligence cannot replicate and how it should be intentionally developed as a critical competence for today's youth. It also suggests ways to incorporate Viveka into educational practices to equip young people for navigating an AI-driven world.

Vedic or Tantric? Strategies of Reconciliation and Assimilation of South Indian Commentators of Śrīvidyā.

Ajithan p

Śrividyā refers to a living Śākta tantric tradition affiliated with the cult of Goddess Lalitā and also, by extension, the texts and practices associated with it. Scholars speculate Kashmir as the land of origin of her cult, while a few holds East India, particularly Assam as the epicentre. Wherever may be the origin of her cult, it is found flourishing in the South India in medieval periods and becoming a pan-Indian tantric by premodern times. As a tantric cult, it has a rich oral and textual legacy, extending for almost twelve centuries. If we look closely into the development of its philosophy, it becomes clear that its commentators like Śivānanda, Amṛtānanda, Lakṣmīdhara, Nīlakaṇṭha dīkṣita, Bhāskararāya and Maheśvarānada were instrumental in laying a strong philosophical foundation for Śrividyā than the texts themselves. Moreover, the commentators aim appears to be developing a cohesive system of philosophy into which the whole system can be situated. While commentators provided a firm philosophical of foundation for Śrīvidyā, the authors of ritual manuals (paddhatikāras) contributed to the flourish of practical ritual manuals; these together made the tradition richer and more attractive to the Smārta community.

It remained a bone of contention among the commentators whether a particular text or ideology or practice of Śrīvidyā is vedic or tantric. What majority of them did is to establish that Śrīvidyā tantric philosophy and practices fall within the gamut of Vedic, hence, deemed authoritative. By doing so, they envisioned to expand the base of the tradition by making it more appealing to the South Indian Smārta Brahmin community. This paper is an attempt to unravel the strategies employed by the South Indian commentators to reconcile the dividing line between vedic and tantric and make Śrīvidyā more appealing to the smarta community of South India.

पिबरे राम रसमिति पद्ये अद्वैततत्त्व विवेचनम्

POURAV SAGAR B S

रसनाऽमृतपानरसिक,पिबरामरसम्। संसारतापहरणं परमानन्ददायकम्॥

श्रीसदाशिवब्रह्मेन्द्रविरचितपद्यमिदम् अत्यन्तं सुप्रसिद्धम्। आध्यात्ममार्गानुगामिनां रसास्वादनाय रामे तल्लीनाय च पद्यरचनं कृतवन्तः आचार्याः। यद्यपि आचार्याः अत्र रामस्य विषये उक्तवन्तः चेदपि अद्वैतमेव बोधितवन्तः। इदं च रसशब्देन ज्ञायते। तत्र उक्तरसः कीदृशः सामान्यरसो वा अथवा भिन्नो वा ? समान्यमित्यस्य अयमभिप्रायः प्रसिद्धषड्रसोपेतयुक्तं रसमत्र विवक्षितं वा इति ? अत्र कुतः अयं प्रश्नः आगच्छति इत्युक्ते ब्रह्मानन्दवल्ल्याम् रसो वै सः। रसग्ग् ह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दी भवतीति रुपेण श्रुतिरुपलभ्यते। तत्र च शाङ्करभाष्ये रसास्वादनस्य गम्भीरार्थं प्रकटितवन्तः भगवत्पादाः। तर्हि तादृश रसप्राप्त्योत्तरं यः आनन्दः वर्तते सैव प्रकृतपत्रे मुख्यविषयः। स च आनन्दः कीदृशः इति। आनन्दप्राप्तिरेव मनुषस्योद्देश्यम्। रामरसं पीत्वा मुख्योद्देश्यमानन्दं प्राप्तव्यमस्ति तथा च अत्र आचार्याः कथमद्वैततत्त्वं प्रतिपादितवन्तः इति सुस्पष्टं विचार्यते। अद्वैततत्त्वचिन्तनमिति अतिदुष्करम्। यतः तच्च चिन्तनं दृश्यमानस्य विरुद्धं वर्तते। तदृश चिन्तनमिति ईश्वरस्य अनुग्रहादेव सम्भवति। ईश्वरस्य अनुग्रहादेव पुंसामद्वैत वासना इति वाक्यं तत्र प्रमाणम्। पिबरे रामरसमिति पद्यं तावत् हिन्दुस्तानि शास्त्रीयसङ्गीत मध्ये अहिर् भैरवरागे विद्येते। श्रवणेन यथा माधुर्यमनुभूयते तथैव अर्थावगमनेन आध्यात्माऽनन्दमपि अनुभूयते। पद्यमिदम् अद्वैतमेव बोधितमस्ति अद्वैतचिन्तनमेव प्रसारयति च। अत्र शोधपत्रे उपयुक्तपद्धतिः तावत् विश्लेषणात्मक पद्धतिः। अद्वैतमेव बोधितमस्ति इति श्रुतिस्मृतिप्रमाणानि अपि प्रदर्श्यते। अपि च विशेषेण अत्र आचार्याणां सूक्ष्मदृष्टिः का अस्ति इति विचार्यते। स्वारस्यार्थगर्भितेपद्ये विशेषेण प्रतिपङ्क्ति समीक्षापूर्वकमनुसन्धानं क्रियते। श्रीसदाशिवब्रह्मेन्द्राचार्याः अद्वैतसारमेकस्मिन्पद्ये उक्तवन्तः। जननमरणदिकं जीवस्य नैवास्ति तर्हि जीवः कुतः भयमनुभवति भयात्मुक्तो कथं भवति इत्यादिकं सुस्पष्टतया आचार्याः सूक्षरूपेण पद्येस्मिन् निगदन्ति। भगवत्पादाः श्रीशङ्कराचार्याः अपि उक्तवन्तः यत् इह संसारे बहु दुस्तारम् अतः कृपया पारे पाहि मरारे इति तद्रीत्या आचार्याः अत्रापि निरुपितवन्तः जननमरणभयशोकादिकं जगदिदं वर्तते अतः जगतः निवृत्तये रामस्य रसं पातव्यमिति। सांसारिकक्षणिकास्वादनं कुर्वतः पुरुषस्य दृश्यप्रपञ्चात् विमुखं करोति पद्यम्। रामनामस्मरणमेव रसास्वादनाय उपकरोति। अत्र दार्शनिकं, मनोवैज्ञानिकं, आध्यात्मिकं च ज्ञानं पद्येन प्राप्तुं शक्यते। जीवात्म-परमात्मनोः ऐक्यमत्र प्रतिपादितमस्ति। कुतः एवं स्यात् इत्यादि विचाराः अत्र शोधपत्रे विस्तरेण उल्लिख्यते। इह विषेशेण अद्वैततत्त्वमेव बोधितमस्ति इत्यत्र श्रुतिप्रमाणानि एवमेव स्मृतिप्रमाणानि च प्रदर्श्यते।

Keywords

अद्वैतवेदान्तः, रसः, रामः, ब्रह्मतत्त्वम्, श्रीसदाशिवब्रह्मेन्द्राः, पद्यम्।

साधनायाः मानसशुद्धेः चित्तैकाग्रतायै च — पातञ्जलयोगदर्शने भक्तेः अन्तःसाधनात्मकं स्वरूपम् ।

गौरिका कोनार,

भारतीयदार्शनिपरम्परायां मानवजीवनस्य अन्तःकरणशुद्धये साधनायाः विशिष्टस्थानं विद्यते । तेषु महर्षिपतञ्जलिना प्रतिपादितं योगदर्शनं चित्तस्य स्वरूपं, चित्तवृत्तीनां नियन्त्रणम्, क्लेशानां निराकरणम्, समाधेः प्राप्तिः तथा कैवल्यस्य उपलब्धिः इत्यादीनां विषयाणां वैज्ञानिकतया क्रमबद्धतया च विवेचनं करोति । **"योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः"** इति पातञ्जलयोगसूत्रस्य मूलप्रतिज्ञा योगमार्गस्य सम्पूर्णं स्वरूपं संक्षेपेण प्रकाशयति । अतः पातञ्जलयोगे साधना मूलतः चित्तशुद्धये तथा तस्य अन्तर्मुखीकरणाय प्रवर्तते । प्रस्तुतस्य शोधलेखस्य प्रमुखोद्देश्यं पातञ्जलयोगदर्शने भक्तेः अन्तःसाधनात्मकं स्वरूपं मानसशुद्धेः तथा चित्तैकाग्रतायाः सन्दर्भे अन्वेष्टुमस्ति । परन्तु भक्तेः स्वरूपं केवलं भावात्मकधार्मिकानुभवपर्यन्तं सीमितं न कृत्वा यदि तस्याः साधनात्मकपक्षः विचार्यते, तर्हि सा साधकस्य अन्तःकरणपरिवर्तनस्य प्रभावशालिप्रक्रिया भवितुमर्हति । पातञ्जलयोगदर्शने **"भक्ति"** इति पदस्य उत्तरवर्ती भक्तिदर्शनपरम्परासदृशं निरूपणं न दृश्यते, तथापि **"ईश्वरप्रणिधान"** इत्यस्य अवधारणायां भक्तेः अनेकाः मूलभावनाः अन्तर्निहितरूपेण अवलोकयितुं शक्यन्ते । ईश्वरस्य प्रति समर्पणभावः तथा ईश्वराभिमुखता साधकचित्तस्य परिष्काराय महत्त्वपूर्णं योगदानं ददाति । पातञ्जलयोगस्य साधनापादे क्रियायोगस्य निरूपणे **"तपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि क्रियायोगः"** इति सूत्रेण ईश्वरप्रणिधानस्य साधनात्मकं महत्त्वं प्रतिपादितम् । पुनः नियमेष्वपि ईश्वरप्रणिधानस्य समावेशः तस्य योगसाधनायां विशेषमहत्त्वं सूचयति । ईश्वरप्रणिधानस्य माध्यमेन साधकः फलासक्तिं शनैः शनैः परित्यज्य चित्तं ईश्वराभिमुखं करोति, येन अहङ्कारक्षयः, मानसिकशान्तिः तथा

अन्तःकरणप्रसादश्च जायते । अतः ईश्वरप्रणिधानं न केवलं धार्मिककर्मविशेषः, अपितु योगसाधकस्य अन्तर्मनसः रूपान्तरणस्य महत्त्वपूर्णं साधनमिति अस्मिन्शोधे विवेच्यते । मानसशुद्धिः पातञ्जलयोगस्य साधनाप्रक्रियायाः मूलभूतपक्षः अस्ति । यम-नियमादीनां अभ्यासेन तथा तपः-स्वाध्याय-ईश्वरप्रणिधानादिभिः साधकस्य अन्तःकरणं विशुद्धं भवति, रागद्वेषादयः क्लेशाः क्षीयन्ते, चित्ते च प्रसादः स्थैर्यं च जायते । अस्मिन् सन्दर्भे भक्तिः साधकस्य भावजगतः शोधनाय विशेषं योगदानं दातुं शक्नोति । चित्तैकाग्रतापि पातञ्जलयोगसाधनायाः अत्यन्तमहत्त्वपूर्णं सोपानमस्ति । धारणा-ध्यान-समाधिः इत्येतानि चित्तस्य क्रमिकैकाग्रीकरणस्य अवस्थाः सन्ति । भक्तिभावनया ईश्वरप्रति उत्पद्यमाना श्रद्धा तथा प्रेमपूर्णा निष्ठा चित्तस्य विक्षेपान् न्यूनीकर्तुं शक्नोति । अस्य शोधस्य एकः महत्त्वपूर्णः पक्षः अयं यत् योगस्य अनुशासनात्मकपद्धतेः तथा भक्तेः समर्पणात्मकभावनायाः मध्ये अन्तःसम्बन्धः कथं स्थापयितुं शक्यते इति । योगः चित्तस्य नियन्त्रणं तथा वृत्तिनिरोधं प्रमुखतया प्रतिपादयति, भक्तिः तु चित्तस्य उच्चतरतत्त्वे प्रेमपूर्वकं समर्पणं सूचयति । अतः भक्तेः अन्तःसाधनात्मकं स्वरूपं पातञ्जलयोगस्य साधनाप्रक्रियायाः परिपूरकरूपेण अवगन्तुं शक्यते । अन्ततः शोधलेखः पातञ्जलयोगदर्शने भक्तितत्त्वस्य सम्भावितं अन्तःसाधनात्मकं स्वरूपं तात्त्विकदृष्ट्या प्रकाशयितुं प्रयतते । भक्तिः केवलं उपासनात्मकभावना न भूत्वा यदि साधकस्य अन्तःकरणपरिवर्तनस्य साधनरूपेण स्वीक्रियते, तर्हि सा योगमार्गस्य साधनात्मकगाम्भीर्यं अधिकं स्पष्टयितुं शक्नोति ।

Intuitive Cognition in Indian Philosophy: In the Light of Gopinath Kaviraj

Dr Sankar Chatterjee

The present paper deals with Gopinath Kaviraja's view on the concept of intuitive cognition called *prātibha jñāna* in Indian Philosophy in general and Nyāya-Vaiśeṣika in particular. This faculty is known as *pratibhā* or intuition. This point will find justification in the fact that there are many things like God, Self etc. that cannot be known through sense organs, but the existence of them is already accepted in Indian tradition. The Indian scholars have propounded the nature of them and found out the extra-ordinary means of realizing them. These can be known by super sensual power or vision or *yoga*, which does not come from the ordinary mental platform, but it comes from some kind of yogic power called *pratibhā*. It cannot be argued that the objects which cannot be revealed by sense-organs actually do not exist in this world, for, the usages of the terms like normal perception, *prākṛta*, sensual etc. prove that there are corresponding opposite concepts like supernormal perception, *atipākṛta*, super sensual etc. If there were no possibilities of being supernormal perception, the usages like normal perception etc. would have been meaningless and hence, these particular usages presuppose the existence of the opposite concepts that can be known through *pratibhā* alone arising out of yogic power.

The literal meaning of the term *pratibhā* is that which, as a flash of light, reveals the objects. The light is 'the wisdom characterized by immediacy and freshness.'This point reminds me a particular definition of *pratibhā* which runs as follows. *Pratibhā* is such a wisdom having capacity to illumine the objects again and again in a novel way. Keeping this point in view perhaps, Dr. Kaviraja, has inserted two adjuncts, viz., 'immediacy' and 'freshness' to the definition of *pratibhā*. In another way the intuition or *pratibhā* stands for the Highest Divinity. It is 'the power of self-revelation or self-illumination of the Supreme spirit with which it is essentially and eternally identical." As *pratibhā* initiates man to see past, present and future and helps him to be identical with the supreme self by virtue of having genius eternally identical, it is called *guru*. This paper will be focussed the Intuitive Cognition in Indian Philosophy: In the Light of Gopinath Kaviraj.

Nāda-Brahma and Abhinaba Praṇavavāda: Sound as Knowledge in Indian Knowledge System

Dr. Bidisha Banerjee

In the late nineteenth and twentieth centuries, Sri Sri Sitaramdas Omkarnath (1892 – 1982) articulated a distinctive perspective within *Vedānta* philosophy through his doctrine of *Abhinaba Praṇavavāda*. A renowned Bengali saint and philosopher, he contributed extensively to Vedāntic literature by composing commentaries on the three *prasthānas—śruti*, *smṛti*, and *Nyāya*. His commentary on the *Upaniṣads* is titled *Omkār*, on the *Brahmasūtras* as *Praṇavabhāṣya*, and on the *Bhagavad Gītā* as *Praṇavapremapiyuṣa*.

In addition, his work *Brahmanusandhāna* presents a comprehensive discussion of 153 *Upaniṣads*, wherein he systematically establishes his doctrine of *Praṇavavāda*. He further elaborates on the concept of *nāda* (cosmic sound) in his text *Śrīśrīnādālīlāmṛta*.

This study aims to examine the ideas of *Nāda-Brahma* and *Abhinaba Praṇavavāda*, focusing on sound as an important source of knowledge in the Indian Knowledge System. It explains that sound (*nāda*) is not only something we hear, but also something deeply connected with consciousness, creation, and spiritual experience. The concept of *Nāda-Brahma* suggests that the universe originates from sound, while *Abhinaba Praṇavavāda* gives special importance to *praṇava* (Om) as the basis of both creation and knowledge.

The paper also explains how sound connects the physical world with the spiritual world. It shows that sound helps us reach higher knowledge. In this way, sound becomes a common link between language, knowledge, and truth. Overall, the study highlights the importance of sound in shaping Indian philosophical and spiritual ideas in a simple and clear way.

नश्वरताबोधात् अमृतत्वचिन्तनपर्यन्तम् : कालिदासकाव्येषु मृत्युचेतना

ङः अरिजित् गुप्तः

कालिदासस्य काव्यजगत् मूलतः प्रेम-जीवन-प्रकृति-सौन्दर्याणाम् अनन्यसन्मेलनभूतम्। भारतीयदर्शनस्यालोके कालिदाससाहित्ये विचारिते, महाकविकालिदाससविधे आत्यन्तिकविनाशात्मकतया अदृश्यमानः मृत्युः जागतिकास्तित्वस्य स्वाभाविकरूपान्तरणसमुद्भूत एव वरीवर्तते। तदीयेषु महाकाव्यनाटकेषु मृत्युचेतना उपनिष्द्गीता-साङ्ख्यदर्शन-शैवदर्शनप्रोक्तेन जीवनबोधेन उद्भासिता भवति। अतएव कालिदासकृतिषु मृत्युना सह तमो भयः नैराश्यञ्च न संयुज्यन्ते। तत्र जगतोऽनित्यता आत्मनो नित्यता विश्वचक्रस्य चिरन्तनगतिश्चाभिव्यञ्जिता। तस्य दृष्ट्या मृत्युर्हि जीवनप्रवाहस्य विरोधी न भूत्वा सृष्टेः अविच्छेद्याङ्गत्वं भजते। भारतीयदर्शनस्य अन्यतममौलिकतत्त्वमस्ति "जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च" इति भगवद्गीतावचनं लभ्यते। एतदनुसारं गृहीतजन्मनः मरणमवश्यम्भावि, मरणात्पुनर्जन्मापि अनिवार्यमिति तत्त्वे प्रत्यक्षतया कालिदासेन अव्याख्यातेऽपि महाकवेः अखिलकृतिषु दर्शनमिदं काव्यिकदृष्ट्या रूपायितं भवति। कालिदासस्य जन्मान्तरवादे प्रत्ययः अभिज्ञानशाकुन्तलस्थेन "भावस्थिराणि जननान्तरसौहृदानि" इत्यनेन वचनेन प्रमाण्यते।

रघुवंशमहाकाव्ये मृत्युचेतनायाः गम्भीरप्रकाशः संलक्ष्यते। रघुवंशज-नरपतीनां दिलीपाज-दशरथप्रभृतीनां जीवनावसानं साधारणमरणवर्णनमतिरिच्य धर्म-कर्तव्य-राजधर्माणां पूर्णतालाभस्य महनीयाध्यायभूतम्। विशेषेण रघुवंशस्य अष्टमसर्गे महाराज्ञ्याः इन्दुमत्याः आकस्मिकप्रयाणेन अजराजस्य शोकविह्वलहृदयस्य मार्मिकचित्रणं संस्कृतसाहित्यस्य अन्यतमं करुणरसात्मकनिदर्शनम्। जीवनस्य अनित्यत्वं सुखस्य क्षणस्थायित्वञ्च अजराजेन अनुभूतम्। प्रियजनवियोग एव मनुष्यान् जीवनस्य प्रकृतार्थान् अवगमयति। इन्दुमतीप्रयाणेन अजराजस्य मृत्युचेतना आभासते रघुवंशमहाकाव्ये –

"मरणं प्रकृतिः शरीरिणां विकृतिर्जीवितमुच्यते बुधैः"। (रघुवंशे ८/८७)

कुमारसम्भवमहाकाव्ये मृत्युचेतना भिन्नरूपतां लभते। तृतीयसर्गे मदनभस्मप्रसङ्गे कामदेवदहनं प्रकृत्या दैहिकमरणं भूत्वाऽपि विश्वकल्याणार्थं महनीयाध्यायपदवीमध्यारोहत्। मदनदेवः कायेन व्यालुप्यमानोऽपि प्रत्येकमनुष्यहृदये अनङ्गरूपेण चिरञ्जीवी अभूत्। कालिदासेन चित्रीयते यन्नैव मृत्युः अस्तित्वस्य अवसानम्, अपि तु रूपान्तरणम्। कामदेवकान्तायाः रतेः विलापप्रसङ्गे विरहिण्याः पतिव्रतायाः सहमरणवाञ्छायां मृत्युविषयिणी चेतना प्रकाश्यते रघुवंशमहाकाव्ये—

"परलोकनवप्रवासिनः प्रतिपत्स्ये पदवीमहं तव।" (कुमारसम्भवे ४/१०)

कालिदासस्य मृत्युचेतनायाम् गीतादर्शनस्य औपनिषदिकचिन्तनस्य च स्पष्टप्रभावोऽभिलक्ष्यते। औपनिषदिकदर्शने मृत्युचिन्तायाः सर्वोच्चप्रकाशोऽवलोक्यते। मरणादनन्तरम् आत्मनोऽस्तित्वविषये अन्वेषणं वेदान्तदर्शने मुख्यतां भजते—

"न जायते म्रियते वा विपश्चिन्

नायं कुतश्चिन्न बभूव कश्चित्"। (कठोपनिषदि १.२.१८)

शरीरस्य नश्वरत्वम् आत्मनोऽविनश्वरत्वमिति भारतीयाध्यात्मिकतत्त्वमिदं कालिदाससाहित्ये प्रत्यक्षतया प्रतिविम्ब्यते। अतस्तस्य मृत्युचेतना नैव काचिद्भीतिप्रदभावना, जीवनस्य पूर्णताया स्वाभाविकी धारा एव। मानवजीवनस्य निखिलसुखदुःख-मिलनविरह-जनन-मरणादीनि विश्वनियतेः अविच्छेद्यांशभूतानि भवन्ति। तस्य काव्ये मृत्युर्न हि समाप्तेः प्रतीकभूतोऽपि तु अनित्यत्वभावनायाः आत्मनोऽविनाशित्वस्य आत्मनः पुनर्जागरणस्य चिरन्तनदर्शनरूपेणैव व्यराजत।

अस्मिन् प्रस्तूयमाने शोधपत्रे कालिदासकाव्येष मानवभावनप्रसूता मृत्युचेतना केवलं करूणरसात्मकविषयतया अवर्तमाना सती कथंकारं आध्यात्मिकदर्शनस्य गभीरनान्दनिक्याम् अभिव्यक्तौ उन्नीयेत, तदेव सानुपुङ्खं पर्यालोक्ष्यते।

सूचकशब्दाः – चेतना, मृत्युः, अमृतत्वम्, कालिदासकाव्यम्, उपनिषद्।

Vedic Roots of Lokayat System of Philosophy (A Reconsideration of Charvak)

UDAY GAJANAN KUMTHEKAR

Lokayat also known by the popular name Charvak, which has also been recognized as Barhaspatya, has so far been popular among academia as an anti-Vedic, happy-go-lucky hedonist materialism or Sensualism. As a result, the spiritualistic traditions in Indian Philosophy have always looked down-upon and advised a summary rejection of this system. Ironically, no reliable sources of this tradition have survived for the present generations which can help unbiased study of this Philosophy. Some attempts of presentation of history and structure of this Philosophy, e.g. those of MM Dakshinaranjan Shastri & Debiprasad Chattopadhyay from West-Bengal and Dr. S.R. Gadgil or Dr. Pradeep Gokhale in Maharashtra are no doubt serious attempts, yet it cannot be overlooked that these attempts adhere to the same prejudices about this system as being anti-

Vedic, anti-theist, hedonist Sensualism not advisable for study by the so called believers of any Yonder-World or spiritualism.

The aim of this paper is to explain the need of reconsideration of history and structure of Lokayat alias Charvak, setting aside the prejudices about this system held in the academic World. The paper also indicted the possibilities of Vedic roots of this system and of course as a part of Brahmanic tradition.

The hypothesis of this paper is that Lokayat alias Charvak alias Barhaspatya was part of Vedic tradition and has to be understood as a materialistic and this Worldly approach for a holistic understanding of Vedic visions about human life.

The methodology used in this paper is that of content analysis of ancient philosophical religious texts of different traditions of Indian origin.

Kautiliya Arthashastra has mentioned Lokayat as a part of Aanvikshiki at par with two other components Samkhya and Yoga. Buddhist Pali texts have advised the Bhikkhus 'Not to study Lokayat!; But at the same time these texts have mentioned Lokayat as a part of Brahmanical-Vedic studies. The Vedant Sar of Sadanand or Nyay-Manjari of Jayant Bhatt also indicate towards such traditions of Lokayat which have a bearing upon the hypothesis of Vedic-Origins of Lokayat.

The paper concludes with an indication of the need for reconsideration of this Philosophical system as an integral part of Vedic spiritualistic tradition.

Beyond the Vidyā–Avidyā Dichotomy: Dr. R. P. Parnerkar's Poornawad as a Modern Vedic Synthesis

KISHOR GANGAKHRDKAR

The relationship between Vidyā and Avidyā constitutes an important interpretive question in Upaniṣadic thought. The *Īśā Upaniṣad* is particularly significant in this regard because it does not merely oppose the two but prescribes their apprehension together, associating each with distinctive consequences. Dr. R. P. Parnerkar's Poornawad offers a distinctive interpretation of this relationship by questioning the assumption that Avidyā necessarily denotes metaphysical illusion, ignorance, or something that must ultimately be annihilated by Vidyā. In Parnerkar's reading, Avidyā is principally associated with the manifest or adhibhautika dimension, whereas Vidyā encompasses the adhyātmika and adhidaivika dimensions of reality. The two therefore belong to an integrated structure of existence rather than constituting mutually exclusive realities. According to Poornawad, Vidyā does not destroy Avidyā itself; rather, it removes the adverse consequences arising from the absence of Vidyā, such as egoism, doubt, pride, and self-delusion.

This paper examines Parnerkar's interpretation through a philosophical-hermeneutic reading of his discussion of Vidyā and Avidyā in *Poornawad*, with particular attention to his engagement with relevant Upaniṣadic passages. The analysis shows that Poornawad understands Pooṛṇa Puruṣa as an all-comprehensive reality in which the worldly, divine, and spiritual dimensions are integrated. Consequently, worldly existence need not be rejected as illusion in order to attain spiritual realization. The study argues that Parnerkar's interpretation constitutes a distinctive modern Vedic synthesis in which Vidyā and Avidyā, knowledge and worldly conduct, and spiritual realization and empirical existence are understood relationally rather than through absolute opposition. Poornawad thus reconfigures the Vidyā–Avidyā relationship from one of negation to one of integration within the comprehensive reality of Pooṛṇa Puruṣa.

Keywords: Vidyā, Avidyā, Poornawad, Poorṇa Puruṣa, Vedic philosophy, Parnerkar,

Adhyasa - The foundation of Dualistic Experience in Advaita

Lalith Dev P Joshi

Introduction

Advaita Vedanta presents a distinctive understanding of reality by asserting that the ultimate reality is non-dual Brahman. Yet our ordinary experience appears to be one of plurality: we experience ourselves as individual persons and constantly distinguish between the "I" and everything experienced as "this". If Brahman alone is ultimately real, a fundamental question arises: How does this experience of plurality come about? This question lies at the heart of the doctrine of Adhyasa. The present study examines why Adhyasa occupies such an important place in Advaita Vedanta, with particular reference to Bhagavatpada Adi Shankaracharya's Adhyasa Bhashya.

Methodology

The study is primarily based on a close reading of Shankaracharya's Adhyasa Bhashya, supported by relevant Upanishadic passages and other foundational Advaita texts. The analysis focuses on the conceptual relationship between Adhyasa, Avidya, and Aviveka, and examines their role within the Advaitic account of human experience and bondage.

Data & Findings

The study observes that Sankara's analysis of the mutual superimposition of the Self and non-Self provides the basis for understanding our identification with the body and mind, agency, enjoyership, and samsara. It further examines Mithyatva in relation to the experienced world and the role of Brahmajnana in removing the fundamental error.

Conclusion

The study argues that Adhyasa is not merely an explanation of individual perceptual error, but the fundamental problem underlying the experience of duality. Understanding its nature is therefore essential to understanding both the Advaitic account of bondage and the means by which non-dual knowledge leads to liberation.

Keywords: Adhyasa; Avidya; Advaita Vedanta; Mithyatva; Brahmajnana

The Relevance of Advaita Vedānta in the 21stCentury

SURYADEVU A.S

Advaita Vedānta, one of the most profound philosophical traditions of India, propounds the doctrine of non-duality (Advaita), asserting the essential identity of the individual Self (Ātman) and the ultimate reality (Brahman). Though its origins lie in the Upaniṣads and the teachings of Ādi Śaṅkarācārya, its insights continue to hold remarkable relevance in the twenty-first century. The contemporary world is characterized by rapid technological development, environmental degradation, mental health challenges, consumerism, and increasing social polarization. These issues often arise from fragmented perceptions of reality, excessive attachment to material success, and a weakened sense of interconnectedness. Advaita Vedānta offers an alternative worldview by emphasizing self-knowledge (ātma-jñāna), the removal of ignorance (avidyā), and the realization of the unity underlying all existence.

This paper explores how the principles of Advaita Vedānta can contribute to addressing present-day concerns. It examines the relevance of non-duality in fostering inner peace, ethical responsibility, compassion, and ecological awareness. The study also considers the significance of Advaitic thought in contemporary discussions on consciousness, identity, and the search for meaning in an increasingly digital and globalized society. By drawing upon the foundational texts of Advaita Vedānta, including the Upaniṣads, the Bhagavad Gītā, and the Brahma Sūtras with the commentaries of Śaṅkarācārya, the paper argues that Advaita is not merely a metaphysical doctrine but a practical philosophy with enduring value. It concludes that Advaita Vedānta provides a timeless framework for personal transformation, harmonious social relationships, and sustainable coexistence, making it an indispensable philosophical resource for understanding and responding to the complex challenges of the twenty-first century.

Keywords:AdvaitaVedānta,Non-Duality,Ātman and Brahman,Ādi Śaṅkarācārya,Ātma-jñān

भारतीयज्ञानपरम्परायां विद्यास्थानानां स्वरूपं महत्वञ्च

ड. चिन्मयमण्डलः सहयोगी अध्यापकः

विश्वस्य प्राचीनासु ज्ञानपरम्परासु भारतीयज्ञानपरम्परा एका अन्यतमा समृद्धतमा च ज्ञानपरम्परा अस्ति । इह खलु संसारे जीवानामुद्देश्यं खलु चतुर्वर्गफलप्राप्तिः । यद्यपि अर्थकामौ सर्वैरेव मनुष्यैः अनायासेनैव सेव्यौ, परन्तु न तथा धर्ममोक्षौ । केचन मनुष्याः धर्ममुपासन्ते । तेषु धर्माधिकारिषु अत्यल्पा एव मोक्षाधिकारिणः । यतो हि मोक्षः खलु परमपुरुषार्थः। भारतीयज्ञानपरम्परायाः मूलोद्देश्यं न केवलं लौकिकज्ञानार्जनं परन्तु मनुष्याणां सर्वाङ्गिनविकासः, धर्मपालनं, समाजकल्याणम् आत्मज्ञानप्राप्तिश्च । 'वेदः खलु अखिलधर्ममूलम्' इति जनश्रुतिः । भारतीयसंस्कृतौ वैदिकाचाराः मनुष्यैयोग्यमर्यादया पाल्यन्ते । विद्यायाः स्थानमिति विद्यास्थानम् (षष्ठीसमासः) ।आचार्यकौटिल्यप्रणीतेऽर्थशास्त्रे चतस्यः विद्याः इत्युक्तम् । यथा, आन्वीक्षिकी त्रयी वार्ता दण्डनीतिश्चेति । 'दृष्टादृष्टभेदेन च तद् द्विविधः पुरुषार्थस्य पन्था द्विविधः' इत्युक्तम्। वार्ता दण्डनीतिश्च द्वे दृष्टपुरुषार्थसाधके, त्रयी आन्वीक्षिकी च अदृष्टपुरुषर्थसाधके । भोजनादिरेव दृष्टपुरुषार्थः, भोजनादौ अनपेक्षितस्य शास्त्रमेव प्रकाशः करणं वा । अदृष्टपुरुषार्थसाधकानि विद्यास्थानानि पुनः चतुर्दश एव । अतः के पुनः चतुर्दश विद्यास्थानानि? इत्याक्षायामुच्यते

अङ्गानि वेदाश्चत्वारो मीमांसा न्यायविस्तरः ।

पुराणं धर्मशास्त्रञ्च विद्या ह्येताश्चतुर्दश ॥

अतः ऋग्वेदः, यजुर्वेदः, सामवेदः, अथर्ववेद इति चत्वारः वेदाः; शिक्षा, कल्पः, व्याकरणम्, निरुक्तम्, छन्दः, ज्योतिषमिति षड् वेदाङ्गानि; मीमांसा, न्यायः पुराणं, धर्मशास्त्रञ्च चतुर्दश विद्यास्थानानि इति ।

चतुर्दशविद्यास्थानानां स्वरूपम्

वेदाः भारतीयज्ञानपरम्परायाः मूलाधाराः सन्ति। ऋग्वेदे मन्त्रज्ञानं, यजुर्वेदे यागीयविधयः, सामवेदे सामगानम्, अथर्ववेदे विविधाः लौकिक-आध्यात्मिकविषयाः प्रतिपादिताः सन्ति।

वेदाङ्गानि वेदानां सम्यगध्ययनाय आवश्यकानि साधनानि भवन्ति। शिक्षया उच्चारणशुद्धिः, कल्पेन कर्मकाण्डविधिः, व्याकरणेन शब्दशुद्धिः, निरुक्तेन वैदिकशब्दानां व्युत्पत्तिः, छन्दसा मन्त्राणां छन्दोविन्यासः, ज्योतिषेण कालज्ञानं च सम्पद्यते।

न्यायशास्त्रं तर्कस्य प्रमाणस्य च व्यवस्थितं ज्ञानं ददाति। भारतीयतर्कपरम्परायां न्यायस्य महत्त्वं अत्यन्तं विशिष्टं वर्त्तते। न्यायशास्त्रस्य मुख्यमुद्देश्यं तावद् वेदप्रामाण्यरक्षणमिति ।

मीमांसाशास्त्रेण वेदप्रामाण्यं यद्यपि रक्षितं भवति तथापि मीमांसायाः मुख्यं प्रयोजनं भवति वेदार्थनिर्णयः गौणप्रयोजनं तु वेदप्रामाण्यरक्षणमिति ।

पुराणानि भारतीयसंस्कृतेः इतिहास-सांस्कृतिक-सामाजिकधार्मिकमूल्यानां संरक्षणे महत्त्वमण्डितानि अङ्गानि।

धर्मशास्त्राणि व्यक्तेः, परिवारस्य तथा समाजस्य कर्तव्याकर्तव्यविषयकं मार्गदर्शनं कुर्वन्ति। आचारः, व्यवहारः, प्रायश्चित्तम्, सामाजिकदायित्वं च तेषां प्रमुखविषयाः सन्ति।

विद्यास्थानानि पुनः अष्टादश इति शात्रे चर्चितानि सन्ति । तत्र आयुर्वेद-धनुर्वेद-गान्धर्ववेद-अर्थशास्त्राणां पुनः ग्रहणं जातम् । एतानि चत्वारि शास्त्राणि उपवेदा इत्युच्यन्ते ।

राजसिंहासन से ऊपर धर्म : भरत का त्याग

Payal Chandravanshi

कबहुँ कि काँजी सीकरनि, छीरसिंधु बिनसाइ॥"

अर्थात्: भरत जी को राज्य प्राप्त होने पर भी राजमद नहीं हुआ। जैसे खट्टी काँजी की कुछ बूँदें क्षीरसागर को नष्ट नहीं कर सकतीं, वैसे ही राजसत्ता भरत के निर्मल चरित्र को दूषित नहीं कर सकी।

रामायण केवल एक धार्मिक ग्रन्थ या आख्यान नहीं है, बल्कि भारतीय जीवन-दर्शन, चरित्र निर्माण, संस्कार, नैतिक मूल्यों और मानवीय आदर्शों का एक जीवंत ग्रंथ है। इसमें जहाँ श्रीराम मर्यादा और धर्म के प्रतीक हैं, तो वहीं भरत का चरित्र त्याग, भ्रातृप्रेम, निस्वार्थता और राजधर्म की ऐसी अद्वितीय मिसाल प्रस्तुत करता है, जो संसार के समक्ष सत्ता से ऊपर संबंधों और स्वार्थ से ऊपर परमार्थ और धर्म को प्रतिष्ठित करता है।

भरत का चरित्र यह प्रश्न उठाता है कि क्या वास्तविक महानता सिंहासन प्राप्त करने में है या सिंहासन का त्याग करने की क्षमता में? जिसका उत्तर वे अपने आचरणों से देते हैं। उनका त्याग पलायन नहीं, बल्कि धर्म के प्रति सक्रिय, सजग और धर्मनिष्ठ प्रतिष्ठित है। उन्होंने सत्ता को अपना अधिकार न मानकर राम की धरोहर माना और स्वयं को केवल सेवक एवं प्रतिनिधि के रूप में स्थापित किया।

इस प्रकार "राजसिंहासन से ऊपर भरत का त्याग" भारतीय जीवन-दर्शन में निष्काम कर्म, भ्रातृप्रेम, धर्मनिष्ठा, सत्ता-विमुखता और आदर्श नेतृत्व की गहन अवधारणा को उजागर करता है। भरत यह संदेश देते हैं कि मनुष्य की वास्तविक ऊँचाई उसके पद से नहीं, बल्कि उस पद के प्रति उसके त्याग और उत्तरदायित्व से निर्धारित होती है। उनका जीवन आज भी यही प्रेरणा देता है कि जहाँ स्वार्थ समाप्त होता है, वहीं से चरित्र की वास्तविक महानता आरंभ होती है।

भरत के चरित्रों को देखते हुए विद्वानों का यह कहना है कि—

"सौ बार धन्य उस एक लाल की माई।

जिस जननी ने हो जना भरत सा भाई॥"

प्रस्तुत शोधपत्र का उद्देश्य यह है कि, इस विषय के प्रमाणों के आधार पर यह देखना है कि जीवन में मनुष्य को "क्या सोच रखनी है" या सोचना ही मात्र नहीं बताता बल्कि "कैसे जीना है" इसका भी मार्गदर्शन करता है।

श्रीश्रीविश्वेशतीर्थमहास्वामिनः जनशुश्रूषायां कटिबद्धता एकमध्ययनम्

Dr. Suman.K.S., Ruma Gorai

भारतीयसंन्यासपरम्परायां धर्मसमाजसेवयोः कश्चिदपि मौलिकः भेदः नास्ति । अपि तु भारतीयसाधनाचिन्तने मानवसेवा एव ईश्वरसेवायाः एकं रूपमिति, स एव परमधर्मः इति परिगण्यते सन्यासिनां कृते । एतदादर्शं स्वजीवने साकारं कृतवन्तः श्रीश्रीविश्वेशतीर्थस्वामिनः । महोदयोऽयं कर्णाटक-राज्यस्य उडुपी-नगरस्थितस्य पेजावर-अधोक्षजमठस्य विशिष्टेषु सन्यासिषु द्वात्रिंशत्तमः संन्यासी आसीत् । श्रीमध्वाचार्येण प्रतिष्ठापितेषु द्वैतदर्शनसम्बद्धेषु अष्टमठेषु पेजावरमठः अन्यतमः अस्ति । सः द्वैतवेदान्तस्य प्रमुखेषु धार्मिकव्यक्तिषु अन्यतमः आसीत् । तस्य जीवनं केवलम् आध्यात्मिकसाधनायां तथा धर्मप्रचारे सीमावद्धं नासीत् । शिक्षा, दरिद्रसेवा, चिकित्सासेवा, सामाजिकसमता तथा विपन्नानां जनानां साहायतां च इत्यादिषु क्षेत्रेषु अपि तस्य महत्त्वपूर्णा भूमिका आसीत् । तस्य चिन्तनस्य विशेषता एषा आसीत् यत् तेन शिक्षा केवलं अर्थोपार्जनस्य साधनरूपेण न स्वीकृता अपि तु चरित्रनिर्माणस्य मानवीयविकासस्य च माध्यमरूपेण तस्याः महत्त्वं स्वीकृता । अपि च तस्य चिन्तने उल्लेखनीयः एकः विषयः अयं यत् सः जनसेवां 'जनार्दनसेवा' इति मन्यते स्म । तस्य चिन्तने स्वामीविवेकानन्दस्य चिन्तनेन सह अद्भुतं साम्यं परिलक्ष्यते । स्वामीविवेकानन्दस्य प्रसिद्धं वचनम् अस्ति— जीवेषु प्रेम एव ईश्वरसेवा अर्थात् "जीवे प्रेम करे येइ जन, सेइ जन सेविछे ईश्वरः" । जीवसेवा च वास्तविकरूपेण ईश्वरसेवैव इति तयोः उभयोः संन्यासिनोः चिन्तने स्पष्टतया प्रतिपादितम् । अतः श्रीश्रीविश्वेशतीर्थस्वामिनः जीवनं केवलं मठाधीशस्य वा धर्मगुरोः जीवनरूपेण मूल्याङ्कनं कूर्मः चेत् तर्हि तस्य कार्यस्य पूर्णं महत्वं ज्ञातुं न प्रभवेम । एकः सन्यासी भूत्वा अपि येन प्रकारेण तेन हिन्दुधर्मस्य प्रचारः, अन्यधर्मावलम्बिनां पीडितानां जनानां रक्षणाय उद्धाराय च प्रयत्नः, मानवसेवा, सामाजिकसंस्कारसम्बन्धीनि कार्याणि तथा दरिद्रजनसेवा च कृता, तत् अस्माकम् अत्यन्तं शिक्षाप्रदं विषयम् अस्ति । तस्य एतानि जनशुश्रूषासम्बन्धीनि सेवाकार्याणि सर्वेषां सन्मुखे प्रकाशयितुं तथा च भाविप्रजायै तानि परिचाययितुं प्रस्तुतस्य लेखस्य मुख्यो विषयः अस्ति । तस्य जीवनम् अस्माकं पुरतः एतादृशम् आदर्शं स्थापयति यत् आत्मसाधना यदा मानवकल्याणेन सह संयोज्यते, तदा आध्यात्मिकतापि समाजसेवायाः शक्तिरूपेण परिणमति ।

कुञ्चिकापदानि (keywords) श्रीविश्वेशतीर्थः , सन्यासी, जनश्रुष्रूषा , समाजः, संस्कारः ।

भगवत्पादादिशङ्कराचार्यदृष्ट्या श्रीजगन्नाथमाहात्म्यविचारः

अद्वैतवेदान्तपरम्परायां भगवत्पादादिशङ्कराचार्यस्य दर्शनं परब्रह्मणः अद्वितीयस्वरूपे प्रतिष्ठितम् अस्ति। तत्र जगन्नाथदेवस्य स्वरूपं कथं विवेचनीयम् इति प्रश्नः केवलं पौराणिकभक्तेः प्रश्नः न, अपि तु ब्रह्मविद्यायाः, ईश्वरतत्त्वस्य, उपासनायाः, भक्तेः च परस्परसम्बन्धस्य प्रश्नोऽपि भवति। शङ्कराचार्यस्य प्रामाणिकभाष्यग्रन्थेषु 'जगन्नाथ' इति नाम्ना पृथग् विस्तृतं तत्त्वप्रतिपादनं न दृश्यते। तथापि परम्परया तस्य नाम्ना प्रसिद्धे जगन्नाथाष्टके जगन्नाथः कृष्णरूपेण, पुरुषोत्तमरूपेण, नीलाचलनिवासिरूपेण, बलभद्रसुभद्रामध्यस्थितरूपेण, देवर्षिमुनिभिः पूजितरूपेण च स्तूयते। तत्र भक्तिरसः, वैष्णवप्रतिमा, पुराणपरम्परा तथा अद्वैतदृष्ट्या ब्रह्मतत्त्वस्य सम्भावना - एते सर्वे परस्परं सम्बध्यन्ते। अस्मिन् लेखे जगन्नाथाष्टकस्य पद्येषु प्रतिपादितं तत्त्वं, शङ्करस्य अद्वैतवेदान्तस्य ईश्वरब्रह्मविचारः, पुरीस्थितगोवर्धनपीठस्य परम्परा, जगन्नाथस्य पुरुषोत्तम-कृष्ण-ब्रह्मस्वरूपसम्बन्धः, भक्तेः ज्ञानोपयोगिता, तथा शङ्कराचार्यसम्बन्धिनः ऐतिहासिकतथ्यानि आलोचनात्मकतया परीक्ष्यन्ते। लेखस्य प्रमुखः निष्कर्षः अयं यत्, शङ्करपरम्परायां जगन्नाथः सगुणोपास्यरूपेण पूजनीयः सन् अपि परमार्थदृष्ट्या तदेव एकं ब्रह्म, यत् सर्वनामरूपातीतं स्वस्वरूपमेव भवति। तथापि जगन्नाथाष्टकस्य कर्तृत्वविषये आधुनिकविद्वत्सु सर्वसम्मतिः नास्ति। अतः तस्य प्रमाणत्वं 'शङ्करपरम्परायाः' सन्दर्भे विशेषतः ग्राह्यम्, न तु निर्विवादरूपेण ऐतिहासिकशङ्करस्य प्रत्यक्षग्रन्थरूपेण।

कूटशब्दाः - आदिशङ्कराचार्यः, श्रीजगन्नाथः, पुरुषोत्तमः, अद्वैतवेदान्तः, जगन्नाथाष्टकम् ।

श्री गौड़ीय वैष्णव दर्शन की दिशा सैद्धांतिक सार एवं विचार

श्री.बिप्लब सरकार

भारतीय दार्शनिक परंपरा में कई दार्शनिक प्रस्थान संबंधित आचर्यों द्वारा शुरू किए गए थे। उन दार्शनिक प्रस्थानों में अनेक तर्क परिलक्षित होते हैं। इस प्रकार वैदिक दार्शनिकों में सांख्य दार्शनिकों ने, पच्चीस तत्त्वों के आधार पर

प्रकृति ही ब्रह्मांड का कारण है, प्रकृति से ही जगत् की सृष्टि मानकर सत्कार्यवाद की स्थापना की । योग के दार्शनिकों ने ईश्वर तत्त्वों को स्वीकार कर सांख्य द्वारा स्वीकृत सिद्धांतों के अनुरूप परिणामवाद के सिद्धांत की स्थापना की । नैयायिकों ने सोलह-तत्त्वों को स्वीकार किया और वैशेषिकों ने सात-तत्त्वों को स्वीकार किया है । जिसके आधार पर आरम्भवाद, असत्कार्यवाद एवं जीव और ईश्वर में भेद मानकर द्वैतवाद को व्यवस्थापित किया है । यद्यपि वेदांत प्रस्थान में आचार्यों का एक ही लक्ष्य है, तथापि उनके प्रस्थान में अंतर के कारण कई विवाद भी परिलक्षित होते हैं । शास्त्रपरम्परा में देखा जाता है कि आचार्य शंकर के अनुसार अद्वैतवाद, श्री रामानुजाचार्य के अनुसार विशिष्ट-द्वैतवाद, मध्वाचार्य के अनुसार द्वैतवाद, बल्लभाचार्य के अनुसार शुद्ध-अद्वैतवाद, निम्बार्क के अनुसार द्वैताद्वैतवाद, और श्री चैतन्य के अनुसार अचिन्त्यभेदाभेदवाद प्रसिद्ध है ।

Myth as Environmental Ethics: Religious Narratives and Ecological Consciousness in The Hungry Tide and Gun Island

Dayaben Vaghani

This paper discusses why and how the author lends the fictive ecology of his dual novel set in the Sundarbans-*The Hungry Tide* (2004) and *Gun Island* (2019)-a non-modernist religiously sacred literary resonance for the enactment of ecological sensitivities and sustainable ethics against the human-nonhuman adversarial posture, epic readerly dominance, and world-historical ethnic genocides in modernity that cuts off the spirit-infused dialogue of all living and non-living subjects of Earth; the paper employs the concepts of subaltern religion-lore, sacred ecology, eco-spirituality, and eco-ethics. This paper contextualizes how Amitav Ghosh shifts from pantheon-based mythologies to other epistemic and prescriptive narratives of eco-spirituality to fill the islet of the non-modernist literary refutation of anthropocentric humanism. It shows how the author erects nonhuman agency, co-dependence, and climate-migrant politics within the Anthropology-based climate crises and ecological limbo, turning the myth from the Great Mystical-Magical Folklore into the religious epistemology of environmental ethics and stance.

Keywords: Amitav Ghosh, ecocriticism, Bon Bibi, Manasa Devi, Sundarbans, climate fiction, myth

डिजिटल युग और सोशल मीडिया का धार्मिक प्रथाओं पर प्रभाव: संस्कृत ग्रंथों के संदर्भ में एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

शोध छात्र

इक्कीसवीं सदी की सूचना प्रौद्योगिकी और सोशल मीडिया क्रांति ने वैश्विक स्तर पर मानव समाज के धार्मिक और सांस्कृतिक प्रतिमानों को गहराई से प्रभावित किया है। पारंपरिक रूप से भौतिक आराधना स्थलों तक सीमित रहने वाली धार्मिक प्रथाएँ अब 'वर्चुअल स्पेस' (आभासी पटल) पर स्थानांतरित हो रही हैं। प्रस्तुत शोध पत्र में मिश्रित शोध पद्धति (Mixed Methodology) के माध्यम से यह विश्लेषित किया गया है कि क्या माध्यम का यह परिवर्तन धर्म के शाश्वत सिद्धांतों के अनुकूल है। इस अध्ययन को प्रामाणिकता प्रदान करने के लिए सनातन ज्ञान परंपरा के 15 प्रमुख संस्कृत ग्रंथों (वेदों, उपनिषदों, भगवद गीता, स्मृतियों और पुराणों) के श्लोकों को साक्ष्य के रूप में प्रस्तुत किया गया है। शोध के निष्कर्ष दर्शाते हैं कि माध्यम (Platform) बदलने पर भी चेतना, शुद्ध भाव और आत्म-नियंत्रण का मूल शास्त्रीय महत्व अपरिवर्तित रहता है । यद्यपि डिजिटल युग ने ज्ञान का लोकतांत्रीकरण किया है, तथापि यह 'अटेंशन इकॉनमी' के कारण धार्मिक प्रदर्शन और भ्रामक सूचनाओं (Fake News) जैसी चुनौतियाँ भी प्रस्तुत करता है, जिनका समाधान प्राचीन ग्रंथों में वर्णित 'विवेक' और 'श्रेयस' के सिद्धांतों द्वारा संभव है ।

कूट शब्द (Keywords):- डिजिटल धर्म (Digital Religion), सोशल मीडिया, संस्कृत वांग्मय, ई-पूजा, वर्चुअल संघ (Virtual Sangha), अटेंशन इकॉनमी ।

Beyond the Western Lens: Rethinking the Academic Study of Hinduism

Prem Sai Banala

- **Research Parameters (Introduction):** The academic study of Hinduism has developed substantially through Western scholarly frameworks that have contributed to its classification, description, and comparative study. However, this raises an important question: to what extent do these frameworks adequately represent the nature and diversity of Hindu traditions? This paper examines the extent to which categories developed in Western intellectual contexts have shaped the academic understanding of Hinduism and considers why these categories may need to be critically rethought.

- **Methodology:** The study adopts a critical and comparative approach, engaging with the works of Wilfred Cantwell Smith and Arvind Sharma alongside selected concepts and primary sources from the Hindu tradition. Rather than rejecting Western scholarship, the paper examines its underlying assumptions and considers the value of approaching Hinduism through its own philosophical, religious, and cultural categories.
- **Data & Findings:** The study focuses on several recurring Western lenses, including the tendency to understand religion as a bounded system of belief, to separate religion from philosophy, and to treat Hinduism as a uniform religious entity. Such approaches can overlook the diversity of Hindu traditions and the close relationship between knowledge, practice, philosophy, ethics, and liberation. The works of W. C. Smith and Arvind Sharma provide important resources for questioning these assumptions and developing a more balanced understanding of Hinduism.
- **Conclusion:** The paper argues that decolonising the academic study of Hinduism need not involve rejecting Western scholarship. Rather, it requires greater methodological self-awareness and openness to Indian conceptual perspectives. Recognising Hindu traditions as sources of insight for the study of religion, and not merely as objects of study, can contribute to a more plural and nuanced approach to Religious Studies.

Keywords

Hinduism; Western Frameworks; Decolonisation; Indic Perspectives;

मनुस्मृतियाज्ञवल्क्यस्मृत्योः स्त्रीणामधिकारस्वरूपस्य तुलनात्मकमध्ययनम्।

हर्षितमिश्रः

भारतीयधर्मशास्त्रपरम्परायां मनुस्मृतिः याज्ञवल्क्यस्मृतिश्च प्रमुखौ स्मृतिग्रन्थौ स्तः। अनयोर्ग्रन्थयोस्स्त्रीणां सामाजिकं पारिवारिकं धार्मिकं तथा आर्थिकञ्च जीवनं विविधैः विधिनियमैः विनियम्यते। प्रस्तुतशोधपत्रे मनुस्मृतियाज्ञवल्क्यस्मृत्योः तुलनात्मकमध्ययनेन स्त्र्यधिकाराणां स्वरूपं तत्परिसीमनं प्रयोजनं च विविच्यते।

मनुस्मृतौ स्त्रीजीवनस्य संरक्षणप्रधानं स्वरूपं प्रतिपादितम्। तत्रस्थं प्रसिद्धं वचनम् अस्ति- "पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने। रक्षन्ति स्थविरे पुत्रा न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति॥" तथापि "यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः" इत्यनेन स्त्रीसम्मानस्य महत्त्वमपि प्रतिपाद्यते। अतः मनुस्मृतेस्स्त्रीविषयकदृष्टिः केवलं प्रतिबन्धात्मिका नास्त्यपितु संरक्षणसम्मानकर्तव्यपरम्पराभिः सम्बद्धा वर्तते। याज्ञवल्क्यस्मृतौ तु स्त्रीधनस्य तथा दायाधिकारस्य अधिकं व्यवस्थितं

निरूपणं दृश्यते। "अध्यग्न्यध्यावाहनिकं दत्तं च प्रीतिकर्मणि। भ्रातृमातृपितृप्राप्तं षड्विधं स्त्रीधनं स्मृतम्॥" इत्यनेन स्त्रीधनस्य स्वरूपं प्रकारभेदेन निरूपितम्। अनेन स्त्रियः आर्थिकस्वामित्वस्य विशिष्टं रूपं प्रकाशते।
अस्मिन् शोधे विवाहस्त्रीधनम् उत्तराधिकारः धार्मिककर्तव्यं, संरक्षणं स्वातन्त्र्यं च प्रमुखविषयत्वेन स्वीकृत्योभयोः स्मृत्योः साम्यवैषम्यं परीक्ष्यते। मूलपाठानां तुलनात्मकविश्लेषणेन तथा भाष्यपरम्परायाः साहाय्येन स्त्री-अधिकारचिन्तनस्य स्वरूपं विवेच्यते। विषयस्यास्य अध्ययनाय प्रयत्नः अस्ति यत् धर्मशास्त्रीयपरम्परायां स्त्रीस्थानस्य सूक्ष्मं सन्तुलितं च स्वरूपं प्रकाश्येत ।
।। इति शम् ।।

संस्कृत वाङ्मय में नारी-विमर्श

डॉ दिव्या भारती

संस्कृत वाङ्मय केवल काव्य या धार्मिक ग्रन्थों का संग्रह मात्र नहीं है, बल्कि वह भारतीय संस्कृति एवं समाज के मूल्यों और चेतनाओं का ऐतिहासिक दस्तावेज भी है। इस वाङ्मय में नारी की उपस्थिति अत्यन्त व्यापक है और वह विभिन्न युगों में अलग-अलग रूपों में उभरती है। वैदिक ऋषिकाओं से लेकर सीता, द्रौपदी, शकुन्तला, उर्वशी, सावित्री, दमयन्ती, तारा, कुन्ती, गान्धारी और आधुनिक वाङ्मय की स्त्री-पात्रों तक, नारी का स्वरूप अनेक स्तरों पर विकसित होता दिखाई देता है। संस्कृत वाङ्मय में नारी केवल सौंदर्य या गृहस्थ जीवन की वस्तु नहीं, बल्कि ज्ञान, संवाद, नीति, प्रेम, संघर्ष, मर्यादा, मातृत्व और आत्मबल की प्रतिनिधि भी है। इसी कारण "नारी-विमर्श" का अध्ययन संस्कृत वाङ्मय के माध्यम से न केवल अतीत को समझने में सहायक है, बल्कि समकालीन स्त्री-प्रश्नों की जड़ों तक पहुँचने में भी मदद करता है।

वैदिक वाङ्मय में नारी को अपेक्षाकृत सम्मानजनक और ज्ञानप्रधान स्वरूप में देखा जाता है। ऋग्वैदिक परम्परा में गार्गी, मैत्रेयी, लोपामुद्रा, घोषा, अपाला जैसी स्त्रियाँ बौद्धिक संवाद और दार्शनिक प्रश्नों में सक्रिय दिखाई देती हैं। वे केवल गृहिणी नहीं है, बल्कि ऋषि-परम्परा की सहभागी के रूप में उपस्थित है। यह तथ्य संकेत करता है कि वैदिक समाज में नारी की भूमिका अपेक्षाकृत खुली, प्रतिष्ठित और वैचारिक थी।

वैदिक मन्त्रों में नारी की उपस्थिति केवल प्रतीकात्मक नहीं है, बल्कि उसका ऐतिहासिक महत्व भी है। उषा, सरस्वती और वाक् जैसी देवियाँ नारी-शक्ति, ज्ञान, प्रकाश और वाणी की प्रतीक हैं। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि प्रारम्भिक भारतीय चिन्तन में नारी को निष्क्रिय नहीं, बल्कि सृजनात्मक शक्ति के रूप में स्वीकार किया गया है। नारी-जीवन का यह रूप संस्कृत वाङ्मय की परवर्ती धाराओं के लिए आधारभूमि प्रस्तुत करता है।

वैदिक काल की स्त्रियों के संदर्भ में शिक्षा, यज्ञ, संवाद और दर्शन में उनकी सहभागिता उल्लेखनीय रही है। इस स्तर पर स्त्री को केवल पति या परिवार की सहायक इकाई मानने की प्रवृत्ति अभी पूर्ण रूप से विकसित नहीं हुई थी। इसलिए वैदिक नारी-स्वरूप को संस्कृत वाङ्मय में नारी-विमर्श की सबसे प्रारम्भिक और सशक्त भूमि माना जा सकता है।

A Visionary Socio-religious Reforms by Dharma-Nirṇaya-Maṇḍaḷa (DNM) & Jñāna Prabodhinī (JP) - 1934-2025

Dr. Manisha Shete

In India during the pre-Independence era there was an ideological upheaval about social and religious matters. Obviously some Inspiring intellectual reformists came together and they started organizing conferences for 'Religious Awakening and reforms.' They named this activity as Tattvaniṣṭha-parivartana-vādī-pariṣad. The first conference was held at Thane in 1934. From 1934 to 1937 three conferences were held by the organization. In these conferences there was Cogitation of Religious matters such as 'For time & place relevance; change is necessary, without abandoning earlier traditions reforms in code of conduct are acceptable'

The 4th conference was held at Lonavale in 1938. In this conference all members unanimously established an organization and they named it 'Dharma-Nirṇaya-Maṇḍaḷa'. The organization made valuable decisions. Some of them are : -

1. Every Hindu has the right to perform and practice sacramental rituals.
2. A person can perform rituals like 'Marriage' and 'Thread ceremony' at any time.
3. Abolishment of untouchability and caste-gender discrimination.
4. A widow can participate in any sacramental rituals.

Later DNM worked for religious awakening & reforms till Jñāna Prabodhinī took up DNM's mission. Before this DNM composed texts and wrote books as per their ideology. DNM published critically revised 'Pothī' (sacramental books) of Vivāha, Upanayana, Antyeṣṭi, Punarvivāha, Hindūkaraṇa which were relevant to changing time.

At the same time in 1962 at Pune Jñāna Prabodhinī was established to inculcate values and leadership amongst the youth of India. DNM secretary Pt. Raghunathshastri Kokje and Founder of Jnana Prabodhini Dr. V. V. Pendse had frequent meets and discussions on various topics at that time. They discussed on necessity of reforms in religious rituals. One of the example is execution of 'Sāmūhika Samatā Śrāvaṇī' (inclusive of all castes) at the Jñāna Prabodhinī premises in 1964. Later on Saṃskṛta Saṃskṛti Saṃśodhikā (Santrikā), a department of Jñāna Prabodhinī, established in 1975, took over the work. Now Santrikā is carrying forward the legacy of the DNM and JP.

This poster focuses on commendable work by DNM and *Santrikā* in 'Religious Awakening & Reforms' started in Maharashtra which is now spreading all over India.

A Visionary Socio-religious Reforms by Dharma-Nirṇaya-Maṇḍaḷa (DNM) & Jñāna Prabodhinī (JP) - 1934-2025

MEHAK AGGARWAL

From Devi to Shakti: The Evolution of the Supreme Feminine Archetype in Indian Religious Though The feminine occupies a distinctive and multifaceted position in the religious imagination of India. It has evolved from diverse representations of female divinity. The conception of the feminine as an embodiment of supreme cosmic power has always been present in the Indian thought. This paper examines the evolution of the Supreme Feminine archetype from Devi to Shakti. It traces its conceptual development across Vedic, Upanishadic, Epic, and Puranic traditions. Beginning with the Devi Sukta of the Rigveda, where the feminine divine speaks as an all-encompassing cosmic power. The study explores how subsequent religious traditions progressively expanded the theological significance of Devi. Particular attention is given to the Devi Upanishad, Devi Mahatmya, and Devi Bhagavata Purana. Here the Goddess is represented not merely as a consort or localized deity but as the source of the transformative power of the universe.

The paper proposes that this historical development reflects the emergence of a distinctive Supreme Feminine archetype. It is characterized by multiple and seemingly complementary dimensions. The Mother as creator and nurturer. The Warrior as protector and destroyer of evil. The Sage as embodiment of knowledge. The Lover as an expression of devotion and cosmic union. These manifestations demonstrate the feminine divinity in Indian religious thought. It cannot be confined to conventional categories of motherhood, fertility, or domesticity. Rather, Shakti represents dynamic power, consciousness, and liberation.

Through a comparative textual and archetypal analysis, the paper investigates the diverse forms of Devi. How they converge within the theological understanding of Shakti. It argues that the

movement from Devi to Shakti represents not merely an expansion of goddess worship. It also brings attention to the significant reconfiguration of the feminine as a principle of cosmic agency and ultimate reality. The study concludes that the Supreme Feminine archetype provides a distinctive framework for understanding the relationship between gender, and metaphysics in Indian religious thought.

Keywords: Devi; Shakti; Religious Studies; Feminine Archetypes; Indian Religious Thought

A Visionary Socio-religious Reforms by Dharma-Nirṇaya-Maṇḍaḻa (DNM) & Jñāna Prabodhinī (JP) - 1934-2025

Abstract submitted by main author with ID AIOC 260831073951-70 Dr. Manisha Shete.

Co-author,

Pallavi Bhate

कर्मकाण्ड का उद्गम एवं विश्लेषण

डॉ० बालाजी कुमार शतपथी

कर्मकाण्ड, कर्म सिद्धांत का गहन श्रोत है। कर्मकाण्ड शास्त्र, विभिन्न भारतीय आर्थिक दार्शनिकों के स्वर्णिम सिद्धांतों को अपनी विचारधाराओं में शामिल करने, परिवर्तन और उच्चीकरण की संभावनाएं समय-समय पर पाई जाती हैं। मानव समाज के लिए भारतीय आस्तिकवादी दर्शन की उपयोगिता को ध्यान में रखते हुए, यदि किसी ज्ञान की शाखा ने व्यावहारिक रूप में चर्चा किए गए सिद्धांतों का सबसे सफल प्रयोग किया है, तो वह है **कर्मकाण्ड शास्त्र**। हम विभिन्न रूपों में संस्क्य दार्शनिक तत्व मीमांसा के व्यावहारिक उपयोग को कर्मकाण्ड विज्ञान में देख सकते हैं। इसमें संकल्प के अनुसार प्रार्थनाएँ की जाती हैं जिससे, शारीरिक, दिव्य, भौतिक, मानसिक, वाचिक और सांसारिक दुखों का निवारण हो सके। इन मन्त्रों में विज्ञान की स्पष्ट झलक देखने को मिलती है। इसलिए, कर्मकाण्ड विज्ञान के योगदान को शब्दों से ज्यादा अनुभवों में समझा जा सकता है। मूलतः, कर्मकाण्ड शास्त्र के विभिन्न आयामों से संस्कारों और गुणों की उत्पत्ति की समृद्धि प्राप्त करना सम्भव है।

कर्मकाण्ड, पौरहित्य, अनुष्ठान, पूजन, वेदांग, कल्पसूत्र, पौरहित्य, , उपचार जैसे शब्दज्ञान द्वारा प्रकाशित किया जा सकता है। कर्मकाण्ड ने अपने पक्ष में पाँच प्रकार के ज्ञान को गहराई से अपनाया है। उदाहरण के लिए - वेदों से मंत्र, व्याकरण से वाक्य एवं भावार्थ संरचना, ज्योतिष से पंचांग विज्ञान, धार्मिक ग्रंथों से कृतकृत्य और पुराणिक ज्ञान से कथा-संदर्भ। इन पाँच पहलुओं को मिलाकर, पण्डित कर्मकाण्ड को समरूपता में बदल देता है। कर्मकाण्ड के माध्यम से, दूसरों के दुख को दूर करके उन्हें शांति या खुशी प्रदान करना और संस्कारित जीवन में ऊर्जा देकर स्वयं को भगवान की ओर पुनः स्थापित करना, यही कर्मकाण्ड करने वाले का मुख्य उद्देश्य है। इस ब्रह्मांड की नींव यज्ञ द्वारा रखी गई थी, और इस सिद्धांत के प्रमाणित होने के बाद, अब यह भी साबित करना है कि, यज्ञ जैसे कर्मकाण्ड के परिणामस्वरूप क्या प्राप्त हुआ? यदि यज्ञ जैसे कर्मकाण्ड का पालन किया गया है, तो निश्चित रूप से परिणाम मिलेगा। यज्ञ स्वयम्भू ब्रह्मा द्वारा किया गया था, जिसके कारण ब्रह्मांड शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध के आधार पर बनाया गया था, जिसमें पाँचों कर्मेन्द्रियों के साथ साथ पाँच तनमत्राएं, मन, बुद्धि और अहंकार का सम्मान किया जाता था। प्राणीमात्र को जीवन्त बनाए गए।

Corporate Governance through the Lens of Vedantic Ethics: A Framework for Responsible and Sustainable Business

Dr. Neha sethi

Despite the evolution of comprehensive governance frameworks and regulatory mechanisms across the world, corporate scandals involving fraud, corruption, financial manipulation, and unethical leadership continue to undermine public trust. Cases such as WorldCom, Satyam Computer Services, and other corporate failures have demonstrated that legal compliance and

regulatory oversight alone cannot guarantee ethical organizational behaviour. These incidents highlight the importance of developing governance systems that are supported by strong moral values and internal ethical consciousness rather than relying solely on external controls.

In this context, Vedantic philosophy offers a valuable ethical perspective for enriching contemporary corporate governance. Rooted in the ancient Indian wisdom of the Upanishads and the Bhagavad Gita, Vedanta emphasizes self-realization, righteousness (Dharma), truthfulness (Satya), selfless action (Nishkama Karma), non-attachment to personal gain, and the welfare of society (Lokasangraha). Unlike conventional governance approaches that often prioritize compliance and profit maximization, Vedantic ethics advocates a value-centered approach in which leadership is guided by integrity, responsibility, and service to all stakeholders.

The present study seeks to examine corporate governance through the lens of Vedantic ethics and proposes a conceptual framework for responsible and sustainable business. It explores how Vedantic values such as Dharma, Satya, Nishkama Karma, self-awareness, and Lokasangraha can reinforce the core principles of corporate governance, including accountability, transparency, fairness, responsibility, and stakeholder engagement.

By integrating ancient Indian philosophical wisdom with modern governance principles, this research contributes to the growing discourse on ethical and sustainable management. It also supports the broader objective of incorporating Indian Knowledge Systems into contemporary management education and research, offering a culturally relevant and globally applicable framework for responsible corporate governance in the twenty-first century.

Keywords: Corporate Governance , Vedantic Ethics , Ethical Leadership , Business Sustainability , Stakeholder Theory

The Historical Background of Dietary Practices in Ancient Indian Texts

Dr. Geetha H

Food in ancient India was never viewed merely as sustenance. The Vedas, Dharmaśāstras, Ayurveda, and epics treat Āhara as central to health, morality, spirituality, and social order. This paper examines food habits as reflected in major ancient Indian texts to understand the principles that governed diet in that period.

The Veda-s lay the foundation by offering food to deities through yajnas and describing grains like yava, vrīhi, milk, ghee, and fruits as sacred. Food is linked to cosmic order or Rita. The Upanishads introduce the idea of Annam Brahma- “Food is Brahman” highlighting its divine nature and the ethical duty to share it.

The Dharmaśāstras, especially *Manusmṛti* and *Yajnavalkyasṛti*, provide detailed dietary codes. They classify food as pure and impure based on source, method of preparation, and donor. There are prescriptions and prohibitions: consumption of certain meats, alcohol, and leftover food from specific persons is restricted. However, the texts also allow exceptions during famine, illness, or travel, showing flexibility. Food rules are tied to varna and asrama duties, and to concepts of purity and pollution.

Ayurvedic texts like *Caraka Samhita* and *Suśruta Samhita* approach food from a health perspective. They categorize food by guna as Sātvic, Rajasic, and Tāmasic, and by effect on dosas. Emphasis is placed on seasonal diet, proper quantity, food combinations, and digestion. The Epics — *Rāmayaṇa* and *Mahābhārata* depict food practices in daily life, during exile, in asrama-s, and in royal courts, reflecting regional variety and hospitality as a virtue.

Across these texts, three common themes emerge: food as a means of physical well-being, as a marker of social and ritual identity, and as a tool for spiritual discipline. Thus, ancient Indian food habits reveal a holistic worldview where diet connected the body, society, and dharma.

Keywords- Ancient India, Food Habits, Dharmaśāstras, Ayurveda, Āhara, Purity, Sātvic Diet

कोशलानन्दमहाकाव्ये वर्णितस्य रथोत्सवस्य एकं सामाजिकसमीक्षणम्

डॉ. अनङ्गउदयभोइ

संस्कृतमहाकाव्यपरम्परायां धार्मिकविषयाणां वर्णनं केवलमाध्यात्मिकानुभूतेः प्रतिपादनपर्यन्तं सीमितं न भवति, अपितु तत्र तत्कालीनसमाजस्य विविधाः प्रवृत्तयः, लोकजीवनस्य स्वरूपं, सामाजिकसमन्वयः, कलासंस्कृतिः, विद्वत्समुदायस्य भूमिका तथा सामूहिकचेतनायाः अभिव्यक्तिश्च प्रतिफलिता भवति। पं.गङ्गाधरमिश्रप्रणीतस्य कोशलानन्दमहाकाव्यस्य एकादशसर्गवर्णितः श्रीजगन्नाथरथोत्सवः सामाजिकदृष्ट्या महत्त्वपूर्णमुदाहरणमस्ति। अत्र रथोत्सवः केवलं धार्मिकानुष्ठानरूपेण नोपस्थितः, अपितु विविधजनसमुदायस्य समागमः, विद्वत्समुदायस्य सहभागिता, संगीत-काव्य-वाद्य-नृत्यादीनां कलात्मकप्रकाशः, सामुदायिकप्रमोदः, लोकदुःखापगमः तथा सामाजिकसमन्वयस्य सशक्तं माध्यमरूपेण प्रतिपादितः अस्ति। एकादशसर्गे प्रतिफलितरथोत्सवस्य सामाजिकस्वरूपस्य विश्लेषणमेव प्रस्तुतलेखस्य प्रमुखोद्देश्यः।

कुञ्चिशब्दाः कोशलानन्दमहाकाव्यं, जगन्नाथरथोत्सवः, सामाजिकचेतना, लोकजीवनं, सामाजिकसमन्वयः, सांस्कृतिकचेतना।

To explore the Antioxidative potential of peroxiredoxin from Candidatus Liberibacter asiaticus and its role in free radical scavenging, antiaging and wound healing

Deena Nath Gupta, Surabhi Rode, Ashwani Kumar Sharma

A common thiol-based antioxidant enzyme, peroxiredoxins lower oxidative stress and are essential for a number of diseases. The antioxidant enzyme system has potential to scavenge the free radical and promote cellular health. These enzymes also have healing potential on cellular or skin damage. The antioxidant capacity, DNA binding, cell proliferation, ROS scavenging, and wound healing potential of recombinant protein 1-Cys peroxiredoxin from Candidatus Liberibacter asiaticus (CLaPrx) and its mutant CLaPrx-I51C were all investigated in this study. Dithiothreitol (DTT), a non-physiological electron donor, was used to investigate the antioxidant activity of CLaPrx and its mutant CLaPrx-I51C. Studies using fluorescence and differential scanning calorimetry (DSC) show that CLaPrx and its mutant, CLaPrx-I51C, have the DNA binding ability. According to in vitro examination, CLaPrx and its mutant CLaPrx-I51C may be able to scavenge reactive oxygen species (ROS) and shield CHO cell lines from peroxide-induced cell damage. After treating CHO cells with 20 μM protein for 16 hours, the cell proliferative potential of CLaPrx and CLaPrx-I51C nearly doubled. Furthermore, CLaPrx and its mutant CLaPrx-I51C demonstrated the ability to heal wounds in CHO cells, and comparable therapy resulted in about 98% of wound closures. The findings show that CLaPrx and its mutant CLaPrx-I51C are extremely adaptable proteins with antioxidant properties that are important for wound healing, DNA binding, ROS scavenging, and cell proliferation. Based on these studies, the antioxidant peroxiredoxin enzyme can be used as a wound healing, sunburn and antiaging ointment.

Electrophysiological Correlates of Meditation: A Review of High-Density EEG and Microstate Findings Across Dharana, Dhyana and Samadhi in Patanjali Yoga Sutra

Patanjali in Yoga Sutra III.1 to III.3 gives a clear sequence of attentional training. Dharana is holding the mind to a place (desha-bandhash chittasya dharana), Dhyana is the continuous flow towards it, and Samadhi is absorption, together known as Samyama. In modern research, many studies talk about mindfulness in general, but only a few have tried to see these three stages separately. The purpose of this review is to bring together what EEG research has found about these stages. We looked at studies published in the last 15 years that used high-density EEG, spectral analysis and microstate analysis on meditators from Yoga and related traditions. The literature shows a consistent pattern. During initial concentration, studies report suppression of beta activity over frontal and parietal regions, which is linked to reduction in effortful thinking. When practice deepens into Dhyana, there is more reporting of theta and gamma coupling, indicating stable and integrated attention. For microstates, work by several groups shows that microstate classes associated with the Default Mode Network - the network active during mind-wandering - become shorter in duration and occur less frequently during deeper meditative states. When we read these findings alongside Patanjali's description, there is a close match. The Yogic idea of chitta-vritti nirodha and reduction in mental fluctuations appears to correspond with measurable decrease in cognitive load and self-referential processing in the brain. This paper argues that the classical taxonomy of Samyama provides a useful framework for future EEG research.

PROCE E DI N G S OF TH E I N TE RN ATI ON AL COM PARATI VE COSM OLOG Y SYM POSI U M: Neither Being nor Non-Being: Re-reading Nasadiya Sukta in the Light of Quantum Vacuum Cosmology, A Comparative Cosmological Study ofRig Veda 10. 129 and Modern Quantum Origin Models

M Jayasimha

The Nasadiya Sukta, or Hymn of Creation (Rig Veda 10.129), represents one ofhumanity's earliest recorded inquiries into cosmic origins. Distinct from personified creation myths, it employs a radical skeptical methodology and non-binary ontological framework. This paper provides a rigorous textual analysis ofkey verses alongside contemporary paradigms in quantum cosmology, including the quantum vacuum, the Hartle-Hawking No-Boundary proposal, and quantum vacuum fluctuation theory. While acknowledging fundamental epistemological differences between meditative intuition (dhi) and empirical-mathematical physics, this study demonstrates that the Nasadiya Sukta establishes a sophisticated metaphysical prototype for creation from ontological indeterminacy that closely parallels modern physics.

Fact or Myth? Ancient Indian Reproductive Narratives and Modern Assisted Reproductive Technologies

Aaradhya Gupta, Vinay Kumar Sharma

Abstract

Assisted reproductive technologies (ART) have become important tools in modern reproductive medicine for addressing infertility and assisting conception. According to the World Health Organization, approximately 17.5% of adults, or about 1 in 6 people worldwide, experience infertility during their lifetime, highlighting the global importance of fertility care. In India, ART has expanded considerably, with the Indian Council of Medical Research (ICMR) reporting 1,866 ART clinics and 214 ART banks, reflecting the growing infrastructure for assisted reproduction. Ancient Indian literature also contains narratives describing unusual concepts of reproduction and development. In the Mahābhārata, Gandhārī is described as delivering a mass of flesh that was subsequently divided into 101 portions and placed in separate vessels containing ghee, where they were maintained until the development of her 100 sons and daughter. Although this account is a

traditional literary narrative rather than a historical description of reproductive technology, it provides an interesting cultural perspective on ancient Indian conceptualizations of reproduction and development. The present article explores this narrative in relation to modern reproductive technologies, including in vitro fertilization (IVF), embryo culture, cryopreservation, and embryo transfer. By distinguishing traditional narratives from experimentally established reproductive biology, this review aims to provide a balanced perspective on ancient Indian ideas concerning reproduction and the development of modern ART, while highlighting their historical, cultural, and scientific contexts.

From Tradition to Science: Microbiological Effects of Copper and Earthen Water Storage Vessels

Poornima Singh, Vinay Kumar Sharma

There is growing interest in low-cost, energy-efficient, and sustainable approaches to improving household water safety, particularly in settings where access to electricity-dependent treatment technologies is limited. Traditional Indian practices of storing water in copper (Tamra Patra) and earthen (Mrttika Patra or matka) vessels have attracted renewed scientific interest because of their potential microbiological and environmental benefits. This review examines the traditional use of these vessels and evaluates the available evidence concerning their effects on water quality and microbial survival. The antimicrobial activity of copper is primarily associated with the oligodynamic effect, in which released copper ions can interact with microbial membranes, proteins, enzymes, and nucleic acids, thereby impairing cellular function. Studies have reported reductions in viable bacterial populations following storage in copper vessels, although the magnitude of the effect depends on factors including water composition, contact time, temperature, and copper release. Earthen vessels primarily provide evaporative cooling through their porous structure and may influence microbial survival and selected physicochemical characteristics of stored water. Traditional references, including Charaka Samhita, Ashtanga Hridayam, and Bhavaprakasha, provide historical context for the use of copper and earthen vessels in Indian water and health practices. However, traditional descriptions should be distinguished from experimentally established microbiological mechanisms. This review therefore considers the potential benefits, limitations, and safety considerations of these practices and discusses their possible relevance as complementary, low-energy approaches to household water storage and sustainable water management.

Chakras: An Ancient Indian Concept and Its Proposed Correlation with Modern Embryogenesis

Dr. Vinay K Sharma

In ancient Indian traditions, the term chakra (चक्र), meaning “wheel,” “circle,” or “disc,” refers to centres within the subtle-body framework associated with the flow and regulation of prāṇa (vital energy). Chakras have been described in yogic and tantric traditions and are traditionally associated with different aspects of physical, mental, and spiritual well-being. The major chakras are generally described along the central axis of the body, with contemporary interpretations proposing relationships between individual chakras, specific anatomical regions, endocrine organs, and physiological functions. However, these proposed relationships should

be distinguished from established anatomical and physiological structures. Although increasing scientific interest has focused on yoga, meditation, neuroendocrine regulation, and mind–body interactions, the relationship between traditional chakra concepts and human embryonic and fetal development remains largely unexplored. Embryogenesis involves highly coordinated development of the nervous, endocrine, and other organ systems, raising an interdisciplinary question of whether traditional descriptions of chakras can provide a conceptual framework for understanding aspects of human development. Therefore, the present article aims to review the traditional descriptions and proposed functions of the chakra system and examine their possible relationships with embryogenesis, fetal development, and the developing nervous and endocrine systems. Particular attention is given to the proposed anatomical and functional correlations between chakras and developing physiological systems. By distinguishing traditional knowledge and contemporary interpretations from experimentally established biological mechanisms, this review seeks to provide a balanced framework for exploring the potential interface between ancient Indian knowledge systems and modern developmental science and to identify areas requiring future experimental investigation.

श्रीमद् भगवद् गीता में चिंता विकृति की मनोचिकित्सा

डॉ. भावेश लोढ़िया

साहित्य और मनोविज्ञान का संबंध अति प्राचीन है। श्रीमद् भगवद् गीता करोड़ों भारतीयों के लिए पूज्य ग्रन्थ है। ओशो रजनीश ने कहा है - "मैं जिम्मेदारीपूर्वक कहता हूँ कि गीता आध्यात्मिक ग्रन्थ नहीं, शुद्ध मनोविज्ञान है।" अनेक विद्वानों ने भगवान श्रीकृष्ण को विश्व का प्रथम मनोवैज्ञानिक कहा है। प्रस्तुत शोध में गीता के प्रथम तथा द्वितीय अध्याय में अर्जुन और कृष्ण के बीच होने वाली मनोचिकित्सा की प्रक्रिया को समझाया गया है। COVID-19 के बाद बढ़ी PTSD और चिंता विकृतियों के उपचार में यह उपयोगी होगा। A. अध्ययन क्षेत्र: गीता अध्याय 1 के 28 से 46 तक (19 श्लोक) और अध्याय 2 के 1 से 38 तक (38 श्लोक) कुल 57 श्लोक। इनमें 20 श्लोक अर्जुन द्वारा (लक्षण और सहायता याचना), 33 श्लोक कृष्ण द्वारा (चिकित्सा), 3 श्लोक संजय द्वारा। B. चिंता विकृति (Anxiety Disorders): चिंता विकृति में रोगी अवास्तविक डर और चिंता सामान्य से अधिक अनुभव करता है। 6 प्रकार हैं: 1. Phobias 2. GAD 3. Panic Disorder 4. OCD 5. PTSD 6. Acute Stress. गीता में प्रथम 3 के लक्षण अर्जुन में हैं। लक्षण (GAD और Panic): शारीरिक - पसीना, हृदय गति तीव्र, कंपन, सिर दर्द, हाथ-पैर ठंडे। Panic में DSM की 13 में से 4 समस्याएं - हृदय गति, पसीना, श्वास रुकना, छाती दर्द, नियंत्रण खोने का भय, मरने का भय। C. अर्जुन में दिखने वाले लक्षण: शारीरिक लक्षण: 1.28 - गात्राणि सीदन्ति मुखं परिशुष्यति - मेरे अंग शिथिल हो रहे हैं, मुख सूख रहा है 1.29 - वेपथुश्च शरीरे मे रोमहर्षश्च जायते, गाण्डीवं स्रंसते हस्तात् 1.30 - मन भ्रमति - मन भ्रमित हो रहा है बौद्धिक लक्षण - अवास्तविक भविष्य दर्शन (Catastrophizing): 1.39 - कुलक्षये प्रणश्यन्ति कुलधर्माः 1.40 - अधर्माभिभवात् कृष्ण प्रदुष्यन्ति कुलस्त्रियः, स्त्रीषु दुष्टासु जायते वर्णसंकरः 1.43 - जो कुल धर्म का नाश करते हैं वे नरक में वास करते हैं संवेगात्मक: 1.46 - शोकसंविग्नमानसः रथ के आसन पर बैठ गया 2.1 - अश्रुपूर्णाकुलेक्षणम्, 2.6 - न चैतद्विद्मः कतरन्नो गरीयः - अनिर्णय निष्कर्ष: अर्जुन निश्चित रूप से चिंता विकृति का शिकार है। D. कृष्ण की मनोचिकित्सा प्रविधियाँ: 1. अंतःक्रिया - Rapport: 2.10 - तमुवाच हृषीकेशः प्रहसन्निव भारत - दोनों सेनाओं के बीच शोकग्रस्त अर्जुन से मुस्कुराते हुए कहा। सायंुज्य के लिए हास्य। पूरी गीता 700 श्लोक - अर्जुन को खूब बोलने दिया, बार-बार एक ही प्रश्न सुना - यह Freud की मुक्त साहचर्य (Free Association) और भाव-विरेचन (Catharsis) विधि है। 2.7 - कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः पृच्छामि त्वाम् - स्वीकृति से आधी चिकित्सा। 2. संबोधन द्वारा अहं जागरण: 33 श्लोकों में 15 बार संबोधन। विधायक: परंतप (शत्रु दमन) 2.3, भरतवंशी, महाबाहो 2.26, पुरुषर्षभ 2.15, कौन्तेय। निषेधक: अनार्य, हृदयदौर्बल्य, क्लैब्य - अहं

को झकझोरने के लिए - व्यवहारवादी दंड। 3. विसंवेदीकरण (Desensitization): 2.14 - मात्रास्पर्शास्तु कौन्तेय शीतोष्णसुखदुःखदाः, तांस्तितिक्षस्व भारत - इन्द्रिय अनुभवों को सहन करना सीखो 2.15 - यं हि न व्यथयन्त्येते पुरुषं पुरुषर्षभ 2.38 - सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ 4. प्रतिरोध नहीं, मार्गांतरण - सर्वश्रेष्ठ चिकित्सा (Reframing): कृष्ण प्रवाह को रोकते नहीं, मोड़ते हैं। अर्जुन का संघर्ष परिहार-परिहार (खराब-खराब) था - मारूँ तो पाप, न मारूँ तो कायर। 1.31 - स्वजनों को मारने से कल्याण नहीं कृष्ण ने दिशा बदली: 2.33 - अथ चेत्त्वमिमं धर्म्यं संग्रामं न करिष्यसि, ततः स्वधर्मं कीर्तिं च हित्वा पापमवाप्स्यसि - युद्ध नहीं करेगा तो अपयश 2.37 - हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम् - मरेगा तो स्वर्ग, जीतेगा, तो पृथ्वी इस प्रकार नकारात्मक ऊर्जा को सकारात्मक दिशा में मोड़ना। E. उपसंहार: भारतीय अध्यात्म में विषाद, चिंता, मनोभार से निपटने के मार्ग हैं। गीता का रसपान करने वाले की अप्रत्यक्ष चिकित्सा हो जाती है। इसलिए भारत में कम क्लिनिक होने पर भी मानसिक स्वास्थ्य बेहतर है। गीता के अथाह सागर में से कुछ सीपियाँ बटोरने के आनंद के साथ आभार।

Ghaṭikā Polyvalence as an Organizing Principle of Time in the Śrīmad-Bhāgavatam

Punit Bhalla

Research Parameters (Introduction): The ghaṭikā (also nāḍikā or daṇḍa) in the Śrīmad-Bhāgavatam connects proportional time units, instrumental measurement, seasonal variation, solar motion, and calendrical order. Building on the published evidence for two defensible reckonings and the study of metrological architecture, this paper examines their contextual application. Methodology: It distinguishes textual ratios, commentarial interpretations, modern calibrations, experimental evidence, and mathematical reconstruction. Data & Findings: In SB 3.11.8, differing allocations of seasonal praharas and twilight permit a reconstruction of forty-eight operative nāḍikās; mapping these onto twenty-four hours yields thirty minutes. The sixty-nāḍikā civil convention instead yields twenty-four minutes. Interpretations of plutam in SB 3.11.9 underpin water-clock reconstructions showing that both models are materially plausible under historically grounded assumptions. These experiments establish practical viability rather than the exclusive historical normativity of either convention. In SB 5.21.10, fifteen ghaṭikās per quarter produce a sixty-part solar circuit, compatible with the twenty-four-minute value when the circuit is mapped to a complete day. Two astronomical exercises test internal coherence. The daylight route gives 23.7–24.2° N under thirty minutes and 19.4–19.8° N under twenty-four. The velocity-derived projection gives 23.64° N under the thirty-minute hierarchy, using the described circular revolution and a cosine mapping between the axle and the speed-derived effective radius. Their proximity is not independent confirmation because both routes share the temporal calibration. Conclusion: The thirty-minute value is therefore adopted where the primary interpretive model applies and local evidence supplies no contrary indication; it is not imposed as a universal equivalent. Stable internal ratios must be distinguished from contextual modern realizations. Ghaṭikā-polyvalence is an analytical description of these relationships, not an indigenous technical category or proof of deliberate authorial design. The contribution lies in identifying the operative unit before comparison and studying measurement through the coordinated roles of text, commentary, craft, observation, arithmetic, cosmology, and ritual order.

From Ayurveda to Molecular Biology: Understanding the Biochemical Basis of Medicinal Herbs

Aradhaya Giri, Vinay Kumar Sharma

Traditional knowledge of medicinal plants has contributed to the identification of compounds with potential therapeutic value. The use of plants for medicinal purposes dates back to ancient times.

Turmeric (Curcuma longa) has long been used in India for wound care and conditions associated with inflammation. Its major bioactive constituents, particularly curcuminoids such as curcumin, undergo digestion, absorption, and metabolism after ingestion. At the molecular level, curcumin has been investigated for its effects on NF-κB, a transcription factor involved in inflammatory gene regulation, and on the Nrf2–ARE pathway, which regulates antioxidant and cytoprotective responses. It has also been studied for effects on inflammatory mediators, including COX-2, iNOS, TNF-α, and IL-6. Ashwagandha (Withania somnifera), traditionally regarded in Ayurveda as a rasayana or rejuvenating herb, contains bioactive withanolides, including withaferin A. These compounds undergo absorption and metabolism and have been investigated for effects on the hypothalamic–pituitary–adrenal axis, GABAergic signaling, NF-κB, and oxidative-stress pathways. Together, these examples illustrate how traditional medicinal knowledge can be examined using modern biochemical and molecular approaches, while recognizing that many proposed mechanisms remain under investigation. Sustainable cultivation and conservation are also essential to prevent overexploitation of medicinal plant resources.

Ayurveda and Antimicrobial Resistance: Traditional Knowledge and Modern Microbiological Perspectives

Devangi Tyagi, Dr.Vinay kumar sharma

Antimicrobial resistance (AMR) is a growing global health challenge that threatens the effective treatment of infectious diseases. Traditional Indian Knowledge Systems, including Ayurveda and concepts described in Vedic literature, provide a historical perspective on disease, harmful organisms, hygiene, environmental health, and disease prevention. The Vedic concept of Krimi, broadly referring to harmful organisms that may be visible or invisible, provides an interesting historical perspective when considered alongside the modern understanding of infectious agents and microorganisms. Ayurveda emphasizes Svasthya, or the maintenance of health and balance between the individual and the environment. From a modern medical microbiology perspective, selected Ayurvedic practices and medicinal agents may provide research opportunities for complementary approaches to AMR prevention and management, particularly in hygiene, environmental health, and antimicrobial discovery. Medicinal plants such as neem (Azadirachta indica), tulsi (Ocimum tenuiflorum), turmeric (Curcuma longa), and Triphala have shown antimicrobial activity in experimental studies, including against some multidrug-resistant bacterial isolates. These agents may therefore represent candidates for further AMR research. Their potential should be evaluated through antimicrobial susceptibility testing, microbiological assays, phytochemical characterization, toxicity studies, and well-designed clinical trials. Integrating traditional knowledge with modern medical microbiology may generate evidence-based hypotheses for complementary AMR strategies while maintaining scientific rigor and patient safety.

प्राचीन भारतीय गणित और खगोलशास्त्र में कटपयादी प्रणाली का अनुप्रयोग: गणितीय स्थिरांकों का संकेतीकरण और खगोलीय गणनाएं

मेघना बुडूकले

प्राचीन भारत में ज्ञान को संजोने और एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुचाने का सबसे बड़ा माध्यम मौखिक परंपरा यानी श्रुतिपरंपरा रही है। जब बात गणित और खगोलशास्त्र जैसे गूढ़ विषयों की आती है, तो बड़ी-बड़ी संख्याओं, गणितीय सिद्धांतों, कोणों की माप और ग्रहों की चाल से जुड़े आकड़ों को बिना किसी भूल-चूक के याद रखना एक बहुत बड़ी चुनौती थी। इसी कठिन चुनौती का एक बेहद व्यावहारिक और वैज्ञानिक समाधान बनी—'कटपयादी प्रणाली'। यह संस्कृत भाषा के व्यंजनों को अंकों में बदलने की सटीक तकनीक है। प्रस्तुत शोध पत्र में इसी बात का

गहराई से अध्ययन किया गया है कि कैसे मुख्य रूप से केरल गणित परंपरा (Kerala School of Mathematics) के आचार्यों और गणितज्ञों ने इस प्रणाली को विशाल जानकारी को छोटा करने (Data Compression) और उसे आसानी से कंठस्थ रखने का एक सशक्त माध्यम बनाया। इस शोध पत्र में कटपयादी के बुनियादी नियमों, जैसे 'क-ट-प-य' वर्ग के अनुसार अक्षरों का संख्यात्मक निर्धारण और 'अङ्कानां वामतो गतिः' की वैज्ञानिक संरचना को विस्तार से समझाया गया है। इसके जरिए यह स्पष्ट रूप से दिखाया गया है कि कैसे प्राचीन आचार्यों ने ग्रहों की गति, उनके परिभ्रमण काल, ग्रहण की तिथियों और कलिदिनों जैसे जटिल खगोलीय आँकड़ों को बड़े ही सहज और मधुर संस्कृत श्लोकों मैं बताया है। विशेष रूप से यह शोध सद्रत्नमाला ग्रंथ में दिए गए π(Pi) के १७ दशमलव स्थानों तक के एकदम सटीक मान और माधवाचार्य द्वारा तैयार की गई त्रिकोणमितीय साईन तालिकाओं (Madhava Sine Table) के श्लोकों का विश्लेषण करके उनकी गणितीय शुद्धता को सामने लाता है। साथ ही, यह पत्र यह भी रेखांकित करता है कि संस्कृत व्याकरण और छंदशास्त्र के नियमों से बंधे होने के कारण इस प्रणाली में पांडुलिपियों की नकल उतारते समय या कंठस्थीकरण के दौरान आकड़े बदलने या गलती होने की गुंजाइश न के बराबर रहती थी।

प्राचीन काल में खाद्य पदार्थों का संरक्षण: एक समीक्षा

भारती सोनी और गोल्डी शर्मा

प्राचीन काल में खाद्य को खराब होने से बचने के लिए वह लंबे समय तक बनाए रखने के लिए अलग-अलग विधियों का प्रयोग किया जाता था।खाद्य संरक्षण के लिए प्राकृतिक विधियां जैसे ड्राइंग (सुखाना),साल्टिंग (नमकीन),स्मोकिंग (धूम्रीकरण),फर्मेंटेशन (किण्वन),पीकलिंग (आचार), क्ले पॉट (मिट्टी के बर्तन)।इन विधियों को करने के लिए अलग-अलग यंत्रों जैसे कोठी या कुटिया ,इनमें घरों में आंगन में मोटी दीवारों पर मिट्टी गोबर व भूसे से लेप होता था ताकि नमी व गर्मी से बचाव हो।कनारी, मिट्टी के बने छोटे डिब्बो में अनाज को संरक्षित किया जाता था। मटेली ,मिट्टी के घड़े में बीजों को संरक्षित किया जाताथा।भरणी, बिना चमकदार मिट्टी के बर्तन में आचार रखा जाता था। इन तकनीकों के द्वारा ग्रेन्स फ्रूट्स वेजिटेबल मीट फिश व अन्य खाद्य पदार्थों का संरक्षण होता था इन विधियों के द्वारा नमी हटाना तापमान कम करना तथा हानिकारक सूक्ष्म जीवों की वृद्धि को रोकना होता था प्राचीन खाद्य संरक्षण विधि में प्राकृतिक स्रोत में पारंपरिक ज्ञान से भोजन अपशिष्ट कम करना तथा पूरे साल भोजन उपलब्धता बनाए रखना होता था।

Food Culture in Ramayana and Mahabharata and its relevance in modern world

Anil Dharmadhikari and Dr. Prabodh Halde

Food plays a crucial role to understand day to day life of any generations. This paper presents a comprehensive study of food culture in ancient Indian scriptures, our Itihaasas- Ramayana, and Mahabharata. The study explores the primary references of agriculture, food, nutrition, hygiene through the lens of modern food science. Our scriptures are full of holistic health containing the wealth of knowledge on herbs, medicinal oils, and foods.

The Valmiki Ramayana describes a well-established food culture. We can find the details of the agricultural practices, medicinal plants, divine feasts, and various food dishes. Food patterns of humans, Vanaras, and Rakshasas. The basics of food safety and food preservations was known to the people that time. The importance of clean water, black salt, sugar usage in food preparation is clearly visible in Ramayana. Meat consumptions, wine liquors played a crucial role in overall food culture during Ramayan times.

As the time progresses towards Mahabharata, the food culture becomes more sophisticated. We can see the references of agriculture, irrigation, dairy management, community kitchens, food diplomacy, and culinary science. Bhishma's teachings on hygiene, Sri Krishna's classification of

Satvik, Rajasik, and Tamasik foods, and King Nala's insights into food safety, toxicology, and food processing shows advancement towards nutrition, sanitation, and public health.

Our ancestors were knowing the food science very well. They were aware of the principles of hygiene, food safety, food preservation techniques, and holistic health. This wealth of knowledge is preserved though generations via oral tradition. India’s traditional food knowledge could lead a global wellness movement. The paper urges a responsible revival grounded in authenticity, science, and cultural respect. We need to preserve, and share the same to future generations. This paper shows the relevance of this ancient wisdom to modern food systems and holistic health of mankind.

Military Science in Vedic Literature: A Study of Strategy, Technology and Warfare

Vedic literature represents one of the earliest intellectual traditions of the Indian subcontinent and contains significant references to warfare, military organization, strategic thought, weaponry, and the protection of society. Although the Vedas are primarily associated with religious, philosophical, and ritual knowledge, their narratives and hymns also preserve valuable material concerning armed conflict, kingship, defence, martial capabilities, and the strategic conduct of warfare. This study examines the military dimensions of Vedic literature with particular emphasis on strategy, technology, and methods of warfare.

The research investigates references to weapons, chariots, horses, fortifications, military formations, warriors, commanders, and the organization of armed forces, while also examining the strategic principles underlying victory, defence, intelligence, leadership, and battlefield decision-making. Particular attention is given to the conceptual relationship between rāja-dharma, military preparedness, and social protection. The study further explores the technological dimensions of warfare reflected in descriptions of weapons and military equipment and evaluates them within their historical and textual contexts.

Employing a textual and interdisciplinary methodology, the research critically analyses relevant passages from the Ṛgveda, Yajurveda, Atharvaveda, Brāhmaṇa literature, and selected ancillary Vedic sources. Rather than projecting modern military concepts directly onto ancient texts, the study seeks to identify indigenous categories of military knowledge and assess their historical significance through philological and contextual analysis.

The paper argues that Vedic literature provides an important foundation for understanding the development of Indian military thought and offers valuable evidence for reconstructing early concepts of warfare, strategy, technology, and defence.

VRIKSHAYURVEDAA Comprehensive 13-Part Seminar on the Ancient Indian Science of Tree Hospitality Based on the Brihat Samhita by Varahamihira

Sathwik P R

An attempt has been made in this paper to reflect on an unnoticed aspect in ancient Indian science of tree hospitality based on Varahamihira’s Brihat Samhita, composed in the sixth century CE, which devotes its 55th chapter – VRIKSHAYURVEDA (TREATMENT OF TREES) - to convey how we should treat the trees and where certain trees or plants should be planted according to the ancient Indian science of tree hospitality. The new method for cultivating many types of plants in

one plant by grafting or layering techniques, which was already mentioned in this text by Varahamihira in the 6th century CE, conveys that these methods were not invented now it was already present in ancient time also. This paper is an attempt to convey certain types of tree hospitality and its conservation: the right place to plant different types of plants in different regions or parts of our surroundings. The Vrikshayurveda chapter of the ancient Indian treatise Brihat Samhita represents a highly systematic, scientific approach to arboriculture and botanical ecology. Far exceeding simple gardening, it serves as a comprehensive agricultural manual that details methodologies for soil preparation, complex grafting techniques, seasonal planting protocols, and meticulous spacing rules to prevent root stress.I am attempting to convey the expansions on the original Sanskrit Slokas and their classical commentary (Bhattotpala Vivriti), dedicating distinct focus to each phase of tree hospitality—from the initial site selection near water bodies to advanced disease management, specialized nutritional therapies, and the astrological alignments required to ensure maximum botanical yield, and trying to protect India's ancient science of tree hospitality

From Ancient Indian Practices to Modern Microbiology: Exploring Traditional Knowledge through a Microbiological Lens

Divya Singh, Vinay Kumar Sharma

Microbiology as a formal scientific discipline emerged centuries after the development of many traditional practices in India. Nevertheless, several practices documented in ancient Indian knowledge systems can be examined today through the lens of modern microbiology. This review explores selected examples from ancient India and considers their relevance to contemporary concepts of fermentation, food preservation, sanitation, antimicrobial activity, and infection control.

Acharya Sushruta, traditionally associated with the Sushruta Samhita, described principles of surgical practice that emphasized cleanliness, appropriate preparation of instruments, and maintenance of the surgical environment. Traditional practices such as Dhoopana (fumigation) using substances including neem and mustard can be discussed in relation to modern concepts of environmental decontamination and reduction of microbial contamination. Such parallels should not be interpreted as evidence that Sushruta understood microorganisms according to modern germ theory.

Traditional Indian food practices provide additional examples. Dahi (curd) results from lactic acid fermentation, while fermented foods such as idli and dosa involve diverse microorganisms, including lactic acid bacteria and yeasts. Similarly, preservation using salt, oil, and acidic conditions can inhibit the growth of selected microorganisms. Plants such as neem have also been traditionally used for medicinal and other purposes, while contemporary research has investigated their phytochemicals for antimicrobial activity.

Overall, ancient Indian practices provide valuable historical examples for examining human interactions with microorganisms. Integrating historical documentation with experimental microbiological validation may help identify traditional practices with scientifically supported applications in food biotechnology, public health, and healthcare.

THE ANCIENT SCIENCE BEHIND THE SACRED TREES: A Review

Somya Tiwari

Sacred trees have held an important place in traditional societies, particularly in India, where species such as Ficus religiosa (Peepal), Ficus benghalensis (Banyan), Azadirachta indica (Neem),

and Ocimum tenuiflorum (Tulsi) have been revered for centuries. Their religious and cultural significance reflects traditional knowledge of their ecological, medicinal and environmental importance. This review examines the ancient scientific knowledge associated with sacred trees and explores their reported roles in traditional medicine, biodiversity conservation, carbon sequestration, airquality improvement, soil protection and microclimate regulation. Traditional knowledge documented through Ayurveda, indigenous practices, folklore and religious traditions is considered alongside contemporary scientific research. The continued protection of sacred trees may have supported the conservation of plant diversity and associated ecosystems. The review also highlights the importance of distinguishing scientifically validated properties from traditional beliefs requiring further investigation. Integrating traditional ecological knowledge with modern scientific approaches can contribute to sustainable resource management, biodiversity conservation, and preservation of cultural heritage.

A study based on activation of Àjña chakra and functions of melatonin hormone related to Ancient Indian philosophy and modern science

Vaishnavi tripathi, Dr. Arti pal, Dr. Vinay kumar sharma

This study explores the ancient Indian understanding of chakarás (energy centers) and their activation techniques, correlating traditional yogic wisdom with contemporary neuro-endocrine science. It primarily focuses on the Ājñā chakra (the third eye or center of command), located at the eyebrow center (Bhrūmadhya), and its physical counterpart, the pineal gland.

The pineal gland acts as a biological transducer between the physical body (sthūla śarīra) and subtle cosmic energy (prāṇic śarīra). Situated along the central suṣumnā nāḍī, it serves as the gateway through which prāṇa ascends to the crown (sahasrāra). The gland's primary secretion, melatonin, regulates the circadian diurnal cycle. Beyond sleep-wake regulation, extra-pineal melatonin (found in the GI tract, retina, skin, and bone marrow) exhibits potent anti-inflammatory, anti-cancer, anti-aging, antiviral, immunomodulatory, and cardiometabolic protective functions. Acting as a direct free-radical scavenger, melatonin enhances antioxidant enzyme activity—mirroring the protective, restorative essence of somarasa or amṛta (the nectar of immortality) described in yogic texts.

Ancient meditative practices, āsanās, and specialized techniques like saṃyama (integrated concentration, meditation, and absorption) directly stimulate the pineal-pituitary axis. Mudrās such as Khecarī, Śāmbhavī, and Trāṭaka alter brainwave patterns, inducing deep meditative trances that trigger melatonin release.

As a master regulatory center governing both the pineal and pituitary glands, activating the Ājñā chakra balances the sympathetic (piṅgalā) and parasympathetic (iḍā) nervous systems. By modulating the hypothalamic-pituitary axis, it regulates key hormones (TSH, ACTH, FSH/LH), thereby downstreaming influence over lower energy centers: Viśuddha (thyroid), Manipūra, Svādhiṣṭhāna, and Mūlādhāra. Ultimately, bridging ancient yogic methods with modern endocrinology reveals how conscious focus on the Ājñā chakra accesses higher intuition and optimizes systemic physiological health.

Vrikshayurveda to Modern Plant Pathology:A Critical Comparative Analysis of Ancient Indian Concepts of Plant Health and Contemporary Disease Management

Nivedita Sharma

Vrikshayurveda, the Indian system that focuses on plant health and solves plant problems. This paper looks closely at these ideas with modern plant science and integrated disease management.

It compares explanations and proven mechanisms that come from experiments. A systematic review of literature was made following the PRISMA 2020 rules. It covered texts and new peer-reviewed papers about Vrikshayurveda, plant health ways to manage plant diseases, Kunapa jala, Panchagavya, botanical mixes, and farming that is sustainable. The work shows that many Vrikshayurveda methods are very similar to ways of keeping plants healthy. Examples include treating seeds, controlling soil and water using fertilizer, using plant-based defenses, and spotting visible signs quickly. Studies have measured how particular Vrikshayurveda mixes affect seed sprouting, plant growth, body functions, yield, and chemical traits of plants. A 2024 study also showed that Vrikshayurveda descriptions of diseases can be turned into a rule-based expert system to identify plant diseases. However, the similarities should not be taken as matches. Words like Nija, Agantu, Vata, Pitta, and Kapha belong to an explanatory system and should not be assumed to be the same as fungi, bacteria, viruses, worms, or environmental problems. Major gaps in evidence include lack of dose proof that the botanicals are the correct dose, dose-response data, studies on how the mixtures work, tests that are specific to each pathogen, trials in many locations, and repeatability of results. The paper offers a plan that blends old knowledge with plant chemistry, disease research, soil microbes, plant body science, and DNA testing. Vrikshayurveda should mainly be viewed as a source of knowledge and ideas that can be tested, not as a replacement for modern disease diagnosis. This plan can help create research that's sustainable, culturally relevant, and based on proof for plant health.

वास्तुशास्त्रदिशा पञ्चतत्त्वानां विवेचनम्।

चारुदत्तः हरीहरः अपराजितः

वास्तुशास्त्रं प्राचीनभारतीयवास्तुकलायाः एवञ्च विज्ञानस्य महत्त्वपूर्णविषयो वर्तते, तद् मन्दिरगृहनिर्माणादिकार्ये उपयुक्तं भवति। भारतीयसंस्कृतौ मन्दिरस्य गृहस्य च विशेषं स्थानम् अस्ति। संस्कृतौ सर्वमपि वस्तु वैज्ञानिक-आध्यात्मिक-सांस्कृतिकदृष्ट्या दृश्यते। वास्तुशास्त्रे कला, विज्ञानम्, खगोलशास्त्रं ज्योतिषं च इति विविधानां विषयाणां समन्वयः दृश्यते, तथा च विविधाः ऊर्जाः शक्तयः च इह विज्ञायन्ते, यथा ब्रह्माण्डीय-ऊर्जा, गुरुत्वाकर्षणशक्तिः, विद्युच्चुम्बकीयतरङ्गाः च।

भारतीयशास्त्रानुसारं सम्पूर्णं ब्रह्माण्डं पञ्चमूलतत्त्वैः (पृथिवी, आपः, तेजः, वायुः, आकाशः) निर्मितम् अस्ति। अस्माकं मानवशरीरमपि एतैः पञ्चभिः तत्त्वैः एव निर्मितं वर्तते। वास्तुशास्त्रे मन्यते यद् बाह्यवातावरणे तथैव अस्माकं आन्तरिकजीवने एतेषां पञ्चतत्त्वानां सन्तुलता आवश्यकम् अस्ति। यदा पञ्चमहाभूतेषु असन्तुलता भवति, तदा मानवस्य जीवने विविधाः समस्याः तथा च नकारात्मकता उत्पन्ना भवितुमर्हन्ति।

अतः वास्तुशास्त्रं मनुष्याय पञ्चमहाभूतैः सह सन्तुलतां संस्थाप्य जीवनयापनस्य शिक्षां ददाति । अस्य मुख्यम् उद्देश्यं मनुष्यस्य तस्य प्राकृतिकवातावरणस्य च मिथः सन्तुलतासकारात्मकतास्थापनमिति। अस्मिन् शोधपत्रे मुख्यतः वास्तुशास्त्रानुसारं पञ्चमहाभूतानां महत्त्वं प्रतिपादयिष्यते, मन्दिरे गृहे तथा भवने पञ्चमहाभूतानां महत्त्वम्, पञ्चतत्त्वानुसारं शरीरम् एवञ्च वास्तु इत्यस्य सम्बन्धः, वास्त्वनुसारं पञ्चतत्त्वानां वैज्ञानिकमहत्त्वं, प्रासङ्गिकता तथा पञ्चमहाभूतदेवतानां विषयपि अध्ययनम् अस्मिन् पत्रे करिष्यते।

The Role of Vedic Mathematics in Increasing Calculating Speed and Accuracy

DR. AMRITA SINGH

Vedic Mathematics, an old and unique system of mathematical techniques derived from the Vedas, offers an efficient approach to arithmetic calculations. This article will throw light on the impact

of Vedic Mathematics in increasing calculating speed and accuracy in comparison to conventional methods. The system, based on 16 Sutras (principles) and 13 sub-sutras, provides simplified and unique strategies for performing complex calculations, reducing errors. By using these techniques, students and others can improve their problem-solving abilities, making arithmetic faster and more efficient. This article highlights various applications of Vedic Mathematics in fields such as engineering, computer science, and finance, demonstrating its effectiveness in optimizing numerical computations

प्राचीनसंस्कृतवाङ्मये छायाव्यवहारः – एकं वैज्ञानिकमध्ययनम्

रेखा शीटः

प्राचीनभारतीयपरम्परायां ज्ञाननिधिः अत्यन्तं समृद्धः आसीत्। तस्मिन् समये एतस्याः ज्ञाननिधेः प्रकाशमाध्यमासीत् संस्कृतभाषा। संस्कृतभाषा न केवलं भाषा, एषा भारतस्य प्राचीनसंस्कृतेः आकरस्वरूपा। इयं भारतस्य आत्मनः प्रज्ञायाः च स्वरः अस्ति। संस्कृतम् अस्माकं देशस्य भूतवर्तमानकालयोर्मध्ये संयोगं स्थापयति, अपि च भविष्यस्य मार्गं प्रसारयति। अस्यां भाषायां जीवनस्य प्रत्येकं क्षेत्रं समाविष्टमस्ति। यथा- विज्ञानम्, तन्त्रज्ञानम्, कृषिः, शिल्पकला, खगोलविज्ञानम्, वास्तुकला, आयुर्वेदः, गणितम्, अर्थशास्त्रम्, नाट्यशास्त्रञ्च। भारतीयविज्ञानपरम्परायां ऋषिभिः तथा वैज्ञानिकैः प्रकृतेः सूक्ष्मनिरीक्षणं कृत्वा स्वकार्याणि साधितानि। प्रकृतेः स्वाभाविकीं भोतिकीं च प्रक्रियां यन्त्रवद् परिकल्प्य तस्याः साहाय्येन गणितं खगोलविज्ञानमादिकं साधितवन्तः। एतादृशं प्रकृतेः अन्यतममुल्यसम्पदं भवति 'छाया' (Shadow)। संस्कृतवाङ्मये छाया इति पदं न कश्चित् साधारणविषयः। वस्तुतः छाया एका स्वाभाविकी प्रक्रिया। सूर्यस्य प्रकाशः अथवा कश्चित् प्रकाशस्रोतः यदि केनचित् वस्तुना आवृतो स्यात् तर्हि तस्य वस्तुनः पृष्ठभागे छाया निर्मियते। अत्यन्तसाधारणं प्राकृतिकविषयमिमं अस्माकं प्राचीनाचार्याः सम्यक् ज्ञात्वा विज्ञानक्षेत्रे दुरूहगणनादि कार्याणि साधितवन्तः। छायायाः वैज्ञानिकप्रक्रियया विविधाः उपयोगाः दृश्यन्ते। यथा- आर्यभट्टीयमिति ग्रन्थे गणितविज्ञाने, सूर्यसिद्धान्ते त्रिकोणमितिवर्णने, सिद्धान्तशिरोमणिव्रह्मस्फुटसिद्धान्तयोः घटीपलादिनां विवेचनापूर्वकं समयनिर्धारणे दिशाविभाजने च, खगोलशास्त्रे भू-छायया ग्रहणादिनां विश्लेषणे, आयुर्वेदे रिष्टलक्षणप्रसङ्गे, शिल्पकलायां छायानाटके, विष्णुपुराणादिषु पुराणसाहित्येषु सूर्यस्य द्वितीयपत्नीरूपे, काव्यसाहित्ये अपि कालिदासदिभिः प्रतिबिम्बरूपे छायायाः विविधाः वैज्ञानिकप्रयोगाः दृश्यन्ते। प्रस्तुते शोधलेखे प्राचीनसंस्कृतवाङ्मये छायाव्यवहारः एकं वैज्ञानिकमध्ययनमिति विषयमधिकृत्य छायायाः प्रयुक्तिवैज्ञानिकता, आधुनिकोपयोगिता तथा भाव्यानुसन्धानस्य क्षेत्राणि विविच्यन्ते।

प्राचीन भारतीय ज्ञान परंपरा मे वस्त्र निर्माण परंपरा

कु. जागृती गोपाल महाजन, डॉ. अखिलेश अ. शर्मा

प्राचीन भारतीय ज्ञान परंपरा ज्ञान, विज्ञान, कला, शिल्प एवं जीवन-मूल्यों का समन्वित स्वरूप प्रस्तुत करती है। इस परंपरा में वस्त्र निर्माण केवल शरीर को आवरण प्रदान करने की आवश्यकता नहीं था, बल्कि यह वैज्ञानिक ज्ञान, तकनीकी कौशल, सामाजिक व्यवस्था, आर्थिक गतिविधि तथा सांस्कृतिक अभिव्यक्ति का महत्वपूर्ण माध्यम था। प्रस्तुत शोध में प्राचीन भारतीय वस्त्र निर्माण परंपरा का ऐतिहासिक, तकनीकी एवं सांस्कृतिक दृष्टि से अध्ययन किया गया है।

वैदिक साहित्य, रामायण, महाभारत, बौद्ध एवं जैन साहित्य, कौटिल्य के अर्थशास्त्र तथा पुरातात्त्विक साक्ष्यों में वस्त्र, तंतु, सूत, बुनाई, रंगाई एवं वस्त्र निर्माण से संबंधित अनेक उल्लेख प्राप्त होते हैं। इस अध्ययन में कपास, ऊन, रेशम, सन आदि प्राकृतिक रेशों के उपयोग तथा उनसे सूत एवं वस्त्र निर्माण की प्रक्रियाओं का विश्लेषण किया गया है। कताई, बुनाई, ताना-बाना, प्राकृतिक रंगों का प्रयोग तथा वस्त्रों के अलंकरण में विकसित पारंपरिक तकनीकी ज्ञान विशेष अध्ययन का विषय है। वनस्पतियों, पुष्पों, वृक्षों एवं खनिज पदार्थों से रंग प्राप्त करने की पद्धतियाँ प्राचीन भारतीय पर्यावरण-संवेदनशील दृष्टिकोण को भी प्रदर्शित करती हैं।

शोध का प्रमुख उद्देश्य प्राचीन भारतीय ग्रंथों एवं पुरातात्त्विक प्रमाणों के आधार पर वस्त्र निर्माण में निहित वैज्ञानिक एवं तकनीकी ज्ञान का विश्लेषण करना तथा वर्तमान संदर्भ में उसकी प्रासंगिकता को स्पष्ट करना है। अध्ययन से

ज्ञात होता है कि भारतीय वस्त्र परंपरा में स्थानीय संसाधनों का विवेकपूर्ण उपयोग, हस्तकौशल, टिकाऊ उत्पादन तथा प्रकृति के साथ सामंजस्य जैसे महत्वपूर्ण तत्व विद्यमान थे।

अतः प्राचीन भारतीय वस्त्र निर्माण परंपरा केवल ऐतिहासिक विरासत नहीं, बल्कि ज्ञान, विज्ञान, कला, अर्थव्यवस्था एवं पर्यावरणीय चेतना से निर्मित एक समग्र ज्ञान प्रणाली है। इसका पुनर्मूल्यांकन आधुनिक सतत् वस्त्र उद्योग के लिए महत्वपूर्ण दिशा प्रदान कर सकता है।

प्राचीन भारतीय ज्ञान परंपरा मे वस्त्र निर्माण परंपरा

डॉ.अखिलेश अ. शर्मा, कु. जागृती गोपाल महाजन

प्राचीन भारतीय ज्ञान परंपरा में वस्त्र निर्माण केवल जीवनोपयोगी आवश्यकता तक सीमित न रहकर भारतीय सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, वैज्ञानिक एवं आध्यात्मिक जीवन का एक महत्वपूर्ण अंग रहा है। भारतीय सभ्यता में वस्त्र निर्माण की परंपरा अत्यंत प्राचीन है, जिसके प्रमाण वैदिक साहित्य, रामायण-महाभारत, बौद्ध एवं जैन साहित्य, कौटिल्य के अर्थशास्त्र, पाणिनीय परंपरा तथा विभिन्न पुरातात्त्विक एवं ऐतिहासिक स्रोतों में प्राप्त होते हैं। प्रस्तुत शोध में प्राचीन भारत में वस्त्र निर्माण से संबंधित ज्ञान, तकनीक, कच्चे माल, कताई, बुनाई, रंगाई, अलंकरण तथा वस्त्रों के सामाजिक एवं सांस्कृतिक महत्त्व का अध्ययन किया गया है।

भारतीय परंपरा में कपास, ऊन, रेशम, सन आदि प्राकृतिक रेशों के उपयोग के साथ-साथ उनसे सूत निर्माण एवं वस्त्र बुनने की विकसित तकनीकों का उल्लेख मिलता है। चरखा, करघा, तंतु, सूत, ताना-बाना, रंगाई तथा प्राकृतिक रंगों के प्रयोग से संबंधित पारंपरिक ज्ञान भारतीय शिल्प परंपरा की वैज्ञानिक दृष्टि को प्रदर्शित करता है। वनस्पतियों, पुष्पों, वृक्षों एवं खनिज पदार्थों से प्राकृतिक रंग प्राप्त करने की तकनीक पर्यावरण-अनुकूल ज्ञान प्रणाली का महत्वपूर्ण उदाहरण है। वस्त्र निर्माण में प्रयुक्त विभिन्न प्रक्रियाओं के पीछे स्थानीय भौगोलिक परिस्थितियों, जलवायु, उपलब्ध प्राकृतिक संसाधनों तथा समुदाय-आधारित कौशल का प्रभाव भी दिखाई देता है।

इस अध्ययन का प्रमुख उद्देश्य प्राचीन भारतीय ग्रंथों एवं पुरातात्त्विक साक्ष्यों के आधार पर वस्त्र निर्माण परंपरा में निहित पारंपरिक ज्ञान एवं तकनीकी कौशल का विश्लेषण करना तथा वर्तमान संदर्भ में उसकी प्रासंगिकता को रेखांकित करना है। अध्ययन के माध्यम से यह स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है कि भारतीय वस्त्र परंपरा में स्थानीय संसाधनों का विवेकपूर्ण उपयोग, प्राकृतिक रंगों का प्रयोग, टिकाऊ उत्पादन, कौशल-आधारित अर्थव्यवस्था तथा पर्यावरण के साथ सामंजस्य जैसे आधुनिक संकल्पनाओं से संबंधित अनेक तत्त्व पूर्वकाल से विद्यमान है ।

प्रस्तुत शोध यह प्रतिपादित करता है कि प्राचीन भारतीय वस्त्र निर्माण परंपरा केवल हस्तशिल्प की ऐतिहासिक विरासत नहीं, बल्कि ज्ञान, विज्ञान, कला, पर्यावरण-संवेदनशीलता और सामाजिक अर्थव्यवस्था के समन्वय से विकसित एक समग्र ज्ञान प्रणाली है। अतः इस परंपरा का दस्तावेजीकरण, वैज्ञानिक पुनर्व्याख्या तथा आधुनिक टिकाऊ वस्त्र उद्योग के संदर्भ में पुनर्स्थापन करना आवश्यक है। यह अध्ययन भारतीय ज्ञान परंपरा की वैश्विक प्रासंगिकता को समझने तथा पारंपरिक वस्त्र तकनीकों के संरक्षण एवं पुनरुज्जीवन के लिए एक आधार प्रस्तुत करता है।

Free Food for All - Food as Birth Right

Mr. Sachin Sureshrao Magar

Food is one of the prime necessities of a man and is vital for survival of a human being. In today s era, food is linked with labour and food for labour is considered as the socioeconomic arrangement of the society. Looking at the today s problems in the global society like poverty, unemployment, unequal distribution of money and food, hunger etc. the current food for labour concept doesn t seems to solve these critical problems. There is solution proposed by great economist, philosopher, thinker from India Dr. R. P. Parnerkar - the concept of "food for all as a birthright" in his treatise Poornawadi Economics . This is rooted in the belief that access to sufficient and nutritious food should be considered a fundamental human right, available to

everyone from the moment of birth. Entire food production of the world, which can feed everyone, should be given free. Food should not be the wages of labour. This philosophy emphasizes that no individual should go hungry due to social, economic, or political reasons. While this idea has strong ethical and moral foundations, and is need of today s world to resolve the above-mentioned problems. Philosophy of food could be different for different people but I think its way of life as food is one of the very few things which are important for our life. Human life itself is an economic activity as production and reproduction are both economic activities. As long as the principle of Food in exchange for labour would be part of man s economics; his concern for food, instead of diminishing, be ever increasing. This is real hostile to man s interest. This arrangement of society on the foundation of food for labour is an insult to humanity. That is problem statement that economics is considering food in exchange of labour. The economic value of food vis-a vis air and water for man s sustenance is about the same. Food has need of more labour as compare to air or water. No other commodity in the world has true economic value like grains and because grains are treated as the return of business, and its linkage directly or indirectly, to the exchange of everything else resulted in its rising prices. And today s problem arose. The real economic value of the grain is unaffected. It is stable. It doesn t change or fluctuates like other commodities. Gold and silver as necessities has zero economic value. Also, the utilities produced today because of civilization have little economic value as compares to grains. Man would die if he doesn t get food, it is not the same in case of clothing, gold silver or other utilities. If we want to index the economical values then grain has 100%, water -75%, land 50%, cloth 20% compared to real values of grains. Utilities coming in the train of civilization would be the less than 20%. Agriculture is the only fertile industry in the world. It has capacity to reap a few hundred to thousand seeds from every seed that is sown in the earth. If we compare agriculture with today s machine then we can say that, it s the only machine whose output is hundreds time than the input. It means, where nature itself has its virtue- growth, there should be no problem at all feeding earth s population. It is a big mistake and urge to make high profitability out of agriculture and allied food. The earth as planet even today produces much more than what would be needed to feed every human. And I am sure even if we consider the increasing population, the food production can always be increased proportionally. Food has social meaning and social significance beyond its nutritive function. We can see that food has Philosophical and Ethical consideration as below: a. Human dignity b. Social Justice c. Necessity for survival and well-being. Therefore, the unique thought proposed by Dr. Parnerkar strongly suggests that, Food for all has to be offered as free of cost. If food is available to man as his birth-right, the available demand for labour would be made by providing employment to everyone, turn by turn. Everyone would have scope to utilize his talents for the world. Only by excluding food as return of labour, many a question of economics can be solved today. Now time has come where focus should change, and we should not treat basic food requirement as a revenue generation industry. Man shall not become lazy if food as a necessity be offered to him free of cost. Instead, he correctly reasons that if man s necessities are secured his productivity would rather increase. There are many other global challenges we are facing like global warming, environmental imbalance, side effects of Artificial Intelligence and IoT s etc. and this man power can be utilized to address these problems and provide the sustainable solutions. Also in the present situation, food doesn t mean everything. Man s day today needs have been multiplied, the innumerable commodities of human comfort are available in the market and in order to meet those needs he will have to work. If we see some utilities for e.g. Cars, TV, washing machine, refrigerator etc at other s places then we also urge to buy it and we will have to work.

Free food will certainly help to solve the problem of sustenance and the man can t stop here and he has to work to fulfill other desires in today s world. The ideal of economics that, the man should sustain on his labour, is becoming no more valid today. We will definitely able to see the positive magnitudes as below: -Improved Health -Enhanced Productivity -Social Stability -Long-Term Benefits I would like to give a brief about the implementation of this concept Free Food for All. If agriculture as business and there is compulsory farming, even then, just because food grain is produced in fields, it doesn t reach to individuals. So, Government of every country has to play major role in the food distribution. Distribution network can be made smart and very strong by using today s latest technologies such as Trains, Autonomous vehicle, Electric or Hydrogen Vehicles, GPS System etc. The purpose would be faster and cheaper transportation of food grains and products to the whole country. and When we say free food then distributing only food grains as free won t suffice the purpose as there are many other things required along with grains like salt, chillies, cooking gas, oils etc needs to be considered in free food. Central Government of the country has to play prime role in this activity. Today we see that farmers from most of the countries are under protest for various reasons but their main demand is to have legal assurance for Minimum Support Price (MSP). The MSP is the price at which Govt. promises to purchase agriculture produce from farmers. All the points about the implementation of this concept can t be covered here but you can always refer to the book Poornawadi Economics by Dr. R.P. Parnerkar. Today, the economic system should be created with a global perspective. We know that, the mother earth has limited fertile land and there is also limit to the productivity of the land. In 2050, Earth is predicted to be the home of more than 9 billion people. To feed all these people the United Nations estimates that we need to double our food production. This is an enormous challenge for the food system in the coming decades. But this is really due to mind blogging flood of utilities, problem of currency and the paucity of demand of labour. Rather than basic deliberations formulating a solution for this, the horrific nature of the population growth, limited land and limited production have been grossly exaggerated and have created false impression the manifestation of which is the strain referred as above. This leads to the worst recommended measured like birth control and today we can see the disadvantages of this in the countries like China. They have to revoke the birth control decision and understand that the problem is somewhere else and not in the population. Initially, the concept of free food can be considered in the countries where both the activities like agriculture and industrial production exist. While saying that, I must clear that it is not restricted to specific area or region but can be applied to the whole world. After post covid era, all the equations have been changed. Now, if any country has surplus production of food/grains then the other countries suffering from stark, hunger has fundamental right to demand the food from that country. That is why, it is also important to consider the humanity factor while we are discussing the economic system for the world because it is for living human and for his life. Conclusion: In this year of World Congress of Philosophy, our tag line is Philosophy beyond boundaries and in view of it, the concept proposed by Dr. R. P. Parnerkar in this paper is fully in line with it and should be taken beyond boundaries for implementations. In true sense this thought of food for all as birthright is considered for entire human race and has power to create global economic system. It certainly goes beyond the limitations of today s economic systems and has the capabilities of steering the economics which is fettered today between labour and returns of labour and can show new direction and takeoff to newer horizons. The human community can be flourished and the complex problems such as currency, bringing down the unusual importance of money in man s personal life, hunger etc. can

be really addressed and solved. This will certainly help to achieve the goal of man should be free to live in a way he likes and he should get the full satisfaction of happy and contented life. The main hypothesis of Poornawad states that, to live and to live one s own choice are two main basic instincts of man and they can t be neglected under any circumstances.

Analysis of Jyotisha and Vastu symbolisms in Ancient Chalukyan Architecture in Badami-Aihole regions

Bommadevara Vishnu Vardhan

Today, tourists all around the world visit Badami, Pattadakal and Aihole to exploring the mesmerizing Ancient Chalukyan Architecture which captivates the view of tourists and astonishes researchers that how these structures had survived for more than 1400 years facing corrosion, wars, sacking, climate changes, and other factors. In 1987, Pattadakal has become a UNESCO World heritage site.

In this research paper, we will analyze about the Jyotisha and Vastu symbolisms used in the Ancient Chalukyan architectures such as Surya's iconography with riding over seven horses' chariot and Chandra's iconography in Badami and Pattadakal, Surya iconography near on Panchalingapahadi Temple, etc. Alongside, the Vastu symbolisms such as Dikpalas, Vastu architecture used for construction of the Temples and Fort through the classical Vastu and Samhita texts such as Samaranganasutradhara, Aparajitapriccha, Manasasara, Brihat Samhita and Kautilya Arthashastra which gives us a vivid description about the construction of forts, temples and sculptures with the ratios for the size of creation of various deities' sculptures, iconography, temples, construction and fortification of forts and temple styles such as Nagara, Dravida and Vesara. This will also provide a deep insight about the construction techniques which are used for the architecture and design helpful for development of new innovative research for designs and iconographies.

TREE CONSIOUSNESS IN ANCIENT SANSKRIT LITERATURE

Dr. Jayanisha K.

The environmental awareness now is the reaction to the chaos caused by the greedy technological achievements towards environment. At present humanists are thinking about environmental issues as people are suffering from problems such as pollution of air and water, population growth etc. On the other side, ancient people were much concerned about the environment even though they did not face the problems related to it. So, not so acute dimensions as seen today, still they were aware of their environment. Key words Environment, literature, Pur na, Tree, V Sanskrit has contributed a lot to literature, culture, art forms, science and technology. Its contribution in the field of astronomy, mathematics, chemistry, medical science and sculpture are also noteworthy. In the field of Botany also its contribution is worthy enough. Here an attempt is made to find out the contributions made by Sanskrit in the field of Botany especially connected with the study of trees.

वास्तुशास्त्रदिशा पञ्चतत्त्वानां विवेचनम्

चारुदत्तः हरीहरः अपराजितः

वास्तुशास्त्रं प्राचीनभारतीयवास्तुकलायाः एवञ्च विज्ञानस्य महत्त्वपूर्णविषयो वर्तते, तद् मन्दिरगृहनिर्माणादिकार्ये उपयुक्तं भवति। भारतीयसंस्कृतौ मन्दिरस्य गृहस्य च विशेषं स्थानम् अस्ति। संस्कृतौ सर्वमपि वस्तु वैज्ञानिक-आध्यात्मिक-सांस्कृतिकदृष्ट्या दृश्यते। वास्तुशास्त्रे कला, विज्ञानम्, खगोलशास्त्रं ज्योतिषं च इति विविधानां विषयाणां

समन्वयः दृश्यते, तथा च विविधाः ऊर्जाः शक्तयः च इह विज्ञायन्ते, यथा ब्रह्माण्डीय-ऊर्जा, गुरुत्वाकर्षणशक्तिः, विद्युच्चुम्बकीयतरङ्गाः च।

भारतीयशास्त्रानुसारं सम्पूर्णं ब्रह्माण्डं पञ्चमूलतत्त्वैः (पृथिवी, आपः, तेजः, वायुः, आकाशः) निर्मितम् अस्ति। अस्माकं मानवशरीरमपि एतैः पञ्चभिः तत्त्वैः एव निर्मितं वर्तते। वास्तुशास्त्रे मन्यते यद् बाह्यवातावरणे तथैव अस्माकं आन्तरिकजीवने एतेषां पञ्चतत्त्वानां सन्तुलता आवश्यकम् अस्ति। यदा पञ्चमहाभूतेषु असन्तुलता भवति, तदा मानवस्य जीवने विविधाः समस्याः तथा च नकारात्मकता उत्पन्ना भवितुमर्हन्ति।

अतः वास्तुशास्त्रं मनुष्याय पञ्चमहाभूतैः सह सन्तुलतां संस्थाप्य जीवनयापनस्य शिक्षां ददाति । अस्य मुख्यम् उद्देश्यं मनुष्यस्य तस्य प्राकृतिकवातावरणस्य च मिथः सन्तुलतासकारात्मकतास्थापनमिति। अस्मिन् शोधपत्रे मुख्यतः वास्तुशास्त्रानुसारं पञ्चमहाभूतानां महत्त्वं प्रतिपादयिष्यते, मन्दिरे गृहे तथा भवने पञ्चमहाभूतानां महत्त्वम्, पञ्चतत्त्वानुसारं शरीरम् एवञ्च वास्तु इत्यस्य सम्बन्धः, वास्त्वनुसारं पञ्चतत्त्वानां वैज्ञानिकमहत्त्वं, प्रासङ्गिकता तथा पञ्चमहाभूतदेवतानां विषयपि अध्ययनम् अस्मिन् पत्रे करिष्यते।

संस्कृत काव्यों में 'पारिस्थितिकीय चेतना' : जल और अरण्य संस्कृति के विशेष संदर्भ में”

प्रो. राजेश कुमार

प्रस्तुत शोध-पत्र वर्तमान वैश्विक पर्यावरण संकट के दौर में प्राचीन भारतीय वाङ्मय की प्रासंगिकता को स्पष्ट करने का एक अकादमिक प्रयास है, जिसके अंतर्गत संस्कृत महाकाव्यों में निहित पारिस्थितिकीय चेतना का गहन अन्वेषण किया गया है। मुख्य रूप से जल और अरण्य संस्कृति पर केंद्रित यह अध्ययन, वैदिक साहित्य से लेकर कालिदास और अन्य कवियों की कालजयी कृतियों में प्रकृति-मानव संबंध को पारिस्थितिक दृष्टिकोण से प्रस्तुत करता है। निष्कर्ष में बताया जा रहा है कि संस्कृत साहित्य प्रकृति को एक सचेतन, जीवंत और दैवीय सत्ता के रूप में प्रतिष्ठित करता है, जहाँ 'अभिज्ञानशाकुंतलम्' “न पातुं प्रथमं व्यवस्यति जलं युष्माष्वपीतेषु या...” में शकुंतला का वृक्षों के प्रति सहोदर भाव अरण्य संस्कृति की पराकाष्ठा है और 'आपः' (जल) को माता मानकर जल संरक्षण की भावना निहित है, जल संस्कृति में "शं नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये..." यह मंत्र जल के दिव्य और कल्याणकारी रूप को प्रतिपादित करता है।

यह शोध प्रमाण प्रस्तुत करता है कि आधुनिक पर्यावरणीय विभीषिका का स्थायी समाधान संस्कृत काव्यों में वर्णित इस अरण्य-जल संस्कृति के पुनरुद्धार में निहित है, जो मनुष्य को प्रकृति का संरक्षक बनने की प्रेरणा देती है।

Vastu Purush Mandala- A Sacred Geometry

Mrs Rupal Gautam Shah, Dr. Prasad Gokhale

The Vastu Purush Mandala is a grid plan designed by the ancient seers for planning, from a fire pit for holy offerings to villages and towns for proper functioning, taking care of the universe, the panch mahabhuta and human geometry.

A mandala system which cares about the health of humankind

Present systems use three of the most common pada vastu mandalas for temples and dwellings: chatu:shasti pada, Ekashiti pada and Shat Pada Vastu mandala.

The pada provides minute details of the construction in connection with ten directions and five natural elements. The details are followed by plotting the Vastu Purush within the grid, including all the bodily parts and internal organs and their connection with the dwelling.

Catuḥśālā Houses in the Mayamata: Forms, Principles and Architectural Significance

Dr. Ripan Ghosh

The Mayamata, an important Sanskrit treatise on vāstu of the Southern tradition, provides a detailed account of traditional Indian principles of architecture. Among its various descriptions, the śālāvidhāna section describes different types of houses depending on the number, arrangement, and configuration of their principal buildings. The term śālā itself denotes a room, hall, pavilion, or house, while śālāvidhāna broadly refers to the prescribed principles of house construction. This study especially examines the catuḥśālā, or four-main-building house, with particular attention to its five principal forms: Sarvatobhadra, Vardhamāna, Nandyāvarta, Svastika, and Rucaka. The Sarvatobhadra, meaning 'auspicious on all four sides,' is a proportional and well-developed four-sided shape. While the Vardhamāna, Nandyāvarta, and Svastika derive their identities from distinctive arrangements of verandahs and interconnected building elements. The Rucaka is distinguished by its corner connections, stairways, and specific roof construction.

This study analyses the architectural characteristics of these five types of four-main-building house, including their courtyards, verandahs, galleries, entrances, partitions, pillars, stairways, roof forms, gables, latticed windows, and decorative elements. The discussion also considers the directional orientation of entrances and prescribed suitability of particular house forms for Brahmins, kings, merchants, Śūdras, and other social groups.

By examining the descriptions in the Mayamata alongside references from the Bṛhatsaṃhitā, Mānaśāra, Matsyapurāṇa, Kāmikāgama, and other related texts, this paper argues that the catuḥśālā was not merely a method of arranging buildings but rather a comprehensive architectural system in ancient India. To this end, the paper also provides a comparative analysis of the different perspectives presented in the Vāstu texts.

Can Artificial Intelligence Understand Rasa? Exploring the Limits of AI in Interpreting Indian Aesthetics

Himesh Baboolall1, Sagrika Singh3, Manish Arora2

Generative Artificial Intelligence (GAI) has changed the process of creating and understanding visual art, and questions have been raised about its ability to evoke culturally rooted aesthetic concepts. This paper explores the potential of AI to extend the interpretation of Rasa beyond the recognition of emotions and the reproduction of visual symbols to truly grasp this concept in Indian aesthetics. Based on the principles of the *Nāṭyaśāstra* from Bharata Muni and the interpretation of the Rasa by Abhinavagupta, this research investigates the difference between the representation of emotion and the realization of aesthetic experience in the context of AI-generated visual art and the representation of *Navarasas* in the broader context of Indian Knowledge Systems.

Taking a qualitative and conceptual approach, the study examines classical Indian aesthetic theory through textual analysis and reviews the current literature on emotion recognition in AI, computational aesthetics and generative aesthetic production. A comparative framework is established to explore the connection between visual representation, emotional interpretation, and aesthetic experience. The analysis emphasizes a basic difference between computational detection of signs of emotion and understanding the aesthetic aspects of Rasa. The classical Indian aesthetics of *Vibhāva*, *Anubhāva* and *Vyabhicāribhāva*, as it has been described, offers a more complex interpretative context. The study contends that the aesthetic experience cannot be completely reduced to emotion classification, and the importance of the cultural context, the expressive forms,

and the spectator's involvement is highlighted. This paper introduces a culturally informed approach to AI-generated art and explores the interpretative constraints of AI in the context of Indian aesthetics and the potential role of indigenous knowledge systems in modern technological debates.

Keywords: *Rasa Theory; Artificial Intelligence; Indian Aesthetics; Navarasa; Indian fine arts*

Heritage, Symbol and Identity: The Cultural Dynamics of Gujarat's Patola

Author: Km. Preeti Chauhan

इस शोध के सार में मैंने गुजरात के पाटन शहर की के प्रसिद्ध पारंपरिक परिधान "पटोला" की सांस्कृतिक विरासत का वर्णन किया है, जिसके अंतर्गत पटोला के सामाजिक एवं सांस्कृतिक महत्व को बनाए रखने हेतु किए जा सकने योग्य प्रयासों को दृष्टि में लाने का प्रयास किया है।

Research Parameters (Introduction)

यह अध्ययन गुजरात के पाटन शहर के साल्वी समुदाय के कारीगरों द्वारा निर्मित पटोला साड़ी के सांस्कृतिक महत्व का वर्णन करता है। इसके अन्तर्गत डबल इकत तकनीक का प्रयोग किया जाता है जिसमें ताने एवं बाने के धागों को डिजाइन के अनुसार बांधकर प्राकृतिक रंगों का प्रयोग करके करघे पर इस प्रकार बुना जाता है कि वस्त्र के दोनों तरफ एक समान डिजाइन उभर कर आए।

इस अध्ययन का मुख्य उद्देश्य पारंपरिक विवाह एवं अनुष्ठानों में पटोला के माध्यम से सामाजिक अपनेपन एवं पारिवारिक प्रतिष्ठा का निर्माण करना है।

Methodology

इस शोध-पत्र में गुणात्मक पद्धति, वर्णनात्मक विश्लेषण एवं तुलनात्मक पाठ्य विश्लेषण पद्धति का उपयोग किया गया है।

इसमें दिखाया गया है कि कैसे गुजरात के पारंपरिक पटोला की विरासत को सुरक्षित रखा जाए।

Data & Findings

पूर्व शोध पत्रों एवं अन्य पाठ्य-पुस्तकों के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि पटोला मात्र एक साड़ी ही नहीं अपितु यह गुजरात के वैभव, समृद्धि एवं सांस्कृतिक विरासत का प्रतीक है। हम सभी विवाहों और धार्मिक अनुष्ठानों में इसका उपहार स्वरूप आदान-प्रदान करके बचाए रख सकते हैं।

Conclusion

इस शोध से यह निष्कर्ष निकलता है कि पटोला आदि पारंपरिक स्वदेशी शिल्प एवं बुनकरों का संरक्षण कितना अधिक आवश्यक है। हम सभी के एक सूक्ष्म और सरल प्रयास के माध्यम से इस कला को जीवित रखा जा सकता है।

Keywords : साल्वी समुदाय (Salvi Community), सांस्कृतिक विरासत (Cultural Heritage), पारंपरिक परिधान (Traditional Textile), पटोला साड़ी (Patola Saree)

1.

पूर्वी उत्तर प्रदेश का लोक संगीत : परम्परा, लोकचेतना और सांस्कृतिक निरन्तरता

Archana Tiwari

लोक संगीत भारतीय लोकपरम्परा की एक महत्त्वपूर्ण सांस्कृतिक अभिव्यक्ति है, जिसमें समाज के सामूहिक अनुभव, भावनाएँ, विश्वास, जीवन-मूल्य और परम्पराएँ स्वरबद्ध रूप में अभिव्यक्त होते हैं। प्रस्तुत शोध-पत्र का उद्देश्य पूर्वी उत्तर प्रदेश के लोक संगीत का अध्ययन लोकजीवन, लोकवृत्ति, लोक रुचि तथा सांस्कृतिक निरन्तरता के परिप्रेक्ष्य में करना है। इस अध्ययन में लोक संगीत की अवधारणा, उसके उद्भव एवं विकास तथा लोक संस्कृति के साथ उसके अंतर्सम्बन्धों को प्रमुख आधार बनाया गया है।

प्रस्तुत शोध में वर्णनात्मक एवं विश्लेषणात्मक पद्धति के माध्यम से उपलब्ध साहित्यिक सामग्री और लोक संगीत से सम्बन्धित वैचारिक दृष्टिकोणों का अध्ययन किया गया है। इसमें पूर्वी उत्तर प्रदेश की लोकसांगीतिक परम्परा की सहजता, लोच, ताजगी, लोकप्रियता तथा सामाजिक जीवन से उसकी निकटता को विशेष रूप से रेखांकित किया गया है। जन्म, विवाह, पर्व-त्योहार, ऋतु परिवर्तन और विभिन्न सामाजिक अवसरों पर प्रचलित लोकगीतों के संदर्भ में यह समझने का प्रयास किया गया है कि लोक संगीत किस प्रकार जनसामान्य की भावनाओं और सामूहिक चेतना को अभिव्यक्ति प्रदान करता है।

अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि लोक संगीत केवल मनोरंजन का साधन नहीं, बल्कि सांस्कृतिक स्मृतियों, सामाजिक परम्पराओं और क्षेत्रीय पहचान के संरक्षण का भी महत्त्वपूर्ण माध्यम है। मौखिक परम्परा के माध्यम से इसका पीढ़ी-दर-पीढ़ी संचरण सांस्कृतिक निरन्तरता को बनाए रखता है, जबकि बदलती सामाजिक परिस्थितियाँ इसके स्वरूप में परिवर्तन भी लाती हैं। अतः पूर्वी उत्तर प्रदेश का लोक संगीत परम्परा और परिवर्तन के समन्वय का प्रतिनिधित्व करते हुए भारतीय लोक संस्कृति की जीवंतता तथा क्षेत्रीय सांस्कृतिक चेतना को समझने का महत्त्वपूर्ण आधार प्रस्तुत करता है।

Hare Krishna Mahamantra and Sankirtan Yoga: A Critical Study of Swami Sivananda's Music as Yoga

Krishna, Dr. Anjali Prabhakar

Indian musical traditions have historically served not only aesthetic purposes but also devotion, concentration, inner purification, and spiritual realization. This theoretical paper critically examines Swami Sivananda's *Music as Yoga*, with particular focus on his presentation of Sankirtan Yoga, Nama-smarana, Japa, and devotional chanting as accessible forms of Yoga Sadhana. Sivananda considers Sankirtan especially suitable for the Kali Yuga, describing it as an easy, safe, and practical means of continuous remembrance of the Divine.

The study specifically explores the spiritual significance of Nama-japa and the Hare Krishna Mahamantra—"Hare Krishna Hare Krishna, Krishna Krishna Hare Hare, Hare Rama Hare Rama, Rama Rama Hare Hare"—within the broader framework of Sankirtan Yoga. Through a critical comparison with the disciplined practice of classical Indian music involving Raga, Swara, Laya, Nada, and aesthetic refinement, the paper investigates whether spiritual transformation necessarily depends upon formal musical training or whether devotional repetition of the Divine Name can provide a more accessible pathway to concentration, remembrance, and higher consciousness.

The study is theoretical and analytical in nature, based primarily on Swami Sivananda's Music as Yoga and supported by relevant concepts from Indian philosophical and musical traditions. The analysis argues that, from Sivananda's perspective, the spiritual value of music lies not merely in musical complexity or aesthetic excellence, but in its capacity to transform consciousness. Thus, Sankirtan and Mahamantra chanting may represent a more universally accessible form of Yoga Sadhana than classical musical practice, particularly for spiritual aspirants in the Kali Yuga.

Keywords: Swami Sivananda, Music as Yoga, Sankirtan Yoga, Hare Krishna Mahamantra, Nama-japa, Nada, Indian Music, Bhakti, Yoga Sadhana, Spirituality.

The Melody of Mind - An Analytical Inquiry into Social-Emotional Learning (SEL) Frameworks Embedded within Carnatic Classical Literature and Practice

Dittakavi Gomati

While South Indian classical (Carnatic) music is routinely evaluated through its rigorous mathematical taxonomies, structural frameworks, and microtonal systems, its capacity as an indigenous pedagogical system for emotional intelligence remains under-researched. This paper bridges musicology and contemporary behavioral psychology by demonstrating how Carnatic music inherently operationalizes the five core competencies of Social-Emotional Learning (SEL). Moving from foundational training methods to institutionalized cultural settings, we provide an exhaustive behavioral and lyrical case study of Saint Tyagaraja's magnum opus, Endaro Mahanubhavulu in Sri Raga. Our analysis reveals that Carnatic musical literature is not merely an exercise in metaphysical devotion, but a highly sophisticated methodology for cognitive reappraisal, emotional self-regulation, radical empathy, and interpersonal collaboration.

भारतीय शास्त्रीय प्रदर्शन कलाओंके माध्यम से आध्यात्मिक आकांक्षाएँ और उन्नति

सृष्टी राजीव नवाथे

सार :- भारतीय शास्त्रीय प्रदर्शन कलाएँ, जिनमें हिंदुस्थानी एवं कर्नाटकी संगीत, भरतनाट्यम्,कथक और ऐसी अनगिनत संगीत और नृत्य परंपराएँ समाविष्ट है, जिन्हें लंबे समयसे आध्यात्मिक आकांक्षा और उन्नति का माध्यम माना जाता है। ये कलाएँ अभ्यासकों तथा दर्शकों को गहरी सोच-समझ, आंतरिक शांति और ईश्वरसे जुड़ने तथा उनकी भक्ती का सहज मार्ग प्रदान करती है। कठोर परिश्रम, शिक्षण और अनुशासित अभ्यास मैं तथा कला के दृष्टीकोणसे नैमित्तिक साधना तथा उपासनासे आध्यात्मिक उन्नति होती है। भारतीय शास्त्रीय प्रदर्शन कलाओं मे ईश्वर मक्ती यह एक प्रमुख अंग माना जाता है। जिनमें श्रीमद् भागवतम् (भागवत पुराण) में विश्लेषित दास्य,सख्य,वात्सल्य तथा माधुर्य जैसे भावोंसे वर्णित अनगिनत रचनाएँ समाविष्ट है।

मुख्य शब्द :- आध्यात्म, साधक के भाव, कलोपासना, ईश्वर भक्ती, पारलौकिक आनंद

वादी-संवादी: श्रुति-सम्बन्ध से स्वर प्राधान्य तक नाट्यशास्त्र से भारतखण्डे पद्धति तक एक परिभाषिक संक्रमण का अध्ययन

आदित्य गौतम, सावर सर

भारतीय संगीतशास्त्र में वादी, संवादी, विवादी तथा अनुवादी चार महत्वपूर्ण पारिभाषिक पद हैं, जिनका प्रयोग आधुनिक हिंदुस्तानी राग व्याकरण में मुख्यतः स्वर-प्राधान्य के संदर्भ में किया जाता है। सामान्यतः वादी को राग का सर्वाधिक प्रमुख अथवा 'राजा' स्वर तथा संवादी को उससे संबंधित द्वितीय प्रमुख स्वर माना जाता है। किन्तु प्राचीन भारतीय संगीत शास्त्रीय ग्रन्थों में इन पदों का आशय केवल स्वर-प्राधान्य तक सीमित नहीं था। भरत के नाट्यशास्त्र में इन पदों का सम्बन्ध स्वरों के पारस्परिक अन्तराल तथा श्रुति-सम्बन्ध से स्थापित किया गया है। इस प्रकार प्राचीन व्यवस्था में स्वर-प्राधान्य और संवादित्व एक ही सापेक्ष तन्त्र के परस्पर सम्बद्ध पक्ष दिखाई देते हैं।

प्रस्तुत शोध का उद्देश्य वादी-संवादी की पारिभाषिक अवधारणा में हुए ऐतिहासिक एवं सैद्धान्तिक परिवर्तन का अध्ययन करता है। इसके लिए नाट्यशास्त्र, दत्तिलम्, बृहद्देशी तथा संगीतरत्नाकर के सम्बन्धित प्रकरणों का पाठ-आलोचनात्मक एवं तुलनात्मक अध्ययन किया जाएगा। विशेष रूप से नाट्यशास्त्रीय नौ/तेरह श्रुति तथा दत्तिलम्-संगीतरत्नाकर परम्परा की आठ/बारह श्रुति गणना के अन्तर का परीक्षण किया जाएगा। विशेष ही साथ में कल्लिनाथ द्वारा अंश और वादी के समीकरण तथा भातखण्डे की आधुनिक हिंदुस्तानी संगीत-पद्धति में वादी के स्वर-प्राधान्यपरक अर्थ के विकास का विश्लेषण किया जाएगा।

उपलब्ध आधुनिक आलोचना में वादी-संवादी सम्बन्ध पर प्रायः प्रयोगात्मक अथवा सांख्यिकीय दृष्टि से विचार किया गया है, जबकि इन पदों के पारिभाषिक इतिहास का क्रमबद्ध अध्ययन अपेक्षाकृत कम दिखाई देता है। प्रस्तुत शोध इसी शोध-अन्तराल को केन्द्र में रखता है। अध्ययन से यह स्पष्ट करने का प्रयास किया जाएगा कि प्राचीन श्रुति-आधारित सम्बन्ध किस प्रकार क्रमशः आधुनिक स्वर-प्राधान्य की अवधारणा में परिवर्तित हुआ तथा इस परिवर्तन से राग-व्याकरण विश्लेषणात्मक क्षमता पर क्या प्रभाव पड़ा।

मुख्य शब्द — वादी-संवादी, प्रयोगात्मक, स्वर, नाट्यशास्त्र, संगीत पद्धति, दत्तिलम् बृहद्देशी, श्रुति, संगीत रत्नाकर, भातखण्डे पद्धति, पारिभाषिक संक्रमण।

गढ़वाली लोक जागरों में देवी स्तुति और दुर्गासप्तशती के श्लोकों में समानताओं का तुलनात्मक एवं सांस्कृतिक अध्ययन

अनुज पुरोहित

गढ़वाली लोक जागरों में और धार्मिक ग्रंथ दोनों में देवी शक्ति की महिमा का वर्णन अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान रखता है । लोक जागर उत्तराखंड के पर्वतीय क्षेत्रों में अपने देवी देवताओं का आवाहन करने , धार्मिक एवं अनुष्ठानों में गाए जाते हैं , वहीं दुर्गासप्तशती एक धार्मिक ग्रंथ है जिसमें देवी की उत्पत्ति, देवी की महिमा, दैत्यों का नरसंहार आदि का विस्तृत वर्णन है । जागर विभिन्न देवी- देवताओं के भिन्न-भिन्न प्रकार से गाए जाते हैं, जिसमें देवताओं की कथा को गीतों के माध्यम से गाया जाता है जो कि ग्रामीण , जागरी, ढोल वादक सभी अपनी शैली में देवी की महिमा का वर्णन करते हैं, जिससे कि यह एक लोक परंपरा और लोक संस्कृति का अभिन्न अंग माना जाता है । उक्त शोध पत्र लोक जागर एवं दुर्गासप्तशती के बीच तुलनात्मक अध्ययन करके दोनों के बीच समानताओं पर केंद्रित रहेगा जिसमें स्पष्ट रहेगा की लोक जागर और धार्मिक ग्रंथ दोनों में देवी का स्वरूप, महिमा का एक ही आध्यात्मिक आधार है।

शब्द बीज - लोक जागर, दुर्गासप्तशती, धार्मिक ग्रंथ, लोक परंपरा , लोक संस्कृति ।

Reimagining Education: Integrating Creativity and Independent Learning Through a Thematic Approach [In context to kathak Nritya]

Every student is unique, with individual learning styles, levels of understanding, and abilities to comprehend and apply knowledge. Therefore, an inclusive and effective educational approach must move beyond conventional teaching methods to accommodate diverse learning needs. In this context, Kathak, one of the major classical dance forms of India, offers significant potential as an interdisciplinary pedagogical tool to enhance students' creativity, critical thinking, and academic performance.

This research explores how Kathak can be integrated with core academic subjects through a thematic approach that connects theoretical concepts with embodied, experiential, and creative learning. By incorporating rhythm, movement, storytelling, expressions, and spatial awareness

into classroom teaching, abstract academic concepts can become more engaging, meaningful, and accessible to learners. Such integration encourages students to establish connections between artistic experiences and academic knowledge, thereby strengthening conceptual understanding and long-term retention.

The proposed approach aligns with higher-order cognitive processes, enabling students to remember information, understand concepts, apply their learning, analyse relationships, evaluate their progress, and create original outcomes. For instance, rhythmic patterns can support mathematical understanding, storytelling and abhinaya can enrich language and literature, while movement-based exploration can facilitate learning in environmental studies and social sciences. These connections provide opportunities for students to actively participate in the learning process, explore multiple perspectives, and develop individual solutions.

Furthermore, integrating Kathak into academic education can nurture imagination, self-expression, collaboration, confidence, and reflective thinking. The benefits extend beyond memorisation and conventional cognitive development, fostering holistic growth and the ability to transfer knowledge across disciplines. The study advocates for a learner-centred, arts-integrated educational framework that positions Kathak as a meaningful medium for developing independent learners equipped with the creativity, analytical abilities, and adaptability required to meet the challenges of the future.

The Art of Communication through Kathak: Verbal and Non-verbal Expression across Five Dimensions

Author – Ashwani Srivastava , Shruti Sharma

RESEARCH PARAMETERS

Kathak dance represents a classical art form that draws its name from the Sanskrit word ‘katha’, which means story. Rooted in the medium of rhythm, discipline, and expressive communication through both verbal (bol, padhant, and kaku) and non-verbal expression (body and face gestures). This paper studies the art of communication that extends into five dimensions: literature, vision, environment, well-being and socio-emotional impact.

METHODOLOGY

A textual and argumentative analysis was undertaken. Classical sources, chiefly the Nāṭyaśāstra, Abhinaya Darpaṇa, were studied for the expression, and the pañcamahābhūta from the Taittirīya Upaniṣad was studied against Kathak movement vocabulary. Contemporary scholarship on dance, emotion and well-being was reviewed alongside the classical sources.

DATA AND FINDINGS

Literature: The Nāṭyaśāstra, regarded as the fifth Veda, gives a fourfold Abhinaya (āṅgika, vācika, āhārya, sāttvika), which Kathak represents through bols, bhajan, kavitt, kaku, costume and inner emotion. Vision: Abhinaya means to lead towards the experience of emotion. Ancient stories and epics are re-imagined and presented by kathaks while abstract choreography aims subtle expression without a specific character . Environment: Śiva’s tāṇḍava represents cosmic cycles of change, each element has a movement counterpart: earth in firm tatkār, water in graceful flow, fire in rapid chakkars, air in light steps, space in stillness. Well-being: Literature links dance practice with mind-body balance, emotional regulation, motor skills, cognition, cardiovascular health and stress relief. Socio-emotional: Depiction of stories creates societal impact; sādhāraṇīkaraṇa helps audience perceive the performer’s emotions; embodying specific characters builds empathy and connection between the performer and the audience

CONCLUSION

Kathak's communication through storytelling bring the past to life, from nature to the individual, and from the individual to society. In an age of mass and digital media, it remains a living system of cultural communication.

Keywords: Kathak; Abhinaya; Nāṭyaśāstra; Non-verbal communication; Pañcamahābhūta

A Study on the Structural and Conceptual Variations of Vṛtti in the Agnipurāṇa and Nāṭyaśāstra

Gauri Kulkarni

The concept of vṛtti (dramatic activity or mode) is a central element in ancient Indian theatre and literature, defining how characters express actions and emotions on stage. This paper compares how vṛtti is presented in two major ancient texts: Ācārya Bharata's Nāṭyaśāstra and the Agnipurāṇa. Both texts agree on the main classification, dividing vṛtti into four categories: Bhāratī (verbal), Ārabhaṭī (aggressive/energetic), Kaiśikī (graceful/romantic), and Sāttvatī (virtuous/mental). However, the two treatises differ in their definitions, focus, and structural details. The Agnipurāṇa views vṛtti as systematic, rule-based actions centered on the hero's deeds. In contrast, the Nāṭyaśāstra takes a broader psychological approach, defining it as the emotional expressions of body, mind, and speech that pervade all living beings. Additionally, they differ in their internal subdivisions, such as the number of sub-limbs in Bhāratī Vṛtti, and how each mode connects to specific emotional states (rasas). By examining these similarities and differences, this study highlights the evolution and theoretical depth of ancient Indian dramatic theory.

When Does a Gesture Become Dance? Re-examining the Boundary between Everyday Movement, Ritual Action and Codified Nṛtta in Indian Performance

Author(s): Shweta Ashok; Dr. S. Sophia

This study investigates the point at which ordinary bodily action becomes recognisable as dance within Indian performance traditions. It examines three research parameters: everyday functional movement, ritualised action, and codified nṛtta, asking how rhythm, repetition, spatial organisation, intentionality, and aesthetic framing alter the identity of a gesture. Rather than assuming that particular bodily actions are inherently "dance," the research considers whether dance emerges through the cultural and formal transformation of movement.

The study adopts a qualitative, comparative methodology combining textual interpretation and movement analysis. Concepts related to aṅga, upāṅga, cārī, karaṇa, nṛtta, and abhinaya in Indian performance theory provide the conceptual framework. Selected actions such as walking, bending, turning, raising the arms, stamping, circumambulation, and the handling of ritual objects are compared across everyday, ritual, and codified performance contexts. Each is analysed according to rhythm, repetition, bodily alignment, spatial pattern, purpose, symbolic association, and performer-spectatorrelationship. The analysis finds that physical form alone does not adequately distinguish dance from non-dance. Similar actions acquire different identities when their temporal organisation, purpose, symbolic value, and mode of presentation change. Movement becomes increasingly identifiable as nṛtta when functional necessity gives way to deliberate rhythmic organisation, technical stylisation, spatial consciousness, and attention to the movement as form. Ritual movement occupies an important intermediate position because it may be highly structured and repetitive without being primarily intended as aesthetic display.

The paper concludes that the boundary between everyday movement, ritual action, and dance is better understood as a continuum rather than a fixed division. It proposes that nṛtta emerges

through the reorganisation of bodily action into culturally recognised aesthetic form, offering a framework for reconsidering how Indian performance theory defines the transition from movement to dance.

Keywords

nṛtta; ritual movement; gesture; Indian performance; movement analysis

सामश्रुति और गान्धर्वश्रुति (नारदीय शिक्षा एवं संगीतरत्नाकर के विशेष सन्दर्भ में

Dr. Rishiraj Pathak

प्रस्तावना

भारतीय संगीतशास्त्र में श्रुति की संकल्पना वैदिक सामगान से लेकर गान्धर्व संगीत की विकसित स्वर-व्यवस्था तक एक महत्त्वपूर्ण विकास-यात्रा को व्यक्त करती है। *नारदीय शिक्षा* में सामगान के सन्दर्भ में पाँच श्रुतियों दीप्ता, आयता, करुणा, मृदु और मध्या का उल्लेख प्राप्त होता है। इसके विपरीत, उत्तरवर्ती गान्धर्व संगीत-परम्परा में 'श्रुति' शब्द का प्रयोग विकसित स्वरव्यवस्था के सूक्ष्म ध्वनि-अन्तरों के लिए हुआ है और परम्परागत रूप से बाईस श्रुतियों की व्यवस्था प्रतिष्ठित हुई। इस विषय में विशेष रूप से यह विचारणीय है कि साम की पाँच श्रुतियों से गान्धर्व संगीत की बाईस श्रुतियों की अवधारणा किस प्रकार विकसित हुई।

शोध-प्रविधि

इस शोध में **तुलनात्मक, विश्लेषणात्मक, पाठालोचनात्मक एवं प्रयोगात्मक प्रविधि** अपनाई गई है। संगीत के विद्यार्थी एवं गायक के रूप में प्राप्त व्यावहारिक अनुभव के आधार पर श्रुतियों का गायनात्मक परीक्षण भी किया गया है।

विषय

नारदीय शिक्षा में मुख्यतः श्रुतिजातियों का स्वरगत विन्यास और उनका विभिन्न स्वरों में अवस्थान प्रतिपादित है, जबकि *संगीतरत्नाकर* में श्रुति का अधिक विकसित एवं व्यवस्थित संगीतशास्त्रीय स्वरूप सामने आता है। अतः यह अध्ययन दोनों परम्पराओं को एक ही अर्थ में प्रयुक्त मानने के स्थान पर उनके स्वरूप, प्रयोजन, पारिभाषिकता और विकास-क्रम का तुलनात्मक परीक्षण करता है। अध्ययन का उद्देश्य यह स्पष्ट करना है कि वैदिक सामगान की पञ्चविध श्रुतिगत अवधारणा और गान्धर्व संगीत की द्वाविंशति-श्रुति व्यवस्था के मध्य किस प्रकार का वैचारिक एवं संगीतशास्त्रीय सम्बन्ध स्थापित किया जा सकता है।

उपसंहार

साम की पञ्चविध श्रुतियों से गान्धर्व संगीत की द्वाविंशति श्रुतियों तक की यात्रा भारतीय संगीत की वैज्ञानिक, सूक्ष्म एवं समृद्ध परम्परा को उद्घाटित करती है। *नारदीय शिक्षा* और *संगीतरत्नाकर* का तुलनात्मक अध्ययन इस परम्परा की निरन्तरता, विकास और शास्त्रीय परिष्कार को स्पष्ट करता है।

कूट शब्द

सामश्रुति, गान्धर्वश्रुति, श्रुतिजाति, दीप्ता, आयता, करुणा, मृदु, मध्या, द्वाविंशति श्रुति, नारदीयशिक्षा, संगीतरत्नाकर, सामगान।

Vocabulary Expansion in Bharatanatyam: A Study of How New Movement Vocabulary Can be Conveyed Within a Classical Dance Tradition

Mrs. Greeshma M Thampi, Dr. Harikrishnan V P and Dr. Midhun P

Bharatanatyam is a codified classical dance tradition with a well established system of movement, gesture, expression, and communication. As new ideas and concepts continue to emerge in contemporary society, there is a need to examine whether the vocabulary of Bharatanatyam can also expand to communicate ideas that may not have a direct representation within its traditional movement system.

This study explores the possibility of developing new movement vocabulary using the existing principles of Bharatanatyam while maintaining its traditional aesthetic framework. The study focuses on how effectively such newly developed movements can communicate new concepts and how audiences understand and interpret them.

The research follows a practice based and exploratory methodology involving literature review, movement analysis, choreographic experimentation, development of new movement vocabulary, performance presentation, and audience perception analysis. Questionnaires, semi structured interviews, focus group discussions, video documentation, and comparative audience analysis will be used as research tools. The study will also examine whether familiarity with Bharatanatyam influences the interpretation of newly developed movements and whether the context in which a movement is presented contributes to audience understanding.

The study aims to examine the possibilities of expanding the expressive vocabulary of Bharatanatyam while maintaining a balance between tradition and innovation. It also attempts to understand whether a classical dance form can respond to new concepts without losing its established identity and aesthetic principles. The findings may contribute to further discussions on Bharatanatyam, choreography, audience perception, performance studies, and the development of classical dance as a living and evolving tradition.

Keywords: Bharatanatyam, Movement Vocabulary, Vocabulary Expansion, Classical Dance, Audience Perception, Choreography, Tradition and Innovation, Performance Studies

कामरूपीया-लोकगीतेषु श्रीकृष्णचरितस्य साहित्यिकं दार्शनिकञ्च समीक्षणम्

बरषा पाटगिरिः

भगवतीकामाख्यापीठनिसर्गपावनसुमण्डितः निरन्तरजलधारासुशोभित-लौहिताख्यब्रह्मपुत्रनदहृद्देशविराजितः पुरातनप्रागज्योतिषाख्यः असमप्रदेशः विविधजातिजनजातिभिः तत्तद्भाषाभिः तत्तल्लोकस्कृतिभिश्च भारतीयानां दृष्टिं समाकर्षयितुं समर्थोऽस्ति। प्रत्येकं प्रदेशः तद्देशस्थलोकसंस्कृत्यैव प्रसिद्धिमवाप्नोति। तथैव असमप्रदेशस्य समृद्धिशालिन्याम् असमीया-लोकसंस्कृतौ **कामरूपीया-लोकगीतानाम्** स्थानम् अत्यन्तं महत्त्वपूर्णं वर्तते। तेनैव असमस्य असमीयालोकसंस्कृतेश्च परिचयः देशविदेशेषु विस्तारं प्राप्नोति। असमप्रदेशस्य पुरातनकामरूपमण्डले (सम्प्रति बरपेटा-बजाली-नलबारी-शुवालकुसी-आदिषु क्षेत्रेषु) प्रचलितानि **कामरूपीया-लोकगीतानि** लोकजीवनस्य, लोकभावनायाः, भक्तिरसस्य च कलात्मकं दिशं प्रकाशयन्ति। **लोकगीतम्** इत्यत्र लोकशब्देन नगरवासिनः लोकाः न बोध्यन्ते अपि तु ग्राम्यजनाः एव लोकशब्देन आख्यायन्ते। कामरूपीया-लोकगीतेषु लोकानाम् अर्थात् ग्राम्यजनानाम् दैनिककर्मणः, श्रमस्य, जीवनचर्यायाश्च यथार्थं चित्रणं परिलक्ष्यते। कामरूपस्य लोकसंस्कृतिः स्थानगता भवति इति वक्तुं शक्यते, यतो हि कामरूपस्य प्रत्येकं क्षेत्रेषु भाषायाः आचारस्य व्यवहारस्य नियमस्य विवाहादिसंस्काराणां च भेदाः दृश्यन्ते। तेन च प्रत्येकं जनपदस्य स्वकीयं वैशिष्ट्यमपि दृष्टिगतं भवति। एतादृशं सामाजिकं नैतिकं सांस्कृतिकञ्च वैविध्यञ्च कामरूपीया-लोकगीतेषु सुष्ठु प्रतिफलितं भवति।

अस्मिन् शोधपत्रे **कामरूपीया-लोकगीतेषु** प्रतिपादितस्य भगवतः श्रीकृष्णस्य विविधमहिमामण्डितस्वरूपस्य सूक्ष्मं साहित्यिकं दार्शनिकञ्चानुशीलनं विधीयते। कामरूपीया-लोकगीतेषु भगवतः श्रीकृष्णस्य मौलिकचरित्रद्वयं प्रकाशितम्भवति। एकत्र श्रीकृष्णः त्रिजगतः परमपुरुषत्वेन चित्रितः, अपरत्र चासौ साधारणगोपबालरूपेण सुनिरूपितो भवति। शोधपत्रे अस्मिन् श्रीकृष्णस्य जन्मवृत्तान्तं, मातुः देवक्याः विरहव्यथा, बालकृष्णस्य गोकुललीला, बालकृष्णेन सह यशोदामातुः स्नेहबन्धः, वृन्दावनलीला, राधाकृष्णयोः अलौकिकं प्रेमवृत्तान्तं, वृन्दावनत्यागः, कृष्णविरहेण गोकुलवासिनां गोपीनाञ्च शोकविह्वलावस्था, श्रीकृष्णस्य वैकुण्ठप्रयाणे उद्धवस्य विरहदशा चेत्यादयः प्रमुखाः विषयाः **कामरूपीया-लोकगीतानां** मूलपाठैस्सह (Textual Evidence) व्याख्यातास्सन्ति।

एवमेव अस्मिन् शोधपत्रे स्पष्टीक्रियते यत् कामरूपीया-लोकगीतानि केवलं ग्राम्य-मनोरञ्जनस्य साधनानि न सन्ति, अपि तु एतेषु शास्त्रीयवैष्णवदर्शनस्य, श्रीमद्भागवतस्य भक्तिरसस्य, कामरूपस्य तत्तज्जनपदानां लोकसंस्कृतेः अद्भुतसमन्वयः परिदृश्यते।

अद्यतनकाले आधुनिकतायाः प्रभावेन कामरूपीया-लोकगीतानाम् इयं प्राचीना मौखिक-परम्परा द्रुतगत्या विलोपमुपैति। अतः ग्राम्यजनानाम् अमूल्यनिधिभूतानाम् मौखिकपरम्परया च समागतानाम् एतेषां लोकगीतानां सङ्कलनं, लिपिबद्धीकरणं (Documentation) संरक्षणञ्च वर्तमानकाले सर्वथा अनिवार्यं वर्तते। तदर्थमेव केषाञ्चन कामरूपीया-लोकगीतानां मूलपाठं संकल्य भागवतादिपुराणानाम् आख्यानैस्सह तेषां व्याख्यानपुरस्सरम्, तेषां मूल्याङ्कनाय संरक्षणाय च यथामति अस्मिन् शोधपत्रे प्रयत्यते।

कूटशब्दाः (Keywords): कामरूपीया-लोकगीतम्, श्रीकृष्णलीला, असमीया-लोकसंस्कृतिः, भागवतपरम्परा, ।

Critical Evaluation of Vitthaliya-Grantha:a Manuscript in Sanskrit on Indian Music

Dr. Shweta Avdhoot Jejurkar

Pundarik Vitthal is a well-known name for his contribution to Indian Music. The text ‘Vitthaliya-Grantha’ deals with Indian Music, which is preserved in the form of a Manuscript at Oriental Institute, The Maharaja Sayajirao University of Baroda, Vadodara in nine folios. It deals with seven notes found in Indian music along with Nada, Srutis, Svara-bheda, Ragas, Grama, Murchana, Taanas, faults in singing (Gayana-dosas), Varnas, Alamkaras etc. discussed in the text.

The present paper will attempt to discuss, evaluate and critically examine the contents of this manuscript and present a comparative study with Sangita Ratnakara of Sarngdeva along with other prominent texts of Indian Music written in Sanskrit. It will try to analyse the contribution of Pundarik Vitthal by editing this text separately apart from his other works. This will be an original contribution to the field of Sanskrit and Indian Music in particular.

Key words: Vitthaliya-Grantha, Pundarik Vitthal, Indian Music

Yakshagana & NātyaShāstra - A Comprehensive Study & It's Relevance in the Modern Times.

Sri. SHREYAS K B,

Yakshagana, the vibrant theatre tradition of Karnataka, is often perceived as a folk art form. However, a deeper study reveals that its entire grammar, structure, and aesthetic principles are deeply rooted in the *NātyaShāstra* of Bharata Muni. This paper seeks to establish Yakshagana not

as a deviation from the classical canon, but as a living manifestation of *NātyaShāstra* in the *Lokadharmi* tradition.

The study analyzes Yakshagana through the fourfold framework of *Abhinaya* as enunciated in *NātyaShāstra*. Under *Āṅgika Abhinaya*, the *Chari* movements, *Karaṇas*, and *Aṅgahāras* of Yakshagana are examined in relation to Chapters 4, 9, and 10 of the *Shāstra*. *Vācika Abhinaya* is explored through the role of the *Bhāgavata* as the *Sūtradhāra* and the use of improvised *Arthadhari* dialogue, aligning with the principles of *Pāṭhya* in Chapter 17. *Āhārya Abhinaya* is studied via the codified *Vesha* system - *Rāja, Rākṣasa, Stree* - and its correlation with *Rasa* and *Guṇa* as described in Chapter 23. Finally, *Sāttvika Abhinaya* is discussed in the context of *Rasa-niṣpatti* and audience engagement during all-night performances.

Furthermore, the paper examines the musical and rhythmic structure of Yakshagana with reference to *Gīta* and *Vādya* chapters, and its thematic content drawn from *Itihāsa* and *Purāṇa* as prescribed in *Rūpaka* classification.

This paper argues that Yakshagana successfully democratizes the *NātyaShāstra* by taking Sanskrit aesthetics to the masses without diluting its shastriya rigor. Thus, Yakshagana stands as a testament to the continuity and adaptability of Indian Knowledge Systems from ancient *Shāstra* to contemporary stage.

Sruti to swara: Evolution of Raga-classification called Melakarta System

Padmavathi Thyagaraju, MA (Music), CCRT Scholar

The concept of *swara* occupies a fundamental position in the theoretical and practical aspects of Indian music. Its present-day understanding, however, is the outcome of a long process of conceptual development involving *SRuti*, *swara, graama*, *moorchhana, jaati,* and *mELa*, and eventual formulation of classification of raga-s based on *SRuties*, and came to be called as *mELakarta* system. The objective of this paper is to examine the changing conceptualisation and organisation of swara in the Indian musicological traditions, with particular reference to the development of raga-classification system largely used in South Indian classical music. It traces the theoretical foundations of pitch and swara from the Vedic musical tradition and early musicological thought, particularly the *naaTyaSaastra,* and examines subsequent developments in medieval musicological literature. The study focuses on the evolving relationships among *SRuti*, swara, tonal organisation and melodic structures, leading to the emergence of the *mELa* concept and its later systematic formulation. Special attention is given to Ramamatya, Venkatamakhin and Govindacharya, whose works represent significant stages in the development and reinterpretation of swara and 72-*mELakarta* theory. It argues that the Melakarta system should be understood within the larger historical development of swara organisation and tonal thought in Indian music.

Enroute this research it is interesting to note that Muthuswami Dikshitar followed the Venkatamakhin tradition, while Tyagaraja followed the Govindacharya tradition. This further gives an opportunity to examine the difference between in these traditions.

Keywords: Śruti; Swara; Grāma; Mūrchanā; Mela; Melakarta

Rhythm, Raga and Resilience: A Comparative Study of Kathak, Indian Classical Music and Student Well-being

Divya Phulwani

Introduction- Indian students encounter substantial stress from academic demands, competition, and socio-familial expectations, often lacking structured coping mechanisms. Traditional performing arts like Kathak dance and Indian classical music, which require rigorous discipline, sustained attention, and mind-body coordination, present accessible pathways for stress management.

Background- Kathak combines intricate footwork (*tatkar*), spins (*chakkars*), and narrative expression (*abhinaya*) anchored in rhythmic cycles (*tala*). Practice enhances working memory, attention, and executive function compared to non-dancers (Chatterjee et al., 2022). Indian classical music centers on ragas (melodic frameworks) and breathe regulation. Engagement with ragas (e.g., Bilahari, Bhairavi) significantly reduces depression, anxiety, and stress while boosting cognitive control (Krishna et al., 2022; Chand et al., 2024; Benet et al., 2022). While both disciplines foster resilience, Kathak operates primarily through somatic-rhythmic movement, whereas classical music relies on auditory-vocal processing.

Objectives-

Evaluate the effect of Kathak dance on emotional well-being, physical resilience, and stress levels.

Examine the cognitive and psychological benefits of Indian classical music training on academic focus and anxiety reduction.

Compare psychological and socio-emotional outcomes among Kathak practitioners, classical music students, and non-performing control peers.

Methodology

This comparative quantitative study evaluates 60 students divided into three equal cohorts (n = 20 each): Figure 1

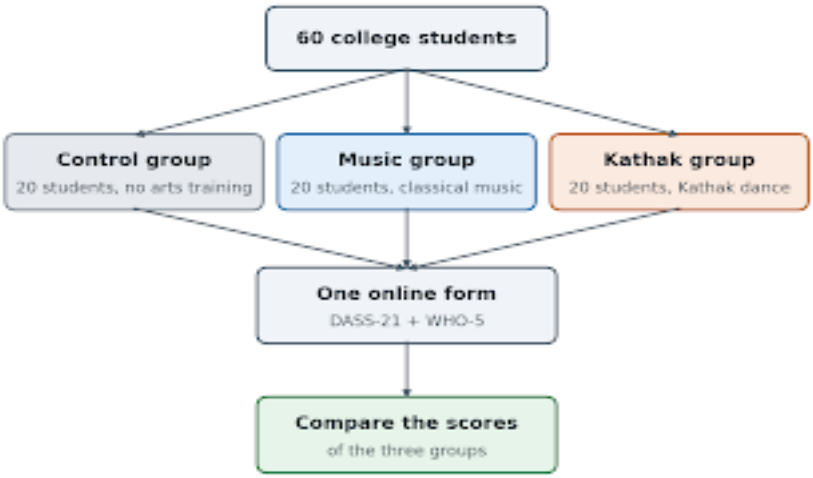

Data Collection & Assessment:

Participants complete two standardized, validated online instruments:

DASS-21 (Depression, Anxiety and Stress Scale): (Lovibond & Lovibond, 1995).

WHO-5 Well-Being Index: (World Health Organization, 2024).

Data Analysis:

Inter-group mean scores will be analyzed to evaluate whether performing arts practitioners differ significantly from non-practitioners and each other.

Expected Results

Arts groups are expected to report lower DASS-21 and higher WHO-5 scores than controls.

Kathak enhances somatic relief and physical resilience, while music improves focus and reduces cognitive anxiety.

Highlights traditional arts as effective tools for student wellness programs.

Keywords: Kathak, Indian Classical Music, Student Well-being, Mental Resilience

कठपुतली कला से एनीमेशन तक: भारतीय दृश्य संस्कृति का तकनीकीगत विकास

Ratan Priya Singh

शोध सार : कठपुतली कला भारतीय संस्कृति के इतिहास में हजारों वर्ष पुरानी कला है, यह कला प्राचीन दृश्य एवं प्रदर्शन कलाओं में से एक है, यह कला पौराणिक कथाओ, लोक कथाओं और सामाजिक संदेशों, के प्रसार का प्रभावी माध्यम रहा है, कठपुतली कला भारत के अलग-अलग राज्यों की प्रसिद्ध कला है, जिनमें राजस्थान और आंध्र प्रदेश की छाया कठपुतली, कर्नाटक की 'तोगलू गोम्बेयट्टा', उड़ीसा की 'कुंधेई कला' तथा पश्चिम बंगाल की 'पुतुल नाच' जैसे अनेक कला स्वरुप भारतीय सांस्कृतिक विरासत को प्रस्तुत करते हैं| इन लोक कलाओं में दृश्य संरचना, अभिनय, चरित्र निर्माण, गति, प्रकाश, ध्वनि और कथा विन्यास आदि निहित होते हैं, जिन्होंने आधुनिक एनीमेशन कला के शुरुआती दौर को प्रेरित किया, बाद में चलकर यह तकनीकी रूप से चलचित्र, डिजिटल एनीमेशन, त्रिआयामी (3D) एनीमेशन, स्टॉप मोशन एनीमेशन के रूप में इसका विकास देखा जा सकता है| वर्तमान समय में इस माध्यम को डिजिटल तकनीक ,कंप्यूटर चित्रण ,कृत्रिम बुद्धिमत्ता, वर्चुअल रियलिटी ने नई दिशा प्रदान की है| इस शोध का उद्देश्य कठपुतली कला और एनीमेशन के ऐतिहासिक, तकनीकिगत और सांस्कृतिक संबंधों का विश्लेषण करना है |

बीज शब्द: कठपुतली कला, डिजिटल एनीमेशन, भारतीय दृश्य संस्कृति, लोककला, सांस्कृतिक विरासत, दृश्य संचार|

Tripatāka Hasta viniyoga in the context of Rangasūcanā in Sanskrit Plays.

Ketaki Manoj Kaduskar

In the performance tradition of the **Nāṭyaśāstra**, hand gestures play an important role in communicating ideas, objects, actions, emotions, and dramatic situations on stage. Among the various hastas, **Tripatāka** is widely used and has diverse applications in both dance and drama. This paper studies the application of Tripatāka in the context of **raṅgasūcanā-s** on Sanskrit plays, with particular focus on **Jānantikam, Apavārya, and Svagata**. It examines how the same hasta functions differently within these three forms of dramatic communication.

Raṅgasūcanā-s are theatrical stage directions through which information, actions and dramatic situations are communicated to the spectators. The **Nāṭyaśāstra**, particularly in its twenty-sixth chapter (Babulal Shukla Shastri, Hindi Translation) , mentions the use of Tripatāka in relation to three different raṅgasūcanā-s. During the performance, however, difficulty is faced in communicating the distinction between these three Jānantikam, Apavārya, and Svagata. Although all three employ the same Tripatāka hasta, they serve different dramatic purposes and convey different meanings. Their similar physical representation makes it difficult for the performer as well as the spectators to distinguish between them, affecting the clarity of communication and their understanding of the dramatic situation.

To address this problem, the study follows the following methodology. The initial stage, examining the dictionary meanings of the three terms. Then, understanding their meanings and applications within the technical framework of the **Nāṭyaśāstra** and the vyutpatti of the words. Then finding attestion of these raṅgasūcanā-s through **Sanskrit plays** to understand how they function within specific dramatic contexts. This helped establish the functional distinction between the three raṅgasūcanā-s.

The theoretical distinction, however, led to a practical question: **how should these raṅgasūcanā-s be physically enacted on stage?** Questions concerning the placement, orientation, movement, and execution of Tripatāka became central to the study. Thus, the research seeks to explain a point that is missing in the theoretical texts. Exploring how variations in physical execution and dramatic context can make the different functions of the same hasta clear and communicatively effective for the audience.

Keywords: raṅgasūcanā-s, Nāṭyaśāstra, Tripatāka

भारतीयलोक-जनजातीयकलासु रेखाङ्कनपरम्पराः सांस्कृतिकस्वाभिमानः, अन्तर्मुखी-एकाग्रता, समकालीनोद्यमिता च

शुभांगिनी आर्या

Research Parameters (प्रस्तावना शोधपरिधिश्च):भारतीयज्ञानपरम्परायां कला केवलं बाह्यालंकरणमात्रं न भवति, अपितु अन्तर्मुखी-चित्तशुद्धेः आत्मपरिष्कारस्य च एका विशुद्धा यौगिकसाधना वर्तते। *ऐतरेयब्राह्मणस्य* सूत्रम्—**"आत्मसंस्कृतिर्वाव शिल्पानि"**—एतदेव प्रतिपादयति यत् कलाभ्यासः वस्तुतः मानवचेतनायाः परिमार्जनं तथा च चित्तशुद्धिः अस्ति। वर्तमाने भौतिकतावादि-युगे युवावर्गः पाश्चात्यानुकरणेन स्वकीयायाः सांस्कृतिकमूलात् विमुखः सन् मानसिकतनावैः, एकाग्रतायाः न्यूनतया, आत्मविस्मृत्या च ग्रस्तः दृश्यते। अस्मिन् परिप्रेक्ष्ये भारतस्य पारम्परिकलोक-जनजातीयकलासु (यथा वरली, मधुबनी, माण्डना, कोलम, गोण्ड इत्यादिषु) संनिहितायाः सहजरेखाङ्कनपरम्परायाः तात्त्विक-यौगिक-सामाजिकपक्षाणां गभीरमध्ययनं विधातुं प्रस्तुतशोधपत्रे शोधपरिधिः सुनिर्धारिता वर्तते।

Methodology (शोधपद्धतिः):अस्मिन् शोधपत्रे विश्लेषणात्मकी, तुलनात्मकी तथा च अन्तर्विषयिका पद्धतिः अनुसृता अस्ति। अत्र प्राचीनवैदिकग्रन्थानां दार्शनिकसूत्राणि, प्रादेशिकलोककलानां ज्यामितीयसंरचनां तथा च कलाभ्यासेन प्राप्यमाणानां यौगिकप्रभावाणां (चित्तवृत्तिनिरोधस्य, धारणायाः, ध्यानस्य च) समन्वयम् उपजीव्य प्राथमिक-द्वितीयकस्रोतोभ्यः प्रामाणिकमध्ययनं विहितम् अस्ति।

Data & Findings (तथ्यानि निष्कर्ष-विश्लेषणञ्च): अध्ययनेनानेन स्पष्टीभवति यत् आधुनिकयन्त्राणि विनापि एतासु पारम्परिककलासु सहजक्षेत्रमितिः, सन्तुलनं सममितिश्च सहजरूपेण संलक्ष्यन्ते। द्वितीयतः, सूक्ष्माणां रेखाणां प्रतिरूपाणां च सततसाधनेन चित्तस्य एकाग्रता वर्धते, येन 'विचारशून्यतायाः' (सहजयोगध्यानस्य) स्थितिः

उत्पद्यते; इयं स्थितिः मानसिकतनावं दूरीकृत्य आन्तरिकशान्तिं व्यक्तित्वविकासं च पोषयति। तृतीयतः, एताः कलाः वैयक्तिकाहङ्काररहिताः सत्यः सामूहिकसामरस्यस्य, लोकविश्वासस्य, पर्यावरणसंरक्षणस्य च सशक्तं सन्देशं प्रयच्छन्ति।

Conclusion (उपसंहारः योगदानञ्च): लोक-जनजातीयकलानां रेखाङ्कनपरम्परा न केवलं प्राचीनावशेषाणां संरक्षिका, अपितु सांस्कृतिकस्वाभिमानस्य, यौगिकानुशासनस्य, प्रकृतिसहजीवनस्य च त्रिवेणीसङ्गमः अस्ति। एतासां कलानाम् आधुनिकविपण्या सह सम्बन्धेन जनजातीयकलाकाराणाम् आदरपूर्णा आत्मनिर्भरता (उद्यमिता) सम्भविष्यति। एषः विमर्शः प्राच्यविद्यायां भारतीयकलापरम्परायां च नूतनं व्यावहारिकं योगदानं विधास्यति।

Keywords: आत्मसंस्कृतिः; लोक-जनजातीयरेखाङ्कनम्; सहजज्यामितिः; विचारशून्यता (यौगिकध्यानम्); जनजातीयोद्यमिता, सृजनात्मकतायाः विस्तारः।

The Role of Sitar in the Continuity of Indian Classical Music

Kartik Sharma

Research Scholar in Music

Panjab University, Chandigarh

Indian Classical Music is a living tradition that has continued from one generation to another through learning, practice, teaching, and performance. The Sitar has an important and distinctive place in this tradition, especially in Hindustani Classical Music. This paper discusses the role of the Sitar in the continuity of Indian Classical Music and examines how musical knowledge is learned, practiced, and carried forward through the instrument. The paper follows a descriptive and analytical approach and discusses the development of the Sitar, its role in musical performance, and the musical knowledge connected with its practice. Different elements of Sitar performance, including *Alap, Jod, Gat,* and *Jhala*, show how *Raga*, rhythm, compositions, playing techniques, and musical expression are learned and practiced. The role of the Guru–Shishya Parampara, *Taalim*, listening, observation, and regular *Riyaz* is also considered in this learning process. The discussion shows that Sitar learning is not limited to learning the technique of playing the instrument. It also involves understanding musical ideas and developing them through regular practice and performance. Different Sitar traditions and musical lineages have helped carry compositions, techniques, and ways of playing from one generation to another. The paper also considers Sitar learning in modern educational settings, including institutional and digital learning spaces. It shows that continuity does not mean simply repeating the past; earlier musical knowledge and practices are carried forward while allowing new generations to develop them through their own learning and practice. Thus, the Sitar remains an important part of the continuing tradition of Indian Classical Music.

Keywords: Sitar; Indian Classical Music; Guru–Shishya Parampara; Musical Knowledge; Continuity

Bībhatsa and Bhayānaka: Disgust and Fear in Indic and Global Visual Aesthetics

Ms. Geetika Pathania

This study examines Bībhatsa (disgust) and Bhayānaka (fear) in Bharata's Nāṭyaśāstra and Abhinavagupta's Abhinavabhāratī, placing them in dialogue with Western theories of the sublime,

uncanny, and aesthetics of disgust. It explores their psychological triggers, independent existence, co-occurrence, and sequential interaction in shaping aesthetic experience.

A comparative framework integrates textual theory, visual analysis, and cross-cultural philosophy. Case studies from Indic temple sculpture, manuscript painting, and modern works are paired with Western examples such as Bosch, Goya, and Munch. Each was chosen for explicit triggers of disgust or fear, supported by insights from perceptual psychology and affective neuroscience.

Disgust arises from violation, fear from threat. Their interplay produces layered experiences: disgust intensifies fear, while fear deepens disgust. Sequential models show two pathways—clear threats evoke fear first, while ambiguous stimuli evoke disgust first.

The study affirms Bībhatsa and Bhayānaka as central to rasa theory and global aesthetics, demonstrating art's power to transform aversion into reflection on mortality, violence, and cosmic order.

Keywords

Bībhatsa; Bhayānaka; Rasa Theory; Indic Aesthetics; Comparative Philosophy

Indian Fine Arts, Dance and Music as a Tool for Youth Development: A Scientific and Cultural Analysis of Past Heritage, Present Relevance and Future Projections

Shivam Kumar Jha

Indian fine arts, particularly dance and music, represent a living continuum of India's cultural heritage and scientific wisdom. The present paper examines their role in youth development through three dimensions: Physical Fitness, Stress and Mental Well-being, and Confidence and Personality Development.

From a historical perspective, the roots lie in the Natyashastra of Bharata Muni which states, "न तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं न सा विद्या न सा कला। नासौ योगो न तत्कर्म नाट्येऽस्मिन् यन्न दृश्यते॥", establishing performing arts as a holistic science integrating knowledge, skill, yoga and karma. In the past, this was transmitted through the Gurukul system as daily sadhana for body-mind discipline.

In the present context, youth exposure has diversified from classical forms, folk traditions, bhajans and kirtans to Bollywood, rap and fast-beat electronic music. Scientific studies have validated this cultural practice. Dance as rhythmic aerobic activity has shown improvements in coordination, flexibility, endurance and body control. Psychophysiological research using objective markers like heart-rate variability [HRV], blood pressure, salivary cortisol and standardized psychological scales reports significant reduction in anxiety, perceived stress and improvement in physical self-esteem and emotional expression. Similar effects have been reported with listening to and practicing Indian ragas.

Looking to the future, projections indicate a dual trajectory. Positively, integration with technology - AI-based movement analysis, VR-based classical training, and digital archiving - can make these arts accessible as low-cost, culturally-rooted interventions for the rising youth mental health crisis. Negatively, challenges remain including commercialization diluting authenticity, lack of standardized curriculum and scientific validation, unequal access in urban-rural settings, and shortage of trained instructor-researchers.

Thus, Indian fine arts offer a sustainable bridge between cultural identity and modern youth needs, requiring systematic scientific exploration and policy-level integration in youth wellness programs.

The Veena in the Valmiki Ramayana Performance, Society, and Poetic Expression

Pragyan Sharma

This paper examines the veena and related string instruments in the Valmiki Ramayana, focusing on their roles in musical performance, social life, and poetic expression. It brings together selected passages from the Bala, Ayodhya, Sundara, Yuddha, and Uttara Kandas to understand how musical instruments contribute to the narrative. The study follows a descriptive and analytical approach, reading the Sanskrit verses in their immediate contexts and considering the explanations offered by traditional commentators.

The discussion is organised around three themes. The first examines musical performance through the singing of Kusa and Lava, their knowledge of musical principles, and the descriptions of Rama's story being heard at Valmiki's hermitage. References to tantri, laya, sthana, murchana, and tala connect the narration with trained and organised musical presentation. The second theme considers the social settings of music. The sound of instruments in Ayodhya, their silence during mourning, Bharadvaja's musical welcome, and the women holding instruments in Ravana's palace show how music helps describe collective life, hospitality, and leisure.

The third theme explores literary comparisons. Sita's statement about the dependence of a veena on its strings, her comparison with an untouched vallaki, and Ravana's description of his bow as a veena give instrumental language different emotional meanings. Comparing these passages reveals associations with dependence, affection, separation, and violence.

The study finds that the veena and related instruments serve several connected purposes within the epic. They accompany the telling of the story, help establish the atmosphere of different settings, and provide images through which human experiences are expressed. These references contribute to understanding the musical and cultural significance of string instruments in Sanskrit epic literature.

Keywords: Veena, Valmiki Ramayana, String Instruments, Musical Performance, Vallaki, Vipanchi, Poetic Expression.

From Natyashastra Natyamandapa to Modern Stage Structure: A journey

Vedang Atmaram Soundalgekar

When we think of going to watch a play, a theatre space comes to our mind. We imagine the wooden stage, the set designed for the play, the lighting, the black or dark blue curtain at the back of the stage, and the wings through which actors enter the stage. These are some of the essential elements that we commonly associate with a modern theatre. But this raises an important question: when Bharata Muni, along with his hundred sons, performed the first play, **Amritamanthana**, where did they perform it? The **Natyashastra** provides descriptions of the kind of space required for theatrical performance. This leads to several questions: What are the differences between the stage spaces described in the **Natyashastra** and those of the present day? Why have these differences emerged? The **Natyashastra** also describes different types of theatre buildings. Why

these forms are no longer commonly found today? What changes have taken place in theatrical practice as a result of the changing structure and design of theatre spaces? These are some of the major quests addressed in this paper.

While studying the **Natyashastra** and attempting to apply its principles in practice, its concepts are often compared with contemporary theatrical practices. Therefore, the study of the **Natyamandapa** described in the **Natyashastra**, the changes it has undergone over time, and the resulting changes in theatrical practice appeared to be a broad and significant area of research. Hence, This study explores how the ideas and design principles of the **Natyamandapa** can be applied to theatre practices today. and to explore their relevance and possibilities in the context of present-day theatre.

Keywords : Natyamandapa, Stagespace, Contemporary Theatre

संशोधन-मन्दिरम्: प्रामाणिक-संस्कृत-AI प्रमाण-नियन्त्रित-पद्धत्या (Evidence-Constrained Generation)

श्री-त्रयीविद्या-संशोधनमन्दिरम्

शास्त्र-संरक्षणस्य ऐतिहासिक-युगसन्धावस्यां यदा लक्षाधिकाः अप्रकाशिताः संस्कृत-हस्तप्रतयः सङ्गणकीकरणम् अपेक्षन्ते, तदा आधुनिक-AI-क्षेत्रे द्वौ घातकौ सङ्कटौ उद्भूतौ — (१) संयुक्त-वर्ण-सन्धि-विच्छेद-लोपेन Subword BPE पद-विभाजकैश्च जायमाना **OCR-पाठ-विकृतिः**, (२) वाणिज्यिक-LLM-माध्यमेन संजायमाना कल्पित-श्लोक-मिथ्या-भाष्य-रूपा **जननात्मक-भ्रान्तिः (Generative Hallucination)** । अस्य युगपत्-परिहाराय श्री-त्रयीविद्या-संशोधनमन्दिरेण **"संशोधन-मन्दिरम्"** इति त्रिस्तरीय-प्रामाणिक-संरचना (Three-Tier Architecture) रूपिता, या पाणिनीय-व्याकरणस्य गणितीय-निश्चायकतां (Deterministic Ground Truth) आधुनिक-RAG-पद्धत्या (Retrieval-Augmented Generation) सह सम्बध्नाति । अस्मिन् शोधपत्रे स्वायत्त-Sanskrit-LLM निर्माणस्य व्यर्थता पञ्चभिः सुदृढैः हेतुभिः (Hardware Longevity, Exact Citation, Frontier Reasoning Velocity, Server Cost Trap, Parametric Epistemic Soup) सप्रमाणं सिद्ध्यते, तथा सम्पूर्णः प्रकल्पः (कोड-सञ्चयः, सदिश-दत्तांशः, पण्डित-शोधित-पाठाः) वैश्विक-शोधार्थिभ्यः मुक्त-स्रोतः (Open Source & Open Data) रूपेण समर्प्यते ।

AI-Assisted Personalization of Yoga and Ayurvedic Wellness: A Framework for Integrating Traditional Knowledge with Intelligent Digital Systems

Srijan Yadav

Yoga and Ayurveda constitute integral components of Indian Knowledge Systems, offering holistic approaches to physical, mental, and spiritual well-being grounded in centuries of tradition. Contemporary Artificial Intelligence (AI) technologies increasingly mediate how individuals access wellness guidance, raising the question of whether such systems can meaningfully personalize traditional practices without compromising their authenticity. This study addresses the research question: how can artificial intelligence be used to personalize Yoga and Ayurvedic wellness practices while preserving the principles and integrity of traditional Indian knowledge systems? The scope covers conceptual exploration of AI-assisted personalization across user profiling, practice recommendation, and adaptive feedback, situated within a non-diagnostic, non-clinical wellness context.

Being a conceptual, literature-based inquiry rather than an experimental study, the methodology employs interdisciplinary analysis combining review of classical Yoga and Ayurvedic textual traditions with examination of contemporary AI personalization approaches. A proposed conceptual framework structures this analysis, tracing a pathway from user profile construction,

encompassing age, lifestyle, Yoga experience, wellness goals, sleep patterns, and preferences, through a curated traditional knowledge base, AI-driven analysis, personalized recommendation, practice, and feedback-based adaptation.

The analysis suggests that AI holds potential to support individualized Yoga routines, pranayama practices, and wellness-oriented recommendations when guided by a carefully curated, authentic knowledge base. The framework highlights the centrality of user profiling and feedback loops in enabling adaptive personalization. The study also identifies significant challenges, including data privacy, algorithmic bias, risk of cultural misinterpretation, and the necessity of sustained human and expert oversight to prevent inappropriate or decontextualized recommendations.

The proposed framework indicates that AI can function as an assistive, not substitutive, technology bridging traditional Indian knowledge systems with intelligent digital personalization, provided that authenticity, ethical safeguards, and expert oversight remain central. This conceptual contribution invites further interdisciplinary dialogue within Oriental and Indological scholarship on responsibly integrating tradition with emerging technology.

Keywords

Artificial Intelligence; Yoga; Ayurveda; Personalization; Indian Knowledge Systems

शोधपत्रस्य शीर्षकम्: यन्त्रानुवादस्य पाणिनीयसंसाधकस्य च विश्लेषणात्मकं तुलनात्मकञ्च अध्ययनम्

शोधकर्त्री: गौरी भवानी

१. प्रस्तावना शोधपृष्ठभूमिश्च

आधुनिकतन्त्रज्ञानयुगे विभिन्नभाषाणां मध्ये विचारविनिमयं सुलभं कर्तुं 'यन्त्रानुवादस्य' अर्थात् स्वचालित-अनुवाद-प्रणाल्याः व्यापकः विकासः सञ्जातः। वर्तमाने समये कृत्रिमबुद्धेः सांख्यिकीयप्रणालीनाञ्च आधारेण अनुवादसाधनानि त्वरितं परिणामं दातुं सक्षमाणि सन्ति। यद्यपि एताः प्रणाल्यः सामान्यभाषाणां कृते अतीव उपयोगिन्यः सिद्धाः, तथापि संस्कृतसदृश्याः विश्वस्य सर्वाधिकवैज्ञानिकायाः, नियमबद्धायाः, संरचनात्मिकायाश्च भाषायाः समक्षम् एतासां क्षमता अतीव सीमिता प्रतीयते। संस्कृतस्य व्याकरणं महर्षिपाणिनिना 'अष्टाध्याय्याम्' अतीवसूक्ष्मरूपेण तार्किकरूपेण च ग्रथितम्।

अस्याः एव प्राचीनव्याकरणिकसुदृढतायाः सङ्गणकीयस्वरूपं निर्मातुं भाषावैज्ञानिकैः 'पाणिनीयसंसाधकस्य' निर्माणं कृतम्। अयं संसाधकः अष्टाध्याय्याः सूत्राणां, धातुपाठस्य, कृत्तिङ्प्रत्ययानाञ्च आधारेण वाक्यानां सूक्ष्मं विश्लेषणं करोति। प्रस्तुतशोधपत्रम् आधुनिकयन्त्रानुवादस्य तथा च प्राचीनव्याकरणाधारितस्य पाणिनीयसंसाधकस्य कार्यक्षमतायाः, शुद्धतायाः, सीमानाञ्च तुलनात्मकम् अध्ययनं प्रस्तौति।

Development of a Patanjali Based Conceptual Framework for Stress Assessment: A Manual on NASA Task Load Index

Raj Kumar, Vaisali Gaur, Paran Gowda

Abstract

We have developed a Patanjali Based Conceptual Framework for Stress Assessment Summing the NASA Task Load Index and a questionnaire with ‘Yes’ and ‘No’ type questions. Stress oriented Cognitive conceptual Frame of Reference (FoR) for Task Behaviour and Subjective workload

experiences varied as a function of office goers efficiency manipulations based on the inputs from the administrator. This paper aims to develop and relate to a simplified stress reduced workload frame of six number NASA factors with the embedded multidimensional rating model for improved efficiency manipulations.

This paper present manual of the NASA-TLX (Task Load Index), consisting of six questions that supposedly evaluate perceived workload though related to mental, physical and temporal demand, performance, effort and stress/frustration, with positive scoring on items 1, 4 and 5, and negative scoring on items 2, 3 and 6. Scores go from 0 to 1, where higher scores reflect higher levels of workload. We have tested the frame with 31 no. office goers of Patanjali from the diversified departments such as health, education and entrepreneurship or skilled departments. Different CEOs evaluated the performance of the staff with the modified Patanjali scale and found to have improved work performance with reduced stress factor. This office goers scale will further be tested with a larger number of participants.

Keywords: Cognitive; Frame of reference; Behaviour; Workload; NASA scale; Stress;

Sanskrit Morphology and Large Language Model(LLM)

Author: Dr. Ved Prakash Mishra, Dr. Nidhi Gusain

Many Sanskrit words can be analysed by decomposing them into a root (dhātu), a suffix (pratyaya), and the grammatical process that connects the two. Large language models, however, do not work this way. Their tokenisers split words into subword pieces chosen on the basis of statistical frequency, and these pieces often do not match the actual root–suffix boundary. This gives rise to the study's central question: to what extent do language models capture the true grammatical structure of Sanskrit-derived words, and to what degree does their performance depend on statistical correlations learned from training data?

The study pursues four main objectives. First, to compare tokeniser segmentation of selected kṛdanta (derived) words against root–suffix boundaries. Second, to assess how accurately models identify the root, suffix, governing sūtra, derivational process, and meaning of these words, and to classify the resulting errors into predefined categories. Third, to examine how model responses change as the prompt is given progressively more syntactic cues, starting with the word alone; then the word with a request for the root; then the word with both root and suffix; and finally the word with root, suffix, and the relevant sūtra. Fourth, to carry out a comparative analysis of these results, propose a remedial model, and attempt to establish it.

The study begins from one assumption: a fluent or factually correct answer is not, by itself, proof that the model has understood Pāṇinian derivation. Responses will therefore be judged not only on the final answer but also on whether the root, suffix, sūtra, process, and meaning are consistent with one another. Expected error types include a correct root paired with a wrong suffix, confusion between similar suffixes, sūtras that are wrong or invented, and mistakes involving guṇa, vṛddhi, and iṭ-āgama.

The proposed model has four parts: a morphology-aware analysis step; a rule-based validator built on Pāṇinian sūtras; a conceptual language model for context and meaning; and a cross-validation step that produces a structured output, i.e. word, root, suffix, sūtra, process, meaning, and validation status. The study does not claim that any model internally applies Pāṇini's rules; it only compares observable output against expert-verified analysis.

Keywords: Sanskrit Morphology; Large Language Models (LLMs); Pāṇinian Grammar; Kṛdanta; Dhātu–Pratyaya Analysis; Pāṇinian Sūtras; Tokenization; Computational Sanskrit.

Panini Grammar and Computer Linguistics: Relevance of an Ancient System in the Age of Artificial Intelligence

Yashvir Singh

Artificial Intelligence has changed the way of computers process and understand human language. In this context, the grammatical system of Panini, particularly the **Ashtadhyayi**, provides an important historical and technical framework for studying the relationship between language and computation. This paper examines the relevance of Paninian grammar to Computational Linguistics and Artificial Intelligence, while avoiding the claim that Panini's system was itself an ancient form of Artificial Intelligence.

In the starting the study shows about the systematic nature of Paninian grammar and it also includes its rules, rule interaction and about with the word formation along with the analysis of grammatical relations through the **Karak Theory** in the Panini grammar. It then discusses modern efforts to represent, model, and computerize aspects of this grammatical system. Research on Sanskrit sentence generation demonstrates how Paninian rules can be applied within a computational framework to generate sentences from structured representations of meaning. The paper also considers **Rick Briggs's** work connecting Sanskrit grammatical analysis with knowledge representation in Artificial Intelligence. Finally, recent research on multilingual Transformer models is examined to explore whether Paninian grammatical relations can be represented in modern neural language models.

The paper argues that Paninian grammar should not be described as Artificial Intelligence in the modern sense. Rather, it's highly systematic structure give an important perspective for understanding that how can linguistic knowledge can be formally represented and computationally processed. In the last of the paper, study also explores the continuing relevance of Paninian grammatical ideas in Computational Linguistics, Sanskrit Natural Language Processing, and contemporary language technologies.

Keywords : Sanskrit, Ashtadhyayi, Panini, Artificial Intelligence, Computational Linguistic, Kaarak.

Usage of Samskrutam in LLMs for Computational Efficiency

Krishna Mahesh Karanam, Geetha Ganapathy

Recent trends in High performance computing with GPU based architectures along with advances in High bandwidth memory technologies has paved the way for new generation of Large Language based(LLM) based methodologies which have almost replaced hitherto popular software methodologies. Earlier methods of programming the High performance processors to achieve any activity is now being done through making an LLM learn in a GPU and then use the learned model in inference mode, to achieve the tasks like generating/analysing a problem and offering a text/image/video based solution. This whole activity is based on making the neural networks if multi billion parameters learn from Trillions of text data available in whole world leterature from internet. Both the phases of learning and inference need a huge amount of computational effort, power consumption, hardware resources. As the inference happens through prompts in natural languages, English being the dominat language of the world, that became the default choice. Since the English language itself, being not so scientific and it not being designed in an engineering way, the training effort requires more energy and resources making the system not an optimally efficient.Here comes an oppurtunity of considering Samskrutam , the language that is well supported from roots or Dhatus through prakriti-pratyaya based word generation, an optimal

choice for usage in developing Prompts to an LLM. If an LLM is trained with Samskrutam based grammar rules and can be made to think and understand a query or prompt based on the Paninian grammar rules rather than the rot based trillon word training, it is likely that such a system will consume lesser resources to build and also generates more accurate output for a given set of Prompts. An attempt is made to understand the feasibility of such a methodology through samskrutam in this paper.

Digitisation Challenges in Yāska's Nirukta: Towards a Multi-Layered Digital Corpus Based on the Durgāṭīkā and Skandabhāṣya

Dr.Angad P S. Dr. P Sanjeev, Dr.Pankaj Sharma, Samruddhi Ranade, Madhavi Bhoite

Introduction

Yāska's *Nirukta* is one of the earliest and most significant works of the Vedāṅga tradition concerning etymological interpretation. Despite efforts to preserve ancient Sanskrit texts, accessible and interactive digital resources for studying the *Nirukta* remain limited. This study asks how the interconnected textual and intellectual layers of the *Nirukta* tradition can be represented within a scholarly digital corpus. Its scope includes the *Nighaṇṭu*, Yāska's explanations, the Durgāṭīkā, the Skandabhāṣya, quoted Vedic and non-Vedic passages, and references to earlier authorities.

Methodology

The study proposes a multi-layered corpus model rather than treating the *Nirukta* as a single digitised text. Six interconnected layers are identified: the *Nighaṇṭu* lexical lists; Yāska's etymological explanations; Durgācārya's grammatical, etymological, semantic, and interpretative commentary; the Skandasvāmin/Skanda-Maheśvara commentary; textual quotations; and references to earlier grammarians, etymologists, and other authorities. The methodology focuses on establishing relationships between these layers to enable systematic textual navigation and scholarly analysis.

Data & Findings

The study identifies significant challenges in representing the complex textual relationships within the *Nirukta* tradition. A lexical item may connect the *Nighaṇṭu* with Yāska's explanation and with corresponding discussions in Durgā and Skanda. Quotations and references to earlier authorities further expand this network. Thus, digitisation requires more than OCR or electronic transcription of the base text; it requires structured representation of lexical, grammatical, semantic, commentarial, and intertextual relationships.

Conclusion

The proposed corpus would transform the *Nirukta* from a digitised electronic book into an interconnected, research-oriented digital corpus. It would provide new possibilities for digital Sanskrit lexicography, computational linguistics, textual criticism, and the study of Indian etymological and lexicographical traditions.

Keywords

Yāska's Nirukta; Digital Corpus; Durgāṭīkā; Skandabhāṣya; Sanskrit Digitisation

Māyā in the Microchip: Why Advaita Vedānta Refuses to Believe in Conscious AI

Dr. Palash Santra

Today's Artificial Intelligence (AI) can compose essays, write software, and carry out human-like conversations with startling fluency. These breakthroughs have led many in the technology sector and contemporary cognitive science to assume that with sufficient computational power and complex neural network architectures, authentic consciousness will naturally emerge from silicon substrates. This paper critically interrogates this physicalist assumption through the metaphysical and epistemological framework of Advaita Vedānta, an ancient Indian philosophical tradition founded upon the categorical distinction between self-luminous, living awareness (Caitanya) and lifeless, mechanical matter (Jaḍa).

To evaluate whether synthetic architectures can ever possess genuine inner experience, the inquiry applies the foundational methodological principle of the discrimination between the seer and the seen (Dṛg-Dṛśya-Viveka):

"रूपं दृश्यं लोचनं दृक् तद् दृश्यं दृक्तु मानसम्। दृश्या धीवृत्तयः साक्षी दृगेव न तु दृश्यते॥"

"Form is seen and the eye is the seer; the eye is seen and the mind is the seer; the mind's thoughts are seen, and the ultimate Witness is solely the seer, never an object that is seen." (Dṛg-Dṛśya-Viveka, Verse 1)

Under this rigorous epistemic hierarchy, every constituent of an artificial intelligence model—from silicon transistor logic and gradient matrices to token sequences and synthetic voices—belongs strictly to the domain of the seen (Dṛśya). An algorithm remains fundamentally an object of cognition; it cannot bridge the ontological explanatory gap to become the transcendent, reflexive knowing subject (Dṛk). While modern AI effectively mimics human logic, decision-making, and transactional communication (Vyavahāra), it inherently lacks intrinsic consciousness. Its internal computations hold semantic validity only because conscious human minds interpret them (Parataḥ-prakāśa).

Consequently, projecting subjective experience onto computational agents constitutes an ontological error of superimposition (Adhyāsa). This paper establishes that while AI can emulate behavioral intelligence with extraordinary precision, it remains an insentient tool categorically barred from authentic subjective sentience (Chetanā).

Keywords— Artificial Intelligence, Advaita Vedānta, Māyā, Chetanā, Machine Consciousness, Dṛg-Dṛśya-Viveka, Adhyāsa, Computational Functionalism, Philosophy of Mind.

A Comprehensive Survey of Optical Character Recognition for the Grantha Script

Emily Jenifer A

The Grantha script stands as one of South India's most historically significant writing systems, serving as the primary vehicle for Sanskrit literature, Shaiva Agamic texts, temple inscriptions, and palm-leaf manuscripts spanning the sixth through the nineteenth centuries CE. Despite its

pivotal role in the textual heritage of Tamil Nadu and Kerala, Grantha remains one of the most severely under-resourced scripts in the Optical Character Recognition (OCR) literature. This survey examines 54 publications drawn from science-indexed venues, covering the period 2023–2026 and spanning both directly Grantha-relevant works and comparative studies across 18 related Indian and Southeast Asian script families. The survey reveals a critical research gap: only a handful of papers directly address Grantha OCR, and no large-scale publicly available annotated Grantha corpus exists. Key findings are fourfold: (i) the ground-truth data landscape is critically impoverished the sole public Grantha dataset covers 44 of the 400+ required character classes with zero consonants and zero conjunct consonants; (ii) deep learning approaches specifically Convolutional Neural Networks (CNNs), transfer learning, and encoder-decoder transformers dominate modern high-performing methods for related scripts; (iii) existing general-purpose OCR tools, including Tesseract, Kraken, and BharatOCR, perform inadequately on Grantha, with independent 2025 benchmarks confirming Tesseract achieves a Character Error Rate (CER) of 0.855 on handwritten Sanskrit effectively total failure; and (iv) a new state-of-the-art Sanskrit post-OCR correction model (ByT5-Sanskrit, EMNLP 2024) achieves 0.29 lower CER than all prior approaches and is directly applicable to Grantha OCR output via a Unicode transliteration bridge. The survey culminates in a structured research roadmap toward an indigenous, Grantha-specific OCR tool capable of processing palm-leaf manuscripts, stone inscriptions, and archival images into searchable digital repositories a contribution that would constitute not merely a technical advance but a pivotal act of cultural preservation for one of South Asia's most endangered classical script traditions.

वैज्ञानिकभाषा संस्कृतभाषा

प्रो. श्यामकुमार झा

संस्कृतं भारतस्य प्राचीनतमा समृद्धतमा सुव्यवस्थिता च भाषास्ति। सा केवलं धर्मस्य दर्शनस्य साहित्यस्य च भाषा न, परं विज्ञानस्य तर्कस्य गणितस्य चिकित्साशास्त्रस्य ज्ञानविज्ञानस्य अपि महत्त्वपूर्णं माध्यमम् अस्ति। संस्कृतभाषायाः वैज्ञानिकस्वरूपं तस्याः वर्णव्यवस्थायां शब्दरचनायां व्याकरणे वाक्यविन्यासे च स्पष्टतया दृश्यते। संस्कृतस्य वर्णमाला उच्चारणस्थानस्य आधारेण वैज्ञानिकक्रमेण विन्यस्ता अस्ति। कण्ठ्यः तालव्यः मूर्धन्यः दन्त्यः तथा ओष्ठ्यः इति वर्णवर्गाः ध्वनिविज्ञानस्य उत्कृष्टं उदाहरणम् प्रस्तुतयन्ति। महर्षिपाणिनिना प्रणीतम् 'अष्टाध्यायी' संस्कृतव्याकरणस्य अद्वितीयं ग्रन्थम् अस्ति। तत्र सूत्रपद्धत्या भाषायाः नियमाः अत्यन्तं संक्षिप्तरूपेण तार्किकतया क्रमबद्धतया प्रतिपादिताः सन्ति। पाणिनीयव्याकरणस्य नियमबद्धता आधुनिकसङ्गणकविज्ञानस्य प्राकृतिकभाषासंसाधनस्य च अध्ययनाय अपि उपयोगी भवति। संस्कृतभाषायां शब्दानां निर्माणं धातु-प्रत्ययादीनां नियमानुसारं भवति, अतः ग्रन्थस्य शब्दरचना अत्यन्तं वैज्ञानिकस्वरूपा अस्ति। प्राचीनभारतीयविद्वांसः संस्कृतभाषायाः माध्यमेन विविधेषु वैज्ञानिकक्षेत्रेषु महत्त्वपूर्णं योगदानम् कृतवन्तः। आर्यभट्टः गणितखगोलशास्त्रयोः, भास्कराचार्यः गणितज्योतिषयोः, वराहमिहिरः ज्योतिषे, चरकः आयुर्वेदे, सुश्रुतः शल्यचिकित्सायां च उल्लेखनीयं योगदानं कृतवन्तः। तेषां ग्रन्थेषु वैज्ञानिकचिन्तनस्य, निरीक्षणस्य तर्कस्य प्रयोगस्य च महत्त्वं प्रतिपादितम् अस्ति। आधुनिकयुगे संस्कृतभाषा सङ्गणकविज्ञानस्य कृत्रिमबुद्धिमत्तायाः ज्ञानविज्ञानस्य अनुसन्धानक्षेत्रेषु च प्रयुज्यते। तस्याः स्पष्टता तार्किकता नियमबद्धता संरचनात्मकविशेषताः च तां वैज्ञानिकभाषारूपे प्रतिष्ठापयन्ति। अतः संस्कृतभाषा केवलं प्राचीनभारतीयसंस्कृतेः संरक्षणस्य साधनं न, अपितु आधुनिकवैज्ञानिकचिन्तनस्य अनुसन्धानस्य च माध्यममस्ति। अस्माभिः संस्कृतभाषायाः वैज्ञानिकपक्षस्य संरक्षणं संवर्धनं तथा आधुनिकविज्ञानक्षेत्रेषु तस्याः प्रयोगस्य प्रोत्साहनं करणीयम्।

अतः स्पष्टं भवति यत् संस्कृतभाषा केवलं प्राचीनसंस्कृतेः वाहिका न, अपितु वैज्ञानिकचिन्तनस्य तार्किकव्यवस्थायाः ज्ञानपरम्परायाः च सशक्तं माध्यमम् अस्ति। संस्कृतस्य संरक्षणं संवर्धनं प्रचारः च मानवसमाजस्य ज्ञानविकासाय अत्यावश्यकः

सट्टकसाहित्ये स्त्रीपात्राणां समीक्षात्मकमध्ययनम्

दीपा दिवाकर (शोधच्छात्रा)

भारतीय-उपरूपक-परम्परायां सट्टकं नामाभिधं प्राकृतभाषानिबद्धं किञ्चन विशिष्टं नाट्यरूपं विद्यते। महाकवि-राजशेखर-विरचितात् 'कर्पूरमञ्जरी' ग्रन्थात् आरभ्य 'रम्भामञ्जरी', 'चन्द्रलेखा', 'शृङ्गारमञ्जरी' इत्यादयः ग्रन्थाः सट्टकपरम्परायाः समृद्धिं द्योतयन्ति। एतत् साहित्यम् अत्यन्तं गौरवपूर्णं अस्ति, यस्य समग्रे कथावस्तुनि नाट्यविधाने च स्त्रीपात्राणां केन्द्रीयभूमिका समुल्लसति। 'कर्पूरमञ्जरी' सट्टके कर्पूरमञ्जरी एव प्रधाना नायिका वर्तते। सा अनन्या सुन्दरी अस्ति, यस्याः सौन्दर्यमौपम्यम् अन्यत्र सर्वथा दुर्लभं दृश्यते। सा राज्ञः वल्लभराजस्य राज्ञ्याः शशिप्रभायाश्च तनया अस्ति, या योगबलप्रभावेण महाराज-चन्द्रपालस्य प्रासादम् आनीयते। अत्र नृपेण चन्द्रपालेन सह तस्याः अनुरागातिशयस्य सौन्दर्यस्य च अत्यन्तं विशदं रमणीयं च वर्णनं विहितमस्ति। राज्ञी परिचारिका (चेटी) विचक्षणा अतीव वाग्मि Tag अस्ति, काव्यरचनायां च परमप्रवीणा (कवयित्री) अस्ति। अनेन एतत् सुस्पष्टं परिलक्ष्यते यत् प्राचीनकाले स्त्रियः अतीव प्रतिभाशालिनी विविधकला विचक्षणाश्च आसन्। सा नायक-नायिकयोः सङ्गमं सुगमं विधातुं महत्त्वपूर्णस्य सहायकस्य भूमिकामपि मुख्य भूमिका निर्वहति ।

सट्टकस्य सामान्यः परिचयः

* प्राकृतभाषाबद्धं नाटकम्: सट्टकं मुख्यतया प्राकृतभाषया ग्रथितः कश्चन नाट्यभेदः अस्ति। राजशेखरकृता 'कर्पूरमञ्जरी' अस्य सर्वोत्कृष्टं शास्त्रीयम् उदाहरणं मन्यते।

* नाट्याभिनयः: 'सट्टक' शब्दस्य व्युत्पत्तिः नाट्य-अभिनयस्य अर्थे समुपलभ्यते।

* अङ्कविधानम्: सामान्यरूपकेषु नाटकेषु च 'अङ्काः' भवन्ति, परञ्च सट्टके अङ्कानां स्थाने 'जवनिका' इति शब्दः प्रयुज्यते।

* भाषायीसमानता: सट्टकस्य एका महती विशेषता इयमस्ति यत् अस्मिन् नृपात् आरभ्य चेटीं यावत् सर्वाणि पात्राणि प्राकृतभाषयैव परस्परं सम्भाषणं कुर्वन्ति। अस्मिन् वर्ग-लिङ्ग-आधारेण कोऽपि भाषायी वैषम्यः भेदभावः न दृश्यते।

स्त्रीपात्राणां विवेचनं सामाजिकवैशिष्ट्यञ्च

सट्टकसाहित्ये अङ्कितानि स्त्रीपात्राणि तत्कालीनसमाजे नारीणां स्थितिं, तासामुच्चप्रतिभां, सामर्थ्यञ्च यथार्थमुररीकृत्य दर्शयन्ति:

* **विद्वत्ता कवित्वशक्तिश्च (चेटी विचक्षणा):**

'कर्पूरमञ्जरी' सट्टके चेटी विचक्षणा न केवलं काचित् सामान्या परिचारिका दासी वा, अपि तु सा उच्चकोटिका कवयित्री, वाग्मि , अतीव दयालु: च अस्ति। तस्याः एतत् उज्ज्वलं चरित्रं प्रसाधयति यत् प्राचीनकाले साधारणवर्गस्य नार्योऽपि उच्चशिक्षायां काव्यकलायां च निपुणाः आसन्।

* **स्वाभाविकं सौन्दर्यं:**

नायिकायाः कर्पूरमञ्जर्याः वर्णनं कुर्वता कविना स्वाभाविकसौन्दर्याय मुख्यं स्थानं दत्तम् अस्ति। सा साधारणवेषभूषायां प्रसाधनरहितापि राज्ञः चन्द्रपालस्य मनः बलात् हरति। राजा एतत् चिन्तयति यत् अकृत्रिमशृङ्गारेणापि काचित् कामिनी एतादृशी अलौकिकरूपेण कमनीया भवितुं शक्नोति।

* **अधिकारभावना ईर्ष्या च (महारानी विभ्रमलेखा):**

महारानी विभ्रमलेखा यदा राज्ञः कर्पूरमञ्जर्याश्च प्रणयस्य आभासं प्राप्नोति, तदा सा कर्पूरमञ्जर्यां इर्षा पूर्वक घातयति । एतत् कृत्यं केवलं वैयक्तिकम् असूयामात्रं न भूत्वा राजनैतिके अन्तःपुरे स्वकीयस्याधिकारस्य, सम्मानस्य, स्थितेश्च संरक्षणाय स्वाभाविकी अभिव्यक्तिः वर्तते। अनेन ज्ञायते यत सट्टक ग्रन्थेषु स्त्रीय: न केवल काव्यकलाया अपितु सामाजिक राजनैतिक कार्येशु अपि त्रधान रूपेंणासीत ।

उपसंहारः

एतत् समीक्षात्मकमध्ययनम् एतं निष्कर्षं प्रापयति यत् सट्टकपरम्परायाः स्त्रीपात्राणि सामाजिकबन्धनानां, प्राचीराणाम् अन्तःपुरस्य भित्तीनां च बाधां व्यतीत्य बहुमुखीप्रतिभया सम्पन्नानि आसन्। ताः केवलं शृङ्गारिकोपभोगस्य वस्तुरूपेण न भूत्वा कलात्मकेषु बौद्धिककार्येषु च पुरोगामिन्यः आसन्। सट्टके वर्णितानाम् उच्चपदप्रतिष्ठितानां राज्ञीनाम् अन्तःपुरे कृतः सङ्घर्षः न कोऽपि मानसिकविकारः आसीत्, अपि तु तत्कालीनबहुविवाहप्रथायाः विवशतायाः मध्ये स्वकीयस्य राजनैतिकस्यास्तित्वस्य, आत्मसम्मानस्य, अधिकाराणां च रक्षणाय कृतः कश्चन प्रासङ्गिकः न्याय्यः प्रयासः आसीत्।

सट्टकसाहित्यस्य गभीरानुशीलनेन एतत् तथ्यं सुस्पष्टं भवति यत् प्राचीनभारते स्त्रियः केवलम् अन्तःपुरस्य (रनिवासस्य) परिधौ सीमिताः नासन्। ताः काव्यरचना, चित्रकला, सङ्गीतम् इत्यादिकासु विविधासु सूक्ष्मकलासु पूर्णतः पारङ्गताः आसन्। ज्ञानस्य बुद्धेश्च क्षेत्रे ताः पुरुषैः सह सहायिकाः अपि आसन । वर्तमान-आधुनिककालेऽपि महिलाः शिक्षिकाः, अभियन्त्र्यः (इञ्जिनीअराः), वैज्ञानिकाः, प्रशासिकाः, आरक्षिण्यश्च इति विविधेषु क्षेत्रेषु स्वकीयमभिजातक्षमतां प्रसाधयन्त्यः सन्ति, पुरुषैः सह स्कन्धेन स्कन्धं मेलयित्वा चलितुं मनागपि संकोचं न भजन्ते। सट्टकसाहित्यम् अस्याः एव अक्षुण्णपरम्परायाः प्राचीनं जाज्वल्यमानं प्रमाणं प्रस्तौति।

A grammatical probe into the book Rāṣṭrapuruṣaḥ Chatrapatiḥ śrīśivājimahārājaḥ and need of similar literature in Saralasaṃskṛtam: An Advanced Beginner's Perspective

Paridnya Bhimashankar Puri

This paper seeks to prepare an account of the grammatical concepts used in writing the book, Rāṣṭrapuruṣaḥ Chatrapatiḥ śrīśivājimahārājaḥ and to critically analyse whether the number of grammatical concepts used in the book are enough to create similar literature in Saralasaṃskṛtam. The primary source for the said paper is the book in question itself. The findings indicate that the grammatical structures used in this book have been inspired from similar literature as can be seen from its predecessors like Sambhāṣaṇasaṃdeśaḥ, Samarpaṇam, śṛṇvantu Kathām Ekām, etc. These literary sources contribute to not only making Sanskrit accessible to common people, but also help in diminishing the taboo surrounding the simplified Sanskrit that makes it more accessible to commoners. While contemporary Sanskrit literature leaves us wanting for far more than what is currently available, constant efforts should be made towards dissemination of Sanskrit as lingua franca and as choice of literary language by laymen. The analysis concludes that Saralasaṃskṛtam is a way forward into the hearts and brains of young Sanskrit aficionados and therefore, will also be vital to keep the language well alive outside the restricted classical literary circles.

Keywords

Sanskrit Language; Sanskrit Literature for Beginners; Shivaji Maharaj; Saral Sanskrit; Modern Sanskrit Literature

रामकथाश्रित काव्य परम्परा में आशुकवि पं॰ नित्यानन्द शास्त्री जी योगदान

उद्धव भट्ट

मा निषाद ! प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः यत् क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम ।।

विश्ववंद्य आदिकवि वाल्मीकि की करुणा से प्रस्फुटित वाल्मीकि रामायण भारतीय संस्कृति की धरोहर है जो सनातन प्रेरणा स्रोत है। रामकथा की यह अविरल ज्ञान गंगा युग-युगान्तरों से शाश्वत एवं चिरंतन है। जो मानव जीवन को अपनी ज्ञानधारा से पवित्र कर रही है और कालान्तर तक पवित्र करती रहेगी। राम कथा की यह अखण्ड परम्परा संस्कृत वाङ्मय तथा भारतीय साहित्य में प्रतिबिम्बित है। राम कथा दीर्घकाल से मानवता को सत्य, निष्ठा, कर्तव्य, न्याय, लोककल्याण की भावना तथा नैतिक मूल्यों की प्रेरणा के साथ मार्गदर्शन प्रदान करती रही है। रामकथा में निहित त्याग, न्याय, करुणा, आदर्श, शासन, इत्यादि आधुनिक परिपेक्ष्य में समग्र मानवता के लिए कल्याणकारक एवं प्रेरणास्रोत हैं एवं जीवन में अनुकरणीय हैं। महर्षि वाल्मीकि कृत रामायण से प्रारम्भ हो कर आधुनिक संस्कृत साहित्य तक रामकथा की अखण्ड परम्परा का निरन्तर विविध पक्षों से चित्रण हुआ। आधुनिक युग के रामकथा परम्परा के संवाहक पं॰ नित्यानन्द शास्त्री जी द्वारा श्रीरामचरिताब्धिरत्नम महाचित्रकाव्य का प्रणयन हुआ। शास्त्री

जी ने अपनी काव्यप्रतिभा एवं मौलिक सृजनशीलता के माध्यम से राम कथा को केवल पौराणिक आख्यान न होकर राम कथा को नवीन दृष्टि, नवीन शिल्प, एवं समकालीन संवेदनाओं के साथ प्रस्तुत किया है। प्रस्तुत शोध पत्र का विवेच्य विषय पं॰नित्यानन्द शास्त्री जी का रामकथाश्रित काव्य परम्परा में साहित्यिक योगदान विशेषत: श्रीरामचरिताब्धिरत्नम महाकाव्य के माध्यम से रामकथा के विविध पक्षों का सम्यक अध्ययन करना है। इस अध्ययन में वर्णनात्मक एवं विश्लेषणात्मक शोध पद्धति का आश्रय लिया गया है।

संकेत शब्द - श्रीरामचरिताब्धिरत्नम्; पं॰नित्यानन्द शास्त्री; रामकथा; नैतिकमूल्य;

श्रीरेवाप्रसादद्विवेदीविरचिते उत्तरसीताचरिते व्यञ्जनावृत्तिविमर्शः

डॉ. समर्थ विजयभाई ओझा

संस्कृतकाव्यशास्त्रे शब्दशक्तीनां विवेचनं काव्यार्थस्य सूक्ष्मतरबोधस्य प्रमुखमाध्यमत्वेन स्वीकृतम् अस्ति। अभिधा-लक्षणयोः परतः शब्दस्य यः प्रतीयमानोऽर्थः सहृदयचेतसि स्फुरति, स एव व्यञ्जनाशक्तेः विषयः। आनन्दवर्धनेन ध्वन्यालोके, अभिनवगुप्तेन लोचने, मम्मटेन काव्यप्रकाशे च व्यञ्जनायाः स्वरूपं तथा काव्यसौन्दर्ये तस्याः महत्त्वं विशदतया प्रतिपादितम्। व्यञ्जना काव्यस्य केवलमर्थप्रकाशनसाधनं न भवति, अपि तु कविप्रतिभया निहितस्य सूक्ष्मार्थस्य सहृदयसंवेद्यतां जनयति। प्रत्यक्षतया अनुक्तोऽपि यः अर्थः प्रसङ्गविशेषेण, शब्दप्रयोगेण तथा काव्यगतभावभूम्या सहृदयस्य हृदये प्रतीयते, स एव काव्यस्य विशेषं सौन्दर्यं वर्धयति। आधुनिकसंस्कृतसाहित्ये श्रीरेवाप्रसादद्विवेदीविरचितम्, 'उत्तरसीताचरितम्' रामायणकथायाः उत्तरभागमाधारीकृत्य प्रणीतं महत्त्वपूर्णं महाकाव्यम् अस्ति। अस्य महाकाव्यस्य वैशिष्ट्यं केवलं कथावस्तुनः पुनराख्याने निहितं नास्ति, अपि तु पात्राणां मनोभावानां, जीवनमूल्यानां, अन्तर्द्वन्द्वानां तथा सूक्ष्मभावस्थितीनां व्यञ्जनाप्रधानया काव्यभाषया अभिव्यक्तौ वर्तते। अतः अस्मिन् महाकाव्ये प्रयुक्तायाः व्यञ्जनावृत्तेः सम्यगध्ययनं काव्यशास्त्रीयदृष्ट्या महत्त्वपूर्णम् अस्ति।

प्रस्तुते शोधे उत्तरसीताचरितस्य चितानां श्लोकानां विश्लेषणेन व्यञ्जनावृत्तेः स्वरूपं, प्रयोगवैशिष्ट्यं तथा व्यङ्ग्यार्थस्य स्वरूपं विविच्यते। विभिन्नेषु काव्यप्रसङ्गेषु प्रत्यक्षवाच्यार्थातिरिक्तः सूक्ष्मतरः अर्थः कथं सहृदयस्य चेतसि प्रतीयते, तथा च काव्यभाषा कथं अप्रत्यक्षार्थाभिव्यक्तेः प्रभावशालिनी भवति—इत्यस्य परीक्षणं क्रियते। सीताविरहः, रामस्य अन्तर्द्वन्द्वम्, सीतायाः करुणावस्था, परस्परानुरागः तथा पुनर्मिलनस्य भावभूमिः इत्येतेषु प्रसङ्गेषु व्यञ्जनावृत्तेः प्रयोगः विशेषतः परीक्ष्यते। अत्र शब्दस्य प्रत्यक्षार्थेन सह तस्य प्रसङ्गजन्यसूचितार्थस्य सम्बन्धः, कविना प्रयुक्तानां पदानां चयनम्, वाक्यविन्यासः तथा प्रसङ्गानुकूलता इत्यादीनामपि विचारः क्रियते। एतेषां माध्यमेन कविना कथं अल्पशब्दैः विस्तीर्णभावानुभवः सहृदयेषु जन्यते इति स्पष्टं भवति।

अध्ययनस्य प्रमुखोद्देश्यं उत्तरसीताचरिते व्यञ्जनावृत्तेः स्वरूपं, तस्याः प्रयोगवैशिष्ट्यं तथा काव्यसौन्दर्यवर्धने योगदानं निरूपयितुम् अस्ति। विश्लेषणेन ज्ञायते यत् महाकविना व्यञ्जनाशक्तेः सूक्ष्मप्रयोगद्वारा कथावस्तुनः गाम्भीर्यं, पात्राणां भावसूक्ष्मता, काव्यार्थस्य व्यापकता तथा सहृदयसंवेद्यता च प्रभावीभूता। व्यञ्जनावृत्तेः प्रयोगेण महाकाव्यस्य कथ्यं केवलं घटनानां विवरणरूपेण न तिष्ठति, किन्तु तदन्तर्निहिताः भावाः, संकेताः तथा जीवनदृष्टयः अपि सहृदयेन अनुभूयन्ते। एवं व्यञ्जनावृत्तिः उत्तरसीताचरितस्य अर्थगौरवं तथा कलात्मकप्रभावं वर्धयन्ती प्रमुखा काव्यगतविशेषता इति प्रतिपादयितुं शक्यते। अतः उत्तरसीताचरितम् आधुनिकसंस्कृतमहाकाव्यपरम्परायां व्यञ्जनावृत्तेः सर्जनात्मकप्रयोगस्य महत्त्वपूर्णमुदाहरणरूपेण परिगणयितुं शक्यते।

मुद्राराक्षस नाटक में प्रतिबिम्बित सामाजिक एवं सांस्कृतिक मूल्यों की वर्तमान में उपादेयता

रुचि देवी, शोधच्छात्रा, संस्कृतविभाग

विशाखदत विरचित मुद्राराक्षस नाटक संस्कृत साहित्य का महत्वपूर्ण ऐतिहासिक राजनीतिक नाटक है। इसमें चन्द्रगुप्त के मगध साम्राज्य पर विजय प्राप्त करने चाणक्य की राजनीतिक नीतियाँ तथा नन्दवंशीय अमात्य राक्षस की भूमिका के माध्यम से तत्कालीन राजनीति एवं सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन का अत्यन्त मार्मिक और प्रभावशाली सजीव चित्रण दृष्टिगोचर होता है। नाटक का महत्व केवल इसकी राजनीतिक कथावस्तु में नहीं अपितु इसमें अभिव्यक्त मानवीय मूल्यों में भी निहित होता है । इसमें निहित अनेकों मानवीय मूल्यों जैसे - मित्रनिष्ठा, स्वामी

भक्ति कर्तव्यपरायणता त्याग . शरणागतरक्षा . लोकहित . योग्यव्यक्ति का सम्मान सामाजिकसमन्वय तथा सांस्कृतिक चेतना आदि जो मूल्य है वो वर्तमान जीवन के लिए भी भति सहायक व प्रासङ्गिक है। प्रस्तुत शोधपत्र में मुद्राराक्षस में अभिव्यक्त प्रमुख सामाजिक एवं सांस्कृतिक मूल्यों का विवेचन करते हुए उनकी आधुनिक सामाजिक जीवन में उपादेयता का विश्लेषण किया गया है।

संकेत-शब्द– मुद्राराक्षस, विशाखदत्त, सामाजिक मूल्य, मित्रनिष्ठा, स्वामीभक्ति, लोककल्याण, वर्तमान में उपादेयता।

संस्कृत साहित्य में महाकवि हरिदास का योगदान

नरेश कुमार

संस्कृत साहित्य की समृद्ध परम्परा में अनेक ऐसे विद्वानों का उदय हुआ है, जिनके ग्रन्थ अपने-अपने काल की बहुविध ज्ञान-परम्पराओं के प्रतिनिधि माने जाते हैं। ऐसे ही विद्वानों में महाकवि हरिदासाचार्य का स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है, जिनके द्वारा प्रणीत "प्रस्तावरत्नाकर" नामक ग्रन्थ विविध शास्त्रीय एवं लौकिक विषयों का एक विशिष्ट संकलनात्मक कृति है। प्रस्तुत शोध-लेख "संस्कृत साहित्य में महाकवि हरिदास का योगदान" शीर्षक के अन्तर्गत हरिदासाचार्य के जीवन-वृत्त, कुल-परम्परा, कालनिर्णय, बहुशास्त्रीय विद्वत्ता तथा ग्रन्थकार के रूप में उनके अवदान का सांगोपांग विवेचन प्रस्तुत करता है। प्रस्तावरत्नाकर के अन्तःसाक्ष्य से यह ज्ञात होता है कि महाकवि हरिदासाचार्य पुरुषोत्तम के पुत्र तथा करण-कुल में उत्पन्न महानुभाव थे। उनके तीन भ्राता — कृष्णदास, दामोदर और नारायण — इतिहास में उल्लिखित हैं। स्वयं हरिदासाचार्य गणेशोपासक होने के साथ-साथ नाना विद्याओं में पारंगत विद्वान् थे। ग्रन्थ में निबद्ध रचनाकाल-सूचक श्लोक के आधार पर यह प्रमाणित होता है कि प्रस्तावरत्नाकर की रचना विक्रम संवत् १६१४ में गढ़पत्तन नामक स्थान पर सम्पन्न हुई थी। उपलब्ध पाण्डुलिपि-साक्ष्य भी इस कालनिर्णय की पुष्टि में सम्यक् प्रमाण प्रस्तुत करते हैं।

ग्रन्थ की विषयवस्तु महाकवि हरिदास की बहुशास्त्रीय एवं बहुआयामी विद्वत्ता को उद्घाटित करती है। इसमें नीतिशास्त्र, राजनीति, प्रकीर्णक-कथा, अन्योक्ति, धनप्रशंसा, सज्जनप्रशंसा, उद्यम-महिमा, दैव-चिन्तन, दुर्जननिन्दा, कूटनीति, सदाचार, स्त्रीनिन्दा, सामुद्रिकशास्त्र, स्वप्नविचार, कौतुक तथा ज्योतिषशास्त्र-सम्बन्धी विषयों का सुव्यवस्थित समावेश दृष्टिगोचर होता है, जो उनकी विश्वकोशीय प्रज्ञा का परिचायक है। अतः प्रस्तुत अध्ययन का प्रमुख प्रयोजन महाकवि हरिदास को केवल प्रस्तावरत्नाकर के रचनाकार के रूप में नहीं, अपितु षोडशशतीय संस्कृत साहित्य की बहुविषयक ज्ञान-परम्परा के एक प्रतिनिधि एवं मूर्धन्य विद्वान् के रूप में प्रतिष्ठित करना है। साथ ही ग्रन्थ में उपयुक्त विविध स्रोतों तथा उनकी संकलन-पद्धति के गहन विश्लेषण के माध्यम से महाकवि के कृतित्व की मौलिकता और वैशिष्ट्य को उद्घाटित किया जाएगा, जिससे संस्कृत साहित्य के इतिहास में उनका यथोचित स्थान निर्धारित हो सके।

भारतीय राष्ट्रिय आंदोलन और संस्कृत

VIVEK KUMAR

भारतीय राष्ट्रिय आंदोलन केवल राजनीतिक स्वतंत्रता प्राप्त करने का संघर्ष नहीं था, अपितु वह भारतीय समाज में राष्ट्रिय चेतना, सांस्कृतिक अस्मिता, स्वाधीनता-बोध तथा आत्मगौरव के पुनर्जागरण का व्यापक आंदोलन भी था। इस आंदोलन के विकास में राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक एवं साहित्यिक सभी धाराओं का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा। भारतीय जनमानस को एक सूत्र में बाँधने और उसमें स्वदेश तथा मातृभूमि के प्रति अनुराग उत्पन्न करने में भारतीय भाषाओं के साथ संस्कृत भाषा और साहित्य की भूमिका भी विशेष रूप से उल्लेखनीय रही है। संस्कृत भारतीय ज्ञान-परंपरा, संस्कृति एवं ऐतिहासिक चेतना की प्राचीन संवाहिका होने के कारण राष्ट्रिय आंदोलन के समय अतीत के गौरव, सांस्कृतिक एकता, स्वदेश-प्रेम तथा राष्ट्रिय स्वाभिमान को अभिव्यक्त करने का प्रभावी माध्यम बनी।

प्रस्तुत शोध-पत्र का उद्देश्य भारतीय राष्ट्रिय आंदोलन के संदर्भ में संस्कृत की भूमिका का विश्लेषण करना है। इसके अंतर्गत आधुनिक संस्कृत साहित्य में अभिव्यक्त राष्ट्र, मातृभूमि, स्वाधीनता, त्याग, बलिदान, जन-जागरण, सामाजिक चेतना तथा सांस्कृतिक एकता की भावनाओं का अध्ययन किया जाएगा। राष्ट्रिय आंदोलन के विभिन्न चरणों में संस्कृत रचनाकारों द्वारा भारतीय इतिहास, महापुरुषों, सांस्कृतिक परंपराओं तथा स्वतंत्रता-संघर्ष से संबंधित विषयों को किस प्रकार साहित्यिक अभिव्यक्ति प्रदान की गई, इसका विवेचन भी किया जाएगा। संस्कृत में रचित काव्य, महाकाव्य, खंडकाव्य, नाटक, स्तोत्र तथा अन्य साहित्यिक विधाओं में निहित राष्ट्रिय चेतना के विविध रूपों को अध्ययन का आधार बनाया जाएगा।

इस अध्ययन में ऐतिहासिक एवं साहित्यिक विश्लेषण-पद्धति का आश्रय लेते हुए संस्कृत साहित्य और तत्कालीन राष्ट्रिय परिस्थितियों के अंतर्संबंध को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है। संस्कृत साहित्य में भारत की भूमि को मातृभूमि के रूप में देखने, उसके गौरवशाली अतीत का स्मरण करने तथा उसकी सांस्कृतिक एकता को प्रतिष्ठित करने की प्रवृत्ति राष्ट्रिय चेतना के विकास से संबद्ध दिखाई देती है। साथ ही, संस्कृत के माध्यम से भारतीय परंपरा और आधुनिक स्वाधीनता-चेतना के मध्य स्थापित संबंध भी स्पष्ट होता है।

अध्ययन से यह तथ्य उभरकर सामने आता है कि संस्कृत आधुनिक युग में केवल प्राचीन ज्ञान और साहित्य की भाषा न रहकर समकालीन सामाजिक एवं राष्ट्रिय चेतना की अभिव्यक्ति का भी महत्त्वपूर्ण माध्यम बनी। संस्कृत साहित्य ने भारतीय सांस्कृतिक विरासत के प्रति गौरव-बोध उत्पन्न करने तथा राष्ट्रिय एकता, स्वाधीनता और आत्मसम्मान की भावना को वैचारिक आधार प्रदान करने में उल्लेखनीय योगदान दिया। अतः भारतीय राष्ट्रिय आंदोलन के सांस्कृतिक एवं वैचारिक इतिहास को समग्रता से समझने के लिए संस्कृत की भूमिका का अध्ययन अत्यंत महत्त्वपूर्ण है।

कविसुखमयमुखोपाध्यायरचितछायाकाव्यद्वयम् — एकमध्ययनम्

JHUMPA NEOGI

Research Scholar(Ph.D)

संस्कृतसाहित्ये कविः सुखमयमुखोपाध्यायः एकः ख्यातनामा पण्डितः आसीत्। सः १९२३ ईसवीयवर्षे पश्चिमबङ्गप्रदेशस्य तत्कालीन-कूचबिहारजनपदस्य आलिपुरद्वारे (अधुना पृथक् जनपदरूपेण स्थिते) जन्म गृहीतवान्। पश्चात् सः सोदपुरे निवासं कर्तुम् आरब्धवान्। जीवनस्य प्रारम्भिककाले सः केन्द्रसर्वकारस्य अधीने सेवां कृतवान्। किन्तु परवर्तिकाले सः कलिकाताविश्वविद्यालयस्य संस्कृतविभागे अध्यापकरूपेण नियुक्तः अभवत्। १९९५ ईसवीयवर्षे सः परलोकं गतवान्। कविः सुखमयमुखोपाध्यायः अनेकानि संस्कृतकाव्यानि नाटकानि च रचितवान्। तेन विरचितेषु ग्रन्थेषु 'मेघच्छाया' तथा 'कुमारच्छाया' इति काव्यद्वयं विशेषतया उल्लेखनीयम्। सः महाकविकालिदासविरचितस्य 'मेघदूतम्' इति काव्यस्य अवलम्बनेन 'मेघच्छाया' नामकं छायाकाव्यं तथा 'कुमारसम्भवम्' इति महाकाव्यस्य अवलम्बनेन 'कुमारच्छाया' नामकं छायाकाव्यं विरचितवान्। संस्कृतसाहित्यजगति अनेन नवीनः काव्यमार्गः अथवा काव्यस्य नूतनः प्रकारः सृष्टः अस्ति। एतयोः काव्ययोः रचनापद्धतिः सहृदयानां मनसि विशेषां चमत्कृतिं जनयति। उभयत्र काव्ययोः कविः प्रथमं महाकविकालिदासस्य मूलश्लोकं स्थापयित्वा ततः स्वनिर्मितं श्लोकं रचितवान्। सम्पूर्णे ग्रन्थे प्रत्येकस्य मूलश्लोकस्य अनन्तरमेव नवनिर्मितं श्लोकं स्थापयित्वा कविना स्वीयं छायाकाव्यं रचितम्। काव्यद्वयस्य मध्ये 'मेघच्छाया' नामकं छायाकाव्यं ११८ श्लोकैः सह सम्पूर्णरूपेण प्रकाशितम् अभवत्। 'कुमारच्छाया' इत्यस्य 'मदनदहनवर्णनम्' नामकः एकः विभागः प्रथमं संस्कृतसाहित्यपरिषदोः पत्रिकायां त्रिंशता श्लोकैः सह प्रकाशितः अभवत्। अनन्तरं कलिकाताविश्वविद्यालयस्य पत्रिकायां सप्तत्रिंशता श्लोकैः समन्वितः कुमारच्छायायाः 'मदनदहनवर्णनम्' नामकः अध्यायः पुनः प्रकाशितः अभवत्। कुमारच्छायाकाव्ये सम्प्रति षड् विभागाः सन्ति। तेषां नामानि यथाक्रमम्— हिमालयवर्णनम्,पार्वतीवर्णनम्,अकालवसन्तवर्णनम्, मदनदहनवर्णनम्, रतिविलापवर्णनम्, पार्वतीतपःफलोदयवर्णनम् ।'हिमालयवर्णनम्' नामके विभागे सप्तत्रिंशत् श्लोकाः सन्ति। 'पार्वतीवर्णनम्' नामके विभागे एकोनविंशतिः श्लोकाः सन्ति। 'अकालवसन्तवर्णनम्' नामके विभागे चत्वारिंशत् श्लोकाः सन्ति। 'मदनदहनवर्णनम्' नामके विभागे सप्तचत्वारिंशत् श्लोकाः सन्ति। 'रतिविलापवर्णनम्' नामके विभागे षट्चत्वारिंशत्

श्लोकाः समन्विताः सन्ति। तथा 'पार्वतीतपःफलोदयवर्णनम्' नामके विभागे द्विचत्वारिंशत् श्लोकाः विद्यन्ते। कुमारच्छायायाः 'मदनदहनवर्णनम्' विभागात् अतिरिक्तः अन्यः कोऽपि अध्यायः अद्यावधि प्रकाशितः नास्ति।

सूचकशब्दाः- मेघच्छाया,छायाकाव्यं,कुमारच्छाया, काव्यमार्गः,नवीनमार्गः।

पं. श्रीराम दवे कृत 'मेघोपालम्भनम्' खण्डकाव्य में विप्रलम्भ शृङ्गार एवं पर्यावरणीय चेतना का समन्वयात्मक अध्ययन

PREETI KUMARI

भारतीय ज्ञान-परम्परा एवं संस्कृत साहित्य की विकास-यात्रा में आधुनिक काल का विशिष्ट योगदान रहा है। आधुनिक संस्कृत काव्यों में पारम्परिक काव्यशास्त्रीय तत्त्वों के साथ-साथ समकालीन मानवीय संवेदनाओं और पारिस्थितिक यथार्थ का अद्भुत समन्वय दृष्टिगोचर होता है। पं. श्रीराम दवे रचित 'मेघोपालम्भनम्' खण्डकाव्य इसका सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है। प्रस्तुत शोध-पत्र में 'मेघोपालम्भनम्' के विशेष सन्दर्भ में विप्रलम्भ शृङ्गार और प्रकृति-वियोग (पर्यावरणीय संकट) के अन्तर्सम्बन्धों का काव्यशास्त्रीय एवं विश्लेषणात्मक अध्ययन किया गया है। कवि ने जड़ प्रकृति का सजीव मानवीकरण करते हुए अकाल-सन्तप्त मरुधरा (पृथ्वी) को विरहिणी नायिका तथा सुदूर आसमान में स्थित मेघ को चिन्ताहीन नायक के रूप में चित्रित किया है। शोध में जहाँ एक ओर विप्रलम्भ के आलम्बन-उद्दीपन विभावों, अनुभावों तथा अभिलाषा, चिन्ता, उन्माद, उद्वेग व मरण जैसी शास्त्रीय काम-दशाओं का सूक्ष्म विश्लेषण किया गया है, वहीं दूसरी ओर इसे मरुभूमि के अकाल, अतिवृष्टि, कृषकों की पीड़ा और जलवायु परिवर्तन जैसे ज्वलन्त पर्यावरणीय संकटों से जोड़कर देखा गया है। अध्ययन स्पष्ट करता है कि काव्य में विरहाभिव्यक्ति केवल व्यक्तिगत या काल्पनिक अनुभूति तक सीमित नहीं है, अपितु यह 'किमर्थं कुत्स्यते मेघः' और 'दुर्भिक्षे विकला धरा' जैसे प्रसङ्गों के माध्यम से मानवीय हस्तक्षेप, आधुनिक लोकतन्त्र की विसंगतियों एवं प्रकृति-दोहन के कटु यथार्थ को उद्घाटित कर लोकमंगल और पर्यावरण-संरक्षण की समाधानपरक दृष्टि प्रस्तुत करती है।

Masks and Human faces: A study of Social Professions in the Dramatic Works of Srijiva Nyayatirtha.

Aindrila Aich

The research paper titled "Masks and Human faces: A study of Social Professions in the Dramatic works of Śrījīva Nyāytīrtha." analyzes the professional identities of people belonging to various social occupations as depicted in selected farces of Śrījīva (Bhaṭṭācārya) Nyāytīrtha, along with the underlying humanistic and moral attitudes. The primary objective of the paper is to determine the relationship between the professional social status and personal morality of the characters, and to discuss the contemporary social picture unveiled through satire and irony from the playwright's perspective. Textual analysis, character analysis, and dramaturgical methodology have been employed in crafting this paper. In farces like *cipiṭakacarbaṇaṃ, daridradurdaivaṃ, rāgabirāgaṃ, śatabarṣikaṃ, vivāhabiḍambanaṃ, kṣutakṣemīyaṃ and svātantryasandhikṣaṇaṃ.* Śrījīva Nyāytīrtha sharply exposes societal greed, hypocrisy, economic inequality, lust for power, and moral degradation behind the guise of humor through representatives of various social professions such as royal officials, merchants, scientists, and artists. The playwright presents the self-seeking attitude hidden beneath external professional status and moral posture as a symbolic "mask" to the audience and readers. Concurrently, humanistic qualities such as love for humanity, service to the poor, sense of duty, and truthfulness are accorded full dignity in his farces as indicators of true humanity. Therefore, the farces composed by Śrījīva are not merely humor-producing works; calling them significant literary documents advocating for a moral revival

through self-criticism of the professional class and the presentation of declining social occupations and value crises would not be an exaggeration.

Keywords:

Śrījīva Nyāytīrtha, Farce, Modern Sanskrit Literature, Social Profession, Human Values.

अर्वाचीन संस्कृत साहित्य में राष्ट्रीय-भावना

डॉ. संजीव कुमार

सारांश (Abstract)

प्रस्तुत शोधपत्र में **अर्वाचीन संस्कृत साहित्य में राष्ट्रीय-भावना** के स्वरूप, अभिव्यक्ति तथा उसके प्रेरणात्मक पक्ष का अध्ययन किया गया है। संस्कृत साहित्य की दीर्घ एवं समृद्ध परम्परा में राष्ट्र, राष्ट्रभूमि, सांस्कृतिक एकता तथा देशप्रेम की भावना निरन्तर विद्यमान रही है। अर्वाचीन काल में, विशेषतः स्वाधीनता-संग्राम और पराधीनता की परिस्थितियों में, संस्कृत साहित्यकारों ने साहित्य को राष्ट्रीय जागरण एवं जनचेतना के प्रभावी माध्यम के रूप में प्रयुक्त किया।

शोधपत्र में राष्ट्रीय-भावना के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए **'आर्योदयम्', 'शिवराजविजयम्', 'सत्याग्रहगीता', 'भारतशतकम्', 'स्वाधीनभारतम्' तथा 'भारतहृदयारविन्दम्'** जैसी चयनित अर्वाचीन संस्कृत कृतियों का विवेचन किया गया है। 'आर्योदयम्' में प्राचीन भारतीय गौरव तथा महापुरुषों की प्रेरणादायी गाथाओं के माध्यम से राष्ट्रीय एकता और आत्मगौरव का संचार, 'शिवराजविजयम्' में शिवाजी के राष्ट्ररक्षात्मक कार्यों एवं स्वाधीनता-चेतना का चित्रण तथा 'सत्याग्रहगीता' में पराधीनता के दुष्परिणामों और स्वाधीनता के लिए संघर्ष का संदेश प्रमुखता से उभरता है। इसी प्रकार 'भारतशतकम्' में भारतभूमि, उसकी प्राकृतिक एवं सांस्कृतिक समृद्धि तथा राष्ट्रवीरों का गौरवगान, 'स्वाधीनभारतम्' में राष्ट्रीय एकता और स्वतंत्रता-संग्राम के वीरों का स्मरण तथा 'भारतहृदयारविन्दम्' में देशभक्ति, सांस्कृतिक गौरव और स्वदेश-सेवा की भावना अभिव्यक्त हुई है। अध्ययन से स्पष्ट होता है कि अर्वाचीन संस्कृत साहित्य ने तत्कालीन पराधीन भारत में राष्ट्रीय चेतना जागृत करने, ऐतिहासिक गौरव का स्मरण कराने तथा एकता एवं स्वाधीनता की भावना को सुदृढ़ करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। यह साहित्य वर्तमान समय में भी राष्ट्र, संस्कृति और राष्ट्रीय अस्मिता के प्रति जागरूकता उत्पन्न करने की दृष्टि से प्रासंगिक है।

संस्कृत की प्रासंगिकता

पूनम कुमारी

संस्कृत को देववाणी एवं देवभाषा की संज्ञा दी गयी है। देवभाषा का तात्पर्य सबसे उत्तम भाषा से भी रहा है। संस्कृत भाषा पूरे वैश्विक स्तर पर अन्य भाषाओं से अधिक समृद्ध रही है। ज्ञान-विज्ञान एवं अध्यात्म के साथ जीवन के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण इस भाषा की अन्यतम विशेषताएँ रही हैं। पाश्चात्य साहित्य में जीवन के भौतिकतावादी स्वरूप को विशेष महत्व दिया गया है तो संस्कृत साहित्य में आध्यात्मिक दृष्टि प्रबल रही है, जहाँ सत्य, अहिंसा एवं शांति को विशेष प्रश्रय दिया गया है। मानवीय मूल्यों से ओत-प्रोत वेदों एवं उपनिषदों में विश्वबंधुत्व की भावना की बार-बार उद्घोषणा की गयी है कि सारे प्राणी मुझे मित्र की दृष्टि से देखें, मैं सब प्राणियों को मित्र की दृष्टि से देखूँ, हम एक-दूसरे को मित्र की दृष्टि से देखें- *मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्। मित्रस्याहम् चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे। मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे।*

वर्तमान संदर्भ में संस्कृत साहित्य अत्यंत प्रासंगिक है। शान्ति एवं समृद्धि के लिए सुखद वातावरण की आवश्यकता है, क्योंकि विकास एवं प्रगति के सारे स्रोत इसी पर अवलंबित हैं। 'गीता' का कर्म-संदेश भारत ही नहीं, पूरे विश्व को उत्प्रेरित एवं सम्यक् मार्ग दिखाने में समर्थ है तो संस्कृत साहित्य में निहित आयुर्वेदिक पद्धतियों द्वारा चिकित्सा को बेहतर ढंग से बढ़ावा दिया जा सकता है क्योंकि अंग्रेजी पद्धति से उपचार में एक रोग के ठीक होने पर दूसरे रोगों की उत्पत्ति चिंताजनक है। 'गरुड़ पुराण' में भी कर्मकांडों के अलावा विभिन्न रोगों के कारणों एवं उपचारों का विशेष रूप से उल्लेख है। ज्योतिष शास्त्र का मूल एवं वास्तविक रूप वैज्ञानिकता पर आधारित है। इसके अतिरिक्त गणित

(शून्य, दशमलव पद्धति), खगोल विज्ञान तथा वास्तुकला जैसे विशिष्ट ज्ञान संस्कृत ग्रंथों में उपलब्ध हैं। सृजनशीलता की अद्भुत क्षमता संस्कृत साहित्य में विद्यमान है। इससे प्रेरित होकर हम अपनी रचनाधर्मिता को प्रभावी बना सकते हैं। आधुनिक सभी भारतीय भाषाओं की जननी संस्कृत है। इस मायने में यह भाषा राष्ट्रीय एकता की भावना को सुदृढ़ करने तथा सांस्कृतिक विविधता की कड़ी को जोड़ने में समर्थ है। संस्कृत भाषा द्वारा अपने जीवन को ही नहीं, सामाजिक, राष्ट्रीय एवं वैश्विक स्तर पर जीवन को संपूर्णता में उन्नत बना सकते हैं।

आधुनिक संस्कृत साहित्य में विकसित भारत

डो.किरणकुमार एस.डामोर

भारत की विकास-यात्रा केवल आर्थिक उन्नति, भौतिक संसाधनों की वृद्धि अथवा तकनीकी प्रगति तक सीमित नहीं है। भारतीय दृष्टि में विकास का वास्तविक अर्थ व्यक्ति, समाज, राष्ट्र और प्रकृति के संतुलित एवं समन्वित विकास में निहित है। आधुनिक संस्कृत साहित्य इसी समग्र विकास-दृष्टि को अभिव्यक्त करने वाला महत्वपूर्ण साहित्यिक माध्यम है। संस्कृत की आधुनिक रचनाओं में राष्ट्रप्रेम, सामाजिक समरसता, शिक्षा, ज्ञान-विज्ञान, पर्यावरण-संरक्षण, नारी-सम्मान, नैतिकता, योग, आध्यात्मिकता तथा विश्वबंधुत्व जैसे विषय निरन्तर अभिव्यक्त होते रहे हैं। स्वातन्त्र्योत्तर काल में संस्कृत साहित्य ने परम्परा को केवल सुरक्षित रखने का कार्य नहीं किया, बल्कि उसे समकालीन सामाजिक एवं राष्ट्रीय आवश्यकताओं के साथ जोड़ने का प्रयास भी किया। आधुनिक संस्कृत कविता, महाकाव्य, खण्डकाव्य, उपन्यास, नाटक, कहानी तथा निबन्ध आदि विधाओं में आधुनिक भारत की समस्याओं और आकांक्षाओं का चित्रण दिखाई देता है। साहित्य अकादेमी की संस्कृत प्रतिभा जैसी पत्रिका समकालीन संस्कृत के सृजनात्मक साहित्य को निरन्तर मंच प्रदान करती रही है। प्रस्तुत शोध-पत्र में आधुनिक संस्कृत साहित्य में विकसित भारत की अवधारणा को भारतीय ज्ञानपरम्परा, राष्ट्रचेतना, शिक्षा, विज्ञान, पर्यावरण, सामाजिक समरसता, नारी-गरिमा, योग एवं वैश्विक मानवतावाद के संदर्भ में विवेचित किया गया है।

बीजशब्द: आधुनिक संस्कृत साहित्य, विकसित भारत, राष्ट्रचेतना, भारतीय ज्ञानपरम्परा, संस्कृति, शिक्षा, विज्ञान, पर्यावरण, मानवतावाद। संस्कृत भारतीय ज्ञान, दर्शन, संस्कृति और साहित्य की अत्यन्त समृद्ध भाषा है। संस्कृत साहित्य का मूल स्वर केवल आध्यात्मिकता तक सीमित नहीं है, बल्कि उसमें सामाजिक व्यवस्था, राज्यव्यवस्था, शिक्षा, अर्थव्यवस्था, पर्यावरण, चिकित्सा, विज्ञान, दर्शन तथा मानव-कल्याण के विविध आयाम प्राप्त होते हैं।

महामहोपाध्यायाः गलगली रामाचार्याणां संस्कृतप्रपञ्चे योगदानम्।

कु.प्रचिती प्रविणः वखरे

शास्त्री तृतीय वर्ष, संस्कृतभाषा तथा साहित्यविभागः

क.का.स.वि. रामटेकम्

प्रस्तुतेऽस्मिन् शोधनिबन्धे २० शताब्देः प्रख्यातसंस्कृतपण्डिताः, असाधारणप्रतिभासम्पन्नाः, तथा आधुनिकयुगप्रवर्तकाः साहित्यकाराः महामहोपाध्यायाः गलगली रामाचार्याः (१८९२-१९७५) एतेषां संस्कृतसाहित्यप्रपञ्चे अतुलनीयं योगदानं तथा ऐतिहासिकयोगदानस्य चिकित्सात्मकमध्ययनञ्च विहितमस्ति। गलगली रामाचार्याणां संस्कृतसाहित्यविश्वे वाङ्मयक्षेत्रे विलक्षणप्रतिभासम्पन्नाः कृतयः विद्यन्ते। महामहोपाध्यायानां वैशिष्ट्यम् अस्ति यत् तैः न केवलं पौराणिकसाहित्ये अपितु आधुनिकसाहित्ये अपि असाधारणाः तथा च वैविध्यपूर्णाः रचनाः निर्मिताः।

प्रस्तुतशोधनिबन्धस्य मुख्यः उद्देश्यः अस्ति-गलगली रामाचार्याणां महाकाव्ये, गद्यरचनायाम्, स्तोत्रसाहित्ये तथा पत्रकारिकायां वाङ्मयवैशिष्ट्यानां व्यापकं मूल्यमापनम्। रामाचार्याणां संस्कृतसाहित्ये योगदानम् सुविस्तृतमस्ति। तेषां 'यदुवंशमहाकाव्यम्' १९ सर्गात्मकं उत्कृष्टं महाकाव्यं संस्कृत-महाकाव्यपरम्परायाम् एका उत्कृष्टा कृतिः वर्तते। यत्र महाकाव्ये शास्त्रीयनियमाः तथा सौन्दर्यपूर्वककाव्यांशाः दृश्यन्ते। अस्मिन् काव्ये तैः संस्कृतसाहित्ये विद्यमानः अत्यन्तकठिनः अश्वघाटी वृत्तस्य प्रयोगः कृतः। कवीनां ख्यातिः पद्यसाहित्ये तु अस्ति परं गद्यसाहित्ये अपि तेषां समाना एव गतिः वर्तते। अस्य उदाहरणं 'देवी वासंती' एवञ्च 'कोऽहं' एतयोः गद्यग्रन्थयोः स्पष्टं क्रियते। एतौ न केवलं

भाषासौष्ठवार्थम् अपितु ऐतिहासिक तथा कृतयः ज्वलन्तं सामाजिक-विषयवस्तूनि प्रभावीरीत्या उपस्थापनं वर्तते। अपि च काव्यविषयं विहाय 'सौदामिनी' तथा 'मधुरवाणी' इति संस्कृतमासिकानां प्रदीर्घकालं यावत् संपादनेन संस्कृतपत्रकारिकामाध्यमेन संस्कृतभाषां जनमानसमर्पयितुं तेषां महत् सहाय्यं लब्धम्।

प्रस्तुतेऽस्मिन् संशोधने प्रमुखतया ऐतिहासिकं, विश्लेषणात्मकं तथा वर्णनात्मकपद्धत्या उपयोगं कृत्वा रामाचार्याणां समग्रं साहित्यिककृतीनां विवेचनं कृतमस्ति। निष्कर्षानुसारं ज्ञायते यत् रामाचार्याणां संस्कृतसाहित्ये योगदानं केवलं प्राचीनपरम्परानुसारी एव न, तथा चापि केवलं आधुनिकी न, अपि तु आधुनिककाले संस्कृतभाषायाः प्रासंगिकतां तेषां रचना युगानुकुला वर्तते। आधुनिककाले संस्कृतभाषायाः प्रासंगिकतां तथा च तस्याः अस्तित्त्वं दर्शयितुं तेषां साहित्यस्य अध्ययनमतीव महत्तवपूर्णं अस्ति।

कूटशब्दाः- गलगली रामाचार्याः, महामहोपाध्यायाः, सौदामिनी, मधुरवाणी।

Analyzing Karuṇa (Pathos) and Bhayānaka (Terror) in Shakespeare's Macbeth

-Saiee Kawadkar

The Research of Sanskrit rules of ‘Rasa’, uses them as a tools for explaining emotions in an English Play. ‘Macbeth’ is an English play and always seen in western perspective. Rather than in Aristotle’s point of view. But this time, this research will reimagine this English play from an Indian lens. This research will apply Rasa theory on Shakespearian ‘Macbeth’. In this play witches and ghosts generated ‘Bhayanak’ rasa as ‘vibhava’ (विभावः), and Lady Macbeth’s guilt produced ‘Karuna’ rasa as ‘anubhav’ (अनुभवः). That is what this research will provide deep analysis of the text.

The purpose of this research is that our Indian Knowledge System and Pnaditraj Jagnnath’s or Bharamuni’s principles are not only limited to Sanskrit but also they are so universal that they can be utilized to understand human psychology and any literature across the world.

"विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः ॥"-भरतमुनि

"Rasa is manifested through the combination of *Vibhāva* (the triggers or causes), *Anubhāva* (the physical reactions or effects), and *Vyabhicāribhāva* (the fleeting, temporary emotional states). By this research the benefit is that society and the education sector will view with respect for the Indian perspective and Ancient knowledge on a global level.

भट्ट मथुरानाथ शास्त्री ‘मञ्जुनाथ’कृत ‘साहित्य वैभवम्’में नव्य नीति

सेवा निवृत्त प्राचार्य

संस्कृत साहित्य का सृजन प्राचीन काल से आधुनिक काल तक अनवरत रूप से हो रहा हैं |आदिकवि वाल्मीकि से लौकिक संस्कृत काव्य का प्रारम्भ माना जाता है |महाकवि कालिदास सहित -अनेकानेक कवियों ने संस्कृत साहित्य की श्रीवृद्धि की है | आधुनिक संस्कृत साहित्य के पुरोधा रचनाकारों में भट्ट मथुरानाथ शास्त्री ‘मञ्जुनाथ’ का नाम अग्रणी है | राजस्थान की राजधानी जयपुर नगरी के निवासी भट्ट जी ने काव्य निकुञ्ज के रूप में ‘साहित्य वैभवम्’ ग्रन्थ में अपनी काव्य रचनाओं का संकलन किया है | संस्कृत और हिंदी के छन्दों में नवसृजन को आयाम देने वाले स्वनामधन्य सुकवि भट्ट जी ने उर्दू के ग़ज़ल छन्द में भी संस्कृत काव्य लिखा है | हिंदी के दोहा,बरवै,छप्पय,घनाक्षरी,सवैया,सोरठा, कुण्डलिया,चोपाई,रोला,उल्लाला आदि छन्दों में संस्कृत काव्य सृजन करके भट्ट जी ने संस्कृत के आधुनिक कवियों एवं लेखकों को नवीन दिशा बोध दिया है |

नीति विषयक मुक्तक काव्य लेखन में भी भट्ट जी ने कुण्डलिया छन्दों में अपने 'साहित्य वैभवम्' में नितिवीथी के अन्तर्गत नीति विषयक वैभव के मधुर और सरस काव्य का सृजन किया हैं | लगभग संस्कृत के सभी कवियों ने नीति विषयक सन्देश अपने काव्य में दिया है | लोक मंगल एवं धर्म व अर्थ और जीवन के सद्व्यवहार की सिद्धि के लिये नीति काव्य की परमावश्यकता आज के युग में भी उतनी ही है जितनी प्राचीन काल में थी भट्ट जी ने प्राचीन के साथ साथ नवीन विषयों को भी अपने नीति विषयक छन्दों में समाहित किया है | कवि सूक्ति,माया अर्थात छलकपट, पर सेवा ,प्रतिकूल भाग्य,धन की महत्ता,मुद्रा के अनेक रूप,सज्जन मैत्री,दुर्जन मैत्री,सत्यवाणी,साध्वी पत्नी,लज्जा,अभिमान,सत्कार्य,दानी व्यक्ति की महिमा,कृपण स्वभाव,परनिन्दा, पंडितो के साथ दर्प,कलिकाल की महिमा ,कवियों का उत्कर्ष,सद्स्वामी,राजा के कर्तव्य,राज- कर्मचारियों के कर्तव्य, मंत्री के गुण, चातक स्वभाव,मेघ सदृश परोपकार,रत्न विक्रेता तथा इत्र बेचने वाले की महत्ता को नहीं समझना,मालाकारक की सद् भावना,मधुकर सदृश मधुर व्यवहार,कोकिल सदृश मधुरवाणी, वृक्ष के समान स्वभाव सफल होना,मयूर सदृश उल्लास,दीपक के समान प्रकाश फैलाना,जुगनू जैसी चमक रखना और अल्प प्रकाश से अभिमानी बनाना तथा लेखनी का धर्म आदि प्राचीन एवं नवीन विषयों पर भट्ट जी ने अपूर्व नीतिगत छन्द लिखे है |

काव्य-व्याकरण-दर्शनानां संगमक्षेत्रं कृष्णानन्दप्रणीतम् अन्तर्व्याकरणनाट्यपरिशिष्टम् : अनन्यमोलिकमेकं रूपकम्।

KUNDAN ROY

कविः कृष्णानन्दसरस्वती - वङ्गदेशे नवद्वीपजनपदान्तर्गते महेशपुरनामके ग्रामे कृष्णानन्दवाचस्पतिनामककविरासीत्, तस्य गुरुः प्रसिद्धः वुनोरामनाथमहोदयः, स तु वृद्धावस्थायां गङ्गातीरे स्थातुं नवद्वीपतः पञ्चक्रोशोत्तरे गङ्गाया अनतिदूरे धर्म्मदहनामकग्रामे वासमकरोत्। असौ कदाचित् कृष्णनगरराजधानीमागत्य तत्रत्यराजवंशं नवद्वीपाधिपतिं महाराजं श्रीशचन्द्रं स्वरचितान् कतिपयान् रसभावपूर्णान् पूर्व्वश्लोकान् श्रावयामास। तत् श्रुत्वा च राजा तस्यालौकिककवित्वशक्तिमसाधारणपाण्डित्यञ्च विविच्य तस्मै सरस्वतीत्युपाधिं प्रदाय राजसभासदमकरोत्। कृष्णानन्देनापि स्वक्रियमाणं पुस्तकं मनसि परिकल्प्य "***अन्तर्व्याकरणनाट्यपरिशिष्टम्***" इत्यपूर्वं पुस्तकं प्रणीतम्। नाटकं प्रकाशितमगात् १३०१ वङ्गाब्दे(१८९४ ख्रीष्टाब्दे) अजितनाथन्यायरत्नकृत-संक्षिप्तव्याख्यया समेतम्।

सूचकशब्दाः – नाटकम्, कृष्णानन्दः, नाट्यतत्त्वम्, अन्तर्व्याकरणनाट्यपरिशिष्टम्।

Modern Horizons in Sanskrit: Emerging Genres and Contemporary Expressions

Dr. *Archana Ratilal Gamit*

Contemporary Sanskrit literature actively dismantles the misconception that Sanskrit is a static, obsolete language restricted strictly to ancient scriptures. By embracing modern genres, contemporary socio-literary issues, and regional art forms, present-day writers maintain a continuous, evolving literary tradition that reflects a dynamic pan-Indian character.

Key Structural & Thematic Pillars

Challenging the Obsolete Language Myth: Refutes the belief that Sanskrit lacks everyday utility or modern creative output, highlighting its unbroken historical continuity into present-day literature.

Emergence of Modern Prose & Drama: Expands beyond classical formats to include modern prose like novels, novelettes, short stories, travelogues, personal/critical essays, personal diaries (*Sansmaranika*), street plays, radio plays, and *Giti Natya*.

Poetic Innovations: Introduces contemporary poetic styles including *laghu-kavyas*, free-style verse, miniature poems, *Muktakas*, and *Lahari-kavyas* tailored to modern reader interests.

Inter-Regional & Linguistic Synthesis: Incorporates regional folk elements—such as Gujarati *Garba*, Maharashtrian *Lavani*, and Punjabi *Bhangra*—as well as Urdu *Ghazal* structures, demonstrating high stylistic adaptiveness.

In this paper, I have analysed modern Sanskrit literature through the lens of these core pillars to demonstrate that Sanskrit remains a vibrant, evolving language. By examining its shift beyond ancient scriptural boundaries into modern prose, contemporary poetry, and cross-cultural folk forms, this study highlights how present-day writers actively sustain a dynamic, pan-Indian literary tradition.

नियतिलीला इति रूपकस्य नाट्यशास्तीयदृष्ट्या समीक्षणम्

सौ. सुवर्णा संजयकुमार केवटे , प्रो. कविता सु. होले

''गौरवोद्गारहाराय गुरुगर्वप्रहारिणे |

गीर्वाणवाग्विहाराय हरये गुरवे नमः ||"

मनुष्याः स्वभावतः अनुकरणीयाः सन्ति । अनुकरणद्वारा नाटकं क्रियते । अमरकोशकार 'अमरसिंह' कथयति यत् 'नृत्यम्', 'गीतः', 'वाद्यम्' च संयोगः 'नाटकम्' इति । नाटकं मनोरञ्जनस्य साधनं मन्यते । संस्कृतसाहित्ये रूपकाणां रचना विविधरूपेण दृश्यते । भरतमुनिना नाट्यशास्त्रे, धनञ्जयेन दशरूपके, तथैव विश्वनाथेन साहित्यदर्पणे रूपकाणां दशभेदा: कथिता: । साहित्यदर्पणे उक्तमस्ति –

"नाटकमथ प्रकरणं भाणव्यायोगसमवकारडिमा : |

ईहामृगाङ्कवीथ्य: प्रहसनमिति रूपकाणि दश ||" (षष्ठ:परिच्छेद:-श्लो.क्र.-३)

प्राचीनसंस्कृतसाहित्ये 'भास:', 'कालिदास:', 'बाणभट्ट:', 'भारवि:', 'श्रीहर्ष:', 'माघ:' इत्यादय: विद्वांस: बभूवु:आधुनिककाले लघुरूपकाणां प्रवृत्ति: विशेषतया दृष्टा । अत: आधुनिकसंस्कृतनाटककारै: विविधानि लघुरूपकाणि रचितानि सन्ति । तेषु पं. श्री. भि. वेलणकरमहोदयानां महत्त्वपूर्णं स्थानं विद्यन्ते । वेलणकरमहोदयै: अनेका: संस्कृतग्रन्थाः रचिताः सन्ति । तेषां २१ नाटकानि सन्ति । तेषु 'नियतिलीला' इति नाटकं शोधपत्रस्य कृते चयनितम् अस्ति । एतद् नाट्य चतुरङ्कात्मकम् नाट्यमस्ति । 'नियतिलीला' इति रूपकं श्री. भि. वेलणकरमहोदयस्य लघुरूपकसाहित्ये विशिष्टं स्थानं धारयति, यतो हि इदं नाट्यं महाभारते वनपर्वणि, कथासरित्सागरे, नैषधीयचरिते च वर्णिता नल-दमयन्तीकथां आधृत्य रचितमस्ति । एतस्मिनाटके नारद:, नादायण:, नल:, दमयन्ती, दामिनी, कलि:, पुष्कर:, धनमित्र:, द्वारपाल:, बाहुक: (नल:),अमात्य:, ऋतुपर्ण:, भीमश्च एतानि द्वादश पात्राणि सन्ति ग्रन्थकारेण स्वयमेव उक्तं यत् महाभारतात् केचन श्लोका: उद्धृता: सन्ति । नल-दमयन्तीकथा समाजे सुप्रसिद्धा तथापि वेलणकरमहोदयेन अस्या: नाट्यीकरणार्थे विशिष्टा: योजना: कृता:, या मूलमहाभारतकथात: किञ्चित् भिन्ना:, रङ्गमञ्चोपयोगिन्यश्च सन्ति । एतस्या: विशेषताया: आधारेण मानवजीवनस्य तत्त्वं तथा कर्मस्य फलाधीनता एतस्मिन् शोधपत्रे करिष्यामि ।

अस्मिन् शोधपत्रे सर्वप्रथमं श्री. भि. वेलणकरमहोदयानां परिचयः, तदनन्तरं नाटकस्य कथानकं, नायकं, रसस्य, आख्यानस्य, अलङ्कारस्य, नाट्यविशेषणानां च अनुरूपं ये पात्राणि आगच्छन्ति, तयोः मुख्यत्रयबिन्दुयोः समीक्षां करिष्यामि । नाटकस्य परमं लक्ष्यं रसस्य निर्माणम् एव ।

कूटशब्दाः - अमरकोशः, अमरसिंहः, रसोत्पत्तिः, वेलणकरः, नियतिलीला, नाट्यशास्त्रम्, दशरूपकम्, महाभारतम् ।

कुमारसम्भव : शिवाराधना का वटवृक्ष

डॉ० कुमारी सोनी मद्धेशिया, विषय-संस्कृत

कुमारसम्भव महाकाव्य महाकवि कालिदास के समस्त काव्यों एवं महाकाव्यों में अपनी महिमा शिवाराधना के कारण संस्कृत साहित्याकाश में हीरक मणिवत देदीप्यमान है। यद्यपि महाकवि कालिदास की समस्त रचनाएँ शिवाराधना की आधारशिला है, लेकिन उन रघुवंशादि रचनाओं में कुमारसम्भव महाकाव्य शिवाराधना का वटवृक्ष है। यद्यपि यह विवेच्य है कि कुमारसम्भव महाकाव्य कितने सर्गों में विभक्त है, आठ सर्गों तक ही महाकवि कालिदास की रचनाओं के आद्य टीकाकार श्री मल्लिनाथ ने टीका(संजीवनी) की है। इसे ही आधार बना कर समालोचक आठ सर्गों तक ही महाकवि की रचना मानते है। वहीं कुछ आचार्यों का मत है कि— **'प्रारम्भस्यान्तर्गमनमिति'** न्याय से कार्य और कारणभाव से तारकासुर का वध ही महाकाव्य का मुख्य लक्ष्य है। अतएव सप्तदश सर्ग पर्यन्त प्रक्रमिता कथा कुमारसम्भव महाकवि कालिदास की रचना है। यह सर्वमान्य है।

कुमारसम्भव में हिमालय के वैभव का वर्णन, पार्वती की उत्पत्ति, कामदहनान्तर भग्न मनोरथा पार्वती की तपस्या का वर्णन लोक विश्रुत है। तपस्योपरान्त शिव के साथ पार्वती का परिणय शिव पार्वती की रति-क्रीडा, कुमारोत्पति, कुमार का देवसेना का सेनापति पद पर अभिसिंचन, राक्षसों एवं तारकासुर का संहार प्रमुख वर्णन पुराणयुक्त कवि कर्म की रमणीयता में अत्यन्त ही सौमुख्यता को प्राप्त करता है। उपर्युक्त सभी कार्य शैवीय भावना को उद्बोधित करते है। शिव महादेव है, **'महश्चासौदेवः महादेवः'** इस व्युत्पत्ति से उस देव की महत्ता और कालजयीच्च साथ ही महादेव का **'कालजयीच्च अन्यच्च'** समस्त विरुद्ध धर्मों का यक्ष-किनर, उरग-गन्धर्व, भूत-प्रेत, पिशाच, राक्षसादिको का, विजयादिको का, वृषभवाहन का, त्रिशुल का, विरूपाक्षता का, उनके भस्म रागिता गरलपानाद्रिका एकत्र सन्निवेश ही महादेवत्व की सार्थकता को मजता है। यही कारण है कि महादेव साम्वशिव के साथ हमारा सम्बन्ध जैसे भी हो एतदर्थ कवि कुमारसम्भवम् महाकाव्य की रचना की है।

अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा हिमालयो नाम नगाधिराजः।

पूर्वापरौ तोयनिधि निगाह्य स्थितः पृथिव्यामिव मानदण्डः।।[1]

कान्ता सम्मित तयोपदेश युगे।[2]

जैसे साधक के द्वारा निःश्रेयस का मार्ग उपदिश होता है। तद्वदेव महाकवि की उपमा भी निःश्रेयस मार्ग का अनुसरण करती है - **'देवतात्मा हिमालयो नाम नगाधिराजः'** उपमा भी नहीं सार्थकता को मजती है, जो नानाविध शास्त्रानुरोधित हो। हिमालय भी **'पूर्वापरौ तोयनिधि विगाह्य पृथ्वियां मानदण्डः इव'** इस धराधाम पर स्थित हो विराजित है। वह हिमालय भी पृथिवी पर अवस्थित समग्र पर्वतों का गुरू है। उसका एक नाम रत्नाकर भी है। महा औषधियों का उत्पति क्षेत्र है। कर्पूरम, सान्द्र, शिवतुल्य, निश्चय ही विश्व भरण पोषण रत देवता भी यही विश्रमित हो उत्कर्ष को प्राप्त करता है।

सांकेत शब्द- कुमारसम्भव, देदोप्यमान, संजीवनी, वैभव, कामदहनान्तर पुराणयुक्त, कालजयीच्च, महादेवत्व, तोयनिधि

आधुनिक संस्कृत लघुकथाओं में सामाजिक परिवर्तन का चित्रण

मैथिली अंजनकर

संस्कृत साहित्य में विभिन्न प्रकार के साहित्यिक विधाएँ देखने को मिलती है।लघुकथा भी इन्ही साहित्यिक विधाओ में से एक है। किसी भी साहित्य मे तत्कालीन समाज का चित्र प्रतिबिंबित होता है।इसी प्रकार आधुनिक संस्कृत लघुकथाओं मे समकालीन समाज का प्रभावी प्रतिबिंब दिखाई देता है।लघुकथा में सामाजिक जीवन की वास्तविकता के साथ- साथ मानवीय संवेदनाओं, बदलते सामाजिक संबंध तथा आधुनिक विचारो को भी स्थान दिया गया है। इस दृष्टी से आधुनिक संस्कृत लघुकथा साहित्य सामाजिक परिवर्तन का दर्पण बनकर सामने आता है। मानवीय जीवन के विविध पहलुओं को ध्यान मे रखते हुए अनेक संस्कृत साहित्यकारोने अपनी कलाकृतियों के माध्यम से समाज परिवर्तन के विचारों को प्रस्तुत किया है। ये कथाये केवल कथा के रूप मे नही, बल्की होनेवाले महत्वपूर्ण परिवर्तनो का चित्रण आधुनिक संस्कृत लघुकथा मे किया गया है।

आधुनिक संस्कृत लघुकथाओं में विज्ञान, औद्योगीकरण, शहरीकरण, स्त्रियों की बदलती भूमिका, सामाजिक विषमता, आर्थिक परिवर्तन तथा जैसे अनेक समकालीन विषयोंका समावेश आधुनिक संस्कृत लघुकथाओं मे हुआ है।सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया मे स्त्री की भूमिका अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। स्त्रियों के जीवन में आनेवाले परिवर्तन, उनकी समस्या, स्त्री पुरुष समानता, सामाजिक जीवन मे होने वाले परिवर्तनों का कथांमे यथार्थ एव कलात्मक ढंग से चित्रण किया गया है। मानवी जीवन मे होने वाले विविध परिवर्तन को साहित्यकारने अपने लघुकथा के माध्यम से प्रस्तुत किया है।पारिवारिक संबंधो मे होने वाले परिवर्तन, गृहस्थ जीवन की समस्याएँ ,आर्थिक एवं सामाजिक विषमता ,मानवीय विकास तथा आधुनिक जीवन मूल्यों का चित्रण भी इन कथाओं मे दिखाई देता है।

प्रस्तुत शोधपत्र में लघुकथा की परिभाषा उसका स्वरूप, लघुकथाओं की कथाशैली तथा आधुनिक संस्कृत लघुकथाओं में वर्णित सामाजिक परिवर्तन का विवेचन किया गया है। अलग अलग कथालेखकों के चयनित कथाओं के माध्यम से सामजिक समस्याओं उनके स्वरुप तथा सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया का विश्लेषण किया गया है।

आधुनिकसंस्कृतसाहित्ये डाँ. रामाशीषपाण्डेयवर्यस्य व्यक्तित्वं विद्वत्वञ्च – एकम् अध्ययनम्।

मधुमिता दासः (विद्यावारिधिः शोधच्छात्रा) साहित्यविभागः

आधुनिकसंस्कृतसाहित्यस्य विकासे अनेकैः विद्वद्भिः स्वीयविद्वत्तया मौलिकरचनाभिश्च महत्त्वपूर्णं योगदानं प्रदत्तम्। तेषु डॉ. रामाशीषपाण्डेयमहोदयाः समकालीनसंस्कृतसाहित्यस्य प्रमुखः साहित्यकारः नाटककारः कविः समीक्षकश्च अस्ति। काव्यकाराणां व्यक्तित्वे विद्वत्ता- सर्जनशीलता- भारतीयसंस्कृतिप्रेमः- राष्ट्रभावना- समाजचेतना च समन्वितरूपेण दृश्यन्ते। कवेः साहित्येषु इतिहासः संस्कृतिः राष्ट्रभक्तिः नैतिकमूल्यानि तथा च मानवतावादश्च कल्याणकरभावना सशक्ततया प्रतिफलति। प्रस्तुतशोधपत्रे डॉ. रामाशीषपाण्डेयवर्यस्य व्यक्तित्व- विद्वत्त्व- साहित्यिकयोगदानस्य च एकमध्ययनं मया आलोचितम्। महाकवेः जन्म १९४४ तमे संवत्सरे जुलाइ मासस्य सप्तमदिनाङ्के बिहारप्रदेशस्य छोटिया इति ग्रामे अभवत्। कविः व्याकरण-साहित्य-वेदादिशास्त्रेषु निष्णातः अस्ति। अयं विद्वान् हथुआराजज्ञानोदय-संस्कृतमहाविद्यालये साहित्यप्राध्यापकपदे समासीना आसन्। तदनन्तरं राँची इति नगरे मारवाडी- महाविद्यालये संस्कृतव्याख्यातापदे नियुक्तिं स्वीकृतवान् ।

'शिखाबन्धनम्', 'कुमारविजयम्', 'कर्णार्जुनीयम्' इति त्रीणि नाटकानि विरचितम् तथा च 'काव्यकादम्बकम्', 'कृष्णोदयम्', 'मयूखदूतम्', 'प्रहेलिकाशतकम्' इत्यादयः ग्रन्थाः अपि तैः विरचिताः। आचार्य रामाशीषपाण्डेयमहोदयानां स्वस्य साहित्यसेवायाः उत्कृष्टयोगदानस्य च मान्यतारूपेण जगन्नाथसंस्कृतपद्यरचना-पुरस्कारम्, अखिलभारतीयसंस्कृतसाहित्यरचना-पुरस्कारम्, डाँ आदित्यनाथझासंस्कृतनाट्यरचनापुरस्कारम् इत्यादीन् अनेकान् सम्मानान् पुरस्काराश्च प्राप्तवान्।

कवेः ग्रन्थानाम् अध्ययनेन ज्ञायते यत् सः वेदेषु, ज्योतिषशास्त्रे, आयुर्वेदशास्त्रे, पुराणेषु च पाण्डित्यं धारयति। तेषां रचनासु एतेषां शास्त्राणां प्रभावः स्पष्टतया परिलक्ष्यते। अतः शोधपत्रस्य प्रमुखोद्देश्यः वहुमुखीविद्वत्त्वस्य तथा

साहित्यिकयोगदानस्य अध्ययनम् अस्ति। महाकवेः विद्वत्त्वस्य विषये वदन्ती अहम् एतदपि निवेदयामि यत्, विशेषतः पाण्डेयमहोदयस्य त्रीणि नाटकानि मया अवलोकितानि। एतेषु त्रिष्वपि नाटकेषु महाकविना वीररसस्य प्राचुर्यं प्रदर्शितम् अस्ति। एतानि नाटकानि वर्तमानयुवसमाजस्य कृते विविधरीत्या प्रेरणाप्रदानि भवन्ति। नवरसेषु पाण्डेयमहोदयेन वीररसप्रधाननाटकानामेव चयनं कृतम्, यतः वीररसः युवसमाजस्य मनसि उत्साहं, साहसं, पराक्रमभावं च जनयित्वा तान् सत्कर्मणि प्रेरयति।

'कर्णार्जुनीयम्'-नाटके वीररसस्य प्राधान्यं स्पष्टतया परिलक्ष्यते। नाटकस्य प्रमुखपात्रेषु कर्णस्य चरित्रं वीरत्वस्य विविधपक्षान् प्रकाशयति। तथापि कर्णं प्रति 'सूतपुत्र' इत्यादिरूपेण जातिसूचकः अपमानः क्रियते, येन तस्य वीरत्वं कतिपयेषु प्रसङ्गेषु क्षीणीकृतमिव दृश्यते। कविना कर्णस्य एतादृशं चित्रणं कृत्वा तस्य गौरवस्य तथा वीरत्वस्य ह्रासं सूचितम् अस्ति। अतः कर्णः नाटकस्य प्रतिनायकत्वेन उपस्थापितः इति वक्तुं शक्यते। अस्य प्रकारस्य चरित्रचित्रणेन नाटके वीररसस्य उत्कर्षः अधिकतया प्रकटितः भवति। विशेषतः कर्णस्य आत्मसम्मानः, वीरता, संघर्षशीलता च वीररसस्य स्थायिभावं पुष्णन्ति। अतः समग्रतया विचार्यमाणे कर्णार्जुनीयनाटके वीररसः प्रधानरसत्वेन प्रतिष्ठितः इति निष्कर्षः निष्पद्यते।

आधुनिकसंस्कृतसाहित्ये सामाजिकता : समकालीनजीवनबोधस्य अनुशीलनम्

सुप्रिया चौबे

आधुनिकसंस्कृतसाहित्यं केवलं प्राचीनपरम्परायाः संरक्षणमात्रं न,अपितु समकालीनसमाजस्य संवेदनानां, समस्याणां, परिवर्तनानां च सजीवाभिव्यक्तिरूपेण प्रतिष्ठितम् अस्ति।आधुनिकतायाः प्रमुखं वैशिष्ट्यं समाजबोधेन सह तस्याः घनिष्ठः सम्बन्धः इति मन्यते।अतः प्रस्तुतविषये आधुनिकसंस्कृतसाहित्ये निहितायाः सामाजिकतायाः स्वरूपं तस्याः अभिव्यक्तेः प्रमुखाधाराः तथा आधुनिकरचनासु प्रतिबिम्बितस्य समकालीनजीवनस्य अनुशीलनं क्रियते । आधुनिकसंस्कृतरचनासु राष्ट्रियभावना,सामाजिकचेतना,यथार्थबोधः,व्यक्तिजीवनस्य सङ्घर्षः,परम्परायाः आधुनिकतायाश्च द्वन्द्वः, व्यङ्ग्यप्रधानाभिव्यक्तिः तथा परिवर्तमानजीवनमूल्यानि प्रमुखतया दृश्यन्ते।

एकोनविंशतितमशताब्द्याः उत्तरार्धात् संस्कृतसाहित्ये नवीनविषयाणां प्रवेशेन सामाजिकानुभवानामभिव्यक्तेः क्षेत्रं विस्तृतम्।गीतम्,लघुकथा,उपन्यासः,मुक्तच्छन्दकविता,पत्रकाव्यम्,एकाङ्की,रेडियोरूपकम् इत्यादिषु आधुनिकविधासु रचनाकाराः स्वकालीनसमाजस्य विविधपक्षान् अभिव्यञ्जितवन्तः। ग्रामजीवनम्,नगरजीवनस्य तनावः,सामाजिकविषमता,शोषणम्,मानवीयकरुणा,राष्ट्रैक्यम्,समसामयिकविसङ्गतयः तथा सामान्यजनजीवनस्य अनुभूतयः आधुनिकसंस्कृतसाहित्यस्य विषयत्वेन स्वीकृताः। अनेन संस्कृतभाषा केवलं शास्त्रीयविषयाणामभिव्यक्तेः माध्यमं न भूत्वा वर्तमानसमाजस्य अनुभवानामपि समर्थवाहिका अभवत्।आधुनिकसंस्कृतसाहित्यकारेषु लक्ष्मणशास्त्रीतैलङ्गस्य रचनासु ग्रामीणजीवनस्य यथार्थचित्रणं,निर्धनजनानां प्रति सहानुभूतिः,शोषणविरोधश्च दृश्यते।श्रीनिवासरथस्य काव्येषु आधुनिकभारतीयजीवनस्य राजनैतिकत्रासदी तथा आतङ्कमयवातावरणं पौराणिकप्रतीकैः प्रकाशितम्।विशाललालगौडस्य तथा स्वामीनाथपाण्डेयस्य गीतिषु सामाजिकसंवेदनहीनता,वेदना च व्यङ्ग्यात्मकतया निरूपिताः। केशवचन्द्रदाशस्य रचनासु महानगरीयजीवनस्य तनावः,ग्रामजीवनस्य स्मृतिः,परम्परामाधुनिकतयोर्द्वन्द्वश्च प्रतिबिम्बितः।

अतः आधुनिकसंस्कृतसाहित्ये सामाजिकता बाह्यविषयमात्रं नास्ति आधुनिकसाहित्यस्य जीवन्तताया: प्रमुखाधार: अस्ति।सामाजिकयथार्थस्य साहित्यिकरूपान्तरणेन संस्कृतवाङ्मयं वर्तमानजीवनेन सह सम्बद्धं भवति तथा समाजस्य परिवर्तनशीलस्वरूपं संवेदनशीलतया प्रकाशयति।

प्रस्तुताध्ययने वर्णनात्मक-विश्लेषणात्मकपद्धतेः अनुसरणं विधाय आधुनिकसंस्कृतरचनासु सामाजिकयथार्थस्य, मानवीयसंवेदनायाः ग्रामनगरजीवनस्य तथा समकालीनविसङ्गतीनां साहित्यिकाभिव्यक्तेः विश्लेषणं करिष्यते। आधुनिकसंस्कृतसाहित्ये सामाजिकतायाः स्वरूपं निरूप्य चयनितरचनानामाधारेण सामाजिकजीवनस्य विविधपक्षाणां विवेचनं करिष्यते। अन्ते तेषां सामाजिकमहत्त्वं तथा भाविसंशोधनसम्भावनाश्च प्रतिपादयिष्यन्ते।

मुख्यशब्दाः-आधुनिकसंस्कृतसाहित्यम्,सामाजिकचेतना,समकालीनजीवनम्,यथार्थबोधः,व्यङ्ग्यम्,आधुनिकविधाः, सामाजिकविसङ्गतिः, जीवनमूल्यानि।

आधुनिकसंस्कृतसाहित्ये डॉ. बालकृष्णशर्मणोऽवदानम्

डॉ. नौनिहालगौतमः

धन्यो भवति स विद्वान् कविः यस्य भावयित्री कारयित्री चेत्युभे प्रतिभे वाङ्मयश्रीवृद्ध्यै भवतः। तादृशः लोकहितसाधकः स्वाध्यायरतः कविः चिन्तकश्चास्ति डॉ. बालकृष्णशर्मा। भारतवर्षस्य उत्तरप्रदेशस्य बस्तीजनपदस्य गौरापाण्डेयाभिधे ग्रामे 1962 क्रैष्टाब्दे लब्धजनिः डॉ. बालकृष्णशर्मा संस्कृतजगति मान्यो विद्वान् आचार्यः कविश्चास्ति। तस्मै महामहिमशालिउपराष्ट्रपतिद्वारा प्रदत्तः मध्यप्रदेशस्य प्रादेशिकभोजपुरस्कारः (2023 ई.)। सुकवेः डॉ. बालकृष्णशर्मणः मौलिकसंस्कृतकाव्यरचनाः सम्पादिताः, सहसम्पादिताः संशोधितग्रन्थाः पाठ्यपुस्तकानि च प्रकाशितानि सन्ति। प्रणीतेषु पुस्तकेषु कोरोनाकोपशतकम्, ध्वनिप्रकाशे मुक्तकविमर्शः, भारताभिज्ञानशतकम्, महाकविभवभूतेः नाट्यानि अवलम्ब्य विमर्शात्मकः ग्रन्थः भवभूतिरूपकविमर्शः, चिन्तनसञ्चयश्च सन्ति। संस्कृतरचनाः - कविवरस्य डॉ. बालकृष्णशर्मणः स्फुटरचनाः प्रतिष्ठितपत्रिकासु प्रकाशिताः सहृदयानां कण्ठहारतां गताः। निरन्तरं प्रकाश्यमानरचनाभिः कविः कविगोष्ठीषु सम्मानार्हो जातः। सः प्रतिष्ठितमञ्चेषु संस्कृतकाव्यपाठं कृतवानस्ति। नईदिल्लीस्थ-साहित्यअकादमीकार्यक्रमे तस्य काव्यपाठः जातः। तस्य प्रायशः पञ्चाशदधिकाः मौलिकसंस्कृतकविताः प्रकाशमायाताः, याः राष्ट्रभक्ति-महाकविकालिदास-भवभूति-प्रशस्ति-सामाजिकविषयेषु सन्ति। शतककाव्येषु तस्य कोरोनाकोपशतकम् भारताभिज्ञानशतकम् च प्रकाशिते स्तः। कोरोनोव्याधिं तत्कालं च अवलम्ब्य रचितं कोरोनाकोपशतकं नाम काव्यम्। भारतभूमिवैभवस्य प्रकटीकरणे समर्थानि शतककाव्यानि अपि बहूनि सन्ति। परम्परायामस्यां स्वागतयोग्यं शतककाव्यं वर्तते- 'भारताभिज्ञानशतकम्'। काव्यशास्त्रीयध्वनिसिद्धान्तस्यालोके मुक्तककाव्यानां मूल्याङ्कनपरकग्रन्थो 'ध्वनिप्रकाशे मुक्तकविमर्शः'। शर्मवर्यस्य शेमुषी दृष्टिपथमागता पदवाक्यप्रमाणपारावारीणस्य परिणतप्रज्ञस्य पण्डितप्रवरस्य महाकविभवभूतेर्नाट्यकृतीनां विमर्शात्मकग्रन्थरूपेण। सोऽयं 'भवभूतिरूपकविमर्शः' तस्य गभीरविमर्शपूर्णः शोधात्मकः विमर्शप्रधानग्रन्थः। संस्कृतवाङ्मये कृतभूरिपरिश्रमः ग्वालियरस्थसंस्कृतमहाविद्यालये आचार्यपदमलङ्कुर्वाणो लोक-शास्त्र-साहित्यचिन्तनपरः शर्मवर्यः महताऽध्यवसायेन संस्कृतवाङ्मयमवलम्ब्य कृतं चिन्तनं प्रकाशितवान् 'चिन्तनसञ्चयः' इतिग्रन्थरूपेण। पण्डितराजकृतं भामिनीविलासं सर्वे सहृदयाः काव्यरसिका जानन्ति एव। तद्भावभावितः कविवरः डॉ. बालकृष्णशर्मा प्रणयति काव्यसङ्ग्रहं कवितावितासम्।

'भवभूतिसुविज्ञाय कवये भावकाय च। आचार्याय नमस्तस्मै बालकृष्णाय शर्मणे।।

शास्त्रकाव्यविदा येन कृतश्चिन्तनसञ्चयः। आचार्याय नमस्तस्मै बालकृष्णाय शर्मणे।।

यस्य काव्यविलासेन रज्यन्ते रसिका अहो! आचार्याय नमस्तस्मै बालकृष्णाय शर्मणे।।'

आधुनिकसंस्कृतसाहित्ये व्यङ्ग्यकवेः डॉ. प्रमोदकुमारनायकमहोदयस्य संस्कृतकृतीनां सामाजिकमध्ययनम्

गौरी बसक

समाजशब्जस्य अर्थः 'पशुभिन्नसङ्घः' इति अमरकोशे। समाजशब्दः संवीयतेऽत्रेति "सम्+अज+घञ्" इति शब्दकल्पद्रुमे व्याख्यातः। अतः समाजे भवः सामाजिकः इति व्युत्पत्या मनुष्यः सामाजिकप्राणीति स्वीक्रियते। समाजे प्रचलितां रीतिं नीतिं च पालयन् मनुष्यः स्वजीवनं सर्वथा सफलयितुं प्रयतते। सामाजिककर्तव्यबोधः एव मानवान् अन्येभ्यः पृथककरोति। ये जनाः सामाजिककर्तव्यपालने असमर्थाः, तेषां जीवनं तु व्यर्थमेव। तदुक्तं धर्मग्रन्थेषु –

"आहारनिद्राभयमैथुनं च सामान्यमेतत् पशुभिर्नराणाम्।

धर्मो हि तेषां अधिकोविशेषो धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः॥" इति॥ (हितोपदेशः)

ये जनाः सामाजिककर्तव्यपालने असमर्थाः, तेषां जीवनं तु व्यर्थमेव। सामाजिकाः जीवाः मानवाः। समाजं विना मानवजीवनस्य कल्पना न सम्भवति। सुसंस्कृतिपूर्णसमाजे जनाः अपि सुसंस्कृतिपूर्णाः उत्तमविचारशीलाश्च भवन्ति। उत्तमसमाजविनिर्माणाय समाजे विद्यमानानां जनानां अपि उत्तरदायित्वं वर्तन्ते एव। तदर्थमेव राष्ट्रनायकाः समाजस्य

विकासार्थं सर्वदा प्रयतन्ते। सामाजिकविकासाय कवीनां योगदानं प्रतियुगं जनैः स्वीकृतम्। साहित्यं सर्वदा एव स्वसमयं प्रभावयति। तत्समयम् आश्रित्यैव साहित्यं रचयन्ति साहित्यिकाः। साहित्यिकाः स्वरचनायां स्वसमयानुगुणं परिवेशं तथा तस्मिन् समये विद्यामानापरम्परानुसारेण मूल्यबोधं संस्थापयन्ति। यस्य राष्ट्रस्य साहित्यं यथा समुन्नतं तस्य राष्ट्रस्य वैभवं तदनुसारं वर्णयितुं शक्यते। सुविस्तृते प्राचीने संस्कृतसाहित्ये मानवसमाजस्य तदानीन्तनविषयं प्रतिफलितम् एव।

अर्वाचीनकवयः पुरातनकविभिः प्रभाविताः सन्तः सर्वथा स्वकृतिषु सामाजिकीं सत्शिक्षां प्रदातुं प्रयत्नं कुर्वन्ति। सम्प्रति समकालिककविषु रससिक्तः व्यङ्ग्यकविः डा. प्रमोदकुमारनायकमहोदयाः विषयेऽस्मिन् सर्वदा प्रशंसार्हाः अभिनन्दनीयाः च। अस्मिन् सामाजिकान्दोलने डॉ. प्रमोदकुमारनायकमहोदयस्य अविस्मरणीयं गुरुत्वपूर्णं च योगदानं वर्तते, तस्य कीर्तिषु सामाजिकचेतना कविना सम्यक प्रतिपाद्यते। आधुनिकसामाजिकविषयस्य वर्णनं कृत्वा हास्यव्यङ्ग्यकाव्यस्वरूपस्य सरसाभिव्यक्तिं क्रियते कविना। व्यङ्ग्यकवि डॉ. प्रमोदकुमारनायकमहोदयेना व्यङ्ग्यविषयमाधृत्य काव्यरचना कृता, ते काव्यानि यथा –

पद्यकाव्यसङ्ग्रहः

दारिद्र्यशतकम् (व्यङ्ग्यकाव्यसंग्रहः)

गर्तः (व्यङ्ग्यकाव्यसंग्रहः)

शबरी (व्यङ्ग्यकाव्यसंग्रहः)

रात्रिर्गमिष्यति (व्यङ्ग्यकाव्यसंग्रहः)

कथाकाव्यसङ्ग्रहः

उवाच कण्डुकल्याणः (व्यङ्ग्यकथासंग्रहः)

स्वर्गादपि गरीयसी (व्यङ्ग्यकथासंग्रहः)

कथासप्ततिः (व्यङ्ग्यकथासंग्रहः)

अधरं मधुरम् (व्यङ्ग्यकथासंग्रहः)

स्वर्गपुरे (व्यङ्ग्योपन्यासः)

एषु काव्येषु यौतुकप्रथा, दलितचेतना, वेतनोपजीविचेतना, वर्णव्यवस्था, राष्ट्रियभावना, समाजसेवा, नारीचेतना, शिक्षाव्यवस्था चेत्यादयः सामाजिकविषयस्य वर्णना कविना सम्यक्तया प्रकटीकृता। सामाजिकतां विना मानवजीवनस्य कल्पना न सम्भवति, यदि समाजे सामाजिकता न तिष्ठति तर्हि अस्माकं परितः अव्यवस्थायाः परिवेशः परिलक्षितः भवति। मानवानां सामाजिकपरिस्थितिः तेषां आचार-विचार-स्वभाव-कर्म-आचरण-जीवनयापनरीत्यानुसारेण भवति। समाजे विद्यमानान् सर्वान् समस्यान् समाप्य सर्वेषां प्रति प्रेमभावनायाः तथा सौहार्द्यपूर्णमनोभावनायाः जागरणं सामाजिकजनस्य दायित्वम्। जनमानवेषु जातिधर्म तथा कमपि विभेदं समाप्य एकात्मकतायाः भावना स्थापनं सामाजिकतायाः उद्देश्यम्। येन देशस्य जातेः राष्ट्रस्य च उन्नतिः सम्भवति।

विद्यापतिदाहालप्रणीतशङ्करदेवमहाकाव्ये भक्तितत्त्वस्य निरूपणम् ।

जीमनि हालै , शोधच्छात्रा कुमारभास्करवर्मसंस्कृतपुरातनाध्ययनविश्वविद्यालयः

साहित्यं समाजस्य दर्पणमस्ति । काले काले साहित्ये नवनवोन्मेषाः भवन्ति । समग्रे भारतवर्षे संस्कृतमहाकाव्यरचनायाः समृद्धा परम्परा प्राचीनकालादेव प्रचलिता अस्ति । एवं रूपेण संस्कृतसाहित्यस्य आधुनिकमहाकाव्यपरम्परायाम् अर्वाचीनसंस्कृतकवेः विद्यापतिदाहालमहोदयस्य महत्त्वपूर्णमवदानं विद्यते ।

संस्कृतमातुः सेवां कुर्वता दाहालदेवेन स्वकीयजीवनकाले बहूनि संस्कृतकाव्यानि -महाकाव्यानि खण्डकाव्यानि च विरचितानि । तेन विरचितेषु पञ्चदशसु महाकाव्येषु शंकरदेवमहाकाव्यम् आदिमं तथा महत्त्वपूर्णं महाकाव्यम् अस्ति। शंकरदेवमहाकाव्यम् षोडशसर्गेषु विभक्तं पद्यात्मकं महाकाव्यमस्ति । भारतवर्षस्य उत्तरपूर्वाञ्चलस्य प्रसिद्धवैष्णवधर्मप्रवर्तकस्य शंकरदेवस्य जन्मकालादारभ्य तस्य सम्पूर्णजीवनदशां समाश्रित्य महाकाव्यमेतद् विरचितमस्ति । शंकरदेवमहाकाव्ये अध्यायः 'सर्ग' इति नाम्ना ज्ञायते । अलङ्कारशास्त्रेषु विशेषतः साहित्यदर्पणग्रन्थे महाकाव्यस्य यानि यानि वैशिष्ट्यानि परिदृश्यते, तत् प्रायशः सर्वमेव शङ्करदेवमहाकाव्ये उपलभ्यन्ते । रसालङ्कारगुणादीनां यथोचितविन्यासेन दाहालमहोदयस्येदं महाकाव्यं शोभायमानं वर्तते ।

महाकाव्येऽस्मिन् भक्तिरसः मुख्यरस इति वक्तुं शक्यते । ' भक्तिः' इति शब्दः संस्कृतस्य 'भज् ' धातोः (भज् + क्तिन्) निष्पन्नः। भक्तिपदस्य अर्थः भजनं, सेवा च इति । एषा सेवा परमेश्वरस्य प्रति क्रियमाणा सेवा भवति । शंकरदेवमहाकाव्यस्य प्रारम्भात् अन्तिमपर्यन्तं सर्वत्र भक्तिरसस्य प्राधान्यं दरीदृश्यते । अत्र अन्येषां रसानां प्राधान्यं न दृश्यते । वैष्णवालाङ्कारिकाणां मतानुसारं तु भक्तिरस एव सर्वेषां रसानां मूलः । महाकाव्येऽस्मिन् षोडशसर्गाः सन्ति । तेषु प्रथम-द्वितीय-पञ्चम-सप्तम-अष्टम-नवम-द्वादश-चतुर्दश-षोडशसर्गेषु भक्तिरसस्यास्य बहुलप्रयोगः परिदृश्यते । शंकरदेव एव असमप्रदेशीय-धार्मिकजागरणस्य धर्मगुरुः आसीत् । शङ्करदेवस्य जीवनोद्देश्यमासीत् भगवन्तं श्रीकृष्णं प्रति अनन्या भक्तिः । परमपुरूषस्य श्रीकृष्णस्य चरितवर्णनं शंकरदेवमहाकाव्ये समुपलभ्यते । तत्र श्रीकृष्णस्य देवक्याः गर्भे प्रवेशवर्णनम्, आविर्भावस्य वर्णनं चेत्यादयो विषयाः सम्प्राप्यन्ते । तदनन्तरं पूतनाया उद्धारकथा, शकटभञ्जनवर्णनमित्यादिकथाः प्राप्यन्ते । पुनः कृष्णस्य गोवर्धनधारणस्य वर्णनं दृश्यते । शंकरदेवमहाकाव्ये समुल्लेखितं श्रीकृष्णचरितम् अतीव रमणीयमस्ति । कृष्णचरितं हि जनानां हृदये भक्तिभावं जनयति तथा च तेषां ज्ञानमपि वर्धयति । अत्र श्रीकृष्णस्य रूप-गुणानां महत्त्ववर्णनावसरे भक्तिरसस्य पराकाष्ठा अनुभूयते । महाकाव्येऽस्मिन् भक्तेः, वैराग्यस्य, नैतिकतायाः, मानवतायाः तथा आध्यात्मिकजीवनस्य महत्त्वं प्रतिपादितमस्ति । अत्र अन्तिमे सर्गे वैष्णवभक्तिवादस्य महत्त्वं उद्घोषितमस्ति । नामधर्मस्य, श्रीकृष्णभक्तेः तथा सरलभक्तिमार्गस्य माध्यमेन वैषणवकविः शङ्करदेवः जनान् आध्यात्मिकजीवनस्य मार्गं प्रदर्शितवान् ।

शंकरदेवस्य वैचित्र्यपूर्णं जीवनचरितमधिकृत्य कविवरेण महाकाव्यमिदं प्रणीतम् । अनेन श्लोकबद्धकाव्येन कविना संस्कृतसाहित्यस्य अविच्छिन्ना धारा प्रवाहिताऽस्ति । शङ्करदेवस्य जीवनचरितस्य, तस्य धार्मिकचिन्तनस्य, भक्तितत्त्वस्य च काव्यमयेन निरूपणेन महाकाव्यमिदं संस्कृतसाहित्ये विशिष्टं स्थानमधिगच्छति ।

कूटशब्दाः – भक्तिः , शंकरदेवमहाकाव्यम् ,श्रीकृष्णः , भक्तितत्त्वम् , भक्तिरसः।

अर्वाचीन संस्कृत नाट्यकर्त्रियों की कृति में नारी पात्र विमर्श (स्वातंत्र्य पूर्व की नाट्यकर्त्रियों के संदर्भ में विशेष)

ME*ETA J VYAS*

प्राचीन भारतीय नाट्य परंपरा का प्रमुख ग्रन्थ नाट्यशास्त्र हैं|जिसकी रचना भरतमुनि द्वारा मानी जाती है|यह ग्रन्थ केवल नाट्य और अभिनय की तकनीक का नहीं,बल्कि तत्कालीन समय संस्कृति और स्त्री-पुरुष संबंधो का भी दर्पण है|नारीपात्र वर्णन में नाट्यशास्त्र महत्त्व पूर्ण सामग्री प्रदान करता है| नाट्यशास्त्र में स्त्रियों को रंगमंच का अनिवार्य अंग माना गया हैं|अभिनय,नृत्य और संगीत में उनकी भागीदारी को आवश्यक बताया गया हैं|स्त्री पात्रों के बिना नाट्य की पूर्णता संभव नहीं मानी गई|इससे स्पष्ट होता है कि के क्षेत्र में स्त्रियों को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था|

नाट्यशास्त्र में स्त्रियों का चित्रण प्रेमिका,पत्नी,माता,दासी,गणिका एवम देवी के रूपों में मिलता हैं|इन रूपों के माध्यम से स्त्री के सामाजिक,भावनात्मक और सांस्कृतिक पक्षों को किया गया है|नाट्यशास्त्र में

वासकसज्जा,विरहोत्कंठा,स्वाधीन खंडिता आदि यह वर्गीकरण स्त्री की भावनाओं,इच्छाओं,आत्मसम्मान को अभिनय करता है| स्त्री केवल पुरुष परिधि में नहीं, बल्कि एक स्वतंत्र भाव जगतवासी व्यक्ति के रूप में भी देखा गया|उसका द्रष्टिकोण पूरी तरह स्त्री वादी मत है,अधिकांश पुरुषपात्र के संबधों के का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है|नाट्यशास्त्र में नृत्य,संगीत और अभिनय की कुशल साधिका रूप से यह संकेत मिलता है कि सांकृतिक जीवन में स्त्रियों की भागीदारी को मान्यता प्राप्त थी| संक्षेप में नाट्यशास्त्र स्त्री को केवल एक पात्र नहीं बल्कि नाट्य सृजन और सांस्कृतिक अभिव्यक्ति की महत्वपूर्ण के रूपमें प्रस्तुत करता है|वह अभिव्यक्तिकरऔर सांस्कृतिक जीवन का केन्द्रबिन्दु है,किन्तु ही पितृसतात्मक परिभाषित भी देती है|इसलिए नाट्यशास्त्र का स्त्री-विमर्श न तो पूर्णत: स्त्री-मुक्ति काली है और न तो स्त्री की और बहुआयामी दस्तावेज है|

शून्ये मेघगाने चन्द्रस्य काव्यिकव्यवहारः

डॉ. अनुराधा मण्डल

शान्तिनिकेतनस्य विश्वभारती केन्द्रीयविश्वविद्यालये प्रायः दशकद्वयम् अध्यापनरतो भूत्वा संस्कृताचार्यः अरुणरञ्जनः मिश्रः 2024 संवत्सरे सेवानिवृतो जातः। काव्यशास्त्रज्ञोऽयम् आचार्यः 2018 संवत्सरे तस्य प्रथमसंस्कृतकाव्यग्रन्थम् ‘तव जवाधर-मन्मय-रेखासु’ (कोलकाता) इत्याख्यम् विलिख्य संस्कृतसाहित्ये उत्तराधुनिकतायाः आवाहनम् कृतवान्। तदनुरोधेन तस्य ‘शून्ये मेघगानम्’ (दिल्ली, 2023) इति तृतीयसंस्कृतकाव्यग्रन्थः केन्द्रसाहित्य-अकादमी पुरस्कारप्राप्तः। इदानीं तस्य षट् संस्कृतकाव्यग्रन्थाः विद्यन्ते। शोधप्रबन्धेऽस्मिन् ‘शून्ये मेघगाने’ चन्द्रस्य काव्यगतो व्यवहारः कथं कविना विहितः तद्विषये अध्येतुकामा वयम्।

चन्द्रः वैदिककालादपि कवीनां मनांसि आकर्षति। लौकिकसंस्कृतसाहित्ये विशेषतः शृङ्गाररप्रसङ्गे चन्द्रस्य कल्पना काव्यिकव्यवहारश्च कविभिः कृतः। किन्तु अस्मिन् उत्तराधुनिके काव्ये प्राचीनकाव्यविषयस्य चन्द्रस्य किदृग् व्यवहारं कविः साधयति तदवश्यम् आधुनिकानाम् उत्तराधुनिकानाञ्च कवीनाम् तथैव समीक्षुणाम् आग्रहविषयो भवेत्। अस्मिन् काव्यग्रन्थे कविताद्वयस्य शीर्षके अपि चन्द्रशब्दस्य व्यवहारः प्राप्यते, तद्यथा – ‘मर्मरितं चन्द्रस्य श्मशानम्’ ‘शयने प्रविशन्ति चन्द्ररश्मयश्च’। साधारणतः प्राचीन-कवयः चन्द्रम् उद्दीपनविभावत्वेन विशेषणरूपेन च वर्णयन्ति। ततः पुनः विविधालङ्कारप्रसङ्गेषु चन्द्रः काव्यालङ्कारं काव्यरसं च परिपोषयति स्म। तदूर्ध्वं प्रस्तुतकविः मिश्रमहोदयः अपूर्वबिम्बविधानार्थं नव्यप्रतीकस्य सर्जनार्थं नूतनकल्पनायाः प्रयोगार्थं च स्वकाव्ये चन्द्रं व्यवहरति। चन्द्रस्य एतादृशानां विविधकाव्यिकव्यवहाराणां संक्षिप्तचर्चा एकमेव ग्रन्थमाश्रित्य वयं कर्तुं व्यवसिताः।

मुख्यशब्दाः – उद्दीपनविभावरूपेण चन्द्रः, विशेषणप्रयोगे चन्द्रः, अलङ्कारेषु चन्द्रः, कविकल्पनायां चन्द्रः, प्रतीकप्रयोगे चन्द्रः, बिम्बप्रयोगे चन्द्रः।

Amrutaphalam “अमृतफलम्”

Anupama Majhi

“अमृतफल” इति विशिष्टकथाकारमनोजदासस्य एका कालजयिनी ओड़िआ उपन्यसरचना, या १९९६ तमे वर्षे प्रकाशिता अभवत् । एतस्याः श्रेष्ठकृतेः सः २००० तमे वर्षे सम्मानजनकं 'सरस्वती सम्मान' प्राप्तवान् । उपन्यासः द्वेयोः भिन्नसमययोः समानान्तरतथां सिकृत्य गतिशीलः । प्रथमा कथा अस्ति उज्जयिन्याः राज्ञः भर्तृहरेः पौरानिकी आख्यायिका।तस्मै एक: योगी एकं दिव्यं अमृतफलम् ददाति, यस्य भक्षनेन मनुष्यः अमरः भविष्यति। किन्तु तत् फलं राजप्रासादस्य विश्वासघातकतयाः स्वार्थपरतायाः च चक्रव्युहे एवं भ्रमति, यत् अन्ते राजानं वैराग्यं प्रति नयति। द्वितीय कथा आधुनिकयुगस्य एकस्य सफलव्यवसायिनः अमरनाथस्य अस्ति। जीवनस्य सर्वसुखसाधनेषु सत्वापि साः एकं मानसिकम् आध्यात्मिकं च सून्यताम् अनुभवति । मनोज दासः स्वस्य चमत्कृतशैल्यया लोभं, क्षमतां, सम्बन्धस्य नश्वरतां च जिवनस्य वास्तविकसत्यं च अत्रप्रस्तुतवान्। एतत् पुस्तकं पाठकं सांसारिकमोहमायायाः वास्तविकानन्दस्य च मध्ये विद्यमानं भेदं बोधयति । मानवियचरित्रस्य गभीरमनिविज्ञानं आध्यात्मिकजिज्ञासां च आधृत्य रचितं एतत् पुस्तकं ओड़िआ-साहित्म्य एकम् अम्ल्यं रत्नम् अस्ति। ओड़िशा-प्रदेशस्य अन्यः एक: प्रध्यापकः प्रो. गोपबन्धुमिश्रः एतस्याः उपन्यसिकायाः संस्कृते अनुवादं कृतवान्, यस्य प्रथमं संस्करणं २०२० तमे वर्षे साहित्य- अकादमी - संस्थाया

प्रकाशितम् अभवत्। इयम् उपन्यासिका हिन्दी- बाङ्गला- भाषयोः अपि प्राप्ता अस्ति, या पाठकेषु महतीं आदरं लब्धवती।

संस्कृतसाहित्ये अनुवादस्य महत्त्वपूर्णं योगदानम्

Shrabani Das

आधुनिककाले तु संस्कृतद्वारेण नैके नवीनाः अध्ययनविषयाः प्रवर्तिताः। तथाहि पाश्चात्त्यप्राच्यविद्याविद्भिः मैक्समूलयप्रभितिभिः संस्कृतं वेदांश्चाधीत्य तुलनात्मकं भाषाशास्त्रमं तुलनात्मकं धर्मविज्ञानं च इति नवीनाः विषयाः विकासं नीताः। ततश्च विंशशतके तुलनात्मकं सौन्दर्यशास्त्रं सङ्गणकीयसंस्कृतं चेति विषयोरध्ययनमारब्धम्। अनुवादविद्या अनुवादकला च देशभाषाज्ञानस्य अङ्गभूतत्वेन प्राचां मतेन स्वीक्रियते कामं सम्प्रति तु स्वतन्त्रो नूतनश्च विषयो वर्तते अनुवादशास्त्रम्। अस्य विषयस्य महत्ता सम्प्रति कामपि काष्ठामधिरोहति। विदेशेषु अस्मद्देशे च अनुवादाध्यनमिति विषयस्य विभागाः नैकेषु विश्वविद्यालयेषु समारब्धाः सन्ति। यथा यथा विश्वम् एकग्रामतां याति तथा तथा विभिन्नेषु समाजेषु नाना जातिषु नाना देशेषु वा परस्परं संवादाय अनुवादस्य आवश्यकता वर्धते तथा तथा च अनुवादविषये विचारस्य आवश्यकताऽपि समाधिकतरम् अनुभूयते।

संस्कृतभाषायां भारतीयज्ञानचर्चा-संस्कृति-साहित्यं च समृद्धकरणार्थम् अनुवादसाहित्यमत्यन्तं महत्त्वपूर्णः विषयः भवति। विविधभाषायाम् उपलब्धेषु विषयेषु साहित्यं दर्शनं विज्ञानं इतिहासं धर्मीयचिन्तनमपि संस्कृतानुवादेन संस्कृतेऽन्तर्भवन्ति। संस्कृतभाषायां नानाविधज्ञानस्य भण्डारः परिपूर्णः भवति। तस्मात् कारणात् संस्कृतभाषा न केवलं प्राचीना भाषा अपितु आधुनिकसाहित्याकाशे आदान-प्रदानाय महत्त्वपूर्णा भूमिकां निर्वहन्ति। इतोऽपि संस्कृतभाषायां यानि काव्यानि-नाटकानि-गद्यानि च सन्ति तानि सर्वाणि अपि अन्यासु भाषासु अनुवादमाध्यमेन प्रचारः प्रसारः भवति। इत्यस्मिन् कारणेन विभिन्न भाषा-भाषिणः अध्ययनमाध्यमेन विषयस्य रसास्वादानं कर्तुं समर्थः। अनुवादसाहित्यस्य अन्यतमः प्रधानः विषयः भवति सांस्कृतिक ऐक्यस्य स्थापना। भारतीयभाषासु बङ्गला-हिन्दी-तामिल-तेलेगु-कन्नड-माराठी-असमीया इत्यादिषु उत्तमसाहित्यग्रन्थानां संस्कृतानुवादमाध्यमेन विविधभाषाभाषिणां मध्ये भावस्य आदान-प्रदानं सुगमं भवति। अनेन यथा विश्वस्य विभिन्नदेशस्य साहित्यसंस्कृतेषु अनुवादः जातः तथैव अन्तर्राष्ट्रीयसाहित्यसंस्कृतिः संस्कृतभाषा-उभयोर्मध्ये सम्बन्धः अपि सुदृढः संजातः। शिक्षागवेषणाक्षेत्रेष्वपि अनुवादसाहित्यस्य महत्त्वमधिकमस्ति। आधुनिकविज्ञानं दर्शनं साहित्यतत्त्वस्य च सम्बन्धाः विविधाः विषयाः संस्कृतभाषायां अनुवादस्य माध्यमेन गवेषकाः छात्राश्च नूतनज्ञानेन परिचितः अभवत्। फलतः संस्कृतभाषा आधुनिकज्ञानस्य साधनाय उपयुक्ता अभवत् यथा नूतनपदार्थनिर्माणं च सम्भवः जातः।

इतोऽपि अनुवादसाहित्येन संस्कृतभाषायाः साहित्यिकव्याप्तिः विस्तारितास्ति। विविध-भाषासु काव्य-उपन्यास-नाट्य-निबन्धानाम् अनुवादेन संस्कृतसाहित्ये नवनवविषयशैल्याः अभिव्यक्तेः विधानां च समावेशः अभवत्। कविगुरुरवीन्द्रनाथठाकुर-प्रेमचन्द्र-ईश्वरचन्द्र-शरतचन्द्रवर्याणां विविध कृतिनां अधुनातनकाले विश्वस्तरे संस्कृतभाषायाम् अनुवादमाध्यमेन संस्कृतपाठकानां कृते ज्ञानार्जनस्य नूतनविषयः भवति।

परिशेषे वक्तुं शक्यते, अनुवादसाहित्येन संस्कृतभाषायां निभद्धज्ञान-संस्कृति-साहित्यं च परस्परं दृढसेतुः निर्मियते। अनेन संस्कृतभाषा समकालिना गतिशीला सर्वमान्यता च प्राप्ता। अतः संस्कृतभाषायाः विकासाय वैश्विकप्रकाशाय च अनुवादसाहित्यस्य योगदानम् अनिर्वचनीयम्।

Mahāpuruṣa Vidyā and Its Relevance in Contemporary Sanskrit Literature

Itishree Swain

In the Vedic tradition, the Supreme Being is conceived as Purusa. This concept is further developed in the Śrīmad Bhagavad Gītā, Skanda Purāṇa, and Śrīmad Bhāgavata as Purusottama Māhātmya, commonly known as Mahāpuruṣa Vidyā or Dāru-Brahma Māhātmya. This paper

explores the foundational principles of Mahapuruṣa Vidyā and examines its continued relevance in Contemporary Sanskrit Literature.

Mahāpuruṣa Vidyā presents Lord Jagannātha as Mahāpuruṣa, the supreme power and greatest of all beings. The textual source of this tradition is traced to the Brahma Purāṇa, where Mahāmuni Sūta narrates to Ṛṣi Saunaka the divine creation and its creator – a discourse earlier held between Maharṣi Nārada and Vyāsadeva. The text provides essential descriptions of Nīlācala, Śankha Kşetra, and the theological mystery of Dāru-Brahma. It further elaborates the Mahāpuruşa Vidyā presents Lord Jagannatha as Mahāpuruşa, the supreme power and greatest of all beings. The textual source of this tradition is traced to the Brahma Purāṇa, where Mahāmuni Sūta narrates to Ṛṣi Saunaka the divine creation and its creator a discourse earlier held between Maharṣi Nārada and Vyāsadeva. The text provides essential descriptions of Nīlācala, Śankha Kşetra, and the theological mystery of Dāru-Brahma. It further elaborates the geographical, historical, and philosophical dimensions of the ancient pilgrimage city of Purī. In the context of Contemporary Sanskrit Literature, Mahāpuruşa Vidyā serves as a vital source of inspiration. Modern Sanskrit poets, essayists, and scholars are revisiting these teachings to address current issues of devotion, ethics, cultural identity, and spiritual heritage. By integrating traditional themes with contemporary expression, Sanskrit writers are ensuring the continuity of Puri's spiritual legacy. This study thus argues that Mahāpuruşa Vidyā remains not only a theological doctrine but also a living literary and cultural force in present-day Sanskrit discourse.

Keywords: Puruṣa, Dāru-Brahma, Brahma Purāṇa, Skanda Purāṇa, Śankha Kṣetra, Purī, Mahāpuruṣa Vidyā, Pilgrimage.

Education of Relationship in the Sanskrit Poetry of A.R. Mishra

Dr. Kartik Pal

Prof. Arun Ranjan Mishra is well known as a postmodernist poet in Sanskrit and Odia. As a teacher of Sanskrit he is a great lover of this language and Indian culture. He wrote six collections of postmodernist Sanskrit poems by now. His first collection of Sanskrit poems 'तव जवाधर-मन्मय-रेखासु' (2018) caused the appearance of postmodernism in the Sanskrit literature for the first time. Recognising him as the pioneer of this trend in Sanskrit literature the central Sahitya Academy gave him the Sahitya Academy Award in 2023 for his third collection of Sanskrit poems entitled 'शून्ये मेघगानम्'. He has also been accorded with the prestigious 'Vāgdevī Sammanam' of Keshab-Subhadra Foundation (Puri), for his second poem book 'नेत्रप्रान्ते निस्पन्दसमयः' (2019).

In recent Education system in the west, education on the relationship is becoming a growing area. This is because the most of the mental crisis and depression occur there because of the failure in the relationship – especially in the love relationship. Poets like Shakespeare and Elizabeth Barriet Browning made the people conscious about the value of relationship by writing intensively poems and sonnets on the complexities of relationship often using imagery on love, beauty and heart-break. Elizabeth explored in her poetry the themes of love, relationship and family.

The term "Relationship Education" in the West refers to programmes and curricula that teach skills for developing and maintaining healthy functional relationship. This education is a growing field that recognizes interpersonal connection as learned skill, not just a matter of instinct. Presently we

wish to make a brief study on the Education in Relationship as reflected in his third book of poems 'शून्ये मेघगानम्'।

Key Words – God, Beloved, Relation, Consequence of break up, Missing, Hopeless situation, Change in heart and Doubt.

नायकत्व का क्रमिक विकास: प्राचीन भारतीय नाटक और आधुनिक हिंदी सिनेमा

आकाश

भारतीय कला और साहित्य में 'नायक' की संकल्पना समय के साथ निरंतर परिवर्तित होती रही है। प्राचीन भारतीय नाट्यशास्त्र के ईश्वरीय और आदर्शवादी नायक से लेकर आधुनिक हिंदी सिनेमा के यथार्थवादी, संघर्षशील आम आदमी तक की यह यात्रा समाज के मनोवैज्ञानिक और लोकतांत्रिक विकास का एक स्पष्ट दर्पण है। भरत मुनि के 'नाट्यशास्त्र' और धनंजय के 'दशरूपक' के अनुसार, नायक को सर्वगुण संपन्न, क्षमाशील और उच्च कुल में उत्पन्न होना चाहिए। प्राचीन शास्त्रों में 'धीरोदात्त' नायक (जैसे भगवान राम या राजा दुष्यंत) को सर्वश्रेष्ठ माना गया है। वह पूर्णतः दोषरहित होता था और उसका मुख्य उद्देश्य समाज में नैतिक आदर्शों की स्थापना करना था। यह नायक इस संकल्पना पर आधारित था कि "एक आदर्श मनुष्य को कैसा होना चाहिए।" धनंजय ने नायक का वर्णन इस प्रकार किया है: "नेता विनीतो मधुरस्त्यागी दक्ष: प्रियंवद:।" (अर्थात्: नायक विनयशील, मधुरभाषी, त्यागी, चतुर, और प्रिय बोलने वाला होना चाहिए - दशरूपक, 2/1)

आधुनिक हिंदी सिनेमा में नायक

आधुनिकता के साथ नायकत्व राजमहलों से निकलकर सड़कों और मलिन बस्तियों में आ गया। 1950 के दशक में राज कपूर का शोषित नायक, 1970 के दशक में अमिताभ बच्चन का 'एंग्री यंग मैन' (जो भ्रष्ट सिस्टम के खिलाफ विद्रोही था), और आज के दौर में नवाजुद्दीन सिद्दीकी या आयुष्मान खुराना जैसे 'एंटी-हीरो' इसके सटीक उदाहरण हैं। आज का नायक सर्वगुण संपन्न नहीं है; बल्कि वह अपनी मानवीय कमजोरियों, बीमारियों, अवसाद और नैतिक दुविधाओं के साथ यथार्थवादी रूप में पर्दे पर आता है।

तुलनात्मक निष्कर्ष

दोनों कालखंडों के नायकों में मूल अंतर 'आदर्श' (Idealism) और 'यथार्थ' (Realism) का है। प्राचीन काल का नायक ईश्वरीय गुणों से युक्त होकर समाज का नेतृत्व करता था, जबकि आधुनिक सिनेमा का नायक समाज के सिस्टम से जूझता हुआ एक आम इंसान है। प्राचीन नाटकों की भाषा परिष्कृत थी, जबकि आज का नायक आम बोलचाल की भाषा का प्रयोग करता है। नायकत्व का विकास ईश्वरीय छटा से मुक्त होकर अब पूरी तरह से मानवीय धरातल पर आ खड़ा हुआ है। आज का दर्शक किसी देवता में नहीं, बल्कि गलतियां करने वाले अपने जैसे हाड़-मांस के मनुष्य में खुद को तलाशता है।

अर्वाचीनसंस्कृतसाहित्ये आचार्यनित्यानन्दस्मृतितीर्थविरचितस्य त्रैलङ्गवैभवमहाकाव्यस्य आध्यात्मिकस्वरूपम्।

अष्टमी बेज्

विंश-एकविंशशतव्द्याः संस्कृतसाहित्यसाधकाः ऐतिहासिकमहापुरुषाणां चरित्राणि विविधधर्मप्रचारकाः राजनैतिकनेतृवृन्दाः स्वदेशप्रेमिकाः समाजसंस्कारकाः सारस्वतसाधकप्रमुखानां जीवनादर्शनमुपजीव्य दृश्यश्रव्यकाव्यानां रचनामाध्यमेन संस्कृतसाहित्यं समृद्धं कृतवन्तः। अर्वाचीनसंस्कृतसाहित्याकाशे पण्डितनित्यानन्दस्मृतितीर्थः महातेजश्शालि नक्षत्रस्वरुपः।

तैलङ्गस्वामी नाम्ना सिद्धपुरुषस्य जीवनं योगसाधनामाधारिकृत्य कविः नित्यानन्दः विंशतिसर्गविशिष्टं तैलङ्गवैभवम् इति महाकाव्यं विरचितवान्। काशीप्रदेशस्य सुप्रसिद्धं सिद्धमहायोगी आसीत् तैलङ्गस्वामी। 1529 ईशवीय संवत्सरे दाक्षिणात्ये आन्ध्रप्रदेशस्य भिजियानामण्डले होलिया इति ग्रामे अजायत। तस्य पितुः नाम नृसिंहः राउः तथा मातुः आसीत् विद्यावती। माताविद्यावती भगवन् शिवस्योपासिका आसीत्। नृसिंहविप्रः नवजातपुत्रं शिवरामयोः सर्वे गुणाः दृष्ट्वा तस्य नाम शिवरामः इति नामकरणं कृतवान्। बाल्यकालात् एव ते अनन्यासाधारणव्यक्तित्यसम्पन्नः आसीत्। लौकिकजीवने तस्य रुचिः नासीत्। अतः मातुः वियोगात् अनन्तरं गृहं त्याक्त्वा विंशतिवर्षाणि यावत् निरन्तरं योगसाधनां कृतवान् । तत्पश्चात् भारतवर्षस्य विभिन्नस्थानेषु यथा रामेश्वर-नेपाल-तिव्वत-एलाहावादः इत्यादयः स्थानेषु निवसति स्म। वाल्यकाले तस्य नाम शिवरामः आसीत् तत्तु सन्न्यासग्रहणपश्चात् स्वामी गणपति सरस्वती पुनः तैलेङ्गानाप्रदेशात् काशीं आगतवान् इति हेतोः तस्य नाम त्रैलङ्गस्वामी। स्वामिना जीवनेन युक्तं विविधानि वैचित्राणि आश्यर्यजनकानि अलौकिकवृत्तान्तानि संस्कृतभाषायां निबन्धमस्ति आचार्यनित्यानन्दस्य महाकाव्ये। अशीत्यधिकद्विशत् वर्षाणि यावत् ते मर्तलोके निवसन्ति स्म। त्रैलङ्गस्वामिनं भक्ताः द्वितीयविश्वेश्वरः इति उपाधिना विभूषितवन्तः। दारुणशैत्ये तस्य शरीरं जलमग्नः तथा प्रचण्डदावदाहे उत्तप्तवालुकामये शयनं च तस्य कृते समानमासीत् न तु तारतम्यमासीत् । जीवनस्य अन्तिमभागे ते मौनव्रतं पालितवान्। एतादृशी सिद्धयोगीनःजीवनचरितमाश्रित्यं प्रवन्धकारः **त्रैलङ्गवैभवं** महाकाव्यं रचितवान्।

त्रेलङ्गस्वामी अद्वैतवेदान्तवादस्य महान् योगी आसीत्। काशीप्रदेशस्य गङ्गातटे समग्रजीवनं अतीतानि स्म। सचलविश्वनाथः इति नाम्ना विख्यातः आसीत्। तेषां आध्यात्मिकदृष्टिः सम्पूर्णतया अद्वैतः अपि च आत्मसाक्षात्कारोपरि आधारितम्। त्रैलङ्गस्वामि अद्वैतवेदान्तस्य मूत्तिमान् विग्रहः आसीत्। तैः आत्मा परमात्मा च एक एव मन्यन्ते स्म। तेषां कृते सम्मानं तिरस्कारं सुवर्णं पाषाणं विषं अमृतं च सर्वं समानमासीत्। यदा श्रीरामकृष्णपरमहंसदेवः त्रैलङ्गस्वामीना मिलित्वा तां भगवतः शिवस्य अवतारं वर्णितवान्। शत्रुजनाः त्रैलङ्गस्वामिनं वधाय वहुवारं विषं प्रदत्तवन्तः परन्तु तस्य सिद्धशरीरे विषस्य कोऽपि प्रभावः नासीत्। ते गङ्गानद्याः जलस्य उपरि समाधिवस्थायां उपविष्टुं शक्नोति स्म। एकदा आङ्गलजनाः तान् कारागारे आवद्धवान् परन्तु तस्मिन्क्षणे तान् कारागारस्य छादस्योपरि दृष्टवन्तः। ते तपस्यावलेन रोगेण पीडितानां जनानां चिकित्सां केवलं स्पर्शेन एव कर्तुं शक्नुवन्ति स्म। इतोऽपि विविधानि अलौलिकवृत्तान्तानि सन्ति इति धीया यथा मे मति अध्ययनं कृत्या संक्षेपेन लिखितम्।

श्रीमद्भागवतपुराणस्य प्रथमस्कन्धे कुन्ती-स्तुत्याः दार्शनिकं सामाजिकञ्च महत्त्वम्

Dr. Suman K.S., Pampi Jamatia,

श्रीमद्भागवतपुराणस्य प्रथमस्कन्धस्य अष्टमेऽध्याये कुन्तीदेव्याः प्रार्थना विशेषतया उल्लेखनीया अस्ति । सा प्रार्थना केवलं भगवतः स्तुतिरूपेण न दृश्यते; तस्यां कुन्तीदेव्याः जीवनानुभवाः, दुःखसहिष्णुता, भगवति दृढविश्वासः तथा स्वजनानां प्रति तस्याः उत्तरदायित्वबोधश्च स्पष्टतया प्रकटिताः भवन्ति । अनेकासु विपत्तिषु पतित्वापि कुन्ती भगवन्तं प्रति स्वकीयां श्रद्धां न त्यजति । अत एव तस्याः प्रार्थना मानवजीवनस्य प्रतिकुलताः आध्यात्मिकदृष्ट्या अवगन्तुं महत्त्वपूर्णा भवति । कुन्ती-स्तुतौ श्रीकृष्णस्य स्वरूपं केवलं पाण्डवानां स्वजनरूपेण न, अपि तु जगतः कारणभूतस्य परमेश्वरस्य रूपेण प्रतिपादितम् अस्ति । "नमस्ये पुरुषं त्वाऽद्यमीश्वरं प्रकृतेः परम्" इत्यादिना कुन्ती भगवतः परत्वं सर्वव्यापकत्वं च स्वीकारयति। पुनश्च "विपदः सन्तु नः शश्वत्" इति प्रार्थनया सा विपदां प्रति एकं विशिष्टं दृष्टिकोणं प्रस्तुतयति । सामान्यतः दुःखं यथा परिहार्यं मन्यते, कुन्त्या तु विपत्तिष्वपि भगवत्स्मरणस्य सम्भावना दृष्टा । एतादृशः भावः भक्तेः स्वरूपं तथा भगवत्स्मरणस्य महत्त्वं प्रकाशयति । कुन्ती-स्तुत्याः सामाजिकपक्षोऽपि विचारणीयः अस्ति । कुन्ती-चरित्रे भक्तिभावेन सह धैर्यं, कर्तव्यनिष्ठा तथा निर्णयक्षमता च स्पष्टतया दृश्यते । माता तथा राजपरिवारस्य सदस्या इति विविधेषु दायित्वेषु स्थित्वा सा सङ्कटकालेऽपि मानसिकदृढतां प्रदर्शयति । स्वजनानां प्रति तस्याः

कर्तव्यबोधः तथा प्रतिकूलपरिस्थितीनां सम्मुखीकरणे तस्याः धैर्यं तस्याः व्यक्तित्वस्य विशिष्टतां प्रकाशयति । एतस्मात् दृष्ट्या कुन्ती-चरित्रं प्राचीनभारतीयसमाजे स्त्रीजीवनस्य विविधपक्षान् अवगन्तुं महत्त्वपूर्णम् अस्ति । अस्मिन् शोधपत्रे प्रथमस्कन्धस्य अष्टमाध्यायस्थायाः कुन्ती-स्तुत्याः पाठानुशीलनपूर्वकं तस्याः दार्शनिकं सामाजिकञ्च महत्त्वं विवेच्यते । विशेषतः भगवतः स्वरूपम्, भक्तितत्त्वम्, विपत्तीनां आध्यात्मिकदृष्ट्या स्वीकारः, आत्मसमर्पणम्, नारीसामर्थ्यं तथा सामाजिकउत्तरदायित्वम् इत्येते विषयाः विचार्यन्ते । अन्ते आधुनिकजीवनस्य सन्दर्भे कुन्ती-स्तुत्या प्रदर्शितानां धैर्यस्य, श्रद्धायाः तथा कर्तव्यबुद्धेः प्रासङ्गिकतापि विचार्यते ।

सङ्केतपदानि (Keywords):श्रीमद्भागवतपुराणम्, कुन्ती-स्तुतिः, भक्तिदर्शनम्, विपत्तत्त्वम्, नारीसामर्थ्यम्, सामाजिकचिन्तनम् ।

Women in the Epics

Hemant Kumar Chatwani

इस शोध पत्र के सार में मैंने स्त्रियों की वैदिक काल से लेकर द्वापर तक की स्थिति का वर्णन किया है, जिसमें कुछ ऐतिहासिक महान नारियों के जीवन की घटनाओं का दृष्टान्त प्रस्तुत करके नारी के सम्बन्ध में एक आदर्श एवं मूल्यपरक दृष्टि रखने का प्रयास किया है.

Research Parameters (Introduction): यह अध्ययन भारतीय महाकाव्यों—'रामायण' और 'महाभारत' (साथ ही संबद्ध वैदिक-महाकाव्य परंपरा)—में स्त्रियों की स्थिति, उनके स्वरूप और सामाजिक-नैतिक भूमिका का विश्लेषण करता है। इसका मुख्य उद्देश्य यह समझना है कि प्राचीन महाकाव्यकालीन समाज में महिलाओं को केवल गृहस्थ जीवन तक सीमित न रखकर किस प्रकार निर्णय-क्षमता, साहस और स्वाभिमान से युक्त स्वतंत्र व्यक्तित्व के रूप में देखा गया था।

Methodology: इस शोध में तुलनात्मक पाठ्य विश्लेषण (Comparative Textual Analysis) पद्धति का उपयोग किया गया है। इसके अंतर्गत रामायण और महाभारत के प्रमुख स्त्री पात्रों (जैसे सीता, द्रौपदी, कुंती, गांधारी) के साथ-साथ गार्गी और मैत्रीय जैसी विदुषियों के जीवन-संदर्भों, संवादों और उनके संकटकालीन निर्णयों का सूक्ष्म अवलोकन किया गया है।

Data & Findings: अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि महाकाव्यों में नारियाँ केवल कोमल या आश्रित नहीं रही हैं। सीता सहनशीलता और आत्मसम्मान की मिसाल हैं, तो द्रौपदी अन्याय के विरुद्ध मुखर क्रांतिकारी चेतना का प्रतिनिधित्व करती हैं। इसके अतिरिक्त, कुंती और गांधारी संकट के समय मार्गदर्शक के रूप में उभरती हैं, जबकि गार्गी जैसी विदुषियों के प्रसंग यह सिद्ध करते हैं कि उस काल में महिलाओं को दर्शन और उच्च शिक्षा में पूर्ण अधिकार प्राप्त थे।

Conclusion: यह शोध निष्कर्ष निकालता है कि महाकाव्यों की स्त्रियाँ भारतीय संस्कृति में नारी गरिमा और स्वाभिमान का जीवंत दस्तावेज हैं। उनके चरित्र आज भी नैतिकता, कर्तव्य और अधिकारों के अध्ययन के लिए प्रासंगिक हैं, जो भारतीय विद्या (Indology) के क्षेत्र में प्राचीन नारी-चेतना को नए परिप्रेक्ष्य में समझने की दृष्टि प्रदान करते हैं।

Keywords: [महाकाव्यकालीन स्त्रियाँ (Epic Women)]; [रामायण और महाभारत (Ramayana and Mahabharata)]; [नारी चेतना और स्वाभिमान (Women Consciousness and Self-Respect)]; [प्राचीन भारतीय समाज (Ancient Indian Society)]

Historical Context in Indian Epics: A Study of the Ramayana and the Mahabharata

Vikram V

- **Research Parameters (Introduction):** The Ramayana and the Mahabharata are two major Sanskrit epics that preserve narratives, social values, political ideas, religious traditions, and cultural memories of India. This study examines the historical context represented in these epics, focusing on kingship, social organization, education, family relationships, and warfare. The Ramayana introduces an ideal of leadership through the question**, "को न्वस्मिन् साम्प्रतं लोके गुणवान् कश्च वीर्यवान् । धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्च सत्यवाक्यो दृढव्रतः" ॥ (Ramayana 1.1.2)**. The study asks how such representations contribute to our understanding of the social and political world reflected in the epics.
- **Methodology:** The research follows a qualitative, descriptive, and comparative textual approach. Selected Sanskrit passages from the Valmiki Ramayana and the Mahabharata are examined in their narrative contexts. Particular attention is given to concepts of dharma, kingship, social duty, education, and political responsibility. Literary representation is distinguished from independently verifiable historical evidence.
- **Data & Findings:** The selected passages indicate that kingship is closely connected with the protection and welfare of society. The Mahabharata states, **"सर्वाश्चैव प्रजा नित्यं राजा धर्मेण पालयेत् । उत्थानेनाप्रमादेन पूजयेच्चैव धार्मिकान् ॥" (Shantiparva 12.76.3).** The epics also represent family duties, teacher-student relationships, religious learning, and the consequences of political conflict.
- **Conclusion:** The study concludes that the Indian epics are valuable sources for examining cultural memory, social ideals, and political thought. Their historical significance can be better understood through critical textual analysis and comparison with archaeological, epigraphical, and other historical evidence.
- **Keywords:** Indian Epics; Ramayana; Mahabharata; Historical Context; Cultural History

प्राचीन एवं मध्यकालीन भारत में स्त्री-शिक्षा: एक ऐतिहासिक एवं तुलनात्मक विश्लेषण

अंजलि रंगा

प्रस्तुत शोध-पत्र 'इतिहास एवं पुराण' विभाग के अंतर्गत प्राचीनकाल तथा मध्यकाल में स्त्री-शिक्षा की स्थिति, स्वरूप और उसके सामाजिक प्रभाव का व्यापक एवं तुलनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत करता है। इसका उद्देश्य दोनों कालखंडों में महिलाओं की शैक्षणिक स्वतंत्रता, सामाजिक सहभागिता और उनके अधिकारों में आए ऐतिहासिक बदलावों को रेखांकित करना है।

प्राचीनकाल में स्त्री-शिक्षा अपने चरम उत्कर्ष पर थी और स्त्रियों को गरिमामय पद प्राप्त था। ब्रह्मवादिनी स्त्रियों के लिए उपनयन तथा वेदारम्भ-संस्कार का विधान था। स्त्रियों ने वेदों का गहन अध्ययन किया, वे सूक्तों की व्याख्याकर्त्री 'ऋषिकाएँ' बनीं तथा दिग्गज विद्वानों के साथ शास्त्रार्थ करती थीं। शोध-पत्र में कुछ प्रमुख विदुषियों के योगदान का विशेष वर्णन है।

दूसरी ओर, उत्तर-वैदिक काल से शुरू हुई गिरावट मध्यकाल में अपने निम्नतम स्तर पर पहुँच गई।

विदेशी आक्रमणों और समाज में पनपीं कुरीतियों (जैसे पर्दा-प्रथा, बाल-विवाह, सती-प्रथा) के कारण सामान्य वर्ग की स्त्रियाँ शिक्षा के अधिकार से वंचित हो गईं। शिक्षा संस्थागत न रहकर केवल

कुलीन वर्ग तक सीमित हो गई। जहाँ प्राचीनकाल में शिक्षा का उद्देश्य 'आध्यात्मिक उन्नति' था, वहीं मध्यकाल में यह केवल कला, शिल्प और धार्मिक ज्ञान का साधन मात्र रह गई। इस युग में भक्ति-आन्दोलन की स्त्री-संतों ने समाज में अनौपचारिक शिक्षा और जागृति का संचार करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

निष्कर्ष (Conclusion):

निष्कर्षतः वर्तमान में स्त्री-शिक्षा को समानता तो मिली है, परंतु पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव से संस्कारों का ह्रास हुआ है। अतः समाज के समग्र विकास के लिए भारतीय जीवन-मूल्यों को समाविष्ट करते हुए स्त्री-शिक्षा का प्रबन्धन आवश्यक है। 'माता निर्माता भवति' के आदर्श को अपनाकर ही राष्ट्र को नैतिक पथ पर अग्रसर किया जा सकता है।

मुख्य शब्द (Keywords): स्त्री-शिक्षा, प्राचीन भारत, मध्यकालीन भारत, तुलनात्मक विश्लेषण, ब्रह्मवादिनी, ऋषिका, भक्ति-आन्दोलन, भारतीय जीवन-मूल्य।

भारतीय ज्ञान परम्परा में स्त्रियों का राज्याधिकार

डॉ. नमिता मित्तल

भारतीय ज्ञान परम्परा में राज्य को सत्ता का साधन नहीं, प्रजा-पालन का धर्म माना गया है। इसी कारण राजकुल पर संकट आने पर शास्त्रों ने यह भी विचारा कि राज्य शासक-विहीन न रहे। भारतीय इतिहास पुराणों में राज्याधिकार के विषय में स्त्रियों की सम्मानजनक स्थिति देखने को मिलती है। अनेक अवसरों पर स्त्रियों को भी पुरुषों के समान ही शासन करने योग्य माना गया है, एवं इसके प्रचुर प्रमाण भी भारतीय इतिहास में मिलते हैं। इस शोधपत्र में महाभारत, वाल्मीकि रामायण, कौटिलीय अर्थशास्त्र आदि शास्त्रों से वे वचन संकलित किए गए हैं जिनमें कन्याओं के राज्याधिकार का स्पष्ट संकेत भारतीय ज्ञान परंपरा में मिलता है।

तत्पश्चात् नायनिका, प्रभावतीगुप्ता, रुद्रमा, अहिल्याबाई होल्कर आदि शासिकाओं के उदाहरणों से दिखाया गया है कि यह विचार केवल शास्त्रों में नहीं था, अपितु भारतीय इतिहास में ऐसे अनेक अवसर आए जब महिलाओं ने कुशलतापूर्वक राज्य को चलाया।

उपलब्ध प्रमाणों से ज्ञात होता है कि सामान्य रूप से उत्तराधिकार पुत्र-परम्परा से ही चलता था, किन्तु विशिष्ट परिस्थितियों में शास्त्र ने कन्याओं, पत्नी और महारानी के लिए राज्याधिकार का मार्ग स्पष्ट रूप से खुला रखा था।

इससे स्पष्ट है कि न सिर्फ आधुनिक काल में अपितु प्राचीन काल से ही भारतीय परम्परा में महिलाएं राज्य-संचालन करती रही हैं, एवं यह अर्वाचीन विकास नहीं अपितु सदैव से ऋषियों द्वारा स्वीकृत एवं मान्य है।

कूटशब्द (Keywords) : स्त्री-राज्याधिकार, राज्याभिषेक, महाभारत, रामायण, अर्थशास्त्र

The Relevance of Purāṇic Art and Architectural Principles in Modern House Building: A Study with Special Reference to the Viṣṇu Purāṇa

Dr Mridusmita devi

The Sanskrit Purāṇas constitute an important component of the Indian knowledge tradition and preserve a wide range of ideas concerning cosmology, geography, ecology, social organisation, ethics, aesthetics, religion, and human life. Among the Mahāpurāṇas, the *Viṣṇu Purāṇa* occupies a significant position because it presents an integrated vision of the universe in which the human being, natural environment, living beings, and cosmic order are interconnected. Although the *Viṣṇu Purāṇa* is not a technical treatise on architecture comparable to the *Mānasāra*, *Mayamata*, or other *Vāstuśāstra* texts, it contains several ideas that are relevant to the conceptual foundations of habitation and built environments. Its descriptions of the earth, water, mountains, forests, rivers, directions, elements, household life, hospitality, and the universal presence of Viṣṇu provide a valuable philosophical basis for examining the relationship between traditional Indian thought and contemporary residential architecture.

The present paper examines the relevance of Purāṇic art and architectural principles to modern house building with special reference to the *Viṣṇu Purāṇa*. Particular attention is given to the *pañcamahābhūta* framework, the relationship between the built environment and nature, the significance of water, earth, forests and rivers, the concept of directional organisation, the domestic sphere, hospitality, and the relationship between physical space and spiritual meaning. Original Sanskrit verses from the *Viṣṇu Purāṇa* are analysed to establish the textual basis of the argument. The paper argues that the contemporary relevance of Purāṇic thought does not lie in mechanically reproducing ancient architectural forms or treating the *Viṣṇu Purāṇa* as a technical architectural manual. Rather, its relevance lies in the reinterpretation of its ecological, aesthetic, cultural, ethical, and philosophical principles in the light of modern architecture, environmental science, structural engineering, and contemporary social requirements.

The study concludes that a meaningful dialogue between Purāṇic thought and modern architecture can contribute to sustainable, climate-responsive, culturally rooted, and human-centred housing. Such an approach can be particularly significant in regions such as Northeast India, where traditional architectural knowledge, climatic adaptation, ecological sensitivity, and cultural identity remain important dimensions of residential construction.

Keywords: *Viṣṇu Purāṇa*, Purāṇic tradition, Sanskrit, Vāstu, architecture, *pañcamahābhūta*, sustainable architecture, traditional knowledge, modern house building, Indian art.

महाभारत में कूटनीति एवं धर्म का द्वंद्व : कौरव और पांडव की कूटनीति का पौराणिक साक्ष्यों के आलोक में विश्लेषणात्मक अध्ययन

Purohit Dhruvi Bhaveshbhai

महाभारत में धर्म और कूटनीति का द्वंद्व भारतीय दर्शन एवं राजशास्त्र की एक अत्यंत सूक्ष्म और जटिल संरचना को प्रस्थापित करता है । प्रस्तुत शोधपत्र का मुख्य उद्देश्य कौरवो और पांडवो की भिन्न भिन्न कूटनीति एवं उनके नैतिक द्वंद्व का पौराणिक साक्ष्यों के आलोक में विश्लेषणात्मक अध्ययन करना है । अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि कौरवों की कूटनीति शकुनि और दुर्योधन के व्यक्तिगत लाभ, इर्ष्या तथा छलप्रपंच से संचालित थी । जिसके साक्ष्य द्यूतक्रीड़ा, लाक्षागृह षडयंत्र और द्रौपदी वस्त्रहरण जैसी घटनाओं में मिलते हैं । यहाँ कूटनीति का प्रयोग धर्म और न्याय के सिद्धांतो को ताक पर रखकर सत्ता प्राप्ति के लिए किया गया था । इसके सर्वथा विपरीत पांडवों की कूटनीति का संचालन श्रीकृष्ण के मार्गदर्शन में 'आपद्धर्म' और 'सूक्ष्मधर्म' के सिद्धांतों पर आधारित था । यद्यपि महाभारत युद्ध के दौरान भीष्म, द्रौण, कर्ण और दुर्योधन के वध के संदर्भ में पांडवों द्वारा अपनाई गयी कूटनीतिक रणनीतियां बाह्यरूप से अधर्म प्रतीत होती है, किन्तु पौराणिक संदर्भों के अनुसार लोकसंग्रह और सामाजिक कल्याण की स्थापना हेतु इनका प्रयोग अनिवार्य था । विश्लेषणात्मक दृष्टि से यह अध्ययन यह निष्कर्ष प्रस्तुत करता है कि कौरवों का मार्ग निरपेक्ष स्वार्थ पर आधारित होने के कारण उनके विनाश का कारण बना । जब कि श्रीकृष्ण और पांडवों की रणनीति ने यह प्रतिपादित किया कि अधर्म के समूल नाश और शाश्वत धर्म की पुनः स्थापना के लिए परिस्थिति से जन्य कूटनीति पूर्णतः न्यायसंगत है ।

कूटशब्दः- महभारत, धर्म, कुटनीति, आपद्धर्म, कौरव और पांडव, श्रीकृष्ण, द्वंद्व

Landscape Analysis of Citrakūta Mountain Depicted in the Vālmīkirāmāyaṇa Using Geospatial Techniques

Sateesh Kumar Kandoth

The *Vālmikirāmāyaṇa* is not merely an epic narrative; it also contains rich descriptions of the geographical and ecological landscape of ancient India. Mountains, rivers, forests, flora, fauna, and seasonal variations form integral parts of the narrative setting. Among these landscapes, Citrakūta mountain holds a distinctive place in connection with the forest exile of Rama, Sita, and Lakshmana. The present study focuses on the landscape of Citrakūta as depicted in the *Vālmikirāmāyaṇa* and attempts to analyse its present geographical and ecological characteristics using geospatial techniques. It will systematically identify and examine textual descriptions of Citrakūta-including its mountainous terrain, the Mandākini River, forests, flora and fauna, seasonal changes, and other natural features and subsequently correlate these literary descriptions with the region's contemporary geographical characteristics. The study will examine the physical landscape, key geographical features, and their spatial relationships using modern geospatial technologies, including Geographic Information Systems (GIS), satellite imagery, spatial mapping, and terrain analysis. The study will examine the extent to which the geographical features described in the epic align with the present-day physical landscape of Citrakūta. It will also explore the ecological significance of the region as reflected in the epic, as well as the interrelationships between human life, nature, and the environment.

Thus, the study aims to integrate the analysis of original source with contemporary geographical approaches. By bringing classical literary evidence into dialogue with modern geospatial technologies, the research seeks to provide a comprehensive landscape analysis of Citrakūta and demonstrate the relevance of the Vālmikirāmāyaṇa as a source of geographical and ecological understanding.

Landscape Analysis of Citrakūta Mountain Depicted in the Vālmīkirāmāyaṇa Using Geospatial Techniques

THEJAS PRAKASH

The *Vālmikirāmāyaṇa* is not merely an epic narrative; it also contains rich descriptions of the geographical and ecological landscape of ancient India. Mountains, rivers, forests, flora, fauna, and seasonal variations form integral parts of the narrative setting. Among these landscapes, Citrakūta mountain holds a distinctive place in connection with the forest exile of Rama, Sita, and Lakshmana. The present study focuses on the landscape of Citrakūta as depicted in the *Vālmikirāmāyaṇa* and attempts to analyse its present geographical and ecological characteristics using geospatial techniques. It will systematically identify and examine textual descriptions of Citrakūta-including its mountainous terrain, the Mandākini River, forests, flora and fauna, seasonal changes, and other natural features and subsequently correlate these literary descriptions with the region's contemporary geographical characteristics. The study will examine the physical landscape, key geographical features, and their spatial relationships using modern geospatial technologies, including Geographic Information Systems (GIS), satellite imagery, spatial mapping, and terrain analysis. The study will examine the extent to which the geographical features described in the epic align with the present-day physical landscape of Citrakūta. It will

also explore the ecological significance of the region as reflected in the epic, as well as the interrelationships between human life, nature, and the environment.

Thus, the study aims to integrate the analysis of original source with contemporary geographical approaches. By bringing classical literary evidence into dialogue with modern geospatial technologies, the research seeks to provide a comprehensive landscape analysis of Citrakūta and demonstrate the relevance of the *Vālmikirāmāyaṇa* as a source of geographical and ecological understanding.

From Goloka to Śivaloka: Dharma, Cow Protection, Charity, and Liberation in the Śivadharmottara

Dr. R. Sathyanarayanan

This paper examines the twelfth chapter, *Golokamāhātmya*, of the *Śivadharmottara*, with particular attention to its interrelated constructions of cosmology, *go-dharma*, *dāna*, compassion, and *mokṣopāya*. The chapter opens with Agastya's inquiry: "भगवन्! श्रोतुमिच्छामि गोलोकः कीदृशः पुनः। प्राप्यते कर्मणा केन कियत्यध्वनि संस्थितः ॥" (*Śivadharmottara* 12.1), asking what Goloka is like, through what actions it may be attained, and where it is situated. His questions establish the chapter's central concerns with both the nature of the divine realm and the ethical and ritual means of attaining it.

The ensuing cosmological account situates Goloka within a hierarchical universe culminating in Śivaloka, the supreme abode of Śiva. Goloka is thus not represented as an autonomous realm but is integrated into Śiva's transcendent domain, where the celestial cows Nandā, Subhadrā, Surabhi, Suśīlā, and Sumanā sustain the worlds and embody cosmic nourishment. This conception is fruitfully compared with the *Anuśāsanaparvan* of the *Mahābhārata*, where Yudhiṣṭhira asks how Goloka came to be situated above Brahmaloka: "तस्योपरि कथं ह्येष गोलोकः स्थानतां गतः । संशयो मे महान् एष तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥" The comparison illuminates both the continuity of *go-dharma* across the *Itihāsa-Purāṇa* tradition and its distinctive Śaiva reconfiguration in the *Śivadharmottara*.

Particular attention is given to the chapter's detailed prescriptions for *go-rakṣā*: feeding, watering, sheltering, grazing, seasonal protection, veterinary care, and proper treatment of calves, alongside strong condemnations of cruelty and neglect. *Go-dāna* is likewise presented as a potent form of *dāna*, extending merit to the donor's lineage. These practices, together with charitable service to devotees, ascetics, pilgrims, and the needy, generate *puṇya* and contribute to a soteriological progression toward Śivaloka and *mokṣa*. The paper argues that the *Golokamāhātmya* integrates cosmology, animal ethics, charity, and liberation into a distinctive vision of medieval Śaiva religiosity.

Women in the Epics: Wisdom, Leadership and Character — Insights from Ramdasi Tradition.

Dr.Amol Neve

This paper attempts to study selected women from the epics with particular focus on wisdom, character and leadership with reference to "Ramdasi Tradition". It examines how these qualities are reflected in their actions, decisions and responses to challenges. The study also considers whether the leadership demonstrated by these women can be understood beyond the conventional

notion of authority or position. In many instances, their influence came through wisdom, moral strength, advice, sacrifice and the ability to take difficult decisions.

Keywords: Women in Epics, Women's Leadership, Character, Wisdom, Samarth Ramdas, Dasbodh, Ramdasi Tradition, Indian Knowledge Systems

A Study of the Four Puruṣārthas in the Mahābhārata

Kathik. V. Kulkarni

The concept of Puruṣārtha occupies a significant position in the Indian understanding of human life, traditionally expressed through the four aims of Dharma, Artha, Kāma and Mokṣa. While these four are often presented as distinct objectives, the Mahābhārata portrays their relationship through complex situations involving individual duty, social responsibility, desire, power and spiritual aspiration. The present paper examines the representation and interaction of the Puruṣārtha catuṣṭaya in the Mahābhārata, with particular attention to the ethical dilemmas encountered by its major characters.

The study explores Dharma not merely as a fixed code of conduct but as a principle whose application often depends upon circumstances and competing obligations. The discussions on Rāja-dharma and Nīti in the Śānti Parva and related portions of the epic provide important insights into the legitimate pursuit and regulation of Artha. Similarly, the narrative dimension of the Mahābhārata demonstrates that Kāma encompasses human desires, relationships and emotional aspirations, while also revealing the consequences of desire when it becomes detached from ethical restraint. The quest for Mokṣa, particularly in the Śānti Parva, Anuśāsana Parva and Bhagavadgītā, introduces the spiritual dimension of human existence and raises the question of whether worldly responsibilities and liberation are mutually exclusive.

Through selected episodes involving Yudhiṣṭhira, Arjuna, Bhīṣma, Karṇa, Draupadī and Duryodhana, the paper analyses instances where different Puruṣārthas complement one another as well as situations where they come into tension. The study argues that the Mahābhārata does not present the four aims as isolated goals but as interconnected dimensions of human life, with Dharma providing an ethical framework for the pursuit of Artha and Kāma, while Mokṣa represents the higher spiritual orientation of life. Thus, the epic offers a nuanced model of human fulfilment in which worldly engagement and spiritual aspiration are understood through a dynamic relationship rather than as mutually exclusive paths.

Keywords

Mahābhārata, Puruṣārtha, Dharma, Artha, Kāma, Mokṣa, Indian Knowledge Tradition.

अग्निपुराणस्य सिद्धान्तज्योतिषीय विमर्शः।

श्रीपादः बेलदारः

वेदपुरुषस्य नेत्रत्वेन ज्योतिषशास्त्रम् उच्यते " ज्योतिषामयनं चक्षुः" स्कन्ध त्रयात्मकम् ज्योतिषशास्त्रः वर्तते 1) सिद्धान्त 2) संहिता 3) होरा ज्योतिषस्य विवेचनम् वैदिक वाङ्मयेषु सर्वत्र वर्तते तत्र 18 पुराणेषु अग्निपुराणे ज्योतिषस्य बहूनी विषयानि उपस्थापितानि वर्त्तते 4 लक्ष ज्योतिषशास्त्रस्य श्लोकानां साररूपेण उपस्थापनम् तथा प्रामुख्येन सिद्धान्त, होरा, संहिता त्रिषु स्कन्धेषु उपस्थापनम् कृतम् अस्ति मुहूर्त , विवाहमेलापक , षोडषसंस्काराणाम् विषये सन्दर्भः प्राप्यते अत्र अग्निपुराणोक्त सिद्धान्त ज्योतिषीय तथ्यानाम् प्रामुख्येन तत्र कालगणना पञ्चाङ्गमान

सिद्धान्त , तन्त्र ,करण ग्रन्थे वर्णित तथ्यानुसारम् परिशिलनम् तथा ज्योतिषकालगणना वशात् स्वर साधनेन युद्धे जयपराजयोः विचारः क्रियते। अनेन अग्निपुराणे तथा ज्योतिष ग्रन्थे वर्णित विषयाणां साम्य भेदः अवगन्तुं शक्यते।

कूटशब्दाः :- सिद्धान्त ज्योतिष , अग्निपुराण , कालगणना।

इतिहास एवं पुराण : कौटिल्य के परिपेक्ष से दो विभिन्न विषय।

ओंकार मंदार आठवले. (Omkar Mandar Athavale)

इतिहास का अर्थ है 'यह इस प्रकार से हुआ' एवं पुराणों की व्याख्या 'पुरा नवं भाति' अर्थात प्राचीन होकर भी जो नए जैसा प्रतीत हो। जब हम भारत के प्राचीनतम काल की ओर देखते हैं तब प्राचीन भारत के अभ्यासक एवं इतिहासकार प्राचीन भारत में लिखित भूतकाल की स्मृतियों को इतिहास या पुराण कहते हैं। अर्थात वह भारत के प्राचीन काल को ध्यान में रखते हुए इतिहास एवं पुराण इन विषयोंमें अंतर न रखकर उन्हें एक ही विषय मानते हैं। यह बात स्वाभाविक है कि हमें आज पाश्चात जगत की तुलना में इतिहास ग्रंथोंकी उपलब्धि अधिक नहीं है किंतु इसके विभिन्न कारण है। इतिहास यह शब्द प्राचीन ग्रंथो में भी उल्लिखित प्राप्त होता है मगर अनेक स्थानों पर इतिहास एवं पुराण इन दो विषयों में विशेष भेद नहीं दिखाया गया है। अनेक विद्वानों द्वारा प्राचीन काल के विश्वसनीय ग्रंथ के रूप में कौटिल्य के 'अर्थशास्त्र' को मान्यता मिली है। कौटिल्य अपने अर्थशास्त्र में जब इतिहास एवं पुराण इन शब्दों का प्रयोग करता है तब उन्हें कौटिल्य दो स्वतंत्र विषयों के रूप से देखता है। विशेषत: इतिहास को। कौटिल्य न केवल इतिहास एवं पुराण इन दो विषयों को स्वतंत्र रूप से देखता है अपितु कौटिल्य अर्थशास्त्र में इतिहास का महत्व भी स्पष्ट करता है। प्रस्तुत शोध निबंध में कौटिल्य के इस भूमिका का चिकित्सापूर्वक अध्ययन कर उस भूमिका का विश्लेषण किया है। इस अध्ययन के लिए अर्थशास्त्र इस कौटिल्य के ग्रंथ को प्रथम प्रमाण मानते हुए प्राथमिक साधन के रूप में उपयोग किया है। यह अध्ययन प्राच्यविद्या क्षेत्र में भारत के प्राचीन काल में विद्वानों द्वारा चिंतन किए हुए विषय एवं विचारों की ओर देखने की नई दृष्टि प्राप्त करने में सहाय्य कर सकता है।

Keywords: इतिहास, पुराण, कौटिल्य, कौटिल्य का अर्थशास्त्र, इतिहासलेखन

War, Violence and Compassion in Bhāsa's Urubhaṅga: A Critical Study of the Human Cost of War

Vipindas. v

Epic literature often depicts war through heroic victories, courageous battle, and the kind of justice that seems worthy of celebration. However, Bhāsa's *Urubhaṅga* feels quite different, as if it draws attention away from the glamour of combat and instead focuses on its emotional and human consequences. The play, which is based on the final stages of the Kurukṣetra battle in the *Mahābhārata*, focuses on Duryodhana following his defeat by Bhīma. However, he is presented as more than simply a defeated antagonist; he emerges as a person experiencing physical suffering, fear, emotional vulnerability, and the consequences of violence. With emphasis on Duryodhana's physical suffering, internal transformation, and relationship with his family, this paper examines how *Urubhaṅga* represents war, violence, and compassion.

The study examines how Bhāsa evokes sympathy for a character typically associated with injustice and aggression, thereby complicating the conventional division between hero and villain. The glorification of war is called into question by contrasting the brutality of the battlefield with instances of human fragility, familial love, and compassion. The play also poses moral dilemmas concerning the conduct of warfare, particularly through Bhīma's blow to Duryodhana below the waist, which challenges accepted notions of righteous warfare. *Urubhaṅga* transforms the battlefield into a space of moral contemplation by depicting suffering and reconciliation at the point of death. It foregrounds human compassion, suffering, morality, and conflict as alternatives to the vicious cycle of retaliation and violence. *Urubhaṅga* can therefore be interpreted as a

profound theatrical meditation on war, morality, suffering, and human compassion rather than merely as a retelling of an episode from the *Mahābhārata*.

Keywords: Kurukṣetra War, Bhāsa, *Urubhaṅga*, *Mahābhārata*, violence, compassion, Duryodhana, war ethics, human suffering, dharma.

"The Concept of Yoga as discussed in Datta Purana by P.P.Shri Vasudevanand Sarasvati Tembe Swami Maharaj"

Nitin Dattatraya Deshpande, Guide: Dr Shweta A Jejurkar

The main goal of life is to get Kaivalya, self-realization, ultimate emancipation or moksha by getting true knowledge in life. In this connection the contribution and practical utility of Yoga is most remarkable. Yoga is the method of attaining the highest goal of life - Kaivalya i.e., absoluteness. Yoga has been one of the leading areas of Indian Knowledge System (IKS) to celebrate India's eternal Vaidik heritage. When we talk of Yoga, it has been discussed by various scholars. Similarly, it has been discussed by P.P. Vasudevanand Saraswati (Tembe) Swami Maharaj in "Datta Purana" a modern Purana written in 1892 AD containing 3500 verses in Sanskrit along with a commentary in Sanskrit on the same in 1899 AD. Patanjali systematized the philosophy and practice of Yoga as seen in his work 'Yoga Sutras'. In addition to this contribution of texts like Yoga Yajnyavalkya, Hath Yoga Pradipika, Gheranda Samhita and Bhagavad Gita is also to be considered.

The present paper will encompass different yoga traditions directly or indirectly connected to Ashtanga yoga. Endeavor shall be made to highlight, evaluate and compare the importance of Yoga as discussed by Tembe Swami Maharaj in Datta Purana.

Key words: Tembe Swami, Datta Purana, Yoga.

वाल्मीकि रामायण में सैन्य-व्यवस्था का स्वरूप

डॉ. श्री भगवान

परिचय एवं शोध-परिधि: वाल्मीकि रामायण प्राचीन भारतीय जीवन-दृष्टि, राज्यव्यवस्था, राजनीति एवं युद्ध-संस्कृति के अध्ययन का महत्त्वपूर्ण स्रोत है। प्रस्तुत शोध का प्रमुख प्रश्न यह है कि वाल्मीकि रामायण में सैन्य-व्यवस्था का स्वरूप किस प्रकार संगठित एवं व्यवस्थित रूप में अभिव्यक्त हुआ है तथा उसमें तत्कालीन सैन्य-चिन्तन की कौन-कौन सी विशेषताएँ परिलक्षित होती हैं। अध्ययन की परिधि मुख्यतः अयोध्या, किष्किन्धा एवं लङ्का से सम्बन्धित सैन्य प्रसंगों तथा राम-रावण युद्ध के वर्णनों तक सीमित है।

पद्धति: शोध में वाल्मीकि रामायण के संस्कृत मूलपाठ का विश्लेषणात्मक, पाठालोचनात्मक एवं तुलनात्मक अध्ययन किया गया है। सैन्य-संगठन, सेनानायक, सैनिक-वर्ग, चतुरङ्गिणी सेना, अस्त्र-शस्त्र, दुर्ग-व्यवस्था, गुप्तचर एवं दूत-प्रणाली, व्यूह-रचना तथा युद्धनीति से सम्बन्धित प्रसंगों को विषयानुसार वर्गीकृत कर उनका अध्ययन किया गया है। साथ ही, प्राप्त तथ्यों का परीक्षण प्राचीन भारतीय राज्यशास्त्रीय एवं सैन्य-परम्परा के व्यापक संदर्भ में किया गया है।

तथ्य एवं निष्कर्ष: अध्ययन से ज्ञात होता है कि रामायणकालीन सैन्य-व्यवस्था में संगठन, नेतृत्व, अनुशासन एवं रणनीतिक नियोजन को विशेष महत्त्व प्राप्त था। अयोध्या एवं लङ्का की सेनाओं में रथ, गज, अश्व एवं पदाति जैसे सैन्य घटकों के संकेत प्राप्त होते हैं, जबकि वानर-सेना अपनी विशिष्ट संगठनात्मक एवं गतिशील युद्ध-पद्धति प्रस्तुत

करती है। दुर्ग-सुरक्षा, सैन्यबल का निरीक्षण, दूत एवं गुप्तचर-व्यवस्था, युद्धपूर्व विचार-विमर्श तथा विविध अस्त्रों का प्रयोग तत्कालीन सैन्य-बुद्धिमत्ता को स्पष्ट करते हैं। राम, सुग्रीव, हनुमान, रावण एवं अन्य सेनानायकों के निर्णयों में नेतृत्व एवं रणनीतिक दृष्टि के विविध आयाम दिखाई देते हैं।

निष्कर्ष: अतः वाल्मीकि रामायण में सैन्य-व्यवस्था केवल युद्ध-वर्णन तक सीमित न होकर प्राचीन भारतीय रणनीतिक चिन्तन, राज्य-सुरक्षा एवं नेतृत्व-परम्परा का महत्त्वपूर्ण प्रतिबिम्ब प्रस्तुत करती है। यह अध्ययन भारतीय सैन्य इतिहास, संस्कृति एवं इण्डोलॉजी के अनुसंधान के लिए उपयोगी आधार प्रदान करता है।

बीज-शब्द (Keywords): वाल्मीकि रामायण; सैन्य-व्यवस्था; चतुरङ्गिणी सेना; युद्धनीति; प्राचीन भारतीय सैन्यचिन्तन

पुराणों की प्रासंगिकता: ज्ञान-मीमांसा, समाजशास्त्र एवं आधुनिक परिप्रेक्ष्य में एक शोधपरक अनुशीलन

गौरीशः

भारतीय ज्ञान-परंपरा में पुराण धार्मिक कथाओं का संकलन मात्र नहीं हैं। इनमें समाजशास्त्र, पर्यावरण-चिंतन, इतिहास-लेखन और मनोविज्ञान से जुड़ी सामग्री गहराई से बुनी हुई है। आज तकनीकी प्रगति और भौतिकवादी जीवनशैली के दबाव में समाज जिन नैतिक, मानसिक और समसामयिक संकटों से जूझ रहा है, उनके सन्दर्भ में पौराणिक साहित्य का पुनर्मूल्यांकन उपयोगी हो सकता है। यह शोधपत्र पुराणों को केवल अतीत की धरोहर के रूप में नहीं, बल्कि आज के तार्किक विमर्श में भी प्रासंगिक ज्ञान-स्रोत के रूप में देखने का प्रयास करता है।

मुख्यशब्द - पुराणों की प्रासंगिकता, पञ्चलक्षण एवं दशलक्षण, पारिस्थितिकीय अध्यात्म, दशावतार, श्रीमद्भागवत, वैदिक व पौराणिक ज्ञान-मीमांसा

Divine and Human aspect of Dhanvantari in Purāṇic Literature

Pratiksha Surykant Shinde

Hindu Mythology elaborates same incident in different manner with some similarities and dissimilarities. In the literature there is a story of *samudramanthana*, i.e. churning of the ocean. The deity Dhanvantari is believed to be born with other thirteen jewels from the churning of ocean. While some other Purāṇas mention him as an incarnation of the god Viṣṇu. Here the divine origin of Dhanvantari is emphasized. On the other hand, some of the Purāṇas such as Viṣṇu, Vāyu, Brahmāṇḍa, Brahma Purāṇa describe his human origin. There are a number of Purāṇas, which hold both human as well as divine origin of Dhanvantari.

In the present paper, I will focus on the stories or myths related to the origin of Dhanvantari. I have found the record about this in 17 Purāṇas and that data will be presented and synthesized in the paper.

पौराणिक संदर्भों में महर्षि वाल्मीकि

डॉ. शैलेश कुमार मिश्र

रामायणकार वाल्मीकि के सम्बन्ध जो पौराणिक सन्दर्भ प्राप्त होते हैं उनसे ज्ञात होता है कि वाल्मीकि नाम पाँच व्यक्तियों से सम्बन्धित है । एक वैयाकरण वाल्मीकि हैं , एक वाल्मीकि गरुड़ के वंश में उत्पन्न पक्षी का नाम है तथा तीसरे भृगुपुत्र च्यवन वल्मीक से उद्भूत होने के कारण वाल्मीकि कहलाते हैं, चौथे रामायणकार वाल्मीकि और पाँचवें विष्णुपुराण में उल्लिखित चौबीसवें व्यास के रूप में अवतरित भृगुवंशी ऋक्ष व्यास हुए जो वाल्मीकि कहलाए । रामायणकार वाल्मीकि महर्षि भृगु के वंशज होने के कारण भार्गव तथा प्रचेता (वरुण) के पुत्र होने के कारण प्राचेतस् कहलाते हैं रामायणकार वाल्मीकि के सम्बन्ध में जो कथाएँ मिलती हैं उनसे यह स्पष्ट होता है कि अलग-अलग कथाओं में उन्हें अग्निशर्मा, वैशाख या कृणु आदि कई नामों से जाना गया है तथापि सभी वृत्तान्तों में उनकी कठोर तपश्चर्या का विवरण प्राप्त होता है । कठिन तपःसाधना के परिणामस्वरूप वे वल्मीक से ढँक गए थे । उस वल्मीक से निकलने के कारण ही उनका नाम वाल्मीकि हुआ ।

कूट शब्द : वाल्मीकि, प्राचेतस्, भार्गव, स्कन्दपुराण, उत्तरकाण्ड, रामायण ।

INFLUENCE OF BHĀGAVATAPURĀṆA ON KATHAKALI.

Dr. Vijay Kumar M

.

Introduction

Kerala has a rich tradition in various art forms, both classical and folk. These art forms have been used for entertainment as well as for imparting instruction on moral and ethical ideas to the masses. They are also used for the propagation and popularisation of religion. The stories related to Kṛṣṇa are favorite theme for all these art forms.

Kathakali is the traditional art form performed mainly on temples. The stories are mainly based on Ramayana. But later, by the influence of bhakti cult and popularization of Bhāgavata, Kṛṣṇa stories also come to mainstream of performing.

पुराणसाहित्ये वनवासिजनानां सामाजिक-सांस्कृतिकजीवनम् : एकं समालोचनात्मकमध्ययनम्

सारांशः

पुराणसाहित्यम् भारतीयज्ञानपरम्परायाः महत्त्वपूर्णमङ्गमस्ति। तत्र वनवासिजनानां सामाजिक-सांस्कृतिकजीवनस्य विविधाः पक्षाः विभिन्नेषु आख्यानेषु तथा प्रसङ्गेषु प्रतिफलिताः सन्ति। प्रस्तुतशोधपत्रे पुराणेषु वनवासिजनानां सामाजिक-सांस्कृतिकजीवनस्य समालोचनात्मकमध्ययनं क्रियते। विशेषतः निषाद-किरात-पुलिन्द-शबरादीनां जनसमुदायानां सामाजिकस्थानम्, धार्मिकविश्वासाः, आचाराः, जीविकापद्धतिः, वन-प्रकृत्या सह सम्बन्धः, सांस्कृतिकपरम्पराः तथा अन्यैः सामाजिकसमुदायैः सह तेषां सम्बन्धः विवेच्यते। विष्णुपुराण, भागवतपुराण, स्कन्दपुराण, पद्मपुराण तथा अन्येषु प्रमुखेषु पुराणेषु उपलब्धानां प्रसङ्गानां विश्लेषणेन वनवासिजनानां चित्रणस्य स्वरूपं परीक्ष्यते। अतः पुराणेषु वनवासिजनानाम् अध्ययनं प्राचीनभारतीयसमाजस्य सामाजिक-सांस्कृतिकविविधतां ज्ञातुं महत्त्वपूर्णम् अस्ति।

कुञ्चिशब्दाः - पुराणसाहित्यम्, वनवासिजनः, निषादः, किरातः, पुलिन्दः, शबरः, सामाजिकजीवनम्, सांस्कृतिकजीवनम्, भारतीयज्ञानपरम्परा।

From Text to tātparya: Developing an Indigenous Hermeneutic Framework for Reading bhāratīya Textual Traditions.

Sri Girivardhan VK & Sri Murali

- **Research Parameters (Introduction):** *bhāratīya* textual traditions present a unique hermeneutic challenge because a single text may contain narrative, philosophy, ethics, belief systems, etc. Even before reading a text, placing it into categories such as mythology, religion, or history may influence the reader by severely restricting it to a predefined category. Therefore, the question this research poses is: How can *bhāratīya* textual traditions be read through a hermeneutic framework that allows for rigorous modern analysis while remaining faithful to their textual contexts? The study takes *itihāsa* and *purāṇa* literature as its principal field of application, with particular attention to the interpretive challenges arising from their philosophical, ethical and ritual dimensions.
- **Methodology:** The paper develops a conceptual hermeneutic framework progressing from text to *tātparya*. The framework consists of five stages: **Textual Grounding, Contextual Reading, Meaning Construction, Comparative Dialogue and Contemporary Application**. It employs close textual and contextual analysis of selected passages from *itihāsa* and *purāṇa* literature, these are examined in dialogue with contemporary academic approaches to hermeneutics, allowing the study to identify points of convergence, difference and methodological complementarity.
- **Data & Findings:** The analysis demonstrates that a sequential movement through these stages allows different dimensions of a text to be examined without prematurely reducing them to a single category. It also establishes a useful distinction between what can be supported by the text, what emerges through interpretation, and what constitutes a later contemporary application. This distinction helps address both decontextualised readings and uncritical projection of modern concepts onto traditional sources.
- **Conclusion:** The paper argues that a *tātparya*-oriented approach can provide a practical and transparent methodology for interpreting *bhāratīya* textual traditions. Its broader contribution to Indology and the study of Indian intellectual traditions lies in demonstrating how indigenous interpretive resources can participate in modern scholarship without compromising the conceptual integrity of the traditions.
- Keywords

  bhāratīya textual traditions; Indigenous hermeneutics; *itihāsa; purāṇa;* tātparya.

पुराणेषु संवित् स्वरूपम्

डॉ. कृष्ण जोशी

संस्कृतभाषायां **चेतना, चैतन्यम्, चित् , संवित्, प्रज्ञा -** इत्यादयः शब्दाः परस्परसम्बद्धार्थेषु प्रयुज्यन्ते । “चेतना” इति पदं सामान्यतः जीवने ज्ञानस्य, अनुभूतेः, बोधस्य तथा क्रियाशक्तेः आधारभूतं तत्त्वं सूचयति। “चैतन्यम्” इति तु चेतनस्य भावः अथवा प्रकाशस्वरूपं तत्त्वम् इति विवेचनं कर्तुं शक्यते । कोशपरम्परायामपि “चेतन” इति शब्दस्य सम्बन्धः आत्मनि, जीवे, परमेश्वरे, प्राणिमात्रे च दर्शितः ।

पुराणेषु चेतना प्रायः पृथक् पदार्थरूपेण न निरूप्यते । सा आत्मनः स्वाभाविकशक्तिरूपेण आत्मस्वरूपस्य प्रकाशरूपेण वा निरूप्यते । अतः पुराणदृष्ट्या कः चेतनः?, कस्मात् चेतना जायते?, देहे चेतना कथं प्रवर्तते?, चेतनायाः परमं स्वरूपं किम्? इत्यादीनां प्रश्नानां समाधानं आत्मतत्त्वस्य विवेचनद्वारा एव भवितुं शक्यते ।

पुराणदर्शनस्य प्रमुखः सिद्धान्तः अयं यत् आत्मा चेतनस्वरूपः अस्ति । शरीरं स्वयमेव चेतनं न भवति । शरीरस्य चैतन्यप्रकाशः आत्मसम्बन्धेन भवति । श्रीमद्भागवते कपिलदेवस्य उपदेशे आत्मा देहादिभ्यः पृथग् द्रष्टा इति प्रतिपाद्यते—

भूतेन्द्रियान्तः करणात् प्रधानाज्जीवसंज्ञितात् ।

आत्मा तथा पृथग्द्रष्टा भगवान् ब्रह्मसंज्ञितः ॥ श्रीमद्भागवतपुराणम् – स्क-३.अ-२८. श्लो-४१

पञ्चमहाभूतानि, इन्द्रियाणि, अन्तःकरणं तथा प्रकृतिः इत्येतेभ्यः पृथक् परमात्मा द्रष्टा अस्ति । जीवः देह-इन्द्रिय-मनसां सम्बन्धेन संसारानुभवं करोति, किन्तु आत्मतत्त्वं तेषां साक्षिरूपेण अवस्थितम् अस्ति । अतः चेतनायाः मूलं शरीरं न, अपि तु आत्मतत्वमेव । पुराणेषु महत्त्वपूर्णः पक्षः साक्षित्वम् अस्ति । आत्मा शरीरस्य, इन्द्रियाणां, मनसः, बुद्धेः तथा भावनानां साक्षी भवति ।

संस्कृत के रामकाव्य का 'अपनी - अपनी रामकहानी ' पर प्रभाव

डॉ. राकेश रंजन

राम के इतिवृत्त भारतीय समाज समाज और संस्कृति से गहरा संबंध है। वैदिक संहिता में भी राम, भरत, दशरथ इत्यादि के नामोल्लेख हैं, किन्तु प्रख्यात रामकथा से उनका सीधा लगाव नहीं है। फिर भी इससे इतना निष्कर्ष तो निकलता ही है कि रामकथा की लोकप्रियता और उर्वरता को भारतीय समाज अस्वीकार कर नहीं चल सकता। आदिकवि वाल्मीकि ने रामकथा का विस्तार किया। महाभारत के वनपर्व, अध्यात्मरामायण, अद्भुतरामायण, आनंदरामायण, रघुवंश, उत्तररामचरितम् इत्यादि के कवियों ने उसे दार्शनिक, आध्यात्मिक, साहित्यिक विशिष्टताओं से अलंकृत किया। इसमें जीवन के विविध रंगों को सबने भरने का प्रयास किया है।

'अपनी-अपनी रामकहानी' के कवि डॉ. राजेश्वर प्रसाद सिंह ने रामकाव्य को आध्यात्मिक और दार्शनिक परिदृश्य से हटाकर मानवीय संवेदना के धरातल पर प्रस्तुत किया है। इसमें अपने युग की तार्किकता तो है ही, संवेदना का तरल प्रवाह भी है।

आलोच्य कृति में रामकाव्य के मुख्य पात्र-राम, लक्ष्मण, भरत, दशरथ, सुग्रीव, वाली, रावण, कुम्भकर्ण इत्यादि प्रत्यक्ष रूप से संवाद नहीं करते। अपनी-अपनी वास्तविक स्थिति का मूल्यांकन विभाण्डक, विश्वामित्र, निषाद, जटायु, हनुमान, कबन्ध, विभीषण जैसे पुरुष-पात्र और कौसल्या, अहल्या, कैकेयी, सुमित्रा, ऊर्मिला, माण्डवी, श्रुतिकीर्ति, मंथरा, तारा, रुमा, अनसूया, कैकसी, मन्दोदरी, शूर्पणखा, त्रिजटा, सुरसा, सीता जैसी स्त्री - पात्र करते हैं।

यह काव्य विभाण्डक मुनि की वेदनासे शुरू होकर वाल्मीकि मुनि की करुणा में पूर्ण होती है। पात्रों का आत्मालोचन उसे मानवीय चरित्र की गरिमा प्रदान करता है। इन चरित्रों की निर्मिति में प्राचीन संस्कृत वाङ्मय के अध्ययन एवं अनुसंधान की महत्त्वपूर्ण भूमिका है, इससे अस्वीकार नहीं किया जा सकता है।

कथाभास मीमांसा: शास्त्रीय मर्यादा और आधुनिक विकृतियाँ

डॉ मनोज कुमार शैल

वर्तमान समय में सनातन धर्म के व्यावहारिक स्वरूप में एक तीव्र विकृति दृष्टिगोचर हो रही है, जिसे शास्त्रकारों ने 'धर्माभास' (धर्म का केवल आभास होना, वास्तविक धर्म न होना) कहा है। आधुनिक युग में दो धार्मिक कृत्य अत्यंत व्यावसायिक और तीव्र गति से पल्लवित हो रहे हैं—प्रथम 'यज्ञ' और द्वितीय 'कथा'। वर्तमान काल में यज्ञकर्ताओं (जिनमें संन्यासी, त्रिदण्डी, महान्त आदि सम्मिलित हैं) तथा कतिपय अनधिकृत आयोजकों द्वारा शास्त्रीय मर्यादाओं को तिलांजलि देकर जिस प्रकार कथाओं का बाजारीकरण किया जा रहा है, वह सनातन वैदिक धर्म विनाशी परंपरा का सूत्रपात कर रहा है। शास्त्रीय विधानों की उपेक्षा कर किया जाने वाला यह आयोजन पुण्य के स्थान पर 'महापाप' का कारण बन रहा है।

प्रस्तुत शोध-पत्र में वर्तमान समय में सनातन धर्म के व्यावहारिक धरातल पर व्याप्त 'धर्माभास' की प्रवृत्ति के अंतर्गत 'कथा' के क्षेत्र में आ रही तीव्र विकृतियों का शास्त्रीय एवं सामाजिक विश्लेषण किया गया है। वर्तमान युग में

व्यावसायिक लाभ और अशास्त्रीय विधि से होने वाले 'कथाभास' (छद्म कथा आयोजनों) को इस लेख का मुख्य प्रतिपाद्य विषय बनाया गया है।

उपनिषदों, देवी भागवत, श्रीमद्भागवत महापुराण तथा श्रीमद्भगवद्गीता के साक्ष्यों के आलोक में 'कथा' शब्द की दार्शनिक व्युत्पत्ति कम्-ब्रह्म तथा थम्-स्थापनम् को रेखांकित करते हुए स्पष्ट किया गया है कि वास्तविक कथा वही है जो जीव को परमानंद (ब्रह्म) में स्थापित करे तथा वक्ता, श्रोता एवं प्रश्नकर्ता तीनों को समान रूप से पावन करे।

इसके अतिरिक्त, शोध-पत्र में पद्म पुराण एवं अन्य स्मृति-ग्रंथों के आधार पर व्यासपीठ के अधिकारी प्रामाणिक कथावाचक (विप्र, विरक्त, वैष्णव, निष्पृह) के अनिवार्य नियमों तथा इसके विपरीत आचरण करने वाले आधुनिक छद्म भेषधारी 'व्यथा-वाचक' (कामी, क्रोधी, लोभी, शास्त्र-मर्यादा हीन) के प्रत्यक्ष लक्षणों व उनके कारण समाज तथा यजमान पर पड़ने वाले भयंकर विनाशकारी कुप्रभावों की गंभीर मीमांसा की गई है।

निष्कर्षतः यह शोध-पत्र प्रतिपादित करता है कि शास्त्र-विधि का परित्याग कर मनमाने ढंग से किया जाने वाला कथा-वाचन साक्षात् महापाप और 'राक्षस कथा धर्म' का परिचायक है, अतः लोक-परलोक के परम कल्याण के लिए समाज को इन आधुनिक व्यावसायिक व्यासरूपी विपत्तियों (व्यथा-वाचकों) से सर्वथा दूर रहना चाहिए।

मुख्य शब्द (Keywords): कथाभास, धर्माभास, व्यासपीठ, पुराण-वक्ता, व्यथा-वाचक, ईश्वरीय संविधान, सनातन वैदिक वाङ्मय आदि।

वाल्मीकीयरामायण में वर्णित मानवेतर समाज में भ्रातृत्व-भगिनी सम्बन्ध

शुचिता

यह संसार न तो सिर्फ मनुष्यके लिए बना है और न सिर्फ मनुष्यके द्वारा बना है, इसलिए यहां सिर्फ उसकी ही सत्ता नहीं है। संसारमें मनुष्यके अतिरिक्त राक्षस, वानर, देव, गन्धर्व, यक्ष, नाग, गृध, अप्सरा इत्यादि अनेक योनियोंके लोग हैं और उनके समुदाय या समाज हैं। मनुष्यका समाज इनसे भिन्न तो है ही, कभी-कभी दोनोंके बीच संघर्ष या प्रेम भी देखनेको मिलता है।

वाल्मीकीयरामायणमें मानवेतर समाजके रूपमें राक्षस, वानर, देव, यक्ष, गंधर्व, नाग, गृध इत्यादिके समाज और उनके अन्तर्गत पारिवारिक सम्बन्धों, यथा-पिता-पुत्र, पिता-पुत्री, माता-पुत्र, माता-पुत्री, पति-पत्नी, भ्राता-भगिनी, भ्राता-भ्राता, सास-ससुर इत्यादि का चित्रण हुआ है। ये सभी हर्ष-विषाद, सुख-दु:खमें प्रायः साथ रहते हैं और कभी-कभी कतिपय कारणोंसे आपसमें शत्रुताका भाव भी रखते हैं।

यहां भ्रातृत्व-भगिनी सम्बन्धका विशेषरूप से अध्ययन किया गया है। राक्षस समाजमें रावण-कुबेर, रावण-कुम्भकर्ण, रावण-विभीषणका भ्रातृत्व सम्बन्ध एवं रावण-शूर्पणखा, रावण-कुम्भीनसी भ्रातृत्व-भगिनी सम्बन्ध विशेषरूप से विचारणीय हैं। वानर समाजमें वाली-सुग्रीव, देव समाजमें अश्विनीकुमारोंके भ्रातृत्व सम्बन्ध, जया-सुप्रभा, अदिति-दिति, उमा-गंगाके भगिनी सम्बन्ध तथा गृध समाजके सम्पाति-जटायु के भ्रातृत्व सम्बन्धोंका विवेचनकर यह प्रतिपादित किया गया है कि इनमें भी मानव समाजकी तरह परस्पर प्रेम-घृणा, सहयोग-असहयोग, राग-विराग, सदाशयता-क्रूरता, समर्पण-कपट इत्यादि भाव इनके भ्रातृत्व-भगिनी सम्बन्धको आकार देते हैं। यह आदिकविकी व्यापक दृष्टिका अमूल्य अवदान है।

श्रीकृष्णप्रेमिमहाप्रभुविरचिते राधिकाविलासचम्पूकाव्ये सात्विकभावाः

VISHNU PRIYA

श्रीकृष्णप्रेमिमहाप्रभुविरचितं राधिकाविलासचम्पूकाव्यं श्रीराधादेव्याः चरितं विस्तरेण संप्रकाशयति। विशिष्य तत्र राधाकृष्णयोः प्रेम निरूप्य, सरसतया राधायाः स्वाधीनपतिकादिनायिकाप्रकाराः प्रदीपिताः विलसन्ति। तदङ्गतया राधादेव्याः स्तम्भस्वेदादयः सात्विकभावाः ये समुज्ज्वलन्ति, तेषां लक्षणसमन्वयोऽत्र मया प्रकाश्यते।

Author, Text and Reader in Sanskrit Poetics: Changing Perspectives with special focus on Ānandavardhana

Dr Poornima G

Author, text and reader are the three pivotal components in the poetic process. Hence an analysis of literary theories in the light of these three elements will provide new insights. In Sanskrit poetics starting from Bhāmaha, theories have been evolved. Bhāmaha, the alankāra theorist provides importance to figurative representation. At the same time, he proclaims- काव्यं तु जायते जातु कस्यचित् प्रतिभावतः'. In this approach, author and text bear significance. In Vāmana's Rīti theory also importance is given to text and the author. It is Ānandavardhana who firstly points to the importance of readers or sahṛdaya-s. His Dhvanyaloka contains abundant references to prove this. He is of the opinion that the poetic guṇa-s become guṇa-s when they are relished by sahṛdaya-s and that the suggestive sense appeals to sahṛdaya within a split second- बुद्धौ तत्त्वार्थदर्शिन्यां झटित्येवावभासते ।At the same time, he recognises the importance of the poet. He himself says- 'अपारे काव्यसंसारे कविरेव प्रजापतिः. He also holds that the suggestive power is in the language. Here his focus is on the text. Thus, in Ānandavardhana, a balanced approach towards author, text and reader can be noticed. As Arthaśāstra advocates non preferential attitude towards three guṇa-s in administrators, the dhvani theory put forwards a non-preferential attitude towards the author, text and the reader. This balance is the beauty of the theory. Even though many analytical and comparative studies have been done on Sanskrit literary theories, a comprehensive approach in the light of author, text and reader is lacking. The paper aims to establish how he devotes equal importance to these three elements. It also aims to throw light on the evolution of different approaches in Sanskrit poetry in the light of this.

The Figure of the Poet in Vakrokti and Russian Formalism : A Comparative Analysis

Vedika Mishra

Literature is the product of a specific culture and so is the poet. The poet, within a culture in general and a literary culture in specific, is not just an individual who composes poetry. Instead, the poet also serves as a literary function. Every literary culture has its own vision of who a poet is, what relationship they have with their poems and the place they occupy in popular imagination.

In 11th century India, Acharya Kuntaka's *Vakrokti Siddhanta*, elucidated in his treatise *Vakroktijivitam*, conceptualised Vakrokti as the soul of poetry. By calling *kavya* as *kavivyaparshalini*, Kuntaka brings the poet to the centre of the poetic activity.

Around the beginning of the 20th century, a group of literary scholars in Russia gave rise to a movement called Russian Formalism in which they identified the centrality of form in literature. At the first glance, their concepts of defamiliarisation and strikingnesss of literature sound remarkably similar to *Vakrokti*. But upon deeper exploration, we find dissimilarities too. One of the most prominent differences between the two theories of literature lies in their vision and treatment of the poet. As a reactionary impulse against the prevalent biographical readings of

literature, the Formalists decided that a scientific study of literature and literary history has no room for the poet or the author.

This paper seeks to locate the place of the poet in the respective literary cultures that gave rise to the theories of Vakrokti and Russian Formalism and analyse the nuances behind such perceptions of the poet. Such a comparative study shall also aid the identification and understanding of the function of the poet in contemporary India.

Key words: Vakrokti , kavi , vaichitra, Russian Formalism, defamiliarisation, form, literary function of the poet

संस्कृतकाव्यशास्त्रेषु रसदोषाः

वैष्णवीशर्मा

प्राचीनकालतः एव संस्कृतवाङ्मये रसः अत्याधिकां प्रतिष्ठां लभते । परं रसदोषः तु विशेषः एव | रसदोषविषये आनन्दवर्धन-मम्मट-विश्वनाथ-जगन्नाथादीन् विहाय अन्यत्र रसदोषस्थाने रसापकर्षकाः केनापि न उक्ताः| किन्तु परम्परया सर्वे दोषाः रसापकर्षकरूपेण एव इति तु सर्वे अङ्गीकुर्वन्ति । एतेषां दोषाणां ज्ञानेन कविभिः प्रयत्नपूर्वकं रसप्रतीतौ व्याघातोत्पादकतत्त्वानां परिहारे सचेतं प्रयतनीयं, यद्यपि सुकवीनां व्यापारस्य मुख्यविषयाः रसादय एव तथापि नीरसं काव्यम् अलौकिकानन्दजनकं न भवति, अत एव वदति आचार्यानन्दवर्धनः -

“प्रबन्धे मुक्तके वापि रसादीन्वन्धुमिच्छता।

यत्नःकार्यस्सुमतिना परिहारे विरोधिनाम्।।”

काव्ये रसतत्त्वं सर्वोच्चस्थाने भजते । काव्यस्य गुणालङ्कारादीनि यानि तत्त्वानि तानि अपि प्रत्यक्षतया परोक्षतया वा रससम्बद्धानि एव । एवं भूतस्य रसदोषस्य समेषां कवीनां मते सप्रमाणचिन्तनम् अस्मिन् लेखे प्रतिपादितम् अस्ति |

कूटशब्दाः - रसः ,रसदोषः, अलङ्कारः, गुणः, दोष, रसापकर्षकः, औचित्यम् |

‘कला और सौंदर्यबोध आधारित शिक्षा के एकीकरण की प्रासंगिकता और प्रभाव’

डॉ.आरती शर्मा

यह शोध पत्र आधुनिक शिक्षा प्रणाली में कला और सौंदर्यबोध आधारित शिक्षा (Arts and Aesthetics Integration in Pedagogy) के एकीकरण, उसके वैचारिक आधार और व्यावहारिक अनुप्रयोगों का गहन अध्ययन करता है। वर्तमान शिक्षा में रटन विद्या और केवल परीक्षा-केंद्रित उपागम की सीमाओं को दूर करने के लिए कला-एकीकृत अधिगम (Art-Integrated Learning) एक परिवर्तनकारी दृष्टिकोण के रूप में उभरा है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति (NEP) के आलोक में यह शोध इस बात का विश्लेषण करता है कि किस प्रकार भारतीय कला दर्शन (शिल्प शास्त्र, नाट्य शास्त्र) को आधुनिक शिक्षण-शास्त्र में समाहित करके छात्रों के संज्ञानात्मक, भावनात्मक और सामाजिक विकास को सुदृढ़ किया जा सकता है। दृश्य कला, संगीत, नृत्य और नाटक के माध्यम से विषयों को अनुभवात्मक (Experiential) बनाना न केवल छात्रों की ग्रहणशीलता को बढ़ाता है, बल्कि उनकी सृजनात्मकता और आलोचनात्मक चिंतन (Critical Thinking) को भी पोषित करता है।

‘**मुख्य शब्द (Keywords)’** कला-एकीकृत अधिगम, सौंदर्यबोध, भारतीय कला दर्शन, नाट्य शास्त्र, शिल्प शास्त्र, अनुभवात्मक शिक्षा, राष्ट्रीय शिक्षा नीति (NEP), शिक्षणशास्त्र।

श्रीजगन्नाथजी की रथ-निर्माण परम्परा में नन्दनतत्त्व

श्रेया हालदार

श्रीजगन्नाथजी की रथयात्रा भारतीय धर्म, लोकसंस्कृति, शिल्पकला तथा सामाजिक समन्वय की एक बहुआयामी सांस्कृतिक परम्परा है। प्रस्तुत शोधपत्र में श्रीजगन्नाथजी की रथ-निर्माण परम्परा का नन्दनतत्त्वीय दृष्टिकोण से विश्लेषण करने का प्रयास किया गया है। रथ निर्माण की प्रत्येक अवस्था—काष्ठ का चयन, चक्र एवं संरचना का निर्माण, काष्ठ-नक्काशी, मूर्तिशिल्प, चित्रांकन, वस्त्र-सज्जा तथा लौह-शिल्प—परम्परागत ज्ञान, तकनीकी दक्षता और कलात्मक चेतना के समन्वित स्वरूप को अभिव्यक्त करती है। महारणा, रूपकार, चित्रकार, लोहार, दर्जी तथा भोई आदि सेवायत समुदायों के सामूहिक श्रम ने रथ को एक पूर्ण तथा गतिशील कलाकृति के रूप में प्रतिष्ठित किया है। रथ की संरचनात्मक अनुपात-व्यवस्था, रंग-संयोजन, अलंकरण, मूर्तिकला, प्रतीक एवं शिखर-सज्जा में धार्मिक महत्त्व के साथ-साथ सौन्दर्यपरक विन्यास भी स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। साथ ही शास्त्रीय विधान और लोकशिल्प के समन्वय ने रथ निर्माण परम्परा को एक जीवंत सांस्कृतिक विरासत के रूप में स्थापित किया है। इस अध्ययन से यह भी स्पष्ट होता है कि रथ निर्माण केवल एक तकनीकी प्रक्रिया नहीं है, बल्कि यह सामाजिक सहभागिता, सामूहिक श्रम, सांस्कृतिक स्मृति और आध्यात्मिक चेतना की समन्वित अभिव्यक्ति है। अतः श्रीजगन्नाथजी के रथ को एक "गतिशील कलाकृति" के रूप में देखा जा सकता है, जिसमें धर्म, कला, समाज और नन्दनतत्त्व परस्पर गहरे रूप से जुड़े हुए हैं।

मुख्य शब्द: श्रीजगन्नाथजी, रथ निर्माण परम्परा, नन्दनतत्त्व, लोकशिल्प एवं हस्तशिल्प, सामाजिक समन्वय।

The Poetry of Māgha and Its Contribution to the Poetic Training in Sanskrit

Dr Mulugu S Neelotpal

Sanskrit Literature is replete with great works of poetry which dealt with variety of themes which include the epics of Kalidasa, Bhāravi, Harsha, Māgha. All these works be it Kavyas, Nātakas or any other forms focus on the broader theme of viewing beauty in every human endeavor.

Māgha has been a great poet scholar from Rajasthan who literally introduced a grand opera style in poetry which can be compared only with the finest and refined texts of retelling mythology with a scholarly and highly sophisticated and nuanced poetic skills which act as an anchor to the student to gain an unquestionable authority of using language, improving imagination, upgrading vocabulary and most importantly adding to the corpus of existing knowledge of Serious Sanskrit learning,

This paper focuses on the Mahakāvya of Māgha, the *Śisupālavadha* and gives an introduction to the model of Māgha ,of using all-round scholarship at suitable places and making Sanskrit learning an act of improving scholarship by using various compounds of nuanced vacabulory. This uses examples from his work to illustrate the same point.

'आठवाँ सर्ग' पर 'कुमारम्भवम्' का प्रभाव

- *डा. सुनील कुमार,*

  स. प्राध्यापक, हिन्दी,
  म.अ.रमेश्वर लता संस्कृत महाविद्यालय, दरभंगा

किसी भी रचनाकार की सृजनशीलता एवं जन-स्वीकृति ही उसे महत्वपूर्ण बनाती है, भले ही शासन का सहयोग उसे प्रचार-प्रसार एवं आर्थिक रूप से समर्थता प्रदान करे, लेकिन उसकी लोकप्रियता का आधार उसकी संवेदनशीलता और सर्वव्यापकता होती है। 'आठवाँ सर्ग' नाटक में उसके रचनाकार सुरेन्द्र वर्मा ने 'कुमारसम्भवम्'

के ब्याज से यह स्पष्ट करना चाहा है कि एक साहित्यकार अपनी साहित्यिक उत्कृष्टता से जन-सामान्य में जड़ जमाकर विराट हो सकता है, तथा साहित्य में श्लील एवं अश्लील जैसी कोई बात नहीं होती एवं पति-पत्नी के बीच न तो किसी तरह की गोपनीयता जायज है और न ही नग्नता की गुंजाइश। 'कुमारसम्भवम्' में कालिदास पार्वती और शंकर की काम-क्रीड़ा का स्पष्ट चित्रण करते हैं-

"यन्मुखग्रहणमक्षताधरं दत्तमव्रणपदं नखं च यत्।
तद्रतं च सदयं प्रियस्य तत्पार्वती विषहते स्म नेतरात्।।"

(कुमारसम्भवम्, कालिदास, चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी,पुनर्मुद्रित संस्करण 2001,पृष्ठ सं.-245), परंतु तत्कालीन समाज की दृष्टि में यह प्रयोग अनैतिक एवं धर्म विरुद्ध है। अतः कालिदास को अस्वीकार्य घोषित किया जाता है, परंतु एक रचनाकार की सामर्थ्य उसकी लेखनी, अनुभूति और उसकी रचनाशीलता होती है, जो उसे सार्वदेशिक एवं सार्वकालिक बना देती है। अगर उसे एक स्थान पर, क्षेत्र-विशेष में प्रतिबंधित करने की कोशिश की जाती है तो वह अपनी रचनात्मक-क्षमता के आधार पर सीमातिक्रमण कर अन्यत्र स्वीकार्य एवं प्रशंसनीय बन जाता है। कालिदास की स्पष्ट घोषणा है-"जीवन के एक मोड़ पर सत्ता की सहायता की आवश्यकता थी....अब नहीं है।...(ठहरकर) अब?....अब अगर शासन मेरी रचना पर यहाँ रोक लगायेगा, तो वह दूसरे राज्य में सप्तम सुर में सुनी जायेगी। मुझे बन्दीगृह में डाल देगा,तो संकीर्णबुद्धि और कुटिल-मन कहलायेगा। और अगर मेरी हत्या कर देगा,तो लोकमत उसके विरुद्ध आषाढ के पहले काले-कजरारे मेघों के समान भड़क उठेगा।..... "(आठवाँ सर्ग, सुरेन्द्र वर्मा, राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण तृतीय आवृति-1981,पृष्ठ-संख्या-72)।

एतदर्थ भावों की प्रबलता एवं प्रासंगिकता रुढिवादिता की दासी नहीं होती, अभिव्यक्ति केवल नियमों की अनुगामिनी नहीं होती तथा नैतिकता शब्द-मात्र पर आश्रित नहीं होती बल्कि वहाँ अनुभूति तथा दृष्टिकोण महत्वपूर्ण होते हैं।

Variety of Similes in Vyasa with Special Reference to Vanaparva

SANKARANAYANAN P

Maharshi Vyasa is one of the most prominent literary personalities in Sanskrit literature who is traditionally credited with the authorship of the epic poem Mahabharata. His poetic artistry has been manifested through the use of various figures of speech, notably Upama or simile. The current seminar entitled "Variety of Similes in Vyasa with Special Reference to Vanaparva" explores the topic of the extensive use of similes in the Vanaparva of the Mahabharata.

Vanaparva is the third parva (book) of the epic poem Mahabharata that narrates the story of the Pandavas' exile and describes the events that occurred during this period. It is noteworthy that Vyasa used various similes when discussing the Pandavas' period of banishment. Indeed, similes rooted in nature, animals, and human activities were used to describe the characters' appearance, valor, courage, and behavior. Additionally, the narrator employed similes to portray the wilderness, battles, ascetic practices, and other elements that play a major role in the plot. The paper will demonstrate how similes helped Vyasa to describe the physical and mental attributes of the epic heroes and emphasize the importance of similes for the expressive means of the narration.

Indeed, the study of similes used in Vanaparva reveals that they served as an essential means to depict the emotional aspect of the plot. The metaphors helped the author to convey the heroic, pathetic, and marvelous rasas (emotions). The metaphors were achieved through the use of such similes as lions, elephants, mountains, oceans, the sun, the moon, clouds, the wind, and fire. Therefore, the current seminar will demonstrate that the poet used a wide range of similes rooted in nature, animals, and human activities. Moreover, the paper will also prove that similes played a significant role in portraying the characteristics of the characters as well as describing various elements and events.

Keywords: Vyasa, Mahabharata, Vanaparva

"ध्वन्यालोक के परिदृश्य में व्यंग्यव्यञ्जक मूलक अलङ्कार"

PRIYANSHI

संस्कृत काव्यशास्त्र की दीर्घ परम्परा में अलङ्कार काव्य-सौन्दर्य का सर्वाधिक चर्चित और विकसित तत्त्व रहा है। भामह, दण्डी, उद्भट, रुद्रट तथा वामन आदि आचार्यों ने काव्य की चारुता और प्रभावोत्पादकता को अलङ्कार के विविध रूपों के माध्यम से व्याख्यायित किया । रस एवं भावादि को भी पूर्ववर्ती परम्परा ने रसवदादि अलङ्कारों के रूप में विवेचित किया। इस परिप्रेक्ष्य में आचार्य आनन्दवर्धन का ध्वन्यालोक केवल एक नवीन काव्य-सिद्धान्त का प्रतिपादन नहीं करता,अपितु काव्य में अलङ्कार की स्थिति, प्रयोजन और सौन्दर्य-मूल्य का पुनर्निर्धारण करता है। "काव्यस्यात्मा ध्वनिः" की स्थापना द्वारा आनन्दवर्धन ने वाच्यार्थातिरिक्त प्रतीयमान अर्थ को काव्य का आत्मतत्त्व निरूपित कर अलङ्कार- स्वरूप को व्यङ्ग्यार्थ के सौन्दर्य-विधान में पुनः प्रतिष्ठित किया।

प्रस्तुत शोध में आनन्दवर्धन की अलङ्कार-दृष्टि का विश्लेषण व्यङ्ग्य–व्यञ्जकमूलक अलङ्कार के विशेष परिप्रेक्ष्य में किया गया है। यह प्रतिपादित करने का प्रयास है कि शब्द, वाच्यार्थ तथा प्रकरण किस प्रकार किसी अलङ्कार, वस्तु अथवा रस को व्यञ्जित करने में समर्थ होते हैं। इसी आधार पर वाच्यालङ्कार, अलङ्कारध्वनि तथा गुणीभूतव्यङ्ग्य के पारस्परिक भेद स्पष्ट है। विशेषतः जहाँ "व्यङ्ग्यस्य यत्राप्राधान्यं..." के अनुसार अलङ्कार वाच्यार्थ की प्रधानता में आश्रित रहता है, वहाँ वाच्यालङ्कार की स्थिति होती है, इसके विपरीत जब स्वयं अलङ्कार व्यङ्ग्य बनकर काव्यगत चमत्कार का प्रधान आधार होता है, उस स्थिति में अलङ्कारध्वनि का स्वरूप उद्घाटित होता है। एवमेव "रसभावादितात्पर्यमाश्रित्य विनिवेशनम्" के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि अलङ्कार की सार्थकता उसके बाह्य वैचित्र्य में नहीं, बल्कि रसादि व्यङ्ग्यार्थ की अभिव्यक्ति में निहित है।

अतः आनन्दवर्धन की अलंकार-दृष्टि को अलङ्कार-विरोधी न मानकर अलङ्कार के काव्यगत पुनर्स्थापन की दृष्टि से समझना अधिक समीचीन है। ध्वन्यालोक के माध्यम से वे अलङ्कार को रस, भाव, व्यञ्जना और सहृदयानुभूति से सम्बद्ध करते हुए ऐसी समन्वित काव्य-दृष्टि प्रदान करते हैं, जिसमें अलङ्कार लक्ष्य न होकर व्यङ्ग्यार्थ का समर्थ व्यञ्जक और साधन बन जाते हैं। यही आनन्दवर्धन की अलङ्कार-दृष्टि की मौलिकता एवं स्थायी काव्यशास्त्रीय महत्ता है।

THE METAPHYSICS OF AESTHETIC EXPERIENCE: RASA THEORY AND ADVAITA VEDĀNTA

RENNI PONNACHAN

Indian intellectual traditions have rarely regarded aesthetics as merely a theory of artistic pleasure. The experience of beauty, poetry, music, drama, and aesthetic emotion has often been examined in relation to consciousness, selfhood, knowledge, and bliss [Gnoli 1956, xiii–xxii; Raghavan 1978, 1–12]. Among the most influential formulations of this aesthetic vision is the theory of rasa, first systematically articulated in Bharata's Nāṭyaśāstra and subsequently developed by Ānandavardhana, Abhinavagupta, Bhaṭṭanāyaka, and other thinkers [Bharata, Nāṭyaśāstra 6.31–35; Ānandavardhana, Dhvanyāloka 1.4; Abhinavagupta, Abhinavabhāratī ad Nāṭyaśāstra 6]. In parallel, Advaita Vedānta developed a metaphysical account in which Brahman is the non-dual reality, identical with the deepest Self, and characterized as existence, consciousness, and limitless fullness or bliss [Taittirīya Upaniṣad 2.1.1; Śaṅkara, Brahmasūtrabhāṣya 1.1.1; 2.1.14]. The apparent meeting point between these traditions is particularly visible in the concepts of ānanda, transcendence of ordinary individuality, universality, and the transformation of ordinary affect into a distinctive mode of experience [Gnoli 1956, xxi–xxii; Larson 1976, 371–387].

This article investigates the metaphysical dimensions of aesthetic experience through a comparative study of rasa theory and Advaita Vedānta. It examines the nature of rasa, the structure of rasānubhava, sthāyibhāva, vibhāva, anubhāva, vyabhicāribhāva, sādhāraṇīkaraṇa, and rasāsvāda, and compares these with Advaitic concepts such as ātman, Brahman, avidyā, māyā, sākṣitva, ānanda, and brahmānubhava [Bharata, Nāṭyaśāstra 6; Abhinavagupta, Abhinavabhāratī

ad 6.31; Śaṅkara, Brahmasūtrabhāṣya 1.1.1]. Particular attention is given to Abhinavagupta's interpretation of aesthetic relish as an experience resembling spiritual absorption and to the frequently discussed comparison between rasānanda and brahmānanda [Gnoli 1956, xxi–xxii; Larson 1976, 374–384]. The article argues that aesthetic experience can be interpreted as a temporary de-individualization of consciousness in which practical concerns, personal desire, and egoic limitation are attenuated [Gnoli 1968, 86; Baghel 2024]. Yet it also emphasizes that rasāsvāda should not simply be equated with brahmajñāna. Aesthetic experience remains mediated by artistic representation and aesthetic cognition, whereas Advaita regards liberation as the direct recognition of the identity of Ātman and Brahman [Bṛhadāraṇyaka Upaniṣad 1.4.10; Śaṅkara, Upadeśasāhasrī 17.3–4]. The true meeting point therefore lies not in identity but in structural analogy: both traditions investigate forms of experience in which consciousness becomes less constrained by ordinary subject-object relations and in which bliss appears as an intrinsic dimension of awakened awareness [Larson 1976, 374–384; Gnoli 1956, xxi–xxii]. This comparative perspective reveals the possibility of understanding Indian aesthetics as a sophisticated philosophy of consciousness as well as a theory of artistic response.

Keywords: Rasa, Rasānubhava, Rasāsvāda, Advaita Vedānta, Brahman, Ātman, Ānanda, Aesthetic Experience, Sādhāraṇīkaraṇa, Abhinavagupta, Bharata, Śaṅkarācārya, Consciousness, Indian Aesthetics, Brahmānanda

कुन्तक के स्वभावोक्ति-सिद्धान्त का समीक्षात्मक अध्ययन

डॉ रेणुका बोकारे

भारतीय काव्यशास्त्र की परंपरा में स्वभावोक्ति और वक्रोक्ति दो महत्त्वपूर्ण काव्य-दृष्टियों के रूप में विकसित हुई हैं। भामह, दण्डी, भोज और मम्मट आदि आचार्यों ने स्वभावोक्ति का विभिन्न दृष्टियों से विवेचन करते हुए उसे अलंकार के रूप में स्वीकार किया है, जबकि कुन्तक ने *वक्रोक्तिजीवित* में स्वभावोक्ति के अलंकारत्व का खंडन करते हुए उसे अलंकार्य माना तथा वक्रोक्ति को काव्य का मूल तत्त्व प्रतिपादित किया। प्रस्तुत शोध-पत्र में कुन्तक के स्वभावोक्ति-विषयक मत का समीक्षात्मक अध्ययन किया गया है।

कुन्तक के अनुसार वस्तु का स्वभाव ही वर्ण्य-विषय अथवा अलंकार्य है। यदि स्वभावोक्ति को अलंकार माना जाए, तो अलंकार्य के रूप में क्या शेष रहेगा—यह उनका प्रमुख तर्क है। वे यह भी मानते हैं कि स्वभावोक्ति को अलंकार स्वीकार करने पर उपमा आदि अन्य अलंकारों की स्वतंत्र सत्ता प्रभावित होगी तथा संकर अथवा संसृष्टि की स्थिति उत्पन्न होगी। इसके विपरीत भामह स्वभावोक्ति में विशिष्टता और कवि-प्रतिभा को स्वीकार करते हैं। दण्डी ने स्वभावोक्ति को वक्रोक्ति से पृथक् मानते हुए उसका विस्तृत विवेचन किया है, जबकि भोज ने वक्रोक्ति, रसोक्ति और स्वभावोक्ति के रूप में वाङ्मय का विभाजन किया। मम्मट ने बालक आदि के विशिष्ट स्वभाव, क्रिया एवं रूप के वर्णन को स्वभावोक्ति माना है।

महिमभट्ट तथा शोभाकर मित्र के विचारों के आधार पर प्रस्तुत अध्ययन यह प्रतिपादित करता है कि स्वभावोक्ति का अर्थ मात्र यथातथ्य अथवा सामान्य वस्तुवर्णन नहीं है। कवि की प्रतिभा द्वारा वस्तु के सामान्य रूप में निहित विशिष्ट एवं रमणीय स्वरूप का साक्षात्कार कराकर उसे सहृदय के समक्ष सजीव रूप में प्रस्तुत करना ही स्वभावोक्ति का वास्तविक स्वरूप है। कालिदास के *अभिज्ञानशाकुन्तल* में भ्रमर-वर्णन इसका उत्कृष्ट उदाहरण है। अतः स्वभावोक्ति और वक्रोक्ति को परस्पर विरोधी मानना उचित नहीं है। स्वभावोक्ति में निहित विशिष्टता, प्रतिभा, विदग्धता और चमत्कृति उसे स्वतंत्र अलंकार के रूप में प्रतिष्ठित करती हैं। इस दृष्टि से कुन्तक के स्वभावोक्ति-निषेध का पुनर्मूल्यांकन आवश्यक प्रतीत होता है।

Pratibhijnana Philosophy (Kashmiri Shaivism); Mahakavi Kalidas's Abhijnana shakuntalam and Dhrupad

Dr. Sangeeta Gundecha

This paper explores the profound connection between **Pratibhijnana Philosophy** (Kashmiri Shaivism) and **Dhrupad**, an ancient form of Indian classical music. Both embody the essence of **unity** between the individual and the divine, exploring creation, consciousness, and the cosmic vibrations that underlie existence.

Pratibhijnana Philosophy emphasizes the concept of a singular universal consciousness, **Chaitanya**, which is the essence of Shiva. It views the universe as a divine manifestation of Shiva's will and action, with **Spanda** (vibration) representing the cosmic rhythm that connects all existence. Central to this philosophy is the intuitive insight, **Pratibha**, which enables direct realization of the divine.

Dhrupad, originating from the Sama Veda, expresses this connection through **Naad Yoga** (the yoga of sound), using music as a path to spiritual realization. Through its slow and meditative **Alaap** and rhythmic compositions (**Bandish**), Dhrupad invites both performers and listeners to merge with the divine vibrations of the universe.

The relationship between **Pratibhijnana Philosophy** and **Dhrupad** is evident in their shared focus on vibration, spiritual consciousness, and the experience of **Rasa** (divine essence). Both emphasize direct experience over intellectual knowledge, with **Dhrupad** mirroring Pratibhijnana's philosophy through its meditative and transcendental qualities. The practice of both requires intense discipline, where the Dhrupad singer undergoes a process of **purification** and realization through rigorous **Riyaaz** (practice).

The **Shiva Stuti** (Praise of Shiva) is a frequent theme in Dhrupad compositions, where the vibrations of sound and the cosmic dance of Shiva align, symbolizing the divine energy that sustains creation. The paper further delves into the **Vedic mantra** provided, which outlines the eightfold manifestations of the divine forces, directly correlating with the philosophical and spiritual themes of Pratibhijnana and Dhrupad.

Ultimately, the connection between Pratibhijnana and Dhrupad offers an integrated view of spirituality, where creation, consciousness, and cosmic rhythms converge to lead the individual soul toward divine realization. The **Bhopali Bandish** presented in the paper encapsulates this cosmic unity, invoking the essence of Shiva in his eightfold manifestations, symbolizing the interconnectedness of all life and the infinite divine presence within and beyond the universe.

This exploration highlights the **interplay between sound, vibration, philosophy, and spirituality**, with **Dhrupad** serving as a bridge that connects the theoretical insights of **Pratibhijnana** with the lived experience of the divine. Both traditions encourage the seeker to experience the **infinite** through the **finite**, the **eternal** through the **momentary**, and the **divine** through the **mundane**.

कालिदासकृत 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' में पारिवारिक जीवन के आयाम

कौशिकी रानी, डॉ. किरनमाला

परिवार मानव जीवन का आधारस्तंभ है, जो संस्कार, सुरक्षा, सहयोग और सामाजिक स्थिरता प्रदान कर व्यक्ति एवं समाज दोनों के समुचित विकास में सहायक होता है।

संस्कृत वाङ्ग्मय भारतीय संस्कृति, परंपरा एवं जीवन-मूल्यों का अमूल्य भंडार है। इसमें मानव जीवन के प्रत्येक पक्ष का सूक्ष्म और गहन विवेचन किया गया है, जिसमें पारिवारिक प्रबंधन का विशेष स्थान है। भारतीय समाज की मूल इकाई "परिवार" है, और संस्कृत साहित्य में इसे सुव्यवस्थित, सुसंस्कृत तथा नैतिक जीवन का आधार माना गया है।

वेदों, उपनिषदों, रामायण, महाभारत तथा अन्य काव्य-ग्रंथों में पारिवारिक जीवन के आदर्शों का विस्तृत वर्णन मिलता है। वेदों में "मातृदेवो भव, पितृदेवो भव" जैसे वाक्य परिवार में माता-पिता के प्रति श्रद्धा एवं कर्तव्यबोध को स्थापित करते हैं। संस्कृत नाटकों, विशेषतः महाकवि कालिदास के नाटकों में भी पारिवारिक जीवन की मधुरता और संतुलन का सुंदर चित्रण देखने को मिलता है। "अभिज्ञानशाकुन्तलम्" एक ऐसी ही उत्कृष्ट नाट्यकृति है, जिसमें केवल प्रेमकथा ही नहीं बल्कि पारिवारिक जीवन, सम्बन्धों और प्रबन्धन का अत्यंत सूक्ष्म एवं मार्मिक चित्रण देखने को मिलता है। महाकवि कालिदास ने परिवार को केवल रक्त सम्बन्धों तक सीमित न रखकर, भावनात्मक, सामाजिक एवं नैतिक आधार पर विस्तृत रूप से प्रस्तुत किया है।

कण्व आश्रम में शकुन्तला हिरण, पक्षी, लताओं आदि को अपने परिवार के सदस्य की तरह मानती है। इससे स्पष्ट होता है कि संस्कृत परंपरा में परिवार केवल मनुष्यों तक सीमित नहीं, बल्कि समस्त जीव-जगत तक विस्तृत है। शकुन्तला का पशु-पक्षियों के प्रति स्नेह तथा आश्रम-जीवन की सामूहिकता "वसुधैव कुटुम्बकम्" की भावना को सजीव रूप में प्रस्तुत करती है।

महर्षि कण्व जैविक पिता न होते हुए भी शकुन्तला को पुत्रीवत् मानकर उसके पालन-पोषण एवं संरक्षण का आदर्श प्रस्तुत करते हैं। प्रस्तुत शोधपत्र "अभिज्ञानशाकुन्तलम्" में निहित पारिवारिक प्रबंधन के विविध आयामों का अध्ययन करने का प्रयास करेगा।

विंशतिशताब्द्यां महाराष्ट्रप्रान्तीय गङ्गाधरकवेः सटिकायाः 'चित्रमंजूषा' इति कृतेः अध्ययनम्

प्राची सुधीर पातोंडीकर

प्रस्तुते शोधपत्रे विशशताब्द्यां महाराष्ट्रस्य प्रकाण्डपण्डितस्य गङ्गाधरकवेः विरचितायाः 'चित्रमञ्जूषा' इति दुर्लभायाः अमूल्यायाश्च सटीककृतेः आलोचनात्मकमध्ययनम् अत्र प्रस्तुतम् अस्ति । 'चित्रमञ्जूषा' मूलतः काव्यशास्त्रस्य एकः महत्त्वपूर्णः ग्रन्थः अस्ति, यस्मिन् त्रिसप्ततिः श्लोकाः सन्ति। काव्यशास्त्रस्य प्रमुखाणां सिद्धान्तानां विवेचनं कुर्वन्नपि, 'चित्रकाव्यस्य' शास्त्रीयपरिभाषां तस्य विविधोदाहरणैः सह स्पष्टीकरणं च अस्य ग्रन्थस्य मुख्यमुद्देश्यम् अस्ति ।

गङ्गाधरकविः आचार्यविश्वनाथस्य 'वाक्यं रसात्मकं काव्यम्' इति सूत्रं स्वीकृत्य रसं काव्यस्य आत्मानं मन्यते। सः काव्यस्य 'उत्तम-मध्यम-अधमाः इति प्रकारेण त्रिविधं वर्गीकरणं करोति। यद्यपि आचार्यमम्मटस्य मते 'चित्रकाव्यं' अवरं वा 'अधमकाव्यं' अस्ति, तथापि गङ्गाधरकविः स्वग्रन्थे चित्रकाव्याय न्यायप्रदानार्थं श्लाघनीयं प्रयत्नं कृतवान् । छात्राणां सुबोधाय सः चित्रकाव्यस्य विविधानां रूपाणां सोदाहरणं निरूपणं अकरोत् ।

अस्य ग्रन्थस्य महत्तमं वैशिष्ट्यं वर्तते अस्य 'बन्धकाव्यम्' इति। कविना स्वविरचितसंस्कृतश्लोकैः सह हारः, कमलं, पद्मं, मयूरः, चक्रं, गजः, व्यजनं (व्यजनी), छत्रं, चामरं, स्त्री, पुष्पयष्टिका इत्यादीनां विविधाकृतीनां हस्तलिखितानि चित्राणि प्रदाय इदं चित्रकाव्यं सुसज्जितम्। एतदतिरिच्य अर्थचित्र-शब्दार्थचित्रयोः वैविध्यं कविना स्वकाव्यैरेव विदुषां सम्मुखे प्रकटीकृतम्। प्रस्तुतशोधपत्रे अस्य ग्रन्थस्य एषा एव शास्त्रीयपद्धतिः, तस्य स्वलिखितटीका, विंशशताब्द्यां आधुनिकसंस्कृतसाहित्ये अस्य योगदानं च प्रकाशयितुं प्रयासः विहितः।

सङ्केतशब्दाः - गङ्गाधरकविः, चित्रमंजूषा, चित्रकाव्यम्, बन्धकाव्यम्, सटीकग्रन्थः, विंशशताब्दी, संस्कृतकाव्यशास्त्रम् ।

The Aesthetics of the Dressed Body: Rasa, Dhvani, and the Poetics of Appearance in Indian Thought

Shalvi Ahirwar and Aryan Parmar

Research Parameters

Indian aesthetic theory locates aesthetic experience in the transformation of perception into an affective, contemplative state, yet the dressed body remains under-examined as a site of such experience. Drawing upon the Nāṭyaśāstra, Abhinavagupta's theory of rasa, Ānandavardhana's concept of dhvani, and the principle of aucitya, this study asks how Indian aesthetic theory transforms dress from a visible representation of identity into an embodied form of poetic suggestion. It explores clothing beyond the material garment, examining how meaning emerges through emotion, suggestion, memory, context, and spectatorship.

Methodology

The research applies theoretical and textual analysis to Indian literary and performative traditions. By deploying foundational concepts of Indian poetics—specifically rasa, bhāva, dhvani, and aucitya—the paper reads the dressed body as an aesthetic text, examining the interplay between materiality, drapery, movement, and the imaginative participation of the perceiver.

Data & Findings

The study reveals that clothing communicates beyond explicit visual signs. Colour, fabric, ornament, silhouette, and movement evoke emotional states and cultural associations whose meanings are completed through spectator resonance (sahṛdayatva). Dress operates via suggestion (dhvani), making the seen garment a departure point for what is felt and imagined. Furthermore, clothing serves as a mnemonic medium, retaining traces of personal experience, ritual, and collective histories where materiality becomes dhvani and emotion becomes rasa.

Conclusion

Indian poetics provides a distinctive philosophical vocabulary that redefines dress beyond material culture or visual identity. Ultimately, the dressed body functions as an embodied aesthetic experience where body, garment, emotion, memory, and consciousness converge, offering a fresh conceptual lens for Indological and aesthetic studies.

Keywords

Rasa; Dhvani; Aucitya; Dressed Body; Indian Aesthetics

Typology of Emotions and Interpersonal Dynamics: The Psychological Framework of the Prakaraṇas in Vātsyāyana's Kāmasūtra

RAJITHA K R

While modern Indological scholarship predominantly examines Vātsyāyana's Kāmasūtra through the lenses of socio-urban history or aesthetic erotology, the text's underlying psychological taxonomy remains largely unexplored. This paper investigates the Kāmasūtra as an early treatise on behavioral psychology, interpersonal dynamics, and emotional typology. By analyzing the structural mechanics of specific Prakaraṇas (thematic sections) across the Adhikaraṇas, this study

demonstrates how Vātsyāyana establishes a systematic framework for evaluating temperament, reading non-verbal cues, and navigating complex affective states.

Central to this investigation is an intertextual comparison between Vātsyāyana's classification of emotional dynamics and the foundational aesthetic theory of Bhāva (emotional states) and Rasa (aesthetic relish) formulated in Bharata Muni's Nāṭyaśāstra. While Bharata structures emotional typologies for theatrical performance (Nāṭya), Vātsyāyana adapts these psychological models to real-world interpersonal contexts (Lōkavṛtta).

Specifically, this paper analyzes three core psychological dimensions:

1. Temperamental Typologies and Compatibility (Sattvāvabodha): The systematic classification of individuals based on emotional endurance, behavioral dispositions, and psychological archetypes.

2. Diagnostic Methods of Affect (Bhāva-parīkṣā): Vātsyāyana's methodology for reading micro-expressions, posture, speech inflections, and involuntary physiological responses (Sāttvika-bhāvas) to discern genuine intent from deception.

3. Dynamics of Emotional Conflict and Reconciliation (Māna-grahaṇa): The strategic management of pride, jealousy, and emotional distance, providing a structured resolution model that mirrors the emotional arc of classical Sanskrit drama.

By bridging Kāmaśāstra with Nāṭyaśāstra and Alaṅkāra-śāstra, this paper establishes that Vātsyāyana's work is not merely a normative code of social etiquette, but a sophisticated, empirical contribution to classical Indian psychology and behavioral science.

The Voice of Shabari and Anasuya: Spiritual Autonomy and Authority of Women in the Ramayana

Nidhi Jha

Research Parameters: Anasuya and Shabari occupy an unusual place in Valmiki's Ramayana, where women are typically read through royal lineage, marital devotion, or political compromise. This paper asks what changes when spiritual authority is traced instead through an ascetic sage of formidable tapas and a forest-dwelling devotee from a marginal background, both of whom meet Rama on their own terms and outside any courtly framework.

Methodology: The study works through the Aranya Kanda, examining Anasuya's discourse to Sita on dharma and self-reliance alongside Shabari's narrative as rendered by Priyadas in the eighteenth century, her flight from a violent wedding feast, her years of hidden service at Matanga's ashram, the contempt of his other disciples, and her eventual meeting with Rama.

Data & Findings: Anasuya functions as an elder teacher rather than a passive exemplar of wifely obedience, imparting dharma directly to Sita. Shabari's devotion bypasses ritual hierarchy and caste status altogether: Rama seeks her out explicitly, accepts fruit she has already tasted, and later directs the ascetics to dip her feet in the lake their own pride had polluted, restoring it through her touch alone.

Conclusion: Read together, Anasuya and Shabari emerge as autonomous spiritual guides whose wisdom and devotion command Rama's own reverence, evidence that the epic recognizes female spiritual self-determination as legitimate in its own right, not as an anomaly requiring courtly or ritual sanction.

Keywords Ramayana; Anasuya; Shabari; Bhakti; women's spiritual authority

काव्यरसों में शृङ्गाररस की व्याप्ति : शृङ्गारप्रकाश के आलोक में

विवेक कुमार तिवारी

परिचय : रस काव्य की आत्मा एवं सहृदय के आनन्दमय आस्वाद का आधार है। परम्परा में प्रायः सभी आचार्यों ने रसस्वरूप, रसनिष्पत्ति, रससंख्या एवं रससम्बन्ध विषयक विचार-विमर्श किया है। काव्यरस विषयक विमर्श परम्परा में भरतमुनि के रससूत्र "विभावानुभावव्यभिचारिपरिवृतः स्थायी भावो रसनाम लभते" एवं रसनिष्पत्तिसूत्र "विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रस-निष्पत्तिः" को विशिष्ट स्थान प्राप्त है। रस सम्प्रदाय के आद्याचार्य भरतमुनि नें रससंख्या परिगणन में शृङ्गाररस को पूर्व में रखा तथा परवर्ति आचार्यों ने भी शृङ्गार को सर्वप्रथम स्थान दिया है अग्निपुराण और शृङ्गारप्रकाश नामक ग्रन्थ में "काव्यरसों में शृङ्गाररस की व्याप्ति" होने का निरूपण प्राप्त होता है। प्रस्तुत शोधपत्र में इसी परम्परा के आलोक में शृङ्गाररस की सर्वकाव्यरसव्यापकता का विमर्श किया गया है।

भरतमुनि शृङ्गाररस का स्वरूप प्रतिपादन करते हुये कहते है कि "तत्र श्रृङ्गारो नाम रतिस्थायिभावप्रभवः। उज्जलवेषात्मकः। यत्किञ्चल्लोके शुचि मेध्यमुज्ज्वलं दर्शनीयं वा तच्छृङ्गारेणोपमीयते। यस्तावदुज्ज्वलवेषः स शृङ्गारवानित्युच्यते। जो रस का रति नामक स्थायिभाव से उत्पन्न होता है उस रस का नाम शृङ्गार है। उसका स्वरूप उज्वलवेषात्मक है। लोक में जो स्वच्छ, पवित्र एवं उज्वल दिखलायी देता है वह शृङ्गार नामक रस से उपमित होता है। जो व्यक्ति उज्वल वेष-भूषा धारण होत है वह शृङ्गारवान् कहलाता है।

उपनिषदों में जिसे सनातन, विभु, ईश्वर एवं ज्योति कहा गया है वह आनन्दस्वरूप वाला है उसकी अभिव्यक्ति को चैतन्य और रस नाम दिया गया है उसमें जो पहला विकार उत्पन्न हुआ वह कहलाया "**अहङ्कार**", अहङ्कार से प्रकट हुआ "**अभिमान**" अभिमान से रति उत्पन्न होती है जब रति भावों से परिपुष्ट होती है उसी को कहते है "**शृङ्गार**"।

अभिमानाद् रतिः सा च परिपोषमुपेयुषी । व्यभिचार्यादिसामान्याच्छृङ्गार इति गीयते ।।

कार्यप्रणाली : प्रस्तुत शोध में पाठविश्लेषणात्मक, तुलनात्मक एवं समीक्षात्मक पद्धति का प्रयोग किया गया है। शृङ्गार के व्यापक स्वरूप को स्पष्ट करने के लिए भरतमुनि के नाट्यशास्त्र, अभिनवगुप्त की अभिनवभारती, अग्निपुराण, मम्मट के काव्यप्रकाश, विश्वनाथ के साहित्यदर्पण तथा भोजराज के शृङ्गारप्रकाश में प्रतिपादित रस एवं शृङ्गारसम्बन्धी सिद्धान्तों का अध्ययन किया गया है। विशेषतः भोजराज के शृङ्गारलक्षण के आधार पर शृङ्गार की व्यापकता का परीक्षण किया गया है।

डेटा : शोध की प्राथमिक सामग्री उपर्युक्त काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों में उपलब्ध रस-लक्षण, भाव-विवेचन, शास्त्रीय मत एवं काव्योदाहरण हैं। विभिन्न रसों में विद्यमान काव्यरसों में शृङ्गाररस की व्याप्ति का तुलनात्मक अध्ययन का आधार बनाया गया है।**निष्कर्ष :** अध्ययन से स्पष्ट होता है कि शृङ्गार केवल रति अथवा प्रणय तक सीमित न रहकर चित्तोद्रकत्व, प्रियत्व, इष्टता एवं अनुराग की व्यापक भावभूमि को अभिव्यक्त करता है। अन्य रसों के स्थायिभाव भिन्न होते हुए भी उनमें इन तत्त्वों की विविध रूपों में उपस्थिति दिखाई देती है। अतः शृङ्गार को अन्य रसों का पर्याय न मानकर काव्यरसों में शृङ्गाररस की व्याप्ति के रूप में ग्रहण किया जा सकता है।

Keywords: काव्यरस, शृङ्गाररस , चित्तोद्रेक , अहङ्कार , अभिमान

आन्तःशास्त्रीयविचारदृष्ट्या अलङ्कारशास्त्रस्य समन्वयात्मकमध्ययनम्

Dr. Pritam Rooj

भारतीयकाव्यशास्त्रस्य विकासक्रमे अलङ्कारशास्त्रं केवलं काव्यशोभावर्धकानां साधनानामध्ययनपर्यन्तं न सीमितम्; अपितु शास्त्रमेतद् साहित्यस्य सौन्दर्यमीमांसां, दर्शनस्य तत्त्वचिन्तनपरम्परां, भाषाविज्ञानस्य अर्थव्यवस्थां च समन्वयेन व्याख्यातुमर्हति। काव्ये शब्दार्थयोः सम्बन्धस्य, ध्वनेः, व्यञ्जनाशक्तेः, वक्रोक्तेः, रसस्य, औचित्यस्य च विवेचनम् अलङ्कारशास्त्रे केवलं साहित्यिकरुचिमेव न बोधयति, अपि तु भाषायाः संरचनात्मकस्वरूपं ज्ञानमीमांसात्मकप्रक्रियां मानवचेतसः सौन्दर्यानुभूतिं च प्रकाशयति। वस्तुतः एतत् शास्त्रं शब्दस्य स्वरूपम्, अर्थस्य प्रक्रिया, सौन्दर्यस्य अनुभवः, चेतनायाः विस्तारः, ज्ञानस्य संप्रेषणम् इत्यादीनां बहुविधविषयाणां समन्वयात्मकं दर्शनं सज्जीकरोति।

अस्य लेखस्य मुख्योद्देशः साहित्य-दर्शन-भाषाविज्ञानदृष्ट्या अलङ्कारशास्त्रस्य एकं समन्वयात्मकम् अध्ययनम्। अत्र भामह-दण्डि-वामन-आनन्दवर्धन-अभिनवगुप्त-कुन्तक-मम्मट-जगन्नाथादीनां सिद्धान्तानां आन्तःशास्त्रीयदृष्ट्या अध्ययनं कृतम्। विशेषतः ध्वनि-रस-वक्रोक्ति-शब्दशक्ति-व्यञ्जनेत्यादीनां सिद्धान्तानां आधुनिकभाषाविज्ञानस्य Semantics, Pragmatics, Stylistics इत्यादिभिः सह समन्वयात्मकमध्ययनं क्रियते। शोधस्यास्य मूलप्रतिपादनमस्ति यत् अलङ्कारशास्त्रं केवलं काव्यसौन्दर्यस्य शास्त्रं न; अपि तु भाषा-दर्शन-चिन्तन-अनुभूति-संस्कृति-इत्यादीनां परस्परसम्बन्धानां विश्लेषणात्मकं विज्ञानमस्ति। आधुनिकानाम् आन्तःविषयकदृष्टीनामपि सन्दर्भे भारतीयकाव्यशास्त्रस्य प्रासङ्गिकता प्रदर्शिता। वस्तुतः अस्य शास्त्रस्य अन्तराले भारतीयदर्शनस्य तत्त्वचिन्तनम्, भाषाविज्ञानस्य सूक्ष्मविश्लेषणम्, साहित्यस्य सौन्दर्यमीमांसा च समन्वितरूपेण निहिताः सन्ति। भामहात् आरभ्य पण्डितराजजगन्नाथपर्यन्तं काव्यशास्त्रस्य विकासः दर्शयति यत् भारतीयाचार्याः केवलं आलङ्कारिकाः नासन्; ते भाषावैज्ञानिकाः, दार्शनिकाः, मनोवैज्ञानिकाश्च आसन्। अतः आन्तःशास्त्रीयविचारदृष्ट्या अलङ्कारशास्त्रं कथं समन्वितं भवतीति मम सन्दर्भस्यास्य विषयः।

अलङ्कारशास्त्रेषु कुवलयानन्दालङ्कारमणिहारयोः योगदानम्

डॉ.शिवप्रसादवेहेरा

अलम् इति शब्दः अलंकारार्थे- अलं पर्याप्तिभूषणवारणेषु इति । अत्र अलंकारशब्दः करणप्रधानः अस्ति। भावप्रधानश्च। तत्र अलंक्रियते अनेन इति अलंकारः अनुप्रासोपमादीनाम् अलंकाराणां वाचकः । अलंकृतिः अलंकरणं वा अलंकारः इति अलंकारशास्त्रवाचकः । इदम् अलंकारशास्त्रं काव्यशास्त्रमिति गीयते।इदम् अलंकारशास्त्रं प्राधान्येन अर्थात् छत्रिन्यायेन व्यपदेश्यं भवति। तस्य क्रियाकल्पं, क्रियाविधि,साहित्यशास्त्रं,सौन्दर्यशास्त्रं चेति नामान्तराणि विलसन्ति ।संस्कृतशास्त्रेषु अलङ्कारशास्त्रस्य महत्त्वपूर्णं स्थानं वर्तते। कविः करोति काव्यानि । स्वादुं जानन्ति तु आलंकारिकाः भामहमम्मटादयः सहृदयाः,भावुकाः । रससिद्धाः कवयः जयन्ति एवम् अलंकारसिद्धाः अपि। गुणादिरूपाणां तत्वानां मध्ये अलंकारतत्वम् अतीव क्लिष्टं प्रतिभाति। इवादि प्रयोगे यथा उपमा तथैव उत्प्रेक्षा अपि।उत्प्रेक्षास्थले अपि उपमा एव विद्वांसः ।वागर्थाविवसंपृक्तौ इत्यत्र उपमापरिकरादयः अनेके अलंकाराः वर्तन्ते। रसालंकार-गुण-रीति-वृत्ति-वक्रोक्ति-ध्वनि-औचित्येषु अलंकारशास्त्रविषयेषु अलंकारज्ञानं न सहजम् । महता परिश्रमेण जिज्ञासया वुदुषाम् अनुग्रहेण च सम्भवति।

अलंकारस्वरूपज्ञानं विना दृश्यश्रव्यकाव्ययोः सम्यक् ज्ञानं न सम्भवेत् । अतः उच्यते-अलंकारज्ञानं विना विधवेव सरस्वती इति न कान्तामपि निर्भूषं विभाति वनिताननम् इति च भामहः । अनुष्णः अग्निः न सम्भवति तथैव अलंकारं विना काव्यं न स्वदते।एवम् अलंकारगतं वैशिष्ट्यं निभाल्य कुवलयानन्द-अलंकारमणिहारयोः अलंकारशास्त्रं प्रति योगदानविषये वर्णयितुं मम जिज्ञासा वलवती भवति।

अलंकारशास्त्रेषु अनेकेषु शब्दार्थ-गुणालंकार-रस-रीति-वृत्ति-वक्रोक्ति-औचित्य-ध्वनिपरेषु कुवलयानन्दः-अलंकारमणिहारश्च प्रकाशितौ विलक्षणौ अलंकारग्रन्थौ । तत्र कुवलयानन्दकर्ता श्रीमान् अप्पयदीक्षितः। अलंकारमणिहारस्य प्रणेता श्रीकृष्णब्रह्मतन्त्रपरकालसंयमीन्द्रः । उभौ दाक्षिणात्यौ परमाचार्यौ अलंकारनिष्णातौ ।तत्र चन्द्रालोकादिकम् अलंकारविषयमादाय कुवलयानन्दः प्रवर्तते। कुवलयानन्दादिकविषयमादाय तु

अलंकारमणिहारः।कुवलयानन्दः सूत्रवृत्ति-उदाहरणरूपेण त्रिधा विराजते। तत्र उपमाद्यर्थालंकारसमन्विताः त्रयोविंशत्यधिक- एकशतं(123) अलंकराः विलसन्ति। तत्र पूर्वाचार्याणाम् अलंकारेभ्यः सप्तदश(17) नवीनालंकाराः सन्ति । तत्र एकस्मिन् श्लोके लक्षणम् उदाहणं च प्राप्येते । अलंकारमणिहारः चतुर्भागसम्बलितः ग्रन्थः। तत्र सप्तविंशत्यधिक एकशतं (127) अलंकाराः, 2377 उदाहरणानि च सन्ति। तत्र सर्वाणि उदाहरणानि भगवत् - कीर्तनपरकाणि श्लेषालंकारसम्बलितानि आर्याछन्दमूलकानि च सन्ति। इतः ज्ञायते यत् भगवत् चिन्तनमेव मुख्योद्येश्यम् अलंकारमणिहारस्य । अलंकारमणिहारे श्रीदीक्षितमहोदयस्य 123 अलंकाराः लिखिताः । तत्र कुवलयानन्दापेक्षया अलंकारचतुष्टयम् अधिकतया दर्शितम् । अलंकारमणिहारकारः प्रायेण सर्वेषाम् आलंकारिकाणां मतं स्वीकृत्य अन्तिमे स्वस्य चमत्कारात्मकं मतं दर्शयति ।एतेन तस्य प्रतिभा प्रगल्भते इति अपि वेदितव्यम्।चन्द्रालोकस्य प्रभावः कुवलयानन्दे। कुवलयानन्दस्य प्रभावः काव्यप्रदीपे,वामनझल्किकरे, अलंकारमणिहारे च दृश्यते । अलंकारमणिहारस्य प्रभावः काव्यमीमांसादौ आलक्ष्यते ।

कुवलयानन्दं प्रायेण विद्यार्थिनः जानन्ति परन्तु न अलंकारमणिहारग्रन्थम् । कुवलयानन्दस्य परिणामः विस्तारश्च अलंकारमणिहारः । कुवलयानन्दः बालानां शिक्षायै वर्तते अलंकारमणिहारस्तु प्रौढानां कृते इति मे मतिः।अयं विषयः सुदीर्धः विशालः च अस्ति। अत्र केवलं समासेन कुवलयानन्द-अलंकारमणिहरयोः परिचयं संपर्कं महत्वं वैशिष्ट्यं च स्वज्ञानवैशद्याय लोकलोचनाननाय च किञ्चित् विहितम् । इति शिवम् ।

काव्यप्रकाशे रसविषयिणी कविशिक्षा

कु. राधा देशकरः , प्रो. कविता होले

साहित्यशास्त्रस्य विकासयात्रायां कालक्रमेण षट्सिद्धान्ताः प्रादुर्भूताः। यथा रससिद्धान्तः, अलङ्कारसिद्धान्तः, रीतिसिद्धान्तः, ध्वनिसिद्धान्तः, वक्रोक्तिसिद्धान्तः, औचित्यसिद्धान्तश्च। एते षट्सिद्धान्ताः काव्यात्मप्रतिपादनाय अथवा काव्यस्य सर्वप्रधानतत्त्वं किमिति जिज्ञासायां कालक्रमेण आविर्भूताः। तत्र भरताचार्येण प्रवर्तितो रससिद्धान्तः । भामहदण्ड्युद्भटादिभिः प्रवर्तितोऽलङ्कारसिद्धान्तः। वामनाचार्येण प्रतिपादितो रीतिसिद्धान्तः। आनन्दवर्धनाचार्येण प्रवर्तितो ध्वनिसिद्धान्तः । कुन्तकाचार्येण प्रतिपादितो वक्रोक्तिसिद्धान्तः। आचार्यक्षेमेन्द्रेण प्रवर्तित औचित्यसिद्धान्तश्च। एतेषु सिद्धान्तेषु रससिद्धान्तः सर्वप्रथमः।

'न हि रसादृते कश्चिदर्थः प्रवर्तते' इतीदमनुसृत्य संस्कृतसाहित्यजगति रसस्य स्थानं प्रतिपादितम् । साहित्यशास्त्रस्य विवेच्यतत्त्वेषु रसतत्त्वं सर्वप्रधानमिति निश्चप्रचम्। रसो न केवलं नाट्यस्य अपितु काव्यस्यापि सर्वाधिकं महत्त्वपूर्णं तत्त्वमिति प्रायशः सर्वैराचार्यैः सर्वात्मना स्वीक्रियत एव। आभरताद् आधुनिककालपर्यन्तं ये ये काव्यशास्त्रिणोऽभूवन् ते सर्वे आचार्याः काव्येषु रसतत्त्वस्य प्राधान्यं स्वीकुर्वन्ति । ये काव्यस्यात्मानं रसं स्वीकुर्वन्ति ते रससिद्धान्तपक्षपातिनः सन्ति। तेषु एकः काव्यप्रकाशकारः मम्मटाचार्यः अस्ति। तेन स्वस्य ग्रन्थे काव्यतत्त्वैः सह रसाश्रितकाव्यस्यापि विवरणं प्रदत्तम्। रसप्रधानोत्तमकाव्यस्यनिर्माणाय उपदेशाः निर्दिष्टाः तत्र तेन। एते उपदेशाः कविशिक्षायां अन्तर्भवन्ति।

कविशिक्षा इति काव्यशास्त्रस्य प्रतिपाद्यविषयः अस्ति इति विद्वद्मतं वर्तते। कविशिक्षा नाम कविभ्यः शिक्षा, कवीनां कृते शिक्षा, कविविषयिणी वा शिक्षा इति। कवीनां कृते काव्यनिर्मितेः मार्गदर्शनमिति कविशिक्षायाः उद्देश्यम्। यद्यपि कविशिक्षापरग्रन्थानां परम्परा राजशेखरात् आरब्धा इति भासते, तथापि भरतमुनि-भामह-वामन-दण्डि-आनन्दवर्धनादिभिः सम्प्रदायस्य संस्थापकैः, शास्त्रकविभिः स्वग्रन्थेषु कविशिक्षाबीजानि रोपितानि सन्ति। तथैव काव्यप्रकाशेऽपि एतादृशाः कविशिक्षाविषयकोपदेशाः प्राप्यन्ते। कौ रसौ न मिश्रयेत्? रसपूर्णकाव्यनिर्मिति समये रसानां योजना कथं कर्तव्या। यथा - रतिः सम्भोगशृङ्गाररूपा उत्तमदेवता विषया न वर्णनीया। तद्वर्णनं हि पित्रोः सम्भोगवर्णनमिवात्यन्तमनुचितम्। एवं रसविषयकाः कविशिक्षापरउपदेशाः प्राप्यन्ते। अस्मिन् शोधप्रकल्पे कविशिक्षायाः आधारेण रसतत्त्वस्य तथैव रसाधारितानां साहित्यिकतत्त्वानां समीक्षणात्मकम् अध्ययनं क्रियते।

कूटशब्दाः - काव्यप्रकाशः ,रसः, रसविषयिणी कविशिक्षा ।

भारतीय काव्यशास्त्र में काव्य-प्रयोजन: परम्परा, विकास और समकालीन प्रासंगिकता

Vaishnavi

भारतीय काव्यशास्त्र में काव्य के स्वरूप, तत्त्व और प्रयोजन को लेकर प्राचीन समय से ही विचार किया जाता रहा है। काव्य केवल मनोरंजन या सौन्दर्य की अनुभूति कराने का माध्यम है अथवा इसके द्वारा मनुष्य को ज्ञान, शिक्षा, आनन्द और जीवन से जुड़े मूल्यों की प्राप्ति भी होती है—यह प्रश्न भारतीय काव्यचिन्तन में विभिन्न रूपों में सामने आता है। अलग-अलग आचार्यों ने अपने-अपने काव्य-सिद्धान्तों के आधार पर काव्य के प्रयोजन को स्पष्ट किया है। इस कारण भारतीय काव्यशास्त्र में काव्य-प्रयोजन की अवधारणा एक व्यापक विषय के रूप में विकसित हुई।

प्रस्तुत शोधपत्र में भारतीय काव्यशास्त्र में काव्य-प्रयोजन की अवधारणा को उसके क्रमिक विकास के साथ समझने का प्रयास किया गया है। इसके लिए भरतमुनि से लेकर भामह, दण्डी, वामन, आनन्दवर्धन, मम्मट और विश्वनाथ आदि आचार्यों के विचारों को आधार बनाया गया है। विशेष रूप से मम्मट द्वारा बताए गए यश, अर्थ, व्यवहारज्ञान, अनिष्ट से रक्षा, आनन्द तथा कान्तासम्मित उपदेश आदि प्रयोजनों के माध्यम से यह देखने का प्रयास किया गया है कि काव्य को भारतीय आचार्यों ने केवल आनन्द का साधन न मानकर व्यक्ति और समाज के जीवन से किस प्रकार जोड़ा है। साथ ही, काव्य के आनन्दात्मक, ज्ञानात्मक और शिक्षात्मक पक्षों के पारस्परिक सम्बन्ध पर भी विचार किया गया है।

वर्तमान समय में साहित्य के स्वरूप और उसके माध्यमों में निरन्तर परिवर्तन हो रहा है। डिजिटल साहित्य, सिनेमा और अन्य नए माध्यमों के विस्तार के बीच साहित्य की भूमिका को नए सन्दर्भों में समझने की आवश्यकता है। ऐसे समय में भारतीय काव्यशास्त्र में प्रतिपादित काव्य-प्रयोजन की अवधारणा आज भी साहित्य के आनन्द, संवेदना, ज्ञान और जीवनोपयोगिता को समझने के लिए महत्त्वपूर्ण आधार प्रदान करती है। अतः प्रस्तुत अध्ययन काव्य-प्रयोजन की परम्परा और विकास के साथ उसकी समकालीन प्रासंगिकता को भी रेखांकित करने का प्रयास है।

बीज शब्द: भारतीय काव्यशास्त्र, काव्य-प्रयोजन, आनन्द, रसास्वाद, व्यवहारज्ञान, उपदेश, जीवनोपयोगिता, समकालीन प्रासंगिकता।

The Depiction of Vasant Ṛtu in the Works of Kālidāsa

Aakanksha Parmar , Dr. Shweta Jejurkar

ABSTRACT

Vasant ṛtu, traditionally regarded as the season of renewal, beauty and love, occupies an important place in the poetry of Kālidāsa. In his works, spring is presented not merely as a change in season but as an aesthetic experience in which nature and human emotions are closely connected. The blossoming of flowers, fragrant breezes, singing cuckoos, humming bees, fresh greenery and pleasant climatic conditions form significant elements of Kālidāsa's poetic description of spring.

The present research paper aims to study the representation of Vasant ṛtu in selected works of Kālidāsa, particularly Ṛtusaṃhāra, Kumārasambhavam and Raghuvaṃśa. The study focuses on the natural features of spring and the poetic techniques through which Kālidāsa presents its beauty. Special attention is given to the relationship between Vasant ṛtu and śṛṅgāra rasa, as spring is often associated with love, attraction, beauty and emotional awakening.

The research follows a textual and analytical approach, examining selected verses from Kālidāsa's works in their literary context. It explores the use of nature imagery, poetic expressions and aesthetic elements that transform the physical characteristics of spring into expressions of human

emotions and rasa. The study also examines how the presence of Vasant ṛtu contributes to the emotional and aesthetic atmosphere of Kālidāsa's poetry.

The paper aims to show that Kālidāsa's depiction of Vasant ṛtu transcends a simple description of nature. Through his poetic imagination, spring becomes a meaningful medium for expressing the harmony between nature, human emotions and aesthetic experience.

Key Words: Kālidāsa, Vasant ṛtu, Ṛtusaṃhāra, Sanskrit Literature.

Exploring the Aesthetics of Bhakti Rasāyanam by Hari Suri

TANVI ATUL DESAI

The Śrīmad Bhāgavatam has inspired one of the richest commentarial traditions in Sanskrit literature, with scholars from Śrīdhara Svāmin to saints from almost every line of thought, devoting themselves to decode its meaning through grammatical devices, theological and philosophical interpretations. Despite the typical style of commenting, the Bhakti Rasāyanam of Śrī Hari Sūri stands out. Hari Sūri, also known as Haribābā Śivarāma Paḍhegāvaṅkara, presented this commentary in the eighteenth century, Nāsika. He served as a kīrtanakāra in the Kāḷarāma and Gorarāma temple and also made a disciple in the paramparā. The Nāradīya kīrtana paramparā is still continuing today in Mahārāṣṭra. It is the only known metrical commentary (chhandobaddha) on the Bhāgavatam, and received quite little scholarly attention. This paper addresses the problem of how a text that deliberately abandons the technical devices used for understanding the original text, but rather, is highly inclined to favour aesthetic experiences which is the major goal of Śrīmad Bhāgavatam (rasamālayam). Confining itself exclusively to Kṛṣṇa's Vṛndāvana pastimes, Hari Sūri employs over fifty meters, the profuse use of vyaṅgya method or suggestive meaning, and alaṅkāras such as śleṣa, utprekṣā, and atiśayokti etc. This paper mainly focuses on the Hindi translation of Hari Pārṣada Dāsa called Śruti Patri and Mādhava Śāstrī's Bhakti Rasāyanam with his short comments in Saṃskṛta. Both have done analysis of the text and explored the life of Haribābā Śāstrī too. Notably, Hari Pārṣada Dāsa composed a verse in honour of Hari Sūri in which he deepens the meaning of the title of the book, describing Bhakti Rasāyanam as that which acts as a medicine for curing the disease of kāma. The profuse usage of poetic devices has truly proven Śrīmad Bhāgavatam a rasamālayam and provides a relishing perspective of the Bhāgavatam for the connoisseurs of devotion.

Nature, Illusion and Divine Order: A Comparative Study of Kalidasa's Abhijñānaśākuntalam and Shakespeare's *The Tempest* in the Indian Knowledge System

SOMNATH PAUL

Within the broader framework of Indian Knowledge System (IKS), this paper presents a comparative study of Kalidasa's Abhijñānaśākuntalam and Shakespeare's The Tempest, stressing on interrelated themes of nature (external), illusion and divine order and focusing on cultural and historical contexts of these two seminal works. Kalidasa's Abhijñānaśākuntalam and Shakespeare's The Tempest are both romantic tragicomedies that explore love, loss, reunion, and forgiveness among other issues. Kalidasa while writing in the 4th–5th century CE weaved nature, spirituality, and human emotion into his play and Shakespeare writing in the period 1564–1616, curtailed spirituality altogether in The Tempest and introduced elements of magic in theatrical

spectacle. If Kalidasa emphasizes cosmic harmony and metaphysical unity, Shakespeare foregrounds human agency and dramatic tension. Both texts however, though emerging from distinct cultural and historical contexts, explore the relationship between human experience and cosmic principles through symbolic and philosophical narratives.

In Abhijñānaśākuntalam, nature, portrayed as living and sacred presence fostering and human emotions, reflects the Indian worldview of harmony between the individual and the cosmos. The concept of illusion (māyā) in this play operates subtly through memory, curse, and recognition, ultimately leading to restoration and spiritual fulfillment in accordance with dharma. In contrast, The Tempest presents nature as both a physical and psychological space, controlled and manipulated by Prospero's magical power. Illusion here takes the form of theatrical enchantment, raising questions about authority, knowledge, and transformation. By placing these works within the lens of IKS, the study highlights how Abhijñānaśākuntalam embodies indigenous epistemological concepts such as ṛta, dharma, and the unity of existence, while The Tempest reflects a more human-centered approach to power and reconciliation. The comparative analysis reveals both convergences and divergences in their treatment of reality, morality, and cosmic order.

Keywords: Indian Knowledge System (IKS), Nature, Illusion (Māyā), Dharma and Ṛta.

ऋतु संहार" द्वारा वर्णित ग्रीष्म ऋतु

मानसी राजेशभाई पटेल, Arpita Paul

This study undertakes a multidimensional analysis of Mahārāṇā Kumbha's *Rasikapriyā* commentary on Jayadeva's *Gīta Govinda*, situating it at the intersection of musicology, rasa-śāstra, poetics, and commentarial style. Jayadeva's twelfth-century masterpiece, celebrated for its lyrical evocation of Kṛṣṇa's divine love, became a foundational text not only for devotional traditions but also for aesthetic theory and performance practice. Mahārāṇā Kumbha, the fifteenth-century ruler of Mewar and an erudite scholar, approached the *Gīta Govinda* with a unique synthesis of intellectual rigor and artistic sensibility. His commentary, *Rasikapriyā*, illuminates the text through four interrelated dimensions.

First, from a **musicological perspective**, Kumbha's observations on rāgas, tālas, and performance conventions reveal the practical embedding of Jayadeva's verses within medieval musical culture. Second, his engagement with **rasa-śāstra** demonstrates a sophisticated application of Bharata's and Abhinavagupta's aesthetic theories, interpreting the oscillation between *vipralambha* (separation) and *saṁyoga* (union) as the essence of *śṛṅgāra rasa*. Third, the **poetic dimension** of his commentary highlights Jayadeva's mastery of alaṅkāras, metrical patterns, and linguistic ornamentation, situating the text within the broader Sanskrit kāvya tradition. Finally, Kumbha's **commentarial style** itself deserves attention: blending scholastic precision with devotional fervor, his exegesis exemplifies the medieval Indian practice of integrating royal patronage, intellectual authority, and spiritual devotion.

By weaving together these strands, the present analysis underscores how Kumbha's *Rasikapriyā* (the complete aesthetic manual) not only interprets Jayadeva's verses but also refracts them through the prism of interdisciplinary knowledge. The commentary thus emerges as a cultural artifact that bridges textual aesthetics, musical performance, and devotional praxis. This study argues that Mahārāṇā Kumbha's contribution exemplifies the dynamic interplay of art, philosophy,

and devotion in premodern India, offering insights into how texts like the *Gīta Govinda* were received, reshaped, and celebrated across domains of knowledge and practice.

From Dramatic Representation to Inner Realization: A Comparative Study of the Four Commentary Models on Nāṭyaśāstra

Provasree Biswas Roy

Bharata's seminal aphorism—'*Vibhāvānubhāvavyabhicārisaṁyogād rasaniṣpattiḥ*'—serves as the foundational axis of classical Sanskrit poetics and aesthetic psychology. Central to the evolution of Sanskrit literary theory is the hermeneutic debate surrounding the semantic interpretation of connection (*saṁyoga*) and realization (*niṣpatti*). This paper examines the critical transition among the four primary philosophical commentators on the *Nāṭyaśāstra*, tracing the epistemological shift from objective external analysis to subjective interiorized consciousness. The study contrasts Bhatta Lollaṭa's realistic (*Mīmāṁsā*) framework of generation (Utpattivāda) and Shri Shankuka's logical (*Nyāya*) framework of inference (*Anukṛtivāda*) with the interiorized psychological models of Bhatta Nayaka and Abhinavagupta. Special attention is given to Bhatta Nayaka's introduction of universalization (*Sādhāraṇīkaraṇa*) through *Bhāvakatva-vyāpāra*, which strips emotional experience of personal spatio-temporal boundaries. The paper culminates in an analysis of Abhinavagupta's *Abhivyaktivāda*, grounded in *Pratyabhijñā*, which establishes rasa as the manifestation of latent emotional impressions (*vāsanā*) already present in the audience's consciousness. Through this trajectory, the paper demonstrates how Sanskrit aesthetics evolved from a model of dramatic representation into a sophisticated cognitive architecture of self-realization.

Keywords

Bharata Muni; Rasa-niṣpatti; Abhinavagupta; Aesthetic Consciousness; Sanskrit Poetics

काव्येषु भक्तिदर्शनम्: पण्डितराजजगन्नाथकृतपञ्चलहरीणाम् आलोके|

पंकज अरुण पवार

एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति इति श्रुत्यनुसारं हि एकमेव तत्त्वं प्रकटयितुं नैकानि शास्त्राणि, दर्शनानि, पुराणानि च भिन्नया विधया अभिसस्रुः| तथापि शास्त्रादीनां जटिलत्वात् क्वचित् दुर्बोधात् च सामान्यलोकस्य तत्र आदरः मन्दः दृश्यते| तदा तत्त्वचिन्तनं लोकाभिमुखीकर्तुं, सरसतया तत्त्वोपदेशार्थं च काव्यानां प्रणयनं जातं| तच्च सत्काव्यं पुरुषार्थचतुष्टयस्यापि हेतुः भवितुं अर्हति इति हि अभियुक्ताः मन्यन्ते| -

धर्मार्थिकाममोक्षेषु वैलक्षण्यं कलासु च / करोति कीर्तिं प्रीतिं च साधुकाव्यनिषेवणम् // इति /

अत एव भारतीये वाङ्मये भूरीणि भक्तिकाव्यानि दृश्यन्ते| भक्तेः दर्शनं काव्यद्वारा लोकाभिमुखीकृत्य उपस्थाप्यते| तत्र लौकिकानां भावनाः, विचाराः, समस्यादीनां भक्तेः दर्शनेन समाधानं पुरः स्थापयित्वा सुमहान् लोकोपकारः विधीयते| तत्रैव भक्तिदर्शनं तद्व्यावहारिकता च स्फुटीभवतः|

अद एव तथ्यं सविस्तरं निरूपयितुं यत्नः अस्मिन् शोधनिबन्धे विहितः| स्थालीपुलाकन्यायेन काव्यस्य परिशीलनार्थं, मतांशानाम् उदाहरणपुरस्सरं समर्थनार्थं च पण्डितराजजगन्नाथस्य भिन्नदेवतानिष्ठभक्तिपूर्णानां पञ्चलहरीणां परामर्शः क्रियते| तद्गता भक्तिः, तस्याः व्यावहारिकप्रासङ्गिकता च चिन्त्यते|

प्रमुखपदानि :- काव्यं, भक्तिः, दर्शनं, लोकाभिमुखं, व्यावहारिकता च|

पितमुण्डिभगीरथकृताया विजयेति काव्यादर्शटीकायाः मुख्यानि वैशिष्ट्यानि

दुर्गाप्रसादरथः

काव्यादर्शः न केवलं साहित्यशास्त्रस्य वैशिष्ट्यं विवक्षाति अपितु साहित्यशास्त्रप्रवेशाय जिज्ञासुनां मार्गदर्शनमपि करोति। ग्रन्थस्योपरि कतिपयानां विशिष्टटीकाग्रन्थानां समाहारः दृश्यते। तन्मध्यात् वादिजिह्वालविरचितस्य श्रुतानुपालिनी नाम्नी काचन टीका प्राचीनतमा। काव्यादर्शस्य प्राप्तटीकासु भगीरथकृता विजयाटीका अनावधिता असम्पादिता च। टीकेयं संक्षिप्ता सारगर्भिता च। प्रतीयते केवलं मुख्यविषयमाधारीकृत्य टीकेयं विरचिता। टीकायां नव्यन्यायभाषाशैली दृश्यते। पाण्डुलिप्यन्वेषणेन द्वे पाण्डुलिपी मया प्राप्तवान्। एका पाण्डुलिपि ओडिशा-राज्यसंग्रहालयतः प्राप्ता। अस्याः भाषा संस्कृतं तथा लिपि ओडिया। अन्येका Hill Musuem and Manuscript Library, अमेरिकातः प्राप्तवान्। अस्याः भाषा संस्कृतः लिपिः बंगला। प्रयुक्ता लिप्याः समय अष्टादशशताब्दी इति प्रतियते। पाण्डुलिपि इयं सम्पूर्णः सुविनिर्मलश्च।

पितमुण्डिभगीरथेन प्रणीतेयं टीका केवलं काव्यादर्शस्य सामान्यार्थप्रकाशनपरैव नास्ति, अपि तु दण्डेः काव्यशास्त्रीयसिद्धान्तानां सुस्पष्टतया प्रतिपादयितुं व्याकरणस्य, दर्शनस्य, कोशशास्त्रस्य, अलङ्कारशास्त्रस्य तथा पूर्वाचार्यप्रदर्शितस्य काव्यशास्त्रीयवाङ्मयस्य च यथास्थानमुपयोगं करोति। टीकाकारस्य व्याख्यापद्धतौ मूलग्रन्थस्य सूक्ष्मार्थोद्घाटनम्, कठिनपदानां व्युत्पत्तिविवरणम्, प्रसङ्गानुकूलार्थनिर्णयः, उदाहरणैः सिद्धान्तस्य सुस्पष्टीकरणं च विशेषतया दृश्यते। अत एव विजयेति टीका दण्डिनीयकाव्यदृष्टेः सम्यगवबोधाय महत्त्वपूर्णं साधनमिति प्रतिपादयितुं शक्यते।अस्य अध्ययनस्य प्रमुखोद्देश्यं विजयेति टीकायाः तादृशानां वैशिष्ट्यानां प्रकाशनमस्ति, येन सा केवलं व्याख्याग्रन्थत्वेन न सीमिता, अपि तु काव्यादर्शस्य परम्परायाः, तस्य विकासस्य, ग्रहणपरम्परायाश्च अध्ययनाय महत्त्वपूर्णः स्रोतः भवति। एवं पितमुण्डिभगीरथकृताया विजयेति टीकायाः अध्ययनं संस्कृतकाव्यशास्त्रीयटीकापरम्परायाः स्वरूपावबोधाय तथा दण्डिनीयकाव्यचिन्तनस्य परवर्तिव्याख्यापरम्परायाः समीक्षायै च महत्त्वपूर्णं योगदानं प्रददाति। प्रस्तुतशोधेन एतस्याः अपेक्षया अल्पपरिचितायाः टीकाकृतेः साहित्यशास्त्रीयं महत्त्वं प्रकाश्यते तथा संस्कृतकाव्यशास्त्रस्य इतिहासे तस्याः योगदानस्य सम्यग् मूल्याङ्कनं कर्तुं प्रयत्नः क्रियते

कविसमयविमर्शः

ज. हरिनारायणः

काव्येषु कवीनां यः सिद्धान्तः प्रसिद्धः स कविसमय इति कथ्यते। राजशेखरः स्वकीये काव्यमीमांसाभिधानग्रन्थे कविसमयं विस्तरेण प्रपञ्चयति। शोधलेखसारांशेऽस्मिन् राजशेखरेण प्रतिपादितं कविसमयं प्रस्तूय कतिपयेषु पद्येषु कविसमयानुसारं वर्णनानि निरूप्यन्ते।

प्रमुखाः शब्दाः काव्यमीमांसा, कविसमयः, कविसमस्य त्रैविध्यम्।

भारतीय सौंदर्य शास्त्र एवं काव्य शास्त्र

PRIYAMBADA KUMARI MISHRA

भारतीय सौंदर्य शास्त्र एवं काव्य शास्त्रीय चिंतन का चरम लक्ष्य केवल इंद्रियजन्य अथवा लौकिक मनोरंजन प्रदान करना नहीं, अपितु 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' के सार्वभौमिक एवं शाश्वत जीवन-दर्शन के माध्यम से परम आध्यात्मिक आनंद की प्राप्ति है। साहित्य एवं कला के सौंदर्यपरक मर्म को सूक्ष्मता से विश्लेषित करने हेतु भारतीय आचार्यों ने छः सुदृढ़ सैद्धांतिक स्तंभों (षड्-संप्रदाय) की स्थापना की है। इनमें आचार्य भरत मुनि का 'रस सिद्धांत' काव्य में भावपूर्ण रसानुभूति को साहित्य की आत्मा के रूप में प्रतिष्ठापित करता है, जबकि भामह का 'अलंकार' तथा वामन का 'रीति सिद्धांत' क्रमशः अभिव्यक्ति और शैलीगत वैशिष्ट्य का प्रामाणिक विवेचन करते हैं। इसके अतिरिक्त, आनंदवर्धन का 'ध्वनि सिद्धांत' व्यंग्यार्थ की महत्ता, कुंतक का 'वक्रोक्ति सिद्धांत' कलात्मक कथन की उपादेयता तथा क्षेमेन्द्र का 'औचित्य सिद्धांत' काव्य घटकों के मध्य आनुपातिक संतुलन निर्धारित करता है। भारतीय दार्शनिक दृष्टि बाह्य सौंदर्य की अपेक्षा आंतरिक आत्मानुभूति पर बल देती है, जहाँ 'साधारणीकरण' की प्रक्रिया के

माध्यम से सहृदय अपनी व्यष्टिगत सीमाओं से मुक्त होकर समष्टिगत चेतना में लीन हो जाता है। इस चरम भावावस्था में प्राप्त आनंद को ही शास्त्रों में 'ब्रह्मानन्द सहोदर' माना गया है।

भारतीय काव्य शास्त्र केवल एक समीक्षा पद्धति नहीं, बल्कि शब्द, अर्थ और संवेदनशीलता के माध्यम से मानव चेतना को परिष्कृत करने वाला एक अनुपम एवं समृद्ध विज्ञान है।

Can AI Be a Connoisseur? Negotiating Dhvani Theory and Phenomenological Aesthetics

Dr. Abhisek Ghosal

Abstract: The rise of AI opens up newer patterns of coexistential becoming, pushing scholars to reinterpret the interactions among cultural, social, ecological and political aspects of Life in newer ways. The continual advancement of AI steers critical thinkers to mull over the role of human consciousness in figuring out the phenomenological attributes of the world. Considering the reconstructive potentials of AI, this article seeks to examine AI's function as a connoisseur of aesthetic pleasure by means of negotiating Anandavardhana's Dhvani theory. It is by working out dialogic interactions between AI and phenomenological aesthetics conditioned by the aesthetic strands of Dhvani, this article critically evaluates whether AI stands fully capable of doing aesthetic appreciation of worldly phenomena while contemporary AI systems seem to outpace human intelligence in terms of efficacy and capacity. Whether AI can perform a connoisseur in the matters of the aesthetic realization of suggestion is critically taken up to call the aesthetic competence of AI into question. This article suggests the idea of an algorithmic connoisseur which AI embodies while performing a computational estimation of phenomenological aesthetic experience. Algorithmic connoisseurship of AI is critically measured in terms of putting it in contrast with human phenomenological perceptibility of aesthetic experience, thereby aiming at developing a constructive critique of AI's aesthetic capacities while taking recourse to Anandavardhana's Dhvani theory.

This article is split up into three segments: while the first segment teases out the exemplary potentials of AI while taking note of its intellectual incapacities, the second segment lays down the salient epistemic premises of Anandavardhana's Dhvani theory and finally, the third segment demonstrates how Anandavardhana's Dhvani theory can be reckoned to evaluate aesthetic capacities of AI while proposing algorithmic connoisseurship as a new variant of phenomenological perceptibility.

Keywords: Artificial Intelligence; Algorithmic Connoisseurship; Dhvani Theory; Phenomenological Aesthetics; Perceptibility

आचार्य हेमचन्द्र का रसविचार : परम्परा और मौलिकता का समन्वय

डॉ.ललितकुमार ए. पटेल

भारतीय काव्यशास्त्र के अनुसार साहित्य को '**कान्तासम्मितोपदेशः**' मानकर उपदेशप्रधान बताया है, किन्तु काव्य का अन्तिम लक्ष्य '**सद्यः परनिर्वृत्तिः**' अर्थात् लोकोत्तर आनन्द की प्राप्ति है, ऐसा माना है । आचार्य हेमचन्द्र भी इस बात का समर्थन करते हुए कहते है कि, '**काव्यमानन्दाय यशसे कान्तातुल्यतयोपदेशाय च**' इस आनन्द का शास्त्रीय नाम 'रस' है । भारतीय काव्यशास्त्र में रस को **काव्यात्मा** कहा गया है । भरतमुनि के नाट्यशास्त्र से लेकर भट्ट लोल्लट, शङ्कुक, भट्ट नायक, अभिनव गुप्त, विश्वनाथ और जगन्नाथ के रसगङ्गाधर तक रस-सिद्धान्त का विकास हुआ है । इसी परम्परा में १२वीं शती के जैन आचार्य हेमचन्द्रसूरि का 'काव्यानुशासन' एक महत्त्वपूर्ण सोपान है । हेमचन्द्र केवल साहित्यशास्त्री नहीं, बल्कि व्याकरणाचार्य, कोशकार, छन्दःशास्त्री, दार्शनिक और युगपुरुष

भी थे । उनके रसविवेचन में शास्त्रीय गाम्भीर्य के साथ जैन-दर्शन की नैतिक-आध्यात्मिक चेतना घुली-मिली है । प्रस्तुत लेख में उनके रसविचार का स्रोत, स्वरूप, अन्य आचार्यों से तुलना तथा मौलिक अवदान का ससन्दर्भ विवेचन किया गया है ।

महाभारते साहित्यदृष्ट्या आदिवासी पात्राणां परिशीलनम्

OMI SULANKI

Research Parameters (Introduction): महर्षिः वेदव्यास रचित महाभारतम् भारतीयवाङ्मयस्य महान् महाकाव्यम् वर्तते। अस्मिन् निषाद्, किरात्, वनवासी, हिडिम्बादयः आदिवासीपात्राणि साहित्यिकदृष्ट्या महत्त्वपूर्णं स्थानं वहन्ति। तथापि एतेषां पात्राणां साहित्यदृष्ट्या सम्यक् अध्ययनम् अल्पमेव दृश्यते। अतः प्रस्तुतशोधे एतेषां साहित्यिकस्वरूपस्य, चरित्रवैशिष्ट्यस्य तथा कथानके योगदानस्य अध्ययनं क्रियते।

Methodology: अस्मिन् शोधे वर्णनात्मक-विश्लेषणात्मक-पद्धतिः स्वीकृता। मूलस्रोतोरूपेण व्यासविरचितं महाभारतम्, तद्व्याख्यानग्रन्थाः, शोधग्रन्थाः तथा शोधलेखाः उपयुज्यन्ते। साहित्यदृष्ट्या पात्रविश्लेषणं च क्रियते। पात्राणां साहित्यिकस्वरूपस्य, चरित्रचित्रणस्य, रसभावस्य तथा सांस्कृतिकमूल्यानां तुलनात्मकदृष्ट्या विश्लेषणं क्रियते।

Data & Findings: अध्ययनेन ज्ञायते यत् एकलव्यः, हिडिम्बा, घटोत्कचः, हिरण्यधनुः इत्यादयः पात्राणि केवलं गौणपात्राणि न सन्ति। तेषां चरित्रेषु शौर्यम्, निष्ठा, स्वाभिमानः, सांस्कृतिकवैशिष्ट्यं तथा मानवीयमूल्यानि सशक्ततया प्रकाशितानि सन्ति।एतानि पात्राणि महाभारतकथानकस्य विकासे सौन्दर्यबोधस्य च समृद्धौ महत्त्वपूर्णं योगदानं ददति।

Conclusion: प्रस्तुताध्ययनं महाभारते आदिवासीपात्राणां साहित्यिकं महत्त्वं प्रकाशयति। एषः शोधः भारतीयसौन्दर्यशास्त्रस्य परिप्रेक्ष्ये महाभारतस्य नूतनव्याख्यां प्रस्तुत्य आदिवासी पात्राणां पुनर्मूल्याङ्कनाय महत्त्वपूर्णं योगदानं प्रदास्यति।

From Arthashastra to AI: Reimagining Modern Management through Ancient Indian Wisdom

Vanshu, Tamnna Devi, Dr. Ritwik Sahai Bisariya

Management thought is generally presented through a Western intellectual lineage beginning with scientific management, administrative theory, human relations, behavioural approaches and strategic management. However, questions concerning leadership, resource allocation, organisational discipline, governance, human conduct, accountability and collective welfare have been addressed in Indian intellectual traditions for centuries. This paper examines the management relevance of selected principles from Kautilya's Arthashastra and the Bhagavad Gita and explores their possible contribution to contemporary management in the age of artificial intelligence. The study adopts a qualitative, conceptual and comparative methodology. Selected Sanskrit verses concerning action, excellence, leadership and collective welfare are examined alongside concepts associated with Taylor, Fayol, Mayo, Maslow, Drucker, Porter and stakeholder theory. The paper argues that ancient Indian texts should neither be treated as direct historical equivalents of modern management theories nor reduced to inspirational quotations. Rather, they should be studied as indigenous intellectual resources whose concepts can enter into critical dialogue with contemporary management science. The analysis identifies important themes of disciplined action, skill in performance, leadership by example, self-regulation, strategic awareness, resource

management, governance and collective welfare. These themes acquire renewed relevance in an AI-enabled workplace where technological systems increasingly support recruitment, analysis, decision-making, knowledge work and organisational control. The paper proposes an Ancient Wisdom–Modern Management–AI Framework, in which ancient wisdom contributes purpose, ethics and responsibility; modern management contributes organisational science and evidence-based practices; and artificial intelligence contributes computational capability and decision support. The paper concludes that the future of management should not be conceived merely as AI-powered management, but as human-centred intelligent management, where technology enhances organisational capability without displacing human judgement, accountability, ethical responsibility and concern for collective welfare.

Keywords: Ancient Indian Wisdom; Arthashastra; Bhagavad Gita; Kautilya; Indian Knowledge Systems; Management Thought; Leadership; Strategic Management; Human Resource Management; Ethics; Artificial Intelligence; Responsible AI; Human-Centred Management

From Praja-Rakṣā to Sustainable Tourism: Reimagining Kauṭilya's Arthaśāstra for Local Community Governance in the Age of Overtourism

Yashi, Vidushi Rathore, Dr. Ritwik Sahai Bisariya

Tourism has become an important instrument of economic development, employment generation, cultural exchange and regional transformation. However, the rapid and concentrated growth of tourism in culturally significant, ecologically fragile and pilgrimage destinations has increasingly generated social, environmental and economic pressures commonly described through the concept of overtourism. Excessive visitor concentration can create congestion, pressure on water and land resources, waste accumulation, environmental degradation, inflation, displacement of local residents, commercialization of cultural practices and unequal distribution of tourism benefits. These developments raise a fundamental question concerning the purpose and direction of tourism governance: whether a destination should primarily be managed as a commercial tourism product or as a living social, cultural and ecological community.

In this context, Kauṭilya's Arthaśāstra offers an important conceptual resource for rethinking the relationship between governance, economic prosperity, resource management and the welfare of the people. Although the Arthaśāstra was composed in a substantially different historical, political and socio-economic context and cannot be described as a modern sustainable-tourism text, its emphasis on the welfare and protection of the praja, regulation of economic activity, supervision of resources, administrative responsibility and the relationship between the prosperity of the ruler and the prosperity of the subjects provides a significant conceptual foundation for contemporary discussion.

The present paper seeks to recontextualize the Kautilyan idea of praja-rakṣā within the contemporary discourse of sustainable tourism and overtourism. The study adopts a qualitative and conceptual methodology based on interpretation of selected principles of the Arthaśāstra and their dialogue with contemporary literature on sustainable tourism, destination governance, community participation and overtourism. The paper argues that sustainable tourism should be understood not merely in terms of environmental conservation or tourist satisfaction but as a broader system of community welfare, resource stewardship, cultural continuity, equitable economic participation and accountable governance. On this basis, the paper proposes a conceptual framework in which praja-rakṣā is reinterpreted as a principle of community-centred

tourism governance. The paper concludes that the future of sustainable tourism in India may benefit from an approach that places local communities at the centre of destination planning while simultaneously protecting ecological resources, cultural heritage and long-term economic resilience.

Keywords: Kauṭilya, Arthaśāstra, Praja-Rakṣā, sustainable tourism, overtourism, community governance, Indian Knowledge Systems, tourism policy, destination governance, local community.

Ancient Roots of Modern Value: A Conceptual Study Connecting Dharmashastra and Arthashastra with Brand Equity Theory

Deepali Deepshikha Sahoo and Dr. Babita Yadav

Trust, perceived quality, and reputation sit at the heart of how modern marketing scholars explain brand equity assets that a firm cultivates deliberately in a consumer's mind. Long before Aaker (1996) and Keller (1993) gave these ideas their present vocabulary, however, ancient Indian texts were already grappling with a closely related problem: how to make sure that buyers could trust what sellers offered them. This paper looks at that older conversation, tracing connections between the Dharmashastra and Arthashastra traditions and contemporary customer-based brand equity theory. Dharmashastra's vyavahara provisions required rulers to fix a just price (nyayya mulya) and keep watch over merchants, guarding against adulteration and short measure in ways that foreshadow what today's literature calls brand trust and perceived quality. Kautilya's Arthashastra goes further still, describing officials such as the Panyadhyaksha who inspected goods and regulated prices in the name of yogakshema, the ruler's duty to secure the welfare of ordinary people an idea that resonates with the equity concerns built into modern market interventions. Perhaps the clearest parallel lies in the Arthashastra's treatment of kirti or yashas, the reputation a trader earns through honest, consistent dealing, which reads almost like an early sketch of what brand trust means in current marketing scholarship. Drawing on comparative textual analysis, the paper proposes a framework linking four classical ideas to four recognised brand equity dimensions, and suggests that brand equity, far from being a purely modern invention, continues a much older Indian effort to make commercial trust dependable.

Keywords: Dharmashastra, Arthashastra, Kautilya, brand equity, brand trust, perceived quality, nyayya mulya, yogakshema, Indian Knowledge Systems, consumer trust.

A Review of Management Principles in the Light of the Bhagavad Gita: Integrating Classical Management Functions with Ancient Indian Wisdom

Taniya Choudhary and Dr. Ritwik Sahai Bisariya

Management plays a vital role in achieving organisational objectives through the effective utilisation of human, financial and physical resources. Classical management identifies five major functions: planning, organising, staffing, directing and controlling. In contemporary organisations, these functions are increasingly considered alongside ethical leadership, employee motivation, emotional intelligence and responsible decision-making. The *Shrimad Bhagavad Gita*, an important text of Indian philosophical thought, offers insights into duty, disciplined action, self-management, leadership by example and equanimity. These concepts provide a philosophical perspective for examining the principles and practices of modern management. This review paper explores the relationship between the five classical functions of management and selected teachings of the Bhagavad Gita. It also examines how concepts such as Karma Yoga, Swadharma,

self-discipline and balanced judgement can inform managerial practices. The paper adopts a conceptual, narrative review approach based on established management literature and interpretations of the Bhagavad Gita. The analysis suggests that the text offers useful ethical and behavioural perspectives that can complement conventional management frameworks. However, these connections should be understood as interpretive applications rather than direct equivalents of modern management theories. The paper concludes that integrating classical management principles with relevant philosophical insights may encourage more responsible leadership, purposeful work, employee development and ethical organisational practices. Further empirical research is required to assess the practical effectiveness of these applications in contemporary organisations.

Keywords: Bhagavad Gita, management principles, planning, organising, staffing, directing, controlling, Karma Yoga, ethical leadership, organisational effectiveness.

धर्मशास्त्र में पारिवारिक प्रबंधन

नम्रता

धर्मशास्त्र भारतीय जीवन दर्शन का एक बहुत ही महत्वपूर्ण अंग है। इसमें व्यक्ति, समाज और परिवार को किस प्रकार एकजुटता के साथ चला सकते हैं उसके नियम और आदर्श को बताया गया है। अपितु परिवार भारतीय संस्कृति की मूल इकाई मानी जाती है, और धर्मशास्त्र में इसके प्रबंध को अत्यंत महत्व दिया गया है। धर्मशास्त्र न केवल धार्मिक कर्तव्यों के बारे में बताता है, बल्कि सामाजिक, नैतिक एवं व्यावहारिक जीवन को संतुलित करने के लिए भी मार्गदर्शन प्रदान करता है।

पारिवारिक प्रबंध का तात्पर्य है- परिवार के सदस्यों के बीच कर्तव्यों का विभाजन, आपसी सम्बन्धों का संतुलन, अनुशासन, नैतिकता और सामंजस्य स्थापित करना।

धर्मशास्त्रों में माता-पिता, पति-पत्नी, गुरु-शिष्य तथा भाई-बहनों के बीच सम्बन्धों के लिए स्पष्ट नियम निर्धारित किए गए हैं।

Revisiting the Arthashastra: Kautilyan Economic Governance for Modern Structural Crises: *Frameworks for Inflation Control, Market Stabilization, and Fiscal Integrity*

Tadigadapa Praveen

Executive Summary: The Yogakshema Paradigm

Modern global economies are currently grappling with severe structural challenges—chronic fiscal deficits, corporate greedflation, cartel price gouging, currency debasement, and recurring supply chain shocks. Far from being unprecedented, these economic dilemmas were systematically diagnosed and resolved over two millennia ago by **Kautilya** in the classical treatise, the *Arthashastra*.

Centered on the overarching ideal of **Yogakshema**—defined as sustainable wealth creation coupled with equitable public welfare—Kautilya formulated pragmatic institutional mechanisms that directly address contemporary economic volatility and structural vulnerabilities.

आपद्धर्मः - एकं परिशीलनम्।

लक्ष्मीरमणः वें गुर्जलवारः।

भारतीयपरम्परायां धर्म इति शब्दः न केवलं पारलौकिकाश्रेयसे अपि तु ऐहलौकिकव्यवस्थायाः स्थैर्याय कल्प्यते। तत्र उत्सर्ग नाम सामान्यनियमः इत्यस्य विरोधे यदा असाधारण्येन जीवनस्य राज्यस्य वा विनाशोपस्थितः तदा धर्मशास्त्रकारैः आपद्धर्मः निरूपितः। प्रस्तुतशोधनिबन्धे एषः मौलिकः प्रश्नः उपस्थाप्यते यत् किमापद्धर्मः सर्वदा एकरूपः आसीदुत कालानुरूपं तस्य संस्थागतं स्वरूपं रूपान्तरितम्? अस्य विषयस्य परिचयनार्थं महाभारतमहाकाव्यस्य शान्तिपर्वः कौटिलीयम् अर्थशास्त्रं कमलाकरभट्टकृतः निर्णयसिन्धुः तथा काशीनाथोपाध्यायकृतः धर्मसिन्धुः एते चत्वारः आधारस्तम्भाः स्वीकृताः। प्रस्तुतशोधस्य प्रस्तुतिः एतदर्थं क्रियते यत् पारम्परिकस्मृतिशास्त्रस्य आधुनिकविधिकसिद्धान्तैः सह संवादः स्थापयितुं शक्येत यच्च कार्यं पूर्वतनैः विद्वद्भिः ग्रन्थचतुष्टयमेकत्र एकीकृत्य नैव विहितम्। अत्र पाठालोचनात्मिका ऐतिहासिकतुलनात्मिका मीमांसासिद्धान्ताश्रिता च शोधप्रविधिः अनुसृता।

आधुनिक शोधेषु महाभारतस्य आपद्धर्मः केवलं दार्शनिक नैतिक दृष्ट्या, कौटिल्यस्य अर्थशास्त्रं केवलं कूटनीतिदृष्ट्या, निर्णयसिन्धुधर्मसिन्धौ च केवलं स्मार्तकर्मकाण्डदृष्ट्या पृथक्पृथकध्यीते। चतुर्णां ग्रन्थानां समन्वयपूर्वकम् आपद्धर्मस्य विधिकविकासक्रमः अत्र वर्णितः। आपद्धर्मः महाभारते नैतिकसङ्कटस्य निवारको आसीत्, स एव अर्थशास्त्रे सार्वभौमराज्यस्य वित्तीयप्रशासनिक आपत्कालविधिः जातः। अनन्तरं मध्ययुगीननिबन्धग्रन्थयोः स एव धर्मः यवनशासने राज्यसंरक्षणाभावात् वैयक्तिकाचार प्रायश्चित्तसंकोचे पर्यवसितः। एतस्य ऐतिहासिक विधिक प्रक्रियायाः प्रकटीकरणमेवास्य विषयस्यौचित्यं सिध्यति।

प्राचीनभारतीयविधिशास्त्रस्य स्पष्टीकरणम् अधुनातने विधिशास्त्रे कथम् आपत्कालीनविधानमुच्यते, तस्य मूलभूतं दार्शनिकं रूपं भारतीयपरम्परायां कीदृशमासीत् इत्यत्र स्पष्टीभवति। मीमांसान्यायानां व्यावहारिकप्रयोगेषु मुख्यकल्पानुकल्पप्रतिनिधिन्यायानां धर्मशास्त्रे विधिकप्रयोगस्य सूक्ष्मज्ञानं वर्तते। ऐतिहासिकगतिशीलतायाः उद्घाटनं सनातनधर्मः अपरिवर्तनीयः जडश्चेति पाश्चात्त्याक्षेपस्य खण्डनं कृत्वा धर्मस्य देशकालपरिस्थितिसापेक्षं गत्यात्मकं रूपं च सप्रमाणं प्रतिपाद्यते। महाभारतात् महाकाव्यकालः कौटिल्यं मौर्यकालः ततश्च निर्णयसिन्धुं सप्तदशशतकमं धर्मसिन्धुमष्टादशशतकं यावत् सिद्धान्तस्य संकोचविस्तारयोः कालक्रमेण विश्लेषणम् क्रियते।

गवेषणया इयं निष्पत्तिः आगच्छति यदापद्धर्मस्य स्वरूपे युगे युगे महती वैचारिकी क्रान्तिः संजाता। महाभारते यः आपद्धर्मः जीवनचरित्ररक्षार्थं दार्शनिकनैतिकसङ्कटस्य समाधानरूपः आसीत् स एव कौटिल्येन राज्यकोश सैन्य संरक्षणाय कठोर प्रशासनिकविधेः रूपेण संस्थागतः कृतः। तदनन्तरं हिन्दूसार्वभौमत्वस्य विलोपे सति मध्ययुगीनयोः निर्णयसिन्धु धर्मसिन्ध्वोः स एव विधिक आपद्धर्मः राज्यक्षेत्रात् निष्क्रम्य पुनः सामाजिक कर्मकाण्डे अशौचे श्राद्धे द्रव्यप्रतिनिधौ कलिवर्ज्यनिषेधैः सह प्रायश्चित्तलाघवस्य सिद्धान्तरूपेण प्रतिष्ठितः। एतेन कालक्रमेण संजातेन सिद्धान्तपरिवर्तनेन ज्ञायते यत् सनातनधर्मस्य विधिकपरम्परा न तु प्रातिलोम्येन स्थिरा अपि तु देश काल पात्रानुगुणं सर्वथा गत्यात्मिका वर्तते।

बीजशब्दाः- आपद्धर्मः, शान्तिपर्व, कौटिलीयम् अर्थशास्त्रम्, निर्णयसिन्धुः, धर्मसिन्धुः, कोशाभिसंहरणम्, कलिवर्ज्यम्, प्रतिनिधि-न्यायः, विधिक।

चतुर्दशशताब्दे दक्षिणभारते माधवाचार्यानुसारं समाजे स्त्रीणां स्थितिः

श्री. सचिन डावरे,

ऐतिहासिककाले समाजे स्त्रीणां स्थितिः कीदृशी आसीत् इति दृष्ट्वा तत्कालीन-समाजस्य प्रगतविचाराः कथम् आसन् इति निर्धारयितुं शक्यते। 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः' इति उक्तिः नारीणां सम्मानयुक्तं स्थानं दर्शयति।

इतिहासे यस्मिन् समाजे स्त्रीणां स्वातन्त्र्यं दृश्यते तत्र तस्मिन् काले सः समाजः प्रगतसमाजः इति मन्यन्ते विद्वांसः। अतः यदा स्त्रीषु नैके बन्धनानि दृश्यन्ते तदा तस्य समाजस्य प्रगतिः अवरुद्धा आसीत् इति वक्तुं शक्यते। माधवाचार्यः चतुर्दश शताब्दे दक्षिणभारते विजयनगरसाम्राज्ये आविर्भूतः महान् दार्शनिक-विद्वान् आसीत्। वैदिकपण्डितः, परिव्राजकः, विजयनगरसाम्राज्यस्य प्रधानमन्त्रिः, तथा च जीवनस्य उत्तरकाले शृंगेरी पीठस्य आचार्यः इति तस्य परिचयः कारयितुं शक्यते। विजयनगरसाम्राज्यस्य प्रधानमन्त्रिरूपेण सः कार्यरतः आसीत्। तेन अनुभवेन सः 'पराशरमाधवः' इति पराशरस्मृतेः व्याख्यानग्रंथम् सः अलिखत्। तस्मिन् ग्रंथे समाजस्य व्यवहारः तस्मिन् काले कथम् आसीत् इति अवगन्तुं शक्यते। समाजे स्त्रीणां स्थानं कथम् आसीत् इत्यस्मिन् विषये पराशरमाधवस्य व्याख्यानं पठित्वा समाजे स्त्रीणां स्वातन्त्र्यं बन्धनं च अवगन्तुं शक्यते। तस्मिन् काले स्त्रीणां धर्मबन्धनानि तु दृश्यन्ते तथापि स्त्रीणां स्वैराचारस्य विचारः पराशरमाधवे कृतः। माधवाचार्यः स्त्रीणां स्वैराचारवर्तनं निषेधयति। तथापि याः स्त्रियः स्वैराचारेण विहिताचारकर्माणि न पालयन्ति, तासां कृते प्रायश्चित्तकर्माणि माधवाचार्यः विदधाति। तानि प्रायश्चित्तकर्माणि दृष्ट्वैव समाजे स्त्रीषु धर्मबन्धनस्य शैथिल्यम् आधिक्येन अवर्धत इति ज्ञायते। स्त्रीणां कृते विधिनियमाः कथं आसन् इति दृष्ट्वैव समाजे स्त्रीणां स्थितिः कल्पयितुं शक्या। एतस्मिन विषये वयम् अग्रीमाः बिन्दवः पश्यामः। तेषु नारीणां कर्तव्यानि, द्विविधा गर्भप्राप्तिः, कुण्डगोलकः, जारः, पुत्रभेदाः, परिवित्तिः, दिधिषु, स्त्रियः पुनर्विवाहः, मृते भर्तरि स्त्रियाः देहपरित्यागः आदि विषयेषु चर्चां कुर्मः। एतेन चतुर्दश शताब्दे दक्षिणभारते स्त्रीणां स्थितिः कथम् आसीत् इति ज्ञास्यामः।

धर्मशास्त्रेषु कौटिलीयार्थशास्त्रे च स्त्रीधनस्य स्वामित्वाधिकारः संरक्षणञ्च आधुनिक-विधिव्यवस्थया सह तुलनात्मकमध्ययनम्

Dr. Suman K.S, Jaya Barman

प्राचीनभारतीयसमाजे च विधिव्यवस्थायां नार्याः सम्पत्तौ अधिकारस्य क्षेत्रे 'स्त्रीधनम्' इति विषयः अतीव महत्त्वपूर्णः अस्ति। 'स्त्रीधनम्' इति शब्दः पदद्वयस्य सम्मिश्रणेन निर्मितः अस्ति - स्त्री + धनम्। स्त्री अर्थात् नारी, धनम् अर्थात् सम्पत्तिः अर्थः वा बोध्यते। अतः सामान्यतः नार्याः वा स्त्रियः स्वकीया सम्पत्तिः एव स्त्रीधनरूपेण गण्या भवति। मनुस्मृतौ, याज्ञवल्क्यस्मृतौ, नारदस्मृतौ इत्यादिषु धर्मशास्त्रग्रन्थेषु तथा च कौटिलीयार्थशास्त्रे स्त्रीधनस्य अवधारणा, स्वरूपम्, उत्पत्तिः, प्रकारभेदाः, नार्याः स्वामित्वाधिकारः संरक्षणव्यवस्था चेति विषयेषु विधयः दत्ताः सन्ति। मनुस्मृतेः नवमे अध्याये षड्विधं स्त्रीधनम् उल्लिखितम् अस्ति - *"अध्यग्न्यध्यावाहनिकं दत्तं च प्रीतिकर्मणि। भ्रातृमातृपितृप्राप्तं षड्विधं स्त्रीधनं स्मृतम्"* ॥ (९.१९४)

अर्थात् विवाहे अग्नेः समक्षं प्राप्तम्, पत्युः गृहे नयनकाले प्राप्तम्, स्नेहात् दत्तम् तथा च भ्रातुः, मातुः, पितुः च सकाशात् प्राप्ता सम्पत्तिः स्त्रीधनस्य षड्प्रकाराः कथ्यन्ते।

एतदतिरिक्तं याज्ञवल्क्यस्मृतौ (व्यवहाराध्याये) स्त्रीधनविषये उक्तम् अस्ति –

"पितृमातृपतिभ्रातृदत्तमध्येग्न्युपागतम्। आधिवेदनिकाद्यं च स्त्रीधनं परिकीर्तितम्" ॥ (२.१४३)

"बन्धुदत्तं तथा शुल्कमन्वाधेयकमेव च" । (२.१४४)

अर्थात् पित्रा, मात्रा, पत्या, भ्रात्रा च दत्ता सम्पत्तिः, विवाहकाले अग्नेः समक्षं प्राप्ता सम्पत्तिः, पत्या आधिवेदनिकरूपेण (द्वितीयविवाहे) अथवा बन्धुभिः दत्ता सम्पत्तिः, शुल्कम् अन्वाधेयं च एतत् सर्वं स्त्रीधनरूपेण परिगणितम् अस्ति।

एतदतिरिक्तं कौटिलीय-अर्थशास्त्रस्य तृतीय-अधिकरणस्य (धर्मस्थीयम्) द्वितीयाध्याये स्त्रीधनस्य व्याख्या प्रकारभेदाश्च आलोचिताः सन्ति -

"वृत्तिराबन्ध्यं वा स्त्रीधनम्। परद्विसाहस्रा स्थाप्या वृत्तिः। आबन्ध्यानियमः" । (३.२.१४-२५)

उभयोः शास्त्रयोः एव स्त्रीधनस्य विषये नारीणां स्वातन्त्र्यम् पूर्णस्वामित्वाधिकारः च स्वीकृतः अस्ति। अस्य तुलनात्मक-अध्ययनस्य मुख्यमुद्देश्यम् अस्ति - धर्मशास्त्रस्य नैतिक-धार्मिक-दृष्टिकोणस्य तथा अर्थशास्त्रस्य राष्ट्रीय-व्यवहारिक-दृष्टिकोणस्य आलोके स्त्रीधनस्य स्वरूपस्य न्यायिक-संरचनायाः च वैषम्यं सामञ्जस्यं च उद्घाटनम्।

अतः प्राचीन-स्त्रीधनस्य अवधारणा न केवलं ऐतिहासिकः विषयः, अपि तु आधुनिकसमाजे नार्याः सम्पत्त्यधिकार - प्रतिष्ठापनस्य, वैवाहिकन्यायिकी-संरक्षणस्य तथा आर्थिक-स्वावलम्बनस्य अर्जने एकं शक्तिशाली सामाजिकन्यायिकी च भित्तिः अस्ति।

कूटशब्दाः (Keywords) -स्त्रीधनम्, धर्मशास्त्रम्, मनुस्मृतिः, याज्ञवल्क्यस्मृतिः, कौटिलीय-अर्थशास्त्रम्, स्वामित्वाधिकारः, न्यायिक-संरक्षणम्।

Four Pillars

Prof. D. Pramod

The Vedic scriptures have well defined the purpose of life. They clearly mentioned the complicated human body structure and erected on a complex composition of four fundamental pillars - Dharma, Artha, Kama, and Moksha- known as Purusharatas. They are inseparable. If the interconnection among the four pillars are ruined or disconnected, the man gets trapped in the material world and moves randomly in the birth and death cycle in different living forms. It may take hundreds and thousands of births or may not take to attain the human form again. If the main pillar Dharma, is not constructed or cultivated properly, the other two pillars, Artha and Kama, get infected badly; attaining the fourth pillar is ruled out. In case anyone meticulously follows Dharma, he can automatically cross over Artha and Kama, and attain moksha. The Kali Yuga is highly tamasic nature and is more fascinated and drawn towards sensual pleasures of the body - name and fame in illegal way, unethical activities and corruptive practices; the people barely think of sattvic nature and the path of liberation.

This paper deals with the importance of Purusharatas and their inter-connectivities in success or failure of attaining moksha and iconic people who attained and reached the Supreme Abode.

Keywords: Purpose of life, purusharatas, modes of nature, kaliyuga, ethical and unethical activities.

प्राचीन भारतीय चिंतन में राजधर्म और लोककल्याण: विकसित भारत @2047 के सन्दर्भ में प्रासंगिकता

संजय कुमार मीणा, प्रतिज्ञा पारीक

प्राचीन भारतीय राजनीतिक चिंतन में राजधर्म और लोककल्याण राज्य-व्यवस्था के मूल आधार माने गए हैं। भारतीय परंपरा में राजसत्ता को केवल शासन एवं अधिकार का माध्यम न मानकर प्रजा की सुरक्षा, न्याय, समृद्धि और सामाजिक व्यवस्था के संरक्षण का उत्तरदायित्व सौंपा गया। अर्थशास्त्र, मनुस्मृति तथा महाभारत के शांतिपर्व जैसे ग्रंथों में राजा के कर्तव्यों, प्रजाहित और लोककल्याण पर विशेष बल मिलता है। कौटिल्य का दृष्टिकोण शासन को प्रजासुख से जोड़ता है—"प्रजा सुखे सुखं राज्ञः, प्रजानां च हिते हितम्।" यह विचार शासन की सफलता को जनहित और सामाजिक समृद्धि से संबद्ध करता है। वर्तमान समय में विकसित भारत @2047 का लक्ष्य आर्थिक प्रगति के साथ सामाजिक न्याय, समावेशी विकास, सुशासन, आत्मनिर्भरता और सतत विकास पर बल देता है। इस संदर्भ में प्राचीन भारतीय राजधर्म की लोककल्याणकारी अवधारणाओं का अध्ययन समकालीन शासन-दृष्टि को समझने के लिए महत्वपूर्ण है। यह शोध-पत्र राजधर्म और लोककल्याण की प्राचीन अवधारणाओं का विश्लेषण करते हुए उनके समकालीन संदर्भों तथा विकसित भारत @2047 की विकास-दृष्टि के साथ उनके वैचारिक संबंध को रेखांकित करता है।

प्रमुख शब्द :राजधर्म, लोककल्याण, प्राचीन भारतीय चिंतन, कौटिल्य, प्रजाहित, सुशासन, विकसित भारत @2047

धर्म, दण्ड और प्रायश्चित्त: आधुनिक दण्ड-व्यवस्था में धर्मशास्त्रीय न्यायचिन्तन की पुनर्स्थापना

डॉ. अंजली गौतम

भारतीय दण्ड-व्यवस्था संकट में है। *Prison Statistics India 2024* के अनुसार कारागारों की राष्ट्रीय अधिभोग-दर 112.7% थी और कुल बंदियों में 72.6% विचाराधीन थे। प्रश्न यह है कि धर्म, दण्ड और प्रायश्चित्त पर आधारित धर्मशास्त्रीय न्यायचिन्तन औपनिवेशिक विधिक पुनर्संरचना के दौरान कैसे विस्थापित हुआ, उसकी नई व्याख्या हुई और उसे नए ढाँचे में ढाला गया, और आज उसके मूल सिद्धान्तों की पुनर्स्थापना किस रूप में सम्भव है।

शोध-पद्धति: मनुस्मृति, याज्ञवल्क्यस्मृति, गौतम धर्मसूत्र, कौटिलीय अर्थशास्त्र, महाभारत, उपनिषद् और योगसूत्र का अध्ययन मेधातिथि, हरदत्त, विज्ञानेश्वर आदि की भाष्य-परम्परा तथा मीमांसा के षड्लिङ्ग-आधारित तात्पर्य-निर्णय के आलोक में किया गया है। साथ ही औपनिवेशिक अनुवाद, वर्गीकरण और संहिताकरण का ऐतिहासिक विश्लेषण तथा भारतीय न्याय संहिता 2023 सहित वर्तमान विधि से तुलनात्मक अध्ययन किया गया है

प्राचीनभारते रक्षाव्यवस्था परराष्ट्रनीतिश्च विवेचनम्

देवसुजन-मुखार्जी

भारते हि राजनैतिकचिन्तनस्य स्वीया परम्परास्ति यत् पाश्चात्यराजशास्त्रस्य अपेक्षया निश्चितरूपेण प्राचीनतरा सुसमृद्धतरा अधिक सुव्यवस्थिताश्च । मैक्सी-गेटलसदृशाः पाश्चात्याधुनिक लेखकोऽपि अर्थशास्त्रीयविचारेषु प्राचीनभारतस्य योगदानं स्वीकुर्वन्ति । भारतस्य राजनैतिकेतिहासः पाश्चात्येतिहासात् प्राचीनतर इति मैक्सीवर्यस्य अभिमतम् । भारतीयार्थशास्त्रीयेतिहासे ग्रामीणलोकतन्त्रादारभ्य चन्द्रगुप्तस्याशोकस्य वा मौर्यसाम्राज्य -पर्यन्तम् नैकाः राजव्यवस्थाः दृश्यन्ते । मौर्यसाम्राज्यं सृष्टीयविंशशताब्दस्य मध्यभागपर्यन्तं स्थितस्य ग्रेटब्रिटेनसाम्राज्यादपि विस्तृततरमासीत् । तस्मिन् काले साम्राज्यमिदं विश्वस्यान्यतमं साम्राज्यमासीत् । यत्र साम्रज्यं परिलक्ष्यते तत्र एव रक्षाव्यवस्था परराष्ट्रनीति विषये सर्वदा चिन्तनीयम् ।

तदानीमाभ्यन्तरसुरक्षायां शासकस्य स्वस्य परिजनस्य च सुरक्षा अभिप्रेत आसीत् । बायिक सुरक्षायां राज्यस्य भौगोलिकी सुरक्षा स्वीक्रियते स्म । पुनश्च आभ्यन्तरसुरक्षायामात्मसुरक्षा प्रमुखेन स्वीकृता । आचार्यकामन्दकमते आत्मरक्षायां राज्ञा पुत्रादपि सावधानेन स्थातव्यं यतो हि अर्थलोभे सत्तालोभे च पुत्रेणापि पिता शासनादपसार्यते । लोककल्याणाय प्रजापालनाय स्वीकृताः विषयाः यथा- वर्णाश्रमधर्मस्य रक्षा, शास्त्रशिक्षा, शस्त्रशिक्षा, युद्धनीतिशिक्षा, शास्त्रविज्ञानं, नैतिकज्ञानप्रदानव्यवस्था, गजाश्वरथारोहण परिचालनकौशलं, मन्त्रस्य तात्पर्यज्ञानं मन्त्रगुप्तिश्च, साम-दान-भेद-दण्डसाधनानि , राजकर्मकराणां नियुक्तिः , चरविधानेन अमात्यादिराज्याधिकारीणां कार्यपर्यवेक्षणं, दण्डविधानं, आपत्तिनिरोधः, राज्यस्य कण्टकशोधनं, राजमण्डलस्वरूपज्ञानरक्षणं,सन्धिविग्रहादिषाड्गुण्यनीतिपालनं,खनि-द्वीप-सेतु-वन-वाणिज्यिक -पथप्रभृतिराजकीयवृत्तीनां यथायथपरिपालनं , कोषव्यवस्था , न्यायपन्थावलम्बनमित्या -दिव्यवस्थाः कर्तव्याः ।

सूचकशब्दः- रक्षाव्यवस्था, परराष्ट्रनीति, राजनीति, शासनव्यवस्था, सुरक्षा, दण्ड, राज्यस्य

धर्मशास्त्रे नारीधर

Dr. Medha Kumari

चिरवन्दनीया अभिनन्दनीया धर्मशास्त्राधारीभूता भारतीयसंस्कृतिः विश्वे अद्वितीया। भारतीय-संस्कृतौ वैदिककालतः आरभ्य अद्य यावत् नारीपूजनीया वन्दनीया प्रशंसनीया भवति। नारी अस्माकं राष्ट्रस्य सर्वोत्तमा निधिरुपेण प्रतिष्ठिता सती परिवारस्य समाजस्य राष्ट्रस्य च कल्याणाय सदा यत्नशीला भवति इति दृश्यते।

नारी मर्यादा सर्वदा सर्वत्र सर्वथा सुरक्षितार्थं मानवसमाजः सचेतनशीलः आसीत् । प्राचीनभारते नारी परिवारात् वहिः अपि समाजकल्याणकरकार्येषु लिप्ता आसीदिति प्राप्यते । परन्तु कालान्तरे नारी स्त्री वा कदाचित् भोगवस्तु इति मन्यते स्म । कदाचित् गृहस्य चतुर्भित्तिषु निरुद्धा भवति स्म ,कदाचित् पुरुषः ताम् अवहेलातः क्रीडनकमात्रं कृतवान् । परन्तु भारतदेशः नारीं यथार्थं गौरवपूर्णं स्थानं दत्तवान्। नारीपुरुषौ जीवनरथस्य चक्रद्वयम् इति मत्वा तां समानाधिकारं प्रदत्तः। नारीं विना संसाररथः न प्रचलति । पुरुषस्य परार्धात्मा-परममित्र – धर्मार्थकाममूल-अर्धाङ्गिनीरूपेण सा विद्यमाना। धर्मादिकार्येषु तस्याः महनीया आवश्यकता वर्त्तते। नारी पुरुषतः उत्कृष्टतरा इत्यपि मन्यते।

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता।

यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः।।(मनुस्मृतिः)

संप्रति भारतवर्षे वीर साहसी मेधावी पवित्र सर्वोत्तमसंन्तान- निर्माणार्थं नारीसमाजः तत्परशीलः भवेत् । आधुनिकसमाजे नार्यः पाश्चात्यसभ्याताम् अनुकुर्वत्यः आत्मनिर्भरशीलाः भवन्ति परन्तु स्वधर्मशास्त्रस्य नियमं न पालयन्ति न पठन्ति च । एतेन भारतीयनारीणां मर्यादाहानीः भवति । अतः उच्यते -

स्वधर्मे निधनं श्रेयः परोधर्मो भयावहः ।।(श्रीमद्भगवद्गीता)

भगवतः श्रीकृष्णस्य वचनानुसारं (गीता 3/38) धर्माभिमानिनी भारतीयनारी धर्मशास्त्रेषु निर्देशितव्यवहारस्यानुसारं स्वधर्मपरिपाल्य इहलोकं परलोकं स्वदेशस्य महत्वं च रक्षायै प्रयत्नशीला भवेत् ।अस्मिन् प्रबन्धे भारतीयधर्मशास्त्रेषु नारीधर्मः कीदृशः वर्तते तदाधारीकृत्य नारीसमाजः स्वधर्मपालनाय पुरुषसमाजः तस्याः सुरक्षार्थं च प्रतिज्ञावद्धः भवेत् इति विषयाश्रित्य आलोचना अपेक्षते ।

कुञ्चिकाशब्दाः – स्वधर्म, परोधर्मः,पतिव्रताधर्म,संस्कृति,सभ्यता,नारीधर्म

Dūta Tradition in Sanskrit Literature and Its Relevance to Modern Indian Diplomacy

Dr. Jayshree Gamit

The tradition of the dūta (दूत) has an important place in Sanskrit literature and the philosophy of ancient India. A dūta was not simply a person who carried a message from one place to another. He had many responsibilities. He could act as a diplomat, negotiator, adviser, intelligence gatherer, and representative of the king. For this reason, a *dūta* was expected to be wise, honest, brave, and skilled in speaking.

The Rāmāyaṇa, Mahābhārata, Arthaśāstra, and many Sanskrit dramas describe the important role of the dūta in political and social matters. These works show that a good messenger needed knowledge, courage, patience, good judgment, and the ability to deal with difficult situations. He had to understand the purpose of his mission and present his message clearly without changing its meaning.

Although India's political system has changed greatly from the kingdoms of ancient times to the modern democratic republic, the basic idea behind the dūta has not completely disappeared. Many of its important functions can still be seen in modern diplomacy. The work of the Indian Foreign Service, diplomatic missions, cultural exchanges, humanitarian activities, and digital diplomacy reflects some of these older ideas in a new form. *Nīti*

The present study therefore examines the connection between the ancient *dūta* tradition and modern Indian diplomacy. It shows that several values associated with the *dūta* such as wisdom, communication, loyalty, negotiation, responsibility, and representation continue to have

importance in India's relations with other countries. Thus, the ancient Sanskrit tradition of the *dūta* is not merely a part of literary history; it also provides an interesting background for understanding the development of Indian diplomatic thought.

Keywords : Dūta; Indian Diplomacy; Arthaśāstra; *Nīti* ; political system

धर्मशास्त्रीय ग्रन्थों में गोवध एवं भारतीय समाज दर्शन

डॉ. हिमा गुप्ता

प्राचीन काल से ही भारतीय उपमहाद्वीप में गाय का विशेष महत्त्व रहा है। वैदिक काल में गाय को अत्यन्त पवित्र माना गया और गाय के संरक्षण को मानवीय आदर्शों का प्रतीक माना गया। यह धन और समृद्धि की प्रदाता और अमृत का स्रोत मानी गई। वैदिक साहित्य में गाय की प्रशंसा और प्रार्थना अनेक सूक्तों में की गई है और उसके प्रति देवताओं के समान सम्मान प्रकट किया गया है तथा उपदेश दिया गया है कि गाय सदैव अवध्या है। ऋग्वेद के दसवें मण्डल के 101वें सूक्त के ऋषि जमदग्नि भार्गव है और देवता गौ है। इस सूक्त में ऋषि गौ की विशेषताएँ बता रहे हैं कि गौ रुद्रों (प्राणशक्ति) की माता स्वरूप है और वसुओं (ऐश्वर्य शक्ति) की पुत्री है तथा आदित्यों (सृष्टि की धारक शक्ति) की भगिनी है। यह अमृतत्व (स्वास्थ्य) का केन्द्र और स्रोत है। अतः विचारशील मनुष्य को उसका वध कभी नहीं करना चाहिये।

ऐसी अवध्या गौ की प्रशंसा करते हुए पुनः ऋषि भारद्वाज कहते हैं कि वह मनुष्य के स्वास्थ्य, सौंदर्य, सुख-समृद्धि और समग्र कल्याण करने वाली पौरुष, शक्ति और पोषण का जीवंत स्रोत है। अथर्ववेद में ऋषि ब्रह्मा (भृग्वंगिरा) देवता धेनु की प्रशंसा करते हुए उसे सभी प्रकार की समृद्धि का मूल स्थान कहते हैं। इसी प्रकार एक अन्य मन्त्र में ऋषि गायों को कल्याणकारी कहते हुए उनके संवर्धन, सुरक्षा, प्रेम और सम्मान का संदेश देता है। यही नहीं दिव्य गुणों से युक्त जिस वाक् शक्ति से मनुष्य सम्पन्न है, सभी प्राणि जिस शक्ति के कारण संवाद कर पाते हैं, उस वाणी की तुलना कामधेनु गाय से करते हुए ऋषि भार्गव प्रार्थना करते है कि उसके द्वारा इच्छित ऐश्वर्य और ऊर्जा प्रदान करने वाली बनें।

The Psychology of Deception, Trust, and Information Gathering: A Behavioral Analysis of Guptacharas in Kautilya’s Arthashastra

Ashlesha Mane

Kautilya’s Arthashastra presents a sophisticated intelligence architecture wherein information gathering (Gudhapurusha-pranidhi) functions as an applied framework of state-sponsored behavioral psychology. While existing scholarship predominantly addresses the bureaucratic classification and espionage duties of spies (Guptacharas), this study investigates the cognitive and psychological dimensions underlying their recruitment, persona construction, trust cultivation, and subversion tactics. Analyzing primary textual units from Book I (Vinayadhikarikam)—specifically Upadhassodhanam (testing of secret integrity), Gudhapurushotpatti (institution of spies), and Gudhapurushapranidhi (deployment of spies)—alongside Book XI (Samghavrittam), this paper demonstrates Kautilya’s empirical understanding of human vulnerabilities, social influence, and interpersonal dynamics.

The study categorizes the psychological mechanics employed by two foundational intelligence cadres: stationary agents (Samsthas, comprising Kapatika, Udasthita, Grihapatika, Vaidehaka, and Tapasa) and roving agents (Sancharas, comprising Sattri, Tikshna, Rasada, and

Bhikshuki). It highlights how agents exploit cognitive biases, religious reverence (e.g., the Tapasa leveraging the halo effect and Angavidya), socio-economic identity framing, and impression management to establish rapid rapport (Anuraga) and infiltrate target networks. Furthermore, the paper analyzes the psychological mechanics of covert subversion (Upajapa) and dissension (Bheda), examining how spies map populations into loyal (Akritya) and disaffected (Kritya) factions by targeting fear (Bhaya), greed (Artha), ambition (Kama), and ideological conviction (Dharma). Ultimately, the study establishes that Kautilyan statecraft (Rajasastra) operates on a profound psychological premise: state stability (Yogakshema) and sovereign power rely on systematically reading, influencing, and manipulating human behavior through structured deception and calculated trust.

Keywords: Kautilya, Arthashastra, Gudhapurusha, Upadha, Samstha, Sanchara, Upajapa, Behavioral Psychology,

The Living State: Kauṭilya's Saptāṅga Theory in Modern Governance

Dr. Chirashree Mukherjee

Contemporary public administration frequently struggles with severe institutional fragmentation and operational compartmentalization. Based on observed organizational patterns in modern governance, treating administrative departments as isolated units often diminishes overall state efficacy and societal resilience. To address this structural vulnerability, this paper investigates the *Saptāṅga* (seven-limbed) theory detailed in Kauṭilya's *Arthaśāstra*. Rather than viewing it merely as a historical artifact of ancient statecraft, this study frames it as an advanced precursor to modern Systems Theory.

The research employs a qualitative hermeneutical approach centred on primary textual exegesis. Instead of examining the entire text, the core approach focuses selectively on key concepts relating to statecraft, interpreting them without altering their original meaning. This structural-functional analysis specifically maps the systemic interdependence of the state's various organs.

Kauṭilya conceptualizes the state not as a mechanical aggregation of disparate offices, but as a dynamic, living organism comprising seven interdependent elements. As defined in the foundational statement: *स्वाम्यमात्यजनपददुर्गकोशदण्डमित्राणि प्रकृतयः॥* (*Arthaśāstra* 6.1.1). The findings demonstrate that these elements—the sovereign (*Svāmī*), bureaucracy (*Amātya*), territory (*Janapada*), infrastructure (*Durga*), treasury (*Kośa*), justice/military (*Daṇḍa*), and allies (*Mitra*)—function as a continuous, symbiotic feedback loop. A deficiency in one limb directly compromises the entire body politic.

Ultimately, this research establishes that the *Saptāṅga* model structurally resists the isolated operational mentality prevalent in 21st-century statecraft. Integrating this ancient paradigm into modern governance provides a scalable, interdependent matrix that moves beyond rigid proceduralism toward holistic institutional administration, bridging the critical gap between traditional Indian public administration and contemporary global governance.

Keywords Saptāṅga Theory; Kauṭilya; Systems Theory; Public Administration; Indian Knowledge Systems

भारतीयज्ञानपरम्परायाम् आचाराणां शास्त्रीयपरिशीलनम् एवम् आधुनिकसमाजे तन्महत्त्वम्

Dr. Trupti Mishra

विश्वसंस्कृतसाहित्यक्षेत्रे वैदिकसाहित्यं शिरोमणीति सर्व-स्वीकृतः। दुःखमयमिमं संसारमधिवसन्तः सर्वे जनाः सर्वदा स्वस्वसुखार्थं चेष्टन्ते। वेदेषु ज्ञान-विज्ञान-धर्म-दर्शन-सदाचार-संस्कृति–नैतिक–सामाजिक-राजनैतिकप्रभृतीनां जीवनोपयोगि-विषयाणां सन्निवेशोऽस्ति। तत्र स्मृति-पुराणादीनां मान्यत्वं तदनुगामित्वमेव अवतिष्ठते। अत्र मनसि प्रश्नः जायते यत्, आचारस्य स्वरूपं किम् पुनः आधुनिकभौतिकवादग्रस्ते समाजे तस्य का प्रासङ्गिकता इति। धर्मशास्त्रपरम्परा भारतीयज्ञानपरम्परायाः प्राणभूता अस्ति। भारतीयज्ञानपरम्परायां धर्मशब्दः धारणार्थकात् धृ-धातोः निष्पन्नः। मनुना धर्मस्य चतुर्विधं प्रमाणमुक्तम्- वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः। तत्र आचारो परमो धर्मः इति स्वीकृतम्। आचारो भारतीयज्ञानपरम्परायाः मूलाधारः । सर्वेषु स्मृतिशास्त्रेषु आचारस्य प्राधान्यं परिलक्ष्यते । समाजस्य तथा व्यक्तेः समुन्नतिः आचारद्वारेणैव सम्भवति । यावत्पर्यन्तं धर्मः भारतीयसंस्कृतिषु परम्परासु च आचारस्य प्राथम्यं वर्त्तते तावत्पर्यन्तं धर्मस्योद्देश्यसाधनं भवति ।

यत्र उक्तमस्ति श्रीविष्णुसहस्रनामस्तोत्रे –

"आचारप्रभवो धर्मो धर्मस्य प्रभुरच्युतः।"

अस्मिन् शोधे तुलनात्मकपाठविश्लेषणपद्धतिः स्वीकृता। मूलधर्मशास्त्रग्रन्थानां, तेषां भाष्याणां च समीक्षा कृता। आधुनिकप्रासङ्गिकतायाः कृते समाजशास्त्रीयं मानवशास्त्रीयं चदृष्टिकोणमवलम्ब्य प्राचीनाचाराणां, वर्त्तमानसमस्यानां समाधानक्षमतायाः मूल्याङ्कनं कृतम्।

शोधेन ज्ञातं यत् आचारः नित्यनैमितिकभेदेन द्विविधः। प्रातरुत्थान-ब्राह्ममुहूर्ते स्नान-सन्ध्या-पञ्चमहायज्ञ-आहारशुद्ध्यादयः नित्याचाराः सन्ति। षोडशसंस्काराः, वर्णाश्रमधर्माः, व्रतपर्वादयः च नैमित्तिकाचाराः। एते आचाराः अन्धविश्वासाः न, अपितु ऋतु-पर्यावरण-शरीर-मनोविज्ञानानुगुणाः सन्ति। यथा-ब्राह्मो मुहूर्त्ते उतिष्ठतः स्वास्थ्यलाभः, आहारशुद्ध्या चित्तशुद्धिः इत्यादि आयुर्वेदेन अपि समर्थितम्।

निष्कर्षतः धर्मशास्त्रीयः आचारः केवलं कर्मकाण्डः न, अपितु विज्ञानसम्मता जीवनपद्धतिः अस्ति। यदा आधुनिकसमाजः व्यक्तिवादेन, पर्यावरणसंकटेन, मानसिकासन्तुलनेन च पीड्यन्ते, तदा संयुक्तकुटुम्बप्रथा, अतिथिसत्कारः, वृक्ष-गो-नदी-पूजनम् इत्यदि आचाराः सामाजिकसमरसतायै पर्यावरणसन्तुलनाय च समाधानं दातुं समर्थाः। अयं शोधः भारतीयज्ञानपरम्परायाम् प्राचीनज्ञानस्य आधुनिकपुनर्व्याख्यानाय नूतनां दिशं ददाति।

आचारः सर्वदा परिवर्त्तनशीलः । अतः स्मृतिगताचारः कतिपयेषु स्थानेषु परिवर्त्तितो भवति । तथापि तस्याचारस्याभावे समाजः दुर्नीत्यत्याचारव्यभिचारादिना लिप्यते । अतः आचारपालनेनैव मनुष्यसमाजस्य कल्याणं भविष्यति। अयं चाचारः सदाचारनित्याचारदेशाचारादि भेदेन सप्तधा भिद्यते । एतेषां आचाराणां परिपालनेन विशृङ्खलितमानवसमाजः सुशृङ्खलितः भविष्यति ।

Key Words - धर्मशास्त्रं, आचारः, सदाचारः, आधुनिकप्रासङ्गिकता, भारतीयज्ञानपरम्परा ।

नारदनयानुमतमनुजनूचितकर्मकराधिकारः -मूल्यमाधुनिकोपयोगश्च।

SURAJIT BANERJEE

असति राजतन्त्रे गणतान्त्रिकेऽस्मिन् संसारेऽपि प्रातिष्ठानिकशकटचालनाय चक्रभूताः सहायकाः अपेक्ष्यन्ते। अधुना तु सर्वकारस्वीकृतस्य मानवसम्पदोन्नयनमन्त्रकस्य (Human Resource Development) मुख्यं वक्तव्यन्तु तावत्साधारणा एव सम्पत्स्वरूपाः। अतः साधारणानामधिकारः वर्तते यथार्हप्रयोगे संरक्षणे संबर्धने च। अतः साधिकाराः व्यष्टिभूताः साधारणाः समष्टिभूतस्याः प्रतिष्ठानाभ्युन्नतेः (institutional benefit) भवन्ति द्वारस्वरूपाः।

प्राचीनाः धर्मशास्त्रप्रणेतारः आर्यसंस्कृतिमनुसृत्य वर्णाश्रमविभाग-द्वारात्कर्तव्यनिष्ठसंसारस्य (duty based society) जयमुद्घोषितवन्तः। सामाजिकसंहतिर्नामप्रयोजनसिद्धौ (social solidarity) प्रत्येकस्य साधारणस्य जनस्य विधिपूर्वकं कर्तव्यमादौ सुनिश्चितं धर्मशास्त्रकृद्भिः। तर्ह्यात्मोचितं कर्तव्यं पारस्परिकं सहसम्पर्कञ्च सम्पादनीयैः साधारणैः। साधारणानामाकाङ्क्षामुपजीव्य स्वात्मकर्तव्यसम्पादनाय तेषु कश्चन मूल्याश्रितोऽधिकार आरोपितः। कर्तव्यकर्मस्वविचलस्यापि जनस्यापरैरात्मनः अधिकारः स्वीकृतिश्चापेक्ष्येते। अयमधिकार एव मानवाधिकाराख्ययाख्यायते यः न केवलं ससहायानामसहायानामपि वर्तते। स्मृतिशास्त्रादिषु भृतिं वेतनञ्चाश्रित्य प्रभुसेवकयोर्मध्ये व्यवहारः सृज्यते। न यथोपयुक्तस्य वेतनस्यापि च मनोवैज्ञानिकदृष्ट्या निरपेक्षमानवीयव्यवहारस्य निश्चयनं कर्तव्यं स्वामिना इति साधारणः कर्मकराधिकारः। धर्मशास्त्रादिषु कर्मकृतामयं मानवाधिकारविधिर्न तादृश आलोचितः प्रत्यक्षतया, परन्तु परोक्षतया धर्मशास्त्रादिषु विविधेषु प्रकरणेषु भृत्यनुसारेण वेतनानुसारेण वा कर्मकरविभागद्वारेण कर्मकराणां

कर्तव्यानाञ्च वर्णनद्वारेणोपन्यस्तः। भगवान् मनुः विषयमाश्रित्यामूं विवादपदद्वयं सृजति- वेतनादानम् स्वामिपालविवादश्च। याज्ञवल्क्यः अभ्युपेत्याशुश्रुषेति नाम्ना पृथग्पदमेकं सृजति। महामतिः नारदः वेतनस्यापकर्म इत्यभिधेयं अपरमेकं व्यवहारपदं सृजति। राजधर्मव्यवहारधर्मयो आधारीभूता (compilation of constitutional law and criminal law) नारदस्मृतिः कर्मकराणां मानविकदृष्ट्या मर्यादासंरक्षणाय (ensuring the dignity) कर्मकरविधिमालोचितवती। महामतिना नारदेन पञ्चविधाः शुश्रुषकाः चत्वारः कर्मकराः पञ्चविंशति दासाश्च स्वीकृताः। शुश्रुषककर्मकरदासानां सर्वेषामपि अस्वतन्त्रत्वं सामान्यं, यस्तु विशेषः स जातिवशादेषां वृत्तिशच कर्मानुसारिणी। पुनः शुभाशुभकर्मभेदेन कर्मकराणां द्वैविध्यं तेनानुमितम्। दासकर्म त्वशुभं शुभं तु कर्मकृतामिति नारदमतिः। अत्र एव नारदमुनेराधुनिकत्वं वर्तते शिष्याणामपि कर्मकृत्स्वन्तर्भावनद्वारेण। अतः कर्म यादृशं वा भवतु कर्मकराणां मानविकदृष्ट्याधिकारः मूल्याश्रितः इति नारदनयानुसारमालोच्यतेऽसिम्न्प्रबन्धे।

वयं तु जानीमः यदाकाङ्क्षापूरणार्थमेवाधिकारः। यतः प्रातिष्ठानिकाभ्युन्नतये वर्तते कर्मकराणामपेक्षा ततस्तेषामाकाङ्क्षायाः परिपूरणं कर्तव्यमादौ परिचालकेन येन मानवाधिकारश्च तेषां भवति प्रतिष्ठितः। ननु सूच्या सप्रसङ्गं नारदनयानुमतेन मानवीयभञ्ग्या कर्मकृतामधिकारविषयमुपस्थापयिष्यते। प्रतिष्ठानमुख्येन यदा यदा भवति कर्मकराधिकारलंघनम् (violation of the rights of the employees) तदा तदा मानवीयभङ्ग्या तेषामधिकाराणामालोचनमपि नितरामापतति। न केवलमस्माकं क्षुद्रे परिसरे अपि तु समग्रे विश्वे मनोवैज्ञानिकदृष्ट्या श्रममूल्यानि (work ethics) तु स्वीकृतानि। यदि भवति श्रममर्यादातिक्रमस्तर्हि विवादस्पदं भवति तत्। कर्मकराणामनेनाचरणविधिश्चाधिकारविधिर्भवतः प्रतिष्ठितौ (code of conduct and rights of the employees)। अतः सामाजिकन्यायप्रतिस्थापनार्थं (social justice) सामाजिकसंहतौ च (social solidarity) मनुजनूचितकर्मकराधिकारः नितरामपेक्ष्यते।

उत्तरसीताचरितम् महाकाव्य की रामकथा की संस्कृत स्रोत-कथाओं से तुलनात्मक समीक्षा

PADMNABH

मर्यादा पुरुषोत्तम राम के चरित्र को अधिकृत करके संस्कृत साहित्य की एक विशाल परम्परा है। सामान्यत रामकथा की परम्परा आदि कवि महर्षि वाल्मीकि से मानी जाती है। रामकथा आज से शताब्दियों पूर्व इनके द्वारा विरचित रामायण में निबद्ध है। आदि काव्य वाल्मीकिरामायण में जिस रामकथा की धारा प्रवाहित हुई वह अविरल गति से आज तक चलती आ रही है। इस कथा में मानव-जीवन की समग्रता के दर्शन ही विभिन्न युगों के कवियों को इसकी ओर उन्मुख करते रहे हैं। इस कथा के सन्दर्भ में विशेष रूप से उल्लेखनीय तथ्य यह है कि यह अनेक कालों में और अनेक रूपों में प्रकट हुई है। सम्भवत: लोक-कथाओं तथा लोक-विश्वासों में वाल्मीकि कृत रामायण से पूर्व भी इस

कथा के बीज थे, जो छोटी-छोटी कथाओं में पड़े थे और जिन्हें महर्षि वाल्मीकि ने संगृहीत कर क्रमबद्ध रूप प्रदान किया है।

रामकथा को लेकर संस्कृत महाकाव्यों की रचना की प्रथा प्राचीनकाल से चली आ रही है। प्रत्येक महाकाव्य में रामकथा का कथानक कतिपय भिन्नताएं लेकर वर्णित है जिससे महाकाव्यों की अपनी-अपनी विशेषता प्रकट होती है। आधुनिक युग के कतिपय अग्रणी लेखकों ने भी उक्त रामकथा को अधिकृत करके महाकाव्यों की रचना द्वारा पर्याप्त ख्याति अर्जित की। उक्त श्रृंखला में डा. रेवाप्रसाद द्विवेदी का उत्तरसीताचरितम् आधुनिक संस्कृत साहित्य के कतिपय ख्याति-प्राप्त महाकाव्य है और इसी काव्य की रामकथा की केवल प्राचीन स्रोत कथाओं से तुलनात्मक समीक्षा ही मेरे प्रस्तुत शोध पत्र की सीमा है।

निष्कर्ष रूप में उक्त आधुनिक संस्कृत महाकाव्य का स्रोत वाल्मीकीय रामायण को माना जा सकता है। डा. रेवा प्रसाद द्विवेदी ने उत्तरसीताचरितम् को रामायण के अनुरूप राम के लंका विजय पाकर अयोध्या में आगमन से आरम्भ तो किया परन्तु महाकाव्य की समाप्ति वाल्मीकि-आश्रम में राम, लक्ष्मण, लव, कुश, जनक, कौशल्या के मिलन तक ही प्रदर्शित की है।

Jurisdiction, Revenue, and Animal Welfare: The Institutional Framework of Paśupālana in the Arthaśāstra

Sajesh

In Kautilya's Arthaśāstra, economic activity (Vārtā) relies on three foundational legs: agriculture (Kṛṣi), trade (Vaṇijyā), and animal husbandry (Paśupālana). While contemporary political scholarship primarily examines Kautilyan diplomacy and statecraft, Book 2 (Adhyakṣapracāra) provides a comprehensive institutional framework governing ancient India's pastoral economy. This paper investigates the administrative, fiscal, and ethical dimensions of livestock governance by analyzing the structural mechanics and overlapping legal jurisdictions of state-appointed superintendents: the Goadhyakṣa (Superintendent of Cattle), Vivītādhyakṣa (Superintendent of Pastures), and Sūnādhyakṣa (Superintendent of Slaughterhouses).

Through a close textual examination of primary Sanskrit passages, this study explores three central problems:

Contractual Ownership Models & Revenue Extraction: The distinct legal classifications of livestock management—namely Niyukta (salaried custody), Karasada (fixed-tax private tenancy), and Vyāpanakam (state-subsidized custodial care for disabled or aged stock).

Jurisdictional Friction: The legal negotiation between state revenue extraction (Rājakōṣa) via slaughter taxes and the statutory protection of working draft animals, milch cows, and reserved sanctuary zones (Abhayāraṇya).

Veterinary Ethics and Standardization: The empirical standards enforced by the state, including fixed feed-to-butterfat (Ghṛta) yield ratios to prevent fraud, alongside statutory penalties (Daṇḍa) for veterinary negligence (Bhaiṣajya) and animal cruelty.

By situating these provisions within the wider Śāstric literature, this paper demonstrates that Kautilyan Paśupālana was neither mere resource exploitation nor passive traditional pastoralism. Rather, it represented a state-regulated institutional framework designed to maximize fiscal yields while safeguarding ecological sustainability and animal welfare.

Śreṇī-Dharma to Modern CSR – Correlates of Corporate Social Responsibility in Ancient Indian Jurisprudence of Dharmaśāstra Texts

TUSHAR KANHAIYALAL

Although modern Corporate Social Responsibility (CSR) is largely considered from the perspective of western economic theories post industrial era as well as statutory prescriptions such as India's Companies Act 2013, social welfare has always been part and parcel of the very definition of commercial enterprise in the Indian Knowledge System (IKS). This paper attempts to trace the conceptual correlates of modern CSR and ESG (Environmental, Social, and Governance) frameworks from ancient Indian jurisprudence literature, with particular focus on Manusmṛti, Yājñavalkyasmṛti and Nāradasmṛti texts. This will be done by studying the rules and regulations regarding ethical business practices followed by ancient corporate guilds (Śreṇī & Nigama), which established an inextricable link between wealth creation (Artha) and ethical obligation (Dharma).

Some of the textual references in support of the above correlation have been discussed. The Yājñavalkyasmṛti rules on Samvit-vyatikrama (breach of corporate conventions) clearly state that a certain percentage of profit earned had to be distributed for the benefit of widows, orphans and sick people. Moreover, the work examines the historical counterpart to infrastructure-related CSR, namely the socio-religious duty of Iṣṭāpūrta (financing public projects like reservoirs and rest-houses), as well as the stringent laws regarding consumer protection, prohibition of adulteration, and preservation of natural resources as laid down in Chapter 8 and 9 of the Manusmṛti. This work, therefore, establishes that the Dharmaśāstra texts understood CSR not as an after-thought of profitability but as a fundamental aspect of Lokasaṃgraha (wellbeing of the world).

Keywords:
Indian Knowledge System (IKS), Dharmaśāstra, Corporate Social Responsibility (CSR), Śreṇī, Iṣṭāpūrta, Yājñavalkyasmṛti, ESG.

ĀŚAUCA IN KERALA: A STUDY OF TEXTS AND PRACTICES

NEERAJ K V

This paper examines the system and practice of Āśauca in Kerala, with particular attention to its textual foundations and regional manifestations. Āśauca, an important concept in Dharmaśāstra literature, denotes a state of ritual impurity associated with events such as birth and death, as well as other circumstances prescribed in traditional ritual and social regulations. Although Āśauca is extensively discussed in Dharmaśāstra literature, its observance exhibits distinctive regional variations and practices in Kerala.

The system and practice of Āśauca in Kerala reveal several distinctive features that reflect the region's religious, social, and cultural traditions. Regional works such as *Āśaucāṣṭakam, Āśaucadīpakam, and Āśaucasaṅgrahaṃ* provide significant textual evidence for understanding these traditions. Through a study of relevant textual sources and traditional practices, this paper analyses the nature, observance, and regional peculiarities of Āśauca in Kerala. It seeks to highlight the relationship between Dharmaśāstra prescriptions and their regional interpretation

and practice, thereby contributing to a deeper understanding of the religious and cultural dimensions of Āśauca in Kerala.

Key words – Dharmaśāstra – Āśauca - Ritual Impurity – Kerala Textual Traditions - Ritual Practices.

द्वैतनये मूर्त्युपासनाविमर्शः

डा.श्रीनिधिः वि

भारतीयशास्त्रपरम्परायां देवतामूर्तेः स्वरूपं केवलं कलात्मकशिल्पदृष्ट्या न, अपि तु तत्त्वज्ञानस्य, ध्यानस्य, उपासनायाः च साधनत्वेन परिगण्यते। देवतायाः स्वरूपविशेषाः—अवयवाः, आयुधानि, मुद्राः, वर्णाः, अलङ्काराः, आसनं च—उपासकस्य ध्याने विशिष्टार्थं वहन्ति इति आगमग्रन्थेषु प्रतिपादितम्। अस्मिन् सन्दर्भे धर्मशास्त्रागमग्रन्थादीनामाधारेण मूर्तिलक्षणस्य, ध्येयस्वरूपस्य, ध्यानस्य, मन्त्रस्य, उपासनायाः, तत्फलस्य च परस्परसंबन्धः अस्मिन् शोधपत्रे परिशील्यते। विशेषतः देवतास्वरूपविषये शास्त्रोक्तलक्षणानां ज्ञानं कथं साधकस्य मानसप्रतिमां स्पष्टयति, तादृशेन ध्यानेन उपासनायाः फलसिद्धिः कथं सम्बध्यते इति विश्लेषणमस्य अध्ययनस्य प्रमुखोद्देशः।

मध्वाचार्यप्रणीते तन्त्रसारसङ्ग्रहे प्रतिपादितेषु देवतास्वरूपेषु विभिन्नानि आयुधानि, मुद्राः, वर्णाः, हस्तसंस्थानानि च केवलं बाह्यशोभायाः वर्धकाः न, अपि तु तत्तत्फलोपासनायाः सूचकत्वेन विवेचनीयाः। अतः मूर्तिलक्षणविवरणस्य सम्बन्धः ध्यानविधिना सह अविच्छिन्नः इति प्रतिपाद्यते। मन्त्रस्य ध्येयस्वरूपं यदा शास्त्रसम्मतरीत्या मनसि अनुसन्धीयते, तदा साधकस्य ध्यानविषयः स्पष्टतां प्राप्नोति। अस्य सन्दर्भे मूर्तिशुद्धिः, अर्थानुसन्धानशुद्धिः, उद्देशशुद्धिश्च उपासनाया उत्कृष्टतायां प्रमुखबिन्दव इति विचारः प्रकाश्यते। अतः प्रतिमानिर्माणस्य प्रयोजनं केवलं नयनानन्ददायकत्वं न।

उपासनाफलविचारेऽपि कतिपयेषु रूपेषु लौकिकसमृद्धिः, ज्ञानम्, बलम्, अभयम्, अन्यानि च अपेक्षितफलानि सम्बध्यन्ते इति चर्चायां प्रतिपादितम्। तथापि उपासनायाः परमप्रयोजनं केवलमैहिकफलप्राप्तिः न, अपि तु भगवत्सान्निध्यं मोक्षश्च इति आध्यात्मिकदृष्टिः विशेषतः प्रकाश्यते। अतः काम्योपासनायाः निःकामोपासनायाश्च सन्दर्भे फलतत्त्वस्य पुनर्विचारः आवश्यकः भवति। एतादृशं विवेचनं तन्त्रसारसङ्ग्रहस्य उपासनाशास्त्रीयमहत्त्वं अधिकं स्पष्टयति।

वर्तमानदेवालयेषु सर्वत्र शास्त्रोक्तमूर्तिस्वरूपाणां समानरूपेण अविद्यमानत्वमपि शोधपत्रे प्रश्नरूपेण परीक्ष्यते। कतिपयानां देवतास्वरूपाणां सूक्ष्मलक्षणानि लौकिकशिल्पे पूर्णतया निरूपयितुं मानवीयक्षमतायाः सीमाः, विशिष्टस्वरूपाणां शिल्पीयदुर्गमता, देवालयपरम्परायाः स्वरूपम्, राजाश्रयस्य अनुपलब्धता, सम्प्रदायभेदश्च कारणत्वेन विचारणीयाः। उदा- शास्त्रे वर्णितं सहस्रफणादिकं स्वरूपं यथार्थतया शिल्परूपेण निरूपयितुं कठिनत्वाद् सांकेतिकरूपस्य स्वीकरणमपि विचारणीयम्। अतः शास्त्रीयध्येयस्वरूपं तथा लौकिकप्रतिमारूपं समानार्थकत्वेन न ग्राह्यम्; तयोः सम्बन्धः साधकस्य ध्यानप्रक्रियायाः सन्दर्भे अवगन्तव्यः।

देवालयतत्त्वमपि अस्य अध्ययनस्य महत्त्वपूर्णोऽङ्गम्। देवालयः केवलं पूजाक्रियायाः स्थानं न, अपि तु दिव्यधाम्नः, भगवद्विहारस्थानस्य वा लौकिकप्रतिरूपरूपेण साधकस्य भगवदनुसन्धानस्य साधनं भवितुमर्हति। तदनन्तरं तन्त्रसारसङ्ग्रहस्य शास्त्रीयमूर्तिस्वरूपविचाराः, उपासनाविचाराः आगमसम्बद्धाः, तात्त्विकाश्च इत्यपि विज्ञायते शोधपत्रेणानेन।

अस्य अध्ययनस्य निष्कर्षरूपेण प्रतिपाद्यते यत् मूर्तिः न केवलं देवतायाः दृश्यप्रतिनिधिः, किन्तु शास्त्रोक्तध्येयस्वरूपस्य साधकमानसे स्थिरीकरणस्य, ध्यानस्य, उपासनायाः, फलसिद्धेः, अन्ततः भगवत्साक्षात्काराभिमुखस्य आध्यात्मिकमार्गस्य च महत्त्वपूर्णं साधनम् अस्ति। मूर्तिलक्षणं, ध्यानोपासनातत्त्वं, आगमपरम्परा, देवालयतत्त्वं च परस्परपूरकरूपेणावगन्तव्यानीति शोधस्य प्रमुखः निष्कर्षः।

मुख्यशब्दाः — तन्त्रसारसङ्ग्रहः, मूर्तिलक्षणम्, ध्येयस्वरूपम्, ध्यानम्, उपासना, फलसिद्धान्तः, देवालयतत्त्वम्, पाञ्चरात्रागमः, पाठालोचनम्, मोक्षः।

From Rajdharma to Revolt: Responses to Adharmic Kings in Indian Literature

Shreya Rasane

India has a long and distinguished history of kingship, in which the ruler was expected to govern according to the principles of *Rajdharma*. Rooted in traditional *neeti* (ethical and political principles). *Rajdharma* defined the duties and responsibilities of a king towards his kingdom and its people. However, these principles were not rigid. They were adapted according to the circumstances of the kingdom and the needs of its subjects. The welfare and satisfaction of the people were therefore closely connected with the conduct of the ruler. When a king failed to uphold *Rajdharma* and acted unjustly, the Praja could express their dissatisfaction and in certain circumstances, take direct action against him.

This paper examines the different forms of resistance and revolt undertaken by Praja against unjust or *adharmic* rulers as represented in Indian literary traditions. Rather than viewing kingship as an institution in which the ruler held unquestionable authority, the paper explores instances where the relationship between the king and his Praja was shaped by mutual duties and expectations. When these expectations were violated, the subjects could challenge the king, withdraw their support, or take more direct measures to bring about a change in the existing order.

The study traces such instances across a range of Indian literary texts, beginning with the *Valmiki Ramayana* and extending to King Shudraka's *Mricchakatikam*. These works present varied situations in which the actions of rulers lead to opposition from their subjects. By examining these episodes, the paper seeks to understand the nature, causes, and forms of popular resistance against adharmic kings and to explore how Indian literature represents the limits of royal authority within the framework of *Rajdharma*.

REDEFINED INDIAN LAW IN YAJNAVALKYA SMRITI

Swati Sucharita Swain

Dharma which is has a many folded terms aspects like duty, cosmic order, morality and law leads to the evolution of Jurisprudence. Among the several Dharmashastras, the Yajnavalkya Smriti is the notable & ancient legal philosophy. This text is composed between the 3rd and 5th centuries C.E. which is systematically sychronized as the administration of Justice. The Yajnavalkya Smriti is highly structured, logical and also resolves disputes.Again it also implements Justice and equity reason which clarifies the judiciary, law, criminal code and civil laws. and also the sovereignal ethical duties. Here we analyse the structural division, judicial mechanism, procedural innovations and its relation with modern Indian Personal law.Yajnavalkya Smriti consists of three Adhyayas which has total 1013 verses which indicates categorization of human life and legal governance. First of all, Acharya Adhyaya or the Rules of conduct covers sacred rites, daily duties, education, marriage and dietary laws. This adhyaya also argues about the personal righteousness indicating a just society. Secondly, Vyavahara Adhyaya.. or the Jurisprudence and Civil law deals entirely with the administration of justice, court procedures, evidence, contract law, property rights and crimes. Thirdly, Prayaschitta Adhyaya or the Penance or Expiation focuses on purification, rituals for wrongdoing and the philosophical nature of the soul.

In the context of justice, it serves as a rehabilitative and spiritual counterpart to corporal punishment. Isolating legal disputes into Vyavahara Adhyaya, Yajnavalkya separates law from

religious rituals which is a leap forward in the history of global jurisprudence. Yajnavalkya defines Vyavahara as a situation where the right of one party is infringed upon or contested by another, violating the tenets of Dharma, Justice leading the process of restoring equilibrium when this order is disrupted. To standardize Justice, the text identifies to law 18 titles of law or Ashtadasa Pada which is influenced by Narada and Manu but clearly refined.

Key Words: Sovereignal, Smriti, rites, righteousness, Jurisprudence, a rehabilitative

चाणक्यनीति में लोकदृष्टि : एक अध्ययन

डॉ. राहुल

प्रस्तुत शोधपत्र चाणक्यनीति में लोकदृष्टि : एक अध्ययन का उद्देश्य चाणक्यनीति में निहित लोकदृष्टि का सामाजिक, शैक्षिक, राजनीतिक तथा नैतिक परिप्रेक्ष्य में विश्लेषण करना है। अध्ययन में यह प्रतिपादित किया गया है कि चाणक्यनीति केवल नीति-वचनों का संकलन न होकर भारतीय लोकजीवन, सामाजिक चेतना तथा व्यावहारिक जीवन-मूल्यों का महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। इसमें आचार्य चाणक्य ने व्यक्ति, परिवार, समाज और राज्य के संतुलित विकास हेतु ऐसे सिद्धान्त प्रस्तुत किए हैं, जो आज भी समान रूप से प्रासंगिक हैं।

शोधपत्र में चाणक्य की लोकदृष्टि का विवेचन चार प्रमुख आयामों—सामाजिक व्यवस्था, शिक्षा, सुशासन तथा नैतिक मूल्यों—के आधार पर किया गया है। सामाजिक व्यवस्था के अन्तर्गत परिवार, मित्रता, अनुशासन तथा लोकहित को आदर्श समाज की आधारशिला माना गया है। शिक्षा को केवल ज्ञानार्जन का साधन न मानकर चरित्र-निर्माण, विवेक, सामाजिक प्रतिष्ठा तथा सांस्कृतिक विकास का प्रमुख माध्यम बताया गया है। सुशासन के संदर्भ में आदर्श शासक, योग्य मंत्रिपरिषद्, न्यायपूर्ण शासन तथा लोककल्याणकारी प्रशासन की आवश्यकता पर बल दिया गया है। इसी प्रकार नैतिक मूल्यों के अन्तर्गत धर्म, आत्मसंयम, सदाचार, करुणा, मर्यादा तथा लोकमंगल को मानवीय जीवन के अनिवार्य तत्त्व के रूप में प्रतिपादित किया गया है।

अध्ययन से यह निष्कर्ष प्राप्त होता है कि चाणक्य की लोकदृष्टि का मूल उद्देश्य लोककल्याण, सामाजिक समरसता, उत्तरदायित्व तथा नैतिक जीवन की स्थापना है। यद्यपि चाणक्यनीति के कुछ विचार तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों से प्रभावित हैं, तथापि उसके अधिकांश सिद्धान्त वर्तमान समय में भी सामाजिक जीवन, शिक्षा, सुशासन एवं नैतिक आचरण के लिए प्रेरणास्पद हैं। इस प्रकार चाणक्यनीति भारतीय चिंतन की ऐसी अमूल्य धरोहर है, जो समकालीन समाज को भी व्यावहारिक दिशा प्रदान करती है।

Etymological Narratives of selected Animal-Inspired Asanas and their Effect on Psychological well-being of Adolescents

Arti Saini and Gurneet Kaur

The traditional yogic belief that humans are linked to nature and it is reflected in animal-inspired yogasana. By closely observing animal movements and behaviour, ancient practitioners developed these poses, incorporating both anatomical accuracy and symbolic meaning into their Sanskrit nomenclature. Asanas like Bhujangasana, Gomukhasana, and Simhasana etc., show how psychological qualities like tranquillity, awareness, concentration, memory and expressive confidence are connected to physical forms.

Aim

This research will investigate the etymological meaning and story behind animal-inspired yoga poses and will analyse their effects on psychological parameters such as self-esteem, self-awareness, concentration, emotional regulation and mindfulness.

Methods:

The study design will be pre-post research design. The participants will be 150 school going adolescents divided into 5 groups: each group (N=30) will be intervened with one yogasana. The participant allocation will be 1:1:1:1:1 in all five groups.

Results:

Results will show the psychological impacts of animal-inspired asanas on self-esteem, self-awareness, concentration, emotional regulation and mindfulness after 3 months of intervention. By focusing attention on physical sensations, these asanas will improve self-awareness and mindfulness. By activating the parasympathetic nervous system, these techniques promote emotional regulation while lowering stress and impulsivity. Additionally, postures emphasizing strength and balance enhance mental discipline, focus, and attention.

Conclusion:

Animal-inspired yogasana combine physical practice with symbolic meaning to create a comprehensive interface between the body and mind. The idea that yogasana is a physical and mental discipline supported by improving psychological parameters such as cognition, emotional regulation, concentration, and self-awareness.

Keywords: Animal-inspired Yogasana, Etymology, psychological impact, cognition, emotional regulation, concentration, self-awareness, mindfulness.

The Science of Reiki: Exploring Mechanisms, Applications, and Challenges in Holistic Healing

Acharya Balkrishna, Upasana Agarwal , Deepika Arya , Vedpriya Arya

This review aims to provide a thorough evaluation of Reiki, with an emphasis on its history, types, tools, techniques, mechanisms, applications, and limitations. The purpose of the review is to detect trends and patterns in outcomes, highlight gaps in the current research, and explore the challenges and opportunities for integrating Reiki into mainstream healthcare.

The variety of methods and tools used in conducting research in Reiki ranges from qualitative, like interviewing, to quantitative measures that include such instruments as heart rate variability and biofield instruments. Reiki may influence the parasympathetic nervous system, promote relaxation, and enhance the body's self-healing processes. Applications of Reiki in healthcare show promising results in managing pain, anxiety, depression, and improving quality of life, especially in chronic illness and cancer care.

Keywords: Reiki, Tools and Techniques, Mechanism, Healthcare, Challenges

The Epistemology and Biological Kinetics of 'Mitahara' in the Gheranda Samhita: A Comprehensive Analytical and Philosophical Study

Manasvi Khandelwal

The discourse on dietary ethics in the Indian philosophical tradition is not merely an exercise in physical well-being, but a profound ontological inquiry into the relationship between the gross body (Sthula Sharira) and the subtle mind (Sukshma Sharira). The 'Gheranda Samhita', a seminal text of Hatha Yoga traditionally referred to as 'Ghatastha Yoga', provides a rigorous framework for human psychophysiological transformation. Presented as an intricate dialogue between the enlightened Sage Gheranda and King Chandakapali, the text systematically outlines the Saptanga Yoga (seven-fold path). Before venturing into the dynamic practices of Pranayama, the text imposes strict regulatory disciplines, among which 'Mitahara' (measured and balanced diet) holds absolute primacy. This extensive research paper meticulously unpacks the concept of Mitahara as elucidated in the fifth chapter (Pranayama Prakarana) of the Gheranda Samhita. By synthesizing classical Yogic texts with the atomic and kinetic theories of Vaiseshika philosophy and modern biological kinetics, this paper investigates the qualitative and quantitative paradigms of Yogic dietetics. It argues that Mitahara is not a rudimentary dietary restriction, but a highly sophisticated, scientifically grounded methodology designed to optimize human physiological architecture, regulate biochemical interactions, and facilitate the ultimate expansion of human consciousness.

Shringi Chikitsa: A Traditional Ayurvedic Para-Surgical Therapy: Classical principles, contemporary clinical applications, proposed mechanisms, safety considerations, and research priorities

KANAK SONI

Background: Shringi Chikitsa, also referred to as Śṛṅga therapy, is a traditional Ayurvedic para-surgical procedure described within Raktamokshana (therapeutic bloodletting). Classical Ayurvedic literature describes the use of a horn-shaped instrument to facilitate localized suction and blood withdrawal in selected clinical contexts. Contemporary adaptations may use modified suction instruments.

Objective: To critically review the Ayurvedic foundations, proposed mechanisms, clinical applications, procedural considerations, safety profile, and current evidence concerning Shringi Chikitsa.

Methods: A narrative review approach was used to examine accessible literature on Shringi therapy, Raktamokshana, and relevant clinical reports. The evidence was interpreted according to study design, sample size, and methodological limitations.

Results: The literature describes potential symptomatic benefits in selected musculoskeletal conditions. A 2021 systematic review of Raktamokshana literature reported 16 studies involving 469 participants across different methods, but only two studies evaluated modified Shringa methods. Case reports and a small retrospective case series have reported symptom improvements; these findings are preliminary and cannot establish efficacy or safety conclusively.

Conclusion: Shringi Chikitsa is a historically significant Ayurvedic para-surgical intervention with preliminary clinical observations warranting further investigation. Its efficacy, optimal technique, indications, and long-term safety remain insufficiently established. Well-designed controlled trials, standardized procedural protocols, and systematic adverse-event reporting are necessary.

Keywords: Shringi Chikitsa; Śṛṅga therapy; Raktamokshana; Shalya Tantra; Ayurvedic para-surgical therapy; therapeutic bloodletting; musculoskeletal pain; integrative medicine.

Ayurveda describes several para-surgical interventions within Shalya Tantra, including Raktamokshana, Agnikarma, and Kshara Karma. Raktamokshana is traditionally understood as the controlled removal of blood in selected clinical contexts, based on classical Ayurvedic assessment of the disease and the patient.

Shringi Chikitsa is one of the traditional methods associated with Raktamokshana. In its classical form, a horn-shaped instrument is applied to a selected body site to create suction. Depending on the technique, the procedure may involve suction alone or suction combined with superficial skin puncturing to facilitate blood withdrawal.

The historical rationale is rooted in Ayurvedic concepts of Dosha, Dhatu, and Srotas. Contemporary biomedical interpretation may consider local mechanical effects, tissue deformation, changes in superficial blood flow, and—when blood is withdrawn—localized blood loss. These biomedical hypotheses should not be treated as proof of the traditional explanatory model or as confirmation of therapeutic efficacy.

Interest in Shringi Chikitsa has increased through modified suction instruments and reports of their use in musculoskeletal complaints. Nevertheless, the clinical evidence remains limited, and Shringi-specific results must be distinguished from findings involving other Raktamokshana procedures or conventional cupping therapy.

Gua Sha Therapy Relief pain in Calcaneal (Heel) Spur: A Case Report

Dr. Nayan Biswas; 2Dr. Nagaraj Hosamani

Calcaneal spur is a common cause of chronic heel pain, often associated with plantar fasciitis, restricted ankle mobility, and difficulty in standing or walking. Conventional management includes analgesics, physiotherapy, and orthotic support; however, complementary therapies may offer additional symptomatic relief. This case report evaluates the clinical outcome of Gua Sha therapy in a patient with symptomatic calcaneal spur.

A 46-year-old male presented with a one-year history of right heel pain, particularly severe during the first steps in the morning and after prolonged standing. Clinical examination revealed tenderness over the medial calcaneal tubercle, mild plantar heel swelling, restricted and painful ankle dorsiflexion, and an antalgic gait. Radiographic examination confirmed the presence of a plantar calcaneal spur. Baseline pain intensity was assessed using the Visual Analog Scale (VAS), with a score of 7/10.

The patient underwent six sessions of Gua Sha therapy over three weeks, from 25 December 2025 to 10 January 2026. A stainless steel Gua Sha instrument was used with sesame oil as a lubricant. Treatment focused on the plantar fascia, medial calcaneal region, Achilles tendon, and calf musculature. Each session lasted 20–25 minutes.

Following the intervention, the VAS pain score decreased from 7/10 to 2.5/10. Morning heel pain and local tenderness were markedly reduced, plantar heel swelling resolved, ankle mobility improved, and heel-strike pattern normalized. The patient also reported improved tolerance for prolonged standing and walking. Mild post-treatment petechiae resolved spontaneously within 48 hours.

This case suggests that Gua Sha therapy may be a useful complementary approach for symptomatic relief and functional improvement in calcaneal spur. However, as this report describes a single patient without a control group, further controlled clinical studies are necessary to establish its efficacy, safety, and long-term benefits.

Keywords: Calcaneal Spur, Heel Pain, Gua Sha Therapy, Plantar Fasciitis, Complementary Medicine.

स्वास्थ्य एवं आरोग्यता के लिए प्लाविनी प्राणायाम (जल योग): शास्त्रीय आधार एवं आधुनिक वैज्ञानिक व्याख्या

Roma Hemvani

प्राचीन भारतीय वैदिक सनातन संस्कृति से जन्मा योग दर्शन आज विश्व स्तर पर स्वास्थ्य एवं चिकित्सा के पर्याय के रूप में तार्किक एवं प्रामाणिक विज्ञान बन चुका है। आधुनिक मानव ने जान लिया है कि वास्तविक मे संतुष्टि केवल स्वयं के सुख-सुविधा संसाधनों की समृद्धि से प्राप्त नहीं की जा सकती, बल्कि इसे योगिक और प्राकृतिक जीवन-शैली को अपनाकर ही प्राप्त किया जा सकता है सर्वे भवन्तु सुखिन के दर्शन पर टिकी है।

योग के अनुसार स्वास्थ्य का अर्थ है स्व के वास्तविक स्वरूप को पहचानना है जो कि महर्षि पतंजलि द्वारा बताए गए अष्टांग मार्ग को अपना कर योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः द्वारा संभव होता है किंतु आधुनिक युग में योग के इतने वृहद दार्शनिक स्वरूप को समझ पाना अभी शेष है लेकिन योग के कुछ अंगो जैसे आसन, प्राणायाम, योग निद्रा और संयमित जीवन शैली के वैज्ञानिक और प्रामाणिक लाभो का जनमानस में गहरा आकर्षण देखा जा रहा है जो एक सकारात्मक शुरुआत है।

आधुनिक योग गुरु पूज्य स्वामी रामदेव जी के भागीरथ प्रयास से प्राणायाम की महत्ता और उन पर शोध निरंतर बढ़ते जा रहे हैं और विश्व स्तर पर लोग इनसे लाभान्वित हो रहे हैं स्वामी रामदेव जी की पुस्तक प्राणायाम रहस्य कहती है कि प्राणों को जगाना ही महानतम और वास्तविक जागरण है किंतु आज भी कुछ प्राणायामों जैसे प्लाविनी प्राणायाम पर पर्याप्त शोधों का अभाव है और यह शोध इस रिक्तता को भरने का एक लघु प्रयास है ।

प्राणायाम के महत्व को समझते हुए हठ योगियों ने प्राणायाम को विशेष रूप से विस्तारित कर समझाने का प्रयास किया, वस्तुत प्राणायाम वह सेतु है जिसके द्वारा स्थूल शरीर को सूक्ष्म और कारण शरीर से जोड़कर परम तत्व तक ले जाया जा सकता है हठयोग मर्मज्ञ स्वामी स्वात्माराम जी ने आठ प्राणायाम को कहा जिनमें से पहले प्राणायाम से सूर्यभेदन से शुरू हुई साधना प्लाविनी प्राणायाम तक आते उस सहजावस्था में ला खड़ा करती है

Sustaining Harmony Through Right Conduct: A Qualitative Textual Study on Sadvṛtta and Ācāra Rasāyana

Shruti Sharma

Today, the world is experiencing growing disruption in personal and social harmony, and people are accepting this decline as the "new normal." Subtle everyday imbalance: changes in how individuals think, communicate, regulate emotions, and respond to challenges may seem

negligible in isolation; when repeatedly expressed through behaviour, they may affect personal impression, relationships, families, and eventually the broader social environment. Āyurveda is one of the greatest gifts of the sages of ancient India to mankind, which views rajas and tamas as harmful qualities of mind that often lead to unprocessed emotions, negative judgements, and lifestyle disorders. This study examines Sadvṛtta, code of right conduct, and Ācāra Rasāyana, the therapeutic effects of practice, examined across the four dimensions (physical, psychological, social, cognition) through modern research explaining how the practice impacts the perception of self and social outlook.

METHODOLOGY:-

A qualitative research approach using textual analysis of Āyurveda classical texts interprets Sadvṛtta and Ācāra Rasāyana in relation to personal and social harmony. Relevant contemporary literature in psychology, behavioural science, and neuroscience is used to discuss potential conceptual connections to self-awareness, emotional intelligence and interpersonal bonds.

DATA FINDINGS:-

Charaka Saṃhitā and Aṣṭāṅga Hṛdaya present Sadvṛtta as holistic health-promoting conduct and Ācāra Rasāyana as rejuvenation therapy that modern research related to behavioural science shows corresponding mechanisms: repetition of practice shifts behaviour from effortful prefrontal control to automatic routines run by subcortical brain circuits; emotional discipline fights mental afflictions; selfless service benefits wellbeing and interpersonal bonds; and reflective judgement strengthens cognitive awareness of one's own thinking.

CONCLUSION

Practised consistently and mindfully, the moral conduct is associated with cultivating discipline, productivity and purposeful activities, contentment, and a changed self-perception that reshapes mind set, relationships and social outlook, thus fostering inner and social harmony.

KEYWORDS: Sadvṛtta, Ācāra Rasāyana, Personal and Social Harmony

अष्टाङ्गहृदय के सद्वृत्त में सत्य, अक्रोध व इन्द्रिय-संयम : पातञ्जलयोगसूत्र के यम-नियमों की दृष्टि से एक पाठ-विश्लेषण

शोधकर्त्री : गायत्री

आयुर्वेद में स्वास्थ्य की परिभाषा केवल दोष, धातु और मल के साम्य तक सीमित नहीं रखी गई है; इन्द्रिय, मन और आत्मा की प्रसन्नता को भी आवश्यक माना गया है। इसी समग्रता के कारण आयुर्वेदिक ग्रंथों में आहार-विहार के साथ आचार-संबंधी नियमों का भी विस्तृत उल्लेख मिलता है, जिन्हें सामान्यतः सद्वृत्त कहा गया है। वाग्भट-रचित अष्टाङ्गहृदय में सद्वृत्त-संबंधी निर्देश विशेषकर सूत्रस्थान के रोगानुत्पादनीय अध्याय में उपलब्ध हैं। दूसरी ओर, पातञ्जलयोगसूत्र में यम और नियम योगाभ्यास के नैतिक आधार के रूप में प्रतिपादित हैं।

इस शोध-पत्र में अष्टाङ्गहृदय के सद्वृत्त में वर्णित सत्य, अक्रोध तथा इन्द्रिय-संयम की अवधारणाओं का पातञ्जलयोगसूत्र के समकक्ष सूत्रों के साथ तुलनात्मक पाठ-विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। अध्ययन गुणात्मक, पाठ-विश्लेषणात्मक और तुलनात्मक पद्धति पर आधारित है; इसके लिए अष्टाङ्गहृदय, पातञ्जलयोगसूत्र और उनकी टीकाओं तथा सम्बद्ध ग्रंथों का अध्ययन किया गया है।

विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि दोनों परंपराएँ आचार को मन के नियंत्रण और जीवन-गुणवत्ता के लिए आवश्यक मानती हैं, किंतु उनके अन्तिम लक्ष्य में अन्तर विद्यमान है। आयुर्वेद में सद्वृत्त का संबंध स्वास्थ्य-रक्षण, रोगनिरोध व दीर्घायु से है, जबकि योग में यम-नियम चित्त-शुद्धि, विवेक-ख्याति और कैवल्य की ओर उत्थान हेतु साधना का आधार हैं। अतः इन दोनों दृष्टियों को विरोधात्मक न समझकर परस्पर परिपूरक के रूप में देखना अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है।

बीज शब्द : सद्वृत्त, अष्टाङ्गहृदय, यम-नियम, पातञ्जलयोगसूत्र, आचाररसायन, इन्द्रिय-संयम।

Effect of Yoga and Allied Therapies on Health Outcomes in Patients with Rheumatoid Arthritis: A Prospective Single Arm Observational Study

Monika

Background: Rheumatoid arthritis (RA) is an autoimmune disease. It causes inflammation, pain, stiffness and fatigue in joints. These symptoms can impact functioning, daily activities and general quality of life. Although the main treatment for RA is still medication researchers are investigating therapies that may help to supplement traditional treatments like Yoga, naturopathy, diet changes, Ayurvedic therapies and other mind–body practices are being investigated for benefit.

Objective: To Review the literature on yoga and other allied integrative therapies for rheumatoid arthritis with focus on disease activity, inflammatory markers, physical functioning, pain, psychological wellbeing and quality of life.

Methods: We have taken studies published from 2009 up to 2025 in PubMed, Scopus, Google Scholar and ScienceDirect. We include randomized trials, clinical studies, observational research, systematic reviews, even meta analyses related to rheumatoid arthritis.

Results: Plenty of studies showed improvements in disease scores, easier movement, less pain, better moods and smoother everyday life. Some researchers took it further. Measured inflammation markers like ESR, CRP, IL-6, IL-17 TNF-α and even immune system changes like the Th17/Treg ratio.. The results weren't always glowing. Some studies didn't see change especially in disease activity or overall quality of life.

Conclusion: Yoga and other integrative therapies may help people with rheumatoid arthritis manage their symptoms alongside conventional medical treatment. However, the available studies differ in terms of the therapies used, programme duration, research methods, and outcomes assessed. These differences make it difficult to determine how effective these approaches are overall. Further studies are therefore needed to examine comprehensive Yoga and Allied Therapy programmes and assess whether the benefits observed after treatment continue over time.

Keywords: Rheumatoid arthritis, yoga therapy, integrative medicine, naturopathy, inflammatory biomarkers, disease activity, pain, quality of life

Integrated Personality Assessment Tool in the Indian Knowledge System: Bridging Panchmahabhuta, Triguna, and Tridosha

Nikita, Dr. Lokesh Gupta

Personality is a complex construct reflected in an individual's thoughts, emotions, and behaviour. Western psychology has developed different theories and methods to understand personality; the Indian Knowledge System offers a unique viewpoint through its philosophical and Ayurvedic traditions. This conceptual paper examines the interrelationships among Triguna, Panchamahabhuta, and Tridosha and explores the need for integrating these frameworks into a comprehensive personality assessment tool.

The Triguna framework, rooted in Samkhya philosophy, describes three fundamental qualities: Sattva, Rajas and Tamas. The Panchamahabhuta framework identifies five fundamental elements Akasha, Vayu, Agni, Jala, and Prithvi which according to Ayurvedic thought, contribute to the constitution of the human body and the formation of the three Doshas: Vata, Pitta, and Kapha. While Triguna primarily addresses mental tendencies, Panchamahabhuta and Tridosha offer perspectives on physical constitution and individual differences. A conceptual examination of these frameworks indicates that these frameworks provide a potentially holistic understanding of human nature within the Indian Knowledge System. Despite their conceptual interconnections, these frameworks are frequently examined independently. The absence of a comprehensive validated psychometric tool that encompasses all three frameworks for evaluating personality highlights a notable inadequacy in present day personality assessment. The presented concept highlighted the need for an integrated personality assessment tool that brings together Panchamahabhuta, Triguna, and Tridosha within a unified psychometric framework. Such an approach could facilitate the systematic examination of relationships among these constructs and provide a foundation for future instrument development and validation.

Keywords: Indian Knowledge System, Personality Assessment, Panchamahabhuta, Triguna, Tridosha, Psychometrics.

Study Protocol for Gayatri Mantra Chanting with Orthographic Visualization to Improve Cognitive Functions and Academic Self-Efficacy among Medical Students with Problematic Internet Use

Sangeeta sahu

Background: Higher education in the digital era relies heavily on technology making learning, communication and access to information easier for students. Problematic internet use (PIU) is increasingly common among university students and may affect attention, working memory, academic performance, and psychological well-being. Medical students may be particularly vulnerable because of their demanding academic workload and frequent use of digital devices. However, limited research has examined mantra-based practices among medical students with PIU.

Objective: To examine the effect of Gayatri Mantra (GM) with orthographic visualization on cognitive functions and academic self-efficacy among medical students with PIU, and to explore the role of perceived stress and metacognitive awareness.

Methods: A randomized controlled trial will be conducted among medical students screened for PIU using the Generalized Problematic Internet Use Scale-2 (GPIUS-2). Eligible participants will be randomly assigned to an intervention or waitlist control group. The intervention will be conducted for 12 weeks, six days per week, using a standardized classroom-based GM with orthographic visualization practice. Primary outcomes will include working memory, sustained and selective attention, and academic self-efficacy, assessed using the Mueller Digit Span Task, Six-Letter Cancellation Test (SLCT), and College Academic Self-Efficacy Scale (CASES), respectively. Secondary outcomes will include cognitive flexibility and processing speed, metacognitive awareness, perceived stress, sleep quality, and academic performance, assessed using the Stroop Colour and Word Test, Metacognitive Awareness Inventory (MAI), Perceived Stress Scale-10 (PSS-10), Pittsburgh Sleep Quality Index (PSQI), and institutional CGPA records. Assessments will be conducted before and after the intervention.
Statistical Analysis: Data will be analysed using an intention-to-treat approach. Changes between groups over time will be examined using repeated-measures analysis, with baseline scores considered where appropriate. Effect sizes will be reported. Mediation analysis will explore whether perceived stress and metacognitive awareness contribute to changes in cognitive outcomes and academic self-efficacy. Statistical significance will be set at $p < 0.05$.

Expected Outcome: The intervention is expected to improve working memory, sustained attention, and academic self-efficacy, along with reductions in perceived stress and improvement in metacognitive awareness.
Conclusion: This study may contribute to the growing evidence on the use of traditional contemplative practices in addressing emerging challenges associated with excessive digital use in higher education. GM with orthographic visualization may provide a simple, low-cost, and classroom-based approach to support cognitive and academic well-being among medical students with PIU.

Impact of Yogic Practices and Nasya Therapy on hs-CRP and Cognitive Function among Patients with Stress Disorder: A Randomized Controlled Trial

Vijay Laxmi Soni

Chronic psychological stress keeps the pituitary adrenal (HPA) axis and the sympathetic adrenal medullary system active all the time. This constant activation is linked to grade systemic inflammation. It also affects attention, memory and executive function. Sensitivity C-reactive protein (hs-CRP) is a widely used marker that shows this inflammatory condition. Yoga has been studied for its effect on inflammation and on how people feel stressed. Nasya karma, a practice involves putting medicated oil into the nose. There is some evidence supporting each of these practices on their own. There are no studies that look at a structured yoga program combined with Nasya in people with stress disorder.

The study aims to find out if a combined program of yoga and Nasya karma (Anu Taila) can reduce hs-CRP, improve cognitive function and lower perceived stress.

This is a two-arm, parallel group randomized controlled trial. Adults aged 18 to 55 years with a (PSS-10) score of 14 or higher will be recruited from the Patanjali Ayurvedic Hospital. The intervention group will follow a 12-week supervised yoga program (30min/day). They will also do self-administered Nasya and Jala Neti three times a week. The control group will only receive care.The plan is to enroll 50 participants per group for a total of 100 participants.

The primary outcomes are hs-CRP and Montreal Cognitive Assessment (MoCA) scores. These will be measured at the start and at end of the intervention. The Perceived Stress Scale (PSS-10) is the outcome, also measured at baseline and after the intervention.

The study is expected to provide controlled evidence on whether a combined yoga and Nasya program can improve both cognitive outcomes in people with stress disorders.

Keywords: Stress disorder, yoga, Nasya karma, Anu Taila, Jala Neti, high sensitivity C-reactive protein, cognitive function, randomized controlled trial.

सह-जीवन: आधुनिक अकेलेपन, मानसिक तनाव, मनो-शारीरिक स्वास्थ्य एवं जीवनशैली विकारों के समाधान हेतु सामुदायिक जीवन की भूमिका - एक भारतीय दृष्टिकोण

आकृति, डॉ. अंजली प्रभाकर

आधुनिक समाज में भौतिक समृद्धि और व्यक्तिवादी जीवनशैली के प्रसार ने अकेलेपन, मानसिक अवसाद, चिंता (anxiety) और कई तरह की मानसिक व शारीरिक बीमारियां, जीवनशैली जनित विकारों तथा भावनात्मक संवेदनशीलता (hypersensitivity) में तेज़ी से वृद्धि की है। इसके विपरीत, दुनिया भर के पारंपरिक समाजों और भारतीय गांवों में लोग हमेशा से मिल-जुलकर एक बड़े समूह में रहते आए हैं। पारंपरिक समाज पारस्परिकता और सामुदायिक सह-जीवन पर आधारित थे। प्रस्तुत शोध पत्र में सामूहिक जीवन (*सह-जीवन*) के मनो-शारीरिक एवं व्यावहारिक आयामों का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है।

वैश्विक स्तर पर दीर्घायु क्षेत्रों (Blue Zones; जैसे जापान के ओकिनावा का मोआई तंत्र) के अनुभवों और पारंपरिक भारतीय ग्रामीण व्यवस्था के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि नित्य सामाजिक सहभागिता निवारक स्वास्थ्य (preventive healthcare) का एक सशक्त माध्यम है। विभिन्न स्वभाव वाले व्यक्तियों के साथ निरंतर संपर्क सहनशीलता, भावनात्मक परिपक्वता, मानसिक संतुलन तथा सहयोग की भावना को पुष्ट करता है, जिससे जीवन के संकटों से जूझने की आंतरिक प्रतिरोधक क्षमता विकसित होती है। पारंपरिक भारतीय सामाजिक परंपराएं जैसे संध्या सत्संग, सामूहिक कथा-श्रवण, त्योहारों की संयुक्त तैयारियां तथा रोज़मर्रा के सुख-दुख साझा करना हमेशा से एक ऐसा माध्यम रहा है, जो व्यक्तिगत चिंताओं को समाज में बांटकर सामूहिक संबल में रूपांतरित कर मनोकायिक तनाव को शांत करती हैं। इसके साथ ही, सामुदायिक स्तर पर संसाधनों को साझा करने से अनावश्यक उपभोग तथा भौतिक अपव्यय को नियंत्रित करता है एवं किसी भी विपत्ति के समय तुरंत मदद मिलती है। यह अध्ययन आयुर्वेद के सद्वृत्त एवं पारंपरिक जीवन मूल्यों के आधार।

आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस की सीमाएँ और पंचकोश सिद्धांत: मानव चेतना की अभेद्यता का एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

डॉ आरती पाल , डॉ हिमांशु पालीवाल

वर्तमान डिजिटल युग में आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस (AI), 'आर्टिफिशियल जनरल इंटेलिजेंस' (AGI) तथा 'एआई-सुपरइंटेलिजेंस' (ASI) का तीव्र और अभूतपूर्व विकास यह मौलिक प्रश्न खड़ा करता है कि क्या मशीनें अंततः मानव चेतना का स्थान ले सकती हैं? प्रस्तुत शोध पत्र तैत्तिरीय उपनिषद में वर्णित पंचकोश सिद्धांत (अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय तथा आनन्दमय कोश) के आलोक में AI की अंतिम सीमाओं का एक गहन, विस्तृत व अंतःविषय विश्लेषण प्रस्तुत करता है।

इस शोध का मुख्य सिद्धांत एवं केंद्रीय निष्कर्ष यह है कि AI कितना भी उन्नत, द्रुतगामी या स्व-संचालित क्यों न हो जाए, वह मानव चेतना के इन पाँचों कोशों की अभेद्य सीमा को कभी लांघ (Transcend) नहीं सकता। AI केवल 'अन्नमय' (हार्डवेयर), 'प्राणमय' (विद्युत/डेटा प्रवाह) तथा 'मनोमय' व 'विज्ञानमय' कोश के सांख्यिकीय व तार्किक घटकों का अनुकरण (Simulation) कर सकता है। स्व-चेतना (Self-awareness), आंतरिक अनुभूति

(Qualia) और 'आनन्दमय कोश' अभौतिक तथा अ-संगणनीय (Non-computational) होने के कारण गणितीय कोड्स और सिलिकॉन चिप्स की पहुंच से सदैव परे रहेंगे। यह शोध पत्र गॉडेल के अपूर्णता प्रमेय, जॉन सर्ले के चाइनीज रूम तर्क, चाल्मर्स की क्वालिया समस्या तथा उपनिषदिक तत्वमीमांसा के माध्यम से AI से जुड़ी गंभीर वैचारिक, नैतिक व अस्तित्वगत चुनौतियों को भी विस्तार से रेखांकित करता है।

मुख्यशब्द (Keywords): आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस, पंचकोश सिद्धांत, तैत्तिरीय उपनिषद, चेतना (Consciousness), जड़ एवं चेतन, क्वालिया (Qualia), गॉडेल का अपूर्णता प्रमेय, चाइनीज रूम तर्क, अ-संगणनीयता (Non-computability)।

A Critical Comparative Study of Mental Regulation in Yogic Traditions, Ayurvedic Sattvavajaya, and Contemporary Clinical Hypnosis”

Siddharth Shankar Muduli, Deepak Sharma

Indian knowledge traditions and contemporary psychology offer different perspectives on understanding and regulating mental processes. Classical Yoga explores the discipline of the mind within a broader philosophical and practical framework, while Ayurveda describes Sattvavajaya as a non-pharmacological approach to mental regulation, aimed at restraining the mind from unwholesome objects. Contemporary clinical hypnosis involves procedures that use hypnotic induction and suggestion to influence experiences such as perception, sensation, cognition, and behaviour. Examining these approaches together raises important questions about their conceptual similarities, fundamental differences, and the extent to which comparisons are supported by evidence.

This paper presents a critical narrative review of classical Yoga, Ayurvedic Sattvavajaya, and contemporary clinical hypnosis. It examines their respective aims, approaches to mental regulation, and interpretations of attention and suggestion. Drawing on selected classical-text translations, conceptual publications, reviews, and clinical studies, the paper distinguishes traditional descriptions from contemporary interpretations and theoretical explanations from empirical findings.

The review aims to clarify where meaningful comparisons can be made and where important conceptual and evidentiary differences remain. It also examines the limitations of interpreting traditional practices through modern psychological frameworks and of generalising findings from specific clinical interventions to broader traditions. By bringing these perspectives into a common critical discussion, the paper seeks to establish a clearer basis for future research and informed dialogue between Indian knowledge traditions and contemporary psychology without presuming that their concepts, mechanisms, or therapeutic effects are equivalent.

Keywords

Keywords: Classical Yoga, Ayurveda-Sattvavajaya, clinical hypnosis, suggestion, mental regulation, psychological interventions.

Himalayan Indigenous Healing Traditions: Ayurveda, Sleep, and Dreaming

Swastika; Laxmidhar Behera; Venkatesh H. Chembrolu

Himalayan indigenous healing traditions encompass interconnected knowledge of medicinal plants, traditional foods, daily routines, seasonal practices, and community-based healthcare. In Himachal Pradesh, ethnomedicinal knowledge includes the use of *Angelica glauca* (Chura), whose roots are used as a spice and are traditionally used for complaints such as cough, fever, joint pain, and gastrointestinal complaints. Other plants, including *Justicia adhatoda* and *Ajuga integrifolia*, are also documented in regional ethnomedicinal practices. These traditions reflect relationships between local ecology, food resources, cultural practices, and everyday health management. However, Himalayan indigenous healing knowledge, Ayurvedic perspectives on sleep and dreaming, and contemporary sleep science remain insufficiently integrated within a common research framework. Using a literature-based conceptual approach, this paper examines documented Himalayan ethnomedicinal knowledge alongside Ayurvedic concepts of *Nidrā* (sleep), *Svapna* (dreams), and *Manas* (mind). It discusses the classical classification of dreams into seven categories and traditional interpretations associated with Vāta, Pitta, and Kapha, alongside contemporary research on sleep architecture and dream experiences during rapid eye movement (REM) and non-rapid eye movement (NREM) sleep. The paper proposes an integrative framework for documenting medicinal plant uses, dietary practices, daily routines, seasonal lifestyles, and community healing knowledge, and for investigating their possible associations with sleep quality, dream experiences, and well-being. Future research may combine ethnographic documentation, validated sleep questionnaires, dream diaries, electroencephalography, and polysomnography. The framework distinguishes documented traditional uses and interpretations from clinically established therapeutic effects and does not assume direct equivalence between Ayurvedic concepts and modern physiological processes. It provides a foundation for interdisciplinary research that preserves the cultural context of Himalayan healing traditions while developing empirically testable questions within Indian knowledge systems.

Keywords: Himalayan Indigenous Knowledge; Ethnomedicine; Ayurveda; Sleep and Dreaming; Traditional Healing

Integrating Asian Traditional Practices into Cancer Care: Implications for Quality of Life and Supportive Oncology

Ishani

Cancer and its treatments can significantly affect patient's physical functioning, psychological well-being, social relationships, and quality of life. Rapidly increasing attention towards complementary and integrative approaches that may support conventional oncological treatment. This review synthesizes information from previously published literature on Asian traditional practices used worldwide in cancer care, focusing on their potential contributions to symptom management, supportive oncology and health-related quality of life.

Study valuably encompasses diverse traditional selective techniques include mind body approaches, including yoga, pranayama, meditation, mindfulness, Ayurveda, traditional Chinese medicine, acupuncture, acupressure, Tai Chi, Qigong and selected traditional herbal therapies.

Reiki is also reported as culturally rooted supportive practices are also considered where relevant to the published evidence. These studies are examined to understand the potential benefits of these interventions for cancer-related fatigue, pain, anxiety, depression, sleep disturbances, treatment-related symptoms, and emotional well-being. Particular attention is given to evidence suggesting that yoga, meditation, acupuncture, Tai Chi, and Qigong may contribute to selected supportive care outcomes.

The current collective literature is critically considered in relation to methodological limitations, variations in intervention protocols, differences in study populations, and the strength of available clinical evidence. Also, Safety concerns, particularly potential interactions between herbal preparations and anticancer medications, are also addressed. The reviewed literature highlights the potential role of evidence-informed Asian traditional practices as complementary components of multidisciplinary cancer care. However, their benefits vary by intervention and outcome, and further high-quality research is needed. These practices should support, rather than replace, established cancer treatments and should be integrated through informed collaboration between patients and oncology professionals.

Keywords: Asian traditional practices, complementary and alternative medicine, integrative oncology, cancer care, quality of life, supportive oncology, mind body therapies.

Yagyopathy and Intra-nasal Drug Delivery: Parallels in Therapeutic Practices and Rituals

Devender Thakur

The manuscript explores the similarities between modern intranasal drug delivery systems (INDDS) and Yagyopathy for the treatment of central nervous system (CNS) related disorders such as anxiety, depression, suicidal tendencies, brain hemorrhage, and paralysis. Yagyopathy involves the ritualistic inhalation of herbal fumes. Both methods involve the delivery of medicinal compounds by the nasal cavity bypassing the metabolic degradation by the liver's first-pass metabolism. This route allows direct access to the brain and rapid drug absorption with reduced side effects. Both systems are non-invasive and facilitate faster recovery.

The study highlights Yagyopathy's efficacy in alleviating psychosomatic and neurological conditions by utilizing herbs such as *Acorus calamus* and *Bacopa monnieri* in yagya formulation. These herbs modulate neurotransmitters like serotonin and dopamine and regulate other related pathways. The manuscript includes observational studies of patients having CNS-related issues, treated with Yagyopathy, showing significant improvements in quality of life parameters and symptom reduction. The study concludes that Yagyopathy has the potential to offer a complementary therapeutic approach to managing complex health conditions, with a need to explore its potential to be integrated with modern medical treatments.

Keywords:

Intranasal drug delivery, Yagyopathy, Central nervous system, Brain hemorrhage, Herbal inhalation, Complementary therapy, Paralysis, Mental health issues

Vedic Wellness Practices from Jyeṣṭha Ṛgvidhānam

Dr. N. Sridhar

The *Jyeṣṭha Ṛgvidhānam*, attributed to Maharṣi Śaunaka, is an important text of Vidhāna literature that describes the ritual application of Ṛgvedic mantras for addressing various forms of human suffering and attaining physical, mental, and spiritual well-being. This paper explores the Vedic wellness practices prescribed in the *Jyeṣṭha Ṛgvidhānam*, with particular emphasis on *Mantra Cikitsā* and *Homa Cikitsā*, traditionally associated with *Daiva-vyapāśraya-cikitsā* in Āyurveda. The study examines selected verses of the text and identifies the corresponding Ṛgvedic mantras and sūktas, their traditional therapeutic applications, prescribed modes of recitation, and associated ritual conditions.

The analysis reveals that the text presents a diverse range of wellness practices addressing mental and physical health concerns. Mental wellness applications include practices associated with purification of the mind, general psychological well-being, alleviation of fear, regulation of anger, and improvement of intellectual clarity. Physical health applications include traditional prescriptions relating to fever, head-related ailments, abdominal pain, respiratory and systemic disorders, longevity, and other disease conditions. The text also specifies ritual parameters such as the number of repetitions, auspicious days, lunar periods, and appropriate locations for mantra recitation and homa. Certain practices incorporate specific substances and natural settings, demonstrating the integrated ritual, environmental, and spiritual dimensions of these traditions.

By correlating the prescriptions of the *Jyeṣṭha Ṛgvidhānam* with their corresponding Ṛgvedic sources, this study highlights the systematic organization of mantra-based wellness knowledge within Vedic literature. It contributes to the documentation and preservation of traditional Indian knowledge systems and provides a textual foundation for further interdisciplinary research into Vedic wellness practices. The therapeutic claims discussed are presented as traditional textual prescriptions and require systematic empirical investigation to establish their clinical efficacy and contemporary applicability.

Keywords: Jyeṣṭha Ṛgvidhānam, Vedic Wellness, Mantra Cikitsā, Homa Cikitsā, Daiva-vyapāśraya-cikitsā, Ṛgveda, Mental Well-being.

Role of Mud Pack in Reducing Pain and Stiffness in Knee Osteoarthritis

Anchal Porwal

Knee osteoarthritis (KOA) is a leading cause of chronic musculoskeletal disability, often causing relentless pain, joint stiffness, and restricted mobility that severely compromise a patient's independence and quality of life. While conventional management strategies exist, their long-term efficacy is frequently limited by adverse effects, cost, or incomplete symptom relief, driving interest toward safe, affordable, and non-pharmacological modalities. Mud pack therapy—a core intervention in naturopathic medicine—offers a promising complementary approach by utilizing local thermal retention and mineral dynamics to alleviate joint discomfort, reduce stiffness, and enhance functional mobility. While existing literature on peloid therapy demonstrates encouraging improvements in pain scores and physical function, many findings remain confounded by multi-modal spa protocols, making it difficult to isolate the precise therapeutic efficacy of mud packs alone. This review critically examines the role of mud pack therapy as a supportive, patient-centered intervention within integrated osteoarthritis care. It highlights its physiological mechanisms, synthesizes current clinical evidence, and underscores the critical need for

standardized application protocols and high-quality clinical trials to establish its definitive place in evidence-based naturopathic practice.

The Evolving Concept of Rāja Yoga in Yogic Literature: A Comparative and Comprehensive Study of Pātañjali Yoga Sutras and its commentators , Vedantic prospective, Haṭha Yoga Texts, Bhagavad Gītā, Yoga Upaniṣadic, and Telugu Traditions

Dr. Anjali Prabhakar, Prof. Sri Krishna Chandaka

The term Rājayoga occupies a significant yet fluid position in the history of Indian Yoga. Although frequently identified with Patañjali's Yoga, its textual history reveals diverse meanings across yogic traditions. This study examines the conceptual transformation of Rājayoga through a comparative textual analysis of the Pātañjala Yoga Sūtras, Dattātreya Yoga Śāstra, Amaraugha Prabodha, Yoga Bīja, Haṭha Yoga Pradīpikā, Gheraṇḍa Saṃhitā, Śiva Saṃhitā, Siddha-Siddhānta-Paddhati, Yoga Tattva Upaniṣad, Bhagavad Gītā, Aṣṭāvakra Gītā, and selected Telugu texts, including Śivayogasāramu, Śrī Sītārāmāñjaneya Saṃvādamu, and Rājayōgasāramu. Comparative textual and hermeneutical methods are employed to examine the relationships among citta, prāṇa, mantra, haṭha, laya, nāda, dhyāna, samādhi, jñāna, and mokṣa.

The analysis indicates that Rājayoga is not a historically uniform system. In the Pātañjala tradition, later interpretations emphasize mental restraint, meditation, samādhi, and kaivalya. Medieval Nātha and Haṭha texts develop broader conceptual frameworks. The Yoga Bīja presents Mantra, Haṭha, Laya, and Rāja Yoga as progressive dimensions of Mahāyoga, while the Amaraugha Prabodha relates Haṭha to a higher Śaiva Rājayoga. The Haṭha Yoga Pradīpikā emphasizes their interdependence, whereas the Gheraṇḍa Saṃhitā associates Rājayoga with samādhi and liberation. The Siddha-Siddhānta-Paddhati highlights the transformation of the psycho-physical body, prāṇa, and consciousness, while the Yoga Tattva Upaniṣad presents Rājayoga as a culmination of yogic approaches. The Bhagavad Gītā emphasizes meditation and self-mastery, whereas the Aṣṭāvakra Gītā focuses on direct Self-realization. Selected Telugu traditions extend this understanding through Tāraka, Sāṃkhya, Amanaska, and higher states of consciousness.

The study argues that Rājayoga reflects conceptual reconfiguration rather than the transmission of a single system, encompassing diverse pathways toward Parampada, Jīvanmukti, Sahaja, and Turīya.

Keywords: Rājayoga, Patañjali, Nātha, Haṭha Yoga, Yoga Bīja, Gheraṇḍa Saṃhitā, Siddha-Siddhānta-Paddhati, samādhi, Amanaska, Turīya, Indian Knowledge Systems.

भारतीय ज्ञान परम्परा में अष्टाङ्गयोग की अवधारणा : समग्र व्यक्तित्व-विकास के संदर्भ में एक अध्ययन

अभिषेक कुमार

भारतीय ज्ञान परम्परा मानव जीवन को केवल भौतिक उपलब्धियों तक सीमित न रखकर उसके शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, नैतिक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक विकास को समान रूप से महत्त्व प्रदान करती है। इस समग्र जीवन-दृष्टि में योग का स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। योग व्यक्ति के अन्तर्बाह्य जीवन में संतुलन स्थापित करने वाली ऐसी साधना-पद्धति है, जिसका उद्देश्य केवल शारीरिक स्वास्थ्य की प्राप्ति न होकर चित्त-शुद्धि, आत्मानुशासन, विवेक-

विकास तथा अन्ततः आत्मस्वरूप की अनुभूति तक पहुँचना है। महर्षि पतञ्जलि द्वारा प्रतिपादित अष्टाङ्गयोग इस दृष्टि से विशेष महत्त्व रखता है। यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान एवं समाधि,ये आठ अंग व्यक्ति के क्रमिक परिष्कार एवं चेतना के उन्नयन की व्यवस्थित प्रक्रिया को अभिव्यक्त करते हैं। योगसूत्र में कहा गया है- "यम-नियम-आसन-प्राणायाम-प्रत्याहार-धारणा-ध्यान-समाधयोऽष्टावङ्गानि" (योगसूत्र, 2.29)।

प्रस्तुत शोधपत्र में भारतीय ज्ञान परम्परा की समग्र जीवन-दृष्टि के संदर्भ में अष्टाङ्गयोग की अवधारणा का विवेचन किया गया है। अध्ययन का प्रमुख उद्देश्य यह स्पष्ट करना है कि अष्टाङ्गयोग किस प्रकार व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक, नैतिक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक व्यक्तित्व के समग्र विकास में सहायक होता है। इसके साथ ही वर्तमान जीवन-परिस्थितियों में अष्टाङ्गयोग की प्रासंगिकता का भी विवेचन किया गया है। अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि अष्टाङ्गयोग को केवल आसन एवं शारीरिक अभ्यास तक सीमित करना उसके व्यापक दार्शनिक एवं व्यावहारिक स्वरूप को संकुचित करना है। वस्तुतः यह एक समग्र जीवन-पद्धति है, जिसमें बाह्य आचरण के परिष्कार से प्रारम्भ होकर शरीर एवं प्राण के नियमन, इन्द्रिय-संयम, चित्त की एकाग्रता, ध्यान तथा चेतना के उच्चतर परिष्कार तक की क्रमबद्ध साधना निहित है। अतः अष्टाङ्गयोग भारतीय ज्ञान परम्परा में समग्र एवं संतुलित व्यक्तित्व-निर्माण की एक प्रभावी साधना-पद्धति के रूप में आज भी प्रासंगिक है।

प्रमुख शब्द: भारतीय ज्ञान परम्परा, भारतीय ज्ञान प्रणाली, अष्टाङ्गयोग, योग, समग्र व्यक्तित्व-विकास, यम, नियम, ध्यान, समाधि।

The Next Frontier in Yoga Research: Transitioning from Phenotypic Outcomes to Establishing Systemic Mechanism in Yoga Therapeutics

Peddiraju Narendranath Datta, Dr Deena Nath Gupt

Yoga a concept of ancient Indian Knowledge has now emerged as the easily accessible and most sought-after therapy in the field of complementary and alternative Medicine. The unyielding resolve to spread importance and awareness of yoga, visionaries such as Yoga rishi shri Ramdev ji and with the contributions and efforts of many others alike worldwide, yoga has evolved from just being spiritual and philosophical discipline into an alternative intervention for a failing, expensive profit driven and unreliable modern health care system. To enhance its role in increasing its applications and to treat various diseases effectively, the modern scientific community mandates vigorous scientific research to validate its efficacy in treating various diseases.

Though the volume of research in the field of yoga has is on raise, it often fell short in achieving the level of validation standards to attest the reliability which is demanded by the modern medical community. Much of modern research in yoga follows a paradigm that focuses more on the surface outcomes like reduced psychological and physiological aspects like stress levels, pain and disease symptoms rather than the biological mechanisms that prompted this outcome.

For example, while Bhastrika Pranayama is highly effective in treating COPD, further investigations into its biomechanics revealed its effects on the nervous system and huge impact on heart and blood pressure leading to broadening therapeutic scope of clinical application of Bhastrika pranayama in diseases related to brain and heart.

This presentation explores the necessity of the research community, specifically the yoga researchers to shift the priorities of their effort in mapping out the systematic mechanisms that are yielding the results rather than reiterating the effects of yoga to improve the quality and reliability of their research.

Golden Milk and Its Glory: A Systematic Review of Its Ayurvedic Significance and Contemporary Health Benefits

Lavanya Raj, Kavita

Golden milk, traditionally prepared using milk, turmeric, black pepper and other spices such as ginger, cinnamon and cardamom, has been consumed in Ayurvedic and Indian household traditions as a nourishing and warming beverage. Contemporary research has increasingly investigated its bioactive components, particularly curcumin, in relation to inflammation, immunity, gastrointestinal health, sleep and metabolic functions. This systematic review aimed to synthesize the available scientific evidence regarding the potential health benefits of golden milk and its major ingredients.

Methodology

A systematic review was conducted following the Preferred Reporting Items for Systematic Reviews and Meta-Analyses (PRISMA) guidelines. Relevant research studies were identified through electronic databases using keywords and combinations related to golden milk, turmeric, curcumin, ginger, cinnamon, cardamom, immunity, inflammation, sleep, cognition and nutritional benefits. Studies relevant to the health effects of golden milk or its principal ingredients were screened according to predefined eligibility criteria. Data were extracted and narratively synthesized according to the reported health outcomes.

Findings and Observations

The reviewed literature suggests that curcumin possesses anti-inflammatory and antioxidant properties and may have potential relevance in inflammatory and metabolic conditions. Ginger has demonstrated effects on gastrointestinal motility and inflammatory pathways, while cinnamon has been investigated for its potential metabolic and cognitive benefits. Cardamom has also demonstrated antioxidant and antimicrobial activities. Milk provides protein and essential nutrients, including tryptophan, which may contribute to nutritional and sleep-related functions. However, much of the available evidence concerns individual ingredients rather than the complete golden milk formulation, and findings vary according to dosage, preparation and study design.

Conclusion

Golden milk represents a traditional dietary preparation with plausible health-promoting properties supported by emerging scientific evidence. Nevertheless, stronger clinical studies specifically evaluating golden milk are required before definitive therapeutic claims can be made.

Keywords: Golden Milk; Curcumin; Turmeric; Anti-inflammatory Properties; Immunomodulation; Sleep.

A DIGITAL WELLNESS AND YOGA TOURISM: EXAMINING THE IMPACT OF SOCIAL MEDIA ON DESTINATION CHOICE

Dr. Surya Prakash, Dr. Pooja

Research Parameters: This study investigates the influence of social media on destination choice within the context of digital wellness and yoga tourism. The key research parameters include social media exposure, influencer credibility, user-generated content, destination image, and travel intention. The study focuses on individuals who actively engage with wellness-related content on digital platforms and seek yoga-based travel experiences.

Methodology: A quantitative research design was adopted to examine the relationship between social media engagement and destination selection among yoga and wellness tourists. Primary data were collected through a structured questionnaire administered to 300 respondents drawn from yoga communities, wellness groups, and social media networks. Convenience and purposive sampling techniques were employed. Data were analysed using descriptive statistics, correlation analysis, and multiple regression techniques to assess the significance and strength of relationships among the study variables.

Data Findings: The findings indicate that social media plays a significant role in shaping destination preferences among yoga and wellness tourists. User-generated content and wellness influencer recommendations emerged as the most influential factors affecting destination image and travel intention. Visual content showcasing authentic experiences, retreat facilities, and wellness activities was found to positively influence destination attractiveness. The results further revealed a strong positive relationship between social media engagement and tourists' intentions to visit yoga and wellness destinations. Respondents demonstrated higher levels of trust in peer reviews and influencer-generated content compared to traditional destination marketing communications.

Conclusion: The study concludes that social media has become a critical determinant of destination choice in the yoga and wellness tourism sector. Digital platforms not only create awareness but also influence perceptions, attitudes, and travel behaviour through interactive and visually engaging content. The findings highlight the growing importance of influencer marketing and user-generated content in promoting wellness destinations. Tourism marketers, destination management organisations, and yoga retreat operators can leverage social media strategically to enhance destination image and attract wellness-oriented travellers.

Keywords: Digital Wellness; Yoga Tourism; Wellness Tourism; Influencer Marketing; User-Generated Content

Bheshaja in the Indian Health Tradition: A Conceptual Exploration of *Namoccharana* and the *Dhanvantari* Tradition

Kanika Sharma, Dr. Anjali Prabhakar

The concept of health and healing in the Indian tradition extends beyond the use of medicines and physical treatment. In Ayurveda, the term Bheshaja is associated with medicine, treatment, and means of managing disease. At the same time, Indian devotional texts use the term Bheshaja in a remedial context, where the recitation of divine names is presented as a means associated with healing. The verse “Achyutananta Govinda Namoccharana Bheshajat” refers to the utterance of the names Achyuta, Ananta, and Govinda as Bheshaja. The Ayurvedic tradition is also closely associated with Dhanvantari, who is described in the Sushruta Samhita as a teacher of Ayurveda and surgery.The present conceptual study aims to examine the meaning and scope of Bheshaja in selected Indian classical, Ayurvedic, and devotional texts. It particularly explores how Bheshaja is represented in two related contexts: medicinal and therapeutic approaches in Ayurveda, and Namoccharana as a traditional remedial concept in devotional literature. The study will further examine the Dhanvantari tradition to understand the Ayurvedic perspective of healing and compare it conceptually with the representation of Achyutananta Govinda Namoccharana.The

study is based entirely on secondary textual sources and follows a qualitative, conceptual, and textual approach. No human participants, experimental intervention, or statistical analysis are involved. The study seeks to develop a clearer understanding of Bheshaja as a broader concept of remedy within the Indian health tradition, while recognising the distinct contexts in which it is used. It does not aim to establish the clinical efficacy of Namoccharana, but to examine its traditional textual representation and its conceptual relationship with the broader Indian understanding of healing.

Keywords: Bheshaja, Namoccharana, Dhanvantari, Ayurveda, Indian Health Tradition, Healing.

FROM YOGIC HERITAGE TO WELLNESS ECONOMYEXPLORING THE ECONOM IC POTENTIAL OF YOGA AND WELLNESS TOURISM IN INDIA

Vaishnavi Verma, Dr. Ritwik Sahai Bisariya

Yoga is one of India's most significant knowledge traditions and has increasingly become a global cultural, health and wellness phenomenon. Its contemporary international expansion has created opportunities not only for individual well-being but also for tourism, employment, entrepreneurship, hospitality, education, wellness services and local economic development. This paper examines the economic potential of Yoga and Wellness Tourism in India by connecting the traditional knowledge foundations of Yoga with the contemporary wellness economy. The study adopts a qualitative and exploratory research design based primarily on secondary data from government publications, international tourism and wellness reports, and relevant scholarly literature. The analysis demonstrates that Yoga-based tourism can generate economic value through direct tourism expenditure as well as through a wider ecosystem comprising accommodation, retreats, teacher training, Ayurveda, traditional and complementary wellness services, wellness food, handicrafts, cultural experiences, transportation and digital wellness services. Global wellness tourism expenditure reached approximately US$893.9 billion in 2024, while the overall wellness economy reached approximately USS6.8 trillion. India possesses distinctive comparative advantages because Yoga is embedded in its civilisational and philosophical heritage rather than being merely a contemporary commercial wellness product. However, the economic expansion of Yoga tourism also raises questions concerning authenticity, standardisation, cultural commodification, environmental sustainability, quality assurance and equitable distribution of tourism benefits. The paper argues that India 's economic opportunity lies in developing an integrated Yoga and Wellness Tourism ecosystem that combines traditional knowledge, credible pedagogy, destination development, community participation, digital innovation and sustainable tourism principles. The paper concludes by proposing a framework for transforming Yogic heritage into a culturally responsible and economically productive wellness tourism sector.

Keywords: Yoga; Wellness Tourism; Wellness Economy; Indian Knowledge Systems; Sustainable Tourism; Yoga Tourism; Cultural Heritage; Economic Development; India

Effect of integrated therapy (Yoga and Kati Basti) in the management of Lumbar Disc Herniation

Vardaan Singh Saini, Dr. Vinay Km. Sharma, Dr V.K. Katiyar

Background: Lumbar disc herniation is a very common spinal condition characterised by low back pain, radiating pain, restricted spinal mobility, and functional disability, which can adversely affect daily activities and quality of life. More than 619 million people are affected by some kind of low back pain, of which around 21% of patients suffer from LDH. Conventional management may include pharmacological treatment, physiotherapy, and surgical intervention in selected cases. Traditional approaches such as Kati Basti and Yoga Therapy may provide a complementary, non-invasive approach for managing symptoms and improving functional status.

Objective: The present study aimed to evaluate the effect of integrated therapy comprising Yoga Therapy and Kati Basti in the management of lumbar disc herniation.
Methods: An observational study was conducted among 40 patients diagnosed with lumbar disc herniation. Participants received an integrated therapeutic intervention consisting of Kati Basti along with a structured Yoga Therapy protocol. The intervention was designed to address pain, spinal mobility, functional limitations, and overall well-being. Clinical outcomes were assessed using VAS, QBPDS, ODI and WHO-QoL before, after and 1 month following the intervention.
Results: Following the intervention, significant improvement was observed in clinical parameters related to pain (VAS), functional disability (ODI & QBPDS), spinal mobility, and quality of life.

Conclusion: The findings suggest that an integrated approach combining Kati Basti and Yoga Therapy may be a useful complementary strategy in the management of lumbar disc herniation. The approach may help reduce pain and disability while supporting functional recovery and quality of life.

Keywords: LIVDP, LDH, Lumbar Disc Herniation, Lumbar Intervertebral Disc Prolapse, Low Back Pain, Kati Basti, Yoga Therapy, Integrated Therapy

Etymological Narratives of selected Animal-Inspired Asanas and their Effect on Psychological well-being of Adolescents

Arti Saini and Gurneet Kaur

The traditional yogic belief that humans are linked to nature and it is reflected in animal-inspired yogasana. By closely observing animal movements and behaviour, ancient practitioners developed these poses, incorporating both anatomical accuracy and symbolic meaning into their Sanskrit nomenclature. Asanas like Bhujangasana, Gomukhasana, and Simhasana etc., show how psychological qualities like tranquillity, awareness, concentration, memory and expressive confidence are connected to physical forms.

Aim

This research will investigate the etymological meaning and story behind animal-inspired yoga poses and will analyse their effects on psychological parameters such as self-esteem, self-awareness, concentration, emotional regulation and mindfulness.

Methods:

The study design will be pre-post research design. The participants will be 150 school going adolescents divided into 5 groups: each group (N=30) will be intervened with one yogasana. The participant allocation will be 1:1:1:1:1 in all five groups.

Results:

Results will show the psychological impacts of animal-inspired asanas on self-esteem, self-awareness, concentration, emotional regulation and mindfulness after 3 months of intervention. By focusing attention on physical sensations, these asanas will improve self-awareness and mindfulness. By activating the parasympathetic nervous system, these techniques promote emotional regulation while lowering stress and impulsivity. Additionally, postures emphasizing strength and balance enhance mental discipline, focus, and attention.

Keywords: Animal-inspired Yogasana, Etymology, psychological impact, cognition, emotional regulation, concentration, self-awareness, mindfulness.

Biomechanical Aspects of Pranayama

Dr. V.K. Katiyar

Pranayama is a traditional yogic practice involving conscious regulation and modification of the breathing process. This presentation aims to explores the biomechanical aspects of Pranayama with particular emphasis on the mechanics of inspiration, expiration, thoracic movement and respiratory muscle function during various pranayamas. Breathing is a mechanical process involving coordinated movements of the diaphragm, ribs and thoracic cage, which produce changes in thoracic volume and pressure. During inspiration, contraction of the diaphragm and external intercostal muscles increases the dimensions of the thoracic cavity, helping the movement of air into the lungs. Expiration generally involves relaxation of these muscles and elastic recoil of the respiratory structures. Different Pranayama practices modify the normal breathing pattern through changes in breathing rate, force, rhythm and breath retention. Practices such as Bhastrika, Kapalabhati, Anulom Vilom, Bhramari and Udgith involve different respiratory movements and mechanical demands. The mechanics of Kapalabhati can be related to rapid force production and changes in pressure, while alternate-nostril breathing involves changes in airflow through different airway passages. Understanding these mechanical aspects may provide a better perspective on how Pranayama influences breathing patterns and respiratory function. The presentation therefore will highlight the importance of integrating biomechanics with yogic breathing practices for a more comprehensive understanding of Pranayama.

Keywords

Pranayama, Mechanics, Breathing Patterns, Kapalbhati, Bhastrika, Anulom-Vilom, Udhgeeth

Effect of a 12-Week Yogic Sukshma Vyayama Intervention on Upper and Lower Limb Strength among Adolescents

Lata

Background: Adolescents may experience a decline in muscular strength due to inactivity and unhealthy habits. Having adequate strength in both upper and lower limbs is vital for performing physical tasks and daily routines. This study, therefore, explored the impact of a 12-week Yogic Sukshma Vyayama intervention (YSVI) on enhancing the strength of adolescents' upper and lower limbs.

Methods: This study was conducted using a two-group pre-test–post-test experimental study design and included 100 adolescents (mean ± standard deviation: EG 14.64 ± 1.4; CG 14.28 ± 1.24; range: 13-19 years). Participants were equally assigned to the experimental group (YG, n= 50) and control group (CG, n= 50). The YG participated in a 12-week Yogic Sukshma Vyayama intervention (YSVI), while participants in the CG continued with their usual daily activities. Upper and lower limb strength was assessed before and after the intervention using the Jamar Handgrip Dynamometer test and Leg and back strength test, respectively. The collected data were analyzed using SPSS version 28.0. A two-way repeated measures ANOVA (RM-ANOVA) was used to examine the changes within and between the groups. A p-value < 0.05 was considered statistically significant.

Results: The effect size of 12 – week YSVI was significant in improving right-hand strength ($F(1, 98) = 12.056$, $p < 0.001$), left-hand strength ($F(1, 98) = 7.450$, $p = 0.008$), and lower limb strength ($F(1,98) = 27.739$, $p<0.000$), n the experimental group compared with the control group, indicating an increase in upper and lower limb strength following the intervention.

Conclusion: Adolescents' right-hand, left-hand, and lower limb strengths were considerably enhanced by the 12-week Yogic Sukshma Vyayama intervention. YSVI may be a straightforward, approachable, and useful strategy for enhancing teenage muscular strength. It is necessary to conduct more research with larger and more varied populations.

Key Words: *Yogic Sukshma Vyayama;* Adolescents; Upper Limb Strength; Lower Limb Strength; Muscular Strength.

Herb-Drug Interactions and Pharmacovigilance: A Review of Interactions between Ayurvedic and Yogic Practices and Allopathic Medicines

Vaibhav Rathore, Prof. (Dr.) Krishna Kumar Sharma, Dr. Shubham Tyagi

Ayurvedic herbs and yogic practices are increasingly used alongside allopathic medicines, often without the knowledge of the treating physician. This concurrent use raises the risk of herb-drug interactions, which are under-reported and poorly documented. This narrative review aims to summarize the reported interactions of commonly used Ayurvedic herbs and yogic practices with conventional drugs and to examine the role of pharmacovigilance in ensuring their safe integration. A literature search of PubMed, Google Scholar and AYUSH research portals was carried out for case reports, clinical and experimental studies, and regulatory documents on herbs such as Ashwagandha, Guduchi, Brahmi, Yashtimadhu, Guggul, Turmeric and Garlic. Reported concerns include additive sedation with CNS depressants, altered glycaemic control with antidiabetic drugs, increased bleeding tendency with anticoagulants, and electrolyte and blood pressure changes with antihypertensives and diuretics. Yogic practices such as pranayama and

asana may also enhance the effect of antihypertensive and antidiabetic medication, requiring monitoring of blood pressure and blood glucose. Most evidence comes from preclinical studies, case reports and small trials, and herbal product variability, such as differences in plant part, extract and dose, complicates interpretation. Systems such as the Pharmacovigilance Programme of India and the AYUSH pharmacovigilance initiative exist, but adverse event reporting for traditional medicines remains low. Strengthening reporting, standardizing formulations, training practitioners and encouraging patients to disclose all herbal use are essential. Integrative care can be safe only when herb-drug and practice-drug interactions are systematically monitored.

Keywords: Herb-drug interaction, Pharmacovigilance, Ayurveda, Yoga, Allopathic drugs, AYUSH, Patient safety

From Himalayan Gold to Global Medicine: An Integrative Evidence-Based Review of Hippophaerhamnoides in the Management of Lifestyle and Chronic Diseases

Harish Ranjan Behera, Muskan Joshi, Aman Singh

Hippophae rhamnoides (Sea Buckthorn), popularly known as “Himalayan Gold,” represents a unique pharmacological bridge between traditional ethnomedicine and modern clinical science. Rich in over 190 bioactive compounds including flavonoids, carotenoids, omega fatty acids (notably omega-7), vitamins, and phytosterols, it exhibits potent antioxidant, anti-inflammatory, immunomodulatory, andmetabolic regulatory properties.

This integrative review synthesizes evidence from Ayurveda, Sowa-Rigpa, and recent biomedicalresearch (2020–2026), along with institutional findings from All India Institute of Medical Sciences(AIIMS) and Defence Research and Development Organisation (DRDO), including the strategiccontributions of Dr. Brahma Singh48. Sea Buckthorn demonstrates significant therapeutic potential inmanaging non-communicable diseases such as diabetes, cardiovascular disorders, obesity, gastritis, liver dysfunction, neurodegeneration, and skin damage10. Mechanistically, it exerts pleiotropic (multi-target) effects by modulating oxidative stress, inflammation,lipid metabolism, gut microbiota, and tissue repair pathways29. Advances in phytosome technology have further enhanced its bioavailability and clinical efficacy6. Traditional Rasayana concepts and its use as “Star-Bu” in Tibetan medicine align closely with modern pharmacological evidence5,15-18. Overall, Sea Buckthorn demonstrates a strong safety profile with minimal adverse effects19 and holds promise as a multi-functional botanical agent for integrative management of chronic diseases. However, large-scale clinical trials are required to establish standardized dosage and long-term therapeutic protocols.

Keywords: Hippophae rhamnoides, Sea Buckthorn, Integrative Medicine, Chronic Diseases, Phytotherapy,

Bioactive Compounds.

Sustaining Harmony Through Right Conduct: A Qualitative Textual Study on Sadvṛtta and Ācāra Rasāyana

Shruti Sharma

Today, the world is experiencing growing disruption in personal and social harmony, and people are accepting this decline as the "new normal." Subtle everyday imbalance: changes in how individuals think, communicate, regulate emotions, and respond to challenges may seem

negligible in isolation; when repeatedly expressed through behaviour, they may affect personal impression, relationships, families, and eventually the broader social environment. Āyurveda is one of the greatest gifts of the sages of ancient India to mankind, which views rajas and tamas as harmful qualities of mind that often lead to unprocessed emotions, negative judgements, and lifestyle disorders. This study examines Sadvṛtta, code of right conduct, and Ācāra Rasāyana, the therapeutic effects of practice, examined across the four dimensions (physical, psychological, social, cognition) through modern research explaining how the practice impacts the perception of self and social outlook.

METHODOLOGY:-

A qualitative research approach using textual analysis of Āyurveda classical texts interprets Sadvṛtta and Ācāra Rasāyana in relation to personal and social harmony. Relevant contemporary literature in psychology, behavioural science, and neuroscience is used to discuss potential conceptual connections to self-awareness, emotional intelligence and interpersonal bonds.

DATA FINDINGS:-

Charaka Saṃhitā and Aṣṭāṅga Hṛdaya present Sadvṛtta as holistic health-promoting conduct and Ācāra Rasāyana as rejuvenation therapy that modern research related to behavioural science shows corresponding mechanisms: repetition of practice shifts behaviour from effortful prefrontal control to automatic routines run by subcortical brain circuits; emotional discipline fights mental afflictions; selfless service benefits wellbeing and interpersonal bonds; and reflective judgement strengthens cognitive awareness of one's own thinking.

CONCLUSION

Practised consistently and mindfully, the moral conduct is associated with cultivating discipline, productivity and purposeful activities, contentment, and a changed self-perception that reshapes mind set, relationships and social outlook, thus fostering inner and social harmony.

KEYWORDS: Sadvṛtta, Ācāra Rasāyana, Personal and Social Harmony

FROM YOGIC HERITAGE TO WELLNESS ECONOMY EXPLORING THE ECONOMIC POTENTIAL OF YOGA AND WELLNESS TOURISM IN INDIA

Vaishnavi Verma, Dr. Ritwik Sahai Bisariya

Yoga is one of India's most significant knowledge traditions and has increasingly become a global cultural, health and wellness phenomenon. Its contemporary international expansion has created opportunities not only for individual well-being but also for tourism, employment, entrepreneurship, hospitality, education, wellness services and local economic development. This paper examines the economic potential of Yoga and Wellness Tourism in India by connecting the traditional knowledge foundations of Yoga with the contemporary wellness economy. The study adopts a qualitative and exploratory research design based primarily on secondary data from government publications, international tourism and wellness reports, and relevant scholarly literature. The analysis demonstrates that Yoga-based tourism can generate economic value through direct tourism expenditure as well as through a wider ecosystem comprising accommodation, retreats, teacher training, Ayurveda, traditional and complementary wellness services, wellness food, handicrafts, cultural experiences, transportation and digital wellness services. Global wellness tourism expenditure reached approximately US$893.9 billion in 2024, while the overall wellness economy reached approximately USS6.8 trillion. India possesses distinctive comparative advantages because Yoga is embedded in its civilisational and philosophical heritage rather than being merely a contemporary commercial wellness product. However, the economic expansion of Yoga tourism also raises questions concerning authenticity,

standardisation, cultural commodification, environmental sustainability, quality assurance and equitable distribution of tourism benefits. The paper argues that India 's economic opportunity lies in developing an integrated Yoga and Wellness Tourism ecosystem that combines traditional knowledge, credible pedagogy, destination development, community participation, digital innovation and sustainable tourism principles. The paper concludes by proposing a framework for transforming Yogic heritage into a culturally responsible and economically productive wellness tourism sector.

Keywords: Yoga; Wellness Tourism; Wellness Economy; Indian Knowledge Systems; Sustainable Tourism; Yoga Tourism; Cultural Heritage; Economic Development; India

किशोर विद्यार्थियों की संज्ञानात्मक क्षमता पर नाड़ीशोधन प्राणायाम का प्रभाव

जयवीर

किशोरावस्था जीवन का वह समय है, जब व्यक्ति के शरीर और मन में तेजी से बदलाव होते हैं। इस अवस्था में पढ़ाई का बढ़ता दबाव, परीक्षा की चिंता, मोबाइल और इंटरनेट का अधिक उपयोग, नींद की कमी तथा दैनिक जीवन में बढ़ता तनाव विद्यार्थियों की एकाग्रता और सीखने की क्षमता को प्रभावित कर सकता है। किसी भी विद्यार्थी के लिए पढ़ाई को समझने, याद रखने और सही ढंग से कार्य करने में ध्यान या एकाग्रता की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। इसलिए विद्यार्थियों की ध्यान क्षमता को बेहतर बनाने के लिए सरल और प्राकृतिक उपायों की खोज आज के समय में महत्वपूर्ण हो गई है।

योग और प्राणायाम ऐसी ही विधियों में शामिल हैं। नाड़ीशोधन प्राणायाम योग की एक श्वसन प्रक्रिया है, जिसमें बारी-बारी से दोनों नासाछिद्रों से श्वास ली और छोड़ी जाती है। इसे सामान्यतः Alternate Nostril Breathing भी कहा जाता है। माना जाता है कि नियमित और नियंत्रित श्वास लेने से मन को शांत रखने, तनाव कम करने तथा मानसिक संतुलन बनाए रखने में सहायता मिल सकती है। पिछले कुछ वर्षों में हुए वैज्ञानिक अध्ययनों में नाड़ीशोधन तथा अन्य नियंत्रित श्वसन तकनीकों का ध्यान, स्मृति, कार्यशील स्मृति, चिंता और संज्ञानात्मक कार्यों पर प्रभाव देखा गया है।

किशोर विद्यार्थियों की ध्यान क्षमता पर नाड़ीशोधन प्राणायाम के संभावित प्रभावों को समझना तथा उपलब्ध वैज्ञानिक साहित्य का समग्र रूप से अध्ययन करना है। उपलब्ध शोधों से यह संकेत मिलता है कि नाड़ीशोधन तथा अन्य नियंत्रित श्वसन तकनीकें ध्यान, सतर्कता, कार्यशील स्मृति और मानसिक तनाव से संबंधित कुछ सकारात्मक बदलाव ला सकती हैं। किशोर विद्यार्थियों पर किए गए योग संबंधी अध्ययनों में भी ध्यान और संज्ञानात्मक कार्यों में सुधार की जानकारी मिली है।

नाड़ीशोधन को अकेले intervention के रूप में लेकर किशोर विद्यार्थियों की ध्यान क्षमता पर किए गए अध्ययन अभी कम हैं। कई अध्ययनों में नाड़ीशोधन के साथ अन्य योगासन, ध्यान या विश्राम तकनीकों का भी प्रयोग किया गया है। इसलिए अभी यह निश्चित रूप से कहना संभव नहीं है कि ध्यान क्षमता में होने वाला सुधार केवल नाड़ीशोधन के कारण होता है। इस विषय पर अधिक व्यवस्थित और नियंत्रित शोध की आवश्यकता है।

मुख्य शब्द: नाड़ीशोधन प्राणायाम, किशोर विद्यार्थी, ध्यान क्षमता, संज्ञानात्मक क्षमता।

Shatkarma in Classical Yoga Texts and Contemporary Research: A Narrative Review of Textual Foundations and Therapeutic Evidence

Manisha Raghav, Dr. Rohit Sharma., Dr. Shankar Lal Sharma.

Background: Shatkarma (Neti, Dhauti, Basti, Nauli, Trataka and Kapalabhati) are the six purificatory techniques of Hatha Yoga, described as preparatory practices for pranayama and meditation. Although they are widely taught in yoga and naturopathy, their textual basis and modern evidence are rarely examined together.

Aim: To review the classical description of Shatkarma and to appraise the current scientific evidence on its physiological and therapeutic effects.

Methods: Hatha Yoga Pradipika and Gheranda Samhita were studied for the procedures, benefits and contraindications of each practice.

Discussion: The classical texts describe Shatkarma as cleansing the body and balancing its functions, especially in people with excess of doshas. The literature suggests that Jala Neti may help in upper respiratory and sinonasal conditions, that Kapalabhati may influence respiratory function and autonomic activity, and that Trataka may improve attention and reduce stress. Evidence for Dhauti, Basti and Nauli is limited, with few trials and mostly small samples. Across practices, protocols vary widely and methodological quality is inconsistent, which limits firm conclusions.

Conclusion: Shatkarma forms a meaningful bridge between classical Yoga and integrative health care. Standardized protocols, rigorous trials and clear safety guidelines are needed before these practices can be recommended confidently in clinical settings.

Keywords: Shatkarma, Hatha Yoga, Jala Neti, Kapalabhati, Trataka, Yoga therapy, Naturopathy

Integrating Traditional Yogic Knowledge into Contemporary Yoga Education to Address the Asana-Only Understanding of Yoga

Radha Thakur

Research Parameters (Introduction):

Yoga has become increasingly visible within contemporary educational and learning contexts yet its understanding is frequently associated predominantly with Asana or physical postures. Although Asana occupies an important position within the Yogic tradition, the identification of Yoga primarily with physical practice may lead to a limited understanding of its broader ethical, disciplinary, mental and philosophical dimensions. Classical Yoga, particularly the framework presented in the Patanjali Yoga Sutra, situates Asana within the wider structure of Ashtanga Yoga, comprising Yama, Niyama, Asana, Pranayama, Pratyahara, Dharna, Dhyana and Samadhi. The present paper examines the gap between this broader traditional understanding and the Asana-centred representation of Yoga in contemporary educational contexts. It further explores how traditional Yogic knowledge can be meaningfully integrated into contemporary Yoga education without reducing or altering its philosophical context.

Methodology:

The study uses a qualitative approach based on textual and conceptual analysis. Selected sutras from the Patanjali Yoga Sutra, especially those related to the Ashtanga framework. Selected contemporary Yoga education materials and relevant research are reviewed to understand how Asana is presented in relation to other aspects of Yoga. The study then examines the role of ethical, mental and philosophical aspects in developing a broader understanding of Yoga.

Data & Findings:

The study draws on the Patanjali Yoga Sutra, relevant classical commentaries and recent research on Yoga education to understand the broader nature of Yogic knowledge. The analysis shows that Asana is an important part of Patanjali Yoga but it is not the only part. As one component of

Ashtanga Yoga, Asana is connected with other dimensions of Yoga. The findings show that focusing mainly on Asana may give a limited understanding of Yoga. Therefore, Yoga education should present Asana as an important part of Yoga while also introducing its wider dimensions. The study also highlights the importance of maintaining the traditional meaning of Yogic practices while teaching them in contemporary educational settings.

Conclusion:

The study suggests that including traditional Yogic knowledge in contemporary Yoga education can help learners develop a broader understanding of Yoga. Asana remains an important part of Yoga, but it should be taught along with its ethical, mental, and meditative aspects. Instead of teaching Asana separately from other aspects of Yoga, education can present them as connected parts of the Yogic tradition. This approach can make Yoga education more meaningful and help preserve and share Yoga as a rich Indian knowledge tradition in the present-day educational context.

Keywords: Patanjali Yoga; Traditional Yogic Knowledge; Contemporary Yoga Education; Asana; Ashtanga Yoga; Yoga Pedagogy; Indian Knowledge System

From Himalayan Gold to Global Medicine: AnIntegrative Evidence-Based Review of Hippophaerhamnoides in the Management of Lifestyle and Chronic Diseases

Harish Ranjan Behera, Muskan Joshi, Aman Singh

Hippophae rhamnoides (Sea Buckthorn), popularly known as “Himalayan Gold,” represents a unique pharmacological bridge between traditional ethnomedicine and modern clinical science. Rich in over 190 bioactive compounds including flavonoids, carotenoids, omega fatty acids (notably omega-7), vitamins, and phytosterols, it exhibits potent antioxidant, anti-inflammatory, immunomodulatory, and metabolic regulatory properties.

This integrative review synthesizes evidence from Ayurveda, Sowa-Rigpa, and recent biomedical research (2020–2026), along with institutional findings from All India Institute of Medical Sciences (AIIMS) and Defence Research and Development Organisation (DRDO), including the strategic

contributions of Dr. Brahma Singh48. Sea Buckthorn demonstrates significant therapeutic potential in managing non-communicable diseases such as diabetes, cardiovascular disorders, obesity, gastritis,liver dysfunction, neurodegeneration, and skin damage10.Mechanistically, it exerts pleiotropic (multi-target) effects by modulating oxidative stress, inflammation, lipid metabolism, gut microbiota, and tissue repair pathways29. Advances in phytosome technology have further enhanced its bioavailability and clinical efficacy6. Traditional Rasayana concepts and its

use as “Star-Bu” in Tibetan medicine align closely with modern pharmacological evidence5,15-18. Overall, Sea Buckthorn demonstrates a strong safety profile with minimal adverse effects19 and holds promise as a multi-functional botanical agent for integrative management of chronic diseases. However,

large-scale clinical trials are required to establish standardized dosage and long-term therapeutic protocols.

Keywords: Hippophae rhamnoides, Sea Buckthorn, Integrative Medicine, Chronic Diseases, Phytotherapy,Bioactive Compounds.

Shringi Chikitsa: A Traditional Ayurvedic Para-Surgical Therapy

KANAK SONI

Classical principles, contemporary clinical applications, proposed mechanisms, safety considerations, and research priorities

Abstract

Background: Shringi Chikitsa, also referred to as Śṛṅga therapy, is a traditional Ayurvedic para-surgical procedure described within Raktamokshana (therapeutic bloodletting). Classical Ayurvedic literature describes the use of a horn-shaped instrument to facilitate localized suction and blood withdrawal in selected clinical contexts. Contemporary adaptations may use modified suction instruments.

Objective: To critically review the Ayurvedic foundations, proposed mechanisms, clinical applications, procedural considerations, safety profile, and current evidence concerning Shringi Chikitsa.

Methods: A narrative review approach was used to examine accessible literature on Shringi therapy, Raktamokshana, and relevant clinical reports. The evidence was interpreted according to study design, sample size, and methodological limitations.

Results: The literature describes potential symptomatic benefits in selected musculoskeletal conditions. A 2021 systematic review of Raktamokshana literature reported 16 studies involving 469 participants across different methods, but only two studies evaluated modified Shringa methods. Case reports and a small retrospective case series have reported symptom improvements; these findings are preliminary and cannot establish efficacy or safety conclusively.

Conclusion: Shringi Chikitsa is a historically significant Ayurvedic para-surgical intervention with preliminary clinical observations warranting further investigation. Its efficacy, optimal technique, indications, and long-term safety remain insufficiently established. Well-designed controlled trials, standardized procedural protocols, and systematic adverse-event reporting are necessary.

Keywords: Shringi Chikitsa; Śṛṅga therapy; Raktamokshana; Shalya Tantra; Ayurvedic para-surgical therapy; therapeutic bloodletting; musculoskeletal pain; integrative medicine.

Potential Role of Yoga Nidra in Primary Dysmenorrhea: A Narrative Review

Anu Kundu, Dr. Viney Kumar Sharma

Yoga Nidra is a traditional yogic practice rooted in the Indian yogic tradition and is commonly described as a guided practice of deep relaxation. It promotes physical and mental relaxation while maintaining awareness during the practice. Primary dysmenorrhea is characterized by cramp-like lower abdominal pain during menstruation in the absence of an underlying pelvic disease. It may also be associated with lower-back pain, nausea, fatigue, stress, and anxiety, affecting daily activities and overall well-being. The use of traditional yogic practices such as Yoga Nidra may provide a complementary approach to managing these menstrual symptoms.

The present narrative review examines the available evidence on the potential role of Yoga Nidra in primary dysmenorrhea. Relevant literature on Yoga Nidra, menstrual disorders, and dysmenorrhea was reviewed to understand the reported effects and identify areas requiring further research. Available studies have reported improvements in menstrual pain and related symptoms, along with changes in some hormonal and physiological parameters. However, the evidence remains limited, as several studies included women with different menstrual disorders rather than

primary dysmenorrhea alone. In some studies, Yoga Nidra was also used with conventional medication, making its independent contribution difficult to determine.

Overall, the available literature suggests a potential role for Yoga Nidra as a complementary approach in primary dysmenorrhea. However, further focused research is needed to better understand its specific effects and long-term benefits.

Keywords: Yoga Nidra; Primary Dysmenorrhea; Menstrual Pain; Traditional Yogic Practice; Menstrual Health; Yoga

योग एवं आयुर्वेद में स्वास्थ्य की समन्वित अवधारणा : प्राचीन चिकित्सा-पद्धतियों का दार्शनिक एवं चिकित्साशास्त्रीय अध्ययन

RAM SINGH

प्रस्तुत शोध-अध्ययन में योग एवं आयुर्वेद में निहित स्वास्थ्य की समन्वित अवधारणा का विश्लेषण किया गया है। भारतीय परम्परा में स्वास्थ्य को केवल रोगाभाव की स्थिति न मानकर शरीर, इन्द्रिय, मन और आत्मा के संतुलित एवं सामंजस्यपूर्ण स्वरूप से सम्बद्ध माना गया है। आयुर्वेद जहाँ दोष, धातु, मल, अग्नि तथा मन के संतुलन के माध्यम से स्वास्थ्य की संकल्पना प्रस्तुत करता है, वहीं योग चित्त की वृत्तियों के नियमन, संयम, ध्यान तथा आत्मानुशासन के माध्यम से व्यक्ति के शारीरिक एवं मानसिक परिष्कार का मार्ग प्रशस्त करता है। इस शोध का प्रमुख प्रश्न यह है कि योग और आयुर्वेद की इन दोनों परम्पराओं में स्वास्थ्य, रोग तथा उपचार की अवधारणाएँ किस प्रकार परस्पर सम्बद्ध हैं।

Methodology: शोध में विश्लेषणात्मक, तुलनात्मक एवं पाठ-आधारित पद्धति का प्रयोग किया गया है। चरकसंहिता, सुश्रुतसंहिता, अष्टाङ्गहृदय तथा पातञ्जलयोगसूत्र जैसे प्रमुख संस्कृत स्रोतों में वर्णित स्वास्थ्य, आहार, दिनचर्या, ऋतुचर्या, मानसिक अनुशासन, आसन, प्राणायाम एवं ध्यान संबंधी अवधारणाओं का अध्ययन किया गया है। इन स्रोतों के आधार पर योग और आयुर्वेद की उपचार-दृष्टि तथा जीवन-पद्धति का तुलनात्मक परीक्षण किया गया है।

Data & Findings: अध्ययन से स्पष्ट होता है कि आयुर्वेद और योग दोनों में स्वास्थ्य की अवधारणा बहुआयामी है। आयुर्वेद में "समदोषः समाग्निश्च समधातुमलक्रियः। प्रसन्नात्मेन्द्रियमनाः स्वस्थ इत्यभिधीयते॥" के माध्यम से शारीरिक तथा मानसिक संतुलन को स्वास्थ्य का आधार माना गया है। दूसरी ओर, योगसूत्र में "योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः" के माध्यम से मानसिक अनुशासन को योग का मूल स्वरूप माना गया है। यम, नियम, आसन, प्राणायाम और ध्यान जैसी प्रक्रियाएँ व्यक्ति के आहार-विहार, व्यवहार तथा मानसिक अनुशासन से जुड़ती हैं। इस प्रकार दोनों परम्पराएँ शरीर और मन को पृथक् न मानकर एक समन्वित जीवन-पद्धति के रूप में स्वास्थ्य को देखती हैं। प्राचीन भारतीय चिकित्सा-दृष्टि में आहार, दिनचर्या, ऋतुचर्या, संयम, मानसिक संतुलन और आत्मानुशासन को रोग-निवारण तथा स्वास्थ्य-संरक्षण से जोड़ा गया है।

Conclusion: प्रस्तुत अध्ययन का निष्कर्ष है कि योग एवं आयुर्वेद की प्राचीन परम्पराएँ स्वास्थ्य को केवल चिकित्सकीय हस्तक्षेप का परिणाम न मानकर अनुशासित जीवनचर्या, संतुलित आहार, शारीरिक शुद्धि, मानसिक स्थिरता और आत्मानुशासन की समन्वित प्रक्रिया के रूप में प्रस्तुत करती हैं। दोनों परम्पराओं का अन्तर्सम्बन्ध भारतीय चिकित्सा-चिन्तन की उस समग्र दृष्टि को अभिव्यक्त करता है जिसमें रोग-निवारण के साथ स्वास्थ्य-संरक्षण और जीवन की गुणवत्ता को भी महत्त्व दिया गया है।

Keywords

योग; आयुर्वेद; प्राचीन चिकित्सा-पद्धति; स्वास्थ्य; आहार; दिनचर्या; चित्त; मानसिक स्वास्थ्य; प्राणायाम; समग्र स्वास्थ्य

योग से राष्ट्र निर्माण

उमा रानी , डॉ. सुनीता कुमारी

योग के महत्व को हम इस प्रकार से समझ सकते है कि प्रत्येक व्यक्ति समस्त दुखों से छूटकर नित्यानंद को प्राप्त करना चाहता है जब तक व्यक्ति योगदर्शन में प्रतिपादित हेय,हेयहेतु, हान और हानोंपाय के स्वरूप को अच्छी प्रकार से नहीं जनता तब तक समस्त दुखों से निवृत्ति और नित्य सुख की प्राप्ति होना असंभव है। आज के इस विकट सामाजिक परिस्थिति में वैदिक धर्म संस्कृति,सभ्यता,रीतिनीति परंपराएं आदि एक प्रकार से लुप्त सी हो गई है इसी का ध्यान करते हुए आज के वर्तमान समय में इस सम्पूर्ण संसार में योग को एक साधन तथा जीवन शैली की पद्धति माना है जिसे दिनचर्या का महत्वपूर्ण अंग माना जाने लगा है प्रत्येक स्थानों पर योग को जीवन का अंश नहीं अपितु ज्ञानेंद्रिय व कर्मेंद्रिय पंच वायु और पञ्च महाभूतों तथा मन द्वारा निर्मित स्थूल शरीर को अपनी इच्छा के अनुरूप आकर दिया जाये। और एक स्वरूप जीवन शैली का निर्माण किया जाए पहले योग साधना को वेदों में दिये गए समस्त कार्यों में यज्ञादि से पूर्व करने वाला अभ्यास बताया जाता था। वेदों में यम,नियम सुपाच्य आहार, शरीर क्रिया विधि, मंत्र योग, लययोग आदि का उल्लेख मिलता था। योग शास्त्र सम्पूर्ण भारत वर्ष की अमूल्य धरोहर है जिसे आज ही नहीं अपितु सम्पूर्ण विश्व जो प्राचीन काल से अनवरत रूप से गुरु शिष्य परम्परा के साथ चली आ रही है इसी को अनेकों महापुरुषों ने अपने व्यवहार में उतार कर बहुत सी सिद्धिया प्राप्त की है यह एक ऐसा शास्त्र है जिसमें किसी वाद- विवाद के लिए कोई स्थान नहीं है विश्व के सबसे प्राचीनतम ग्रंथों व वेदों के साथ - साथ अन्य शास्त्रों में योग का वर्णन किया गया है जिसका उद्देश्य अध्यात्म व उच्चतम शिखर पर पहुंचना ही हमारी भारतीय परम्परा का मूल विषय बना हुआ है।

Role of Yoga Nidra in Improving Cardiovascular and Psychological Health among the Geriatric Population: A Review

Leekeshwar , Dr. Vinay Km. Sharma , Dr. Arti Yadav

Yoga Nidra, often referred to as “yogic sleep,” is a systematic meditative technique that induces deep physical, mental, and emotional relaxation while maintaining inner awareness. Rooted in traditional yogic philosophy and associated with the concept of pratyahara, it represents an altered state of consciousness distinct from ordinary sleep and wakefulness. In recent years, Yoga Nidra has gained attention as a potential therapeutic intervention for improving both physiological and psychological health. The present review aims to examine the effects of Yoga Nidra on cardiovascular and psychological health among the geriatric population.

This study was conducted as a narrative review of literature published between 2010 and 2026. Relevant studies were identified through electronic databases including PubMed, Scopus, Google Scholar, and ScienceDirect using keywords related to Yoga Nidra, cardiovascular health, psychological well-being, and older adults. Studies focusing specifically on Yoga Nidra interventions and reporting outcomes such as blood pressure, heart rate variability, stress, anxiety, and depression were included.

The findings suggest that Yoga Nidra leads to significant improvements in cardiovascular parameters, including reductions in blood pressure and enhanced heart rate variability, indicating improved autonomic regulation. It also contributes to psychological well-being by reducing stress, anxiety, and depression, while improving sleep quality and emotional stability. In conclusion, Yoga Nidra appears to be a simple, non-invasive, and cost-effective intervention that may promote overall health and quality of life in the geriatric population.

Keywords: Yoga Nidra, Geriatric Population, Cardiovascular Health, Psychological Health, Blood Pressure, Heart Rate Variability

Diet and Lifestyle in Classical Yoga Texts: Connecting Bhagavad Gita, Hatha Yoga Pradipika, and Gheranda Samhita with Modern Life

Vandana Kotnala

Diet and lifestyle occupy an important place in the classical yoga tradition because physical habits are considered closely related to mental discipline and spiritual practice. The Bhagavad Gita, Hatha Yoga Pradipika, and Gheranda Samhita provide complementary perspectives on food, moderation, bodily discipline and daily conduct. The Bhagavad Gita describes food in relation to the three gunas sattva, rajas, and tamas and emphasizes moderation in eating, activity, sleep and recreation. The Hatha Yoga Pradipika develops the principle of mitahara, or moderate and appropriate eating, as an important support for yoga practice. The Gheranda Samhita similarly emphasizes disciplined eating and bodily purification as components of ghata yoga. When these teachings are viewed in the context of modern life, several broad themes moderation, dietary awareness, regular physical activity, adequate sleep and reduction of excessive or unhealthy habits remain relevant. However, classical classifications of food should not be treated as direct equivalents of modern nutritional science. This review examines these three texts and discusses their possible relevance to contemporary healthy living.

Keywords: Yoga, diet, lifestyle, Bhagavad Gita, Hatha Yoga Pradipika, Gheranda Samhita, mitahara, sattva

A Comparative Philosophical Analysis of Sāṁkhya-Yoga Concepts in Japji Sahib Bani and Patañjali Yoga Sūtras

Dr. Gurneet kaur, Manika Gupta

Sāṁkhya-Yoga represents an important philosophical framework within the Indian tradition, particularly through its analysis of consciousness, nature, the three guṇas, suffering, and liberation. Patañjali's Yoga Sūtras incorporates several concepts closely associated with the Sāṁkhya philosophical framework, including the distinction between the seer (puruṣa) and the seen (prakṛti), the operation of the three guṇas, and liberation through discriminative knowledge. Sri Guru Granth Sahib Ji (SGGS) also presents profound teachings concerning the nature of creation, the Divine, māyā, human experience, and spiritual realization. Japji Sahib, particularly Pauri 30, provides an important textual basis for examining these philosophical themes. The present study therefore aims to comparatively examine selected Sāṁkhya-Yoga concepts in SGGS and the Patañjali Yoga Sūtras, while identifying areas of conceptual convergence and philosophical distinction.

Methodology:

The study adopted a qualitative, descriptive and comparative textual-analysis approach. Primary textual sources included selected passages from Sri Guru Granth Sahib Ji, particularly Japji Sahib Pauri 30, and relevant sūtras from the Sādhana Pāda of the Patañjali Yoga Sūtras. The analysis focused on selected concepts including prakṛti/māyā, puruṣa or conscious principle, the three guṇas, the relationship between the seer and the seen, suffering, and the possibility of spiritual liberation.

Results:

The comparative analysis reveals meaningful philosophical parallels and differences between the two traditions. Japji Sahib emphasizes the One Divine and the threefold functioning of creation, while Patañjali Yoga explains the three guṇas within prakṛti and the distinction between seer and seen. These are best understood as comparative parallels rather than direct doctrinal equivalences.

Keywords:

Sāṁkhya-Yoga; Patañjali Yoga Sūtras; Sri Guru Granth Sahib Ji; Japji Sahib; Prakṛti; Puruṣa; Three Guṇas.

स्वास्थ्य एवं आरोग्यता के लिए प्लाविनी प्राणायाम (जल योग): शास्त्रीय आधार एवं

आधुनिक वैज्ञानिक व्याख्या

प्राचीन भारतीय वैदिक सनातन संस्कृति से जन्मा योग दर्शन आज विश्व स्तर पर स्वास्थ्य एवं चिकित्सा केपर्याय के रूप में तार्किक एवं प्रामाणिक विज्ञान बन चुका है। आधुनिक मानव ने जान लिया है कि वास्तविक मे संतुष्टि केवल स्वयं के सुख-सुविधा संसाधनों की समृद्धि से प्राप्त नहीं की जा सकती, बल्कि इसे योगिक और प्राकृतिक जीवन-शैली को अपनाकर ही प्राप्त किया जा सकता है, सर्वे भवन्तु सुखिनः', 'सर्वे सन्तु निरामयाः' के दर्शन पर टिकी है।

योग के अनुसार स्वास्थ्य का अर्थ है स्व के वास्तविक स्वरूप को पहचानना है जो कि महर्षि पतंजलि द्वारा बताए गए अष्टांग मार्ग को अपना कर योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः द्वारा संभव होता है किंतु आधुनिक युग में योग के इतने वृहद दार्शनिक स्वरूप को समझ पाना अभी शेष है लेकिन योग के कुछ अंगो जैसे आसन, प्राणायाम, योग निद्रा और संयमित जीवन शैली के वैज्ञानिक और प्रामाणिक लाभो का जनमानस में गहरा आकर्षण देखा जा रहा है जो एक सकारात्मक शुरुआत है।

आधुनिक योग गुरु पूज्य स्वामी रामदेव जी के भागीरथ प्रयास से प्राणायाम की महत्ता और उन पर शोध निरंतर बढ़ते जा रहे हैं और विश्व स्तर पर लोग इनसे लाभान्वित हो रहे हैं स्वामी रामदेव जी की पुस्तक प्राणायाम रहस्य कहती है कि "प्राणों को जगाना ही महानतम और वास्तविक जागरण है किंतु आज भी कुछ प्राणायामों जैसे प्लाविनी प्राणायाम पर पर्याप्त शोधों का अभाव है और यह शोध इस रिक्तता को भरने का एक लघु प्रयास है ।

प्राणायाम के महत्व को समझते हुए हठ योगियों ने प्राणायाम को विशेष रूप से विस्तारित कर समझाने का प्रयास किया, वस्तुत प्राणायाम वह सेतु है जिसके द्वारा स्थूल शरीर को सूक्ष्म और कारण शरीर से जोड़कर परम तत्व तक ले जाया जा सकता है हठयोग मर्मज्ञ स्वामी स्वात्माराम जी ने आठ प्राणायाम को कहा जिनमें से पहले प्राणायाम से सूर्यभेदन से शुरू हुई साधना प्लाविनी प्राणायाम तक आते उस सहजावस्था में ला खड़ा करती है साधक को जहां करना नहीं सिर्फ होना शेष रह जाता था अन्तः प्रवर्तितोदरमारुतापूरितोदरः । पयस्यगाधेऽपि सुखात् प्लवते पद्मपत्रवत् ॥सहाय, ज्ञान शंकर। (2021)। हठयोगप्रदीपिका (विस्तृत भूमिका, मूलश्लोक, शब्दार्थ, अनुवाद तथा विशेष टिप्पणी, उपयोगी परिशिष्ट एवं विशिष्ट शब्दसूची सहित)। प्रथम संस्करण। चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन,वाराणसी (भारत)।पर्याप्त वायु अंदर की ओर खींचकर उदर गुहा में पूरित करे। (वैसा साधक) अगाध जल में भी कमल के पत्र के समान सुख से तैर सकता हैं इस कुम्भक का नाम प्लाविनी है जिसका तात्पर्य होता है जल में तैरने की योग्यता।अतः

प्लाविनी कुम्भक इस योग्यता को प्रदान करता है। इसमें मुख के द्वारा वायु को पीना होता है। वायु पर्याप्त मात्रा में पी लेने के बाद दोनों नासिका से पूरक करना है। पूरक के अनन्तर कुम्भक के बाद दोनों नासारन्ध्रों से

रेचक करना चाहिये।

प्लाविनी प्राणायाम जल में योग साधना का उत्कृष्ट उदाहरण है जो योग और प्राकृतिक चिकित्सा को एक साथ लाकर खड़ा कर देता है और इंगित करता है कि जल तत्व योग में विशेष भूमिका रखता है स्वामी मुक्तिबोधानंजी कहते हैं कि प्लाविनी प्राणायाम के द्वारा स्वाधिष्ठान चक्र का जागरण होता है जो स्पष्ट करता है कि यह केवल शारीरिक और मानसिक लाभो तक ही सीमित नहीं है बल्कि इससे आध्यात्मिक लाभ भी हैं

Arbudahara: A Patanjali Wellness Contemporary Integrative Approach to Cancer Supportive Care through Ayurveda, Yoga, and the Ancient Therapeutic Principles of Samanvaya and Punarjīvana

NANDINI ARORA

Background: Triple-negative breast cancer (TNBC) represents an aggressive breast cancer subtype characterized by the absence of estrogen receptor (ER), progesterone receptor (PR), and HER2 expression and limited targeted therapeutic options. Integrative approaches incorporating Ayurveda and Yoga have been investigated primarily for supportive care and quality-of-life outcomes, but clinical evidence remains limited.

Case Presentation: A 63-year-old woman presented with a left breast lump and was diagnosed histopathologically with multifocal invasive ductal carcinoma/NST, Grade 2, with lymphovascular invasion. Immunohistochemistry demonstrated ER 0%, PR 0%, and HER2 IHC 0, establishing a triple-negative phenotype. Baseline FDG PET/CT demonstrated metabolically active lesions measuring approximately 4.6 × 2.9 cm (SUVmax 6.5) and 1.1 × 1.0 cm (SUVmax 4.6) within the left breast, without metabolically active distant metastatic disease. An individualized integrative supportive-care programme incorporating Ayurveda, Yoga, dietary modification, and naturopathic principles was instituted alongside appropriate oncological management.

Intervention and Outcome: The integrative programme was designed to support treatment tolerance, nutritional status, functional capacity, symptom burden, and health-related quality of life rather than replace evidence-based anticancer therapy. Clinical, laboratory, imaging, and patient-reported outcomes were designated for longitudinal assessment. Because complete post-treatment oncological and imaging follow-up was not available in the presented records, objective tumour response, disease-free survival, or anticancer efficacy could not be conclusively established.

Conclusion: This case illustrates the potential feasibility of a structured Ayurveda–Yoga-based integrative framework as supportive care in TNBC, particularly for multidimensional management of symptoms, wellbeing, and treatment-related burden. The observed baseline clinicopathological characteristics underscore the need for rigorous oncological staging and multidisciplinary management. Prospective controlled studies using standardized interventions and objective oncological endpoints are required before therapeutic efficacy or disease-modifying effects of such integrative approaches can be inferred.

Keywords:Female breast cancer , TNB ,FDG PET/CT , ER, PR, HER2

Ayurvedic treatment, Panchakarma, Quality of life, Long term disease free survival

Emotional Regulation and Mental Well-Being: Insights from Indian Knowledge Traditions: *A Study of the Bhagavad Gita, Patanjali Yoga and Haṭha Yoga*

Gunjan Motiyani

Emotional regulation is an important part of mental well-being. In daily life, people experience stress, anger, fear, sadness, desire and disappointment. The way a person understands and responds to these feelings can affect mental peace, relationships and daily functioning. Indian Knowledge Traditions have discussed the management of the mind, emotions and behaviour for many centuries. This paper undertakes a qualitative, text-based examination of selected passages from the Bhagvad Gita, Patanjali Yoga Sutra and Hatha Yoga Pradipika to examine their relevance to emotional regulation and mental well-being. Important ideas such as samatva (equanimity), anasakti (non-attachment), self-control, citta-vritti-nirodha (calming the fluctuations of the mind), maitri (friendliness), karuna (compassion), meditation, asana and pranayama are discussed.

The Bhagvad Gita explains how attachment to results, uncontrolled desire and anger can disturb the mind, and how equanimity and non-attachment to outcomes can support inner steadiness (Bhagvad Gita 2.48, 2.50; 2.62–63; 3.37). Patanjali defines yoga as the calming or restraint of the fluctuations of the mind (citta-vritti-nirodha) and presents a disciplined path for mental steadiness and concentration (Yoga Sutra 1.2). He also recommends friendliness (maitri) and compassion (karuna) as means of cultivating mental clarity and calmness (Yoga Sutra 1.33). Whereas Haṭha Yoga gives special importance to body and breath, explaining that steadiness of breath is related to steadiness of mind and that pranayama supports mental stability (Hatha Yoga Pradipika 2.2). Contemporary research has increasingly examined yoga-based practices as potential supports for stress management and well-being, though findings vary across techniques and populations.

This paper does not treat traditional ideas as direct equivalents of modern psychological theories. Instead, it argues that Indian Knowledge Traditions offer conceptually rich frameworks and embodied practices that can inform, but not be reduced to, current models of emotional regulation. A careful dialogue between traditional knowledge and modern research can contribute to a culturally meaningful understanding of well-being.

Keywords

Emotional Regulation; Mental Well-Being; Indian Knowledge Traditions; Bhagvad Gita; Patanjali Yoga; Haṭha Yoga.

यज्ञचिकित्सा (Yagya Therapy): पर्यावरण शुद्धि, मानसिक स्वास्थ्य और आयुर्वेद में भूमिका

Arundhati Deshmukh

Abstract

भारतीय ज्ञान परंपरा (IKS) में यज्ञ को केवल एक धार्मिक या आध्यात्मिक अनुष्ठान न मानकर पर्यावरण-संरक्षण और स्वास्थ्य-रक्षा का एक वैज्ञानिक माध्यम माना गया है। प्रस्तुत शोध निबंध में 'यज्ञचिकित्सा' (Yagya Therapy) की अवधारणा का वैज्ञानिक और आयुर्वेदिक दृष्टिकोण से अध्ययन किया गया है।

यज्ञ के दौरान प्रयुक्त होने वाली औषधीय वनस्पतियों, समिधाओं, गाय के घी और अन्य हविष्य द्रव्यों के दहन से उत्पन्न होने वाला सूक्ष्म धुआं वायुमंडल में मौजूद हानिकारक जीवाणुओं (Bacteria) और प्रदूषण को समाप्त कर 'पर्यावरण शुद्धि' करने में सहायक होता है।

इसके साथ ही, श्वास प्रक्रिया (Inhalation) द्वारा शरीर में प्रवेश करने वाले ये औषधीय सूक्ष्मकण मानव तंत्रिका तंत्र (Nervous System) पर सकारात्मक प्रभाव डालते हैं, जिससे तनाव, चिंता और अवसाद (Depression) को कम कर 'मानसिक स्वास्थ्य' में सुधार होता है। आयुर्वेद में वर्णित 'धूपन चिकित्सा' (Medicated Fumigation) और 'त्रिदोष संतुलन' के सिद्धांतों पर यज्ञचिकित्सा आधारित है।

आधुनिक वैज्ञानिक अनुसंधानों और प्रयोगों के आधार पर यह शोध पत्र सिद्ध करता है कि यज्ञ की यह प्राचीन पद्धति आज के प्रदूषित और तनावपूर्ण वातावरण में एक प्रभावी 'वैकल्पिक चिकित्सा पद्धति' (Alternative Medicine) और 'हरित तकनीक' (Green Technology) के रूप में अत्यंत प्रासंगिक है।

मुख्य शब्द (Keywords)

यज्ञचिकित्सा, पर्यावरण शुद्धि, मानसिक स्वास्थ्य, आयुर्वेद, धूपन चिकित्सा, भारतीय ज्ञान परंपरा (IKS

Healing through Yoga: Enhancing Mental Health and Psychological Resilience Among Professionals Facing Layoffs

Dr. Rani Dadhich Swati Jain

Rapid changes in corporate environments, economic instability, and widespread downsizing across tech and finance sectors have increased job vulnerability and professional distress. Unexpected job loss frequently leads to significant mental distress, identity disruption, acute anxiety, depression, and existential crisis among employees. While traditional Western psychological interventions primarily emphasize symptom relief via cognitive restructuring, the Indian Knowledge System (IKS)—particularly Classical Yoga Philosophy (Yogadarsana)—provides a comprehensive model that fundamentally reshapes an individual's psychological, emotional, and spiritual well-being.

This study presents an analytical and empirical framework evaluating a specialized Yogic Intervention Protocol (IYIP). Integrating physical postures (Asanas), breath control (Pranayama), meditative practice (Dhyana), yogic relaxation (Yoga Nidra), and core teachings from the Patanjali Yoga Sutras and Bhagavad Gita, the intervention will be tested using a mixed-methods Randomized Controlled Trial (RCT). The trial will evaluate shifts in stress levels, mental resilience, anxiety, depression, and overall life satisfaction to establish an empirical model for workplace mental health rehabilitation and career resilience.

Keywords: Yoga Philosophy, Corporate Layoffs, Psychological Resilience, Job Insecurity, Patanjali Yoga Sutras, Mental Health, Pranayama, Chitta Vritti Nirodha, Mental Stress, work anxiety

The evolution of Sūryanamaskāra: Tradition, Physical Culture and Modern Yoga : From Vyāyāma to Svāsthya-Sādhana: Historical Recontextualisation in the Indian Health Tradition

Lakshmi.K.S

While contemporary Yoga often presents Sūryanamaskāra as an immemorial practice directly inherited from ancient Indian *Sūrya-upāsanā*, its historical trajectory reveals a more complex process of transformation and recontextualization, shaped by ritual practice, physical culture (vyāyāma), bodily discipline (śarīra-śikṣā), and modern yogic synthesis.

This paper examines the evolutionary development of Sūryanamaskāra by tracing the evolving dynamics among its psycho-somatic, socio-cultural, yogic and soteriological dimensions across distinct historical contexts.

Central to this enquiry is the early 20th century reconfiguration of Sūryanamaskāra by **Bhavanrao Shrinivasrao**, (popularly known as **Balasaheb Pant Pratinidhi)**, *the Rāja of Aundh*. In his text, **"*Surya Namaskars: For Health, Efficiency & Longevity",*** Balasaheb presents, Sūryanamaskāra not merely as a sequence of physical positions, but as a systematic regimen integrating a 10 step movement, mantras, breath control, targeted gaze (dṛṣṭi) within the broader framework of śarīra-śikṣā and svāstya. His treatment notably extends to dietary regulation, daily habits and method of cooking, including the ***Guttikar cooker***, demonstrating that the practice was situated within a wider discipline of healthy living.

The paper further examines the subsequent recontextualization of Sūryanamaskāra within modern Yoga, particularly through the teachings of **Swami Sivananda** and the dynamic Yoga tradition associated with **T. Krishnamacharya** and **K. Pattabhi Jois**. In the writings of Swami Sivananda, Sūryanamaskāra is presented as a practice combining physical exercise with Sūrya-upāsanā. In ***Yogic Home Exercises (1939***), He explicitly acknowledges the demonstrations of Pant Pratinidhi and recommends Sūryanamaskāra for health, vigour and vitality, together with the recitation of the 12 solar names and Vedic chants. Conversely, in the Krishnamacharya–Jois lineage, Sūryanamaskāra was articulated through a dynamic *vinyāsa* framework in which physical movement was synchronized with breath(*śvāsa: pūraka* and recaka), gaze (*dṛṣṭi)*, and energetic locks (*bandha)*

Through a comparative textual and historical analysis, this study argues that modern Sūryanamaskāra is not a static continuation of an ancient physical routine, but rather a dynamic product of modern adaptation, synthesis, and re-interpretation.

Key words: *Sūryanamaskāra, vyāyāma, śarīra-śikṣā, svāstya, śvāsa, dṛṣṭi and mantra*

आधुनिक जीवनशैली में ऋतुचर्या के अनुपालन की प्रासंगिकता एवं व्यावहारिक चुनौतियाँ

Nidhi

आयुर्वेद का प्रमुख उद्देश्य "स्वस्थस्य स्वास्थ्य रक्षणम् आतुरस्य विकार प्रशमनम् च" है। जिसके अंतर्गत द्वितीय उद्देश्य 'स्वस्थ व्यक्ति के स्वास्थ्य संरक्षण' हेतु 'स्वस्थचतुष्क' का वर्णन किया गया है। जिनमें से ऋतुचर्या अध्याय में ऋतुओं के अनुसार आहार-विहार एवं दिनचर्या के उचित नियमन को विशेष महत्व दिया गया है। पर्यावरणीय परिवर्तन के साथ शरीर में उत्पन्न होने वाले दोषों, अग्नि एवं बल के परिवर्तन को देखते हुए आहार-विहार में जो संशोधन की संकल्पना की गई है उसे ही ऋतुचर्या कहा गया है। चरक संहिता के प्रथम अध्याय (सूत्रस्थान) के 'तस्याशितीय अध्याय' में ऋतुों के अनुसार आहार-विहार का वर्णन किया गया है तथा अष्टाङ्गहृदय के सूत्रस्थान में भी ऋतुओं के अनुसार दोषों की स्थिति, आहार-विहार का विस्तृत विवेचन प्राप्त होता है। इस प्रकार ऋतुचर्या शरीर एवं बाह्य पर्यावरण के मध्य सामञ्जस्य स्थापित करने निवारक स्वास्थ्य दृष्टिकोण है। आधुनिक समय में तीव्रगति से हो रहे शहरीकरण, बदलती जीवनशैली, अनियमित दिनचर्या, वातानुकूलित वातावरण, कृत्रिम प्रकाश, त्वरित खाद्य पदार्थों का बढ़ता सेवन, शारीरिक निष्क्रियता तथा निरन्तर यात्रा जैसी परिस्थितियाँ मनुष्य को प्राकृतिक ऋतु-परिवर्तन के अनुरूप जीवनशैली अपनाने से रोकती हैं। आधुनिक वैज्ञानिक अध्ययनों में भी मानव शरीर में मौसमी विविधता के प्रमाण प्राप्त होते हैं। अतः ऋतुचर्या को जीवन सम्बन्धी विकारों के रोकथाम के संदर्भ में महत्वपूर्ण बताया गया है, जबकि आधुनिक मौसमी जीवविज्ञान पर आधारित अध्ययनों ने रोग प्रतिरोधक क्षमता एवं चयापचय में मौसमी

परिवर्तन को प्रदर्शित किया है। वर्तमान अध्ययन का उद्देश्य आधुनिक जीवनशैली में ऋतुचर्या के अनुपालन की प्रासंगिकता का अध्ययन करना तथा इसके पालन में आने वाली प्रमुख व्यावहारिक चुनौतियों की पहचान करना है।

कूटशब्द – ऋतुचर्या, आयुर्वेदशास्त्र, आधुनिक जीवनशैली, आहार-विहार

Yoga, Ayurveda and Ancient Therapeutic Traditions: A Holistic Approach to Health and Well-being

Naveen Gurjar

RESEARCH PARAMETERS (INTRODUCTION)

Yoga and Ayurveda represent two important streams of India's traditional knowledge systems, with complementary approaches to physical, mental, and lifestyle well-being. This paper examines their conceptual relationship with selected ancient therapeutic practices, with particular attention to prevention, healthy living, mind–body balance, and individualized care. The discussion focuses on classical concepts such as dinacharya (daily regimen), ahara (diet), asana, pranayama, dhyana, and selected therapeutic practices described in traditional literature.

METHODOLOGY

The study adopts a qualitative, descriptive, and textual-review methodology. Relevant classical sources and scholarly literature on Yoga and Ayurveda are examined comparatively to identify shared concepts, therapeutic objectives, and areas of practical convergence. Contemporary research discussing yoga-based interventions and the need for systematic scientific evaluation of traditional practices is also considered. Traditional claims are distinguished from findings supported by modern evidence.

DATA & FINDINGS

The review indicates that Yoga emphasizes disciplined practice involving posture, breath regulation, concentration, and meditation, while Ayurveda provides a broader framework involving diet, daily routine, individualized constitution, lifestyle, and therapeutic care. Their combined perspective places importance on prevention and sustained healthy habits rather than focusing only on disease management. Ancient therapeutic practices may offer useful complementary approaches; however, their safety, standardization, and effectiveness require appropriate assessment and qualified supervision. The literature also shows scholarly interest in integrating selected traditional practices with contemporary health research.

CONCLUSION

Yoga, Ayurveda, and ancient Indian therapeutic traditions provide a multidimensional framework for understanding health by connecting lifestyle, physical practices, mental discipline, and individualized care. Their study can contribute to Oriental and Indological research by preserving textual knowledge while encouraging critical, evidence-informed examination of therapeutic claims. A balanced dialogue between classical sources and modern research may help clarify which practices are suitable for contemporary health promotion and which require further scientific investigation.

KEYWORDS

Yoga; Ayurveda; Ancient Therapy; Indian Knowledge Systems; Holistic Health.

जीवन-तत्त्व साधन: महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज के दर्शन में आत्मबोध, नैतिक चेतना एवं समग्र जीवन-दृष्टि का दार्शनिक अनुशीलन

ऋषिका पाण्डेय, प्रो. (डॉ.) ऋत्विक सहाय बिसारिया

भारतीय ज्ञान-परंपरा में मानव जीवन को केवल भौतिक अस्तित्व के रूप में न देखकर उसे आत्मबोध, नैतिक अनुशासन, साधना तथा लोकमंगल की एक सतत यात्रा के रूप में स्वीकार किया गया है। इसी व्यापक दार्शनिक परिप्रेक्ष्य में **"जीवन-तत्त्व साधन"** की संकल्पना मनुष्य के बाह्य जीवन और आंतरिक चेतना के मध्य समन्वय स्थापित करने वाली एक महत्वपूर्ण साधना-दृष्टि के रूप में उभरती है। महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज ने जीवन-तत्त्व साधन को मनुष्य के आत्मचिंतन, सदाचार, संयम, करुणा, सेवा, सत्यनिष्ठा तथा आध्यात्मिक जागरण के माध्यम से जीवन के मूल तत्त्व को समझने और उसे व्यवहार में अभिव्यक्त करने की प्रेरणा प्रदान करती है।

प्रस्तुत शोध-पत्र का उद्देश्य महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज की जीवन-दृष्टि के संदर्भ में जीवन-तत्त्व साधन की दार्शनिक अवधारणा, उसके मूल तत्त्वों तथा समकालीन जीवन में उसकी प्रासंगिकता का विश्लेषण करना है। अध्ययन में भारतीय दार्शनिक परंपरा में आत्मा, धर्म, कर्म, साधना, पुरुषार्थ और लोकमंगल से संबंधित अवधारणाओं को आधार बनाते हुए जीवन-तत्त्व साधनके स्वरूप को समझने का प्रयास किया गया है। यह अध्ययन मुख्यतः वर्णनात्मक, विश्लेषणात्मक एवं व्याख्यात्मक पद्धति पर आधारित है तथा उपलब्ध प्राथमिक एवं द्वितीयक स्रोतों के माध्यम से महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज के विचारों का दार्शनिक अनुशीलन करता है।

अध्ययन से यह प्रतिपादित होता है कि जीवन-तत्त्व साधन केवल किसी विशिष्ट धार्मिक अथवा आध्यात्मिक अनुष्ठान तक सीमित अवधारणा नहीं है, बल्कि यह विचार, व्यवहार, चरित्र और चेतना के समन्वित परिष्कार की प्रक्रिया है। इसके केंद्र में आत्मबोध से उत्पन्न नैतिकता, आत्मानुशासन से उत्पन्न जीवन-संतुलन तथा सेवा एवं करुणा से उत्पन्न सामाजिक उत्तरदायित्व की भावना निहित है। इस दृष्टि से जीवन-तत्त्व साधन व्यक्ति के व्यक्तिगत विकास के साथ-साथ परिवार, समाज और व्यापक मानव समुदाय के कल्याण से भी जुड़ती है।

समकालीन संदर्भ में, जब मनुष्य भौतिक उपलब्धियों, मानसिक तनाव, मूल्य-संकट, उपभोक्तावाद तथा सामाजिक विघटन जैसी अनेक चुनौतियों का सामना कर रहा है, जीवन-तत्त्व साधनकी यह समग्र दृष्टि आंतरिक शांति, नैतिक पुनर्स्थापन, आत्मसंयम और मानवीय मूल्यों के पुनर्जागरण के लिए महत्वपूर्ण आधार प्रदान कर सकती है। अतः महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज की जीवन-दृष्टि का अध्ययन भारतीय ज्ञान-परंपरा में साधना, जीवन-दर्शन और लोकमंगल के अंतर्संबंधों को समझने की दिशा में एक महत्वपूर्ण अकादमिक प्रयास प्रस्तुत करता है।

Keywords: जीवन-तत्त्व साधना, महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज , भारतीय ज्ञान-परंपरा, आत्मबोध, साधना, नैतिक चेतना, आत्मानुशासन, लोकमंगल, आध्यात्मिक दर्शन, समग्र जीवन-दृष्टि

Anxiety and stress reduction through yoga practice among university students

Vikas Thakur & Rajat Kumar

A randomized controlled trial involving **129 university students** observed that a **12-week yoga intervention significantly reduced perceived stress, state anxiety, and trait anxiety** compared with a control group (Castellote-Caballero et al., 2024).

Similarly, a randomized controlled trial involving **202 university students**, showed that **24 yoga sessions over 12 weeks significantly reduced psychological distress**, with effects maintained at follow-up.

(Elstad et al. 2020)

Aim:

The present study aims to examine the effectiveness of regular yoga practice in reducing stress and anxiety among university students .

Objective:

- To assess the levels of stress and anxiety among university students.
- To examine the effect of regular yoga practice on stress levels.
- To evaluate the effect of yoga practice on anxiety levels.
- To compare stress and anxiety levels before and after the yoga intervention.
- To examine the role of yoga in improving overall psychological well-being among university students.

Methods:

The study will be conducted on university students at the University of Patanjali, Haridwar (UoP), aged 18-25 years. A quasi experimental design will be employed to measure the effect of regular yoga practice on stress and anxiety among university students. The participants will be allocated to an experimental group and a control group. The experimental group will participate in a two-weeks structured yoga intervention, consisting of 45-minute sessions, six days per week.

Stress will be assessed using the 10-item Perceived Stress Scale (PSS-10), developed by Cohen, Kamarck, and Mermelstein (1983), while anxiety will be assessed using the 7-item Generalized Anxiety Disorder Scale (GAD-7), developed by Spitzer, Kroenke, Williams, and Löwe (2006). Both measures will be administered before and after the intervention. The Results will be analyzed using SPSS version 0.25.

Conclusion:

The study will expected to demonstrate that regular yoga practice can contribute to the reduction of stress and anxiety among university students. Yoga may help promote emotional balance, relaxation, concentration, and psychological well-being. Therefore, incorporating yoga-based practices into university-level health and wellness programmes may be a useful complementary approach for supporting students' mental health.

Keywords: University Students, Stress, Anxiety and yoga intervention.

An Indian Gerontological Study in Shushruta Samhita

Smaranika Tripathy

An indisputably ancient treatise of Indian medical heritage was way ahead of its time in diagnosis, healing, prevention, and cure of various diseases as well as deformities. Sustruta was the father of surgery. He has given a systematic methodology of diagnosis, pathology, surgery technique, precautions, use of different surgical instruments. Not only that he has given knowledge about use of organic medicines comprising naturopathy, ayurveda, yunani, vanaspati.In the present research on ancient wisdom to defying decay it becomes very essential to look back to those precious insights once again to evaluate our present health condition, ethics and wellbeing. His Therapies, Medicines, Surgery techniques are corrective measures needed for Confronting Aging and Death. Sushruta Samhita reflects not only on the altered physiological states of the body that affects the total human manifestation but prescribes healing for body, mind and soul as a total organic unity that enhances longevity of human life and slows down the premature decay process.

Keywords : Sustruta Samhita, Ayurveda, Aging, Organic Medicine

The cost of a few scroll: a systematic review on social media addiction and efficiency of yoga intervention among college students

Adwitiya Yadav , Dr. Gurneet Kaur

Introduction-The rapid expansion of social media has transformed communication, education, and social interaction among college students. However, excessive use of social media may develop into the addiction of social media, which has been associated with poor concentration, procrastination, academic disengagement, and reduced academic performance. At the same time, yoga has received increasing attention as a mind-body intervention that may improve attention, self-regulation, stress management, and social media addiction.

Methodology- A systematic review was conducted following PRISMA 2020 guidelines and 27 items checklist. Relevant studies examining social media use, academic focus, and yoga interventions among college students were identified, assessed and analyzed through the PRISMA flowchart.

Data and Findings- Previous systematic reviews and meta-analyses generally report promising but more indirect evidence. Studies among college students have reported improvements in sustained attention following integrated yoga practice, while randomized research has found that a ten-week yoga intervention significantly reduced excessive use of smartphone. Other studies suggest potential benefits of yoga for academic performance and stress-related factors. However, direct randomized trials examining whether yoga reduces social-media addiction and consequently improves academic focus in college students remain limited.

Future research should therefore use standardized measures, objective screen-time data, attention assessments, and longitudinal or randomized controlled designs to establish whether yoga can serve as an effective intervention for problematic social media use and academic distraction.

Keywords- social media addiction, academic disengagement, college students, yoga, concentration.

THE SIGNIFICANCE OF INDIVIDUAL'S PHYSICAL DEVELOPMENT ACCORDING TO THE YOGA UPANISHADS

Madhukar Babubuva Bharti, Prof. Dr. Amit Bhargav

Yoga is one of the important knowledge traditions of India. The Yoga Upanishads are lesser-known areas of Vedic literature related to yoga practice and philosophy. Although the major Upanishads have received greater historical attention, the Yoga Upanishads are given special importance as a valuable source for understanding the philosophical, ethical, physical and mental dimensions of yoga. Although yoga is often associated merely with physical postures and physical fitness, the traditional yogic concept of physical development in much broader. The Yoga Upanishads regard the human body as an important means for yogic practice and spiritual experience. Concepts such as the body, asana, pranayama, prana, mudra, nadi, chakra, kundalini, as well as the purification and control of the senses, are discussed in them.

This study analyzes the concepts of physical development reflected in 20 Yoga Upanishads. In particular, it examines the interrelationship among the development of the physical body and vital energy, the system of nadis, yogic practices, and physical stability. It also considers the relationship between the Yoga Upanishads and the later processes of Hatha yoga. This research adopts a theoretical, text-based and analytical methodology. The study of the 20 Yoga Upanishads and relevant primary and secondary sources is conducted through textual reading, analysis and conceptual synthesis.

Keywords: Yoga Upanishads, Physical Development, Body, Asana, Pranayama, Prana, Nadi, Chakra, Kundalini, Holistic Development

प्राचीन भारतीय कुटीप्रावेशिक कायाकल्प पद्धति का नुरोप्लॅस्टिसिटी और सेरेब्रल रिपेयर पर प्रभाव : एक योग-वैज्ञानिक विश्लेषण

Miss.Snehal Ratnakar Tidke

आधुनिक न्यूरोसाइंस में 'न्यूरोप्लास्टिसिटी' को मस्तिष्क की स्वयं को पुनर्गठित करने और सेरेब्रल विकारों को स्वतः ठीक करने की एक क्रांतिकारी क्षमता माना गया है। प्राचीन भारतीय योग और आयुर्वेद परंपरा में वर्णित 'कुटीप्रावेशिक कायाकल्प' एक ऐसी ही अत्यंत प्रभावकारी किंतु आधुनिक शोधों से पूरी तरह अछूती चिकित्सा पद्धति है। इसमें साधक को एक निश्चित अवधि के लिए पूर्णतः अंधकारमय, ध्वनि-नियंत्रित और बाह्य उद्दीपनों से मुक्त त्रिगर्भा कुटी में रखकर विशिष्ट योगिक क्रियाएं और रसायन चिकित्सा प्रदान की जाती है। प्रस्तुत शोध पत्र का मुख्य उद्देश्य प्राचीन कुटीप्रावेशिक पद्धति के सिद्धांतों, एकांतवास और इसके साथ की जाने वाली विशिष्ट योगिक साधनाओं जैसे केवली कुंभक, नादानुसंधान व ध्यान का मस्तिष्क की कोशिकाओं के जीर्णोद्धार (Cerebral Repair) तथा न्यूरोप्लास्टिसिटी पर पड़ने वाले प्रभाव का एक एकीकृत वैज्ञानिक मूल्यांकन प्रस्तुत करना है। यह शोध एक 'सिस्टमैटिक लिटरेचर रिव्यू' और तुलनात्मक विश्लेषण पर आधारित है, जिसके अंतर्गत चरक संहिता और हठयोग के मूल ग्रंथों में वर्णित कुटीप्रावेशिक के सिद्धांतों की तुलना आधुनिक न्यूरोसाइंस के 'रिस्ट्रिक्टेड एनवायरनमेंटल स्टिमुलेशन टेक्निक' (REST), ब्रेन-डिराइव्ड न्यूरोट्रोफिक फैक्टर (BDNF) और न्यूरोजेनेसिस के सिद्धांतों से की गई है। वैचारिक विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि बाह्य इंद्रिय जनित उद्दीपनों की पूर्ण समाप्ति मस्तिष्क के 'डिफॉल्ट मोड नेटवर्क' (DMN) की अति-सक्रियता को शांत करती है। यह प्रक्रिया पैरासिम्पेथेटिक तंत्रिका तंत्र को जाग्रत कर हिप्पोकैम्पस में नए न्यूरॉन्स के निर्माण की गति को तीव्र करती है। अतः यह शोध यह प्रमाणित करता है कि प्राचीन कुटीप्रावेशिक कायाकल्प केवल एक शारीरिक उपचार नहीं, बल्कि एक उच्च स्तरीय

नुरो रिफॉर्मेटिव्ह और बायो इलेक्ट्रिकल थेरपी है। जिसे आधुनिक नुरॉलॉजिकल पुनर्वास (Rehabilitation) मे प्रभावी रूप से लागू किया जा सकता है।

मुख्य शब्द :- कायाकल्प, कुटीप्रावेशिक पध्दती, नुरोप्लॅस्टिसिटी, सेरेब्रल रिपेयर , सेंसरी डेप्रिवेशन, यौगिक साधना।

YOGA, HUMAN LIFE, SOCIETY-A STUDY

Dr Nagendra Nath Misra

Yoga is very essential in Today's Modern World from New Delhi to Newyork and Tokyo to. Sydney. The Indian Prime Minister SH Narendra Modi has popularized yoga in the whole world from 2015 with emphasis on Yoga, Ayurveda, Naturopathy, Ancient Indian Heritage and our worldwide culture from the dawn of Indus Valley Civilization. Every person who learns to live with greater awareness contributes quietly to the well-being of society. Every person who develops patience instead of anger, understanding instead of anger, understanding instead of harted, and balance instead of impulsiveness strengthens the collective environment around them. A nation's true progress must include both outer development and inner development. Roads, industries, institutions, and economies are essential for growth. But emotionally healthy citizens are equally essential for building a strong arid harmonious society.

Yoga guides people towards this inner stability. Its purpose is not to·escape from life, but to participate better in life. It teaches us how to remain centerecl amidst challenges, balanced amidst distractions, and compassionate amidst differences.

RESTLESS LIFESTYLE:

Modern life moves at tremendous speed. There is little silence, little introspection, and very little emotional pause. People spend hours reacting to notifications, messages, and distractions, yet very little time understanding their own emotions. Children and young adults today face immense academic and• social pressure. Self-worth is increasingly measure.dthrough performance, appearance, social approval, and external achievement. Even adults continue living under chronic stress without fully realizing how deeply it affects their emotional and physical well-being. The human nervous system was never designed for constant stimulation.

Today, the fluctuations of the mind have multiplied enormously. Endless information, comparison, fear, ambition, and emotional overload constantly disturb inner peace. As a result, many individuals remain physically active but mentally exhausted. The mind cannot remain healthy if life is lived only outwardly. Inner development is equally essential.

Anxiety and stress reduction through yoga practice among university students

Vikas Thakur & Rajat Kumar , Dr. Gurneet Kaur

Background

A randomized controlled trial involving 129 university students observed that a 12-week yoga intervention significantly reduced perceived stress, state anxiety, and trait anxiety compared with a control group (Castellote-Caballero et al., 2024). Similarly, a randomized controlled trial involving 202 university students, showed that 24 yoga sessions over 12 weeks significantly reduced psychological distress, with effects maintained at follow-up.

(Elstad et al. 2020)

Aim:

The present study aims to examine the effectiveness of regular yoga practice in reducing stress and anxiety among university students .

Methods:

The study will be conducted on university students at the University of Patanjali, Haridwar (UoP), aged 18-25 years. A quasi experimental design will be employed to measure the effect of regular yoga practice on stress and anxiety among university students. The participants will be allocated to an experimental group and a control group. The experimental group will participate in a two-weeks structured yoga intervention, consisting of 45-minute sessions, six days per week.

Stress will be assessed using the 10-item Perceived Stress Scale (PSS-10), developed by Cohen, Kamarck, and Mermelstein (1983), while anxiety will be assessed using the 7-item Generalized Anxiety Disorder Scale (GAD-7), developed by Spitzer, Kroenke, Williams, and Löwe (2006). Both measures will be administered before and after the intervention. The Results will be analyzed using SPSS version 0.25.

Conclusion:

The study will expected to demonstrate that regular yoga practice can contribute to the reduction of stress and anxiety among university students. Yoga may help promote emotional balance, relaxation, concentration, and psychological well-being. Therefore, incorporating yoga-based practices into university-level health and wellness programmes may be a useful complementary approach for supporting students' mental health.

Keywords: University Students, Stress, Anxiety and yoga intervention.

Anxiety and stress reduction through yoga practice among university students

Vikas Thakur & Rajat Kumar

Background

- A randomized controlled trial involving **129 university students** observed that a **12-week yoga intervention significantly reduced perceived stress, state anxiety, and trait anxiety** compared with a control group (Castellote-Caballero et al., 2024).
- Similarly, a randomized controlled trial involving **202 university students**, showed that **24 yoga sessions over 12 weeks significantly reduced psychological distress**, with effects maintained at follow-up.

(Elstad et al. 2020)

Aim:

The present study aims to examine the effectiveness of regular yoga practice in reducing stress and anxiety among university students .

Objective:

1. *To assess the levels of stress and anxiety among university students.*
2. To examine the effect of regular yoga practice on stress levels.
3. To evaluate the effect of yoga practice on anxiety levels.
4. To compare stress and anxiety levels before and after the yoga intervention.
5. To examine the role of yoga in improving overall psychological well-being among university students.

Methods:

The study will be conducted on university students at the University of Patanjali, Haridwar (UoP), aged 18-25 years. A quasi experimental design will be employed to measure the effect of regular yoga practice on stress and anxiety among university students. The participants will be allocated to an experimental group and a control group. The experimental group will participate in a two-weeks structured yoga intervention, consisting of 45-minute sessions, six days per week.

Stress will be assessed using the 10-item Perceived Stress Scale (PSS-10), developed by Cohen, Kamarck, and Mermelstein (1983), while anxiety will be assessed using the 7-item Generalized Anxiety Disorder Scale (GAD-7), developed by Spitzer, Kroenke, Williams, and Löwe (2006). Both measures will be administered before and after the intervention. The Results will be analyzed using SPSS version 0.25.

Conclusion:

The study will expected to demonstrate that regular yoga practice can contribute to the reduction of stress and anxiety among university students. Yoga may help promote emotional balance, relaxation, concentration, and psychological well-being. Therefore, incorporating yoga-based practices into university-level health and wellness programmes may be a useful complementary approach for supporting students' mental health.

Keywords: University Students, Stress, Anxiety and yoga intervention.

WELL-BEING THROUGH INSIGHT IN VIPASSANA MEDITATION

Charu Mehta

Introduction: Well-being includes a multi-dimensional state where a person has their physical, mental, emotional, and material needs met so they can feel healthy, happy, and fulfilled. Vipassana is an ancient meditation practice develops insight by training practitioners to observe bodily sensations, thoughts, and emotions as impermanent, unsatisfactory, and non-self. Although mindfulness-based interventions are widely studied, insight is the only specific mechanism of well-being that remains underexplored. The presented paper examines how insight developed through Vipassana contributes to overall well-being.

Methods: Narrative review of literature was carried out through the use of databases like PubMed, PsycINFO, Google scholar, academic books. Literature was assessed based on titles, abstracts, and the entire article in terms of its relevancy. Peer-reviewed articles concerning the subject areas of Vipassana or insight meditation that involved well-being as an outcome were used.

Results:

Three major themes came to light. First, continuous, unbiased observation facilitates decentering, and helps practitioners view thoughts and emotions as processes. Second, the direct experience of impermanence reduces craving and aversion. Third, the insight about the constructed nature of self is more strongly associated with reduced rumination, higher levels of self-compassion, and better acceptance. Reported outcomes were lower stress levels, reduced anxiety and depressive symptoms, and higher satisfaction with life. The evidence was limited by small sample sizes, self-selection, and reliance on self-reporting.

Discussion:

Insight, instead of relaxation, seems to be a key mechanism that facilitates the positive effect of Vipassana on well-being. The practice develops equanimity which is directly changes on a psychological level. It is recommended that future studies employ longitudinal and controlled methods as well as validated measures of insight for holistic wellbeing.

Keywords: Anicca, equanimity, insight, well-being, vipassana.

The Role of Conscious Breathing in Holistic Health: An Integrative Review

Prof. Riya Bisht

The purpose of this paper is to explore the role of conscious breathing in promoting holistic health by reviewing existing research across physical, mental, emotional, and spiritual dimensions of well-being. Conscious breathing means paying attention to your breath and noticing how you breathe on purpose. In yoga, it is connected to pranayama, which means different ways to control and pay attention to breathing. Conscious breathing is a practice that helps you focus on your body, pay attention to your mind, and feel better inside. This review explores the contribution of conscious breathing to holistic health and overall well-being through an integrative analysis of existing research. The reviewed literature suggests that conscious breathing may promote holistic health by supporting physiological functioning, psychological well-being, emotional balance, and inner awareness. It was associated with relaxation, reduced stress and anxiety, improved mental focus, and overall well-being through an integrated mind–body approach.

Keywords: Conscious Breathing, Holistic Health, Pranayama, Mental Well-being, Emotional Regulation, Mind–Body Integration

A Comprehensive Review of Mutra Parīkṣā (Ayurvedic Urine Examination): From the Vedic Era to the Modern Era

Dr. Girish Vishwasrao Patil, Dr. Swapnil Sudhakar Bari, Dr. Nirmalkumar K Jagdale

Background. For as long as clinicians have watched over the sick, urine has served as an accessible window onto the body's inner state. In the Indian medical tradition, Mutra Parīkṣā (urine examination) is one of the eight classical stations of clinical assessment (Aṣṭavidha Parīkṣā) and also underpins the prognostic oil-drop test, Taila Bindu Parīkṣā.

Objective. This review traces the intellectual lineage of Mutra Parīkṣā from its Vedic roots through the Saṃhitā and medieval periods to the present, and critically appraises how its observations map onto modern urinalysis.

Methods. A narrative synthesis was conducted with PRISMA-informed reporting. Classical Sanskrit texts were hand-searched alongside PubMed, Scopus, Google Scholar and Ayurveda-specific repositories. 536 records identified, 33 sources met the inclusion criteria and informed the synthesis.

Results. Across two millennia, Ayurvedic authors developed a coherent, qualitative reading of urine — colour (varṇa), odour (gandha), quantity, froth and sediment — interpreted through the tridoṣa framework. Many of these observations converge on contemporary findings: sweet-smelling, ant-attracting urine anticipates glycosuria in diabetes; foul urine suggests infection; frothy urine echoes proteinuria; sandy sediment mirrors crystalluria. The oil-drop test relates plausibly to surface- and interfacial-tension changes in diseased urine.

Conclusion. Mutra Parīkṣā is a low-cost, non-invasive, point-of-care method whose qualitative logic complements the quantitative precision of modern urinalysis. Realising its value requires standardised protocols and prospective validation rather than uncritical equivalence.

Keywords: *Mutra Parīkṣā; Taila Bindu Parīkṣā; Aṣṭavidha Parīkṣā; urinalysis; Prameha; tridoṣa; integrative diagnosis; urinomics*

Psychology of Healing: Psychological, Behavioural and Psychophysiological Pathways Linking Yoga and Naturopathy to Recovery in Chronic Disease

Sumanlata

Background: Healing is often viewed as primarily a biological process directed at addressing the causes of disease. However, recovery from chronic illness is influenced by how an individual interprets illness, expectations, emotion, self-efficacy, behaviour and the treatment environment, which interact with autonomic, hormonal and immune systems to affect symptoms, adherence, functioning and health behaviours. Yoga and naturopathy utilise a range of combined approaches that may impact several of these domains simultaneously.

Objective: To explore how psychological, behavioural and body-regulation pathways may allow yoga and naturopathy to support recovery and disease management, and propose a framework for clinical investigation.

Methods: This narrative review draws on recent published systematic reviews, meta-analyses, randomised, controlled trials and foundational studies on illness perception, stress, self-efficacy, mind-body interventions, yoga, naturopathy, autonomic regulation, sleep, pain, inflammation and chronic disease. The focus was on recent evidence, while older landmark studies were kept to provide context.

Discussion: How individuals interpret illness, perceived stress, emotion regulation, self-efficacy and behaviour may contribute to the mechanisms linking disease to recovery. Yoga may affect these processes through movement, breath, mindfulness, meditation, interoception and relaxation. Naturopathy may affect them through structured lifestyle changes involving nutrition, activity, sleep, nature, education and therapeutic engagement.

These psychological and behavioural effects may intersect with autonomic, HPA-axis and immune pathways, with growing evidence for several psychological, symptom and functional outcomes, but less directly for disease-modification effects.

Conclusion: The psychology of healing provides a useful conceptual bridge between mind-body science and integrative healthcare. Yoga and naturopathy should not be presented as substitutes for evidence-based medical treatment or as cures for all diseases.

However, they may be considered useful additions to standard care that enhance psychological regulation, health behaviours and normal body regulation, with future trials investigating psychological and behavioural domains alongside objective biological and clinical outcomes.

Keywords: psychology of healing; yoga; naturopathy; mind-body medicine; stress; self-efficacy; illness perception; autonomic regulation; psychoneuroimmunology; lifestyle medicine; chronic disease

Mind as described in Yoga Sūtra

Vijayashree

Research Parameters (Introduction): Yoga does not teach us merely about the importance of physical well-being. Yogic practice, if performed diligently, the welfare of mental stability is also guaranteed. Patañjali, the exponent of Yoga is hailed for removing the impurities of the mind through the practice of Yoga.

Methodology: The aspects pertaining to the mind shall be studied in this paper in the light of *Yoga Sūtras* (*YS*) of Patañjali and its commentaries such as *Vyāsa Bhāṣya* and *Tattva Viśāradī* of Vācaspati Miśra.

Data & Findings: According to Patañjali, *abhyāsa* and *vairāgya* are considered as the two means for restraining the mind. He further opines that when the mind develops the attributes such as friendship, compassion, happiness and equanimity towards those suffering, virtuous and non-virtuous ones it would enable the mind stay calm and cheerful. He prescribes the techniques to be employed by the practitioner for controlling the mind by overcoming the obstacles. *YS* identifies the disturbing factors of the mind such as sorrow, depression etc., which can be eradicated through *upāsanā*

Conclusion: Some of the limbs of Aṣṭāṅga Yoga are considered as tools in managing the mind. For instance, Prāṇāyāma is considered as an effective tool in dispelling the impurities plaguing the mind.

Keywords

[Yoga]; [*citta*]; [*vṛtti*]; [*kleśa*]; [*abhyāsa*]

Yogic elements in Shaivagama

Dr. Sharath Chandra Swamy

Yoga is an art as well as a science, that links individual consciousness with universal consciousness. Yoga is a methodical way of achieving harmony within oneself towards nature around them. Every action we perform, everything we see, and every discussion we have is infused with the cultural heritage of Yoga. In the same way, Agamas are also plays a pivotal role in our cultural heritage. Especially, the Saivagamas of Southern India defined in its rich heritage of temple culture and literature. The Saivagama has a vast literature, that even its most texts are still unpublished or not available. The Saivagama has four parts – Kriyapada, Charyapada, Yogapada and Jnanapada. In these divisions every part is a great source of our ancient cultural, scientific, ritualistic, philosophical heritage.

The present research paper mainly focuses on the Yogapada of the Saivagama. The published agamas like, Matangaparameshwara, Karana, Raurava, Sarvajnanottara etc has an abundant amount of knowledge of Yoga, Ashtangayoga, Hathayoga, Samadhi, concept of Moksha etc. This paper will try to analyse the concept of Yoga in the comparative way with other Yogic works like,

Yogasutram of Patanjali, Hathayoga texts, Buddhist Yoga concepts etc. This is a vast subject, which cannot be completely elaborated in a single article. Still, the present article will try to give a bird eye view for the readers and encouraging the further studies in this area is the major aim of the present research.

Keywords: Yoga, Saivagama, Ashtanga yoga, Samadhi, Moksha, Pranayama.

Āhāra and Manas in Classical Ayurveda: A Textual Study of Food, Mental Well-being, and the Triguṇas

Vaishnavi M. Khopkar, Asst. Prof. Raghavendra Bhat

In classical Āyurveda, health (Svāsthya) is conceptualized as a state of equilibrium encompassing both physical (Śārīrika) and mental (Mānasika) dimensions (Prasannātmendriyamanaḥ — Suśruta Saṁhitā, Sūtrasthāna 15/41). As one of the three sub-pillars of life (Trayopastambha: Āhāra, Nidrā, Brahmacarya), diet (Āhāra) serves not merely as a source of somatic nourishment (Dhātupoṣaṇa), but as a primary determinant of psychological stability, behavioral patterns, and emotional health. This study investigates the classical Āyurvedic relationship between Āhāra, the mind (Manas), and its fundamental qualitative attributes—the Triguṇas (Sattva, Rajas, and Tamas).

Analyzing foundational treatises—specifically the Caraka Saṁhitā (Sūtrasthāna, Śārīrasthāna, and Vimānasthāna), Suśruta Saṁhitā, and Aṣṭāṅgahṛdaya—alongside Upanishadic parallels (e.g., Chāndogya Upaniṣad 6.5.4: "Anna-mayam hi soma manaḥ"), this paper demonstrates that ingested food undergoes fine-subtle digestion (Sūkṣma Pāka) to directly construct and modulate the Manas. The paper systematically categorizes diets according to their mental impact: Sāttvika Āhāra (promoting clarity, emotional resilience, and cognitive stability), Rājasika Āhāra (inducing agitation, anxiety, passion, and mental hyper-reactivity), and Tāmasika Āhāra (causing lethargy, confusion, depression, and cognitive blunting). Furthermore, the study explores Kautilyan-era and Ayurvedic clinical guidelines for Āhāra-vidhi-viśeṣāyatana (eight factors of dietary intake) and Mānasadoṣa imbalances, proving that targeted dietary interventions serve as a foundational therapeutic modality (Yuktipavyāpaśraya Chikitsā) for mental well-being and the mitigation of psychological disorders (Mānasika Vikāra).

Keywords: Āhāra, Manas, Triguṇa, Sattva, Rajas, Tamas, Āyurveda, Aṣṭāṅgahṛdaya, Mānasika Śānti, Caraka Saṁhitā

आयुर्वेद में 'मंत्र-चिकित्सा' और 'शब्द-ब्रह्म' की अवधारणा का वैज्ञानिक आधार: एक एकीकृत, व्यावहारिक एवं अष्टांग आयुर्वेदिक अध्ययन

कीर्ति

आयुर्वेद में दैवव्यपाश्रय 'मंत्र-चिकित्सा' त्रिदोष संतुलन (वात, पित्त, कफ शमन), स्रोतो-शुद्धि, ओजस् वृद्धि तथा प्रज्ञापराध निवारण की ऊर्जा-आधारित चिकित्सीय विधि है। प्रस्तुत अध्ययन व्याकरण दर्शन (भर्तृहरि-कृत 'वाक्यपदीयम्') के 'शब्द-ब्रह्म' सिद्धांत, योग शास्त्र तथा आधुनिक न्यूरो-बायोलॉजी का एकीकृत व व्यावहारिक संबंध स्थापित करता है। यजुर्वेद (34.5) के शिवसंकल्प सूक्त एवं वाक्यपदीयम् के अनुसार शब्द तात्त्विक रूप से शुद्ध 'चेतना' है, जो शिवसंकल्प से संयुक्त होकर कायाग्नि व सूत्रात्मा वायु के माध्यम से क्रियात्मक 'प्राण' में परिणत होता है। वाक् के 4 स्तरों तथा जप-योग के क्रमिक सोपान (वाचिक ➔ उपांशु ➔ मानसिक ➔ अजपा) से यह कायिक व मानसिक व्याधियों का शमन करती है। दैवव्यपाश्रय में ३ मुख्य भौतिकीय नियम कार्यरत हैं: सिद्ध योगी

द्वारा स्पर्श-शक्तिपात में 'लॉ ऑफ एंट्रेनमेंट', यज्ञीय प्रयोग में संरचनात्मक व्यतिकरण व नॉन-लोकल बायो-फोटोनिक हीलिंग द्वारा दूरस्थ रोगी तक संकल्प-संचार, तथा न्यूरो-मोटर लूपिंग द्वारा अजपा जप में परिणमन।

अष्टांग आयुर्वेद की 5 मुख्य शाखाओं में इसके अनुप्रयोग प्रत्यक्ष हैं: भूत विद्या (DMN संतुलन, सेरोटोनिन वृद्धि व कोर्टिसोल शमन), अगद तंत्र (गरुड़/रोध मंत्रों द्वारा नर्वस शॉक से रक्षा व विष-प्रसार शमन), कौमारभृत्य ('गर्भ संस्कार'), जीर्ण रोग ('प्रभाव' द्वारा ओजस् व स्व-चिकित्सा जागरण) तथा (अभिमंत्रण पूर्वक) औषध सेवन।

आधुनिक सोनबायोलॉजी सिद्ध करती है कि ध्वनि तरंगे कोशिकीय मैकेनोट्रांसडक्शन द्वारा YAP/TAZ न्यूक्लियर ट्रांसलोकेशन एवं Piezo1 आयन चैनलों से जीन अभिव्यक्ति नियंत्रित करती हैं। साइमेटिक्स/एक्वाफोटोनिक्स जल-क्लस्टर्स में Faraday Waves द्वारा सममिति लाते हैं। AIIMS के 128-चैनल qEEG/sLORETA अध्ययन, वागस तंत्रिका उद्दीपन तथा ICU कोमा/TBI (Disorders of Consciousness में GCS व चेतना-सुधार) साक्ष्य प्रमाणित करते हैं कि आयुर्वेदिक मंत्र-चिकित्सा कोशिका, जलीय संरचना और न्यूरो-सर्किट्री को पुनर्गठित कर सूक्ष्म प्राण-संचार एवं समूल रोग-मुक्ति निष्पादित करती है।

कूटशब्द : दैवव्यपाश्रय, मंत्र चिकित्सा, शब्द-ब्रह्म, वाक्यपदीयम्, अष्टांग आयुर्वेद, जप, कुण्डलिनी, सोनबायोलॉजी (YAP/TAZ), TBI/Coma (Disorders of Consciousness), HRV.

Yoga for Digital Well-being: A Yogic Approach for Preventing the Adverse Effects of Digital Use

Dr. Himadri Sarma

Digital technology has become an integral part of contemporary life, particularly among young people. Smartphones, social media, online education, digital entertainment and artificial intelligence have transformed the ways in which students learn, communicate and spend their leisure time. Although digital technology offers significant educational and social benefits, the excessive and unregulated use may lead to problems such as distraction, fragmented attention, sedentary behaviour, disturbed sleep routines, mental fatigue, emotional dependence on social media and reduced face-to-face interaction. Therefore, the challenge, is not to reject technology but to develop a healthy and conscious relationship with it. Yoga, with its emphasis on self-discipline, sensory regulation, concentration, breathing awareness and mental well-being, offers a valuable framework for digital well-being. This paper examines the adverse effects associated with excessive digital engagement and explores how Yogic principles such as *pratyāhāra*, *dhāraṇā*, *dhyāna*, *abhyāsa*, *vairāgya*, *samatva*, *yama* and *niyama* can help in preventing or managing unhealthy digital habits. It also briefly highlights Government's initiatives towards holistic well-being of the people, enabling to use technology consciously rather than compulsively.

Keywords: Yoga, Digital Well-being, Digital Yoga.

A Comprehensive Review of Mutra Parīkṣā (Ayurvedic Urine Examination): From the Vedic Era to the Modern Era

Dr. Girish Vishwasrao Patil, Dr. Swapnil Sudhakar Bari, Dr. Nirmalkumar K Jagdale

Background. For as long as clinicians have watched over the sick, urine has served as an accessible window onto the body's inner state. In the Indian medical tradition, Mutra Parīkṣā (urine examination) is one of the eight classical stations of clinical assessment (Aṣṭavidha Parīkṣā) and also underpins the prognostic oil-drop test, Taila Bindu Parīkṣā.

Objective. This review traces the intellectual lineage of Mutra Parīkṣā from its Vedic roots through the Saṃhitā and medieval periods to the present, and critically appraises how its observations map onto modern urinalysis.

Methods. A narrative synthesis was conducted with PRISMA-informed reporting. Classical Sanskrit texts were hand-searched alongside PubMed, Scopus, Google Scholar and Ayurveda-specific repositories. Of 536 records identified, 33 sources met the inclusion criteria and informed the synthesis.

Results. Across two millennia, Ayurvedic authors developed a coherent, qualitative reading of urine — colour (varṇa), odour (gandha), quantity, froth and sediment — interpreted through the tridoṣa framework. Many of these observations converge on contemporary findings: sweet-smelling, ant-attracting urine anticipates glycosuria in diabetes; foul urine suggests infection; frothy urine echoes proteinuria; sandy sediment mirrors crystalluria. The oil-drop test relates plausibly to surface- and interfacial-tension changes in diseased urine.

Conclusion. Mutra Parīkṣā is a low-cost, non-invasive, point-of-care method whose qualitative logic complements the quantitative precision of modern urinalysis. Realising its value requires standardised protocols and prospective validation rather than uncritical equivalence.

Keywords: *Mutra Parīkṣā; Taila Bindu Parīkṣā; Aṣṭavidha Parīkṣā; urinalysis; Prameha; tridoṣa; integrative diagnosis; urinomics*

Meyeder Brotokatha: Ecofeministic Study of Bengali Folk Rhymes

Dr Prasun Banerjee

Bengali folk rhymes have long functioned as a powerful medium of cultural transmission, reflecting the values, beliefs, and social dynamics of rural communities. This paper explores those rhymes associated with women's ritual observances in rural Bengal—from the nineteenth century through the late twentieth and early twenty-first centuries—in order to uncover their embedded ecological and feminist dimensions. Through an ecofeminist lens, the study analyzes their lyrical content, symbolism, and ritual contexts to illuminate the intrinsic interconnection between gender, nature, and sustainability.

These rhymes frequently depict women as caretakers, nurturers, preservers, and mediators between human and non-human worlds. The paper examines how such narratives encode ecological knowledge and reflect gendered subjectivities shaped within ritual performance. It further engages the theoretical framework of Gilles Deleuze and Félix Guattari, conceptualizing brotokatha not merely as symbolic folklore but as ecological assemblages—dynamic configurations in which women, plants, deities, domestic spaces, ritual gestures, and narrative refrains function as interconnected machinic formations. Drawing upon Guattari's formulation of the three ecologies—mental, social, and environmental—the study argues that these oral traditions enact a pre-modern yet strikingly contemporary ecological consciousness that resists anthropocentric, patriarchal, and capitalist logics. By foregrounding becoming-woman and becoming-nature, the paper situates Bengali folk rituals within a minoritarian epistemology that anticipates ecofeminist and posthumanist discourses. It concludes by proposing brotokatha as a sustainable cultural model for rethinking ecological ethics in the Anthropocene.

Keywords: Ecofeminism, Deleuze and Guattari, Bengali folk rhymes, Brata katha, Assemblage, Becoming-woman, Ecosophy

योगशास्त्र में प्रत्याहार की शास्त्रीय अवधारणा...

Shailaja P. Dhore

पृष्ठभूमि- योगशास्त्र में मानव के शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक विकास के लिए अष्टाङ्गयोग की महत्वपूर्ण भूमिका स्वीकार की गई है। महर्षि पतञ्जलि द्वारा प्रतिपादित अष्टाङ्गयोग में प्रत्याहार को पाँचवें अंग के रूप में स्थान प्राप्त है। यह बहिरंग योग एवं अन्तरंग योग के मध्य एक महत्वपूर्ण

सेतु माना जाता है। पतञ्जलि योगसूत्र में कहा गया है— **"स्वविषयासंप्रयोगे चित्तस्य स्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः"** (2.54)। इसका तात्पर्य इन्द्रियों के अपने-अपने विषयों से सम्बन्ध विच्छेद कर चित्त के स्वरूप का अनुसरण करने से है। विभिन्न योगग्रंथों में प्रत्याहार की अवधारणा, स्वरूप एवं साधना-पद्धतियों का विविध रूपों में विवेचन प्राप्त होता है।

उद्देश्य- प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य योगशास्त्र में प्रत्याहार की शास्त्रीय अवधारणा का विश्लेषण करना, पतञ्जलि योगसूत्र में उसके स्वरूप एवं महत्त्व को स्पष्ट करना तथा प्रमुख योगग्रंथों में वर्णित प्रत्याहार की अवधारणाओं का तुलनात्मक अध्ययन करना है। साथ ही, प्रत्याहार एवं इन्द्रिय-निग्रह, चित्त-नियमन, धारणा एवं ध्यान के पारस्परिक संबंध का विश्लेषण करना भी अध्ययन का उद्देश्य है।

परिणाम - अध्ययन से स्पष्ट होता है कि प्रत्याहार केवल इन्द्रियों को बाह्य विषयों से रोकने की प्रक्रिया नहीं, बल्कि चेतना को बाह्यमुखता से अन्तर्मुखता की ओर ले जाने वाली क्रमिक योगिक साधना है।

महत्व - प्रत्याहार अष्टाङ्गयोग की एक संक्रमणकारी एवं अत्यंत महत्वपूर्ण अवस्था है, जो इन्द्रिय-नियमन के माध्यम से साधक को अन्तर्मुखी चेतना की ओर अग्रसर करती है। शास्त्रीय दृष्टि से यह आत्मानुशासन, चित्त-नियमन एवं आध्यात्मिक उन्नति की महत्वपूर्ण साधना है।

महानुभाव तत्त्वज्ञान में आचार-विचारों का चरक एवं सुश्रुत संहिता में वर्णित दिनचर्या-विचारों के साथ तुलनात्मक अध्ययन

Vasumati Vidyadhar Karandikar

भारतीय ज्ञान-परंपरा में मानव जीवन को स्वस्थ, संयमित, संतुलित एवं नैतिक बनाने के लिए आचार-विचार तथा दिनचर्या को विशेष महत्त्व प्रदान किया गया है। आयुर्वेद के प्रमुख ग्रंथ चरक संहिता एवं सुश्रुत संहिता में स्वस्थ जीवन की आधारभूत संकल्पना के अंतर्गत दैनिक आचार, शारीरिक स्वच्छता, आहार-विहार, निद्रा, व्यायाम, ब्रह्मचर्य, इन्द्रिय-संयम तथा ऋतु-अनुकूल जीवनशैली का विस्तृत विवेचन प्राप्त होता है। दूसरी ओर, मराठी भाषा मे महानुभाव तत्त्वज्ञान में भी आचारशुद्धि, संयम, सद्वर्तन, आहार-विहार, इन्द्रिय-निग्रह, शुचिता तथा अनुशासित जीवन को साधना एवं आध्यात्मिक उन्नति का महत्त्वपूर्ण आधार माना गया है।

प्रस्तुत शोध का उद्देश्य महानुभाव तत्त्वज्ञान में प्रतिपादित आचार-विचारों का चरक संहिता एवं सुश्रुत संहिता में वर्णित दिनचर्या-विचारों के साथ तुलनात्मक एवं विश्लेषणात्मक अध्ययन करना है। इस अध्ययन में यह विवेचित किया जाएगा कि दोनों ज्ञान-परंपराओं में स्वस्थ एवं संतुलित जीवन की संकल्पना किन समान एवं भिन्न आधारों पर निर्मित होती है। विशेषतः आहार-विहार, शारीरिक स्वच्छता, निद्रा, व्यायाम, इन्द्रिय-संयम, ब्रह्मचर्य, मानसिक अनुशासन, सदाचार तथा दैनिक जीवन के नियमन जैसे प्रमुख आयामों को तुलनात्मक दृष्टि से परखा जाएगा।

प्रस्तुत शोध में मूल ग्रंथों के पाठ-विश्लेषण, व्याख्यात्मक तथा तुलनात्मक पद्धति का उपयोग किया जाएगा। अध्ययन का प्रमुख प्रतिपाद्य यह है कि महानुभाव तत्त्वज्ञान का आचार-विचार जहाँ मुख्यतः आध्यात्मिक अनुशासन एवं मोक्षाभिमुख जीवन-दृष्टि से संबद्ध दिखाई देता है, वहीं आयुर्वेदिक संहिताओं में दिनचर्या का विवेचन प्रमुखतः शरीर-स्वास्थ्य, रोगप्रतिरोध तथा जीवन-संतुलन की दृष्टि से किया गया है। तथापि, दोनों परंपराओं में संयमित जीवन, शुचिता, मिताहार, इन्द्रिय-नियमन तथा अनुशासन जैसे अनेक अंतर्संबंधित तत्त्व दृष्टिगोचर होते हैं।

इस प्रकार यह शोध भारतीय ज्ञान-परंपरा में शरीर, मन, आचार और आध्यात्मिक जीवन के परस्पर संबंध को समझने की दिशा में एक तुलनात्मक दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है। अध्ययन से न केवल महानुभाव दर्शन के आचार-विचार की विशिष्टता स्पष्ट होगी, बल्कि आयुर्वेद और महानुभाव परंपरा के मध्य संभावित अंतःविषयक संवाद की संभावनाएँ भी उद्घाटित होंगी। समकालीन संदर्भ में यह अध्ययन भारतीय पारंपरिक जीवन-दृष्टि में निहित समग्र स्वास्थ्य एवं अनुशासित जीवन की अवधारणाओं के पुनर्पाठ की दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण सिद्ध हो सकता है।

A Comparative Study of Yoga in Patañjali's Yogasūtra and Hemacandra's Yogaśāstra

Sapna Jain

Every human being in the world is a archive of infinite and immeasurable powers. He possesses knowledge and strength within himself. He is himself the creator of his own development as well as the cause of his own downfall. Despite being the possessor of such immense potential, he often fails to achieve his goals. On reflecting upon this, we realize that the fundamental cause of human failure is the absence of yoga, or stability and integration, in life. To reach one's goal and accomplish one's purpose, it is essential to bring unity, dedication, and stability in thought, speech, and action.

Due to the lack of stability, a person is unable to have complete faith in his own abilities and doubts constantly remain in his intellect. Bringing concentration and stability to the contemplation of the self is, in essence, yoga. Yoga is an important discipline for self-development. The thinkers, philosophers, and contemplative sages of Indian culture have recognized the importance of yogic practice and have deeply reflected upon its various dimensions.

Within the Vedic tradition, the Pātañjala Yogasūtra holds a prominent position in the field of yoga. Among the Jain Ācāryas, the Yogaśāstra, composed by the Kalikāla Sarvajña Ācārya Hemacandra, has also made a significant contribution to the study and practice of yoga. However, their philosophical perspectives are different. Patañjali's yoga primarily focuses on the cessation of the modifications of the mind (cittavṛttis) and the attainment of kaivalya, whereas Hemacandra's Yogaśāstra, based on Jain philosophy, gives importance to self-purification, non-violence, discipline, austerity, the destruction of karmic bondage, and liberation (mokṣa). The objective of this research is to undertake a comparative study of Patañjali's Yogasūtra and Hemacandra's Yogaśāstra in order to examine their respective concepts of yoga, philosophical foundations, practices, and ultimate goals, and to identify the similarities and differences between Pātañjala Yoga and Jain Yoga of Ācārya Hemacandra.

नागपंचमी में नाथपंथीय पदचिह्न : बत्तीस शिराला की गोरक्षनाथ परंपरा का एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

श्री अक्षय माळी (शोधार्थी) , प्रा. दिनकर मराठे

महाराष्ट्र के सांगली जिले में स्थित बत्तीस शिराला अपनी विशिष्ट नागपंचमी परंपरा और नागपूजा से जुड़ी समृद्ध लोक-सांस्कृतिक पहचान के लिए प्रसिद्ध है। इस क्षेत्र की धार्मिक एवं सांस्कृतिक स्मृति में नाथ संप्रदाय के प्रमुख योगी गुरु गोरक्षनाथ का विशेष स्थान है। स्थानीय आख्यायिकाओं, मौखिक परंपराओं और धार्मिक स्मृतियों में गोरक्षनाथ के शिराला आगमन, साधना तथा नागपंचमी परंपरा से उनके संबंध का उल्लेख मिलता है। किंतु इन परंपरागत मान्यताओं को ऐतिहासिक तथ्य के रूप में स्वीकार करने के बजाय उनके स्रोतों, स्वरूप और सांस्कृतिक निरंतरता का विश्लेषणात्मक परीक्षण आवश्यक है।

प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य बत्तीस शिराला की नागपंचमी परंपरा में निहित नाथपंथीय पदचिह्नों का विश्लेषण करना तथा गोरक्षनाथ से संबंधित लोकस्मृति, नागपूजा, मंदिर परंपराओं और स्थानीय सांस्कृतिक व्यवहार के अंतर्संबंधों को समझना है। अध्ययन विशेष रूप से यह अन्वेषित करता है कि गोरक्षनाथ और नागपंचमी के मध्य संबंध स्थानीय

सामूहिक स्मृति में किस प्रकार निर्मित हुआ, पीढ़ी-दर-पीढ़ी किस प्रकार संरक्षित रहा और बदलते सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भों में किस प्रकार विकसित हुआ।

इस शोध में ऐतिहासिक एवं गुणात्मक अनुसंधान दृष्टिकोण अपनाया गया है। उपलब्ध साहित्यिक एवं ऐतिहासिक स्रोतों, मंदिर परंपराओं, मौखिक इतिहास, स्थानीय आख्यायिकाओं, क्षेत्रीय अवलोकन तथा परंपरा के वाहकों के साक्षात्कारों के आधार पर तुलनात्मक एवं विश्लेषणात्मक अध्ययन किया जाएगा। शोध किसी पूर्वनिर्धारित निष्कर्ष के आधार पर गोरक्षनाथ को नागपंचमी परंपरा का प्रत्यक्ष प्रवर्तक नहीं मानता, बल्कि उनके और इस परंपरा के संबंध की स्थानीय सांस्कृतिक संरचना एवं अर्थ-निर्माण की प्रक्रिया को समझने का प्रयास करता है।

अध्ययन बत्तीस शिराला में नाथ परंपरा और स्थानीय नागपूजा के पारस्परिक संवाद को **"नाथ परंपरा के स्थानीयकरण"** की अवधारणा के माध्यम से समझने का प्रयास करता है। इस प्रकार नागपंचमी को केवल एक धार्मिक उत्सव न मानकर लोकस्मृति, नाथ परंपरा और क्षेत्रीय सांस्कृतिक पहचान के अंतर्संबंधों को अभिव्यक्त करने वाली जीवंत सांस्कृतिक परंपरा के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

प्रमुख शब्द: नाथ संप्रदाय, गुरु गोरक्षनाथ, नागपंचमी, बत्तीस शिराला, नागपूजा, लोकस्मृति, मौखिक परंपरा।

Yoga Therapy in Breast Cancer: A Scoping Review of Its Effects on Inflammation and Psychophysiological Health

Dr Madhur Gawali

Research Parameters (Introduction)

Women living with breast cancer often carry a heavy physiological burden long after diagnosis, raised inflammatory activity and real psychological strain, and conventional treatment can sometimes add to this rather than ease it. Yoga therapy is increasingly used alongside standard care, but the research is scattered: some studies look at inflammatory markers, others at psychophysiological measures, rarely both together in the same women. This paper reviews what is currently known about yoga therapy's effect on inflammation and psychophysiological health in women with breast cancer, aiming to identify where the evidence is thin and where further research is needed.

Methodology

The review follows PRISMA-ScR guidelines for scoping reviews. PubMed, Scopus, and the Cochrane Library will be searched using terms around yoga, breast cancer, inflammation, and psychophysiological assessment. Studies will be included if they involve adult women with breast cancer, at any stage of treatment, who received a structured yoga intervention and were assessed on at least one relevant outcome. Titles and abstracts will be screened first, followed by full-text review of shortlisted papers, with the process documented in a PRISMA-ScR flow diagram. Details from each study will be recorded in an evidence table and discussed thematically.

Data & Findings

Early searches suggest a field that is growing but still uneven in quality. Inflammatory outcomes seem to have received more attention than psychophysiological ones, and very few studies look at both together, or focus specifically on women who are still in active treatment rather than survivorship.

Conclusion

Bringing this scattered evidence together should give a clearer picture of what yoga therapy can offer women with breast cancer, and where the real gaps lie. Establishing this evidence base is particularly relevant given the growing interest in biomarker-driven outcome measures within integrative oncology research.

Keywords

Yoga Therapy; Breast Cancer; Inflammatory Biomarkers; Psychophysiology; Scoping Review

Effect of Skanda Sanchalan Kriya on Shoulder pain stiffness among IT professionals

Pooja Sharma

This present study investigates the effect of Skanda Sanchalan Kriya on shoulder pain and stiffness among male IT professionals. An experimental Quasi Pre-test Post-test Non-Equivalent research design was used in the study. Non-Probability based Judgemental Sampling Technique was used to select sample. Out of total 40 screened participants, 30 samples were selected through non-probability based Judgemental Sampling Technique. Samples were later divided into two groups, i.e., experimental (n=15) and control group (n=15). The inclusion criteria were gender: male, age:35-45years, laptop/desktop/computer user: ≥5hours/day, IT professionals, experiencing pain & stiffness around neck-shoulder region. The Shoulder Pain and Disability Index (SPADI) and Back Scratch Test were administered to assess pain, disability, and stiffness. A 12-weeks intervention was implemented onto the experimental group. Collated pre-test and post-test data were statistically analysed using Descriptive and Inferential statistics. Mean and Standard deviation (SD) of SPADI scores, pre and post intervention for experimental group was 31.67(±6.04) and 29.67(±6.50). Similarly Mean and SD of pre and post SPADI scores for control group was 68.67(±4.08) and 68.67(± 4.08). Mean of change in performance of experimental and control groups were 2.00(±1.79) and 0.00. Calculated mean difference of change in performance was 2.00 for 30 samples. Calculated t-value was 1.46 (28) at 0.05 significance level (p=0.154; p>0.05Results indicated modest improvements in SPADI scores and Back Scratch Test performance in the intervention group, while the control group showed negligible change. However, statistical analysis revealed no significant differences between groups (p>0.05). Although the findings suggest potential benefits of Skanda Sanchalan kriya in reducing musculoskeletal discomfort among sedentary IT professionals, the lack of statistical significance underscores the need for larger sample sizes and longer intervention periods to establish stronger evidence. This research contributes to the growing body of literature on yoga-based interventions for occupational health.

Key Words: Yogic Skanda Sanchalan, Shoulder Pain, Shoulder stiffness, Therapeutic yogic practices.

Yoga & Kalaripayattu

Akhil

The Aṣṭa Vadivukal (Eight Animal Postures) of Kalaripayattu form the foundation of the martial art. These postures imitate the movements and qualities of animals, developing strength, balance, flexibility, coordination, agility, and mental alertness. Similarly, many Yoga āsanas are inspired by nature and animals, emphasizing harmony between the body, mind, and breath. Although Kalaripayattu is primarily a martial discipline and Yoga is a spiritual discipline, both share common roots in ancient Indian knowledge systems.

Comparison of Aṣṭa Vadivukal and Yoga Āsanas

Gaja Vadivu (Elephant Stance) resembles Utkatāsana (Chair Pose), strengthening the thighs, hips, and lower back while promoting stability.

Aśwa Vadivu (Horse Stance) is similar to Vīrabhadrāsana I and II (Warrior Poses), developing leg strength, endurance, balance, and confidence.

Siṃha Vadivu (Lion Stance) resembles Siṃhāsana (Lion Pose), encouraging courage, an open chest, and controlled breathing.

Sarpa Vadivu (Serpent Stance) closely resembles Bhujangāsana (Cobra Pose), improving spinal flexibility and chest expansion.

Mayūra Vadivu (Peacock Stance) shares similarities with Mayūrāsana (Peacock Pose) in cultivating arm strength, concentration, and body control.

Mārjāra Vadivu (Cat Stance) resembles Mārjārīāsana (Cat Pose), enhancing spinal mobility and coordination.

Kukkuta Vadivu (Rooster Stance) is comparable to Kukkuṭāsana, requiring stability and focus.

Guru–Śiṣya Paramparā

A significant similarity in Yoga and Kalaripayattu is their emphasis on the guru–śiṣya paramparā (teacher–student tradition), where knowledge is transmitted through disciplined practice, respect, and ethical conduct. Both encourage humility, patience, self-control, courage, and perseverance.

Adharas in Kalaripayattu

The Adharas are considered the body's supporting energy bases from which movement, stability, balance, and power originate.

Every stance (Vadivu) is rooted through the lower Adharas.

Powerful strikes and weapon techniques originate from the Nabhi (navel centre).

Breath, balance, and posture are coordinated through the Adharas.

The Adharas are closely associated with Marma points, the body's vital energy locations used in combat and healing.

Shatchakras, Adharas and the Yogic Chakra System

Unlike Yoga, where chakras are primarily used for meditation and spiritual awakening, in Kalaripayattu they are experienced dynamically through movement, coordination, and martial practice.

Yoga presents a seven-chakra model focused on spiritual evolution, while Kalaripayattu traditionally works with six Shatchakras supported by the Adharas, emphasizing dynamic movement, martial efficiency, and vital energy. Despite these differences, both systems recognize that mastery of the body, breath, and mind is essential for achieving physical excellence and higher consciousness.

Conclusion

Despite their different primary goals—Yoga seeking inner realization and Kalaripayattu preparing one for self-defense and warfare—both ultimately aim to cultivate a balanced, healthy, and disciplined individual. Together, they represent the holistic Indian ideal of integrating body, mind, breath, and spirit, making them complementary systems of physical culture and personal transformation.

श्रीमद्भगवद्गीता के संदर्भ में ज्ञातुं, द्रष्टुं और प्रविष्टु त्रिपूटी का विश्लेषणात्मक अध्ययन

Janhvee Ruturaj Bhandari

वर्तमान आधुनिक भौतिकवादी युग में आध्यात्मिकता का स्वरूप केवल बौद्धिक ज्ञान या कर्मकांडों तक सीमित होकर रह गया है। अधिकांश साधक ईश्वरीय सत्य को केवल वैचारिक स्तर पर 'जानते' -ज्ञातुं हैं, किंतु न तो उसका प्रत्यक्ष अनुभव -द्रष्टुं कर पाते हैं और न ही चेतना में पूर्ण तल्लीनता या 'प्रवेश' -प्रविष्टुं प्राप्त कर पाते हैं। इसके कारण, आधुनिक मानव मानसिक अशांति और आंतरिक शून्यता से ग्रस्त है। यह शोध अध्ययन इस बात की जाँच करता है कि कैसे इस त्रिपूटी के क्रमिक और समन्वित मार्ग अनन्य भक्ति के माध्यम से को अपनाकर बौद्धिक ज्ञान और वास्तविक आध्यात्मिक अनुभव के बीच की खाई को पाटा जा सकता है, जिससे मनुष्य अपने आपको अच्छी तरह से समझ सकें।

प्रस्तुत शोध में पारंपरिक दार्शनिक विश्लेषण के साथ अनुभवात्मक दृष्टिकोण का समन्वय करने के लिए भगवद्गीता की त्रिपुटी पर आधारित त्रिस्तरीय शोध पद्धति का उपयोग किया गया है। शोध के प्रथम चरण में संबंधित ग्रंथों का गहन स्वाध्याय एवं दार्शनिक पृष्ठभूमि को समझा गया -ज्ञातुं'; द्वितीय चरण में उसके प्रत्यक्ष विश्लेषण, क्रिया और निरीक्षण का परीक्षण किया गया-'द्रष्टुं'; और अंतिम चरण में सिद्धांतों के प्रत्यक्ष अनुभवात्मक एवं व्यावहारिक सत्य की अनुभूति प्राप्त की गई-'प्रविष्टुं'.

शोध के परिणामों से यह स्पष्ट होता है कि 'ज्ञातुं, द्रष्टुं और प्रविष्टुं' त्रिपूटी के व्यावहारिक अनुप्रयोग से मानसिक स्थिरता, भावनात्मक संतुलन और एकाग्रता में उल्लेखनीय वृद्धि होती है। विश्लेषणात्मक और अनुभवात्मक दोनों स्तरों पर यह पाया गया कि सैद्धांतिक ज्ञान का जब प्रत्यक्ष अभ्यास और आंतरिक तल्लीनता के साथ संयोजन किया जाता है, तो तनाव कम होता है और चेतना का उच्च स्तर विकसित होता है।

यह शोध निष्कर्ष निकालता है कि प्राचीन दार्शनिक सिद्धांतों और आधुनिक जीवनशैली का समन्वय योग चिकित्सा और मानसिक स्वास्थ्य के क्षेत्र में अत्यंत प्रभावी है। इस अध्ययन का महत्त्व यह है कि यह शोधार्थियों, चिकित्सकों और आम जनमानस को समग्र स्वास्थ्य और आंतरिक शांति प्राप्त करने का एक वैज्ञानिक व व्यावहारिक मार्ग प्रदान करता है, जिससे भविष्य में इस दिशा में और अधिक शोध के नए द्वार खुलेंगे।

मुख्य शब्द (Keywords): भगवद्गीता, ज्ञातुं-द्रष्टुं-प्रविष्टुं, आत्म-साक्षात्कार, समग्र स्वास्थ्य

योग-परामर्श का भारतीय दार्शनिक आधार : आचार्य रजनीश के आलोक में

आदित्य कुमार

भारतीय ज्ञान-परंपरा में मानव-जीवन, मन, आचरण, आत्मबोध और अंतःपरिष्कार से संबंधित चिंतन की समृद्ध परंपरा रही है। इसी व्यापक परंपरा में योग को केवल शारीरिक अभ्यास के रूप में नहीं, बल्कि व्यक्ति के मानसिक, नैतिक एवं आध्यात्मिक विकास से संबद्ध साधना के रूप में विकसित किया गया। आधुनिक संदर्भ में योग के इन आयामों को परामर्श की प्रक्रिया से जोड़कर योग-परामर्श की अवधारणा को समझने की संभावना निर्मित होती है। प्रस्तुत अध्ययन में योग-परामर्श के भारतीय दार्शनिक आधार का आचार्य रजनीश के विशेष संदर्भ में विश्लेषण किया गया है। अध्ययन में भगवद्गीता के कृष्ण-अर्जुन संवाद, पतञ्जलि योगदर्शन में चित्त एवं साधना की अवधारणा तथा ध्यान, प्राणायाम और योगनिद्रा जैसी योगिक विधियों को योग-परामर्श की वैचारिक एवं व्यावहारिक पृष्ठभूमि के रूप में देखा गया है। आधुनिक परामर्श की व्यक्ति-केंद्रित प्रक्रिया के साथ इन भारतीय अवधारणाओं का संबंध स्थापित करते हुए आचार्य रजनीश के ध्यान एवं जागरूकता संबंधी चिंतन को समकालीन संदर्भ में विश्लेषित किया गया है। अध्ययन गुणात्मक एवं विश्लेषणात्मक पद्धति पर आधारित है, जिसमें संबंधित दार्शनिक ग्रंथों, रजनीश साहित्य तथा योग-परामर्श संबंधी उपलब्ध शोध-साहित्य का अध्ययन किया गया है। रजनीश के चिंतन में ध्यान व्यक्ति की आंतरिक चेतना, प्रज्ञा और आत्म-अवलोकन से संबद्ध है। इस दृष्टि से उनका चिंतन योग-परामर्श में बाह्य निर्देश की

अपेक्षा आत्म-जागरूकता, आत्मनिरीक्षण और अंतःपरिवर्तन को महत्त्व देने की संभावना प्रस्तुत करता है। अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि भारतीय दार्शनिक परंपरा में निहित संवाद, चित्त-जागरूकता, साधना और आत्मबोध के तत्त्व आधुनिक योग-परामर्श को वैचारिक आधार प्रदान कर सकते हैं। अतः आचार्य रजनीश का योगदान किसी स्वतंत्र परामर्श-पद्धति के प्रवर्तन के रूप में नहीं, बल्कि योग एवं ध्यान की चेतना-केंद्रित आधुनिक व्याख्या के रूप में अधिक उपयुक्त रूप से समझा जा सकता है। निष्कर्षतः योग-परामर्श की भारतीय दार्शनिक आधारभूमि संवाद, चित्त-जागरूकता, आत्मनिरीक्षण, साधना और अंतःपरिवर्तन के परस्पर संबद्ध तत्त्वों में निहित है तथा यह समकालीन व्यक्ति-केंद्रित मार्गदर्शन के लिए एक उपयोगी पूरक दृष्टि प्रस्तुत कर सकती है।

मुख्यशब्द:

योग-परामर्श, भारतीय दर्शन, योगदर्शन, आचार्य रजनीश, ध्यान, आत्म-जागरूकता, भारतीय ज्ञान परंपरा।

ब्रह्मवादिनी मैत्रेयी की आध्यात्मिक साधना एवं पातञ्जल योग में अन्तरंग योग : एक तुलनात्मक अध्ययन

नम्रता खुशाल कांबळे, डॉ. अमित भार्गव

प्रस्तुत शोध का केंद्रबिंदु बृहदारण्यक उपनिषद् की ब्रह्मवादिनी मैत्रेयी की आध्यात्मिक साधना तथा पातञ्जल योगदर्शन में ध्यान का तुलनात्मक अध्ययन है। इस अध्ययन में विशेष रूप से *बृहदारण्यक उपनिषद्* ४.५ में वर्णित मैत्रेयी–याज्ञवल्क्य संवाद तथा *पातञ्जल योगसूत्र* ३.१-३.३ में उल्लिखित धारणा, ध्यान एवं समाधि का विवेचन किया गया है। शोध का प्रमुख प्रश्न यह है कि मैत्रेयी की आध्यात्मिक साधना में प्रतिपादित श्रवण, मनन एवं निदिध्यासन को पातञ्जल योगदर्शन में वर्णित धारणा, ध्यान और समाधि से किस प्रकार साम्य एवं भेद स्थापित किया जा सकता है।

प्रस्तुत अध्ययन में तुलनात्मक पाठ-विश्लेषण की पद्धति अपनाई गई है।

प्राथमिक स्रोत के रूप में *बृहदारण्यक उपनिषद्* ४.५.४-६ तथा ४.५.१३-१५ और *पातञ्जल योगसूत्र* ३.१-३.३ को आधार बनाया गया है।

संबंधित भाष्यपरंपरा और उपलब्ध द्वितीयक साहित्य के आधार पर इन अवधारणाओं का संकल्पनात्मक तथा दार्शनिक विश्लेषण किया गया है।

अध्ययन से स्पष्ट होता है कि मैत्रेयी की आध्यात्मिक जिज्ञासा भौतिक संपत्ति की अपेक्षा अमृतत्व और आत्मज्ञान की प्राप्ति पर केंद्रित है। याज्ञवल्क्य द्वारा दिया गया वचन "आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यो मैत्रेयि" आत्मज्ञान की साधना-प्रक्रिया को स्पष्ट करता है। इसमें श्रवण द्वारा तत्त्वज्ञान के ग्रहण, मनन द्वारा उसके चिंतन तथा निदिध्यासन द्वारा उसका गहन अन्तर्मुखी अनुशीलन निहित है। दूसरी ओर, पातञ्जल योगदर्शन में "देशबन्धश्चित्तस्य धारणा" (योगसूत्र ३.१) तथा "तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम्" (योगसूत्र ३.२) के माध्यम से चित्त की एकाग्रता और ध्यान का स्वरूप प्रतिपादित किया गया है। निदिध्यासन और ध्यान में अन्तर्मुखता, निरन्तर चिंतन तथा एकाग्रता की दृष्टि से साम्य दिखाई देता है, तथापि दोनों की दार्शनिक पृष्ठभूमि और साध्य स्वतंत्र हैं। इसलिए यह अध्ययन वैदिक आत्मविद्या तथा पातञ्जल योगपरंपरा में ध्यान और आत्मसाक्षात्कार की अवधारणाओं के साम्य, भेद और विशिष्टता को स्पष्ट करता है।

Keywords: मैत्रेयी, ब्रह्मवादिनी, निदिध्यासन, पातञ्जल योगदर्शन, अन्तरंग योग

कुण्डलिनीप्रबोधनाय हठयोगसाधना - आसनप्राणायाममुद्रानादानुसन्धानस्य समकालीनप्रासङ्गिकता

गोगिशेट्टि वेङ्कटमृदुला,

कुण्डलिनीप्रबोधनं हठयोगपरम्परायां महत्त्वपूर्णं साध्यत्वेन परिगण्यते। हठयोगस्य परमलक्ष्यं राजयोगपदमारोहणमेव। गुरूपदिष्टमार्गेण यः साधकः राजयोगस्य माहात्म्यं तत्त्वतः जानाति, तस्य ज्ञानं मुक्तिश्च सिद्धिश्च लभ्यते। यदा चित्तमनाहतनादे एकीभूतं भवति, तदा साधकेन राजयोगपदवी प्राप्यते। एतदर्थं प्राणः इडापिङ्गलानाडीं त्यक्त्वा मध्यनाड्यां गन्तव्यः। तदर्थं मूलाधारचक्रे स्थिता कुण्डलिनीशक्तिः प्रबोधनीया, ततः प्राणः मध्यनाड्यां/सुषुम्णायां प्रवेष्टव्यः। एतदेव हठयोगस्य प्रयोजनम्। यथा द्वारं कुञ्चिकया उद्घाट्यते, तथा हठयोगसाधनया कुण्डलिनीशक्तिः प्रबोधिता सती सहसा ऊर्ध्वं गच्छति।

आधुनिककाले हठयोगस्य अभ्यासः प्रायः शारीरिकस्वास्थ्यं तथा मानसिकप्रशान्तिं प्रति केन्द्रितः दृश्यते; किन्तु पारम्परिकहठयोगग्रन्थेषु तस्य प्रयोजनं केवलं शारीरिकस्वास्थ्यपर्यन्तं सीमितं नास्ति। हठयोगस्य यथार्थज्ञानं सम्यगभ्यासश्च केवलं मोक्षाभिलाषिणां कृते न, अपि तु सर्वेषां मानवजीवनस्य समुचितविकासाय उपकारकौ भवतः। हठयोगसाधनया पञ्चकोशानां परिष्कारः, प्राणमनसोर्नियमनं, शारीरिकस्थैर्यं, मानसिकप्रशान्तिश्च विकसितुं शक्नुवन्ति। समकालीनयुगे तनावः, चिन्ता, सामान्यीकृतचिन्ताविकारः (Generalized Anxiety Disorder), आकस्मिकभीतिविकारः (Panic Disorder), आघातोत्तरतनावविकारः (PTSD), पुनरावर्तनोन्मादविकारः (OCD) च वर्धमानाः समस्याः सन्ति; अतः प्राणमनोनियमनद्वारा हठयोगस्य समकालीनप्रासङ्गिकता विशेषतया परिशीलनीया।

अस्मिन् शोधलेखे कुण्डलिन्याः स्वरूपं, कुण्डलिनीप्रबोधनस्य प्रयोजनं, हठयोगस्य स्वरूपं च विविच्य आसन-प्राणायाम-मुद्रा-बन्ध-नादानुसन्धानादीनां साधनानां क्रमिकं महत्त्वं परिशील्यते। एतेषां साधनानां समन्विताभ्यासः कुण्डलिनीप्रबोधनस्य मार्गे महत्त्वपूर्णः इति हठयोगग्रन्थेषु प्रतिपादितम्। तदनन्तरं कुण्डलिनीसम्बद्धपारम्परिकाधुनिकानुसन्धानानां समीक्षया हठयोगसाधनायाः शारीरिक-मानसिक-तन्त्रिकावैज्ञानिकप्रभावाः परिशील्यन्ते। आधुनिकवैज्ञानिकपरिणामाः कुण्डलिनीप्रबोधनस्य प्रत्यक्षप्रमाणानि न इति विवेच्य, पारम्परिकज्ञानस्य समकालीनप्रासङ्गिकता वैज्ञानिकदृष्ट्या परिशील्यते।

मुख्यशब्दाः: हठयोग; आसनम्; प्राणायामः; मुद्राबन्धाः; नादानुसन्धानम्; कुण्डलिनी;

Neuro-Psychobiology; Nervous System; Ayurvedic description of Lac in the texts Charak Samhita and Sushruta Samhita

Priyanka Tanwar, Dr. Madan Lal Meena

The paper consists of a detailed word-to-word study of the use of lac mentioned in the form of medicines in the two texts, especially Charak Samhita and Sushruta Samhita. The core texts of Charak Samhita belong to 100 BCE to 200 CE, compiled by physician Charak, and Sushruta Samhita was composed around the 6th century BCE by Sushruta. There are many ancient texts which mentioned about this context of study, but this paper specifies only two texts: Charak Samhita and Sushruta Samhita. To write the paper, these two texts have been studied thoroughly, and all the verses are collected carefully, translated properly, and also use the already available published translations and, with the help of language experts, have done the word-by-word translation with explanation. In Charak Samhita, Laksha is mentioned in various formulations like Manashiladi Ghrita, Kola-Lakshadi Ghrita, Beejakarishta, etc. for external application as well as internal medicine. Laksha is used in the form of Nasya, Lepa, Kwatha, Ghrita, Dhoopa, as well as in Basti. Sushrut Samhita mentions Laksha in various diseases, especially in Vrana and Shalya Aharanartha. Lac is also mentioned in Dantaroga, Netraroga and Karnaroga, as well as in Kshudrarogas in both the texts.

Ākāśa Tattva and Structural Health: The Role of Therapeutic Restorative Yoga in Restoring Spinal Space and Correcting Postural Deformities

Ganesh alias Pradnesh Naikwade, Dr. Bandita Satapathy

Postural and structural deformities — including scoliosis, kyphosis, hyperlordosis, forward head posture, and degenerative spinal conditions — are rising across contemporary populations as a consequence of sedentary living, prolonged static loading, and diminished bodily awareness. This paper advances an integrative thesis: that the deformation underlying such conditions can be understood, in classical Indian terms, as a loss of Ākāśa (space) within the bodily channels, and that therapeutic restorative yoga functions as a technology for restoring this space. Grounding the argument in the Vedāntic doctrine of Pañcīkaraṇa and the concept of Śarīrākāśa, the paper maps the classical understanding — that disease arises when the non-obstructive property of Ākāśa is lost through obstruction within the srotas — onto the modern biomechanical account of intervertebral space reduction, facet compression, and altered load transfer. The prop-assisted, alignment-oriented method of Sunjeevan Yoga, developed by Ācārya Yogānand Dr. S. V. Karandikar, is presented as a clinically structured means of restoring functional joint space through gravity-assisted decompression, symmetry correction, and proprioceptive re-education. Drawing further on the Pañcakośa framework, the paper argues that structural deformity is a multi-layered disturbance addressed not by isolated āsana but by a sequenced therapeutic module acting across the physical, vital, mental, and integrative sheaths. A non-radiographic evaluation framework using the angle of trunk rotation (ATR) and the Visual Analogue Scale (VAS) is proposed for clinical validation. The paper concludes that therapeutic restorative yoga offers a philosophically coherent and clinically measurable pathway for structural rehabilitation, uniting classical Ākāśa Tattva with contemporary rehabilitation science.

Keywords: *Ākāśa Tattva, Śarīrākāśa, structural deformity, therapeutic restorative yoga, Sunjeevan Yoga, spinal space, Pañcakośa, postural correction.*

अवसादमुक्ति हेतु शिक्षा में संवाद की प्रासंगिकता: योगवासिष्ठ के परिप्रेक्ष्य में

डॉ ममता त्रिपाठी

भारतीय ज्ञान परम्परा में संवाद का बहुत महत्त्व है। संवाद ही वह माध्यम है जिसके द्वारा कठिन से कठिन समस्याओं, शंकाओं तथा प्रश्नों का समाधान सम्भव है। वर्तमान में भारत ही नहीं अपितु समग्र विश्व की युवा पीढ़ी में मानसिक तनाव व अवसाद बढ़ता जा रहा है। समाज में संवादहीनता व्याप्त हो रही है जिसके कारण पारिवारिक, सामाजिक, राष्ट्रीय व वैश्विक स्तर पर विभिन्न प्रकार की मानवजनित समस्याएँ बढ़ रही हैं।

शिक्षा का अर्थ केवल विषयगत सूचनाएँ प्राप्त करना ही नहीं है अपितु इसका मुख्य लक्ष्य व्यक्ति के व्यक्तित्त्व का समग्र विकास है। आज समाज विकसित हो रहा है परन्तु इस विकास में संतुलन शिक्षा में संवाद के माध्यम से ही सम्भव है। जिससे व्यक्ति का शारीरिक, मानसिक, आत्मिक व आध्यात्मिक विकास सुनिश्चित किया जा सके। जिसप्रकार जीवन में दैनंदिन उपयोगी वस्तुओं व व्यवहार का ज्ञान आवश्यक है, विभिन्न विषयों में कुशलता व दक्षता आवश्यक है वैसे ही व्यक्ति की आध्यात्मिक उन्नति भी आवश्यक है। मानसिक व आध्यात्मिक उन्नति ही वह माध्यम है जिससे व्यक्ति अपने जीवन की विभिन्न समस्याओं क धैर्य के साथ सामना करता हुआ अपने जीवन को सन्मार्गगामी बनाये रहता है।

इस सन्मार्ग के लिये सहज पथ-प्रदर्शन गुरु-शिष्य संवाद द्वारा होता है। इस सन्दर्भ में योगवासिष्ठ में राजकुमार राम व गुरु वसिष्ठ के मध्य संवाद यह बताता है कि कैसे वैराग्य से निर्वाण तक की यात्रा सहजता से की जा सकती है?

प्रस्तुत शोधपत्र में योगवासिष्ठ के गुरु-शिष्य संवाद के गहन विश्लेषण द्वारा वर्तमान में समाज में बढ़ रहे अवसाद के लिये कतिपय समाधान प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

मुख्य शब्द- अवसाद, वैराग्य, निर्वाण, अस्तित्त्ववादी संकट , संवाद-संवर्द्धन

आधुनिक जीवन में प्राण एवं प्राणायाम

Rahul Kumar , Prof. Dr. Prasad Gokhale

जीवन के अस्तित्व, स्वास्थ्य एवं चेतना का आधार प्राण है । प्राण इस जीवन की मुख्य शक्ति है और यह इस संसार के नियमन में सर्वदा साथ रहता है । इसके बिना जीवन की कल्पना ही नहीं हो सकती है । भारतीय दर्शन में प्राण को केवल श्वास के रूप में नहीं बल्कि इस जीव – जगत को चलाने वाली जीवनी – शक्ति के रुप में स्वीकार किया जाता है । विशेष रूप से योग परंपरा में प्राण और प्राण को नियंत्रित एवं नियमित करने वाले प्राणायाम का बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान है । यह राजयोग एवं हठयोग का एक अभिन्न अंग है जो योगियों को उनके परम लक्ष्य कैवल्य प्राप्त कराने में अहम् भूमिका निभाता है ।

आधुनिक जीवन में बढ़ते औद्योगिकीकरण और प्रदूषण के कारण मनुष्यों एवं इस प्रकृति का प्राण क्षीण हो रहे हैं । प्रदूषण विभिन्न रोगों के रूप में मनुष्यों में दिखाई दे रहा है । आधुनिक चिकित्सा प्रणाली इन रोगों के निवारण में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है परंतु योग मानव समाज की प्राचीन विद्याओं में से एक बहुत ही महत्वपूर्ण विद्या है जिसके के माध्यम से मानव अपनी सम्पूर्ण शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, आध्यात्मिक इत्यादि समस्याओं से छुटकारा प्राप्त कर सकता है । अभी के समस्याओं में हठयोग बहुत ही सकारात्मक एवं प्रभावी रूप से सहायक सिद्ध हो रहा है ।

इस शोध-पत्र में यौगिक, दार्शनिक, चिकित्सा ग्रंथों तथा जर्नलों का सही रूप से उपयोग किया गया है और इस शोध – पत्र में पूर्णतः विश्लेषणात्मक अध्ययन किया गया है । यौगिक क्रियाओं का आधुनिक जीवन पर अत्यंत सकारात्मक प्रभाव पड़ता है इसलिए हमें इसे अपने जीवन में लाना चाहिए ।

Scientific and Medicinal Evaluation of Pippalī as Depicted in Sanskrit Texts

Dr. Dhananjay Vasudeo Dwivedi

Pippalī (Piper longum Linn.), commonly known as long pepper, occupies a distinguished position in the classical Ayurvedic tradition and is extensively described in Sanskrit medical literature for its wide-ranging therapeutic and rejuvenative applications. The present study offers a comprehensive literary examination of Pippalī based exclusively on ancient Ayurvedic and allied Sanskrit sources, without introducing modern pharmacological interpretations. Primary references have been drawn from authoritative texts such as the Caraka Saṃhitā, Suśruta Saṃhitā, Aṣṭāṅga Hṛdayam, major Ayurvedic Nighaṇṭus, and relevant Purāṇic literature. The study systematically examines the classical nomenclature, synonyms, pharmacodynamic attributes, and therapeutic properties of Pippalī, with particular attention to its rasa, guṇa, vīrya, vipāka, doṣa-specific actions, and indications. Classical formulations containing Pippalī have also been surveyed to demonstrate its importance as an individual drug as well as a constituent of compound preparations. The textual evidence reveals its extensive employment in the management of respiratory disorders, digestive dysfunctions, metabolic disturbances, and several systemic conditions. Its significant role in Rasāyana therapy and its application in procedures associated

with Pañcakarma further illustrate the breadth of its therapeutic utility. Particular attention is given in the classical texts to appropriate dosage, duration, method of administration, and therapeutic context. The caution expressed regarding indiscriminate or excessive consumption of Pippalī, especially outside prescribed Rasāyana regimens, reflects a sophisticated understanding of drug administration and clinical judgment in Ayurveda. Thus, Pippalī emerges not merely as a commonly used medicinal substance but as a therapeutically versatile and systematically conceptualized drug within classical Ayurvedic pharmacology. By preserving original Sanskrit references and citation formats, the study highlights the textual authenticity, therapeutic significance, and holistic medicinal understanding associated with Pippalī in the Ayurvedic tradition.

Root-Cause Analysis of Skin Diseases: A Correlative Study Integrating Ayurvedic and Jyotish Perspectives

Abhiram Sanjay Ghodake

Research Objective :

To conduct Analytical research on Skin diseases through Jyotiṣa along with Āyurveda.

Methodologies :

Use of Regressive Analysis as research tool.

Using of Retrospective Case-Control Studies and Prospective Cohort Studies to analyze the individual diagnosis with the Graha combinations in their Birth Chart.

In our Indian culture health is considered as the most precious wealth of our life. In Charaka Samhita, Acharya Charaka mentions that the primary objective of healthcare is “To preserve the health of healthy and cure the illness” which aligns with the motto of modern Dutch Philosopher Desiderius Erasmus *“Prevention is better than cure”*. For to be healthy, a person needs to follow a healthy diet and daily routine. According to Ayurveda, if any ailment or imbalance whether it be physical or mental health is considered as Roga. Do the diseases mentioned in the Ayurveda and Jyotisha Shastra has the same root cause, origins, variations and the time period they survive in the person’s body?

In this research paper we’re going to discuss about what are causes of disorders, symptoms, and the Karka-Graha for Skin disease and how do the cause of disease/ailments in their Mahadasha and Antardasha and also verifying the primary stage development period of disease with their diagnose history across various case studies to establish a correlation of cause and effecting period for the research. This will be useful to analyze various Skin diseases, patterns and different variation and can carry further research on how to take measures during time period to prevent the diseases before it’s breakout at primary stage development.

Keywords :

Jyotiṣa Śāstra, Caraka Saṃhitā , Roga, Kāraka-graha, Skin disease.

आभूषणों का आध्यात्मिक, योगिक, ज्योतिषीय व वैज्ञानिक कारण

डॉ. प्रकाश सोनी

भारतीय संस्कृति में आभूषण मात्र सौंदर्य-वर्धन अथवा सामाजिक प्रतिष्ठा के प्रतीक नहीं हैं, अपितु इनके पीछे आध्यात्मिक, यौगिक, ज्योतिषीय तथा वैज्ञानिक दृष्टिकोण भी निहित हैं। भारतीय परंपरा में आभूषण धारण करने की प्राचीन प्रथा विज्ञान, चिकित्सा, ज्योतिष और अध्यात्म का एक अद्भुत समन्वय है, जो व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक और लौकिक कल्याण को सुनिश्चित करती है।

प्रस्तुत शोध-सार आभूषणों के बहुआयामी महत्व और मानव शरीर पर उनके सकारात्मक प्रभावों पर प्रकाश डालता है।

आध्यात्मिक दृष्टि से, आभूषणों को सकारात्मक ऊर्जा को आकर्षित करने और नकारात्मक शक्तियों से बचाव का सशक्त माध्यम माना जाता है। स्वर्ण और रजत जैसी धातुएँ पवित्रता का प्रतीक हैं जो व्यक्ति को उच्च ईश्वरीय चेतना से जोड़ती हैं और मन में सात्विक भाव उत्पन्न करती हैं।

यौगिक दृष्टिकोण के अनुसार, शरीर के विभिन्न हिस्सों पर आभूषण पहनने से विशिष्ट एक्यूप्रेशर बिंदुओं पर निरंतर दबाव पड़ता है। यह दबाव शरीर की प्रमुख नाड़ियों को संतुलित करता है, प्राण ऊर्जा के सुचारू प्रवाह को सुनिश्चित करता है और शरीर के सप्त-चक्रों को जागृत करने में अत्यंत सहायक होता है।

ज्योतिषीय संदर्भ में, विभिन्न धातुएँ और रत्न ब्रह्मांडीय ऊर्जा तथा नवग्रहों का प्रतिनिधित्व करते हैं। उदाहरण के लिए, सोना सूर्य और बृहस्पति का, जबकि चांदी चंद्रमा का कारक है। जन्म-कुंडली के अनुसार सही धातु धारण करने से ग्रहीय दोषों का शमन होता है, आभामंडल मजबूत होता है, जीवन में मानसिक शांति व समृद्धि आती है।

वैज्ञानिक दृष्टिकोण से देखें तो, धातुओं का त्वचा से निरंतर संपर्क हल्का घर्षण उत्पन्न करता है, जिससे रक्त संचार बेहतर होता है। सोना और चांदी जैसी धातुओं में शरीर के तापमान को नियंत्रित करने की अद्भुत क्षमता होती है। इसके अतिरिक्त, चांदी और तांबे में प्राकृतिक एंटी-माइक्रोबियल (रोगाणुरोधी) गुण भी होते हैं, जो स्वास्थ्य रक्षण में महत्वपूर्ण योगदान देते हैं।

निष्कर्षतः

प्रस्तुत शोध भारतीय आभूषण-परंपरा को अंधविश्वास या मात्र अलंकरण के रूप में देखने के बजाय उसके बहुआयामी स्वरूप का समन्वित विश्लेषण प्रस्तुत करता है। इसका उद्देश्य आध्यात्मिक मान्यताओं, योगिक अवधारणाओं, ज्योतिषीय सिद्धांतों तथा उपलब्ध वैज्ञानिक तथ्यों के मध्य अंतर्संबंधों को समझना और भारतीय ज्ञान-परंपरा में आभूषणों की सांस्कृतिक एवं दार्शनिक महत्ता को रेखांकित करना है।

हिमाचल प्रदेश के पर्वतीय क्षेत्रों में प्राचीन उपचार पद्धतियाँ

डॉ. सरला कुमारी

हिमालय की दुर्गम भौगोलिक संरचना और समृद्ध जैव-विविधता ने हिमाचल प्रदेश में एक त्रिआयामी लोक-चिकित्सा प्रणाली (भौतिक, प्राकृतिक एवं मनो-दैविक) को विकसित किया है। आधुनिक चिकित्सा सुविधाओं की उपलब्धता से पूर्व पर्वतीय समुदायों का स्वास्थ्य प्रबंधन प्राकृतिक संसाधनों तथा दैव व्यपाश्रय/मन्त्र चिकित्सा पर आश्रित था। हिमाचल प्रदेश की प्राचीन उपचार पद्धतियाँ केवल वानस्पतिक या रासायनिक तक सीमित नहीं थीं, बल्कि वे मानव मन, प्रकृति और ऊर्जा के त्रिकोण पर आधारित थीं। आयुर्वेद में दैव व्यपाश्रय (मन्त्र, अनुष्ठान, मणि-धारण), युक्ति व्यपाश्रय (औषध, आहार, विहार) तथा सत्वावजय (मनोनिग्रह एवं मानसिक चिकित्सा) चिकित्सा के यह तीन प्रमुख भेद बताए गए हैं। हिमाचल प्रदेश के पर्वतीय क्षेत्रों के ग्रामीण व जनजातीय समुदायों में इन तीनों रूपों का अद्भुत सम्मिश्रण देखने को मिलता है। दुर्गम भौगोलिक परिस्थितियों और विषैले कीटों की अधिकता के कारण पर्वतीय जन-समुदायों ने जड़ी-बूटियों के साथ-साथ ध्वनि तरंगों (मन्त्र शक्ति) और मनोबल संवर्धन पर आधारित मन्त्र चिकित्सा का भी व्यापक विकास किया। प्रस्तुत शोध-पत्र हिमाचल प्रदेश की प्राचीन उपचार पद्धतियों, लोक-वैद्यों के पारंपरिक ज्ञान, प्रमुख प्राकृतिक उपचार घटकों, दुर्लभ औषधीय जड़ी-बूटियों, गंधकयुक्त प्राकृतिक उष्ण

जलस्रोत, शुद्ध पर्वतीय मृदा, पंचगव्य (गोमूत्र तथा गोबर) तथा पारंपरिक मन्त्र चिकित्सा (झाड़-फूंक, मोर पंख व औषधीय टहनियों द्वारा विषहरण) के चिकित्सकीय, मनोवैज्ञानिक और नृ-वानस्पतिक आयामों का विस्तृत विश्लेषण प्रस्तुत करता है। यह अध्ययन उपचार की प्राचीन पद्धतियों के व्यावहारिक, वैज्ञानिक एवं मनोदैहिक आधारों को रेखांकित करते हुए इनके संरक्षण की आवश्यकता पर बल देता है।

बीज शब्द : पारंपरिक चिकित्सा, हिमालय, मन्त्र चिकित्सा, दैव व्यपाश्रय चिकित्सा, पंचगव्य, औषधीय।

Yoga Psychology and Ancient Indian Knowledge: An Integrative Perspective on Mind, Consciousness, and Psychological Well-Being

Rahul Sharma

Aim: To understand the psychological principles of Yoga as described in ancient Indian knowledge traditions and explore their relevance to contemporary psychology and mental well-being.

Objective: To examine the concepts of mind, emotions, behaviour, consciousness, and self-awareness presented in classical yogic literature, and to understand how these principles can contribute to the contemporary psychological understanding of human well-being.

Introduction: Yoga is an ancient Indian knowledge system that extends beyond physical practices and provides a comprehensive understanding of human life, mind, and consciousness. Classical texts such as the Yoga Sutras of Patanjali, Bhagavad Gita, and Upanishads describe the functioning of the mind and methods for overcoming mental disturbances. Yoga psychology emphasizes self-observation, regulation of mental fluctuations, emotional balance, discipline, and inner awareness.

Discussion: Concepts such as chitta, vrittis, kleshas, samskaras, gunas, abhyasa, and vairagya provide important perspectives on psychological processes. The Yoga Sutras describe mental fluctuations and the causes of psychological distress, while yogic practices such as dhyana, ethical disciplines, and self-awareness provide pathways toward mental stability. These ideas can be meaningfully related to contemporary psychological concepts such as cognition, emotional regulation, stress management, behavioural patterns, resilience, and psychological well-being. The ancient yogic approach also presents the individual as an integrated body-mind-consciousness system, offering a broader perspective than symptom-based approaches alone.

Conclusion: Yoga psychology represents a valuable dimension of ancient Indian knowledge that can contribute to contemporary psychological thought. A dialogue between traditional yogic wisdom and modern psychology may support a more holistic understanding of mental health, self-development, and human potential while respecting the philosophical context of the original tradition.

Key words: Yoga psychology, ancient knowledge, Indian psychology, consciousness, mental well-being, emotional regulation, self-awareness.

भारत के विभिन्न धर्म और परंपरा में योग का स्थान

शोध छात्रः संपत भिटे, प्रा. कलापिनी अगस्ती

स्वस्थ्य शरीर और अनुशासित मन ही भयमुक्त दुनिया की नींव रख सकते है | बेहतर और खुशहाल जीवन की कामना करनेवाले दुनियाभर के लोग आज योग का अभ्यास कर रहे है | योग को हिंदुओ का आध्यात्मिक और आत्मसंयम के संबंधित अनुशासन माना जाता है | योग भारतीय दर्शन का आध्यात्मिक अभ्यास व अनुशासन है | योगअभ्यास शरीर एवं मन, विचार, एवं कर्म, आत्मसंयम एवं पूर्णता की एकात्मकता तथा मानव एवं प्रकृति के बीच सामजस्य स्थापीत करता है, तथा यह स्वास्थ्य एवं कल्याण का पूर्णतावादी दृष्टीकोण है । योग केवल व्यायाम नही,

बल्कि स्वयं के साथ विश्व और प्रकृती के साथ एकत्व खोजने का भाव है | योग हमारी जीवनशैली में परिवर्तन लाकर हमारे अंदर जागरूकता उत्पन्न करता है तथा प्राकृतिक परिवर्तनो से शरीर में होनेवाले बदलावो को सहन करने मे सहायक हो सकता है ।

अलग अलग धर्म समुदाय योग का तत्वज्ञान मानते है | हर एक धर्म, पंथ, परंपरा, समुदाय अपना-अपना नियम का आचरण करने से, सामाजिक, मानसिक,आध्यात्मिक सभी अंगो का विकास होने में मदत होता है | योग के यमनियम और आसन प्राणायाम-ध्यान साधना को अपनी अपनी विचारधारा से पालन कर मानव समाज मे एकता और अच्छे स्वास्थ्य की प्रगती कर रहा है |

प्रमुख शब्दः भारत के धर्म, परंपरा, योगस्थान

Indigenous Frameworks in Prenatal Psychological Care: A Scoping Review of Existing Interventions

Esha Kargutkar, Prof. Parag Joshi

Prenatal psychological distress is constantly studied in Indian mental health research. These research studies are primarily conducted through pregnancy-based interventions grounded in Western psychological frameworks, such as cognitive behavioural therapy and mindfulness-based programs. Even though indigenous philosophical systems like Yoga, Āyurveda, and allied schools offer psychological systems suited well to pregnant women. Though Indian philosophy offers non-pathological, preventive frameworks that are best suited for women who are pregnant, systematic indigenous psychological interventions based on Indian philosophy remain unmapped. Therefore, this study examines prenatal psychological interventions that exist to determine their underlying theoretical orientation. There is explicit attention to the presence or absence of psychological frameworks grounded in Indigenous systems, particularly in Patañjali's Yoga Sūtra. A scoping review was conducted across various databases- PsycINFO, Web of Science, JSTOR, Indian Citation Index, PubMed, Scopus, Shodhganga, Shodhsindhu, and Google Scholar. The review followed the PRISMA-ScR framework, with the records screened in 2 stages with predefined criteria, and selected studies are drafted for origin, design, measures, sample size, and theoretical basis- they are classified as Western psychological models, mindfulness practices, yoga therapies, Ayurveda-based approaches, and frameworks grounded in Yoga Sūtra philosophy. The results are presented in a structured way through a summary table and frequency distributions of theoretical orientation, indicating that though the interventions focus on practical aspects of yoga, such as asana, pranayama, mantra chanting, etc, the indigenous interventions based on yoga philosophy are scarce. This establishes a rationale for developing structured Yoga Sūtra-based psychological modules for prenatal care. The Research contributes to contemporary research on psychological interventions for prenatal psychological well-being and highlights the absence of indigenous psychological interventions.

Keywords: Indian Psychology; Scoping review; Yoga Sūtra; prenatal psychology; Indian Philosophy

सोशल मीडिया की लत नियंत्रित करने हेतु 'योग' एक समग्र दृष्टिकोण

सुजाता द्रव्यकार, प्रो. डॉ. ललिता चंद्रात्रे

प्रस्तुत शोध का मुख्य उद्देश्य सोशल मीडिया की लत नियंत्रित करने हेतु 'योग' के एक समग्र दृष्टिकोण की विवेचना करना है। चूँकि, आधुनिक युग में सोशल मीडिया एक ओर जहाँ ज्ञान और संपर्क का सशक्त माध्यम है, वहीं इसकी अनियंत्रित आदत व्यक्ति के मानसिक, शारीरिक और आध्यात्मिक स्वास्थ्य के लिए एक नीरव संकट बनती जा रही है। सोशल मीडिया की बढ़ती लत आधुनिक समाज के सामने एक गंभीर चुनौती है, जो व्यक्ति के मानसिक, शारीरिक, और सामाजिक जीवन को प्रभावित करती है। यद्यपि, वर्तमान युग में तकनीक से पूरी तरह दूरी बनाना संभव नहीं है अतः इसका विवेकपूर्ण और अनुशासित उपयोग ही सही समाधान है। इस समस्या से निजात पाने के लिए केवल तकनीकी सीमाओं (जैसे ऐप टाइमर या डिजिटल डिटॉक्स) पर निर्भर रहना एक अस्थायी उपाय मात्र है। केवल ऐप-टाइमर या तकनीकी रुकावटों पर निर्भर रहना दीर्घकालिक समाधान नहीं हो सकता।

तथापि, इस संदर्भ में योग एक पूरक और स्थायी माध्यम के रूप में कार्य करता है। प्रस्तुत शोध के परिणामानुसार योग इस डिजिटल लत से निपटने के लिए एक पूर्ण, व्यावहारिक और स्थायी समाधान प्रस्तुत करता है। प्रमुख योगग्रंथानुसार योगाभ्यासों में आसन, प्राणायाम, षट्कर्म और ध्यान का नियमित अभ्यास शारीरिक स्फूर्ति, मानसिक स्थिरता, मनोशारीरिक शुद्धता, भावनात्मक संतुलन और आत्म-नियंत्रण को बढ़ावा देता है। इसी प्रकार, योग के आठ अंगों (अष्टांग योग) विशेषकर प्रत्याहार (इंद्रियों का बाह्य विषयों से सिमटना), धारणा (एकाग्रता), ध्यान और प्राणायाम के नियमित अभ्यास से व्यक्ति अपनी इच्छाशक्ति और आत्म-जागरूकता को विकसित कर सकता है। जब मन भीतर से शांत और संतुष्ट होता है, तो सोशल मीडिया द्वारा दिए जाने वाले क्षणिक डोपामाइन और आभासी आकर्षणों पर निर्भरता स्वतः कम होने लगती है। अतः, सोशल मीडिया की लत से मुक्ति पाने और डिजिटल जीवन में संतुलन स्थापित करने के लिए योग एक सर्वकालिक एवं स्थायी समाधान प्रस्तुत करता है।

योग का समग्र दृष्टिकोण डिजिटल डोपामाइन चक्रों को आत्म-नियमन, जागरूकता और आंतरिक संतोष से प्रतिस्थापित करके सोशल मीडिया की लत का उपचार करता है। आसनाभ्यास, श्वास नियंत्रण अर्थात् प्राणायाम अभ्यास और मूलभूत नैतिक दर्शनों को मिलाकर, अभ्यासकर्ता अपने तंत्रिका तंत्र को सोशल मीडिया के बाध्यकारी उपयोग और आभासी मान्यता से अलग होने के लिए पुनः प्रशिक्षित करते हैं। योग के नियमित अभ्यास से व्यक्ति 'डिजिटल दास' बनने के बजाय तकनीकी संसाधनों का एक 'जागरूक और अनुशासित स्वामी' बन सकता है।

कूट शब्द- योग, सोशल मीडिया, समय प्रबन्धन, स्वास्थ्

Maharaja Ranjit Singh's acquaintance through Persian newspapers of early 19th century India.

Belal Asdaque

The nineteenth and early twentieth century Indian society witnessed various upheaval. Many political personalities emerged as heroes for their citizens and raised their voices against the mis-conduct during the colonial rule. One great hero among them was Ranjit Singh who was popularly referred as Sher-i-Punjab. He was the first maharaja of the Sikh empire and has been highly glorified in Persian newspapers of early 19th century India. Some prominent contemporaryPersian newspapers were Jam-i-Jahan Numa, Aina-i-Sikandar, Sultan-ul-Akhbar, Mah-i-Alam-i-Afroz, and Akhbar-i- Ludhiana. These newspapers arepreserved in the National Archives of India, New Delhi, which are bounded in more than 30 volumes having more than 9000 pages.

These newspapers contains variety of news and shed historical lights on Maharaja Ranjit Singh in different aspects such as his diplomatic efforts, cultural activities, military expedition, personal life, foreign relations, and so on. Further these news item has also many information about other important contemporary Sikh personalities and Sikh ruler like Sardar Kharakh Singh (Ranjitsingh's son),Kunwar Nau Nihal Singh (Ranjitsingh's grandson),VakilFateh Singh Aluvalia, Raja Gulabsingh of Kashmir, Raja Dhyan Singh, Raja Meera Singh and many more.

These Persian newspapers also reflects light on many aspects of Maharaja Ranjit Singh for example: relation of Ranjit singh with British, Afghan ruler dost Mohammad Khan Barakzai, Raja Gulab Singh and with other rulers of his time.

Following are some specimen from these Persian newspapers:

-Details of Ranjit Singh's visit and Donation to Holy city of Amritsar reported in Jam JahanNuma of November 1829.

-Disturbance created in Kashmir and Multan region due to the movement of raja Gulabsingh from Lahore to Laddakh reported in Sultanul Akhbar (Vol. 21-A) of 1840.

This research paper is based on the study of all these news of the above mentioned Persian newspapers of early 19th century India.

Threaded Legacies: A Comparative Material Culture Analysis of the Keralite Lungi and the Bushehri Languteh across the Indo-Iranian Maritime Highway

Farhang Mohseni

This paper investigates the profound, yet frequently overlooked, material culture linkages between the Malabar Coast of southwestern India (Kerala) and the Persian Gulf coast of southwestern Iran (Bushehr) through a comparative study of traditional male lower garments: the lungi (or mundu) and the languteh (or lung). While separated by the vast expanse of the Arabian Sea, these specific coastal zones were historically bound by the seasonal monsoon trade networks of the Maritime Silk Road.

Utilizing an interdisciplinary framework blending material culture, etymology, and historical geography, this study examines how identical environmental pressures along the Malabar Coast and the Persian Gulf littoral—specifically intense coastal humidity and heat—necessitated the adoption of unstitched, wrapped cotton waist-garments.

Beyond mere environmental determinism, the paper traces the specific historical movements of seafaring communities between these two regions, analyzing how linguistic crossovers and shared textile design patterns (such as specific plaid weaves) solidified a transnational maritime identity.

Finally, the research addresses the contemporary socio-cultural status of these garments, examining their survival among the older generation of Bushehri fishermen and traditional Persian Gulf bathhouse workers in contrast to their ubiquitous domestic presence in Kerala. Ultimately, this study demonstrates that daily utilitarian attire serves as a resilient archive of enduring Indo-Iranian commonalities that transcend continental political histories.

Keywords: Indo-Iranian Commonalities; Persian Gulf Maritime History; Malabar Coast Material Culture; Textile Etymology; Lungi and Languteh;

Beyond the Nation-State: Civilizational Memory and the India–Iranian World

Omid Babelian

The contemporary relationship between India and Iran is often examined through the conventional frameworks of foreign policy, strategic interests, and bilateral relations. Such approaches, however, tend to overlook a deeper layer of interaction rooted in a shared and interconnected civilizational history. This paper proposes to reconsider the India–Iran relationship through the concept of civilizational memory, arguing that historical connections between the two societies cannot be fully understood within the temporal and conceptual boundaries of the modern nation-state.

Drawing upon Indo-Iranian intellectual, literary, and cultural traditions, the paper explores how ideas of cosmic order, justice, ethical responsibility, kingship, and the relationship between humanity and the natural world have travelled, transformed, and acquired new meanings across different historical contexts. Particular attention is given to the conceptual affinities between Ṛta and Asha, as well as their later ethical and philosophical manifestations in Indian and Persian traditions. Rather than suggesting an identical or linear intellectual genealogy, the study examines these parallels as sites of dialogue, translation, and civilizational encounter.

The paper further argues that civilizational memory should not be understood merely as nostalgia for a shared past. It can function as a contemporary resource for cultural diplomacy, intellectual exchange, and the construction of more plural forms of international engagement. In this perspective, India and Iran represent not simply two neighbouring states with converging interests, but two civilizational spaces whose historical interactions continue to shape their perceptions of order, justice, identity, and coexistence.

The study therefore asks whether recovering these deeper intellectual connections can contribute to a broader understanding of diplomacy—one in which civilizations, ideas, and cultural memory complement the conventional language of states and strategic interests.

Iqbal's message to the youth in his poetry

SANA KHAN

Allama Iqbal was the most celebrated poet philosopher and political of Indian sub continent in 20th century he composed a large number of poem in Urdu and Persian poetry.

According to him young generation is the understand bearers of any nation, If their energy is channelise in proper direction it can bring changes in the social, political and economic fabric of

the nation. Iqbal focus on the creative energy of the youth in his poetry he pray for the young generation.

Jawano ko meri aahe saher de

Phir in Shaheen bachho ko baal o par de

Khudaya aarzu meri yahi hai

Mera noore basirat aam karde

Allama Iqbal changed the thinking of millions of people without using any weapons or forces his powerful word awakened a sleeping nation and gave people hope for a brighter future through his writings. Even today, Allama Iqbal's Poetry remains fresh and meaningful. His ideas continue to inspire students, teacher, learners and thinkers. His message encourages us to believe in ourselves, work hard and never stop learning. His vision is as important today as it was many years ago. His poetry is taught in school and universities to inspire the younger generation. By following his teaching, we can build a brighter future and our nation.

The research article will revive those important messages of Iqbal. The article is based on my poems of Iqbal said on many occasions. Despite being enormous research work done Iqbal, still there is dearth of serious research work in this field. These academic efforts can make people today's world to understand the ideas of Iqbal in a better way.

Persian–Hindi Lexical Contact and Translation Semantic Change, Borrowing, and Translation Problems

Dr. S. Sepideh Hosseini (Abgineh Khaki)

Independent Researcher and Writer on Indian History, Culture, and Religions

This study examines the historical and linguistic influence of the Persian language on Hindi, with particular emphasis on the semantic changes that occurred in Persian-derived vocabulary after its incorporation into Hindi. Persian has played a significant role in the linguistic, cultural, literary, administrative, and intellectual history of the Indian subcontinent, particularly during the medieval and early modern periods. As a result of prolonged contact between Persian and the languages of India, numerous Persian words entered Hindi and other Indo-Aryan languages. However, the adoption of Persian vocabulary did not always preserve the original meanings, connotations, grammatical functions, or semantic ranges of these words. In many cases, Persian lexical items underwent semantic expansion, restriction, shift, specialization, generalization, or reinterpretation within Hindi and its historical varieties.

The present study investigates selected Persian-origin words used in Hindi and compares their meanings and functions in Persian with their corresponding meanings and uses in Hindi. It further explores how semantic divergence between the source language and the recipient language can create difficulties in translation, particularly when translators assume that cognate or borrowed words retain their original meanings. The study also considers the historical and sociocultural factors that contributed to these semantic developments, including prolonged bilingual and multilingual contact, literary transmission, administrative usage, religious and cultural interaction, and changes in linguistic context. By distinguishing between lexical borrowing and semantic equivalence, this research demonstrates the importance of historical and contextual analysis in translating Persian-derived vocabulary in Hindi. The findings contribute to a better understanding

of Persian–Hindi linguistic contact and provide a framework for identifying and addressing semantic problems in Persian–Hindi translation.

Keywords: Persian language; Hindi language; Persian–Hindi linguistic contact; lexical borrowing; semantic change; semantic shift; translation problems; Persian loanwords; Hindi vocabulary; translation studies.

रत में शाहनामा: परिचय, प्रभाव और विरासत

डॉ० ज़ियाउर्रहमान

भारत और ईरान के बीच सांस्कृतिक-साहित्यिक आदान-प्रदान की परंपरा बहुत प्राचीन है। ईरान का राष्ट्रीय महाकाव्य "शाहनामा" फ़ारसी भाषा और साहित्य के ज्ञाताओं और विद्वानों के मध्य अत्यंत महत्व रखता है, इस महत्व के दो कारण हैं- एक तो इसकी कहानियों का आकर्षक और मनोरम होना और दूसरा इसके लेखक फ़िरदौसी का आसान और समझने योग्य भाषा में इसकी रचना करना। शाहनामा की रचना 10वीं–11वीं शताब्दी में अबुलकासिम फ़िरदौसी ने की थी। लगभग 60,000 छंदों में रचित इस ग्रंथ को तैयार करने में फ़िरदौसी ने लगभग 30 वर्षों का समय लगाया और इसे 1010 ईस्वी के आसपास ग़ज़नी के सुल्तान महमूद के दरबार में प्रस्तुत किया। इसमें प्राचीन ईरान के पौराणिक, वीरगाथात्मक और ऐतिहासिक राजाओं की कथाएँ हैं, जिनमें रुस्तम, सोहराब, अफ़रासियाब, कैकाउस, कैखुसरो जैसे पात्र प्रमुख हैं। थीम के स्तर पर इसमें राजत्व, न्याय, वीरता, धर्म-अधर्म, नियति, प्रेम, पारिवारिक संबंध और मानवीय मूल्यों का गहन चित्रण है।

मध्यकाल में दिल्ली सल्तनत की स्थापना के बाद फ़ारसी भाषा भारतीय उपमहाद्वीप में दरबारी, प्रशासनिक और बौद्धिक भाषा के रूप में स्थापित हुई। ऐसे में शाहनामा जैसे ग्रंथों का भारत आना स्वाभाविक था। शाहनामा केवल एक विदेशी ग्रंथ नहीं, बल्कि यह भारतीय साहित्य, संस्कृति, चित्रकला, भाषा और राजनीतिक चिंतन में गहराई तक समाया हुआ एक 'सभ्यता-सेतु' का पर्याय माना जा सकता है। । विद्वान इसकी तुलना होमर के इलियड और महर्षि व्यास के महाभारत से करते हैं—तीनों में वही पाँच भाव (रस सिद्धांत के अनुसार शृंगार, वीर, करुण , हास्य तथा अद्भुत) विद्यमान हैं, जो मानवीय उच्च भाव जगाने और साहित्य को अमर बनाने में सहायक होते हैं।

جلوه های شری کرشن در آثار منثور و منظوم شاه تراب و شاه کاظم قلندر

نگارنده: دکتر ذوالنورین حیدر علوی

دانشیار زبان و ادبیات فارسی، دانشکده ممتاز لاکنو

چھبی موہنی کا کٹھن ہے دیکھب
دیکھ پڑت نہیں کوؤ دکھائی
کاظم دیکھے صاحب انمورت

جس کی مورت ہووے کنہیا
(شاہ محمد کاظم قلندر)

چکیده: صوفیان قلندری اوده، به‌ویژه شاه محمد کاظم قلندر و شاه تراب علی قلندر صوفیان وابسته به خاندان و سلسلهٔ او شری کریشنا را عارفی بزرگ و شخصیتی روحانی می‌دانستند. در نوشته‌های منثور آنان این اندیشه به‌روشنی دیده می‌شود که لیلای اسرارآمیز و شگفت‌انگیز شری کریشنا در حقیقت جلوه‌ای از تجلیات جمال الهی در عالم هستی است.در دیوانِ و کلیاتِ شاه تراب علی و شاه کاظم نیز غزل‌ها و ترانه‌هایی دیده می‌شود که در آنها اصطلاحات عرفانی، همچون فنا، بقا و تجلی، با نغمهٔ نئ یا «مُرلی» شری کریشنا پیوند یافته است. از دیدگاه او، صدای مُرلی صرفاً آوایی موسیقایی نیست، بلکه نمادی از «صوت سرمدی» است؛ یعنی آن ندای ازلی و ابدی که در تعبیر عرفانی با «کُن» ارتباط دارد و گویی در ذره‌ذرهٔ کائنات طنین‌انداز است.این شیوهٔ اندیشه و بیان شاه تراب علی قلندر تنها به شعر و بیان ادبی محدود نمی‌شد، بلکه بخشی از

دیدگاه او دربارهٔ «صلح کل» و مشرب وسیع و فراگیر او به شمار می‌رفت. وی با بهره‌گیری از شخصیت شری کریشنا و نمادهای مرتبط با او، مفاهیم عرفانی را بیان می‌کرد و از این طریق کوشید پلی فکری، فرهنگی و روحانی میان سنت‌های «هندو و مسلمان و میان پیروان این دو جامعهٔ دینی ایجاد کندشاه تراب علی قلندر در آثار فارسیِ خود، یعنی «اصول المقصود و «کشف المتواری»، که مشتمل بر ملفوظات پدر بزرگوارشان است، رویدادها و مشاهدات مهم پدر خویش را دربارهٔ شری کریشنا به تفصیل بیان کرده‌اند. در این مقاله، آنچه در آثار منثور و منظوم و نیز در سخنان و نوشته‌های این دو بزرگوار دربارهٔ شری کریشنا روایت و ثبت شده است، مورد بررسی و نقد قرار گرفته است. همچنین، آنچه تاکنون دربارهٔ این موضوع و با استناد به دیدگاه‌ها و آثار این دو بزرگوار به زبان‌های فارسی، اردو و هندی نوشته شده، مورد تحلیل و ارزیابی قرار گرفته است.

کلیدواژه: شری کرشن، شعر و نثر، شاه تراب و شاه محمد کاظم قلندران، برج،اردو و فارسی، کاکوری،اوده، نماد اصطلاحات عرفانی، فلسفه، تفاهم فرهنگی و ادبی.

Words Across Borders: Persianate Diaspora and the Transfer of Iranian and Afghan - Vocabulary into the Indian Linguistic Landscape

Sana Hamidi

The migration of Iranian and Afghan communities to the territory of the Indian subcontinent played a major role in the development of India's Persianate literary and linguistic culture. The medieval period saw the arrival of scholars, poets, administrators,

merchants, and other migrants who created a multilingual environment in which the Persian language and script interacted closely with local languages.

This paper aims to demonstrate the role of the Persianate diaspora communities in the transmission and adaptation of vocabulary into the linguistic landscape of India, with a specific focus on the languages of Hindi and Urdu. Rather than looking at lexical borrowing as a one-way process

from Persian into the Indian languages, this study attempts to examine it in the context of cultural exchange between two civilizations. Particular attention is paid to the impact of migration, literary traditions, courtly patronage, and education, as well as the daily interaction of people and communities. The present paper explores the semantic features of selected Persian and Persianate words that entered the Indian languages' vocabulary.

The paper also focuses on the contribution of Iranian and Afghan migrants to the dissemination of the Persian language and its literary and cultural tradition beyond royal courts and educational institutions. By linking together diaspora studies with historical linguistics, the presented research demonstrates migration as a process by which words,

meanings, and cultural traits, have crossed vast distances and incorporated into the

linguistic and cultural diversity of India.

Keywords: Persian Diaspora, Iranian Migration, Afghan Migration, Persian Language,

Hindi, Urdu, Lexical Borrowing, Language Contact, India, Persianate Culture

Indian Cultural Influences on Persian Poetry in the Indian Subcontinent: Themes, Imagery, Mythology, and Literary Exchange

HADIS KARIM POURIAN

Persian literary culture in the Indian subcontinent developed within a multilingual and multicultural environment that fostered sustained interaction with the diverse cultural traditions of India. This interaction influenced not only literary themes but also poetic imagery, vocabulary, narrative patterns, and modes of expression. Persian poetry produced in India therefore provides an important field for examining Indo-Iranian cultural and literary exchange.

This study examines the major manifestations of Indian cultural influence on Persian poetry in the Indian subcontinent, with particular attention to themes, imagery, mythology, seasonal traditions, linguistic elements, and representations of everyday life. It aims to identify how Indian cultural materials were incorporated into Persian poetic expression and how they were adapted and reinterpreted within Persian literary conventions.

The study adopts a qualitative analytical approach based on a review of scholarly research on Persian literature in India, Indo-Persian literary exchange, and the development of Sabk-e Hindi (Indian Style). Selected poets and literary works are examined to identify recurring patterns of cultural interaction. The analysis focuses on four dimensions: Indian mythology and cultural narratives; representations of Indian nature, seasons, and social life; the incorporation of Indian words and culturally specific expressions; and changes in poetic imagery and literary techniques.

The findings indicate that Indian cultural elements entered Persian poetry at thematic, visual, linguistic, and stylistic levels. Indian landscapes, flora and fauna, seasonal cycles, customs, stories, and cultural references expanded the range of poetic subjects and provided new sources for metaphor, simile, symbolism, and description. These interactions also contributed to distinctive features associated with Sabk-e Hindi, including complex imagery, innovative metaphors, unexpected conceptual associations, and close engagement with the Indian environment.

The study concludes that Persian poetry in India represents a significant site of cultural exchange in which Indian cultural traditions were incorporated into and creatively transformed through Persian literary expression.

Keywords: Persian poetry; Indian culture; Indo-Persian literature; Sabk-e Hindi; Indian mythology; cultural exchange; literary interaction; Persian literature in India; Indian literary traditions

प्राचीन भारतीय प्राकृतिक चिकित्सा का वैश्विक विस्तार: इब्नसीना की फारसी-अरबी चिकित्सा पर भारतीय दर्शन का ऐतिहासिक प्रभाव

असलम बैलिम

Research Parameters (Introduction):): विश्व की महानतम और वैज्ञानिक चिकित्सा पद्धति, प्राचीन भारतीय प्राकृतिक चिकित्सा ने सदैव वैश्विक जगत का पथ प्रदर्शन किया है। इस शोध का प्रमुख उद्देश्य यह गहराई से अन्वेषण करना है कि भारत की इस गौरवशाली प्रणाली ने अपने ऐतिहासिक विस्तार के दौरान फारसी तथा अरबी चिकित्सा को किस प्रकार सशक्त रूप से प्रेरित किया। यह अध्ययन विशेष रूप से इब्न सीना (Avicenna) के विश्व प्रसिद्ध ग्रंथ 'अल-कानून फित-तिब्ब' पर केंद्रित है, जिसमें भारतीय प्राकृतिक चिकित्सा और जीवनशैली के मूलभूत सिद्धांतों की गहरी छाप परिलक्षित होती है।

Methodology: इस विश्लेषणात्मक शोध में तुलनात्मक ऐतिहासिक और साहित्य अध्ययन पद्धति (Comparative Textual Analysis) का उपयोग किया गया है। प्राचीन भारतीय संहिताओं, प्राकृतिक चिकित्सा के आधारभूत सिद्धांतों और इब्न सीना के अरबी-फारसी चिकित्सा ग्रंथों का गहन तुलनात्मक मूल्यांकन किया गया है, ताकि दोनों पद्धतियों के बीच ज्ञान के ऐतिहासिक आदान-प्रदान और वैचारिक समानताओं को प्रामाणिक रूप से सिद्ध किया जा सके।

Data & Findings: विस्तृत शोध से यह निर्विवाद रूप से प्रमाणित होता है कि इब्न सीना का चिकित्सा दर्शन मूल रूप से प्राचीन भारतीय ज्ञान संपदा से प्रेरित था। भारत का 'पंचमहाभूत' सिद्धांत और प्राकृतिक जीवनशैली प्रबंधन ही फारसी चिकित्सा में 'असबाब-ए-सित्ता जरूरिया' (स्वास्थ्य के छह अनिवार्य कारक) के रूप में परिलक्षित हुआ। भारतीय जल चिकित्सा (Hydrotherapy), शारीरिक शोधन (Detoxification) की विधियों और आहार चिकित्सा ने ही अरबी उपचारों को एक मजबूत और वैज्ञानिक आधार प्रदान किया है।

Conclusion : निष्कर्षतः, यह शोध पूर्णतः स्थापित करता है कि प्राचीन भारतीय प्राकृतिक चिकित्सा केवल भारत तक सीमित नहीं थी, बल्कि यह फारसी-अरबी चिकित्सा विज्ञान की सर्वोच्च प्रेरणास्रोत रही है। ज्ञान के इस ऐतिहासिक विस्तार को समझना भारतीय चिकित्सा पद्धति की महानता को अकाट्य रूप से प्रमाणित करता है, जो एशियाई अध्ययन के क्षेत्र में एक अत्यंत महत्वपूर्ण और गौरवशाली योगदान है।

Keywords

भारतीय प्राकृतिक चिकित्सा; इब्न सीना; फारसी-अरबी चिकित्सा; असबाब-ए-सित्ता जरूरिया; ऐतिहासिक अंतर्संबंध

معرفی و بررسی نسخه خطی معدن الشفاء سکندر شاهی

دکتر محمد شهباز

استاد موقتی،دپارتمان زبان و ادبیات فارسی

دانشگاه دهلی، دهلی نو

تلفن همراه: ۹۳۸۹۸۳۰۵۴۲

طب هندي يکي از روش های درمانی هند باستان بوده است و در شکلهاي مختلف از درماني مانند طب سوزني و طب گياهي بروز کرده است. اين گونه هاي متعدد از طبابت در هند تأثير بسياري بر جاي گذاشت. روشهاي طبي هنديان مورد توجه کل جهان قرار گرفت و اين ميراث علمي نيز به جهان اسلام انتقال يافت. یکی از منبعهای مهمی طب هندی معدن الشفاء سکندر شاهی است.

معدن الشفاء سکندر شاهی که با نام طب سکندری نیز شناخته می‌شود، یک رساله طب هندی مربوط به قرن شانزدهم میلادی است که در زمان سکندر شاه لودی از زبان سانسکرت به زبان فارسی ترجمه شده است. این رساله پلی بین طب سنتی یونانی و آیورویدایی که از منابع پزشکی متعدد سانسکرت گرفته شده است.

نویسنده این کتاب بهوا بن خواص خان، یکی از اشراف و درباریان سلطان سکندر لودی است که این کتاب را در سال ۱۵۱۲ میلادی به رشته تحریر آورد. نویسنده به طور سیستماتیک، دانش پزشکی آیورودا را برای پزشکان هندی و خارجی که ناآشنا با زبان سانسکریت بود، ترجمه و ترکیب کرده است.

بهوا بن خواص خان تقریباً ۱۳ متن اساسی سانسکریت و آیورودا از جمله آثاری از سشرت وچرکه و جاتوکرن و بهوج و بهید و با گهت و رس رتناگر و سارنگدهر ونبکسین(سنگسین) و چنتامن و مادهوندان و چکروت وکبیدت وغیره را برای پزشکان هندی و خارجی در جنوب آسیا خلاصه و ترجمه کرد. این کتاب علی الخصوص حفظ سلامتی، پیشگیری از بیماری،تشخیص، علایم و داروهای ترکیبی را پوشش می دهد و یک سنتز پزشکی بین فرهنگی منحصر به فرد در هند قرون وسطی را نشان می دهد و چارچوب های مهمی هندی و کلاسیکی یونانی را به طور انتقادی ارزیابی می کند.

بنده در این مقاله تلاش خواهد کرد که نسخه خطی مزبور را با دقت معرفی و بررسی کند وجایگاه آیورویدا وطب هندي و نقش اطباي اين ديار را در توسعة نفوذ دانش پزشكي هندي در جهان اسلام، نشان دهد.

Fire and the Fate of Truth: Siavash and Sita in Indo-Iranian Epic Traditions

ELAHEH GHASEMPOUR

This paper examines the symbolic and cultural significance of fire within Iranian and Indian epic traditions through a comparative analysis of Siavash in the Shahnameh and Sita in the Ramayana. Situated within the framework of Iranian and Persian studies, the paper foregrounds how Zoroastrian conceptions of fire (Atar) and Asha (truth, cosmic order) shape the narrative and ethical imagination surrounding Siavash's trial by fire, while placing this episode in analytical relation to Sita's Agnipariksha in Ramayana. In both narratives, fire transcends its material form to function as a culturally embedded medium of truth, purity, and moral legitimacy.

By placing Sita and Siavash in analytical dialogue, this study employs a comparative and symbolic reading to analyze how fire operates as a shared symbolic system of moral revelation across Indo-Iranian traditions The method combines close textual analysis with attention to Hindu and Zoroastrian epistemological frameworks, allowing the study to trace both shared structures and culturally specific meanings.

This study, further argues that the symbolic authority of fire does not guarantee social or political recognition in either narrative. Both Sita and Siavash, despite undergoing ritual vindication, are subjected to exile and the failure of authority to uphold morally established truth. This transition from fire to exile reveals a central tension between symbolic certainty and its unstable reception within social and political life.

By placing Siavash and Sita within a shared Indo-Iranian framework, this paper highlights how fire shapes literary and cultural understandings of innocence, legitimacy, and exile across Persian and Indian traditions.

Keywords: Fire Symbolism, Indo-Iranian Epic Traditions, Exile

संस्कृत और फ़ारसी के समवृत्त छन्दों का तुलनात्मक अध्ययन

(डॉ.) चन्द्रगुप्त भारतीय

संस्कृत तथा फ़ारसी विश्व की दो अत्यन्त समृद्ध काव्य-परम्पराओं की भाषाएँ हैं, जिनकी छन्द-व्यवस्था क्रमशः छन्दशास्त्र (संस्कृत) तथा इल्मे-अरूज़ (फ़ारसी) के रूप में विकसित हुई हैं। सामान्यतः इन दोनों प्रणालियों को स्वतन्त्र परम्पराओं के रूप में देखा जाता है, परन्तु इनका तुलनात्मक अध्ययन कुछ ऐसे समवृत्त छन्दों की ओर सङ्केत करता है, जिनमें वर्ण-सङ्ख्या, लघु-गुरु अथवा ह्रस्व-दीर्घ विन्यास तथा लयात्मक संरचना के स्तर पर उल्लेखनीय समानताएँ विद्यमान हैं, उदाहरणार्थ – संस्कृत में "भुजङ्गप्रयातम्-छन्द" तथा फ़ारसी में "बह्रे-मुत्क़ारिबे-मुसम्मने-सालिम्" को देखते हैं -

भुजङ्गप्रयातम् छन्द तथा "बह्रे-मुत्क़ारिबे-मुसम्मने-सालिम्" (بحر متقارب مثمن سالم)– संस्कृत में "भुजङ्गप्रयतम्" छन्द, जिसका लक्षण है – "भुजङ्गप्रयातं चतुर्भिर्यकारैः"। जिसकी समानता फ़ारसी छन्द "बह्रे-मुत्क़ारिबे-मुसम्मने-सालिम्" (بحر متقارب مثمن سالم) से देखने को मिलती है, जिसका लक्षण अथवा वज़्न है – "फ़ऊलुन्, फ़ऊलुन्, फ़ऊलुन्, फ़ऊलुन्" (فعولن فعولن فعولن فعولن)। इसका एक सुन्दर उदाहरण निम्नवत् देखते हैं -

संस्कृत छन्द – भुजङ्गप्रयातम् **फ़ारसी छन्द - बह्रे-मुत्क़ारिबे-मुसम्मने-सालिम्**

चतुर्भिर्यकारैः अर्थात् चार बार यगण -
यगण, यगण, यगण, यगण
। ऽ ऽ , । ऽ ऽ, । ऽ ऽ, । ऽ ऽ

मनोबुद्ध्यहङ्कारचित्तानि नाहं ,
न च श्रोत्रजिह्वे न च घ्राणनेत्रे ।
न च व्योमभूमिर्न तेजो न वायु ,
चिदानन्दरूपः शिवोऽहं शिवोऽहम्॥

(**<u>निर्वाणषटकम् – शङ्कराचार्य कृत</u>**)

“फ़ऊलुन्, फ़ऊलुन्, फ़ऊलुन्, फ़ऊलुन्”
(فعولن فعولن فعولن فعولن)
U_ _ ،U_ _ ، U_ _ ، U_ _

وجودم به تنگ آمد از جور تنگی
شدم در سفر روزگاری درنگی
برون جستم از تنگ ترکان چو دیدم
جهان در هم افتاده چون موی زنگی

वजूदम् बे तंग् आमदज़् जूर तंगी
शुदम् दर् सफ़र् रूज़गारी दरंगी
बरून् जस्तमज़् तंगे-तुर्कान् चु दीदम्
जहान् दर् हमुफ़्तादे चुन् मूये-रंगी

<u>(फ़ारसी कवि – सा’दी के क़सीदेह् (काव्य)</u>

प्रस्तुत शोध-पत्र का उद्देश्य संस्कृत एवं फ़ारसी के ऐसे ही समवृत्त छन्दों का तुलनात्मक विश्लेषण करते हुए यह परीक्षण करना है कि इन समानताओं का आधार स्वतन्त्र विकास (Independent Development) है अथवा भारत-ईरान के दीर्घकालीन सांस्कृतिक एवं साहित्यिक सम्पर्क का परिणाम है। इस शोध विषय के चयन का कारण ही इस प्रश्न – क्या संस्कृत के छन्दशास्त्र तथा फ़ारसी के इल्मे-अरूज़ के बीच दिखाई देने वाली समानताएँ स्वतन्त्र विकास (Independent Development) का परिणाम हैं अथवा भारत-ईरान की दीर्घकालीन सांस्कृतिक एवं साहित्यिक सम्पर्क का परिणाम है?

उपस्थित शोध-पत्र में संस्कृत के छन्दों को वृत्तरत्नाकर, छन्दोमञ्जरी, छन्दःसूत्र आदि ग्रन्थों से तथा फ़ारसी के इल्मे-अरूज़ की परम्परा के प्रमुख ग्रन्थों से स्वीकार कर, इनका तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया जाएगा। विशेष रूप से दोनों >

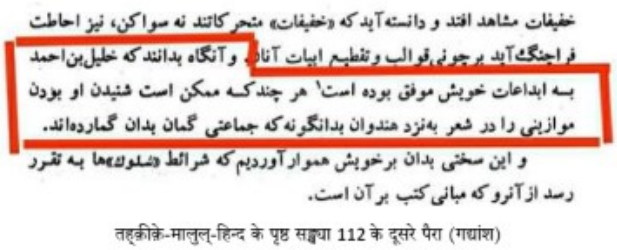
خفیفات مشاهد افتد و دانسته آید که «خفیفات» متحرکاتند نه سواکن، نیز احاطت
فراجنگ آید برجونی قوالب وتقطیع ابیات آنان. و آنگاه بدانند که خلیل بن احمد
بسه ابداعات خویش موفق بوده است[1] هر چندکسه ممکن است شنیدن او بودن
موازینی را در شعر به‌نزد هندوان بدانگونه که جماعتی گمان بدان گمارده‌اند.
و این سخنی بدان برخویش هموار آوردیم که شرائط «شلوک»ها به تقرر
رسد از آنرو که مبانی کتب بر آن است.

तह्क़ीक़े-मालुल्-हिन्द के पृष्ठ संख्या 112 के दूसरे पैरा (गद्यांश)

मूल फ़ारसी का देवनागरी लिप्यन्तरण – “.... >

Raja Rammohun Roy (1772–1833): From the Tuḥfat al-Muwaḥḥidin to the Upaniṣads

Maryam Alizadeh

Rammohun Roy's intellectual biography is usually told from 1815 onward, beginning with the Vedanta Grantha and the Upaniṣadic translations that followed. This leaves out his actual point of departure. The Tuḥfat al-Muwaḥḥidin, composed around 1803–04, is a short treatise written in Persian, and it precedes the Vedanta work by more than a decade. Despite its place at the head of his corpus, it is still most often cited from Obaidullah Al Obaide's English rendering rather than read in the Persian.

The author proposes to read the tract in the original and to set it beside the Isa and Kena, which Rammohan published in Bengali and English in 1816. The question the author wants to put is deliberately a small one. When a writer moves between two textual worlds, his vocabulary is the first thing to register the move. Tawḥid, wajib al-wujud and dhat arrive carrying a long history of use behind them; Brahman, Sat and Ekam arrive carrying another. Watching what Rammohan Roy does at the points where the two must be made to answer to each other tells us a good deal that his English prose, taken by itself, conceals.

What the author thinks emerges is that his Persian learning gave him a manner of reading rather than a set of doctrines, and that this manner of reading returned him to the Vedic corpus rather than drawing him away from it. The authority he finally rests on is Sruti. The Upaniṣads are not one source among others in his argument; they are what the argument stands on.

Keywords: Rammohan Roy; Tuḥfat al-Muwaḥḥidin; Upaniṣads; Persian; Vedanta;

अवेस्ता एवम् वैदिक साहित्य में छंद: एक तुलनात्मक अध्ययन

डॉ मीनाक्षी, सहायक आचार्या,

ईरान एवं भारत वर्तमान मे भौगोलिक दृष्टि से दो भिन्न राष्ट्र है, परन्तु प्राचीन काल में दोनो राष्ट्र धार्मिक, भाषिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से संबंध थे,जिसका ज्ञान वर्तमान में उपलब्ध प्राचीनतम साहित्य वेद एवं अवेस्ता से होता है, जिसमें उपलब्ध भाषिक,साहित्यिक सामग्री के आधार पर दोनो साहित्यों को भारोपीय भाषा परिवार की भारत-ईरानी शाखा से सम्बद्ध माना जाता है। अवेस्ता साहित्य छन्दोयुक्त गद्य तथा पद्यमय रचना है, तथा वैदिक परम्परा के समान इसमें पादाक्षरगणनानुसारी अर्थात् गायत्री, उष्णिक, अनुष्टुप, त्रिष्टुप, तथा अक्षरगणनानुसारी अर्थात् आसुरी छन्दों का उल्लेख प्राप्त होता है। अवेस्ता साहित्य में गा थिक मंत्रों के छन्दों के संबंध में मार्टिन हाग, काँगा, आदि द्वारा अवेस्तीय छन्दों की वैदिक छन्दों से समानता स्थापित की गयी है, यद्यपि नियमन के संबंध में एकमत्य नहीं है तथा बार्थोलोमे,गेल्डनर एवं वेस्टरगार्ड के द्वारा विभिन्न मतों को प्रस्तुत किया गया है। इसी प्रकार दोनों परम्पराओं में प्रयुक्त छन्दों का प्रयोजन भी समान था यथा गायत्री छन्द को पवित्रता तथा अमरता से युक्त मानते हुए उसका प्रयोग अवेस्ता तथा वैदिक सोमविषयक मन्त्रों के लिए हुआ है। इसके अतरिक्त ऋग्वेद की अपेक्षा यजुर्वेद एवं अथर्ववेद में बहुतायत रूप से प्रयुक्त आसुरी छन्दों के प्रयोग से एक ओर जहाँ वैदिक परम्परा में प्रसूत आसुरी छन्दों के विकसित स्वरूप का ज्ञान होता है, दूसरी ओर अवेस्ता के मन्त्रों में इन छन्दों की साम्यता से यह भी विदित होता है कि कालक्रम की दृष्टि से अवेस्ता साहित्य उत्तरवैदिक काल में विकसित हुआ।

भाषिक तत्त्वों के आधार पर फ़ारसी का प्राकृतत्व

डॉ॰ सुहासिनी

ईरान और भारत की भाषिक परम्परा का एक साझा इतिहास है। अतः ईरानी और भारतीय भाषाओं के भाषिक तत्त्वों में समानता दृष्टिगत होती है। ईरान और भारत के सांस्कृतिक एवं भौगोलिक नैकट्य और भाषिक तत्त्वों की समानता के व्यापकत्व (शब्द, ध्वनि, व्याकरणिक संरचना आदि) के कारण यह समानता आकस्मिक नहीं है। प्रमुख प्राचीन ईरानी भाषाओं से आरम्भ कर आधुनिक ईरानी भाषाओं तक में भारतीय भाषिक प्रवृत्तियों का अनुकरण दिखता है। ये प्रवृत्तियाँ भारत की प्राकृत संज्ञक भाषा समूहों का अनुकरण करती हैं।

संस्कृत के लोकप्रयोग–बाह्य होते जाने की स्थिति में लोक की भाषा के रूप में विकसित और संस्कृत के समानान्तर प्रचलित भाषा समूहों को 'प्राकृत' सामान्य संज्ञा से अभिहित किया जाता है। इन भाषा समूहों की मूल प्रकृति संस्कृतवत् है; तथापि ध्वनि, रूप–रचना इत्यादि में देश और काल के अनुसार क्रमशः विचलन होकर संस्कृतेतर तथा संस्कृततुल्य एक नवीन भाषिक समुदाय का विकास होता है। संस्कृत से प्राकृत भाषाओं के विकास में जिस प्रकार की ध्वनिगत, रूपगत इत्यादि प्रवृत्तियाँ दृष्टिगत होती है, ठीक उसी प्रकार की प्रवृत्तियाँ ईरानी भाषा समूहों में भी दृष्टिगत होती हैं। यह ध्यातव्य है कि प्राचीन फ़ारसी के लिखित प्रमाण (अभिलेख के रूप में) प्राकृत भाषाओं के

विकास के समकालीन हैं और गान्धारी एवं बाह्लीकी प्राकृत का क्षेत्र अर्थात् भारत का उत्तर-पश्चिमी भाग भिन्न-भिन्न कालों में ईरानी शासकों के अधीन रहा है। प्रस्तुत पत्र में यह गवेषणा की गई है कि क्या प्राकृत भाषाओं की भाषिक प्रवृत्तियों के फ़ारसी में अनुकरण के कारण फ़ारसी को भी एक प्रकार का प्राकृत कहा जा सकता है।

कुञ्जी शब्द – संस्कृत, प्राकृत, फ़ारसी, अभिलेख, गान्धारी प्राकृत, रूप रचना।

Eastern Epics: Narrators of Primordial Truths (Drawing upon the Comprehensive Tale of the Mahābhārata and the Saga of Siyāvash and Kay Khosrow in the Shāhnāmeh)

Dr. Soona Salimian, Mohammad Hossein Maghsoudi

Research Parameters (Introduction): The enduring and universal appeal of the epic Mahābhārata is the fruit of its connection to an authentic tradition and a substance beyond the confines of time and space, which establishes its inner essence. It is a sacred text whose ultimate mission is to trace the path of man's journey from God and back unto God.

Methodology: Our primary endeavor in this writing is to rely upon the five symbolic criteria of Itihāsa texts: the building of the Divine City; the battle between light and darkness; the manifestation of the Divine Presence; the struggle with the inner demon; and the return to the land of eternity. Based on the comprehensive tale of the Mahābhārata, we apply a comparative and hermeneutic (ta'wīlī) approach to the saga of Siyāvash and Kay Khosrow in the Shāhnāmeh.

Data & Findings: Relying upon textual and sapiential evidence, we demonstrate that both narratives, alongside their structural harmony—from the descent of the divine soul to its spiritual ascent—recount the very same primordial truths in their hidden layers. These shared truths serve as a profound witness to their emanation from a single "eternal and everlasting source" and a shared Primordial Tradition inherent in Eastern epics.

Conclusion: Ultimately, this article proves that these two specific tales of the Shāhnāmeh, moving far beyond the boundaries of a mere national epic, possess the true function of "Sacred History." Therefore, they can rightfully be classified alongside the comprehensive tale of the Mahābhārata within the Hindu tradition, standing among the sacred texts of Itihāsa.

Keywords: Eastern Epics; Itihāsa; Mahābhārata; Shāhnāmeh; Return to the Land of Eternity

संस्कृत अध्ययन-अध्यापन में संगणकीय उपकरणों की भूमिका

डॉ. अभिनव उपाध्याय

प्रस्तुत शोध पत्र भारतीय ज्ञान परंपरा (IKS) के सैद्धांतिक क्षितिज के अंतर्गत संस्कृत भाषा की गणितीय-तार्किक संरचना तथा आधुनिक संगणकीय भाषाविज्ञान (Computational Linguistics) के अंतर्संबंधों का एक व्यापक एवं विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत करता है। 1950 के दशक में संगणकीय भाषाविज्ञान के सैद्धांतिक विकास के उपरांत, 1985 में नासा (NASA) वैज्ञानिक अनुसंधान केंद्र द्वारा प्रकाशित ऐतिहासिक शोधपत्र ने यह प्रामाणिक रूप से प्रतिपादित किया कि पाणिनीय व्याकरण की अष्टाध्यायी अपनी परिमित नियमों (Finite Rules) पर आधारित एल्गोरिद्मिक संरचना के कारण कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI), प्राकृतिक भाषा प्रसंस्करण (NLP) तथा ज्ञान प्रतिनिधित्व (Knowledge Representation) हेतु विश्व की सर्वाधिक सक्षम एवं उपयुक्त भाषा है। समकालीन

परिप्रेक्ष्य में, राष्ट्रीय संस्थानों—यथा केंद्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय (CSU), राष्ट्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय (NSU) तिरुपति, हैदराबाद विश्वविद्यालय, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय (JNU), दिल्ली विश्वविद्यालय (DU), आईआईटी बॉम्बे तथा विभिन्न संस्थाओं के डिजिटल उपक्रमों ने भाषा संसाधनों, विश्लेषकों तथा ई-लर्निंग माध्यमों का एक समृद्ध तंत्र निर्मित किया है। वर्तमान शिक्षण-शास्त्र में यह शोध पत्र भावी शिक्षक शिक्षा कार्यक्रमों—यथा B.Ed., BSTC, D.El.Ed., तथा 4-वर्षीय एकीकृत शिक्षक शिक्षा कार्यक्रम (ITEP)—में एक मूलभूत परिवर्तन (Paradigm Shift) की महत्ता को रेखांकित करता है। पारंपरिक कंठस्थीकरण विधि के साथ निर्मितिवाद (Constructivism) तथा संगणकीय चिंतन पर आधारित 'प्रक्रिया-दर्शन' (Algorithmic Logic Visualizer) को अपनाने हेतु 'अष्टाध्यायी सिम्युलेटर', 'ससूत्र रूपसिद्धि टूल्स', 'संस्कृत ओसीआर' (OCR) एवं 'छंद पहचानकर्ता' जैसे विविध उपकरणों का प्रशिक्षण अनिवार्य है। इसके अतिरिक्त, भारत सरकार के डिजिटल इंडिया अंतर्गत संचालित 'भाषिणी मिशन' (National Language Translation Mission), 'ज्ञान भारतम् ' एवं आधुनिक AI फ्रेमवर्क्स के माध्यम से मशीनी अनुवाद तथा वाक्-प्रसंस्करण का समालोचनात्मक विश्लेषण करते हुए यह शोध पत्र तकनीकी अनुरक्षण एवं अंतर्विषयक समन्वय संबंधी विद्यमान चुनौतियों का समाधान प्रस्तुत करता है।

मुख्य शब्द (Keywords): संगणकीय भाषाविज्ञान, पाणिनीय व्याकरण, शिक्षक शिक्षा (ITEP/B.Ed.), निर्मितिवाद, संस्कृत संसाधनी, भाषिणी मिशन, कृत्रिम बुद्धिमत्ता।

‘स्वाध्यायप्रवचने च’ से ‘Teacher as a Lifelong Learner’ तक : उपनिषदों में शिक्षक के सतत् व्यावसायिक विकास की अवधारणा

डॉ. दीपक कुमार

शिक्षक शिक्षा और शैक्षणिक संवाद के समकालीन वैश्विक विमर्शों में ‘सतत् व्यावसायिक विकास’ और ‘आजीवन शिक्षार्थी’ जैसी अवधारणाएं आधुनिक शिक्षा प्रणालियों का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण केंद्र बिंदु बन चुकी हैं। वैश्विक स्तर पर यह स्वीकार किया जा चुका है कि इक्कीसवीं सदी की तीव्र तकनीकी और सामाजिक परिवर्तन की गति के समक्ष केवल आरंभिक शिक्षक प्रशिक्षण पर्याप्त नहीं है, बल्कि सेवाकालीन निरंतर शिक्षण नितांत आवश्यक है। हालाँकि, इन आधुनिक प्रतीत होने वाली अवधारणाओं के दार्शनिक, मनोवैज्ञानिक और ज्ञानमीमांसीय मूल भारतीय ज्ञान परंपरा, विशेषकर उपनिषदों के गंभीर चिंतन में अत्यंत गहराई से सन्निहित हैं। प्रस्तुत शोध पत्र तैत्तिरीयोपनिषद् के प्रसिद्ध सूत्र "स्वाध्यायप्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम्" (स्वाध्याय और प्रवचन से प्रमाद नहीं करना चाहिए) तथा मुण्डकोपनिषद् में वर्णित ‘परा’ और ‘अपरा’ विद्या के आलोक में शिक्षक के सतत् विकास की अवधारणा का सूक्ष्म, बहुआयामी और विस्तृत विश्लेषण करता है।

आधुनिक परिप्रेक्ष्य में, राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 द्वारा शिक्षकों के लिए अनिवार्य 50 घंटे के सी.पी.डी. (कंटिन्यूअस प्रोफेशनल डेवलपमेंट) और ली शुल्मन के ‘शैक्षणिक विषयवस्तु ज्ञान’ (पेडागॉजिकल कंटेंट नॉलेज) मॉडल को यदि भारतीय दर्शन के ‘स्वाध्याय’ के साथ एकीकृत किया जाए, तो यह शिक्षक को केवल एक यांत्रिक ज्ञान-हस्तांतरणकर्ता के बजाय एक ‘आजीवन साधक’ के रूप में स्थापित करता है। यह शोध पत्र यह स्थापित करता है कि उपनिषदों में शिक्षक का विकास केवल बौद्धिक या विषय-विशिष्ट न होकर एक समग्र प्रक्रिया है, जिसमें सत्य, तप, शम, दम और स्वाध्याय का अविरल प्रवाह होता है। यह अध्ययन आधुनिक शिक्षक शिक्षा के समक्ष उपस्थित चुनौतियों का समाधान प्राचीन भारतीय प्रज्ञा और आधुनिक शिक्षणशास्त्र के अभूतपूर्व समन्वय के माध्यम से प्रस्तुत करता है, जिससे एक आदर्श, समावेशी और ज्ञान-आधारित समाज का निर्माण संभव हो सके।

प्राचीन भारतीय शिक्षा प्रणाली में अंतर्निहित ज्ञान-मीमांसा और शिक्षण-शास्त्र का आधुनिक समकालीन शिक्षा में समावेशन: एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

डा. सुनीलकुमार शर्मा

प्राचीन भारतीय शिक्षा प्रणाली (Ancient Indian Education System) केवल साक्षरता या व्यावसायिक कौशल का माध्यम नहीं थी, बल्कि यह मनुष्य के समग्र विकास, आत्म-साक्षात्कार और ब्रह्मांडीय चेतना के साथ उसके संबंध को स्थापित करने की एक उत्कृष्ट प्रक्रिया थी। इस शोध-पत्र का मुख्य उद्देश्य प्राचीन भारतीय ज्ञान-मीमांसा (Epistemology) और शिक्षण-शास्त्र (Pedagogy)—विशेषकर गुरुकुल परंपरा, श्रवण-मनन-निदिध्यासन और समग्र मूल्य-आधारित दृष्टिकोण—का गंभीर विश्लेषणात्मक अध्ययन करना है। आधुनिक समकालीन शिक्षा प्रणाली वर्तमान में अत्यधिक मशीनीकृत, अंक-केंद्रित और तनावपूर्ण होती जा रही है, जिसके परिणामस्वरूप विद्यार्थियों में नैतिक पतन, मानसिक तनाव और तार्किक-सृजनात्मकता की कमी जैसी चुनौतियाँ उत्पन्न हो रही हैं। यह शोध-पत्र विश्लेषणात्मक विधि के माध्यम से यह रेखांकित करता है कि कैसे प्राचीन भारतीय शिक्षण पद्धतियों के मूल सिद्धांतों को आधुनिक शिक्षा ढांचे में एकीकृत करके एक अधिक मानवीय, टिकाऊ और सर्वांगीण शिक्षा प्रणाली का निर्माण किया जा सकता है।

'मुख्य शब्द (Keywords):' प्राचीन भारतीय शिक्षा, ज्ञान-मीमांसा, शिक्षण-शास्त्र (पेडागोजी), गुरुकुल प्रणाली, समकालीन शिक्षा, समग्र विकास।

संस्कृत लौकिक न्यायों के माध्यम से नागरिक कर्तव्य-बोध का विकास: एक गतिविधि-आधारित शिक्षण-अधिगम मॉडल

डो. सोनिया बी पटेल

वर्तमान उच्च शिक्षा में विद्यार्थियों को विषयगत ज्ञान प्रदान करने के साथ-साथ उनमें सामाजिक उत्तरदायित्व, सहयोग, सार्वजनिक संसाधनों के प्रति संवेदनशीलता, न्याय-बोध, विविध दृष्टिकोणों के प्रति सम्मान तथा प्रमाण-आधारित निर्णय क्षमता विकसित करना भी महत्त्वपूर्ण है। भारतीय ज्ञानपरंपरा में प्रचलित संस्कृत लौकिक न्याय जीवनानुभवों, व्यवहारगत परिस्थितियों तथा जटिल विचारों को संक्षिप्त एवं दृष्टान्तपरक रूप में समझाने की समृद्ध परंपरा प्रस्तुत करते हैं। प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य इन लौकिक न्यायों को केवल सैद्धान्तिक ज्ञान के रूप में पढ़ाने के स्थान पर गतिविधि, अनुभव, अवलोकन, प्रमाण-संग्रह और चिंतन से जोड़ते हुए विद्यार्थियों में नागरिक कर्तव्य-बोध विकसित करने के लिए एक गतिविधि-आधारित शिक्षण-अधिगम मॉडल विकसित करना है।

इस अध्ययन में नागरिक कर्तव्य-बोध से संबंधित दस संस्कृत लौकिक न्यायों का चयन किया गया है। अध्ययन में लौकिक न्यायों के पारंपरिक अर्थ तथा उनके आधुनिक नागरिक-शैक्षिक अनुप्रयोग के बीच स्पष्ट भेद रखा गया है। प्रस्तावित मॉडल का प्रमुख शैक्षणिक सिद्धान्त "Experience Before Explanation" है। इसके अंतर्गत विद्यार्थी को पहले वास्तविक अथवा संदर्भपरक गतिविधि में सहभागी बनाया जाता है; तत्पश्चात वह परिस्थिति का अवलोकन करता है, प्रमाण अथवा अनुभव दर्ज करता है और फिर उस अनुभव को संबंधित लौकिक न्याय से जोड़ता है। इसके बाद चिंतन के माध्यम से नागरिक कर्तव्य की पहचान तथा व्यवहार में उसके संभावित अनुप्रयोग की ओर अग्रसर किया जाता है। इस प्रक्रिया को क्रिया → अवलोकन → प्रमाण-संग्रह → न्याय-संबंध → चिंतन → कर्तव्य-बोध → अनुप्रयोग के रूप में संरचित किया गया है।

प्रस्तुत अध्ययन की प्रमुख विशेषता यह है कि इसमें संस्कृत लौकिक न्यायों को केवल पाठ्य-विषय के रूप में ग्रहण न करके उन्हें समकालीन जीवन-स्थितियों के विश्लेषण और चिंतन के लिए शैक्षणिक उपकरण के रूप में पुनर्संदर्भित किया गया है। इस प्रकार प्रस्तावित मॉडल संस्कृत एवं भारतीय ज्ञानपरंपरा के अध्ययन को अनुभवात्मक, चिंतनपरक और समकालीन नागरिक जीवन से जोड़ने का एक प्रयास है। वास्तविक क्षेत्रीय अध्ययन एवं आँकड़ा-विश्लेषण के पश्चात ही मॉडल की प्रभावशीलता के संबंध में निष्कर्ष निर्धारित किए जाएगे।मुख्य शब्द: संस्कृत लौकिक न्याय, नागरिक कर्तव्य-बोध, गतिविधि-आधारित शिक्षण-अधिगम, अनुभवात्मक अधिगम, भारतीय ज्ञानपरंपरा, नागरिक शिक्षा, उच्च शिक्षा।

महाभाष्यकार महर्षि पतञ्जलि : आधुनिक शिक्षकों के लिए एक उत्कृष्ट आदर्श प्रतिमान (Role Model)

शीतल

वर्तमान प्रगतिशील युग में मानव ने भौतिक एवं शैक्षिक स्तर पर अभूतपूर्व परिवर्तन किया है, तथापि यह प्रगति भौतिक धरातल तक ही सीमित है। परिणामस्वरूप, विद्यार्थियों में मानसिक, आत्मिक और नैतिक मूल्यों की भारी कमी दिखाई देती है। आधुनिक शिक्षा पद्धतियाँ छात्र के सर्वांगीण विकास हेतु निरंतर प्रयासरत होने के बावजूद मूल्य-परक उत्कर्ष में पूर्णतः सफल full नहीं हो सकी हैं। इसके फलस्वरूप, आज का विद्यार्थी आर्थिक रूप से तो सबल हो रहा है, किंतु व्यावहारिक एवं आन्तरिक स्तर पर उसका वास्तविक चारित्रिक विकास अवरुद्ध है। प्रस्तुत शोध पत्र में मूल-पाठ एवं विश्लेषणात्मक (Textual Analysis) शोध-पद्धति का आश्रय लेते हुए इस वैश्विक समस्या का व्यावहारिक समाधान खोजा गया है।

इस सन्दर्भ में, उपर्युक्त दुविधा का तार्किक समाधान हमें महर्षि पतञ्जलि कृत 'महाभाष्य' की संवादात्मक, तर्क-प्रधान एवं लौकिक-दृष्टांत-परक शैली में प्राप्त होता है। महाभाष्य के अनुशीलन से स्पष्ट है कि महर्षि ने व्याकरण जैसे क्लिष्ट विषय को बोधगम्य बनाने के लिए पूर्ण मनोवैज्ञानिक दृष्टि का आश्रय लिया था। वे गंभीर दार्शनिक चिंतन के समय तत्काल प्रसिद्ध लौकिक दृष्टांत 'तद्यथा– घटेन कार्यं करिष्यन् कुम्भकारकुलं गत्वाऽऽह– कुरु घटं...' व 'कूप-खानक' से विषय को सुरुचिपूर्ण एवं सरल बना देते थे। शिष्यों की सक्रिय सहभागिता हेतु वे पाठ का प्रारंभ 'प्रश्न-शैली' से करते थे, जिससे छात्र पूर्ण मनोयोग से विषय से संबद्ध रहें। साथ ही, वे मध्य में अनेक नीतिपरक एवं व्यावहारिक विचारों (यथा- 'एकः शब्दः सम्यग्ज्ञातः शास्त्रान्वितः सुप्रयुक्तः...') का प्रतिपादन करते थे, जो छात्र के बौद्धिक विकास के साथ मानसिक व आत्मिक उत्थान में सहायक सिद्ध होता था।

निष्कर्ष (Conclusion)

अतः निष्कर्षतः आधुनिक शिक्षण पद्धति के लिए महाभाष्यकार की यह अध्यापन दृष्टि एक मील का पत्थर सिद्ध होगी। यह शोध पत्र शिक्षक-प्रशिक्षण कार्यक्रमों के लिए 'व्यावहारिक महाभाष्य-शिक्षाशास्त्र-पुस्तिका' की रूपरेखा प्रस्तुत करता है।

मुख्य शब्द (Keywords): महाभाष्य; महर्षि पतञ्जलि; लौकिक-दृष्टांत; मूल्य-परक शिक्षा; शिक्षक-प्रशिक्षण (Pedagogy).

गुरुकुल प्रणाली एवं गुरु-शिष्य परम्परा

विधि

प्राचीन भारतीय शिक्षा-व्यवस्था का प्रमुख आधार गुरुकुल प्रणाली और गुरु-शिष्य परंपरा थी। गुरुकुल विद्यार्थियों के बौद्धिक, नैतिक, सामाजिक, आध्यात्मिक एवं चारित्रिक विकास का केंद्र था। शिष्य गुरु के आश्रम में रहकर ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए अनुशासन, आत्मसंयम, सेवा, सदाचार, मूल्यबोध और सामाजिक उत्तरदायित्व जैसे नैतिक मूल्यों को आत्मसात् करता था। तैत्तिरीय उपनिषद् का मंत्र— सत्यं वद, धर्मं चर, स्वाध्यायान्मा प्रमदः॥ स्पष्ट करता है कि प्राचीन शिक्षा का उद्देश्य केवल ज्ञानार्जन नहीं, अपितु व्यक्तित्व का सर्वांगीण निर्माण था।

प्रमुख उदाहरण:

1. सत्यकाम-जाबाल प्रसंग – गुरु के प्रति श्रद्धा, सत्यनिष्ठा तथा ज्ञान-प्राप्ति की तीव्र भावना का प्रतीक।

2. द्रोणाचार्य-अर्जुन प्रसंग – गुरु-शिष्य सम्बन्ध में मार्गदर्शन, अभ्यास और अनुशासन के महत्त्व का निर्देशन।

3. नचिकेता-यम प्रसंग – जिज्ञासा, प्रश्न करने की प्रवृत्ति और सत्य की खोज की प्रेरणा।

4. आरुणि-धौम्य प्रसंग – गुरु धौम्य के प्रति निष्ठा और कर्तव्यपरायणता का आदर्श उदाहरण।

5. उद्दालक-श्वेतकेतु प्रसंग – पिता-पुत्र संवाद के माध्यम से प्रश्नोत्तर एवं तर्कपूर्ण शिक्षण पद्धति का स्वरूप।

प्राचीन भारत में तक्षशिला और नालंदा जैसे विश्व-प्रसिद्ध केंद्रों में वेद, वेदांग, दर्शन, व्याकरण, आयुर्वेद और नीतिशास्त्र का उच्चस्तरीय अध्ययन होता था। उपनिषदों में श्रवण, मनन, निदिध्यासन, संवाद, अभ्यास और अनुभव को विशेष महत्त्व दिया जाता था। वर्तमान शिक्षा में भी गुरुकुल के मूल्य-आधारित तत्त्व प्रासंगिक हैं।

मुख्यउद्देश्य:

प्रस्तुत शोध-लेख का मुख्य उद्देश्य प्राचीन भारतीय शिक्षा-व्यवस्था एवं गुरुकुल प्रणाली की विशेषताओं का अध्ययन करना, ग्रंथों एवं ऐतिहासिक शिक्षा-केंद्रों के आधार पर गुरु-शिष्य-परंपरा के शैक्षिक महत्त्व का विश्लेषण करना तथा वर्तमान शिक्षा में इसके प्रासंगिक तत्त्वों की उपयोगिता का अध्ययन करना है।

मुख्य शब्द: प्राचीन भारतीय शिक्षा, गुरुकुल प्रणाली, गुरु-शिष्य-परंपरा, तक्षशिला, नालंदा, मूल्याधारित शिक्षा, स्वाध्याय, चरित्र निर्माण।

Inclusivity and Indian Ancient Education System

Ashis Mondal

Nowadays, education policies of all developed countries as well as developing countries focus on inclusive education. Our latest education policy also highly focused in this context of education and learning. It's not that India is only now focusing in this subject matter but from the ancient time our education system emphasizes on inclusivity. Ancient Indian philosophy specifically the teaching found in the sacred text like Vedas Upanishads Puranas, Ramayana and Mahabharata emphasized the inner philosophical teaching rather than the physical body part. Our ancestors believe on spiritual equality, as they hinted in all sacred text is always inclusive in nature. There is no physical limitation to achieve the ultimate goal of life or salvation. Physical qualities were secondary to the individual in our qualities and intellects.

Veda, Upanishads and the other sacred ancient texts repeatedly describe that the every person of the society has the potential for ultimate wisdom and enlighten their life with pure knowledge regardless of physical challenges. The Gurukula system of ancient India is also known for close relation between teacher and student, Where Guru (Teacher) teaches student specifically with their personal capabilities. In the epic text Mahabharat we can see specialized education in the hermitage of Guru Drona. So the system was very flexible in nature based on the student need and abilities.

From Avidyā to Viveka: An IKS-Based Pedagogical Response to Digital Illusion in Contemporary Education

Rangaśrī

The human need for entertainment is ancient and universal. Classical Indian aesthetics, through the Nāṭyaśāstra of Bharatamuni and the Sāhityadarpaṇa of Viśvanātha Kavirāja, recognised this need through the theory of rasa, understood as a deep, transformative, and ethically refining aesthetic experience. Classical entertainment was durational, structured, and elevating. Contemporary digital entertainment, including social media, algorithmic feeds, and short-form video content, claims to fulfil the same human needs but does so through rapid stimulation, curated self-presentation, and manufactured visibility rather than genuine engagement.

This paper addresses the educational question that follows the philosophical diagnosis of digital illusion: how should we respond? Drawing from Uses and Gratifications Theory (Katz et al., 1973), which identifies five core human needs driving entertainment-seeking, namely cognitive, affective, personal identity, social integration, and tension release, the paper demonstrates that

while these needs are genuine, digital entertainment only creates the appearance of fulfilling them. The Stress-Induced Digital Escapism framework (Yang et al., 2026) further maps the psychological pathway from stress to compulsive digital engagement, connecting directly to the classical sequence of avidyā leading to habitual wrong engagement. Together, these modern frameworks and the IKS tradition converge in identifying the absence of discernment as the root of the problem.

The paper draws on several classical texts to illuminate the mechanisms of digital illusion and their remedies. Mahābhārata Śāntiparva (ajñānaprabhavo mohaḥ) explains how delusion deepens through repeated wrong habits. Vidura Nīti (tad vai mahāmohanamindryāṇām) identifies the perpetual sensory pull toward unreal objects as the mechanism of digital addiction. Yoga Vāsiṣṭham (andhaṃ bhuvanamandhasya) establishes that the same digital world appears differently depending on the quality of awareness with which it is engaged. Vidura Nīti (nāprāpyamabhivāñchanti) presents the paṇḍitabuddhayaḥ as the classical model of the digitally discerning learner. The paper proposes a Digital Taxonomy mapping Vedāntic samsāra concepts to digital equivalents, ten viveka questions as a practical pedagogical tool, and the digital jīvanmukta as the educational ideal. It concludes with the Mahābhārata's Vanaparva verse, na loke rājate mūrkhaḥ kevalātmapraśaṃsayā, as the classical corrective to the contemporary culture of likes, followers, and manufactured visibility, reminding us that algorithms may reward attention but only genuine knowledge and integrity create lasting worth.

Keywords: rasa, Nāṭyaśāstram, Sāhityadarpaṇam, avidyā, viveka, digital illusion, ātmapraśaṃsā, Uses and Gratifications Theory, SIDE framework, digital taxonomy, jīvanmukta, paṇḍitabuddhayaḥ, Indian Knowledge Systems, pedagogy

शिक्षा का महत्व तथा प्राचीन भारतीय शिक्षण प्रणाली

प्रो० डॉ० सोनू अन्नपूर्णा

स्नातकोत्तर केन्द्र-हिन्दी विभाग,गया कॉलेज, गया जी। मगध विश्वविद्यालय, बोधगया।

सारांश (Abstract):

शिक्षा अर्थात् ज्ञान सभी के लिए महत्वपूर्ण है। शिक्षा आंखों की रोशनी के समान है। शिक्षा या विद्या भोग, ज्ञान और यश देने वाली होती है। विदेश में यही हमारा मार्गदर्शन करती है और प्रिय बंधु के समान सहायता करती है। विद्याहीन मनुष्य पशु के समान है। विद्या या शिक्षा मनुष्य की आंख खोलने वाली होती है। कहा भी गया है –

"नास्ति विद्या समं चक्षुः।"

शिक्षा का अर्थ है - विकास करना या आगे बढ़ाना। शिक्षा शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत भाषा के 'शिक्ष्' धातु से हुई है, जिसका अर्थ है 'शिक्षा इति शिक्षणे' अर्थात् शिक्षा वही है, जो सिखाए। शिक्षा शब्द का समानार्थी शब्द विद्या है। यह शब्द भी संस्कृत भाषा के 'विद्' धातु से बना है, जिसका अर्थ है विकास करना। स्वामी दयानंद सरस्वती ने लिखा है: "शिक्षा एक प्रक्रिया है, जिसमें बालक को समाजोपयोगी एवं समाजोनुकूल बनाया जाता है।" (शिक्षा और भारतीय समाज - डॉ. डी.पी. सिंह, अमृतांशु तैलंग - पृष्ठ 3)

शिक्षा बालक के विकास की वह प्रक्रिया है, जिसके द्वारा बालक के व्यक्तिगत एवं सामाजिक विकास में संतुलन स्थापित किया जाता है। शिक्षा जीवन की अमूल्य निधि है। शिक्षा का मतलब केवल किताबी ज्ञान ही नहीं है, बल्कि यह जीवन जीने का मूल मंत्र है। यह हमें केवल ज्ञान ही नहीं देती, बल्कि शारीरिक, मानसिक, नैतिक और आर्थिक रूप से तैयार भी करती है॰

प्राचीन भारतीय शिक्षा प्रणाली का मुख्य उद्देश्य व्यक्ति का सर्वांगीण विकास करना था। प्राचीन काल में शिक्षा गुरुकुल में दी जाती थी, जहाँ छात्र अपने गुरु के साथ उनके परिवार के सदस्य की तरह रहते थे। छात्र के चरित्र का

निर्माण करना, उन्हें नैतिकता की शिक्षा देना गुरु का ही कार्य होता था। पहले ज्ञान की मौखिक परंपरा थी। ज्ञान को मुख्य रूप से बोलकर और सुनकर याद रखा जाता था॰

प्राचीन भारतीय शिक्षण संस्थानों में तीन विशिष्ट रूप से ख्यात थे:

तक्षशिला विश्वविद्यालय

नालंदा विश्वविद्यालय

विक्रमशिला विश्वविद्यालय

तक्षशिला भारत की प्राचीनतम शिक्षण संस्था थी, जो पंजाब राज्य के रावलपिंडी नगर के पास स्थित थी। अब यह जगह पाकिस्तान में है। यहाँ चाणक्य जैसे अर्थशास्त्री, राजनीतिज्ञ एवं कुमार जीव जैसे शल्य चिकित्सक अध्यापक थे। यहाँ देश-विदेश से हजारों यात्री शिक्षा ग्रहण करने आते थे॰

तक्षशिला के बाद नालंदा विश्वविद्यालय काफी लोकप्रिय था। यह नूतन-पुरातन ज्ञान-विज्ञान का विद्यापीठ था। यहाँ दस हजार विद्यार्थी शिक्षा ग्रहण करते थे। विक्रमशिला भी ज्ञान का एक विख्यात केंद्र था। यहाँ ज्ञान-विज्ञान, ज्योतिष, दर्शन, साहित्य, शिल्प, आयुर्वेद, संस्कृत एवं कला की शिक्षा दी जाती थी। इस तरह भारत की प्राचीन भारतीय शिक्षा संस्थाओं का सुयश पूरे विश्व में फैला था।

FROM VEDAS TO VLOGS: RECLAIMING AUTHENTICITY IN YOGA AND WELLNESS TOURISM THROUGH LINEAGE AND TRADITION

Kashish Malik, Dr. Ritwik Sahai Bisariya

Yoga has moved from an embodied discipline transmitted through teachers, texts, institutions and communities into a globally circulating cultural and tourism phenomenon. The contemporary yoga traveller increasingly encounters yoga not only in ashrams, gurukulas and traditional centres, but also through websites, Instagram, YouTube and short-form video. This paper examines the relationship between authenticity, lineage and digital mediation in yoga and wellness tourism. It argues that authenticity should not be reduced either to an unchanging ancient essence or to a visual representation of Indian spirituality. Instead, authenticity may be understood as a historically situated relationship among textual sources, living lineages, teachers, embodied practice, ethical discipline, place and responsible interpretation. The paper develops a conceptual framework linking Vedic and post-Vedic knowledge traditions, classical Yoga, living guru–śiṣya transmission, contemporary wellness tourism and digital storytelling. Drawing upon textual analysis and secondary literature, including scholarship on modern yoga, yoga tourism, authenticity and tourism marketing, the study proposes a lineage-centred model for responsible yoga tourism. The model emphasises provenance, teacher legitimacy, textual literacy, contextual interpretation, community participation, ethical marketing and digital transparency. It concludes that digital media need not be the enemy of authenticity; rather, vlogs can become instruments of cultural education when they make sources, lineages, practices and local communities visible without reducing yoga to spectacle or commodity.

Keywords

Yoga tourism; wellness tourism; authenticity; lineage; Vedas; Yoga Darśana; guru–śiṣya tradition; digital tourism; vlogs; Indian knowledge systems.

भारतीयज्ञानपरम्परायां ज्ञानसर्जन-सङ्कलन-संरक्षण-सम्प्रेषण-व्याख्यानप्रविधयः

देवदत्त सरोडे

भारतीयज्ञानपरम्परा विश्वस्य सर्वप्राचीनतमा समृद्धा च ज्ञानपरम्परा अस्ति। शास्त्रेषु "ज्ञानं मनुजस्य तृतीयं नेत्रम्" इति वचनं ज्ञानस्य महत्त्वं प्रतिपादयति। ज्ञानं मनुष्यस्य केवलं विषयबोधस्य साधनं न, अपितु विवेकस्य, सत्यबोधस्य, आत्मविकासस्य च आधारः अस्ति। भगवद्गीतायां "न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते" इति ज्ञानस्य पावनत्वं प्रतिपादितम् । भारतीयदार्शनिकपरम्परायां च ज्ञानम् अज्ञाननिवृत्तेः, आत्मबोधस्य, मोक्षस्य च साधनं मन्यते, अत एव निगदितम् "ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः" इति ।

भारतीयज्ञानपरम्परायां ज्ञानसर्जनं प्रत्यक्षानुभवेन, निरीक्षणेन, तर्केण, युक्त्या, चिन्तनेन, प्रयोगेण, संवादेन अन्तर्दृष्ट्यादिभिश्च साधनैः सम्पन्नम् अभवत्। पूर्वप्राप्तज्ञानस्य परीक्षणं, परिष्कारः, पुनर्व्याख्या नूतनसन्दर्भेषु प्रयोगश्च अस्याः प्रक्रियायाः अभिन्नानि अङ्गानि आसन्। अस्मादेव कारणाद् वेद-वेदाङ्ग-दर्शन-आयुर्वेद-ज्योतिष-गणित-व्याकरण-अर्थशास्त्र-चिकित्सा-कृषि-शिल्प-नीतिकोशशास्त्रादिषु विविधासु विद्यासु समृद्धं ज्ञानविज्ञानं विकसितम्।

सृष्टस्य ज्ञानस्य सङ्कलनं शास्त्रग्रन्थेषु, सूत्रपरम्परासु गुरुशिष्यपरम्परायां च व्यवस्थितरूपेण अभवत्। ज्ञानसंरक्षणे श्रुति-स्मृतिपरम्परायाः विशिष्टं योगदानम् आसीत्। आचार्याणां मुखतः श्रुतं ज्ञानं शिष्याः पुनःपुनः श्रुत्वा स्मृत्वा चित्ते धारयन्ति स्म, एवं श्रवण–स्मरण–धारण–अभ्यासप्रक्रियया ज्ञानं कुलक्रमेण वंशानुवंशं सम्प्रेषितम्। पदपाठः, क्रमपाठः, जटापाठः, घनपाठः इत्यादयः मौखिकपरम्परायाः विशिष्टाः संरक्षणप्रविधयः आसन्, येन ज्ञानस्य शुद्धता निरन्तरता च रक्षिता।

ज्ञानसम्प्रेषणं गुरुकुलव्यवस्थया, गुरुशिष्यपरम्परया, प्रवचन-उपदेश-संवाद-शास्त्रार्थादिभिश्च सम्पन्नम्। अस्मिन् केवलं सूचनाप्रदानं न, अपितु अर्थबोधः, तर्कः, प्रयोगः जीवनव्यवहारे विनियोगश्च अन्तर्भूतः आसीत्। तदनन्तरं भाष्य-वार्तिक-वृत्ति-टीका-व्याख्याविवृतिभिः व्याख्यानपरम्परया मूलग्रन्थानां गूढार्थः प्रकाशितः, सन्देहाः निराकृताः, नूतनसन्दर्भेषु अर्थविस्तारः कृतः, नूतनज्ञानसर्जनस्य च काचित् पद्धतिराविष्कृता।

अतः भारतीयज्ञानपरम्परायां सर्जन–सङ्कलन–संरक्षण–सम्प्रेषण–व्याख्यान–प्रयोग–पुनःसर्जनम् इति अखण्डं ज्ञानचक्रं दृश्यते। ज्ञानमत्र जडतत्त्वं नास्ति, अपितु निरन्तरं परीक्ष्यमाणं, व्याख्यायमानं, प्रयुज्यमानं पुनः सृज्यमानं च अजस्रं चक्रम् अस्ति। प्रस्तुतशोधस्य मुख्यम् उद्देश्यं भारतीयज्ञानपरम्परायां निहितानां एतेषां ज्ञानप्रविधीनां तात्त्विकं, ऐतिहासिकं, शास्त्रीयं च अध्ययनं कृत्वा तेषां गहनं विमर्शनमत्र प्रस्तूयते ।

श्रीमद्भगवद्गीतायाः प्रणिपात-परिप्रश्न-सेवा-प्रतिमानस्य आधुनिकाङ्कीयशिक्षणशास्त्रे रूपान्तरणम् एकमनुप्रयुक्तमध्ययनम्

डॉ.ब्रह्मानन्दप्रधानः

भारतीयज्ञानपरम्परायां ज्ञानार्जनं केवलं सूचनासङ्ग्रहणमात्रं नास्ति, अपितु तस्य आन्तरिकीकरणं, तार्किकपरीक्षणं, जीवने व्यावहारिकप्रयोगश्च वर्तते । श्रीमद्भगवद्गीतायाः चतुर्थाध्याये प्रतिपादितं ज्ञानप्राप्तेः सार्वकालिकं त्रिसूत्रीयप्रतिमानं 'तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया' प्राचीनगुरुकुलपरम्परायाः आरभ्य आधुनिकशिक्षामनोविज्ञानं यावत् सर्वत्र प्रासङ्गिकम् अस्ति । एतत् प्रतिमानं बेञ्जामिन्-ब्लूम-वर्गीकरणस्य भावनात्मक-संज्ञानात्मक-क्रियात्मकपक्षैः सह वैज्ञानिकरीत्या सम्बध्यते । वर्तमानयुगे राष्ट्रियशिक्षानीत्यनुसारं यदा अङ्कीयशिक्षणशास्त्रस्य (Digital Pedagogy) सम्मिश्रिताधिगमस्य (Blended Learning) च व्यापको विस्तारः जायमानः अस्ति, तदा अङ्कीयकक्षासु छात्रैकाकित्वं, यान्त्रिकता, एकपाक्षिकसूचनाप्रवाहश्च प्रमुखसमाह्वानानि सन्ति । एतासां निवारणाय प्रस्तुतशोधपत्रे श्रीमद्भगवद्गीतोक्तस्य त्रिसूत्रीयप्रतिमानस्य अङ्कीयकक्षासु अनुप्रयोगात्मकं रूपान्तरणं विवेचितम् । अत्र 'प्रणिपातः' अङ्कीयशिष्टाचार-सचेतनता-मानसिकसन्नद्धतारूपेण, 'परिप्रश्नः' अङ्कीयसाधनैः समालोचनात्मकचिन्तन-सुकरातीयसंवादान्वेषणरूपेण, 'सेवा' च सहयोगात्मकपरियोजना-सतीर्थ्याधिगम-

ज्ञानसंविभाजनरूपेण व्याख्याता । अन्ते चास्य प्रतिमानस्य आधारेण एका आदर्शपाठयोजना अपि प्रदर्शिता । एतत् प्रतिमानम् अङ्कीयशिक्षणे केवलं सूचनाप्रसारणं निवार्य कक्षां मूल्यनिष्ठसंवादात्मकाधिगमस्य जीवन्तकेन्द्रं विधातुं मार्गं प्रशस्तीकरोति ।

कूटशब्दाः (Keywords)

श्रीमद्भगवद्गीता (Bhagavad Gita), प्रणिपात-परिप्रश्न-सेवा (Praṇipāta-Paripraśna-Sevā), अङ्कीयशिक्षणशास्त्रम् (Digital Pedagogy), सम्मिश्रिताधिगमः (Blended Learning) ।

प्राचीन भारतीय ज्ञान प्रणाली में शिक्षा का स्वरूप

प्रियंका मिश्रा

प्राचीन भारतीय ज्ञान प्रणाली विश्व की प्राचीनतम, समृद्धतम एवं वैज्ञानिक बौद्धिक परंपराओं में से एक है। प्रस्तुत शोध पत्र का मुख्य उद्देश्य प्राचीन भारत में शिक्षा के स्वरूप, उसके दार्शनिक आधार, संगठनात्मक ढाँचे, पाठ्यक्रम, शिक्षण विधियों तथा गुरु-शिष्य परंपरा का शास्त्रीय साक्ष्यों एवं श्लोकों के प्रकाश में विश्लेषणात्मक व समालोचनात्मक अध्ययन करना है। प्राचीन भारतीय शिक्षा केवल साक्षरता या जीविकोपार्जन का साधन न होकर मनुष्य के सर्वांगीण विकास—भौतिक, मानसिक, नैतिक, बौद्धिक और आध्यात्मिक—पर आधारित थी। यह अध्ययन स्पष्ट करता है कि किस प्रकार वैदिक एवं उत्तर-वैदिक साहित्य (वेद, उपनिषद, स्मृति, पुराण) तथा बौद्ध-जैन परंपराओं ने एक जीवंत ज्ञान-पारिस्थितिकी का निर्माण किया। इसके साथ ही यह शोध पत्र समकालीन युग, वैश्विक शिक्षा विमर्श और राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के परिप्रेक्ष्य में इन कालजयी जीवन मूल्यों की व्यावहारिक प्रासंगिकता का मूल्यांकन भी प्रस्तुत करता है।

कूट शब्द - प्राचीन भारतीय ज्ञान प्रणाली, परा-अपरा विद्या, पुरुषार्थ चतुष्टय, गुरुकुल व्यवस्था, श्रवण-मनन-निदिध्यासन, शास्त्रीय श्लोक, तक्षशिला-नालंदा, राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020।

प्राचीन भारतीय गुरुकुल शिक्षा व्यवस्था में गुरु-शिष्य सम्बन्ध

सुनील कुमार शर्मा

प्रस्तुत शोध पत्र प्राचीन भारतीय गुरुकुल शिक्षा व्यवस्था और उसमें निहित गुरु-शिष्य सम्बन्धों के विविध आयामों का विस्तृत एवं गहन विश्लेषण करता है। प्राचीन भारत में शिक्षा मात्र आजीविका का साधन न होकर जीवन के सर्वांगीण विकास, चरित्र निर्माण और आत्म-साक्षात्कार का सर्वोत्कृष्ट मार्ग थी। गुरुकुल प्रणाली इसी महान उद्देश्य की प्राप्ति का मुख्य केंद्र थी, जहाँ गुरु और शिष्य का सम्बन्ध किसी भौतिक या व्यावसायिक अनुबंध पर नहीं, बल्कि आध्यात्मिक, मनोवैज्ञानिक और पारस्परिकता के पवित्र आधार पर स्थापित था। इस शोध पत्र में वेदों, उपनिषदों, स्मृतियों, नीति-शास्त्रों और महाकाव्यों में वर्णित प्रामाणिक श्लोकों के माध्यम से विद्या के महत्व, गुरु की महत्ता, शिष्य की योग्यताओं, शिक्षण पद्धतियों और दोनों के मध्य के आत्मीय सम्बन्धों की विवेचना की गई है। इसके अतिरिक्त, वर्तमान यंत्रवत शिक्षा प्रणाली के परिप्रेक्ष्य में प्राचीन गुरुकुल व्यवस्था की उपयोगिता एवं प्रासंगिकता को भी उद्घाटित किया गया है।

Exploring the Ancient Texts for Concepts of Teacher Professional Development Practiced in Contemporary Teacher Education

Shweta Sinha, Prof.(Dr.) Amit Ahuja

Ancient Indian education is known for high quality education system, highly renowned universities like Nalanda, Takshila, Ujjain, Amravati, and others. The period saw the rise of educational institutes as centres of learning pursued by scholars from all over the world. The

period saw the rise of many scholars, philosophers, saints, poets, grammarians, and mathematicians. Teachers enjoyed high social position and the school education was imparted through “Gurukul System”. Teachers were of different levels like, shikshak, adhyapak, Acharya, rishi, and muni. This theoretical paper attempts to identify the ancient context of contemporary teacher education with focus on the teacher preparation process as practiced during the ancient period. After the implementation of NEP, 2020, teacher education is undergoing a structural change to make teacher education programs more dynamic and competitive to improve its position as a career choice. The present study is a qualitative research based on the secondary data. The major objective of the study was to explore teacher professional development during the Vedic period. Ancient Indian education has been extensively covered in research and discourses. The data for the study was taken from literature available in online journals, research papers, and e-books. Thematic analyses of the literature and texts highlighted that though during the Vedic period, no formal teacher training institutes existed but rishi and munis who were the teachers indulged in several activities like sammelan, goshthi, brahman sangha, tarkashastra that reflect the modern period seminars, and conferences for the discussion of problems or seeking answers to the questions related to different fields of life. The study concludes that in the Vedic period though formal teacher training was not conducted, yet it was an integral part of their profession. Also, it was about knowledge, developing the right mindset by giving up negatives qualities like arrogance, pride and ego.

Key Words: teacher professional development, ancient education, Vedic period, Vedic education

गुरुकुल व्यवस्था का भारतीय संस्कृत और संस्कृति में योगदान

विशाखा पवांर

इस पत्र में प्राचीनकाल से वर्तमान काल तक गुरुकुल व्यवस्था मे स्थित नैतिकता और आध्यात्मिक शिक्षा के द्वारा मनुष्य के दैनिक जीवन तथा सामाजिक जीवन में नैतिक मूल्यो जैसे अनुशासन कर्तव्य परायणता, संयम तथा दूसरे मनुष्यो के प्रति आदर एवं दया भाव को स्थापित करके मनुष्य को मनुष्यतम बनाने मे सहयोग करना था। जो आगे चलकर अपने आश्रम व्यवस्था, वर्ण व्यवस्था और सोलह संस्कार के अनुसार अपने कर्तव्य का पालन करके संस्कृति और संस्कृत को संरक्षित करके समाज में उच्च कोटि को प्राप्त होकर अंतिम में मोक्ष की प्राप्ति करे।

खोज शब्द - प्राचीन ज्ञान, व्यवस्था, NEP, आध्यात्मिक विकास, मनुष्य जीवन उत्थान।

Ancient Indian Scriptures and Contemporary Educational Crises: An Inquiry into Education and Ethics

Dr. (Prof.) Meera Shanker

The contemporary Indian education system, despite its quantitative expansion, is facing a profound qualitative and ethical crisis. Manifested through rising stress, anxiety, loneliness, emotional vulnerability, shrinking family support, and a value-neutral, workload-driven pedagogy, the crisis points towards a deeper civilizational disconnection. Today’s education system heavily prioritizes technical skills, memorization, and economic utility, often leading to high stress and a lack of purpose among students. Once India’s Mantra was ॐ सर्वे भवन्तु सुखिनः now facing the challenges like shrinking family, lack of family support, aimless tedious workload at school, insecurity, stress, emotional vulnerability, mental health issues, loneliness , etc. This is alarming and thought provoking. Can these issues be addressed by establishing a strong ethical and value education system which is based on Indian Scriptures? This paper argues that the root of this crisis lies in the colonial subversion of the Indian psyche and the subsequent devaluation of its own

knowledge systems. Drawing upon the foundational concepts of Indian Scriptures - Shruti and Smriti, including the Vedas, Upanishads, Bhagavad Gita, and the works of ancient seers and scholars, the paper explores how the ancient Indian paradigm of education as a holistic development of mind, body, and spirit (Manas, Sharira, Atma) offers a viable corrective framework. Ancient time focus was more on strong family, having, which has positive effect on the mental health of children and parents focused over healthy society. Through a qualitative, interpretive methodology, the aim of this study is to examine how values can be inculcated and re-integrated into modern education to foster resilience, ethical consciousness, and holistic well-being. The paper concludes that reclaiming India's intellectual heritage is not an act of nostalgia but a necessary prerequisite for building a resilient, ethical, and globally relevant education system, paving the way for India to re-emerge as Vishva Guru.

Key-words: Indian Knowledge System, Ethics in Education, , Value Education, Colonialism and Education, Holistic Education, Mental Health.

पञ्चाङ्गेषु तिथियोगयोरानयनविधयः

व्यास नमनकुमार बिपिनकुमार

भारतीयज्योतिषशास्त्रे कालमापनस्य सर्वाधिकं प्रामाणिकं, वैज्ञानिकं, महत्त्वपूर्णञ्च साधनं 'पञ्चाङ्गम्' इति सर्वैः अङ्गीक्रियते। पञ्चाङ्गं नाम तिथि-वार-नक्षत्र-योग-करणानां पञ्चानामङ्गानां समाहारः। एतेषु पञ्चाङ्गेषु 'तिथिः' 'योगः' च इत्येतयोः द्वयोः अङ्गयोः आनयनप्रक्रिया खगोलीयदृष्ट्या गणितीयदृष्ट्या च अतीव सूक्ष्मा, क्लिष्टा, विशिष्टा च वर्तते। प्रस्तुतस्य शोधपत्रस्य मुख्यः उद्देशः पञ्चाङ्गनिर्माणे तिथियोगयोः आनयनविधीनां शास्त्रीयसिद्धान्तानां, तेषां गणितीयप्रक्रियाणाञ्च विस्तृतं समालोचनात्मकं च अध्ययनं विद्यते।

सूर्यचन्द्रयोः स्पष्टभोगांशान्तरात् (Difference of true longitudes) तिथ्यानयनं क्रियते। यदा रविचन्द्रयोः भोगांशयोः अन्तरं द्वादशांशपरिमितं (१२°) भवति, तदा एका तिथिः पूर्णतामेति। शुक्लपक्षे चन्द्रः सूर्यात् अग्रे गच्छति, कृष्णपक्षे च तयोः अन्तरं वर्धमानं सत् पुनः शून्याभिमुखं भवति। तथैव, रविचन्द्रयोः स्पष्टभोगांशयोः योगात् (Sum of true longitudes) योगानयनं निष्पद्यते। यदा तयोः योगः त्रयोदशांश-विंशतिकलापरिमितः (१३° २०' वा ८०० कलाः) भवति, तदा एकः योगः समाप्यते।

अस्यां प्रक्रियां केवलं स्थूलमानं न गृह्यते, अपि तु प्राचीनसिद्धान्तग्रन्थेषु—यथा सूर्यसिद्धान्ते, भास्कराचार्यविरचिते सिद्धान्तशिरोमणौ, मकरन्दसारण्याञ्च—प्रतिपादितानां स्पष्टाधिकारोक्तनियमानां सूक्ष्मविमर्शः अनिवार्यः भवति। सर्वप्रथमम् इष्टकालस्य अहर्गणसाधनं क्रियते, ततः मध्यमरविचन्द्रानयनं सम्पाद्यते। तदनन्तरं देशान्तर-उदयान्तर-चरान्तरादिसंस्काराः क्रियन्ते। ततः मन्दकेन्द्र-शीघ्रकेन्द्रयोः आधारेण मन्दफल-शीघ्रफलादीनां संस्काराः (Equation of center) प्रयुज्यन्ते, यैः मध्यमरविचन्द्रौ स्पष्टरविचन्द्रौ (True Sun and True Moon) भवतः। एतयोः स्पष्टमानयोः आधारेणैव अद्यतनसमये तिथ्यन्तकालस्य योगान्तकालस्य च सटीकं साधनं क्रियते।

साम्प्रतिके समये यदा पञ्चाङ्गभेदः महतीं समस्यां जनयति, तदा प्राचीनगणितस्कन्धस्य आधुनिकसङ्गणकीयपद्धत्या (Modern computational algorithms), वेधशालाप्राप्तमानैः (Observational data) च सह समन्वयस्थापनम् अस्य शोधस्य प्रमुखं लक्ष्यं वर्तते। अनेन पञ्चाङ्गनिर्माणप्रक्रियायां सम्भाव्यानां सूक्ष्मतुटीनां परिहारः सम्भवेत्, पर्वनिर्णये च एकरूपता आयास्यति। निष्कर्षतः, तिथियोगयोरानयनविधयः केवलं कर्मकाण्डार्थं न, अपि तु कालविज्ञानस्य खगोलीयस्थितीनाञ्च यथार्थज्ञानाय अतीव प्रासङ्गिकाः वैज्ञानिकाश्च सन्ति इति शोधपत्रेऽस्मिन् सप्रमाणं साधितम्।

मुख्यशब्दाः (Keywords)- पञ्चाङ्गम्, तिथ्यानयनम्, योगानयनम्, स्पष्टरविचन्द्रौ, अहर्गणः, भोगांशान्तरम्, मन्दफलसंस्कारः, सिद्धान्तगणितम्

संस्कृतनाटकशिक्षणविधीनां समीक्षा

प्रो.डॉ. कम्भम्पाटि साम्बशिवमूर्तिः

संस्कृतसाहित्ये वैदिकयुगात् परम्परा विद्यते।ऋग्वेदीयसूक्तेषु विद्यमानं सोमविक्रयणसानयिकस्य अभिनयस्य वर्णनं दृश्यकाव्यस्य सद्भावं प्रथयति। तथा यमः- यमीसंवादोऽपि नाटकस्यास्तित्वं कथयति। संहिताब्राह्मणग्रन्थयोः शैलश्शब्दस्य प्रयोगः रूपकस्य अस्तित्वं प्रमाणयति।गानप्रधाने सामवेदे संवादभूयिष्ठाः मन्त्राः उपलभ्यन्ते।उक्तं हि "नाटकान्तं हि साहित्यम्" इति।लोके विद्यमानानाम् इतिवृत्तानां घटनानां वा चित्रणमेव नाटकम् । अत एव महाकविना कालिदासेन उक्तं यत् - "नाट्यं भिन्नरुचेर्जनस्य बहुधाप्येकं समाराधकम्" इति ।।

भरतमुनिना स्वीये नाट्यशास्त्रग्रन्थे नाटकस्य त्रीणि उद्देश्यानि प्रतिपादितानि ।

1) हितोपजननम् - व्यक्तेः समाजस्य च कल्याणार्थम् उपदेशप्रदानम्।

2) विश्रान्तिजननम् - व्यक्तेः समाजस्य च शान्तिप्रदानम् ।

3) विनोदजननम् - व्यक्तेः समाजस्य च मनोरञ्जनम् ।।

शिक्षणविधयः - नाटकस्य वा संवादस्य वा शिक्षणाय त्रयः विधयः भवन्ति ।

1) आदर्शनाट्यविधिः

2) अभिनयविधिः

3) व्याख्याविधिः

अभिनयविधिः -

अस्मिन् विधौ वास्तविकाभिनयेन नाटकस्य, संवादस्य वा शिक्षणं भवति।अत्र अभिनयः द्विप्रकारको भवति।

(क) रङ्गमञ्चविधिः -

रङ्गमञ्चस्य उपरि नाटकप्रदर्शनं विधिविधानपूर्वकं भवति।तेन नाटके पात्राणां, दृश्यानां च पूर्णपरिचयः छात्राणां भवितुमर्हति। परन्तु अत्र कालः, धनं, शक्तिश्च बहु अपेक्षन्ते।

(ख) कक्षाभिनयविधिः -

अध्यापकः कक्ष्यायामेव छात्रैः पाठस्य अभिनयं कारयति।अत्र छात्राः वेषभूषादिविषयेषु ध्यानं न ददति।केवलं पात्रोचितम् अभिनयं कुर्वन्ति।रङ्गमञ्चस्य आवश्यकता नास्ति। वेषभूषादीनाम् अवसरोऽपि कक्षापाठने न भवति । अयं विधिः कक्षापाठने अत्यन्तोपयोगी वर्त्तते। नाटकस्य, संवादस्य वा ध्वस्त अपेक्षा अस्ति।केवलं कालांशस्य समये एव पाठयितुं शक्नुमः ।।

आदर्शनाट्यविधिः(पठनपद्धतिः)

अध्यापकः स्वयमेव कक्ष्यायां पाठस्य एवं पठनं करोति येव पठनेन पाठे विद्यमानानां पात्राणां स्वभावं तथा चरित्रं च सम्यक् अवगन्तुं छात्राः समर्थाः भवन्ति । अध्यापकः वाचिकाभिनयेन पाठस्य पठनं करोति। परन्तु अयं विधिः अवैज्ञानिको वर्त्तते। कुत इति चेत् अस्मिन् विधौ छात्राणाम् अवधानं शिक्षकस्य अभिनयपूर्वकपठने एव भवति।न तु नाटकगतानां भावानां च अवगमने ।अपि च नाटकशिक्षणस्य सर्वेषाम् उद्देश्यानां पूरणं न भवति।अतः अयं विधिः अयमर्थः ।

व्याख्याविधिः -

अस्मिन् विधौ अध्यापकाः उपयुक्तप्रश्नानां माध्यमेन पात्राणां चरित्रस्य, पाठगतभावानां विश्लेषणं च करोति। कुत्रचित् काठिन्यं भवति अध्यापकः स्वयं तन्निवारयति। अस्य विधेः माध्यमेन नाटकशिक्षणं गद्यशिक्षणवद्भवति। अस्मिन् शोधपत्रे संस्कृतनाटकशिक्षणविधीनां विशेषेण, विस्तृतरूपेण च समीक्षा विधीयते

Guru–Shishya Relationship in Ancient Indian Education: A Qualitative Study of Its Educational and Pedagogical Dimensions

Niketa Gupta

The guru–shishya relationship occupies a distinctive position in the history of ancient Indian education, where teaching and learning were understood not merely as the transmission of knowledge but as a process involving personal guidance, discipline, ethical development, and the gradual formation of the learner。

Within the traditional gurukula setting, the guru was not limited to the role of an instructor but also served as a guide and mentor, while the shishya was expected to participate actively in learning through attentive listening, questioning, practice, observation, and adherence to a disciplined way of life。

Research Parameters -

It seeks to understand how the relationship between the guru and the shishya shaped the processes of knowledge transmission, intellectual development, discipline, ethical formation, and the learner's overall development within the educational environment of ancient India。

However, descriptions of this relationship often focus on the reverence accorded to the guru without examining how the relationship actually functioned as an educational and pedagogical practice. The present study therefore examines the interaction between the guru and the shishya in selected Vedic and Upanishadic sources, with particular attention to the ways in which teaching, learning, discipline, dialogue, personal guidance, and moral development were understood within this relationship. The study is limited to textual and historical representations of these traditions and does not attempt to treat the diverse educational practices of ancient India as a single uniform system。

Methodology -

The study employs a qualitative textual analysis of selected Vedic and Upanishadic sources, supported by historical and scholarly literature on the gurukula tradition. Relevant passages are examined thematically to understand the roles of the guru and shishya, methods of instruction, discipline, dialogue, and the transmission of knowledge。

Data Findings -

The study finds that the guru–shishya relationship involved more than the transfer of knowledge. It included direct guidance, oral learning, discipline, questioning, and the development of values and conduct. At the same time, the study shows that this educational system was influenced by the social conditions of its period。

Conclusion -

The study concludes that the guru–shishya relationship was an important part of the educational thought of ancient India, linking knowledge with personal guidance and character formation. Its study helps in understanding education not only as a method of teaching but also as a social and cultural practice within ancient Indian intellectual traditions。

Keyword:

Guru–Shishya; Ancient Indian Education; Gurukula; Teaching; Learning; Teacher–Student Relationship; Vedic Education; Pedagogy

Ancient Roots, Modern Futures: Re-evaluating Vedic Educational Models for 21st-Century Classrooms

Zainitkumar Dhameliya

This paper revisits the ancient Indian gurukul model of education to determine which of its pedagogical virtues might be relevant to twenty-first century education. Inspired by India's National Education Policy 2020 promise to introduce Indian Knowledge Systems into mainstream education, the paper examines the pedagogy, curriculum, and aims of gurukul education through the lens of the guru-shishya mentorship paradigm, oral and experiential pedagogy, and the integration of the intellectual, moral, and bodily-energetic domains. The paper suggests that several of the system's attributes foreshadowed classroom practices like differentiated instruction, experiential learning theory, and social-emotional learning, while critically addressing its elitism, caste and gender restrictions, and unscalability. The paper concludes by recommending a "reform and retain" approach, adapting mentorship models and dialogic pedagogy with a holistic value system, while rejecting the notion of restorations that elevate ancient gurukul education into an unscalable ideal and extrapolate from a specific (and not universal) set of ancient gurukul teachings.

Keywords: Vedic education, gurukul system, guru-shishya relationship, Indian Knowledge Systems, NEP 2020, experiential learning, educational history

विकसित भारत के परिप्रेक्ष्य में प्राचीन भारतीय गुरुकुल शिक्षा-प्रणाली की उपादेयता

प्रो. सिद्धार्थ शंकर सिंह

भारत की ज्ञान-परम्परा अत्यन्त प्राचीन एवं समृद्ध रही है। भारतीय दृष्टि में शिक्षा केवल जीविकोपार्जन अथवा पुस्तकीय ज्ञान प्राप्त करने का माध्यम नहीं थी, बल्कि वह मनुष्य के ज्ञान, आचरण, चरित्र, कर्तव्यबोध और व्यक्तित्व के समग्र विकास का साधन थी। इसी व्यापक दृष्टिकोण के आधार पर प्राचीन भारतीय गुरुकुल शिक्षा-प्रणाली का विकास हुआ।

प्राचीन भारतीय शिक्षा में विद्यार्थी की शैक्षिक यात्रा को संस्कारों और जीवन-मूल्यों से जोड़ा गया था। विद्यारम्भ संस्कार से शिक्षा के प्रारम्भ की अवधारणा तथा आगे उपनयन के माध्यम से ब्रह्मचर्याश्रम में प्रवेश की व्यवस्था मिलती है। विद्यार्थी गुरु के समीप रहकर अध्ययन, स्वाध्याय, अनुशासन, संयम, सेवा एवं व्यावहारिक जीवन का प्रशिक्षण प्राप्त करता था। इस प्रकार शिक्षा विद्यालय की चारदीवारी तक सीमित न होकर विद्यार्थी के सम्पूर्ण जीवन का अंग बन जाती थी।

तैत्तिरीयोपनिषद् में आचार्य द्वारा शिष्य को दी जाने वाली शिक्षा में कहा गया है—

"सत्यं वद। धर्मं चर। स्वाध्यायान्मा प्रमदः।"

अर्थात् सत्य बोलो, धर्म का आचरण करो और स्वाध्याय में प्रमाद मत करो।

यह उपदेश स्पष्ट करता है कि भारतीय शिक्षा में ज्ञान के साथ आचार एवं चरित्र को भी समान महत्त्व प्राप्त था। इसी प्रकार दीक्षान्त के अवसर पर शिष्य को केवल परीक्षा उत्तीर्ण करने वाला व्यक्ति नहीं, बल्कि समाज के प्रति उत्तरदायित्व ग्रहण करने वाला नागरिक माना जाता था।

प्राचीन शिक्षा-पद्धति में आश्रम-व्यवस्था का भी महत्त्वपूर्ण स्थान था। चार आश्रमों में ब्रह्मचर्याश्रम मुख्यतः अध्ययन एवं अनुशासन से सम्बद्ध था। उपनयन, वेदारम्भ, स्वाध्याय तथा गुरु-सान्निध्य इसके महत्त्वपूर्ण पक्ष थे। तथापि प्राचीन भारतीय समाज में शिक्षा-अधिकार एवं उपनयन की व्यवस्था सभी कालों और सभी सामाजिक समूहों में समान नहीं थी। अतः इस विषय का अध्ययन ऐतिहासिक एवं ग्रन्थगत संदर्भों के साथ किया जाना आवश्यक है।

औपनिवेशिक काल में भारतीय शिक्षा-व्यवस्था में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए। 1835 में थॉमस बैबिंगटन मैकाले के मिनट ऑन इंडियन एजुकेशन ने अंग्रेजी शिक्षा एवं यूरोपीय ज्ञान को औपनिवेशिक शिक्षा-नीति के केन्द्र में रखने की वकालत की। इसके फलस्वरूप भारतीय पारम्परिक ज्ञान-संस्थाओं एवं स्वदेशी शिक्षा-पद्धतियों की भूमिका धीरे-धीरे परिवर्तित हुई।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत में शिक्षा-व्यवस्था को भारतीय आवश्यकताओं के अनुरूप विकसित करने के लिए अनेक प्रयास हुए। इसी क्रम में डॉ. के. कस्तूरीरंगन की अध्यक्षता में गठित समिति ने राष्ट्रीय शिक्षा नीति के निर्माण के लिए महत्त्वपूर्ण सुझाव प्रस्तुत किए। समिति के ड्राफ़्ट राष्ट्रीय शिक्षा नीति (NEP) 2019 में भारतीय ज्ञान-परम्परा, समग्र शिक्षा, बहुविषयकता, मूल्य-शिक्षा एवं विद्यार्थी-केंद्रित शिक्षा पर बल दिया गया| इसी दिशा को नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 ने आगे बढ़ाया। नीति में शिक्षा को समग्र, बहुविषयक, मूल्यपरक, कौशल-आधारित तथा भारतीय ज्ञान-परम्परा से सम्बद्ध बनाने पर बल दिया गया है। इस दृष्टि से प्राचीन गुरुकुल शिक्षा-प्रणाली एवं राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के मध्य अनेक वैचारिक समानताएँ दिखाई देती हैं |अतः विकसित भारत के वर्तमान परिप्रेक्ष्य में यह विचारणीय है कि प्राचीन भारतीय गुरुकुल-व्यवस्था के कौन-से तत्त्व आधुनिक शिक्षा के लिए उपयोगी हो सकते हैं और उन्हें आधुनिक विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के साथ किस प्रकार समन्वित किया जा सकता है। प्रस्तुत शोध-पत्र इसी प्रश्न के विश्लेषण का प्रयास है।

प्रमुख शब्द- गुरुकुल शिक्षा, प्राचीन भारतीय शिक्षा, विद्यारम्भ, ब्रह्मचर्याश्रम, गुरु-शिष्य परम्परा, दीक्षान्त, मैकाले, कस्तूरीरंगन समिति, राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020, विकसित भारत।

प्राचीनभारतीयशिक्षणशास्त्रम् (Ancient Indian Pedagogy)

प्रमोदशुक्लः

अस्माकं जन्म भारते समभवत् भारतं च विश्वस्य सर्वोच्चं राष्ट्रम् अस्ति यतोहि एतस्मिन् राष्ट्रे वेदसदृशाः ग्रन्थाः लिखिताः। एतस्मिन् देशे उपनिषदाम् आत्मचिन्तनम् अस्ति। एतस्मिन् देशे संस्काराणां काचित् अतीव विशाला परम्परा अस्ति। एतस्य देशस्य समस्ता संस्कृतिः ऋषीणां दर्शनात् प्रकटिता अस्ति। यदा एतं संसारं वयं पश्यामः तदा दूरात् दर्शनेन सर्वं समानं दृश्यते, समस्तेऽपि संसारे स्त्रीपुरुषाः विराजन्ते, एते समानरूपेण अस्माभिः दृश्यन्ते। अपि च अस्माकं दृष्टौ दृश्यते बहिस्तनीयं चाकचक्यम्। एतत् बहिस्तनीयं चाकचक्यं विदार्य आन्तरिकं सत्यं द्रष्टुं क्षमता केवलं भारतीयदर्शनेषु विद्यते किं वा भारतीयसंस्कृतौ विद्यते। तस्य दर्शनस्य विज्ञानं अस्माभिः करणीयम् अन्यथा अस्मभ्यं प्राप्तम् एतत् दुर्लभं मनुष्यजन्म निरर्थकं भवति। भारते विश्वस्य अन्यदेशेषु च यत् अन्तरं तत् 'चिन्तनस्य' अन्तरम् अस्ति। वयं हिन्दुस्थानीयाः यथा चिन्तयामः तथा विश्वस्मिन् कोऽपि चिन्तयितुं न शक्नोति। यथा हि स्वस्थं शरीरम् अपेक्ष्यते चेत् मनः स्वस्थं करणीयं मनसः स्वास्थ्याय आचरणं शुद्धं करणीयम्। उपनिवेशः भारतस्य समस्तामपि चिन्तनधारां प्राभावयत्। तस्य उपनिवेशस्य विरुद्धं कञ्चित्कालम् अस्माकं संघर्षः प्राचलत्। ततः परं शनैः शनैः अस्माभिः सः उपनिवेशः अङ्गीकृतः। कश्चिदपि समाजः यदा स्वविरूद्धविचारैः साकम् आनुकूल्यम् अनुभूय तान् अङ्गीकरोति तदा सः वास्तविकरूपेण 'पराधीनः' भवति।

प्राचीनभारते शिक्षणस्य काचित् आदर्शप्रणाली दृश्यते। तस्याः आधारः "शासनम् आभा" इति। शा-श शारीरिकविकासः, स-सामाजिकविकासः, न-नैतिकविकासः, म-मानसिकविकासः, आ-आध्यात्मिकविकासः भा-भावनात्मकविकासश्च। "आचार्यात् पादमादत्ते पादं शिष्यः स्वमेधया। पादं सब्रह्मचारिभ्यः पादं कालक्रमेण च" ।। इति शिक्षणप्राणाल्याः मूलम्। प्राचीनभारतस्य शिक्षणप्रणाल्याः कश्चन प्रभावी पक्षः आसीत् 'गुरुशिष्यपरम्परा'। तस्यां गुरुशिष्ययोः मिथः पवित्रः पारिवारिकः च सम्बन्धः शिक्षणं प्रभावि करोति स्म। प्राचीनभारतीयशिक्षणप्रणाल्यां शास्त्रशस्त्रयोः शिक्षणं सहैव भवति स्म। व्यावहारिकज्ञानाय विषयाः आसन्– गणितम्, खगोलविज्ञानम्, चिकित्साविज्ञानं तर्कशास्त्रं साहित्यं चेत्याद्यः। कलाकौशलयोः – सैन्यविज्ञानम्, शिल्पकला, राजनीतिः चेत्यादीनि। तत्र शिक्षणकेन्द्राणि भवन्ति स्म- गुरुकुलानि, आश्रमाः विश्वविद्यालयाश्च। प्राचीना शिक्षणप्रणाली केवलं साक्षरतायै जीविकोपार्जनाय च न आसीत् अपितु 'देहनाशात् आत्मनः नाशः न भवति' इति विज्ञाय शिक्षणप्रणाली प्रचलति स्म। तत्र शासनस्य हस्तक्षेपः न अपितु समाजस्य ज्ञानिनां प्रबन्धनम् आसीत्। वर्तमानशिक्षणप्रणाली तु आङ्लेयस्य मयकालस्य अस्ति।

कूटशब्दाः – शिक्षणप्रणाली (शिक्षणव्यवस्था शिक्षणपद्धतिः वा), शिक्षणस्योद्देश्यानि, दर्शनम्, पाठ्यक्रमः, शिक्षणकेन्द्राणि, संस्कृतिः, परम्परा, गुरुशिष्यसम्बन्धः, शास्त्रम्, आत्मविद्या, पुरुषार्थचतुष्टय, वर्णाश्रमः, स्वधर्मपालनम्, आजीविका, कर्म, अकर्म, विकर्म, गुणः, जीवनलक्ष्यम्, आत्मबोधः।

भारतीय ज्ञान परंपरा में स्वाध्याय-प्रतिष्ठा

डॉ. अनुपम कुमार तिवारी

भारतीय ज्ञान-परम्परा विश्व की प्राचीन एवं समृद्ध ज्ञान-परम्पराओं में से एक है, जिसकी मूल चेतना- ज्ञान, आत्मानुशासन, सदाचार, आत्मविकास तथा लोकमंगल की भावना में निहित है। इस परम्परा में ज्ञान को केवल बौद्धिक संग्रह न मानकर जीवन को संस्कारित एवं परिष्कृत करने वाली साधना के रूप में स्वीकार किया गया है। इसी व्यापक ज्ञान-दृष्टि में 'स्वाध्याय' का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। स्वाध्याय केवल ग्रन्थ-पठन अथवा पाठ-कण्ठस्थ करने की प्रक्रिया न होकर अध्ययन, मनन, आत्मचिन्तन, आचरण और ज्ञान-संवर्धन की निरन्तर साधना है। प्रस्तुत शोध में भारतीय ज्ञान-परम्परा में स्वाध्याय की इसी प्रतिष्ठा और व्यापक स्वरूपका विवेचन किया गया है।

ब्राह्मण ग्रन्थों में स्वाध्याय को नित्य कर्तव्य तथा ब्रह्मयज्ञ के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है। शतपथ ब्राह्मण का "स्वाध्यायो वै ब्रह्मयज्ञः" स्वाध्याय की धार्मिक एवं आध्यात्मिक प्रतिष्ठा को स्पष्ट करता है। उपनिषदों में इसकी प्रतिष्ठा और व्यापक हो जाती है। तैत्तिरीयोपनिषद् का "स्वाध्यायान्मा प्रमदः" स्वाध्याय को जीवनपर्यन्त कर्तव्य के रूप में स्थापित करता है तथा उसे सत्य, धर्म, तप और आत्मानुशासन से जोड़ता है।

पुराणों एवं स्मृतियों में स्वाध्याय को नित्यकर्म, तप, यज्ञ, धर्म और आत्मशुद्धि का साधन माना गया है। विष्णुधर्मोत्तरपुराण में इसे तप एवं यज्ञ के समान पवित्र बताया गया है, जबकि मनुस्मृति और याज्ञवल्क्यस्मृति में इसे धर्म एवं ब्रह्मविद्या की साधना से सम्बद्ध किया गया है। इस प्रकार स्वाध्याय भारतीय ज्ञान-परंपरा में ज्ञान-संरक्षण, ज्ञान-संवर्धन, आत्मविकास और सांस्कृतिक निरन्तरता का प्रमुख माध्यम सिद्ध होता है।

आधुनिक शिक्षा व्यवस्था के संदर्भ में स्वाध्याय की परंपरा स्व-निर्देशित अधिगम, आलोचनात्मक/तार्किक चिंतन, अनुभवात्मक अधिगम, समग्र शिक्षा तथा आजीवन अधिगम जैसी अवधारणाओं से साम्य रखती है। अतः स्वाध्याय भारतीय ज्ञान-परंपरा की अमूल्य धरोहर होने के साथ वर्तमान शिक्षा को ज्ञानमूलक, मूल्यपरक, आत्मनिर्भर और जीवनोपयोगी बनाने का प्रभावी आधार भी है।

"स्वाध्याय एवेह तपः पवित्रम्"

मुख्य शब्द- भारतीय ज्ञान-परम्परा, स्वाध्याय, आत्मानुशासन, आधुनिक शिक्षा व्यवस्था, लोकमंगल।

संस्कृत एवं शास्त्रीयभाषा:

अमन कुमार तिवारी

संस्कृतं भारतीयभाषाणां प्राणः।प्राचीनकाले भारतं ज्ञानविज्ञानयोः विश्वस्य अग्रणी आसीत्।भारतीयानां शान्तिप्रेमी स्वभावात् यवनाः आङ्ग्लाः च भारतं दासत्वं कृत्वा तस्य सम्पूर्णं सामर्थ्यं नाशयितुं प्रयतन्ते स्म। स्वार्थार्थे ते संस्कृतस्य अपेक्षया उर्दू-भाषायाः आङ्ग्लभाषायाः च प्रचारं कृतवन्तः,येन भारतस्य पतनम् अभवत्।एकः समयः आसीत् यदा भारतं दासत्वं प्राप्तवान्।परन्तु भारतस्य संस्कृतिः तादृशी आसीत् यत् असंख्यशहीदाः समाजसुधारकाः च भारतं जागृत्य भारतमातरं दासताशृङ्खलाभ्यां मुक्तवन्तः। अद्यत्वे अस्य दुष्प्रभावाः समाजं पीडयन्तः प्रमुखाः समस्याः सन्ति : महिलाविरुद्धाः अपराधाः, भ्रष्टाचारः, आतङ्कवादः, बेरोजगारी च। नैतिकशिक्षायाः, संस्कृतशिक्षायाः च अभावात् अस्माकं भारतीयसमाजः क्रमेण स्वस्य आध्यात्मिकमूल्यानि परित्यज्य भौतिकवादं प्रति द्रुतगत्या गच्छति। वर्तमानकाले संस्कृतस्य आवश्यकतां वदन् -"भारतस्य प्रतिष्ठे द्वे संस्कृत संस्कृतिस्तथा"। भारतस्य प्रतिष्ठास्तम्भद्वयस्य संस्कृतस्य संस्कृतेः महत्त्वं संस्कृतशिक्षणं विना भारतीयसभ्यता, भारतीयसंस्कृतेः,भारतीयधरोहरस्य च समाजे रक्षणं कर्तुं न शक्यते। "अधुना मम समीपे सा कुञ्जी अस्ति येन अहं विश्वस्य सर्वासु भाषासु रहस्यं प्रकाशयितुं शक्नोमि।एषा कुञ्जी संस्कृतभाषा अस्ति।

अग्रतः संस्कृतमेऽस्तु पुरतो मेऽस्तु संस्कृतम्।

संस्कृतं हृदयेमेऽस्तु विश्वमध्येऽस्तु संस्कृतम् ।।

संस्कृतं विश्वस्य प्राचीनतमं पुस्तकम् (वेदभाषा) अस्ति। अतः विश्वस्य प्रथमभाषा इति मन्यते इति न संशयः।प्रतिवर्षं भारते श्रावणपूर्णिमायाः पवित्रः अवसरः संस्कृतदिवसरूपेण आचर्यते।१९६९ तमे वर्षे श्रावणमासस्य पूर्णिमादिने संस्कृतदिवसस्य आरम्भः अभवत्। संस्कृतं आजीविकायाः कडिः इति मन्यते। मानवविकासस्य एकमात्रः मार्गः अस्ति। यदि पाठ्यक्रमे प्रासंगिकाः विषयाः समाविष्टाः भवन्ति तर्हि छात्राः स्वस्य अतीतस्य विषये गर्विताः भविष्यन्ति, वर्तमानकाले सन्तुलिताः भविष्यन्ति, भविष्यस्य विषये च उत्साहिताः भविष्यन्ति। विश्वस्य प्रत्येकभाषायां षष्टिप्रतिशतशब्दाः संस्कृततः निष्पन्नाः सन्ति।जर्मन-फ्रेञ्च्-आङ्ग्ल-आदिभाषासु अपि संस्कृत-तत्सम-तद्भव-शब्दानां बहुसंख्या अस्ति। अतः संस्कृतज्ञानेन विदेशीयभाषाशिक्षणं सुकरं भवति,विदेशीयभाषाज्ञानं च आजीविकायाः कृते सहायकं भवितुम् अर्हति।संस्कृतज्ञानं कस्यापि भाषायां पत्रकारितायां संचारसेवासु च अत्यन्तं उपयोगी सिद्धं भवति। भारतीयप्रशासनिकसेवासदृशानि महत्त्वपूर्णानि पदस्थानानि प्राप्तुं धर्मस्य, संस्कृतिस्य,इतिहासस्य,राष्ट्रभाषायाः च समृद्धं ज्ञानं अत्यावश्यकम्। महर्षिपाणिनिव्याकरणं देवनागरीलिप्याः वैज्ञानिकत्वं च पाणिनियास्कयोः प्रज्ञा च चरकस्य चिकित्साव्यवस्था च साक्षात् आजीविकायाः सम्बन्धः अस्ति।भौतिकवादस्य स्पर्धायाः कारणतः सांस्कृतिकप्रदूषणं परिहरितुं,मानसिकरोगं, मानसिकं अशान्तिं च परिहरितुं च समाधानं संस्कृत-दार्शनिकग्रन्थेषु निहितम् अस्ति। मनः नियन्त्र्य जगत्विजयः भवति।

मुख्य शब्दः - शास्त्रीयभाषाः, संस्कृतं, विश्व, इतिहास, राष्ट्रभाषा, व्याकरण, देवनागरी, वेदभाषा, संस्कृतज्ञान, संस्कृति ।

Globalizing Ayurveda through Sanskrit-First Multilingual Pedagogy: The Saṃhitā-to-World Model for Non-Sanskrit-Speaking Learners

Research Parameters (Introduction): As Ayurveda expands internationally, non-Sanskrit-speaking learners increasingly encounter classical concepts through secondary summaries or direct vernacular translation, creating risks of semantic reduction, false equivalence, and separation from textual and commentarial context. This study aimed to develop a Sanskrit-first, source-traceable multilingual curriculum for learners that widens linguistic access while preserving conceptual fidelity to classical Ayurveda.

Methodology: A practice-informed curriculum-development approach integrated four components: direct study of the Caraka Saṃhitā, Suśruta Saṃhitā, Aṣṭāṅga Hṛdaya and relevant commentaries; an original modular Saṃhitā-oriented curriculum; approximately six years of repeated Sanskrit–Ayurveda teaching with Persian-speaking adult learners; and iterative refinement through recitation, pronunciation correction, grammatical parsing, terminology clarification, guided source reading, supervised translation, discussion, assignments, case-based reflection, feedback, and viva. Recurring learner difficulties were used to refine curricular sequence and instructional emphasis.

Data & Findings: The resulting Saṃhitā-to-World Model comprises eight progressive stages: Devanāgarī and phonetics; essential Sanskrit grammar for Ayurveda; core Ayurvedic lexicon; guided Saṃhitā reading; source-text analysis through pāṭha, padaccheda, vyākaraṇa, anvaya, padārtha, and bhāvārtha; guided engagement with classical commentaries; a target-language bridge using RETAIN–TRANSLITERATE–DEFINE–CONTEXTUALIZE–TRANSLATE–VERIFY; and application through scholarly discussion, source citation, case reflection, assignments, oral explanation, and viva. Persian served as the pilot target language. The model further identifies six competency domains for prospective assessment: Devanāgarī reading,

pronunciation, grammatical parsing, technical terminology, source-text interpretation, and responsible multilingual explanation.

Conclusion: The Saṃhitā-to-World Model offers a structured, replicable framework for international Ayurveda education in which Sanskrit understanding precedes multilingual interpretation. It is designed to expand access while maintaining traceability to primary texts and commentarial traditions. Prospective evaluation across learner cohorts and target languages is required to establish educational effectiveness and generalizability.

Keywords: Ayurveda education; Sanskrit; Globalization

रघुवंशमहाकाव्ये गुरुशिष्यपरम्परायाः स्वरूपम्

धनश्री सतीश शर्मा

भारतीयसंस्कृतेः प्रमुखाधारः गुरुशिष्यपरम्परा वर्तते। अस्यां परम्परायां गुरुः केवलं ज्ञानप्रदाता न भवति, अपितु शिष्यस्य व्यक्तित्वनिर्माता, जीवनमार्गदर्शकः, संस्कारप्रदाता च भवति। संस्कृतमहाकाव्येषु महाकविना कालिदासेन विरचिते रघुवंशमहाकाव्ये गुरुशिष्यपरम्परायाः विविधाः पक्षाः अत्यन्तं मनोरमतया प्रतिपादिताः सन्ति। विशेषतः राजा दिलीपस्य महर्षेः वसिष्ठस्य च सम्बन्धे गुरुसेवा, गुरुभक्तिः, श्रद्धा, आज्ञापालनम्, आत्मसंयमः तथा कर्तव्यनिष्ठा इत्यादयः गुणाः सुस्पष्टतया प्रकाशिता भवन्ति। तथैव रघोः शिक्षणप्रक्रियायां राजधर्मस्य, शास्त्रज्ञानस्य, शौर्यस्य, विनयस्य च समन्वयः परिलक्ष्यते। कौत्स-रघु-प्रसङ्गे च गुरुदक्षिणायाः महत्त्वं तथा शिष्यस्य गुरौ कृतज्ञताभावना प्रकाश्यते। एवं रघुवंशमहाकाव्ये गुरुशिष्यपरम्परा केवलं ज्ञानार्जनस्य वा शिक्षणव्यवस्थायाः वा स्वरूपं न, अपितु व्यक्तित्वनिर्माणस्य, नैतिकमूल्यानां संवर्धनस्य, सांस्कृतिकपरम्परायाः संरक्षणस्य च सशक्तं माध्यमम् इति प्रतिपाद्यते।

Age-Appropriate Value Formation in the Indian Knowledge Tradition: A Textual and Field-Based Study with Special Reference to the Rāmāyaṇa

Munesh S

Research Parameters (Introduction): The Indian Knowledge Tradition treats human values not as social conventions but as disciplines essential to individual and social harmony. The Vālmīki Rāmāyaṇa articulates Dharma through the conduct of its central characters, offering a lived, exemplar-based model of ethical formation rather than an abstract code. This paper examines whether such textual value-frameworks correspond to a developmental logic — one in which the relevance and expression of a given value shifts across the stages of a learner's life — and tests this question through field-based evidence from contemporary students.

Methodology: The study proceeds in two parts. The first is a textual and comparative reading of Dharma in the Rāmāyaṇa alongside the Āśrama framework, drawing out the values associated with each life-stage (Brahmacharya, Gṛhastha, Vānaprastha, Sannyāsa). The second is an empirical component: a structured survey administered to Gurukulam students (ages 12–18) asking them to identify values they found practicable in daily life.

Data & Findings: Preliminary findings from this pilot (n=17, May 2026) show Bhakti/devotion (64.7%), Śaucam/cleanliness (58.8%), Satya/truth (52.9%), Anuśāsana/discipline (47.0%), and Sādhana/continuous effort (35.3%) as the most-endorsed values, suggesting that discipline- and devotion-oriented values are more readily internalised at this age than abstract ethical categories.

Conclusion: These findings are read against the Āśrama model to ask whether Vedic developmental theory anticipates this ordering, and what it implies for structuring value education by age rather than uniformly. The paper concludes that the Rāmāyaṇa's exemplar-based Dharma, combined with the Āśrama framework, offers Indian education a textually grounded, age-sensitive model of value formation — one that contemporary pedagogy can adapt without reducing these values to generic moral instruction.

Keywords: [Rāmāyaṇa]; [Dharma]; [Āśrama]; [Value Education]; [Age-Appropriate Pedagogy]

प्राचीनभारतस्य शिक्षणप्रणाली एवं राष्ट्रीयशिक्षानिति-२०२० मध्ये निर्देशित प्राथमिकशिक्षणस्य अध्यापनशास्त्रस्य तुलना

Dr. Payal Jaykantbhai Bhatt

सर्वकारी प्राथमिकविद्यालये कार्यं करोमि अथ: प्रस्तुत शोधपत्रस्य क्षेत्र पूर्व प्राथमिकत: उच्चप्राथमिकविभाग: भवति | प्राचीनभारते वर्णित: शिक्षणप्रक्रिया: एवं राष्ट्रीयशिक्षानीत्या: तुलनात्मकं अभ्यास: अस्ति | | राष्ट्रीयशिक्षानिति मध्ये प्रथम: विभागे प्राथमिकशिक्षा अस्ति | तत् अंतर्गत चतुर्थ: प्रकरणे प्राथमिकविद्यालयस्य अभ्यासक्रम: एवं अध्यापनशास्त्र: अस्ति | अत्र प्राचीनभारते प्राथामिकशिक्षा एवं राष्ट्रीयशिक्षानित्याम उल्लेखित प्राथमिकशिक्षणस्य अभ्यासक्रम: तथा अध्यापनशास्त्रस्य तुलना करिष्यामि | एतादृशि मम अल्प: प्रयास: अस्ति | संस्कृतशिक्षण: सरलसंस्कृत मध्यमेन भवेत् अथ: अत्र सरल भाषायाम शोधपत्र: प्रस्तूतं करोमि |

Characteristics of Students According to the Bhagavad Gita: A Philosophical and Educational Perspective

Dr. Shewli Chakraborty

In the current era of globalization, even though the modern education system has achieved remarkable excellence in technological and material terms, serious issues such as moral degradation, severe mental stress, loneliness, and a lack of direction are still being observed among students. Revisiting ancient Indian philosophy is crucial for resolving this contemporary educational and psychological crisis. The primary objective of this research paper is to explore and analyses the essential characteristics and qualities of an ideal student in the light of the classic teachings and philosophical principles of the Bhagavad Gita. The Bhagavad Gita is not merely a spiritual text; it is a unique philosophical and psychological discourse that provides guidance for shaping the student's overall character. Through qualitative research methods, this paper analyzes various verses of the Gita, focusing specifically on Arjuna's mental conflict and the educational significance of Sri Krishna's teachings. This research indicates that, from the philosophical perspective of the Gita, the foremost characteristic of an ideal student is an intense yearning to seek the truth. According to Verse 34 of Chapter 4 of the Gita, a true student is not a passive listener; rather, he/she acquires knowledge through humility (प्रणिपात), rational questioning (परिप्रश्न), and service to the Guru (सेवा). Furthermore, reverence and the restraint of the senses or self-control have been identified as the fundamental pillars of education. From both educational and practical perspectives, the Gita teaches students about "Nishkama Karma" (focusing on duty while renouncing blind attachment to the outcome), concentration, and patience. The concept of "Sthitaprajna," or mental equanimity, as described in the Gita, can effectively alleviate exam anxiety and depression among modern students. Ultimately, this research concludes that the

student characteristics described in the Bhagavad Gita must be integrated into modern classrooms and curricula.

Key words - Shrimad Bhagavad Gita, Student Characteristics.

Reviving the gurukulam Tradition: Integrating para vidyā and aparā vidyā in Contemporary Indian Education

Abhishek Dewangan

Research Parameters (Introduction): The ancient Indian Education system was founded on the principles of knowledge imparting both para and apara vidyā, para vidyā, which imparts values and develops the students about inner self and spiritual wisdom, whereas apara vidyā imparted the intellectual and worldly knowledge which helps an individual to sustain and earn living in the society. However, in today's time the holy education of imparting this knowledge has drastically declined and this paper examines the relevance of the gurukulam paradigm in addressing this gap between the two.

Methodology: The study adopts a qualitative, descriptive and analytical approach, examining an institutional model, Sri Sathya Sai Loka Seva Gurukulam and Sri Sathya Sai University for Human Excellence, which has been imparting both para and apara vidyā, as a case study of integrated education.

Data & Findings: The study observes that the gurukulam integrates academic education with para vidyā through the study of bhagavad gītā, upaniṣads, veda chanting, and value-oriented practices. Graduates of Sri Sathya Sai University for Human Excellence, having undergone this integrated educational process themselves, contribute to transmitting these traditions to students from Grades 6 to 12. This creates a guru-śiṣya paramparā in which recipients become the future transmitters of Indian knowledge traditions.

Conclusion: The study argues that reviving and implementing the para vidyā in contemporary education can surely nurture value-oriented, and self-aware individuals.

Keywords

gurukulam; para vidyā; aparā vidyā; Indian Knowledge Systems; Holistic Education

वैदिक काल से डिजिटल काल तक: भारतीय ज्ञान-परंपरा में स्वरूपगत परिवर्तन एवं मूल्यगत निरंतरता

प्रांजल सिंह

परिचय : सामान्यतः ज्ञान शब्द का तात्पर्य किसी विषय, तथ्य अथवा सत्य के यथार्थ बोध से है किंतु भारतीय चिंतन परंपरा में ज्ञान यही तक सीमित नहीं है अपितु यह नैतिकता, लोककल्याण, प्रकृति-संतुलन, आत्मबोध तथा परम सत्य की अनुभूति की ओर ले जाने वाली एक व्यापक एवं गहन प्रक्रिया है। वैदिक युग में ज्ञान का संप्रेषण गुरुकुलों एवं आश्रमों में श्रुति परंपरा से होता था जबकि वर्तमान डिजिटल युग में ज्ञान के संरक्षण, प्रसार एवं अर्जन के स्वरूप में अत्यधिक परिवर्तन आया है। ऐसे में यह जिज्ञासा होती है की ज्ञान के माध्यम और स्वरूप में परिवर्तन होने पर भी भारतीय ज्ञान परंपरा के शाश्वत मूल्य किस प्रकार निरंतर विद्यमान हैं? प्रस्तुत शोध-पत्र, वैदिक-युग से डिजिटल-युग तक के संदर्भों में भारतीय ज्ञान परंपरा के स्वरूपगत परिवर्तनों और उसके मूल्यगत सातत्य के अध्ययन पर आधारित है।

कार्यप्रणाली : प्रस्तुत अध्ययन में भारतीय ज्ञान परंपरा के शाश्वत मूल्य तथा परिवर्तनशील स्वरूप, संप्रेषण पद्धति एवं अभिव्यक्ति में आए परिवर्तनों का वर्णनात्मक, विश्लेषणात्मक, एवं तुलनात्मक पद्धतियों से अध्ययन किया

जाएगा तथा डिजिटल माध्यमों से ज्ञान के संरक्षण, प्रसार एवं ज्ञान के स्वरूप में होने वाले प्रभावों का भी विवेचन किया जाएगा।

डेटा : भारतीय ज्ञान परंपरा की विशिष्टता इसकी व्यापक समन्वयकारी एवं जीवनोपयोगी दृष्टि में निहित है।'संगच्छध्वं संवदध्वं' जैसे शाश्वत मूल्य भारतीय ज्ञान परंपरा को अनादिकाल से वर्तमान संदर्भों तक निरंतर प्रासंगिक एवं विशिष्ट बनाए रखते हैं, यही कारण है कि भारत भूमि में जन्म ग्रहण करना सौभाग्य का प्रतीक माना जाता है, इसी भाव को 'धन्यास्तुते भारत भूमि भागे' यह उक्ति अभिव्यक्त करती है।

निष्कर्ष : भारतीय ज्ञान-परंपरा की मौलिकता एवं उसकी गतिशीलता अपने शाश्वत मूल्यों को सुरक्षित रखते हुए समयानुकूल परिवर्तन में निहित है। अतः डिजिटल युग में भारतीय ज्ञान परंपरा का समकालीन विवेचन उस विशिष्ट ज्ञान संपदा को वर्तमान की आवश्यकताओं से जोड़ने का सार्थक प्रयास है।

Keywords

भारतीय ज्ञानसम्पदा परिवर्तनशील ज्ञान-परम्पराज्ञान- संप्रेषणज्ञानार्जन शैलीशाश्वत मूल्य

Kumbha Rahasyam: The Kumbh Mela as an Ownerless Brand

Avinash Kumar and Dr. Babita Yadav

The Kumbh Mela is among the largest recurring religious gatherings in the world. It rotates among Prayagraj, Haridwar, Nashik-Trimbakeshwar, and Ujjain on an approximately twelve-year cycle. It has drawn pilgrims by the hundred million. It has done so for centuries. Yet it has no owner. No company holds its trademark. No single authority defines its meaning or controls its use. This paper asks how a sacred institution accumulates brand-like equity, awareness, associations, loyalty, without proprietary ownership, and what that implies for brand-management theory.

The study is conceptual and comparative. It reads the Mela through six frameworks: Keller's customer-based brand equity, Urde, Greyser and Balmer's brand heritage, Holt's cultural branding, Morhart and colleagues' brand authenticity, Muniz and O'Guinn's brand community, and Victor Turner's anthropology of liminality. It contrasts the Mela's fragmented stewardship with the centralized governance of the Hajj and the proprietary brand control of the Olympic Games. The study uses secondary data only.

The argument moves in four steps. First, the Mela built its equity through myth, monastic lineages, and sacred geography, not through marketing. Second, its stewardship passed through four phases, from royal patronage to today's multi-actor ecosystem. Third, commercialization and crisis now test its authenticity and trust, because an ownerless brand has no single respondent. Fourth, a five-element custodianship framework, covering a stewardship council, a sponsorship code, crisis protocols, a Green Kumbh pillar, and pilgrim-data governance, is proposed for the 2027 Kumbh cycle.

The contribution is a new theoretical category, custodianship without ownership. It gives Religious Studies a formal account of distributed sacred authority, and brand management an Indian civilizational case that challenges the field's ownership assumption.

Keywords: Kumbh Mela; brand management; custodianship; sacred geography; religious institutions; brand heritage; Kumbha Rahasyam

भारतीय ज्ञान परंपरा के परिप्रेक्ष्य में कलरिपयट्टू: युद्धकला, समग्र प्रशिक्षण एवं गुरु-शिष्य परंपरा का अध्ययन

Vishwajit Prakash Jadhav

Research Parameters (Introduction): कलरिपयट्टू भारतीय ज्ञान परंपरा की एक जीवंत युद्धकला है, जिसमें शारीरिक कौशल के साथ अनुशासन, मानसिक सजगता, गुरु-शिष्य संबंध तथा अनुभवाधारित ज्ञान का समन्वय दिखाई देता है। प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य कलरिपयट्टू को केवल युद्ध अथवा शारीरिक प्रशिक्षण तक सीमित न मानकर भारतीय ज्ञान परंपरा के परिप्रेक्ष्य में उसकी युद्धकला, समग्र प्रशिक्षण-पद्धति और गुरु-शिष्य परंपरा का अध्ययन करना है।

Methodology: प्रस्तुत अध्ययन वर्णनात्मक, विश्लेषणात्मक एवं अनुभवाधारित पद्धति पर आधारित है। अध्ययन में प्रकाशित शोध-साहित्य एवं प्रामाणिक स्रोतों के साथ केरल में किए गए प्रत्यक्ष अध्ययन, गुरु-शिष्य परंपरा के अंतर्गत प्राप्त दीर्घकालीन कलरिपयट्टू प्रशिक्षण-अनुभव तथा अनुभवी गुरुओं से प्राप्त मार्गदर्शन एवं संवाद का उपयोग किया गया है।

Data & Findings: अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि कलरिपयट्टू की प्रशिक्षण प्रक्रिया शरीर की गतिशीलता, संतुलन, समन्वय और नियंत्रण के साथ एकाग्रता, अनुशासन, सजगता तथा गुरु के प्रति श्रद्धा को भी महत्त्व देती है। मेय्प्पयट्टु, अस्त्र-शस्त्र अभ्यास और वेरुम्कै जैसी क्रमिक प्रशिक्षण प्रक्रियाएँ केवल तकनीकी दक्षता नहीं, बल्कि निरंतर अभ्यास एवं अनुभव के माध्यम से ज्ञान को आत्मसात करने पर बल देती हैं। गुरु-शिष्य परंपरा में ज्ञान प्रत्यक्ष प्रदर्शन, अनुकरण, सुधार और दीर्घकालीन अभ्यास से संचारित होता है। मर्म-ज्ञान और कलारि से जुड़े पारंपरिक आचार इसके व्यापक ज्ञानात्मक स्वरूप को और स्पष्ट करते हैं।

Conclusion: अतः कलरिपयट्टू को केवल शारीरिक युद्धकला के रूप में देखना इसकी व्यापकता को सीमित करता है। यह युद्धकौशल, समग्र प्रशिक्षण, अनुशासन, अनुभव और गुरु-शिष्य आधारित ज्ञान-संचरण को जोड़ने वाली भारतीय ज्ञान परंपरा की जीवंत प्रणाली है। इसका संरक्षण एवं अकादमिक अध्ययन भारतीय ज्ञान प्रणाली तथा पारंपरिक शारीरिक-मानसिक प्रशिक्षण की समझ को समृद्ध कर सकता है।

Keywords

कलरिपयट्टू; भारतीय ज्ञान परंपरा; समग्र प्रशिक्षण; गुरु-शिष्य परंपरा; अनुभवाधारित ज्ञान; मर्म-ज्ञान; युद्धकला

Digital Libraries as Gateways to Indian Knowledge Systems: A Framework for Preservation, Access and Responsible Dissemination of Traditional Knowledge

RUCHI

Indian Knowledge Systems (IKS) represent a highly complex and structurally diverse body of knowledge developed, refined, and transmitted over centuries across textual, oral, and practical traditions. This knowledge spans critical domains such as traditional medicine (Ayurveda), mathematics, astronomy, architecture, agriculture, linguistics, and environmental ethics. However, a significant portion of IKS remains locked within fragile manuscripts, rare regional books, and uncodified oral records, rendering them critically vulnerable to physical decay, geographical isolation, and structural loss. While digital libraries offer a transformative infrastructure for the preservation and access of cultural heritage, the digitization of traditional knowledge introduces multi-layered challenges that transcend simple scanning mechanics. These include complex

multilingual discovery layers, contextual metadata requirements, intellectual property frameworks, and community-driven access rights. This paper evaluates the operational capacities of existing Indian digital platforms—specifically the National Digital Library of India (NDLI) and the Traditional Knowledge Digital Library (TKDL)—highlighting a systemic tension between universal open access and secure defensive legal protection. To address these vulnerabilities, this paper proposes an integrated, library-science-centered Six-Layer Conceptual Framework consisting of structured modules for Collection Development, Digitization, Knowledge Organization, Digital Preservation, Access Control, and Responsible Dissemination. This framework serves as a sustainable, robust design guide for developing digital repositories that protect, preserve, and meaningfully transmit India's cultural and scientific heritage across generations.

Keywords: Indian Knowledge Systems, Digital Libraries, Traditional Knowledge Resource Classification (TKRC), Digital Preservation, Knowledge Organization, Metadata Standards, Cultural Context, Information Silos.

Importance of Jyothisha in Roganirnaya

Dr Ratheesh K R , Karthika S Balu

Jyotiṣa, one of the traditional Vedāṅgas, occupies an important position in the Indian knowledge tradition. Besides its applications in determining time, seasons and auspicious occasions, Jyotiṣa also developed as a system for understanding various aspects of human life, including health and disease. The branch concerned with medical astrology, commonly referred to as Āyurjyotiṣa or Rogajyotiṣa, attempts to interpret the relationship between planetary configurations, bodily constitution and the occurrence or progression of diseases.

In the classical Jyotiṣa texts, the assessment of health is primarily based on the Lagna, Lagneśa, Ṣaṣṭhabhāva, Ṣaṣṭheśa, Aṣṭamabhāva, Dvādaśabhāva and their associations with the planets. The Sun, Moon, Mars, Mercury, Jupiter, Venus and Saturn are traditionally associated with different bodily organs, physiological functions and pathological conditions. The examination of planetary strength, rāśi, bhāva, dṛṣṭi, yoga, daśā and gochara is employed in Roganirṇaya to identify possible tendencies towards particular diseases and periods of vulnerability.

This paper attempts to examine the conceptual and textual foundations of Roganirṇaya in Jyotiṣa, with special reference to classical Sanskrit sources. It explores the relationship between planetary influences and bodily regions, the role of the sixth house in disease assessment, and the significance of daśā and gochara in determining the possible timing and progression of illness. The study also considers the relationship between Jyotiṣa and Āyurveda, particularly their shared emphasis on bodily constitution, causation and preventive approaches.

The objective of the paper is not to establish Jyotiṣa as a substitute for modern medical diagnosis, but to understand Roganirṇaya as an important component of the traditional Indian medical-astrological knowledge system and to examine its philosophical, textual and cultural significance.

The Development of Jyotirgaṇita in Kerala: Major Contributions and Achievements

REKHA R K

Jyothisha Sastra has four types of Ganita, and the most important among them is accurately finding the position of planets. This study is a branch that reduces superstitions and makes Jyothirganita

a main path of study, and Kerala was the center for it. This study covers many centuries to the modern age.

For this study, the works of four main Acharyas who brought great knowledge to this field have been selected. Among them, V.C.K. Pothuval and Rama Pothuval from the Vadassery family are the pride of Kerala's Ganita tradition. They made the very complex Sputa Ganitha easy to understand and simplified it into systems and books like Panchanga Bodham.

After that came Puliyoor Madhavan Pothuval's book 'Ganita Nirnayam'. It is a textbook for a student who is just starting to learn Jyothisha, so that he can understand it on his own according to Druk Nila (true visual position). But different from these is the work 'Grahasthanaganitham' written by Dr. E. Sreedharan. In this book published by the Kerala Bhasha Institute, he has presented a scientific approach. Moving away from the old Geocentric concept which considered the Earth as the center, he explains the Heliocentric viewpoint which considers the Sun as the center. He found a new method of calculation based on the Heliocentric system. The new discoveries in the Heliocentric system make the new discoveries in the Heliocentric system make the Ganitha more authentic and scientific. He transformed the knowledge gained by the Acharyas from ancient times to suit the new age.

Therefore, through this study, common people can understand that this book contains the future knowledge of Kerala Jyothir Ganita, where the old and the new and the scientific temper come together.

Historical Evolution of Indian Classical Music Pedagogy: Tradition, Institutionalisation, and Contemporary Practices

Neha Mathur

Music pedagogy has transformed significantly in response to changing educational, social, cultural, and technological contexts. Indian classical music represents a distinctive pedagogical tradition rooted in the Guru–Shishya Parampara, oral transmission, experiential learning, observation, and sustained practice (riyaz). With the expansion of institutional music education, these traditional practices have increasingly encountered structured curricula, formal teaching environments, and digital modes of learning. This study examines the historical development and contemporary transformation of Indian classical music pedagogy, focusing on the relationship between traditional and emerging educational practices. The study aims to trace the evolution of Indian classical music pedagogy; examine the principles of the Guru–Shishya Parampara, oral transmission, experiential learning, and riyaz; analyse the institutionalisation of music education, particularly through the contributions of Pandit Vishnu Digambar Paluskar and Pandit Vishnu Narayan Bhatkhande; and investigate contemporary pedagogical developments and perspectives on the continuity and adaptation of traditional practices. A mixed-method research design with a predominantly qualitative orientation was adopted. Primary data were collected through semi-structured interviews with 20 music educators, performers, researchers, and learners, alongside questionnaires, while secondary literature supported the historical and conceptual dimensions. Interview responses were examined thematically, and questionnaire responses through descriptive analysis. The findings indicate that Indian classical music pedagogy has developed through adaptation rather than replacement of traditional practices. While institutionalisation introduced accessibility, systematic curricula, notation, theoretical frameworks, and organised instruction, digital technologies have expanded access to resources and new learning opportunities. However, direct teacher–learner engagement remains important for personalised guidance and embodied musical development. The study concludes that integrating traditional, institutional, and digital approaches can support contemporary music education while preserving its experiential and cultural foundations.

Keywords: Indian Classical Music; Music Pedagogy; Guru–Shishya Parampara; Institutional Music Education; Cultural Transmission; Digital Learning; Contemporary

Sanskrit Kośas as Repositories of Traditional Agro-Pastoral Knowledge: An Ontological and Lexical Study

ASHA T GANGUR

Sanskrit kośas are generally approached as repositories of synonyms and grammatical information. However, if you look beyond them, one can see that their lexical groupings also preserve distinctions concerning objects, properties, activities and relations within particular domains of knowledge. The present paper examines the agro-pastoral vocabulary of the Amarakośa (AK), Vaijayantīkośa (VK) and Abhidhānacintāmaṇi (AC) in order to study the conceptual structure implicit in such lexical material. The data considered include terms for agricultural land, stages of cultivation, crops and grains, implements, grasses and fodder, cattle, reproductive and functional distinctions, dairy products, occupations and livelihood.

The study distinguishes having synonyms for the lexical entry is vastly different from conceptual differentiation. A number of words may denote the same object; of greater significance for knowledge representation are distinctions based on fertility, crop suitability, stage of cultivation, measurement, age, sex, reproductive condition, productivity and function. Examples from the three kośas representing these distinctions that form connected semantic clusters rather than isolated synonym sets.

Nyāya ontology is used here as an overall framework, while domain relations such as class–subclass, property–locus, activity–instrument, producer–product and profession–activity are used to highlight the internal connections. Such representation is useful not only for cross-kośa comparison and semantic retrieval, but also for interpreting technical vocabulary in agricultural texts. The paper thus treats the kośa as a lexical resource which, when ontologically organised, can unfold into a domain-specific knowledge network.

Keywords: Indian Knowledge Systems; Sanskrit Kośa; Amarakośa; Vaijayantīkośa; Abhidhānacintāmaṇi; agriculture; pastoral knowledge; animal husbandry; ontology; Sanskrit lexicography; knowledge representation.

Organic Preservation of Foods - Learning from the Evolution of Agricultural Society

PARTHA SARTHI SARKAR

This paper examines the evolution of organic food preservation practices from an anthropological and agrarian perspective, focusing on the ways in which traditional agricultural societies developed environmentally sustainable methods of extending food shelf life.

The study explores indigenous techniques including sun-drying, dehydration, smoking, salting, fermentation, curing, preservation in oil, use of natural spices and herbs, storage in earthen or wooden containers and traditional grain-storage systems. These practices emerged through accumulated ecological knowledge and close observation of seasonal cycles, microorganisms, moisture, temperature, pests and local natural resources. Rather than relying on synthetic chemicals or energy-intensive technologies, traditional communities often utilised locally available materials and low-energy methods that were adapted to specific ecological and climatic conditions.

The evolution of agricultural society also transformed food preservation from an individual household practice into a broader social and economic institution. The storage of agricultural surplus encouraged the development of granaries, exchange networks, specialised occupations, household divisions of labour, and systems of collective resource management. Preservation therefore contributed not only to nutrition and food security but also to the organisation and continuity of rural communities.

Drawing upon perspectives from anthropology, agricultural history, indigenous knowledge and rural studies, this paper argues that traditional organic preservation practices provide important lessons for contemporary sustainable food systems. Their emphasis on local resources, biodiversity, minimal processing, seasonal adaptation and ecological balance can inform present-day approaches to reducing food waste and improving food security. The study concludes that understanding the historical evolution of organic food preservation can help reconnect modern agriculture with sustainable, community-centred and environmentally responsible food practices.

Keywords: indigenous techniques, local natural resources, food preservation, food security

A Critical Appraisal on State of Art of Metallurgical Advancements Used in Kalinga War by Mauryan Emperor Ashoka

Dr. Mayank Agarwal , Siddharth Shankar Muduli, Ritambhara Samantaray, Aman Singh, Harish Ranjan Behera, Dev Sanskriti, Puneet Verma,

The Kalinga War was fought 261 BCE which was strategically important for eastern coastal region of kalinga, including the areas around Dhauli and the fortified centres associated with Tosali, marked a major phase of Mauryan expansion. This war was also considered for new techniques and advances in metal applications and technological infrastructure. Over the time the war brought an imperial domain of the Great Emperor Ashoka extended from Kandahar- Afghanistan to Pakistan in northwest, to Bengal in the east, and southern India up to Sri Lanka, making it the largest empire of its time. The Ashoka regime is renowned for its exceptional advancements in metallurgical technology. This progress is evident in various metal structures from the period, most famously the iron pillar at Delhi which is well known for its anti-rusting and anti-decaying properties. The present investigation focuses on to unfold the techniques that were used of the preparation of metals and their alloys, and the technology employed in manufacturing weaponry. Metallurgical technology in the Mauryan campaign, focusing on iron for weapons, armour, projectile heads, fortifications, and military implements. The technologies of ore extraction, smelting, forging, shaping, carburization, and weapon manufacture that converted mineral resources into functional instruments of warfare. Drawing on the Kautiliya Arthashastra, archaeological investigations, and archaeometallurgical studies, the study argues that systematic control of mineral resources and metallurgical production strengthened Mauryan military organization, logistics, and combat capability, thereby playing a crucial role in enabling the conquest of Kalinga.

Keywords: Kalinga War; Mauryan Warfare; Metallurgy; Military Technology; Weapon Manufacture; Archaeometallurgy; Ancient Indian Warfare; Fortifications.

Sound as Cosmic Principle in Indian Knowledge Systems: The Vāk Sūkta and Its Reception in Śaiva and Śākta Sources

Sridevi R

Tracing how the Vedic Vāc of the Vāk Sūkta is received and reinterpreted in Śaiva and Śākta sources, and how this shapes the Śākta doctrine of Śabda-Brahman.

The Vāk Sūkta (Ṛgveda 10.125), spoken by the seer Vāgāmbhṛṇī, presents Vāc as a self-declaring cosmic power who sustains the gods, gives birth to the "father", and pervades all worlds. Later remembered as the Devī Sūkta, it is treated by Śākta authors as Vedic authority for the Goddess as the Word.

Through close textual and hermeneutic reading, the paper places the hymn's first-person ("aham") proclamations beside Abhinavagupta's Parātrīśikā-Vivaraṇa, where Parā Vāc is the self-reflective "I" (ahaṃ-vimarśa); the Devī-Māhātmya (1.73–1.75), where the Goddess is the sonic, mātrā-formed reality of the syllable; and Śākta cosmogonic texts, the Śāradā-tilaka and Kāmakalāvilāsa, which unfold Nāda–Bindu–Kalā. Without claiming direct textual descent, it argues that three moves connect the hymn to these sources: (i) Vāc's speaking "I" becomes the Goddess's identity as self-aware consciousness; (ii) the hymn's cosmic pervasion is re-read as ordered emanation of sound; (iii) the four measured grades of speech (Ṛgveda 1.164.45) become Parā, Paśyantī, Madhyamā and Vaikharī.

The Devī Sūkta reception gives the Śākta tradition its Vedic grounding for Śabda-Brahman: Vedic Vāc, Śaiva Parā Vāc and the Śākta Goddess unfolding as Nāda–Bindu–Kalā are stages of one continuous understanding of sound as the cosmic principle in Indian Knowledge Systems.

Keywords: Vāc; Śabda-Brahman; Devī Sūkta; Devī-Māhātmya; Parātrīśikā-Vivaraṇa; Nāda–Bindu–Kalā; Śākta metaphysics

From Milk to Curd: A Sixfold Lexical Classification of Curd Formation in the Vaijayantīkośa

Aruna Vayuvegula, Shivani V

Vaijayantīkośa lists a remarkably detailed vocabulary for the progressive transformation of milk into curd. It records six distinct terms denoting successive stages in the formation, development, and souring of curd, while Ayurvedic works such as the Bhāvaprakāśa Nighaṇṭu and Vāstuguṇadīpikā provide further textual evidence concerning fermented dairy products, their properties, and their dietary and therapeutic applications.

This paper examines the six terms recorded in the Vaijayantīkośa, investigating their usage, semantic distinctions, and contextual occurrences in Ayurvedic literature. Particular attention is given to the terminology associated with the progressive stages of curd formation and to the correspondence between these lexical distinctions and observable changes in the physical and sensory characteristics of curd. The study thus situates the Vaijayantīkośa within the wider corpus of Sanskrit scientific and technical literature and explores the relationship between lexicographical classification and empirical knowledge.

The traditional Indian practice of using previously prepared curd or buttermilk to initiate the formation of fresh curd provides a familiar example of a process that may be described, in contemporary microbiological terminology, as the use of a starter culture or microbial inoculum. The significance of the Sanskrit sources lies not merely in their recognition of this practical technique, but in the systematic manner in which they describe the progressive transformation of

milk and distinguish its successive stages. Although the conceptual and technical vocabulary of modern microbiology developed much later, the absence of that vocabulary does not imply an absence of empirical knowledge of the process itself. The texts demonstrate an awareness of the observable effects of inoculation, the progressive changes occurring during fermentation, and the differing dietary and physiological consequences associated with its stages. Modern scientific terminology therefore provides a contemporary descriptive framework through which this earlier body of empirical knowledge can be articulated and further investigated.

The paper concludes by considering the contemporary relevance of this traditional knowledge in discussions of fermented foods, probiotics, and gut health. Rather than treating modern scientific terminology as evidence of an absent traditional understanding, the study uses it as a framework for articulating and investigating knowledge that has long been embedded in Indian culinary and Ayurvedic practice. The intersection of Sanskrit lexicography, Ayurvedic dietary theory, traditional fermentation practices, and contemporary food science thus offers a productive field for interdisciplinary research.

मानव-प्रकृति का अंतर्संबंध और आधुनिक जीवनशैली (भारतीय ज्ञान-परम्परा के आलोक में शांति, स्थिरता एवं आत्म-साक्षात्कार)

Suman

मानव और प्रकृति का संबंध मानव सभ्यता की मूल आधारभूमि है। मनुष्य प्रकृति से पृथक् कोई स्वतंत्र सत्ता नहीं है अपितु पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, आकाश, वनस्पति, पशु-पक्षी तथा समस्त जैविक एवं अजैविक घटकों से निर्मित व्यापक पारिस्थितिक व्यवस्था का अभिन्न अंग है। आधुनिक जीवनशैली ने मनुष्य को अभूतपूर्व वैज्ञानिक एवं तकनीकी सुविधाएँ प्रदान की हैं, किंतु इसी के साथ प्रकृति से उसका प्रत्यक्ष संबंध भी क्रमशः कमजोर हुआ है। प्राकृतिक संसाधनों का अत्यधिक दोहन, उपभोक्तावादी प्रवृत्ति, शहरीकरण और प्रकृति से दूरी आधुनिक मनुष्य के जीवन में पर्यावरणीय असंतुलन के साथ-साथ मानसिक अशांति और अस्तित्वगत तनाव की स्थितियाँ उत्पन्न करते हैं। भारतीय ज्ञान-परम्परा में मानव और प्रकृति का संबंध मूलतः अंतर्संबंध, परस्परता, ऋत, यज्ञ, सह-अस्तित्व और आत्मीयता पर आधारित है। ऋग्वेद के पुरुषसूक्त में समस्त चराचर जगत को विराट पुरुष के अंगों से संबद्ध किया गया है। अथर्ववेद के पृथ्वीसूक्त में पृथ्वी को माता और मनुष्य को उसका पुत्र कहा गया है। ईशावास्योपनिषद् समस्त जगत में ईश्वर की उपस्थिति स्वीकार करते हुए त्यागपूर्वक उपभोग की प्रेरणा देता है। छान्दोग्योपनिषद् में 'तत्त्वमसि' के माध्यम से व्यक्ति और व्यापक अस्तित्व के संबंध का दार्शनिक विवेचन मिलता है। भगवद्गीता में प्रकृति, यज्ञ, वर्षा, अन्न और जीव-जगत के परस्पर संबंध को स्पष्ट किया गया है। प्रस्तुत शोध-पत्र में इन वैदिक एवं दार्शनिक अवधारणाओं के आलोक में आधुनिक जीवनशैली का विश्लेषण करते हुए यह प्रतिपादित किया गया है कि प्रकृति-संरक्षण केवल पर्यावरणीय आवश्यकता नहीं, बल्कि मानव की मानसिक शांति, सामाजिक संतुलन और आत्म-साक्षात्कार से जुड़ा हुआ प्रश्न है।

श्रीमद्वाल्मीकीय आर्षकाव्य में दुर्ग व्यवस्था : एक सैन्यशास्त्रीय अध्ययन

Jagdamba prasad

प्रस्तुत शोध पत्र में श्रीमद्वाल्मीकी रामायण के आलोक में तत्कालीन समाज की दुर्ग-व्यवस्था का अध्ययन किया गया है। रामायण केवल धार्मिक ग्रंथ न होकर सामाजिक, राजनीतिक तथा सामरिक जीवन का भी दर्पण है। इसमें अयोध्या, लंका एवं अन्य नगरों की दुर्ग-व्यवस्था का विस्तृत चित्रण मिलता है। दुर्ग केवल रक्षा-केन्द्र ही नहीं बल्कि राज्य की समृद्धि, प्रतिष्ठा और सांस्कृतिक गौरव के प्रतीक भी थे।

शोध में यह स्पष्ट किया गया है कि दुर्ग-निर्माण का उद्देश्य न केवल बाह्य शत्रु से रक्षा करना था, बल्कि यह राज्य की आर्थिक सम्पन्नता और प्रशासनिक सुगठित संरचना का भी द्योतक था। अयोध्या की सुव्यवस्थित नगरी, किष्किंधा का सामरिक सुदृढ़ीकरण और लंका की वैज्ञानिक सुरक्षा-व्यवस्था यह दर्शाती है कि रामायण काल में नगररचना एवं सैन्यनीति उच्च कोटि की थी।

इस प्रकार, शोध पत्र यह प्रतिपादित करता है कि दुर्ग-व्यवस्था केवल युद्ध-नीति का अंग न होकर राजनीतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन का भी अनिवार्य हिस्सा थी। रामायण का यह पक्ष आज भी सामरिक एवं प्रशासनिक दृष्टि से प्रेरणादायी है।

की-वर्ड्स- श्रीमद्वाल्मीकी रामायण, दुर्ग-व्यवस्था, अयोध्या, लंका, किष्किंधा, सामरिक नीति, नगररचना, प्राचीन भारतीय समाज, सुरक्षा व्यवस्था, सांस्कृतिक प्रतीक।

Role of Furnaces in Metal Separation from the Ore: A Study from the Vedic to Mauryan Period

A K Singh, Puneet Verma, Aman Singh

This research delves into the evolution of metal separation techniques in ancient India, specifically from the Vedic to the Mauryan era, a period marked by significant advancements in metallurgy. Through a multidisciplinary approach that combines archaeological findings, historical texts, and metallurgical analysis, the study provides an in-depth examination of the methods used for extracting and separating metals, including iron, copper, and precious metals. The findings indicate a remarkable sophistication in the understanding of metal properties, extraction methods, and furnace designs, showcasing the technological innovations that emerged during this time. The paper discusses various identification techniques for ores based on colour, texture, and natural tests, as well as the use of natural reagents and purification methods. It highlights the transition from simple pit furnaces to more advanced designs, such as bloomery furnaces, which facilitated higher efficiency in metal production. The implications of these advancements on cultural, economic, and technological levels are explored, emphasizing their lasting influence on modern metallurgical practices. This study contributes significantly to the literature on ancient Indian technology, underscoring the systematic and scientific nature of metallurgical processes that laid the foundation for future developments in the field.

Keywords:

Ancient Indian Metallurgy, Vedic Era metalworking, Mauryan Metallurgical Advances, Metal Separation Techniques, Ore Identification Method, Bloomery Furnace Technology, Iron Smelting Practices, Copper Extraction Methods, Precious Metal Refining, Furnace Design Evolution, Metallurgical Archaeology.

Integrating Indian Traditional Knowledge with Modern Science for Climate-Resilient Agriculture in the Hot Arid Zone of Rajasthan

Babita Yadav, Ram Niwas

Indian agriculture has evolved through a long interaction between communities, landscapes, livestock, crops, water systems and locally available biological resources. In the hot arid zone of western Rajasthan, where rainfall is low and erratic, evaporation is high, soils are fragile and farming systems are exposed to drought, salinity, heat and market risks, traditional knowledge has historically supported risk management and resource conservation. This paper examines how Indian traditional knowledge (ITK) can be integrated with contemporary agricultural science and farmer-centred extension to strengthen climate resilience in the arid zone. The paper uses a knowledge-systems framework and synthesizes documented evidence on traditional water harvesting, khejri-based production systems, mixed and intercropping, locally adapted arid crops, livestock integration, seed and post-harvest practices, and community-level resource management. Particular attention is given to khadin-type runoff farming, khejri (Prosopis cineraria)-based systems, underutilized arid vegetables and integrated crop-livestock approaches. Evidence

reported by ICAR and other agricultural institutions indicates that locally evolved practices can contribute to resilience, but their effectiveness is context-specific and should not be assumed without scientific validation. A practical pathway is therefore proposed in which farmer knowledge is documented, scientifically assessed, jointly refined, demonstrated through participatory trials, and disseminated through Krishi Vigyan Kendras (KVKs) and other extension platforms. The approach moves beyond a simple 'traditional versus modern' comparison and instead treats both as complementary knowledge resources. The proposed framework links traditional ecological understanding with weather information, improved varieties, soil testing, water-saving irrigation, integrated nutrient management, livestock health, digital advisories and value addition. Such integration can improve the relevance, acceptability and sustainability of agricultural interventions while preserving locally appropriate knowledge for future generations.

Keywords: Indian Knowledge Systems, traditional knowledge, indigenous technical knowledge, arid agriculture, Rajasthan, climate resilience, khadin, khejri, Krishi Vigyan Kendra, farmer participatory research, sustainable agriculture.

भारतीय प्राचीन शिक्षा व वेदों मे वर्णित विभिन्न दार्शनिको के मत

Kishan sharma

अमर-कोश में शिक्षा शब्द का प्रयोग षड्-वेदांगों में से एक वेदांग के लिए प्रयुक्त हुआ है। उस समय शिक्षा-शास्त्र का प्रयोजन वेदों की ऋचाओं का शुद्ध उच्चारण सिखाना था। कदाचित् उस युग में वेदों का पठन-पाठन ही शिक्षा का एक मात्र उद्देश्य था, अतः "शिक्षा" शब्द स्वर शास्त्र के लिये रूढ़ बन गया। यदि शिक्षा शब्द की व्युत्पत्ति की दृष्टि से देखा जाय तो शिक्षा शब्द का उद्गम संस्कृत की "शिक्ष्" धातु से है। "शिक्ष” का अर्थ होता है "सीखना" तथा प्रेरक रूप में प्रयुक्त होने पर इसका अर्थ "सिखाना" भी हो जाता है। रघुवंश में शिक्षा शब्द का इन दोनों ही अर्थों में प्रयोग हुआ है।

The Evolution of the Sword in Ancient India: A Metallurgical, Physical, and Tactical Analysis from the Lithic Age to the Mauryan Empire

A K Singh , Dr. Mayank Agarwal , Aman Singh, Rashi Chauhan, Anushka Singh, Dev Sanskriti

Based on the detailed analysis this paper traces the metallurgical, physical, and tactical evolution of the sword in ancient India from the Lithic Age to the Mauryan Empire. The study demonstrates that the sword's development was fundamentally dictated by materials science and fracture mechanics. During the Stone Age, the creation of a true sword was structurally impossible due to the low tensile strength and brittleness of siliceous stones, which limited early edged weapons to microlithic composites. Subsequent Chalcolithic copper blades were constrained by plastic deformation, while Bronze Age Harappan dirks lacked the complex mid-rib geometry necessary for structural stiffness. The weapon’s true potential was unlocked during the Iron Age, particularly through South Indian megalithic cultures that developed ultra-high-carbon crucible steel. By utilizing thermal cycling techniques to spheroidize cementite, these ancient metallurgists achieved an unprecedented balance of hardness and ductility. By the Mauryan period (321–185 BCE), sword manufacturing reached an industrial scale codified in Kautilya’s Arthashastra. The paper categorizes how Mauryan armories optimized cross-sectional geometry and the center of percussion to engineer specialized swords, including the cavalry-focused Nistrimsa, the armor-piercing Asiyasti, and the heavy-chopping Mandalagra used against war elephants. Ultimately, overcoming these progressive material limitations transformed the Indian sword into a

sophisticated engineering marvel that fundamentally altered the tactical landscape of ancient warfare.

Keywords : Archaeometallurgy, Ancient Indian Warfare, Crucible Steel, Mauryan Empire, Fracture Mechanics, Sword Typology, Arthashastra.

भारतीयज्ञानपरम्परायां साहित्यिक-ऐतिहासिक-आर्थिक परिमाणाः (Indian Knowledge Systems: Literary, Historical and Economic Dimensions)

Suryaprakash

भारतीयज्ञानपरम्परा (Indian Knowledge Systems – IKS) इति संकल्पना केवलं दार्शनिकविचारपरम्परां न सूचयति, अपि तु साहित्यिक, ऐतिहासिक, आर्थिक, सामाजिक, वैज्ञानिक च आयामानां समन्वितं स्वरूपं प्रकाशयति। संस्कृतवाङ्मये निहिताः वेदाः, उपनिषदः, इतिहासपुराणानि, काव्य-नाटकादयः, धर्मशास्त्राणि, अर्थशास्त्रग्रन्थाः च भारतीयसमाजस्य समग्रजीवनदृष्टिं निरूपयन्ति। अस्मिन् शोधपत्रे भारतीयज्ञानपरम्परायां साहित्यिक-ऐतिहासिक-आर्थिक आयामानां विस्तृतं विश्लेषणं कृतम्। रामायण-महाभारतयोः, कौटिल्यस्य अर्थशास्त्रस्य, मनुस्मृतेः, कालिदासकाव्यानां च उदाहरणैः सह एते आयामाः विवेचिताः। आधुनिकसन्दर्भे भारतीयज्ञानपरम्परायाः प्रासङ्गिकतां प्रतिपादयति।

मुख्यशब्दाः (Keywords): भारतीयज्ञानपरम्परा, साहित्यिक आयामः, ऐतिहासिक आयामः, आर्थिक आयामः, संस्कृतसाहित्यं, IKS

भारतीय ज्ञान परम्परा में प्रमुख उपनिषदों एवं कुरआन की प्रासंगिकता

Md. Talib

भारतीय ज्ञान-परम्परा मानव के सर्वांगीण विकास, आत्मबोध, नैतिक उन्नयन तथा लोककल्याण की भावना पर आधारित एक समृद्ध एवं बहुआयामी परम्परा है। इस परम्परा में प्रमुख उपनिषदों का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, तैत्तिरीय, ऐतरेय, छान्दोग्य तथा बृहदारण्यक आदि उपनिषदों में आत्मा, ब्रह्म, जगत्, कर्म, ज्ञान, सत्य, संयम एवं मोक्ष जैसे विषयों का गहन दार्शनिक विवेचन प्राप्त होता है। उपनिषद् मनुष्य को बाह्य भौतिक उपलब्धियों के साथ आन्तरिक चेतना, आत्मानुसन्धान, विवेक तथा आत्मसंयम की ओर उन्मुख करते हैं। वर्तमान समय में भौतिकतावाद, मानसिक तनाव, नैतिक संकट तथा मूल्य-स्खलन जैसी समस्याओं के समाधान की दृष्टि से उपनिषदों की शिक्षाएँ अत्यन्त प्रासंगिक हैं।

कुरआन इस्लामी ज्ञान-परम्परा का प्रमुख पवित्र ग्रन्थ है, जिसमें एकेश्वरवाद के साथ सत्य, न्याय, करुणा, दया, मानव-मर्यादा, सदाचार, उत्तरदायित्व तथा सामाजिक न्याय जैसे मूल्यों को महत्त्व प्रदान किया गया है। कुरआन मनुष्य को सत्यनिष्ठ एवं उत्तरदायी जीवन जीने तथा अन्याय, अहंकार और शोषण से दूर रहने की प्रेरणा देता है। वर्तमान बहुधार्मिक एवं बहुसांस्कृतिक समाज में कुरआन में निहित नैतिक एवं मानवीय मूल्यों का अध्ययन पारस्परिक सम्मान, संवाद तथा सह-अस्तित्व की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है।

प्रस्तुत शोध का उद्देश्य प्रमुख उपनिषदों एवं कुरआन में प्रतिपादित ज्ञान, नैतिकता, आत्मानुशासन, मानव-मर्यादा, सामाजिक उत्तरदायित्व तथा लोककल्याण की अवधारणाओं का तुलनात्मक एवं विश्लेषणात्मक अध्ययन करना है। यह अध्ययन किसी धार्मिक परम्परा की श्रेष्ठता निर्धारित करने के स्थान पर दोनों परम्पराओं के विशिष्ट ज्ञान-स्रोतों एवं मानवीय मूल्यों को समझने का प्रयास करता है। समकालीन वैश्विक परिप्रेक्ष्य में इन ग्रन्थों की प्रासंगिकता नैतिक चेतना, मानवीय संवेदना, सामाजिक समरसता तथा शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व के लिए विशेष रूप से विचारणीय है।

From Guṇa-Conditioning to Guṇātīta: Ethical Transformation and Self-Regulation in the Bhagavad Gītā

Ansul Agarwal

The Bhagavad Gītā presents human beings as shaped by the three guṇas of prakṛti—sattva, rajas, and tamas. This raises a central question concerning ethical development: if human thought and action are conditioned by the guṇas, how is meaningful transformation possible? Does ethical development involve cultivating sattva, or does the Gītā ultimately point toward a condition beyond the guṇas themselves?

This paper argues that the Gītā's account of ethical transformation cannot be reduced to the cultivation or maximization of a particular guṇa. Instead, it describes a process through which a person learns to regulate their relationship with guṇa-conditioned tendencies, gradually transforming how they respond to action, experience, and circumstance. The culmination of this process is represented by the figure of the guṇātīta, one who has gone beyond the guṇas.

The argument draws on six textual clusters: guṇa-conditioning in Bhagavad Gītā 14.5-18; the sthitaprajña in 2.54-72; action and agency in 3.27–35; equanimity and prasāda in 2.47-48 and 2.64-65; daivī sampad in 16.1-5; and guṇātīta in 14.19-27. These passages are brought together to reconstruct a conceptual architecture of ethical transformation.

The paper distinguishes three dimensions of this process: Disposition, the guṇa-conditioned tendencies that shape the person; Regulation, the way those tendencies are engaged through yoga, discernment, and equanimity; and Character, reflected in the stability of the sthitaprajña and qualities associated with daivī sampad. Sanskrit concepts, including samatva, vairāgya, dama, dhṛti, and mārdavam, are examined within their textual contexts.

The paper thus understands ethical transformation in the Gītā not as guṇa optimization, but as a movement from conditioned disposition through disciplined regulation toward transformed character and, ultimately, transcendence of the guṇas.

Keywords: Bhagavad Gītā; Guṇa; Guṇātīta; Ethical Transformation; Self-Regulation; Sthitaprajña; Daivī Sampad

ऋतम्भराप्रज्ञा , यौगिकज्ञानपरम्परायां ज्ञानप्रक्रियायाश्च वैशिष्ट्यम्

डॉ.सुबोधशुक्लः

भारतीयज्ञानपरम्परायां "प्रज्ञा" इति पदं केवलं बौद्धिकज्ञानस्य वा सूचनासञ्चयस्य पर्यायः नास्ति। पातञ्जलयोगदर्शने प्रज्ञा चित्तस्य विशिष्टपरिष्कारात् उद्भवमानं ज्ञानस्वरूपम् अस्ति। योगसूत्रस्य प्रथमपादे समाधिप्रक्रियायाः सूक्ष्मीकरणक्रमे निर्वितर्कसमापत्तिः, निर्विचारसमापत्तिः, अध्यात्मप्रसादः इत्यादीनां सोपानानन्तरं पतञ्जलिः उद्घोषयति— "ऋतम्भरा तत्र प्रज्ञा" (योगसूत्रम् १.४८)। तदनन्तरं सः अस्याः प्रज्ञायाः वैशिष्ट्यं प्रतिपादयति— "श्रुतानुमानप्रज्ञाभ्यामन्यविषया विशेषार्थत्वात्" (योगसूत्रम् १.४९)

अस्य अनुसन्धानस्य प्रमुखप्रतिपाद्यं यत् ऋतम्भरा प्रज्ञा यौगिकज्ञानपरम्परायां ज्ञानस्य केवलं नवीनस्रोतः न, अपि तु चित्तस्य संस्कारजन्य-विक्षेपान् अतिक्रम्य वस्तुतत्त्वस्य विशिष्टावबोधं प्राप्तुं प्रयुज्यमानः परिष्कृतः ज्ञानमार्गः इति। अस्यां प्रक्रियायां ज्ञानं श्रवण, पठन, तर्क, अनुमान वा केवलं न भवति; अपि तु साधना, ध्यान, समाधि, चित्तशुद्धि तथा प्रत्यक्षानुभूतेः समन्वयेन ज्ञानस्य अन्तरीकरणं भवति।

अत्र ऋतम् इति सत्यं, यथार्थता वा विश्वव्यवस्थायाः नियामकं तत्त्वं; भर इति धारणम्; प्रज्ञा इति विशिष्टज्ञानशक्तिः— इति व्युत्पत्तिपरकः अर्थः ग्राह्यः। व्यासभाष्ये च अस्यां प्रज्ञायां "सत्यमेव" धार्यते, विपर्ययस्य गन्धोऽपि न भवतीति प्रतिपादनं दृश्यते ।

अतः ऋतम्भरा प्रज्ञा भारतीययोगपरम्परायां ज्ञानम् → अन्तर्दर्शनम् → आत्मपरिष्कारः → विवेकः → रूपान्तरणम् इत्यस्य समग्रज्ञानमॉडलस्य प्रतिनिधिरूपेण अवगन्तुं शक्यते। अस्य अनुसन्धानपत्रस्य उद्देश्यं तस्य ज्ञानमॉडलस्य दार्शनिकं, मनोवैज्ञानिकं, साधनात्मकं तथा समकालीनज्ञानविमर्शसम्बद्धं स्वरूपं विवेचितुम् अस्ति।

बीजशब्दाः : ऋतम्भरा प्रज्ञा, योगदर्शनम्, पातञ्जलयोगसूत्रम्, निर्विचारसमाधिः, प्रज्ञा, ऋतम्, चित्तम्, ज्ञानमीमांसा, समाधिः, विवेकः, यौगिकज्ञानम्।

Birds Inspired Yoga Asanas: An Exploration of Their Philosophical and Cultural Significance in Indian Knowledge Systems: A Review

Romesh Kumar Sharma

Indian Knowledge Systems (IKS) encompass a rich body of traditional knowledge concerning the relationship between human beings, nature, body, mind and consciousness. Within the yogic tradition, several Asanas are named after birds and reflect their distinctive postures, movements, qualities and symbolic meanings. Asanas such as **Garudāsana (Eagle Pose), Mayūrāsana (Peacock Pose), Bakāsana (Crane Pose), Kākāsana (Crow Pose), and Haṃsāsana (Swan Pose)** demonstrate the influence of the natural world on yogic practice. This study explores the philosophical and cultural significance of bird inspired Asanas within the broader framework of Indian Knowledge Systems. The research examines the relationship between the physical characteristics of birds and the design and symbolism of these Asanas, while also investigating their representation in Indian mythology, philosophy and traditional literature. Particular attention is given to concepts such as **balance, concentration, strength, freedom, transformation, awareness and harmony with nature**. The study further considers how bird symbolism contributes to understanding the yogic view of the interconnectedness of humans and the natural environment. The study highlights the potential relevance of these traditional perspectives for contemporary Yoga education and the preservation and interpretation of Indian Knowledge Systems.

Keywords: Indian Knowledge Systems, Yoga, Asana, Birds, Indian Philosophy, Cultural Heritage, Yogic Tradition etc.

Association Between Hand Grip Strength and Spatial Memory in Healthy Adults

Priyanka Rathore, Satyam Tiwari

Hand grip strength is an important indicator of muscular strength and physical fitness, while spatial memory represents an important aspect of cognitive functioning. Yoga incorporates physical activity, concentration, and mental awareness and may therefore be associated with both physical and cognitive performance. The present study aimed to investigate the association between hand grip strength and spatial memory in healthy adults, with additional consideration of the relationship between weekly time spent in yoga practice and hand grip strength. A correlational study was conducted among 30 healthy adults. Hand grip strength was assessed for both right and left hands through repeated measurements, while spatial memory was evaluated using a task measuring completion time and errors. Information regarding the frequency and duration of yoga practice was collected to estimate total weekly practice time. Pearson's correlation coefficient was used to examine the associations among the variables. The results showed a negligible correlation between combined average hand grip strength and spatial memory completion time ($r = 0.025$, $p = 0.894$). Right-hand grip strength showed a negligible negative correlation ($r = -0.040$, $p = 0.832$), whereas left-hand grip strength showed a weak positive correlation ($r = 0.114$, $p = 0.548$) with

spatial memory completion time. Weekly yoga practice time demonstrated a weak negative correlation with combined average hand grip strength ($r = -0.329$, $p = 0.076$). None of the observed correlations reached statistical significance. The findings suggest that hand grip strength was not significantly associated with spatial memory performance in the studied sample. Similarly, weekly yoga practice time was not significantly associated with hand grip strength. Further research involving larger samples and consideration of yoga intensity, duration, and other physical and cognitive factors may provide greater insight into these relationships.

Keywords: Hand grip strength; spatial memory; yoga practice; healthy adults; muscular strength; cognitive function; correlation.

Traditional Wisdom, Modern Resilience: Predicting and Mitigating Disasters

Dr Sangeeta Singh

The increasing frequency and intensity of natural hazards highlight the need for disaster risk reduction strategies that are locally informed, inclusive, and effective. This paper examines how Indigenous knowledge systems—developed through generations of observation, experience, and interaction with specific environments—can contribute to disaster prediction, preparedness, mitigation, response, and recovery. Using a literature-based methodology, the study reviews research and documented examples from Indigenous communities across Asia, North America, Australia, Europe, and South America.

The analysis considers traditional indicators associated with weather patterns, including cloud formations, wind direction, humidity, and atmospheric changes; unusual animal behavior linked to storms, earthquakes, and tsunamis; and changes in plants that may signal drought, rainfall, or seasonal shifts. It also examines local flood-forecasting practices based on river levels, water speed and color, rainfall, soil saturation, and animal movement. In some communities, celestial observations also inform expectations of seasonal weather. These indicators reflect detailed, place-based knowledge that may provide useful warnings, particularly in remote areas where formal monitoring and communication systems are limited.

The paper recognizes that Indigenous knowledge is diverse, context-specific, and often transmitted orally. Its integration into formal disaster management can be hindered by limited institutional recognition, language and cultural barriers, challenges in documentation and validation, and concerns about intellectual property and community rights. The study therefore argues for collaboration rather than the replacement of one knowledge system by another. Respectful partnerships among Indigenous communities, scientists, and disaster-management authorities can combine local observations with scientific monitoring to strengthen early-warning systems and develop culturally appropriate preparedness and mitigation measure

The paper concludes that recognizing Indigenous knowledge and supporting community-led participation can enhance disaster risk reduction and resilience. Such efforts should protect communities' rights, respect cultural protocols, and ensure that knowledge is used with their consent and involvement.

Keywords: Indigenous Knowledge, Disaster Prediction, Disaster Mitigation, Environmental Indicators, Disaster Risk Reduction, Community Resilience.

व्यायाम और इसके मनोवैज्ञानिक लाभ

Dr. Suresh chandra gupta

मनुष्य का शरीर मांसपेशियों से बनी एक प्रकार की मशीन है। हम यदि इसका ठीक प्रकार से प्रयोग न करें तो जीवनशक्ति का ह्रास होता है।आलस्य में समय बिताने से मांसपेशियाँ शिथिल पड जाती हैं। परिणामतः स्वास्थ्य के मूल पेट में कब्ज,कोष्ठबद्धता आदि विकार उत्पन्न हो जाते है और स्वास्थ्य तेजी से गिरने लगता है। इस शक्ति की प्राप्ति करने और शिथिलता को दूर करने के लिये किसी न किसी व्यायाम की आवश्यकता अनिवार्य रूप से होती है।

जीवनरक्षा और शक्तिसंतुलन के लिये आहार जिस प्रकार आवश्यक है उसी प्रकार स्वास्थ्य संरक्षण के लिये नियमित व्यायाम भी अत्यावश्यक है। मशीन में खरीद चढाने से जिस प्रकार उसकी जंग छूट जाती है उसी प्रकार शरीर के दूषित मल विकार नियमित व्यायाम से शिथिल पड जाते हैं और पसीने के रूप में बाहर निकल जाते हैं। चरकसंहिता में व्यायाम की आवश्यकता बतलाते हुए लिखा है कि-

''शरीरचेष्टाया चेष्टा स्थैर्याबलवर्धिनी।''

देहव्यायामसंख्याता माभयातां समाचरेत्।''

अर्थात् व्यायाम से शरीर की शक्ति स्थिर रहती है और बल बढता है।

उपनिषदों में शांति-दृष्टि एवं मानवीय मूल्य : समकालीन प्रासंगिकता

कु आरुषि, डॉ. सांवर सिंह यादव

वर्तमान समय में विश्व हिंसा, संघर्ष, असहिष्णुता, भेदभाव, तनाव एवं सामाजिक विघटन जैसी अनेक चुनौतियों का सामना कर रहा है। ऐसी परिस्थितियों में स्थायी शांति की स्थापना के लिए केवल बाह्य व्यवस्थाओं के साथ-साथ मानवीय मूल्यों एवं आंतरिक चेतना के विकास की भी आवश्यकता है। भारतीय दार्शनिक परंपरा में उपनिषद् मानव जीवन, आत्मबोध, समत्व, सह-अस्तित्व एवं समग्र कल्याण की व्यापक दृष्टि प्रस्तुत करते हैं (Olivelle, 1998)। उपनिषदों में शांति की अवधारणा व्यक्ति के आंतरिक संतुलन से आरम्भ होकर व्यापक अस्तित्व के साथ सामंजस्य तक विस्तृत होती है। प्रस्तुत शोध-पत्र का उद्देश्य उपनिषदों में निहित शांति-दृष्टि एवं मानवीय मूल्यों का विश्लेषण करते हुए उनकी समकालीन प्रासंगिकता को स्पष्ट करना है। अध्ययन में सत्य, आत्मसंयम, करुणा, समता, सह-अस्तित्व, परस्पर सम्मान एवं विश्वबंधुत्व जैसे मूल्यों को शांति की आधारभूमि के रूप में विवेचित किया गया है। ईशावास्योपनिषद् के "ईशावास्यमिदं सर्वम्" (ईशावास्योपनिषद्, 1) तथा उपनिषदों में प्रयुक्त शान्ति-मंत्रों की परंपरा के माध्यम से समग्रता एवं शांति की भावना को समझने का प्रयास किया गया है। उपनिषदों की शांति-दृष्टि केवल बाह्य संघर्ष की अनुपस्थिति तक सीमित न होकर व्यक्ति के आत्मबोध, मानसिक संतुलन तथा समस्त अस्तित्व के साथ सामंजस्य से संबंधित है। इस दृष्टि से उपनिषदों में प्रतिपादित मानवीय मूल्य व्यक्ति के आंतरिक विकास के साथ सामाजिक समरसता एवं वैश्विक शांति के लिए भी महत्वपूर्ण आधार प्रदान करते हैं। प्रस्तुत अध्ययन वर्णनात्मक एवं विश्लेषणात्मक पद्धति पर आधारित है तथा इसमें चयनित उपनिषदों के मूल पाठ एवं प्रामाणिक द्वितीयक स्रोतों का अध्ययन किया गया है। अध्ययन से यह प्रतिपादित होता है कि उपनिषदों की शांति-दृष्टि एवं मानवीय मूल्य समकालीन विश्व में सह-अस्तित्व, समरसता एवं वैश्विक कल्याण की भावना को सुदृढ़ करने में महत्वपूर्ण दार्शनिक आधार प्रदान कर सकते हैं।

मुख्य शब्द: शांति-दृष्टि, मानवीय मूल्य, विश्व शांति, सह-अस्तित्व, आत्म–संयम, त्याग, समकालीन प्रासंगिकता।

Application of navyanyāya in contemporary scientific terminology and definitions

Kaiwalya Sharma

Navya-Nyāya is a school of Indian philosophy and logic that represents a later development of the Nyāya school, one of the six (ṣaḍdarśanas) orthodox systems of Indian philosophy. It is known for its systematic approach to logic and, more importantly for this study, its framework of precise language, which seeks to minimise ambiguity. Navya-Nyāya is characterised by an extensive technical metalanguage and rigorous methods of logical and epistemological analysis, employing

technical concepts to specify relations, delimit the scope of attributes, and analyse the conditions of valid cognition.

This study explores the importance of unambiguous, articulate, and precise language in various scientific disciplines and examines how Navya-Nyāya may contribute to this endeavour. It discusses the technical concepts employed in its metalanguage, such as avacchedaka (delimitor), avacchedakatā (the relation of delimitation), viśeṣaṇatā (the relation of being a qualifier), and saṃsarga (relation or connection). The study develops its argument through textual references and examples drawn from works such as Tattvacintāmaṇi and Navya-Nyāyabhāṣāpradīpa, comparing the analytical framework of Navya-Nyāya with approaches to definition and terminology found in Greek and Latin intellectual traditions.

The study also examines the potential value of developing indigenous intellectual systems for contemporary research and development, both within scientific disciplines and beyond them. It considers the possible limitations of relying exclusively on Western frameworks and explores the psychological and intellectual significance of engaging with indigenous systems of knowledge. In doing so, it seeks to highlight the sophistication of Indian philosophical traditions and their continuing relevance to contemporary intellectual inquiry.

The aim of this study is to demonstrate the potential of Navya-Nyāya to contribute to the formulation and refinement of scientific terminology and definitions. It further seeks to explore how engaging with indigenous philosophical frameworks may facilitate the development of an Indian perspective on scientific inquiry, while contributing to intellectual self-reliance and a stronger awareness of civilisational continuity.

Indian Knowledge Systems and Wellness Product Development: A Conceptual Framework Integrating the Yamas and Niyamas of Ashtanga Yoga, the Buddhist Five Precepts, and Retreat Experience Design

Ingole Kalyani Sureshbhai, Dr. Babita Yadav

Wellness tourism is moving from stand-alone treatments towards integrated, values-based experiences, yet retreat design rarely asks how guests conduct themselves beyond the techniques on offer. Patanjali's Ashtanga Yoga and Buddhism both place ethical conduct before or alongside contemplative training, which prompts the question of whether ethical and behavioural reflection can strengthen retreat design. The literature on wellness tourism, the yamas and niyamas, and the Buddhist Five Precepts holds that dishonesty or harming others can leave the mind restless, while wholesome conduct supports inner calm; empirical evidence is limited and mostly correlational. This integrative literature review used a targeted search to build a core corpus of 12 empirical, conceptual and doctrinal sources, supplemented by further studies and theory. Sources were graded into four evidence tiers and synthesised thematically. The synthesis yields a conceptual framework of eight dimensions of retreat product development: physical restoration, mental restoration, nature and sensory engagement, social connection, creative participation, healthy lifestyle, technology relationship, and values and daily ethical reflection. Limited cross-sectional evidence, mainly from Thailand, suggests that ethical conduct combined with contemplative practice is associated with better psychological outcomes than contemplative practice alone, and benefits appear to fade without reinforcement. The study therefore proposes a daily values and behavioural-reflection session, grounded in Indian Knowledge Systems, as an essential component of a foundation-stage retreat design. The framework is conceptual and awaits empirical validation.

Keywords: *Indian Knowledge Systems; Ashtanga Yoga; Yama and Niyama; Buddhist Five Precepts (Pancasila); retreat product development; wellness tourism; ethical and behavioural reflection*

The evolution of sword in ancient India

A K Singh, Dr. Mayank Agarwal, Anoop Kumar, Arunav Agarwal , Aman Singh

The evolution of the sword in ancient India reflects the changing possibilities of metallurgy and the growing demands of warfare. This paper examines that process in ancient India through archaeological, metallurgical, physical, and literary evidence. It follows the development of cutting weapons from stone and copper through bronze and iron, showing how improvements in alloying, smelting, forging, and heat treatment gradually enabled stronger and more versatile blades. Archaeological examples from Harappan, Copper Hoard, Iron Age, and South Indian megalithic contexts provide the material basis for this reconstruction, while metallurgical analysis of the Thelunganur sword provides evidence for the early use of high-carbon steel in a functional blade. The study also examines literary evidence, particularly the Arthashastra, to understand contemporary descriptions and classifications of swords and other weapons. By bringing these sources together, the paper explores not only how sword materials changed, but also how metallurgy, blade design, physical properties, and warfare influenced one another. The study therefore presents sword evolution as a technological process shaped by both material possibilities and practical military requirements.

Keywords: Ancient Indian swords; Sword evolution; Archaeometallurgy; Iron and steel technology; Blade morphology; Blade design Metallurgical development; Warfare; *Arthaśāstra*.

Translating Classical Indian Hospitality Ethics (Atithi Devo Bhava) into Service Quality and Host-Guest Relationships

Aashita , Dr. Ritwik Sahai Bisariya

If you visit any popular tourist spot today, you can easily see how much travel has changed, with traditional warm exchanges between travelers and local hosts largely turning into fast-paced business transactions (Rahaman & Chattopadhyay, 2025). Tourism managers today are under immense pressure to focus heavily on marketing numbers, visitor counts, and revenue generation, often offering little regard for human connection (Dimanche & Andrades, 2024; Skandrani & Kamoun, 2017). When travel becomes purely transactional, it creates friction, misunderstandings, and a sense of alienation between locals and visitors (Kumar et al., 2023). To address this missing human connection, researchers are looking back at timeless traditional values (Rahaman & Chattopadhyay, 2025). One of the most powerful concepts available is the classical Indian teaching, “Atithi Devo Bhava” (The guest is equivalent to God) (Singh, 2022). Rather than treating a tourist merely as a customer to overcharge, this ancient wisdom teaches hosting as a meaningful duty built on mutual respect and genuine care (Rahaman & Chattopadhyay, 2025). This paper recontextualizes the classical Indian hospitality ethic of Atithi Devo Bhava within contemporary tourism service quality and host-guest relationships. Adopting a qualitative and conceptual methodology, the study interprets classical textual sources and bridges them with modern literature on hospitality management and destination ethics. The paper argues that service quality should be understood not as a mechanical checklist of standard operating procedures, but as a broader system of moral responsibility, empathy, and cultural engagement. On this basis, a conceptual framework is proposed wherein ancient hosting ethics serve as practical tools for modern destination

management. The paper concludes that the future of cultural tourism benefits significantly from blending traditional ethical values with modern service frameworks.

Keywords: Atithi Devo Bhava, hospitality ethics, service quality, host-guest relationships, cultural tourism, Indian Knowledge Systems, destination management.

The Philosophical Foundation of Yoga Science in Indian Knowledge Systems for Contemporary World Peace:

Basant Malik, Prof. (Dr.) Omnarayan Tiwari

The contemporary world faces interconnected challenges of geopolitical conflict, ideological polarization, social fragmentation, ecological degradation, and declining psychological well-being. Conventional approaches to peacebuilding primarily emphasize diplomacy, political institutions, legal mechanisms, economic cooperation, and security arrangements. While these mechanisms remain essential, they often focus on external structures of conflict and give comparatively less attention to the psychological processes through which fear, aggression, attachment, intolerance, and violence emerge. This paper examines the philosophical foundations of Yoga Science within Indian Knowledge Systems (IKS) and explores their relevance to contemporary peacebuilding. Drawing on Sāṃkhya, Patañjali's Yoga Sutras, and perspectives associated with Advaita Vedānta, the paper conceptualizes peace as more than the absence of violence, emphasizing inner stability, ethical conduct, relational harmony, and recognition of interconnectedness. Patañjali's definition, Yogaś citta-vṛtti-nirodhaḥ (Yoga Sutra 1.2), places the regulation of mental fluctuations at the centre of yogic practice. The analysis further examines the kleśas - avidyā, asmitā, rāga, dveṣa, and abhiniveśa—and the eightfold path of Aṣṭāṅga Yoga, particularly the ethical principles of yama and niyama. Concepts such as ahiṃsā (non-harming), satya (truthfulness), aparigraha (non-possessiveness), santoṣa (contentment), and svādhyāya (self-study) are considered in relation to conflict transformation, peace education, ecological responsibility, and social-emotional well-being. The paper also considers contemporary research on yoga and mindfulness while acknowledging the limitations of existing empirical evidence. It argues that Yoga Science should not be viewed as a substitute for political or institutional peacebuilding, but as a complementary framework for cultivating self-regulation, ethical responsibility, compassion, and reflective awareness. In this integrated perspective, the ideal of Vasudhaiva Kuṭumbakam provides a broader philosophical orientation toward global interconnectedness and sustainable peace.

Keywords: Indian Knowledge Systems, Yoga Science, Patañjali Yoga Sutras, peacebuilding, ahiṃsā, Sāṃkhya, consciousness, meditation, ethical education, Vasudhaiva Kuṭumbakam.

Sacred Groves as a Living Repository of the Indian Knowledge Systems

Debayan Sinha

Sacred Groves represent a distinctive expression of the Indian Knowledge Systems (IKS), integrating ecological knowledge, spiritual beliefs, community traditions, and biodiversity conservation. This study examines sacred groves as repositories of traditional knowledge through field-based research in the Bolpur sub-division of Birbhum district, West Bengal. Five principal sites– Goyal Para, Kasba, Shehalai, Shibrampur, and Boner Pukur Danga– were investigated, alongside comparative observations at Kankalitala, Kali Sayor, Chhatimtala, Sonajhuri Forest, and Ballavpur Danga. The methodology included field visits, direct observation, photographic documentation, consultations with local residents and priests, and examination of historical,

literary, and cultural materials. Findings revealed associations between sacred sites and village deities, ancestral beliefs, seasonal festivals, agricultural practices, and community rituals. The Banyan (*Ficus benghalensis*) and Sacred Fig (*Ficus religiosa*) hold particular cultural significance. Customary restrictions on removing leaves and branches demonstrate how religious beliefs can encourage tree protection and habitat conservation. Local communities play a vital role in preserving traditions and transmitting ecological values across generations. However, urbanisation and changing lifestyles threaten the continuity of these practices. The study highlights sacred groves as dynamic cultural institutions with continuing ecological relevance. Community-led conservation, systematic documentation, educational initiatives, and intergenerational knowledge transmission are essential for preserving this heritage and strengthening the contribution of IKS to biodiversity conservation and sustainable relationships with nature.

Keywords: Indian Knowledge Systems, Sacred Groves, Traditional Ecological Practices, Indigenous Knowledge, Biodiversity Conservation, Cultural Heritage.

Rasaśāstra and Rasauṣadhis: From Sacred Chemistry to Therapeutic Science

Mrs. Sreedevi Kasavajjhala,

Rasaśāstra, the science of minerals and metals within the Ayurvedic tradition, represents a distinctive pharmaceutical discipline that evolved from the broader concept of *Rasāyana*. Rooted in Vedic and classical sources, and reaching maturity in medieval and Tantric periods, Rasaśāstra integrates philosophical foundations with advanced chemical processes to achieve both *Lohavedha* (transmutation of metals) and *Dehavedha* (rejuvenation of the body, mind, and spirit).

This study examines the historical trajectory of Rasaśāstra, beginning with references in the *Atharvaveda*, *Caraka Saṃhitā*, *Suśruta Saṃhitā*, and *Arthaśāstra*, and culminating in specialized medieval treatises such as the *Rasaratna Samuccaya* and *Rasendra Cūḍāmaṇi*. The analysis highlights the categorization of rasadravyas into *maharasas*, *uparasas*, *dhātus*, *upadhātus*, *ratnas*, and *viṣas*, with mercury (*pārada*) universally recognized as the supreme rasa.

Pharmaceutical innovations such as *kajjāli*, *parpati*, *kupipakva rasāyana*, and *pottali* demonstrate the ingenuity of Rasaśāstra in reducing dosage, enhancing efficacy, and ensuring safety. The *Aṣṭādaśa Pārada Saṃskāras*—eighteen processes of mercury purification—are central to mitigating toxicity and achieving therapeutic potency. Rasauṣadhis, medicines prepared from rasadravyas, are emphasized for their superior efficacy in small doses, rapid absorption, and minimal side effects, making them suitable even for difficult-to-cure diseases.

The study also underscores the prerequisite role of *Pañcakarma* therapy in preparing the body for Rasauṣadhi administration, thereby maximizing benefits such as longevity, immunity, and enhanced intellectual capacity. The classification of Rasāyana therapies into *Kutipraveśika*, *Vātātapika*, *Kamya*, *Naimittika*, and *Ācāra* illustrates the holistic scope of this tradition, integrating pharmacology with lifestyle and ethical discipline.

Ultimately, Rasaśāstra emerges as both a sacred chemistry and a practical medical science, offering valuable insights for contemporary integrative medicine and highlighting the need for renewed research into its therapeutic potential.

Key Words: Rasaśāstra; Rasauṣadhi; Rasāyana; Āyurveda; Mercury; Rasakalpa; Pancakarma; Lohavedha; Dehavedha

भारतीय ज्ञान परम्परा में लोककल्याण एवं विश्वशान्ति की सार्वभौम संकल्पना

प्रो. प्रसून दत्त सिंह

भारतीय ज्ञान परम्परा मानवकल्याण, विश्वबन्धुत्व, सह-अस्तित्व, अहिंसा एवं शान्ति की उदात्त अवधारणाओं पर आधारित है। इसका मूल उद्देश्य केवल व्यक्ति के आध्यात्मिक उत्कर्ष तक सीमित नहीं है, अपितु सम्पूर्ण समाज तथा विश्व में समरसता, सद्भाव और कल्याण की स्थापना करना भी है। वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में युद्ध, आतंकवाद, धार्मिक एवं वैचारिक असहिष्णुता, हिंसा तथा पारस्परिक विद्वेष जैसी समस्याएँ विश्वशान्ति के समक्ष गम्भीर चुनौती प्रस्तुत कर रही हैं। ऐसी परिस्थितियों में भारतीय ज्ञान परम्परा में निहित शाश्वत जीवन-मूल्यों की प्रासंगिकता विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण हो जाती है।

प्रस्तुत शोधपत्र का उद्देश्य वैदिक वाङ्मय तथा संस्कृत साहित्य परम्परा में प्रतिपादित लोककल्याण एवं विश्वशान्ति की अवधारणाओं का विश्लेषण करना तथा समकालीन विश्व के सन्दर्भ में उनकी प्रासंगिकता का विवेचन करना है। ऋग्वेद का *"संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्"* मन्त्र सामूहिकता, संवाद और मानसिक एकात्मता का सन्देश देता है। इसी प्रकार यजुर्वेद का *"मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे"* भाव समस्त प्राणियों के प्रति मैत्रीपूर्ण दृष्टिकोण विकसित करने की प्रेरणा प्रदान करता है। उपनिषदों में सर्वभूतात्मभाव तथा भारतीय चिन्तन में 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की अवधारणा विश्वबन्धुत्व और सार्वभौमिक कल्याण की भावना को पुष्ट करती है। वर्तमान अध्ययन का मुख्य प्रतिपाद्य है कि लोककल्याण, पारस्परिक सौहार्द्र, सामाजिक समरसता तथा शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व के लिए एक महत्त्वपूर्ण दार्शनिक एवं नैतिक दृष्टिकोण प्रस्तुत करना।

मुख्य शब्द: भारतीय ज्ञान परम्परा, वैदिकवाङ्मय, लोककल्याण, विश्वशान्ति, विश्वबन्धुत्व, अहिंसा, सहिष्णुता।

भारतीयज्ञानपरम्परा तथा नैतिकमूल्यानि — एकमध्ययनम् ।

डॉ. गणंजय कहाळेकर

भारतीयज्ञानपरम्परा विश्वस्य प्राचीनतमा समृद्धा च ज्ञानपरम्परासु अन्यतमा अस्ति। अस्याः परम्परायाः वैशिष्ट्यं केवलं ज्ञानस्य सञ्चये निहितं नास्ति, अपितु मानवजीवनस्य सर्वाङ्गीणविकासे, चरित्रनिर्माणे, आत्मसंयमे, सामाजिकदायित्वबोधे, लोककल्याणे च निहितम् अस्ति। वेदेषु, उपनिषत्सु, रामायणे, महाभारते, भगवद्गीतायां, धर्मशास्त्रेषु तथा नीतिग्रन्थेषु सत्यस्य, अहिंसायाः, दयायाः, क्षमायाः, त्यागस्य, शौचस्य, अपरिग्रहस्य, कर्तव्यनिष्ठायाः, करुणायाः, लोकसङ्ग्रहस्य च नैतिकमूल्यानां विस्तरेण प्रतिपादनं दृश्यते।

भारतीयज्ञानपरम्परायां ज्ञानस्य उद्देश्यं केवलं बौद्धिकविकासः न, अपितु सदाचारसम्पन्नस्य, उत्तरदायित्वशीलस्य, कर्तव्यनिष्ठस्य च मानवस्य निर्माणम् अपि अस्ति। "सत्यं वद, धर्मं चर", "सर्वे भवन्तु सुखिनः" इत्यादयः आदर्शाः भारतीयसंस्कृतेः नैतिकदृष्टिकोणं स्पष्टतया प्रकाशयन्ति। प्रस्तुतशोधे भारतीयज्ञानपरम्परायां प्रतिपादितानां नैतिकमूल्यानां स्वरूपं, तेषां तात्त्विकाधारः, मानवजीवने सामाजिकजीवने च तेषां प्रभावः तथा वर्तमानकाले तेषां प्रासङ्गिकता इत्येतेषां विषयाणां विश्लेषणात्मकमध्ययनं क्रियते।

आधुनिकयुगे नैतिकमूल्यानां ह्रासः, सामाजिकविषमता, हिंसा, स्वार्थपरता, पर्यावरणसङ्कटं च मानवसमाजस्य प्रमुखाः समस्याः सन्ति। अस्मिन् सन्दर्भे अध्ययनान्ते वक्तुं शक्यते यत् भारतीयज्ञानपरम्परायाः मूल्याधिष्ठिता जीवनदृष्टिः मानवकल्याणाय, सामाजिकसमरसतायै तथा नैतिकपुनरुत्थानाय महत्त्वपूर्णा मार्गदर्शिका भवितुम् अर्हति।

ज्योतिषशास्त्रस्य वैज्ञानिकत्वम्

डॉ. दिवेशशर्मा

वेदेभ्यः निःसृतमिदं ज्योतिषशास्त्रं वैदिककालादारभ्य इदानीं यावद् स्वकीयं वैज्ञानिकत्वं विशिष्टत्वं च पदे-पदे स्फुटयति। भारतीयज्योतिषशास्त्रस्य वैज्ञानिकं स्वरूपमस्य उद्भवकालादेव स्वतः सिद्धयति। इदं तादृशमादर्शविज्ञानं यत् केनापि नियमविशेषेण चलितुं न बाधते अपितु प्रतिपदं दिग्दर्शनं कारयित्वा जीवनस्य सर्वविधानां सम्भाव्यमानानां

विघ्नानां शास्त्रोक्तनियमेन निवारणपूर्वकमभ्युदयमार्ग प्रस्फूटयति। परन्त्वेतस्योपयोगिता स्वतन्त्ररूपेण स्वेच्छोपरि निर्धारिताऽस्ति।

ऐतिहासिकदृष्ट्या समीक्ष्यते चेत् प्रचीनकाले द्विविधविज्ञानस्योपस्थितिरवलोक्यते। तत्र प्रथमायुर्विज्ञानम् द्वितीयञ्च ज्योतिर्विज्ञानमिति। तत्रायुर्विज्ञाने चिकित्साविषयाः ज्योतिर्विज्ञाने च अन्ये सर्वे वैज्ञानविषयकतथ्या आसन्। परन्त्वधुना सर्वेषां स्वतन्त्रशाखारूपेण पल्लवनं जातम्। प्रयोगसिद्धक्रमबद्ध-ज्ञानमेव विज्ञानमिति। अस्मिन् एकेन नियमेन प्रायशः एकरूपमेव फलमायाति। अत्रापि विषयभेदेनानेकोपभेदा उपलभ्यन्ते। गणितमस्मिनपरिहार्यरूपेण तिष्ठति यतो हि गणितप्रयोगयोः सहाय्येनैव विज्ञानस्य समग्रस्वरूपं सिद्धयति ।

भारतीयज्योतिषशास्त्रमपि प्राचीनतमं विज्ञानं गणितमूलकं प्रयोगमूलकञ्चास्ति गणितं विनाऽस्यापि स्वल्पमपि कार्यं न सिद्धयति, अतः सिद्धान्तशिरोमणौ भास्करेण ज्योतिषाध्ययनयोग्यता प्रतिपादयन् प्रोक्तं यत्- द्विविधिगणितमुक्तं व्यक्तमव्यक्तयुक्तम्, तदगमनवनिष्ठः शब्दशास्त्रे पठिष्ठः । यदि भवति तदेदं ज्योतिषं भूरिभेदं, प्रपठितुमधिकारी सोऽथवा नामधारी।।

The Epistemology of Folk Performance: Hurkiya Baul, Community Knowledge, and Cultural Memory in Kumaon

Dr. Shaifali Joshi

Hurkiya Baul is a traditional agrarian performance practice of the Kumaon Himalayas in Uttarakhand, embedded in the social, cultural, and agricultural life of local communities. Characterised by narrative singing, rhythmic musical accompaniment, performative movement, and collective participation, the tradition constitutes an important mode of preserving and transmitting community knowledge. This paper examines Hurkiya Baul through the lens of the epistemology of folk performance, arguing that its significance extends beyond its function as an artistic or recreational practice. As an orally transmitted and community-centred performance tradition, Hurkiya Baul serves as a repository of cultural memory, social values, ecological understanding, agrarian knowledge, and collective experience. The paper explores how knowledge is embodied, performed, remembered, and transmitted through songs and participatory performance, particularly in contexts where written forms of knowledge have historically had limited presence. Drawing upon performance studies and the conceptual framework of indigenous and Indian knowledge traditions, the study situates Hurkiya Baul as a dynamic epistemic practice in which performance becomes a medium of cultural continuity and community learning. It further examines the relationship between oral tradition, collective memory, and the social identity of Kumaoni communities. By conceptualising Hurkiya Baul as a form of performative knowledge rather than merely a folk-art tradition, the paper contributes to the broader discourse on indigenous epistemologies, intangible cultural heritage, and vernacular modes of knowledge transmission. It argues for the documentation and preservation of Hurkiya Baul as a living knowledge tradition whose continued practice sustains cultural memory and community identity amid rapid socio-economic and cultural transformation.

Keywords: Hurkiya Baul; Folk Performance; Indigenous Epistemology; Community Knowledge; Cultural Memory; Oral Tradition; Kumaon Himalayas; Indian Knowledge Systems.

Parallel Systems, Different Questions: Reconciling Classical Indian Taxonomies with Modern Biological Systematics

Sampada Walimbe

Modern biological taxonomy rests on the Linnaean system, which groups organisms by evolutionary relationship and treats classification as separate from human use. Classical Indian Knowledge System (IKS) texts also classified and named the plant (*sthāvara*) and animal (*jaṅgama*) worlds, describing each organism through its name (*nāma*), form (*rūpa*) and properties (*guṇa*). This paper does not treat these frameworks as rivals of modern taxonomy or as its primitive forerunners. It proposes that they are complementary, parallel systems. Modern taxonomy asks what an organism is related to; the classical Indian treatises ask what an organism does and how to recognise it in the field.

The paper compares the criteria used for plants and animals in the Vedic texts, the *Manusmṛti*, the Caraka and Suśruta Saṃhitās, Parāśara's *Vṛkṣāyurveda* and Haṃsadeva's *Mṛgapakṣiśāstra*. It assesses the *nāma-rūpa-guṇa* naming approach and its limits, and uses drug substitution (*pratinidhi dravya*) as a test case. It proposes a framework for integrating IKS into modern environmental education and pharmacognosy.

Keywords: Indian Knowledge System (IKS); plant taxonomy; animal classification; *Nāma-Rūpa guna*; *Vṛkṣāyurveda*; pharmacognosy; *Pratinidhi Dravya*

Textile as a Medium for Integrating Panch Mahabhuta in Vastu-Based Interior Spaces

Lakshita Bhatia, Ms. Paramjeet Kaur, Dr. Nikhilesh Sharma

In philosophical thought the Panch Mahabhuta - Earth, Water, Fire, Air and Space has long been a core concept. Vastu Shastra which in Indian's system of spatial planning offers guidance on arranging built environments in harmony with these natural forces and the people who occupy them. Textiles are a presence in interiors used for comfort or decoration. Do they have a deeper role? Can textiles actually carry the essence of the five elements within a space designed according to Vastu principles? This idea has not been widely examined in theory. This study looks into that possibility exploring how textile choices the materials, colours, textures, patterns and placement can help activate and express the five elements in interior design.

This research follows a conceptual and descriptive method. It works through a review of existing literature like writings on Vastu Shastra, the Panch Mahabhuta, textile materiality, sustainable interior design and traditional Indian knowledge systems. The aim is to examine how elemental philosophy, spatial organisation, textile characteristics, and interior environments connect with one another.

Based on the literature analysis, a conceptual framework is proposed that links textile properties with the five elements. Natural fibres and tactile surfaces can symbolically stand for Prithvi, flowing patterns and fluid textile forms can express Jala, warm colours and transformative dyeing techniques can express Agni, lightweight and breathable fabrics can represent Vayu, and sheer and translucent textiles can express Akasha. These associations are offered as interpretive design possibilities rather than fixed predictions of Vastu Shastra. The analysis also draws attention to how traditional textile practices and sustainable materials might be integrated into contemporary interior spaces.

The study positions textiles as a possible interface between elemental philosophy and interior design by pushing their role beyond decoration toward conceptual and spatial expression. By

connecting Vastu Shastra, Panch Mahabhuta and textile design, it lays a foundation for further interdisciplinary research into culturally rooted and environmentally conscious interiors.

Keywords: Panch Mahabhuta; Vastu Shastra; Textile Design; Interior Spaces; Sustainable Interior Design

Rhythmic Foundations of Indian Knowledge Systems: The Evolution of Sanskrit Prosody

Annie Negi

This extended research paper investigates the historical evolution of Sanskrit prosody (Chhandas) and its critical role in the preservation and transmission of Indian Knowledge Systems (IKS). As one of the six Vedangas, prosody provided the structural foundation for oral traditions long before written manuscripts. By tracing the development of meters from ancient Vedic texts (Akshara-chhandas) to classical Kavya literature (Varna-vritta and Matra-vritta), this research highlights how rhythmic structures ensure cultural continuity and prevent textual corruption (Skhalita). Furthermore, it deeply explores the mathematical precision of these meters, particularly Pingala's binary algorithms (Prastara, Nashtam, Uddishtam), and proposes that integrating these frameworks with modern Natural Language Processing (NLP) can significantly enhance pedagogical approaches to classical literature. The paper advocates for a digital pedagogical framework that bridges ancient linguistic science with contemporary computational studies.

Empa-Teach: Reimagining Maitrī and Karuṇā in AI-Enabled Education: An Indian Knowledge Systems Perspective

Sonali Aatrai, b Vanshika Beri

Empathy, compassion, and harmonious interpersonal relationships occupy an important place in Indian philosophical and educational traditions. Patañjali's *Yoga Sūtra* (1.33) describes the cultivation of *maitrī* (friendliness), *karuṇā* (compassion), *muditā* (gladness), and *upekṣā* (equanimity) as approaches associated with *citta-prasādanam*, or the clarification and serenity of the mind. Similarly, *Bhagavad Gītā* (12.13) characterizes *maitrī* and *karuṇā* as important qualities in human conduct. These perspectives provide a valuable conceptual foundation for examining empathy and compassionate interaction in contemporary educational environments.

The present study introduces EmpaTeach, a digital empathy-training framework developed for educators and students. The framework translates the broader principles of interpersonal sensitivity, compassion, reflection, and prosocial behaviour into a contemporary technology-mediated learning environment. EmpaTeach consists of AI-generated micro-videos, interactive activities, reflective exercises, an AI-based conversational interface, practical tasks, and formative assessments delivered through a modular web platform.

The study adopts an interdisciplinary conceptual approach connecting Indian Knowledge Systems with cognitive science, affective computing, and artificial intelligence in education. Rather than replacing traditional human-centred learning, the framework explores how responsible AI can facilitate reflection, perspective-taking, and compassionate interpersonal behaviour among learners and educators.

The proposed framework demonstrates a pathway through which classical Indian perspectives on *maitrī* and *karuṇā* can be meaningfully interpreted within contemporary educational technology.

EmpaTeach therefore offers a human-centred model for integrating Indian value-based perspectives with intelligent learning systems and contributes to the broader discourse on the relevance of India's knowledge traditions to emerging educational and technological contexts.

Keywords: Indian Knowledge Systems; Maitrī; Karuṇā; Empathy; Artificial Intelligence

Psychoeducation and Mindfulness for Stress: An Indian Heritage Approach to Happiness

Keerti, Dr. Vaishali Gaur

Stress is a major public health concern linked to anxiety, depression, burnout, and reduced well-being. Contemporary interventions often emphasize symptom reduction, giving less attention to positive outcomes such as happiness and psychological resilience. This paper examines psychoeducation and mindfulness as evidence-based approaches for enhancing happiness and resilience among individuals experiencing stress, within the Indian Knowledge System (IKS) framework and the theme of Culture and Heritage.

Psychoeducation offers structured information about the nature of stress, its physiological and psychological effects, and adaptive coping strategies, thereby increasing self-awareness, reducing stigma, and encouraging active participation in care. Mindfulness, defined as non-judgmental, present-moment awareness, has been shown to improve emotion regulation, attentional control, and stress tolerance. Its roots lie in Indian traditions such as yoga, Vipassana, and Vedantic philosophy. Concepts including *dhyana* (meditation), *sakshi bhava* (witness consciousness), *santosha* (contentment), and *swasthya* (holistic health) present happiness as an internal state cultivated through balance, awareness, and acceptance.

Drawing on existing literature, this paper integrates contemporary psychological findings with indigenous Indian perspectives to propose a combined intervention model. Psychoeducation builds cognitive understanding and motivation, while mindfulness fosters experiential awareness and emotional stability. Together, they are expected to strengthen resilience by improving adaptive coping, reducing perceived stress, and promoting sustained well-being. Grounding these practices in culturally familiar concepts and language may also improve their acceptability and long-term adherence among Indian clients. Such an approach also responds to the growing need for preventive, community-based mental health care.

The discussion highlights the value of reconnecting modern psychological practice with India’s intellectual and spiritual heritage, rather than treating traditional wisdom and scientific evidence as separate domains. Implications are considered for counselors, clinicians, educators, and policymakers seeking accessible, low-cost, and culturally sensitive mental health strategies. The paper concludes by recommending further empirical research to test culturally adapted psychoeducation and mindfulness programs across diverse populations.

Keywords: culture and heritage, happiness, Indian Knowledge System, mindfulness, psychoeducation, psychological resilience, stress

Norms of Sacrifice : A Study From IKS Perspectives

Prof. Niranjan Jena

As we know ‘Sacrifice’, **‘यज्ञ’** is the best *karma* among all *karmas* performed by human being. **“यज्ञ वै श्रेष्ठतमं कर्म”.** Considering the meaning of it, one may raise a question that what is good-*karma* which will be considered as *yajña-karma* or sacrifice. To answer this query, one has to know the real meaning of *yajña*, sacrifice as stated by our Śāstrakāras or Ācāryas in our *Śāstras*

or Vedas. Another term i.e. '*Paśu'* is applied in various sacrifices and rituals. What is the real sense of understating these terms in then society? Its relevance and significance in contemporary age. Sometimes it is very difficult to know, to define, to understand, to interpret and to analyse the exact meaning of the Vedic terms or words occurred in our Sanskrit literature right from Vedic to contemporary age. Moreover, to know the real sense or intension of the speaker or the Vedic seer in the context concerned is very difficult. Hence, its significance and relevance in the present day's society we need proper interpretation or analysis of the word and its meaning or the real intention of the seer or speaker so far its context is concerned. The term '*a-dhvara*' carries the meaning of sacrifice which is associated with the *Yajurveda* - the Veda mainly deals with various sacrifices, its formulas, applications so on so forth. If we think about the term '*a-dhvara*' (non-violence) for the word sacrifice then where is the question of killing animals in the sacrifice? Whether animals were supposed to be killed in the sacrifice or any other substitutable beings or objects were offered. In these controversial thoughts *yajña* has been misinterpreted. Looking at this transitional juncture, many speculations have been put forth by various thinkers, interpreters, Vedic commentators, scholars, social reformers both of the East and the West. Looking at these contexts I would like to a talk before you by focusing at "Norms of Sacrifice : A Study From IKS Perspectives" which shall be analysed.

Keywords: Norms, Sacrifice, IKS, Paśu

भारतीय संस्कृति में श्रीमद्भगवद्गीता एवं जीवन प्रबंधन

डॉ. राकेश कुमार

भारतीय संस्कृति ज्ञान, नैतिकता, आध्यात्मिकता, कर्तव्यबोध और जीवन-मूल्यों पर आधारित एक समृद्ध सांस्कृतिक परंपरा है। इस परंपरा में *श्रीमद्भगवद्गीता* का विशिष्ट स्थान है। गीता केवल धार्मिक ग्रंथ नहीं, बल्कि मानव जीवन को संतुलित, अनुशासित एवं उद्देश्यपूर्ण बनाने वाली जीवन-दृष्टि भी प्रस्तुत करती है। इसमें कर्मयोग, ज्ञानयोग, भक्तियोग, समत्व, आत्मसंयम और निष्काम कर्म जैसे सिद्धांत प्रतिपादित किए गए हैं।

गीता एवं जीवन प्रबंधन

वर्तमान युग में मनुष्य तनाव, प्रतिस्पर्धा, कार्य-दबाव, असफलता के भय और निर्णय-संबंधी चुनौतियों से प्रभावित है। ऐसी परिस्थितियों में गीता का कर्मयोग व्यक्ति को अपने कर्तव्य के प्रति निष्ठावान रहने की प्रेरणा देता है। "कर्मण्येवाधिकारस्ते" का सिद्धांत परिणाम की अत्यधिक चिंता से मुक्त होकर कर्म पर ध्यान केंद्रित करने का संदेश देता है। इसी प्रकार "समत्वं योग उच्यते" सफलता और असफलता दोनों में मानसिक संतुलन बनाए रखने की शिक्षा देता है।

आत्मसंयम एवं व्यक्तित्व विकास

गीता में मन और इंद्रियों के संयम को व्यक्तित्व-विकास का महत्त्वपूर्ण आधार माना गया है। स्थितप्रज्ञ व्यक्ति का आदर्श भावनात्मक संतुलन, विवेक, धैर्य और आत्मनियंत्रण का प्रतीक है। ये गुण आधुनिक जीवन में तनाव-प्रबंधन, निर्णय-क्षमता और सकारात्मक दृष्टिकोण के विकास में उपयोगी हो सकते हैं।

आधुनिक संदर्भ एवं उपसंहार

गीता के सिद्धांत शिक्षा, कार्यस्थल, नेतृत्व, सामाजिक जीवन तथा व्यक्तिगत विकास के संदर्भ में विचारणीय हैं। यह व्यक्ति को नैतिक आचरण, कर्तव्यनिष्ठा, आत्मसंयम और संतुलित दृष्टिकोण अपनाने की प्रेरणा देती है। अतः श्रीमद्भगवद्गीता भारतीय संस्कृति की अमूल्य धरोहर होने के साथ-साथ आधुनिक जीवन प्रबंधन के अध्ययन के लिए भी महत्त्वपूर्ण स्रोत है।

Grammatical Gender in Sanskrit: Historical and Socio-Cultural Perspectives

Saranya K

The classification of words according to grammatical gender (*liṅga*) occupies a significant place in the grammatical tradition of Sanskrit and raises important questions concerning the principles underlying the assignment of masculine, feminine, and neuter categories. This research article examines the foundations of gender classification in Sanskrit from an interdisciplinary perspective, with particular attention to grammatical rules, cultural context, social practices, and the historical evolution of the language. It traces the development of the concept of *liṅga* from the Vedic period to the Paninian grammatical tradition, investigating whether gender assignment was primarily determined by semantic, morphological, phonological, syntactic, or conventional factors. The study analyses the relationship between natural gender and grammatical gender, as well as the instances in which grammatical classification diverges from biological or social distinctions. Special attention is given to the formulations and principles reflected in the *Aṣṭādhyāyī* and the wider grammatical tradition, alongside evidence from Vedic and later Sanskrit usage. The article further explores how cultural perceptions, social roles, conceptual categories, and patterns of linguistic change may have influenced or interacted with grammatical classification. By bringing together grammatical, historical, and socio-cultural perspectives, the study seeks to demonstrate that Sanskrit gender classification cannot be understood solely as a system of formal grammatical rules, but must also be situated within the historical development and conceptual framework of Sanskrit. The research thus aims to provide a comprehensive account of the underlying principles of *liṅga*-classification and to illuminate the dynamic interaction between language, grammar, culture, and society in the evolution of Sanskrit.

Keywords: Sanskrit; Grammatical Gender; *Liṅga*; Gender Classification; Pāṇinian Grammar; Vedic Sanskrit; Sanskrit Grammar; Linguistic Evolution; Socio-Cultural Context; Historical Linguistics; Morphology; Language and Society.

Evolution of Astronomical Instruments from the Yantrādhyāya of Bhāskarācārya II to the Jantar Mantar of of Sawai Jai Singh II

Onkar Sharma, Prof. Vijendra Kumar Sharma

Astronomical Instruments and Observatories were a paradigm shift in the development of Astronomy in India. For more than a thousand years *Golayantra* (Armillary Sphere), *Śaṅku* (Gnomon) and *Ghaṭī / Toyayantra* (Clepsydra) were the primary observational instruments of Indian astronomers. After Brahmagupta, Lallacharya and Śrīpati; *Kartarī, Nalikā* and *Chakra-Yantra* were also added to the repertoire of Indian Astronomical Instruments. But "Bhāskarācārya II" changed the way in which observational tools were used in India. Where previous approach was to take lengths of shadows and manipulate them using different ratios of circles on Celestial sphere, Bhāskarācārya followed a much direct approach, where one could take observations directly from the instrument itself and minimizing the cumbersome mathematics. In "Yantrādhyāya" of "Siddhāntaśiromaṇi" he discusses a list of instruments, their composition and uses. More than five centuries later "Sawai Jai Singh II" built five astronomical observatories across India. These observatories named "Jantar Mantar", contained the first large scale masonry astronomical instruments in India. Jai Singh used all the resources domestic and foreign in order to make the observatories more accurate and precise for chronometry. This often leads to the notion that Indians borrowed all the instruments of Jantar Mantar from other astronomical cultures. Also, the fallacious belief that Indians had no knowledge of astronomical instruments prior to this. This paper focuses on comparing common instruments, analysing similar concepts

and tracking their evolution from the Yantrādhyāya of Bhaskara-II to Jantar Mantar of Jai Singh. "Chakra-Yantra" being the key instrument of Bhaskara becomes the foundation for "Krāntivṛtta Yantra" of Jai Singh and also being the first Indian instrument to measure celestial longitudes of heavenly bodies on ecliptic directly. This study reveals India's astronomical knowledge, challenging the myth of dependence on European and Arab sources.

Keywords: Indian Astronomical Observatory, Jantar Mantar, Bhāskarācārya II, Sawai Jai Singh-II, Chakra Yantra

श्रीमद्भगवद्गीता के माध्यम से योगिक-जीवनशैली द्वारा आत्म-साक्षात्कार

रवींद्र केदारनाथ पाटिल

Abstract

प्राचीन भारतीय सनातन वैदिक ग्रंथोंमे जैसे श्रीमद्भगवद्गीता में वर्णित श्लोकोंका श्रवण मनन निदिध्यासन करने पर मनुष्य स्वयं की खोज कर सकता है। स्वयं के आत्मस्वरूपका बोध होने पर दृश्य जगत में व्यवहार-स्वीकृति में दिव्यता सहजता से प्राप्त हो जाएगी। यहां दिव्यतायुक्त जीवन मानवीय वैश्विक समस्याओंका समाधान अवश्य कर सकता है साथ में संघर्षमय परिस्थितियोंको हटाकर शांतिपूर्ण जीवन जी सकता है। आधुनिक तंत्रप्रणाली के समयकाल में अलग अलग विक्षेपोंके कारन मनुष्य जीवन ही नहीं बल्कि सृष्टि में सभी घटकोंपर सूक्ष्मतम से असर दिखाई दे रहा है। श्रीमद्भगवद्गीता के माध्यम से दृष्टि में परिवर्तन लाकर मनुष्य अपने जीवन के अंतिम गंतव्योंको प्राप्त करने के लिए दृश्य जगत में प्रकृति के हर एक घटक को स्वयं में देखेगा "यथा पिंडे तथा ब्रह्माण्डे", उसी समय आत्मसाक्षात्कार की सीढ़ियां चढ़ चूका होगा। ऐसे प्रयास से फल में वसुधैव कुटुम्बकम के स्वप्न देखे जा सकते है।

मुख्य शब्द

भारतीय सनातन वैदिक परंपरा एवं शिक्षा, श्रीमद्भगवद्गीता, योगिक जीवनशैली, स्थितप्रज्ञ, द्रष्टा, दिव्यतायुक्त जीवन, आत्मसाक्षात्कार, मानवी जीवन मुल्य, वसुधैव कुटुम्बकम।

भारतीयाक्षरसङ्ख्यापद्धतिः

Dr. JAYAKRISHNAN NAMPOOTHIRI N D

भारतीयज्ञानपरम्परा वैदिकसाहित्यं विना न प्रभाविता भवति। वैदिकज्ञानस्य अवगमने आचरणे च क्लेशापगमनाय वेदाङ्गानि समुत्पन्नानि। तानि शिक्षाकल्पव्याकरणनिरुक्तछन्दज्योतिषानीति षट्। अपौरुषेयस्य वेदस्य षडङ्गेष्वन्यतमं वेदपुरुषस्य चक्षुरूपं स्थानमावहति ज्योतिश्शास्त्रम्। दिग्देशकालदर्शकं ज्योतिश्शास्त्रम् भुवं परितः राशिचक्रं कल्प्य, तस्मिन् ग्रहनक्षत्रादिज्योतिर्गोलानां स्थितिगत्यादीनवगम्य प्रवर्तते। कालान्तरे विकसितस्यास्य शास्त्रस्य फलभागः सिद्धान्तभागः इति द्विधा विभागः जातः। ततः त्रिस्कन्धाः सिद्धान्तसंहिताहोराः, अनन्तरं षडङ्गानि जातकप्रश्नमुहूर्तनिमित्तगोलगणितानि च आविर्भूतानि। ज्योतिश्शास्त्रे विद्यमानानां विषयाणां वैविद्ध्यकारणादेव एते विभागाः सम्भूताः। वेदोक्तकर्मणां कालनिर्धारणाय प्रवर्तते इत्यतः एव शास्त्रस्यास्य वेदाङ्गत्वम्। तथैव ज्योतिश्शास्त्रस्य कालविधानशास्त्रम् इति ख्यातिः वर्तते। तदेवं लगधमुनि स्वीयग्रन्थे दर्शयति-वेदा हि यज्ञार्थमभिप्रवृत्ताः कालानुपूर्व्या विहिताश्च यज्ञाः।

तस्मादिदं कालविधानशास्त्रं यो ज्योतिषं वेद स वेद यज्ञान्।।(वेदाङ्गज्योतिषम् 1-4)

अधुनातने काले फलादेश एव शास्त्रस्यास्य मुख्यं कर्म। तथापि ज्योतिश्शास्त्रस्य सिद्धान्तस्कन्धे अन्तर्भूतौ गणितगोलौ विना फलादेशायापेक्षिता स्फष्टग्रहस्थितिः न लभ्यते। गोलेन आनीतग्रहस्थितिः गणितद्वारा स्फुटीकृत्य एव फलादेशार्थं स्वीक्रियते। अतः गणितस्य अन्यतमं स्थानं शास्त्रेस्मिन् वर्तते।

ज्योतिश्शास्त्रफलं पुराणगणकैरादेश इत्युच्यते

नूनं लग्नबलाश्रितः पुनरयं तत् स्पष्टखेटाश्रयम्।

ते गोलाश्रयिणोऽन्तरेण गणितं गोलोऽपि न ज्ञायते

तस्माद्यो गणितं न वेत्ति स कथं गोलादिकं ज्ञास्यति।। (सिद्धान्तशिरोमणिः गोलप्रशंसा -6)

संस्कृतशास्त्रप्रपञ्चे अनेकविषयाणां बहुविस्तरेण चर्चा दृश्यते। तेषु गणितशास्त्रविषयविचारः ज्योतिश्शास्त्रे तथा शुल्बसूत्रे च अन्तर्भवति। ज्योतिश्शास्त्रे गणितविषयविचारे सङ्ख्याः सूचयितुम् अक्षरसङ्ख्यापद्धतिः उपयुज्यते। देशभेदेन कालभेदेन च तस्याः पद्धतेः विभागत्रयं दृश्यते। ताश्च कटपयादिपद्धतिः भूतसङ्ख्यापद्धतिः आर्यभटीयसङ्ख्यासम्प्रदायश्चेति। अमुं विषयं अस्मिन् शोधपत्रे उपस्थापयितुं प्रयतते।

जन्मज्ञानं ज्योतिश्शास्त्रानुसारेण सत्सन्तानविचारश्च ॥

Dr Girish M P

अस्मिन् शोधप्रबन्धे ज्योतिश्शास्त्रानुसारं षोडशसंस्कारेषु मुख्यस्य विवाहस्य, तदनन्तरं सत्सन्तानलब्ध्यै गर्भाधान-गर्भावस्थाविज्ञानादीनां च शास्त्रियविचारः क्रियते। सनातनधर्मे गर्भाधानात् आरभ्य विवाहपर्यन्तं षोडशसंस्काराः विहिताः सन्ति। तेषु विवाहः सर्वकर्माणां गृहस्थाश्रमस्य च मूलभूतमुत्पत्तिकर्म भवति।

अस्मिन् प्रबन्धे मनुस्मृत्युक्ताः अष्टविधविवाहाः, प्रश्नमार्गोक्ता पञ्चदशाधिक-अनुकूल्यचिन्ता, मुहूर्तपदव्यनुसारं शुभविवाहमुहूर्तनियमश्च सविस्तरं प्रतिपादिताः सन्ति। तदनन्तरं सत्सन्तानप्राप्तये आधानमुहूर्तस्य प्राधान्यं, बृहज्जातकानुसारं स्त्रीपुरुषसंयोगकालः, आधानकालिकग्रहस्थित्या शिशुशास्त्रीयलिङ्गनिर्णयश्च विचारिताः। तथैव गर्भाधानात् आरभ्य नवम-दशममासपर्यन्तं नवग्रहाणाम् आधिपत्ये जायमानाः कलल-घनाङ्कुराद्याः अष्टविध-गर्भावस्थाः, पुंसवन-सीमन्तादिसंस्काराणां वैज्ञानिकमहत्त्वम्, मासाधिपत्यानुसारं कर्तव्याः औषधप्रयोगाः जपविधयश्च अस्मिन् प्रबन्धे सुस्पष्टं निरूपिताः सन्ति।

कुञ्चिकापदानि (Keywords): षोडशसंस्कारः, विवाहः, शुभमुहूर्तः, गर्भाधानम्, गर्भावस्थाविज्ञानम्, सत्सन्तानम्, बृहज्जातकम्।

Psychological Transformation in Tragedy-- A comparative study of Dhuryodhana’s character in Bhasa’s Urubhanga and Modern psychoanalysis

Smt. Sumitha R.T

The great poet Mahakavi Bhasa’s “Urubhanga” is a remarkable and revolutionary tragedy in classical Sanskrit literature. It’s tragic ending is especially significant in the context of Bharata Muni’s Natyashastra, where tragic conclusions are generally not encouraged. In this play, Bhasa presents Duryodhana, the major antagonist of the Mahabharata, in a new and sympathetic light. Instead of portraying him merely as a cruel and ambitious villain, Bhasa presents him as a tragic hero with a complex inner life. After Bhima’s blow to his thighs leaves him helpless on the battlefield of Kurukshetra, Duryodhana experiences a deep emotional and psychological change.

This study examines the psychological transformation of Duryodhana by using selected ideas from modern psychological theories, particularly those of Sigmund Freud, Alfred Adler, Carl Jung, Carl Rogers, and Elisabeth Kübler-Ross. It explores how Duryodhana’s physical suffering leads him to confront his pride, jealousy, ambition, and sense of superiority. The study also examines how his suffering brings about self-awareness, emotional change, and a deeper understanding of his own life and actions. By analysing selected Sanskrit verses from Urubhanga along with their transliterations and translations, the paper attempts to show how Bhasa presents Duryodhana’s physical downfall as a turning point in his psychological and moral development. Thus, Urubhanga can be understood not only as a tragedy of physical defeat but also as a powerful portrayal of inner transformation and tragic human experience.

You are the divineness: A Closer look at Chapter 6 of Chandogya Upanishad

Dr. Thyagaraju Ponangi Hanumath

“A brahmin shall be called so by his propensity to perceive brahman; but not merely by family of his birth” is the powerful opening statement of the 6th chapter of ChhandOgya Upanishad (ChU-6, hereafter). It further allows us to overhear a conversation of father-son duo to logically come to

understand several thoughtful ideas. One idea is that the multitude objects can be reduced to smaller groups of objects by combining them by certain commonness. Such process of reduction into further smaller number of groups could go on for several iterations, and eventually arrive at one ultimate source, called *brahman*, the super creator. This may be called the '*principle of reduction*' used for postulating what is brahman. The opposite to this may be called the '*principle of expansion*', giving rise to huge varieties of entities in the creation. These both principles eloquently presented in ChU-6, would interestingly land us into a very profound hypothesis that that the core property of that same single point brahman is within each of us too, whether we are able to perceive it or not. This hypothesis, even after thousands of years, seems to still stand unrefuted; but indeed finds signs of validation in as many ways as there are spiritual thinkers and experiencers. Hence there is a wonderment in this. This wonderment is researched further and portrayed in this paper by re-summarizing the content of ChU-6 by the lens of current-day thinking of the author of this paper.

'वन्दे मातरम्': भारतीय ज्ञान परम्परा के आलोक में राष्ट्रगीत की शास्त्रीय मीमांसा

मुदित मित्तल

भारतीय ज्ञान परम्परा में 'राष्ट्र' एक 'जाग्रत देवता' और 'चिन्मय सत्ता' है। भारतवर्ष में भूमि और जन का सम्बन्ध सदैव 'मातृ-पुत्र' का रहा है। 19वीं सदी में महान् कवि बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय रचित 'वन्दे मातरम्' ने इसी चेतना को पुनर्जागृत किया। बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय प्रणीत 'वन्दे मातरम्' गीत भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का एक गीत मात्र न होकर, 'भारतीय ज्ञान परम्परा' की एक अविच्छिन्न दार्शनिक कड़ी है। प्रस्तुत शोधपत्र का मुख्य उद्देश्य भारतीय राष्ट्रगीत को प्रचलित राजनीतिक विमर्श से परे, उसके मौलिक आध्यात्मिक एवं शास्त्रीय अधिष्ठान पर पुन: स्थापित करना है।

इस अध्ययन में यह प्रतिपादित किया गया है कि 'वन्दे मातरम्' गीत वस्तुतः ऋग्वेद के 'श्रीसूक्त' एवं मार्कण्डेय पुराणान्तर्गत 'दुर्गासप्तशती' में वर्णित शक्ति-उपासना का ही युगीन रूपांतरण है। यह गीत कोई नवीन कल्पना न होकर, भारतीय ज्ञान परम्परा का वह अजस्र स्वर है जो वैदिक ऋचाओं से आरंभ होकर आज तक गुंजायमान है।

प्रस्तुत शोध में राष्ट्रगीत के सभी पदों का श्रीसूक्त की ऋचाओं और सप्तशती के मंत्रों के साथ तात्त्विक साम्य निरूपित किया गया है। वेद जिन्हें 'राष्ट्री' देवी कहते हैं, और जन जन जिन्हें भारत माता कहते हैं, 'वन्दे मातरम्' की वन्दनीय देवी वही हैं, वे देवीत्रयी महालक्ष्मी, महाकाली, महासरस्वती से अभिन्न हैं। राष्ट्रकवि बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय ने राष्ट्र को केवल एक भौगोलिक ईकाई न मानकर, देवी के इसी एकात्म विग्रह के रूप में प्रतिष्ठित किया है।

यह शोधपत्र सिद्ध करता है कि 'वन्दे मातरम्' भारतीय वांग्मय के 'सांस्कृतिक सातत्य' का प्रमाण है, जहाँ राष्ट्रभक्ति ईश्वरीय उपासना में अद्वैत भाव से अन्तर्भूत है। यह अध्ययन वेदों और पुराणों की दार्शनिक भूमि में आधुनिक राष्ट्रवाद की जड़ों को रेखांकित करता है, एवं भारतीय ज्ञान परम्परा की समग्र एवं समन्वित ज्ञान दृष्टि को प्रकट करता है।

कूट शब्द / Keywords:

वन्दे मातरम्; राष्ट्रगीत; श्रीसूक्त; दुर्गासप्तशती; भारतीय ज्ञान परम्परा;

Evidence-Grounded Verification of Indian Knowledge Claims - A Study

Akshay V Upasany, Rugved Deshpande, Prof. Raksha Sharma

The growing digital dissemination of Indian Knowledge Systems (IKS) like yoga, ayurveda, philisophy, jyotish, vastu through websites, social media, news platforms, and other sources highlights the need for systematic verification of claims against authentic knowledge sources. Such verification presents challenges, including domain-specific terminology, linguistic

complexity of classical Sanskrit texts, limited availability of claim-level annotated datasets, and the need for domain expertise. Existing research has advanced evidence-based claim verification, scientific evidence assessment, factuality evaluation, and hallucination detection. Complementary work on Indian-language resources and Sanskrit text processing provides relevant linguistic foundations. However, these approaches address distinct problems, motivating further investigation into the verification of Indian Knowledge Claims against authentic IKS sources. This study examines the research gaps in this area and proposes a conceptual framework for evidence-grounded verification of Indian Knowledge Claims. The framework envisages decomposing complex statements into atomic claims where necessary, identifying appropriate IKS sources, retrieving relevant textual passages, and assessing the relationship between claims and available evidence. Proposed verification outcomes include supported, contradicted, and insufficient evidence, accompanied by source references, relevant passages, and explanatory rationales. The approach emphasises source authenticity, evidence relevance, and careful interpretation of textual passages rather than relying solely on the linguistic plausibility of a claim. The study also outlines a potential direction for developing a claim-level benchmark dataset linking claims to relevant passages from authentic IKS sources, together with verification labels and explanatory rationales. Future work would involve identifying suitable claims and source collections, establishing annotation procedures, and evaluating the proposed framework through classification performance, evidence-retrieval effectiveness, and expert assessment of source authenticity and interpretation accuracy. By distinguishing insufficient textual evidence from evidence that contradicts a claim, the proposed approach aims to support transparent and interpretable verification of Indian Knowledge Claims while providing a conceptual foundation for subsequent dataset development, implementation, and empirical evaluation.

'न हि मानुषात् श्रेष्ठतरं हि किञ्चित्'कृत्रिम बुद्धिमत्ता का युग और मानवीय विवेक भारतीय ज्ञान परम्परा के आलोक में

रंजना प्रजापति

भारतीय सनातन ज्ञान परम्परा में मानव जाति को सृष्टि की सर्वोत्तम कृति बताया गया है। मानवीय मेधा, तत्त्व साक्षात्कारिणी प्रज्ञा, उचित-अनुचित का भेद करने वाली विवेकशक्ति और नैतिक क्षमता ही वो गुण हैं जो मनुष्य जाति को अन्य मूर्त प्राणियों से इतर और श्रेष्ठ होने का गौरव प्रदान करते हैं। महाभारत के शान्तिपर्व के अध्याय २९९ में महर्षि वेदव्यास का कालजयी उद्घोष –

गुह्यं ब्रह्म तदीदं ब्रवीमि न हि मानुषात् श्रेष्ठतरं हि किञ्चित्।

मनुष्य के धार्मिक, आध्यात्मिक और दार्शनिक तत्त्वों के चिन्तन और ग्रहणीय क्षमता से युक्त होने के कारण अथाह सम्भावनाओं की संरचना होती है जो मानवता का मूल आधार है, जिसका परमोद्देश्य ही परम तत्त्व मोक्ष का अधिकारी होना है। ८४ लाख योनियों में केवल मनुष्य योनि ही ऐसी है जिसे प्राप्त कर परमात्म तत्त्व का साक्षात्कार कर पाना सम्भव है।

समकालीन युग में मशीनी तकनीक के तीव्र प्रचार-प्रसार ने मनुष्य जीवन के समक्ष यह प्रश्न उपस्थापित कर दिया है कि क्या कृत्रिम बुद्धिमत्ता से अनुप्राणित संगणकीय क्षमता निकट भविष्य में मानवीय मेधा का प्रतिस्थापन करने में सक्षम होगा ?

प्रस्तुत शोधपत्र वैदिक, औपनिषदिक, ऐतिहासिक, धर्मशास्त्रीय और अर्थशास्त्रीय सन्दर्भों का सूक्ष्म विवेचन करते हुए इस तथ्य को सिद्ध करता है कि मशीनी तकनीक कितनी भी विकसित क्यों न हो जाये वह अनिवार्य रूप से केवल डाटा प्रसंस्करण तक ही सीमित रहेगी।

भारतीय दार्शनिक दृष्टिकोण में मनुष्य एवं मशीनी तकनीक के मध्य स्रष्टा और साधन का सम्बन्ध है। मनुष्य का अपना आत्मचैतन्य, नैतिक-विवेकज्ञान, अनुभूतिजन्य प्रज्ञा का वह अतुलनीय सामर्थ्य है, जो किसी भी अचेतन

मशीनी तकनीक में उत्पन्न नहीं की जा सकती। यह शोध पत्र यह निष्कर्ष प्रतिपादित करता है कि तकनीकी संवर्धन के बाद भी मनुष्य जाति का स्थान व महत्त्व सर्वदा अपरिवर्तनीय रहेगा।

मुख्य शब्द : भारतीय दर्शन, विवेक, मेधा, चेतन, नैतिकता, कृत्रिम बुद्दिमत्ता, श्रेष्ठता, अनुभूतिजन्य प्रज्ञा।

संवाद : महाभारत, पाणिनीय अष्टाध्यायी, नाट्यशास्त्र एवं नीति-ग्रन्थों में संप्रेषण-कौशल का दार्शनिक-तुलनात्मक अध्ययन

पंकज पाण्डेय, डॉ. अवधेश प्रताप सिंह

भारतीय ज्ञान-परम्परा में संवाद केवल सूचना-विनिमय का साधन नहीं, बल्कि सत्य-अन्वेषण, चेतना-परिष्कार तथा सामाजिक सामञ्जस्य की दार्शनिक प्रक्रिया है। इस शोध-लेख में महाभारत, पाणिनीय अष्टाध्यायी, नाट्यशास्त्र तथा नीति-साहित्य के आलोक में संप्रेषण-कौशल का समन्वित अध्ययन किया गया है। महाभारत के भगवद्गीता एवं यक्ष–युधिष्ठिर संवाद से स्पष्ट होता है कि प्रभावी संवाद श्रोता की मानसिक अवस्था तथा वक्ता की तर्कसंगत अभिव्यक्ति पर आधारित होता है। पाणिनि की अष्टाध्यायी भाषा की शुद्धता, संक्षिप्तता एवं असंदिग्धता को संप्रेषण की आधारशिला मानती है। नाट्यशास्त्र का रस-सिद्धान्त एवं साधारणीकरण भावात्मक संप्रेषण तथा गैर-शाब्दिक संकेतों के महत्व को रेखांकित करते हैं, जबकि नीति-साहित्य सत्य, प्रिय एवं हितकारी वाणी को संप्रेषण का नैतिक आधार स्वीकार करता है। अध्ययन से निष्कर्ष निकलता है कि भारतीय संप्रेषण-मॉडल आधुनिक संचार-सिद्धांतों की अपेक्षा अधिक समग्र, मानवीय एवं मूल्यपरक है तथा मिथ्या सूचना और संवादहीनता जैसी समकालीन चुनौतियों के समाधान में अत्यंत प्रासंगिक है।

कुंजीभूत शब्द- संवाद कौशल, महाभारत, पाणिनीय अष्टाध्यायी, नाट्यशास्त्र, नीति-ग्रन्थ।

संस्कृतवाङ्मये अनुसन्धानपद्धतिः शिक्षणाधिगमविधयश्च

Ch. Shivanand

संस्कृतवाङ्मयं भारतस्य प्राचीनतमायाः समृद्धायाश्च ज्ञानपरम्परायाः प्रमुखं संवाहकम् अस्ति। अस्मिन् वाङ्मये वैदिकं लौकिकं च ज्ञानं, दर्शनम्, व्याकरणम्, साहित्यं तथा विविधाः शास्त्रीयपरम्पराः इत्यादयः विषयाः सम्यक् प्रतिपादिताः सन्ति। अतः संस्कृतवाङ्मयस्य अध्ययनं तत्र निहितानां ज्ञानतत्त्वानां, चिन्तनपरम्पराणां तथा जीवनमूल्यानां सम्यग् बोधनस्य माध्यमम् अस्ति। तस्मात् संस्कृतवाङ्मयस्य सम्यगध्ययनाय गवेषणापद्धतेः शिक्षणाधिगमविधीनां च सम्यक् अवबोधनम् अत्यावश्यकम्।

संस्कृतवाङ्मये निहितस्य ज्ञानस्य यथार्थस्वरूपं ज्ञातुं प्रथमं तस्य गवेषणापद्धतेः सम्यक् परिशीलनम् आवश्यकम्। यतो हि समुचिता गवेषणापद्धतिः एव विषयस्य यथार्थबोधनस्य, प्रमाणपरीक्षणस्य तथा निष्कर्षनिर्धारणस्य आधारः भवति। यथा सुदृढे आधारे निर्मितं भवनं दीर्घकालं स्थिरं तिष्ठति, तथैव सम्यग्गवेषणापद्धत्याधारितं अनुसन्धानं प्रामाणिकं, विश्वसनीयं तथा फलप्रदं भवति। संस्कृतवाङ्मयस्य अनुसन्धानक्षेत्रे ग्रन्थसङ्ग्रहः, पाठालोचनं, पाठनिर्धारणं, सन्दर्भविश्लेषणं, प्रमाणपरीक्षणं, तुलनात्मकाध्ययनं, तात्पर्यनिर्णयः तथा युक्तिपूर्वकं निष्कर्षप्रतिपादनम् इत्यादीनां विशेषं महत्त्वं वर्तते।

संस्कृतवाङ्मयस्य शिक्षणाधिगमपरम्परा अपि विशिष्टस्वरूपा अस्ति। प्राचीनकाले **गुरुशिष्यपरम्परा, वाकोवाक्यं, संवादः, शास्त्रार्थः, तथा पुनरावृत्तिः** इत्यादयः शिक्षणाधिगमस्य प्रमुखाः उपायाः आसन्। आचार्यः शिष्यस्य जिज्ञासां परिपोषयन् तस्य तर्कशक्तेः, विवेकस्य, स्मरणशक्तेः तथा विषयावबोधस्य विकासं साधयति स्म। शिष्यः श्रवणेन ज्ञानं गृह्णाति, मननेन तस्य परीक्षणं करोति, प्रश्नोत्तरेण संशयान् निरस्यति तथा शास्त्रार्थेन स्वकीयम् अवबोधं दृढीकरोति स्म। एवं शिक्षणं ज्ञानस्य ग्रहणं, परीक्षणं, आत्मसातीकरणं तथा प्रयोगं समन्वययन्ती अधिगमप्रक्रिया आसीत्।

अद्यतनकाले संस्कृतवाङ्मयस्य अध्ययने आधुनिकाः अनुसन्धानपद्धतयः तथा नूतनाः शिक्षणाधिगमविधयः अपि प्रचलिताः सन्ति। तासां स्वकीयम् महत्त्वम् उपयोगिता च निःसन्देहं विद्यते। तथापि संस्कृतवाङ्मयस्य विशिष्टस्वरूपं दृष्ट्वा तस्य अध्ययन-अध्यापनयोः भारतीयशास्त्रीयपरम्परायाः मूलभूततत्त्वानाम् अवलम्बनम् अपि आवश्यकम् अस्ति। विशेषतः **प्रमाणविचारः, तर्कपद्धतिः, मीमांसाविधिः, भाष्यपरम्परा, पूर्वपक्ष-उत्तरपक्ष-सिद्धान्तप्रक्रिया, अन्वयव्यतिरेकविचारः, शब्दशक्तिविमर्शः, तात्पर्यनिर्णयः तथा सन्दर्भविश्लेषणम्** इत्यादीनि संस्कृतवाङ्मयस्य गवेषणाय अत्यन्तोपयोगीनि साधनानि सन्ति।

अतः संस्कृतवाङ्मये गवेषणा प्रमाणानां परीक्षणं, पाठस्य समीक्षणं, तत्त्वस्य अन्वेषणं, युक्तीनां परीक्षणं, तात्पर्यस्य निर्धारणं तथा यथार्थज्ञानस्य सम्पादनम् इति व्यापकप्रक्रिया अस्ति। तथैव शिक्षणाधिगमप्रक्रियायां शिष्यस्य जिज्ञासायाः परिपोषणं, चिन्तनशक्तेः विकासः, तर्कविवेकयोः संवर्धनं तथा अधीतज्ञानस्य व्यवहारिकजीवने प्रयोगः अपि अपेक्षितः। एवं गवेषणापद्धतीनां शिक्षणाधिगमविधीनां च समन्वयेन संस्कृतवाङ्मयस्य यथार्थावबोधः, संरक्षणं, संवर्धनं तथा भावीपीढीभ्यः समुचितं सम्प्रेषणं च सम्भवति।

प्रमाणाधिष्ठिता अनुसन्धानरचना न्याय-मीमांसा-आयुर्वेद-तन्त्रयुक्तिपरम्पराणाम् आधारेण भारतीयानुसन्धानपद्धतेः चतुःस्तरीयं प्रतिमानम्, उच्चशिक्षायां शोधप्रविधिशिक्षणे तस्य विनियोगश्च

डॉ. मन्था श्रीनिवासु

भारतीयविश्वविद्यालयेषु शोधप्रविधिपाठ्यक्रमाः — विद्यावारिधि(Ph.D.)-पाठ्यक्रमकार्यसहिताः — प्रायः पाश्चात्त्यप्रतिमानैः एव निर्मिताः। भारतीयशास्त्रपरम्परा तु स्वयं पद्धतिसचेतना आसीत्; न्याये 'प्रमाणैरर्थपरीक्षणम्', मीमांसायां वाक्यार्थविचारः, आयुर्वेदे परीक्षाविधिः सम्भाषाविधिश्च, अर्थशास्त्रादिषु तन्त्रयुक्तयश्च शास्त्ररचनायाः विधिरूपेण विकसिताः। एते विषयाः तु अद्यत्वे प्रायः दर्शनरूपेण पाठ्यन्ते, न तु प्रविधिरूपेण। अस्मिन् शोधपत्रे एताः चतस्रः परम्पराः एकस्मिन् चतुःस्तरीये प्रतिमाने (four-layer model) संयोज्य प्रयोगयोग्यरूपेण प्रस्तूयन्ते।

(१) **ज्ञानमीमांसीयस्तरे** प्रमातृ-प्रमाण-प्रमेय-प्रमितिचतुष्टयं शोधकर्तृ-प्रविधि-शोध्यविषय-निष्कर्षरूपेण, षट् प्रमाणानि आयुर्वेदीया युक्तिश्च साक्ष्यप्रकाररूपेण विविच्यन्ते; (२) **तार्किकस्तरे** संशय-प्रयोजन-सिद्धान्त-पञ्चावयव-तर्क-निर्णयाः शोधचक्ररूपेण, हेत्वाभासाः उपाधिश्च वैधतासङ्कटरूपेण (threats to validity) परीक्ष्यन्ते; (३) **व्याख्यास्तरे** मीमांसायाः अधिकरणपञ्चाङ्गं, तात्पर्यनिर्णायकं षड्लिङ्गं, श्रुत्यादिप्रमाणषट्कस्य पारदौर्बल्यन्यायश्च पाठ्य-गुणात्मकशोधाय विनियुज्यन्ते; (४) **संवादस्तरे** वाद-जल्प-वितण्डाभेदः, चरकस्य सम्भाषाविधिः, द्वात्रिंशत् तन्त्रयुक्तयश्च समकक्षसमीक्षा(peer review)-शोधलेखननीत्योः आधाररूपेण प्रस्तूयन्ते।

पाठविश्लेषण-ऐतिहासिक-तुलनात्मकपद्धत्या त्रयः निष्कर्षाः प्राप्ताः। (१) भारतीयानुसन्धानपद्धतिः शोधस्य साक्ष्य-तर्क-व्याख्या-संवादरूपाणां चतुर्णाम् अपि अङ्गानां सुव्यवस्थितं विवेचनं करोति; विशेषतः नव्यन्यायस्य उपाधिसिद्धान्तः आधुनिकस्य 'प्रच्छन्नचर'(confounding variable)-सङ्कल्पनायाः, योग्यानुपलब्धिः च 'साङ्ख्यिकीशक्ति'(statistical power)-विचारस्य सूक्ष्मं पूर्वरूपम्। (२) किन्तु सम्भाव्यतासिद्धान्तः, प्रतिदर्शसिद्धान्तः, साङ्ख्यिकीयानुमानं च अस्यां परम्परायां नोपलभ्यन्ते — अतः प्रस्तुतं प्रतिमानम् आधुनिकपद्धतीनां पूरकम्, न तु स्थानापन्नम्। (३) तुलनायाम् अतिवाद-उपेक्षावादयोः परिहाराय 'सङ्कल्पनासाम्यम् – आंशिकसाम्यम् – प्रक्रियासाम्यम् – भिन्नत्वम्' इति चतुःस्तरीयः मानदण्डः प्रस्तूयते। अन्ते राष्ट्रियशिक्षानीत्याः (२०२०) आलोके विद्यावारिधि-स्नातकोत्तरशोधप्रविधिपाठ्यक्रमयोः योजनीयं द्विक्रेडिट्-परिमितं पाठ्यखण्डप्रारूपं, मातृभाषामाध्यमशिक्षणविषयकस्य शोधप्रस्तावस्य निदर्शनात्मकं पुनर्गठनं च प्रस्तूयते।

कुञ्जीशब्दाः — प्रमाणम्, अन्वीक्षा, भारतीयानुसन्धानपद्धतिः, संशयः, सिद्धान्तचतुष्टयम्, पञ्चावयववाक्यम्, हेत्वाभासः, उपाधिः, अधिकरणम्, षड्लिङ्गम्, तन्त्रयुक्तिः, सम्भाषाविधिः, शोधप्रविधिः, भारतीयज्ञानपरम्परा

Insights into Research Methodology and Techniques of in Pūrva-Mīmāṁsā

Bhav Sharma

This paper examines the comprehensive structural and methodological systems of hermeneutics developed within the school of Pūrva-Mīmāṁsā. Historically designed to resolve ambiguities within ritual texts, Pūrva-Mīmāṁsā offers complex, logical frameworks for language analysis that go far beyond standard grammatical rules. The research focuses on how these traditional techniques establish an objective roadmap for deciphering textual meaning, determining semantic hierarchy, and managing syntactic conflicts.

The study begins with a core analysis of *Jijñāsā* (the desire to know) oriented toward *Dharma*, exploring its definitions, the valid means of realization (*Sādhana*), and deceptive means (*Sādhanābhāsa*). To handle specific subjects systematically, the school utilizes the five-part *Adhikaraṇa* framework consisting of *Viṣaya* (topic), *Viśaya* (doubt), *Pūrvapakṣa* (opponent's view), *Siddhānta* (final conclusion), and *Saṅgati* (relevance). Central to unlocking the author's true intent are the six *Tātparyanirṇāyaka-liṅgas*: *Upakrama-Upasaṁhāra* (introductory and concluding assertions), *Abhyāsa* (repetition), *Apūrvatā* (novelty), *Phala* (fruit/result), *Arthavāda* (explanatory/commendatory passages), and *Upapatti* (demonstrative proof).

Furthermore, the paper explores case-specific applications found in foundational *Adhikaraṇas*. It highlights the avoidance of *Lakṣaṇā* (metaphorical/secondary meaning) in cases like the *Niṣādasthapatyadhikaraṇa*, while acknowledging its necessity in examples like *Somena yajeta* to prevent syntactic split (*Vākyabheda*). In word-meaning determination, it looks into the dynamics between standard grammar (*Vyākaraṇādhikaraṇa*), colloquial usage (*Mlecchādhikaraṇa*), and why etymological-conventional meaning overrules pure etymology (*Yogāt rudhir balīyasī*). It also traces how the school prioritizes practical, visible outcomes over imagined unseen rewards (*Dṛṣṭe sambhavati adṛṣṭaphala-kalpanā anyāyyā*), and addresses contextual exclusions (*Bādha*) like *Kṛṣṇala-caru*.

Crucially, the paper unpacks the *Balābalādhikaraṇa*, analyzing the structural hierarchy of textual evidence—ranging from direct statement (*Śruti*) down to name-association (*Samākhyā*)—to show how conflicts between interpretive criteria are systematically resolved. Finally, it demonstrates the semantic import of grammatical suffixes like *ktvā* and *lyap*, proving how context modifies sequential time into unhindered order, simple posteriority, or specific prior conditions. Ultimately, this research emphasizes that Pūrva-Mīmāṁsā provides timeless, rational tools for textual analysis that remain highly applicable to modern legal interpretation, linguistics, and philosophical hermeneutics.

Keywords: Pūrva-Mīmāṁsā, Hermeneutics, Adhikaraṇa, Tātparyanirṇāyaka-liṅga, Balābalādhikaraṇa, Textual Interpretation, Dharma.

Aparigraha and Sustainable Living: A Yogic Response to Contemporary Consumerism

Nitya Vaishnaw Akshi Gahlaut

Contemporary consumerism has increasingly encouraged patterns of excessive acquisition, material attachment, and consumption beyond basic needs, raising concerns related to environmental sustainability and responsible living. This study explores the relevance of Aparigraha, the yogic principle of non-possessiveness and freedom from excessive accumulation,

as an ethical framework for responding to contemporary consumeristic patterns. The research examines the concept of Aparigraha as articulated in classical Yogic literature, with particular reference to Patañjali's Yoga Sūtras and relevant interpretations in other yogic texts, and relates these teachings to present-day concerns surrounding consumption and sustainable living. The scope of the study is limited to examining Aparigraha as a philosophical and behavioural principle and its potential relevance to developing more balanced consumption patterns.

Methodology

The study adopts a qualitative, conceptual methodology based on textual analysis of selected Yogic texts, supported by a review of relevant research papers and contemporary literature on consumerism, sustainability, and ethical consumption. The analysis identifies the underlying dimensions of Aparigraha, including moderation in acquisition, reduction of unnecessary attachment, conscious use of resources, and cultivation of contentment, and considers their applicability to modern lifestyles.

Findings and Observations

A systematic review will be conducted using the PRISMA framework, and a PRISMA flow chart will be prepared to present the study selection process. The findings will explore how Aparigraha may promote mindful consumption, reduce material attachment, and encourage responsible use of natural resources.

Conclusion

The study concludes that integrating the ancient Yogic prinfciple of Aparigraha with contemporary sustainability discourse can offer a balanced pathway towards sustainability-oriented living. It also demonstrates the continuing relevance of classical Indian wisdom in addressing emerging social and environmental challenges.

Keywords: Aparigraha; Sustainable Living; Consumerism; Yogic Philosophy; Mindful Consumption

Revisiting Indology: New Research Perspectives

Dr Renuka Bokare

Indology, the systematic study of India's languages, literature, philosophy, history, religions, art, and cultural traditions, has played a significant role in understanding the intellectual and civilizational heritage of India. In the contemporary academic landscape, however, the discipline requires renewed reflection on its methodologies, interpretative frameworks, and interdisciplinary possibilities. The theme "Revisiting Indology: New Research Perspectives" seeks to explore emerging approaches that can expand the scope of Indological research and establish meaningful connections between classical knowledge systems and contemporary scholarship.

The proposed study emphasizes the need to move beyond conventional text-centred and purely philosophical approaches towards multidisciplinary and interdisciplinary investigations. Linguistics, archaeology, anthropology, sociology, epigraphy, numismatics, literary criticism, and comparative studies offer valuable tools for reconstructing India's intellectual and cultural history. A sound command of classical languages, particularly Sanskrit, Pali, Prakrit, and Tamil, remains essential for critically examining primary sources and interpreting them within their historical and cultural contexts.

The integration of digital humanities, artificial intelligence, computational linguistics, digital manuscriptology, textual databases, and knowledge mapping presents new opportunities for preserving, analysing, and disseminating India's textual heritage. Equally important is the critical engagement with contemporary sociological, anthropological, and historiographical theories, while assessing their applicability to Indian contexts. Indigenous intellectual frameworks and traditional knowledge practices must be examined through rigorous evidence-based methods, avoiding both uncritical glorification and reductive interpretations.

Furthermore, comparative and cross-cultural perspectives can illuminate India's historical interactions with other civilizations and its contributions to global knowledge traditions. Revisiting Indology also calls for greater collaboration among universities, research institutions, traditional scholars, and international academic networks.

The study ultimately proposes a dynamic and inclusive vision of Indology that combines philological rigour, methodological innovation, interdisciplinary dialogue, and technological advancement. Such a renewed research orientation can strengthen the academic relevance of Indology, generate fresh interpretations of India's civilizational heritage, and contribute to contemporary debates on knowledge, culture, identity, and sustainable human development.

Keywords: Indology, Interdisciplinary Research, Indian Knowledge Systems, Classical Languages, Digital Humanities, Artificial Intelligence, Manuscript Studies, Indigenous Knowledge, Comparative Studies, Research Methodology.

बालकथासप्ततौ बालसाहित्यतत्त्वविमर्शः

डा. उदयन हेगडे

संस्कृतभाषायाः प्राचीनता, समृद्धिः, वैज्ञानिकता च निर्विवादरूपेण सर्वविदिता अस्ति। संस्कृतवाङ्मये बालानां मनोविनोदाय, नीतिबोधाय, संस्कारप्रदाय च कथासाहित्यस्य दीर्घा परम्परा विद्यते। पञ्चतन्त्रं हितोपदेशश्च अस्याः परम्परायाः प्रमुखे निदर्शने स्तः। आधुनिककालेऽपि संस्कृतभाषायां बालोपयोगिनां साहित्यकृतीनां निर्माणं प्रवर्तते। अस्मिन् सन्दर्भे डा. जनार्दनहेगडेमहोदयेन विरचिता बालकथासप्ततिः विशेषतया उल्लेखनीया।

बालकथासप्ततिः सप्ततिलघुकथानां सङ्ग्रहः अस्ति। संस्कृतभारती, बेङ्गलूरु इत्यस्य प्रकाशनरूपेण २०१३ तमे वर्षे अस्य प्रथमं संस्करणं प्रकाशितम्। बालसाहित्यनिर्माणे सरलभाषायाः, रोचककथानकस्य, मूल्याधारितचिन्तनस्य, मनोरञ्जनस्य च समन्वयः अस्य ग्रन्थस्य मुख्यं वैशिष्ट्यम् इति प्रतिपादयितुं शक्यते। लेखकस्य संस्कृतशिक्षणक्षेत्रे, बालसाहित्ये, संस्कृतप्रचारकार्ये च दीर्घकालीनः अनुभवः तस्य साहित्यनिर्माणेषु प्रतिबिम्बितः भवति।

अस्मिन् शोधपत्रे बालसाहित्यस्य स्वरूपं, संस्कृतबालसाहित्यस्य परम्परा, *बालकथासप्ततेः* रचनात्मकवैशिष्ट्यम्, भाषाशैली, नीतितत्त्वं, बालमनोविज्ञानसम्बन्धः, संस्कारपरकता, शिक्षणोपयोगिता तथा आधुनिकसंस्कृतबालसाहित्ये अस्य स्थानम् इत्यादयः विषयाः विविच्यन्ते।

मुख्यशब्दाः — बालसाहित्यम्, बालकथा, संस्कृतसाहित्यं, जनार्दनहेगडे, बालकथासप्ततिः, नीतिबोधः, संस्कारः, भाषाशिक्षणम्।

प्राचीनकथासाहित्यस्य उत्पत्तिक्रमविकासकालः तथा आधुनिकबालसाहित्यस्य अन्यतमप्रमुखप्राचीनस्रोतरूपेण पञ्चतन्त्रकथाग्रन्थस्य स्थानम् : एकं तुलनात्मकमध्ययनम्

डा. अरबिन्दनायकः

शब्दार्थयोः सहितयोः भावं साहित्यम् । कान्तासम्मितशास्त्रस्यास्य एकं मुख्याङ्गरूपं भवति गद्यम् । वृत्तबन्धोज्झितं गद्यम् ।आपादः पदसन्तानो गद्यम् । मुख्यतया गद्यं द्विधा विभक्तम् । कथा आख्यायिका चेति । कथ् वाक्यप्रबन्धे इति धातोः अङ् प्रत्यये स्त्रीयां टाप् योगे च कथापदनिष्पत्तिः। पशुपक्षिणां चरित्रमाधारीकृत्य कथाः विरचिताः । यतोऽहि वालाः समाजस्य भाविनिर्मातारः, अतः तेषां बुद्धौ आयासेन मनोरञ्जनेन च सह सदाचारवीजस्य रोपणार्थं कथाः |

कथाकथनमाध्यमेन भाषाविकासः एकम् विश्लेषणात्मकमध्ययनम्

साध्वी देवाश्रिता

कथाकथनकला विद्यार्थिषु—विशेषतः प्राथमिक-माध्यमिकस्तरयोः छात्रेषु—भाषाकौशलानां यथा- शब्दावल्याः, व्याकरणस्य, श्रवणस्य तथा मौखिकाभिव्यक्तेः समग्रं विकासं कथं करोति ? आचार्यविष्णुशर्मणा विरचिताः पञ्चतन्त्रस्य कथाः अस्मान् शिक्षयन्ति यत् कथानां माध्यमेन कथं बालेभ्यः राजनीतेः व्यवहारस्य च ज्ञानं सुगमतया प्रदीयते । सन्दर्भः परम्परा च : अस्य अध्ययनस्य मूलाधारः मानवसभ्यतायाः प्रारम्भादेव प्रचलिता श्रुति-परम्परा यस्याः माध्यमेन न केवलं पुरा काले अपितु अद्यापि एतया मौखिकज्ञानपरम्परया परम्परागत गुरुकुलेषु वेदाध्ययनं, सांस्कृतिकमूल्यानां परस्परं हस्तान्तरणं तथा कथानां शिक्षणमहत्त्वं च अस्ति । अध्ययनस्य सीमा : एतत् अध्ययनं समकालीनभाषाशिक्षणशास्त्रे कथाकथनं केवलं मनोरञ्जनस्य साधनं नास्ति, अपितु भाषा- अर्जनस्य एका अतीव प्रभावकारिणी स्वाभाविकी प्रक्रिया चास्ति इति रूपेण विश्लेषयति ।

शोधप्रविधिः - इदम् अध्ययनं गुणात्मक-विश्लेषणात्मक-शोधपद्धत्या-धारितम् अस्ति । अत्र भाषाविज्ञानस्य प्रमुखसिद्धान्तानां यथा वाइगोत्स्की-ब्रूनरवर्याणां भाषाविकासप्रतिरूपं तथा व्यावहारिकशिक्षणानुभवानां समाकलनं कृतं वर्तते । अस्याः पद्धत्याः अन्तर्गतं कथाकथनस्य व्यावहारिकप्रयोगस्य पाठ्यसंरचनायाश्च विश्लेषणात्मकम् अध्ययनं विहितम् अस्ति ।

प्रदत्तांशाः निष्कर्षाश्च :- शोधस्य निष्कर्षाः एतत् दर्शयन्ति यत् विद्यार्थिनः प्रसङ्गानुकूलं नवीनान् शब्दान् शिक्षन्ते, येन तेषां सक्रियशब्दावल्याः संवर्धनं भवति। कथानां प्रवाहेण व्याकरणिकसंरचनानां स्वाभाविकः बोधः जायते तथा च कण्ठस्थीकरणं विना वाक्यरचनायाः अवबोधः विकसितः भवति । श्रवण-मौखिककौशलस्य सम्पोषणं भवति- कथाकथनप्रक्रिया श्रवणकौशलं तीक्ष्णं करोति विद्यार्थिनश्च मौखिकाभिव्यक्तये प्रेरयति । एषा प्रक्रिया न केवलं भाषिकीं दक्षतां वर्धयति, अपितु कल्पनाशीलतायाः, तार्किकचिन्तनस्य, संवेगात्मकबुद्धिमत्तायाः च विकासे अपि सहायिका भवति ।

निष्कर्षः तस्य प्रभावाश्च :- इदं शोधपत्रम् एतत् प्रतिपादयति यत् आधुनिकपाठ्यचर्यायां कथाकथनम् एकस्य केन्द्रीयशिक्षणोपकरणस्य रूपेण एकीकृतं करणीयम्, येन भाषाधिगमः अधिकं रोचकः, समावेशी, प्रभावकारी च कर्तुं शक्येत् । प्राच्यक्षेत्रे योगदानम्- एतद् अध्ययनं भारतस्य प्राचीनां मौखिकीं कथापरम्परां आधुनिकभाषाविज्ञानेन सह संयोजयति । एतत् प्रतिपादयति यत् पारम्परिककथाकथनपद्धतयः आधुनिकभाषाविज्ञानस्य समावेशिशिक्षायाः च उद्देश्यानि पूरयितुम् अत्यन्तं प्रासङ्गिकाः सन्ति ।

मुख्यशब्दाः : भाषाविकासः, कथाकथनम्, शब्दावलीसंवर्धनम्, मौखिकाभिव्यक्तिः, संज्ञानात्मकविकासः, भाषा-शिक्षणशास्त्रम्, प्राचीना श्रुति-परम्परा ।

Folk Tales in Children's Stories: Shaping Young Minds Through Traditional Wisdom

Mrs. Saroj Dhoundiyal

Research Parameters (Introduction): During their formative years, children possess a highly receptive mind—akin to soft clay—where story-led impressions significantly influence cognitive, emotional, and moral development. This paper explores how Indian folk narratives, particularly the Panchatantra, Hitopadesha, Jataka tales, and selected regional folklore, contribute to children's holistic growth. It investigates the primary question: What core impressions do traditional folk tales leave on young minds, and how can their integration into contemporary education foster cognitive, moral, and social-emotional development?

Methodology: The study adopts a qualitative, interpretive, and thematic analytical approach to evaluate selected Indian folk narratives. The core stories are critically examined across recurring values such as honesty, compassion, courage, friendship, strategic wisdom, and social cooperation. Narrative structures, character archetypes, conflict-resolution mechanisms, and moral frameworks are evaluated through a pedagogical lens.

Data & Findings: Findings reveal that folk tales render abstract ethical concepts concrete and age-appropriate through anthropomorphic characters, allegorical structures, and relatable dilemmas. Beyond enhancing imagination and language acquisition, these narratives stimulate critical thinking, empathy, moral reasoning, and practical life skills (Vyavaharika Jnana). Furthermore, their rich cultural contextualization strengthens children's foundational connection to traditional knowledge systems, identity, and cultural heritage.

Conclusion: In conclusion, folk tales serve as dynamic pedagogical tools that extend far beyond simple entertainment for students. By systematically integrating traditional folklore into modern school curricula, educators can actively nurture holistic child development. Furthermore, this essential practice effectively instills enduring human values and successfully sustains vital indigenous wisdom across many future generations of young learners.

Keywords: Folk Tales; Children's Education; Traditional Knowledge Systems; Character Building; Holistic Development; Panchatantra.

पाठ्यपुस्तकेषु संस्कृतबालकथानां स्वरूपम्

रूबि साहु

संस्कृतसाहित्ये बालकथानां परम्परा पञ्चतन्त्र-हितोपदेश-कथासरित्सागरादिभिः प्राचीनग्रन्थैः प्रारभ्य आधुनिककालपर्यन्तम् अविरतं प्रवहति। विद्यालयीय-पाठ्यपुस्तकेषु संस्कृतभाषाशिक्षणार्थं बालकथानां समावेशः एका महत्त्वपूर्णा परम्परा अस्ति। प्रस्तुतः शोधलेखः पाठ्यपुस्तकेषु प्रचलितानां संस्कृतबालकथानां स्वरूपस्य—अर्थात् तासां विषयवस्तुनः, भाषाशैल्याः, कथानकसंरचनायाः, पात्रचित्रणस्य, नीतितत्त्वानां च विस्तृतम् अध्ययनं प्रस्तौति। शोधस्य मुख्यम् उद्देश्यम् इदम् अन्वेषणीयम् यत् पाठ्यपुस्तकेषु निबद्धाः कथाः कियत्परिमाणेन बालकानां वयोऽनुरूपाः, बोधगम्याः, रुचिकराश्च सन्ति, तथा ताः भाषाकौशलविकासस्य साधनत्वेन कथं कार्यं कुर्वन्ति। अध्ययने विविधस्तरीयानां संस्कृतपाठ्यपुस्तकानां वर्णनात्मक-विश्लेषणात्मक-पद्धत्या सामग्री-विश्लेषणं कृतम्। शोधनिष्कर्षाः दर्शयन्ति यत् पाठ्यपुस्तकेषु प्रचलिताः संस्कृतबालकथाः भाषाशिक्षणस्य प्रभावी साधनं भवितुम् अर्हन्ति, यदि ताः वयोनुरूपभाषया, सरलवाक्यरचनया, रोचकविषयवस्तुना च युक्ताः स्युः। तथापि कतिपयासु

पाठ्यपुस्तकेषु भाषाक्लिष्टता, समकालीनबालरुच्यनुरूपविषयवस्तुनः अभावः, तथा नवीनशैक्षणिकपद्धतीनाम् अपर्याप्तः समावेशः इत्यादयः त्रुटयः अपि दृश्यन्ते। अध्ययनान्ते भविष्ये पाठ्यपुस्तकरचनार्थं सम्यक् दिशानिर्देशाः प्रस्तुताः सन्ति।

बीजशब्दाः : पाठ्यपुस्तकम्, संस्कृतबालकथा, भाषाशिक्षणम्, कथानकस्वरूपम्, पञ्चतन्त्रपरम्परा, सामग्रीविश्लेषणम्, बालशिक्षा